ओं नमः सिद्धेभ्यः ।

ओंकारं विन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमो नमः ॥ १ ॥
अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलमलकलंका ।
मुनिभिरुपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान् ॥ २ ॥

अज्ञानतिमिरांधानां ज्ञानांजनशलाकया । चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

परमगुरवे नमः परम्पराचार्य्य श्रीगुरवे नमः ।

सकलकलुषविध्वंसकं श्रेयसां परिवर्द्धकं धर्म्मसंबन्धकं भव्यजीवमनः प्रतिबोधकारकमिदं शास्त्रं "श्री सुदृष्टि तरंगिणी" नामधेयं, एतन्मूलग्रन्थकर्त्तारः श्रीसर्वज्ञदेवास्तदुत्तरग्रन्थकर्त्तारः श्रीगणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचोनुसारमासाद्य पंडित प्रवर श्री टेकचन्दजी विरचितम् ।

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी। मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्॥

सर्वे श्रोतारः सावधानतया शृण्वन्तु ॥

...पञ्चमकाल में आ... त्मक-निधि का ह... चर नहीं है।
शास्त्र ही है

संसारी प्राणी ... स ग्रन्थराज को आप लोगों के सामने लाते हुए ... अनुयोगों का सरल और सुगम वर्णन होने से सब को अच्छी तरह से समझ में आ जाता है। इसका प्रवचन कलकत्ता में शास्त्र-मर्मज्ञ श्री बाबूलालजी ने गत वर्ष गद्दी पर किया। तब से मुझे यह उत्कट अभिलाषा उत्पन्न हुई कि ऐसे श्रेष्ठ ग्रन्थ को पुनः प्रकाशित कर सर्व-साधारण के लिए उपलब्ध कराया जाए। इसके पहिले इसका प्रकाशन वीर निर्वाण सं० २४५२ में श्री जिनवाणी प्रचारक कार्यालय, कलकत्ता एवं वीर नि० सं० २४५४ में पं० पन्नालालजी चौधरी द्वारा बनारस से हुआ था।

मैं, श्री मदनलालजी कासलीवाल एवं श्री मानमलजी झांझरी का आभारी हूं जिन्होंने मुझे इसे पुनः प्रकाशित कराने के लिए विशेषतः प्रेरित किया। श्री पं० कमलकुमार जी शास्त्री का भी मैं हृदय से आभारी हूं जिन्होंने इसका संशोधन एवं सम्पादन कर इसे परिवर्द्धित रूप में प्रकाशित करने में काफी सहायता दी।

इस ग्रन्थ के मूल रचियता स्व० पण्डित प्रवर टेकचन्दजी के जीवन-परिचय को खोजने का भी काफी प्रयास किया गया, पर कोई भी विश्वसनीय सामग्री उपलब्ध नहीं हो सकी। अतः विज्ञ पाठकों एवं विद्वान् समाज से अनुरोध है कि इस विषय में वे अपनी जानकारी हमें भेजने का कष्ट करें।

अन्त में आग्रह है कि दृष्टिदोष से जो भूलें रह गईं हो, उन्हें पाठकगण हमें लिखने का कष्ट करें ताकि अगले संस्करणों में उन्हें परिमार्जित किया जा सके।

जैन पुस्तक भवन
कलकत्ता-७
दीपावली २४९८

निवेदक :
नृपेन्द्र कुमार जैन

सम्पादकीय वक्तव्य

उद्बोधन—संसार अनादिनिधन है। इसमें संसरण (परिभ्रमण) करनेवाले जीव अनन्त हैं। उनमें अनन्त जीव तो ऐसे हैं जो निगोद में ही अपार जन्म-मरण के असहनीय दुःखों को भोग रहे हैं और अनन्तकाल तक भोगते रहेंगे। तात्पर्य यह है कि उनके उक्त अनन्त दुःखों का अन्त कदापि सम्भव नहीं है।

अनन्त जीव ऐसे भी हो चुके हैं जो निगोद से निकल कर काल-लब्धि को प्राप्त कर अनन्त अविनाशी शाश्वतिक आत्मिक सुख को सिद्धालय में विराजमान होकर भोग रहे हैं और अनन्तकाल तक बराबर भोगते रहेंगे। वे सब सिद्ध परमात्मा बहिरात्मा से निकल कर अन्तरात्मा बने और पश्चात् अपने ही प्रबल पुरुषार्थ से परमात्म पद को प्राप्त हुए।

उन्होंने उक्त परमात्म पद को अन्ततोगत्वा मनुष्य पर्याय से ही प्राप्त किया, क्योंकि मनुष्य पर्याय के अतिरिक्त अन्य किसी भी पर्याय में रत्नत्रय—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की परिपूर्णता सम्भवतः ही है। गुणस्थानों की परिचर्चा से यह साफ तौर पर जाहिर है कि नारकी तथा देव चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान से आगे देशविरत आदि गुणस्थानों को प्राप्त करने में सर्वथा असमर्थ-अक्षम हैं। हां, तिर्यग्गति के जीव उनसे आगे का पञ्चम देशविरत गुणस्थान जरूर ही पा सकते हैं, लेकिन वे भी आगे के षष्ठ आदि गुणस्थानों को धारण करने में कथमपि योग्यता सम्पन्न नहीं हैं, अतः उक्त तीनों गतियों के जीवों में रत्नत्रय-सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की परिपूर्णता की कल्पना आकाश-कुसुम के समान असम्भाव्य ही है।

प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद आचार्यों ने एक मात्र मानव को ही साक्षात् मोक्ष प्राप्त करने का अधिकारी सिद्ध किया है। परम्परया तो सभी गतियों के जीव मोक्ष प्राप्त करने के अधिकारी बन सकते हैं, यह निःसन्देह है। यह सब कुछ लिखने का तात्पर्य मात्र इतना ही है कि मानव तन को पाकर के मानवोचित कर्त्तव्यों का परिपालन करके हमें अपनी मानवता को सफल बनाना चाहिये।

गृहस्थों के षट्-कर्म—हमारे प्रातःस्मरणीय एवं वन्दनीय महर्षियों ने हम सरीखे साधारण गृहस्थों को जो षट्-कर्मों के पालन करने का उपदेश दिया है—हमें उन छहों अपरिहार्य कर्तव्यों का परिपालन यावज्जीवन करते रहना चाहिये, जिनसे हमारा वर्तमान जीवन सुख शान्ति का अनुभवशील हो और भावी जीवन उससे भी बढ़ कर सुख साता के विशुद्ध वातावरण को पा सके।

(१) **देव-पूजा**—प्रथम कर्तव्य कर्म है—अर्थात् सर्वप्रथम हमें १००८ श्रीअरिहन्त परम देव की पूजा में दत्तचित्त रहना चाहिये। उनकी सच्चे हृदय से की गई पूजा ही हमारे लिये भव-भवान्तर में मोक्षपथ को प्रशस्त करने का अव्यर्थ साधन है और सम्यक्त्व का मूल बीज है।

(२) **गुरूपासना**—दूसरा कर्तव्य कर्म गुरूपासना है—अर्थात् वह हमें १०८ परम दिगम्बर गुरुओं की उपासना-आराधना और चरणार्चना की ओर इङ्गित करता है, क्योंकि उनकी मनसा, वाचा और कर्मणा की गई परिचर्या पर्युपासना और गुणार्चना ही हमारी अन्तरात्मा में विरागता को जगाने में आद्य कारण है।

(३) **स्वाध्याय**—तीसरा कर्तव्य कर्म स्वाध्याय है—वीतराग, सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा, हितोपदेष्टा, १००८ भगवान श्री अरहन्त परम देव परमात्मा की दिव्य-ध्वनि के प्रतीक परमर्षि गणधर देवों द्वारा ग्रथित तथा तदनुसारी परमाराध्य परम गुरुओं द्वारा र[illegible]का अध्ययन, मनन, चिन्तन, पठन, पाठन, श्रवण, श्रावण आदि विविध सन्मार्गों द्वारा ज्ञान प्राप्त करना चाहिये, क्योंकि शास्त्र[illegible] आ[illegible]क-ज्ञान की परिप्राप्ति सर्वथा और सर्वदा असम्भव है। इस वर्तमान विकराल [illegible]

एकमात्र साधन शास्त्र-स्वाध्याय ही है। आत्म-स्वरूपोपलब्धि का प्रमुख कारण शास्त्र-स्वाध्याय से बढ़ कर अन्य कारण दृष्टिगोचर नहीं है। आज के अस्तव्यस्त मानव जीवन में सत्पथ का प्रदर्शक अलौकिक आदर्श यदि कोई हो सकता है तो वह एकमात्र आर्ष शास्त्र ही है। संसारी प्राणी को इष्ट वस्तु की प्राप्ति सुबोध, समीचीन, सम्यग्ज्ञान से ही सम्भव है और वह सम्यग्ज्ञान—यथार्थ वस्तु का परिज्ञान वस्तुतः शास्त्र-सद्गुरु की वाणी से हो उपलब्ध हो सकता है, प्रकारान्तर-साधनान्तर से नहीं ; और उस शास्त्र—सद्गुरु की वाणी का मूल स्रोत १००८ भगवान् अरिहन्त देव हैं, उन्हीं के द्वारा ही वस्तु के वास्तविक स्वरूप का बोध उनकी दिव्य देशना से परम्परया ब्रह्मर्षियों, महर्षियों और ऋषियों को सदा से प्राप्त होता रहा है, यह एक साधारण अद्वितीय तथ्य है, जो सत्य से ओत-प्रोत है, अतएव अचिन्त्य माहात्म्य है।

(४) **संयम**—चौथा कर्तव्य कर्म संयम से तात्पर्य है, इन्द्रियों और मन को काबू में रखना। विषय कषायों से आत्मा की सुरक्षा करना। यथाशक्ति स्पर्शन आदि इन्द्रियों के इष्ट-प्रिय और अनिष्ट-अप्रिय पदार्थों से राग-द्वेष को कम करना तथा एकेन्द्रिय आदि पचेन्द्रिय तक के जीवों की प्राण रक्षा में सतत् प्रयत्नशील सर्वतोभावेन दत्तचित्त रहना। क्रोध आदि कषायों से अपनी आत्मा को निरन्तर बचाते रहना। तथ्य तो यह है कि इन्द्रिय-निग्रह मनोनिग्रह पर आधारित है, अतः मनोनिग्रह को ही यदि संयम मान लिया जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी।

(५) **तप**—पांचवां कर्तव्य कर्म तप है—तप का अर्थ है तपाना अर्थात् स्वाध्यायाग्नि द्वारा आत्म-स्थित कर्मों को जलाना, यह आंशिक रूप से शक्त्यनुसार गृहस्थावस्था में भी किया जाता है, जिसे हम अन्तरंग तप भी कह सकते हैं। विषय कषायों का त्याग-रूप उपवास आदि का यथाशक्ति धारण करना भी आन्तरिक शुद्धि का कारण होने से तप है। तात्पर्य यह है कि जिन कार्यों के करने से आत्मा नवीन कर्मों के आस्रव से बचे और संवर से सजे उन तमाम आचरणों का नाम तप है।

(६) **दान**—छठा कर्तव्य कर्म दान है—यहां दान से तात्पर्य यह लेना है कि स्वपर कल्याण के लिये जो कुछ भी अधिकार-प्राप्त वस्तुओं का उत्सर्ग—त्याग किया जाता है, वही वास्तविक दान है। दान की विधि, दातव्य वस्तु, उपादेय पात्र और दाता इनकी अपनी-अपनी स्वतन्त्र विशेषता से भी दान में विशेषता उपलब्ध होती है। इन उल्लिखित कर्मों के द्वारा हमें अपने मानव जीवन को यथासम्भव, यथाशक्ति और यथाकाल सफल बनाने में सदा अग्रसर रहना चाहिए। इससे हम एक क्षण के लिये भी पश्चात् पद—पीछे पैर रखनेवाले न हों इसका हमें सतत् प्रयत्न करते रहना चाहिये।

उक्त षट्-कर्मों में स्वाध्याय कर्तव्य कर्म को लक्ष्य में रख कर ही हमने श्री सुदृष्टि-तरङ्गिणी ग्रन्थ के सम्पादन कार्य को हाथ में लिया और जहां तक हमसे बन पड़ा वहां तक हमने अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार यत्र-तत्र-सर्वत्र संशोधनीय अंशों को संशोधित कर इसे सम्पादित किया।

श्री सुदृष्टि-तरङ्गिणी और उसकी यथार्थता

श्री सुदृष्टि-तरङ्गिणी "यथानाम तथागुण" की कहावत को अक्षरशः सार्थक करता है। सुदृष्टि-समीचीन श्रद्धावान् सम्यग्दृष्टि के तात्त्विक सद्विचार रूप समुद्र की तरंगें इस ग्रन्थ में लहरा रही हैं अर्थात् सम्यग्दृष्टि की तात्त्विक वस्तु तत्त्व को प्रस्फुटित करनेवाली ज्ञेय हेयोपादेयात्मक विविध अविचल विचार-धारायें इस ग्रन्थ में यत्र-तत्र-सर्वत्र अखण्डित रूप से प्रवाहित हो रही हैं, जिनसे कोई भी तत्त्व-जिज्ञासु वस्तु-तत्त्व को असलियत को जानने की इच्छा रखनेवाला स्वाध्याय प्रेमी अपनी आन्तरिक इच्छा की परिपूर्ण पूर्ति पाकर आनन्द सागर में गोते लगाने लगता है, उसे पर से विस्मृति और स्व—अपनी आत्मा के वास्तविक स्वरूप की स्मृति का अपूर्व अनुभव स्वतः होने लगता है ग्रन्थकार ने अपने जीवन भर के शास्त्र स्वाध्याय द्वारा सम्पादित सैद्धान्तिक तात्त्विक ज्ञान एवं आत्मिक अपूर्व अनुभूति को कूट-कूट कर

इसमें भर दिया है। ग्रन्थकार को वस्तु तत्त्व को विवेचन करने की अलौकिक पद्धति भाषा शैली सरल और सुबोध है। विषय का अन्तस्थल-स्पर्शी विवेचन मार्मिकता और सूक्ष्मेक्षिता से भरपूर है। हितकारी विषयों को श्रोताओं के हृदयों में सरलता से स्थापित करने के हेतु विविध उदाहरणों तथा दृष्टान्तों का इसमें जिस खूबी के साथ समन्वय किया गया है; वह प्रत्येक स्वाध्यायशील व्यक्ति के हृदय को छुए बिना नहीं रह सकता। गूढ़ से गूढ़—गहन से गहन – गम्भीर से गम्भीर सूक्ष्मातिसूक्ष्म विषय को सर्वसाधारण के मानस-मन्दिर में प्रतिष्ठित करने की लोकोत्तर कुशलता ग्रन्थकार की अपनी खास निजी विशेषता है, जिसे नकारा नहीं जा सकता। ग्रन्थ के अन्तर्दर्शन से यह साफ तौर पर जाहिर होता है कि ग्रन्थकार को प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग का लोकातिशायी स्वपरिशीलित परिपक्व ज्ञान था। इतना सब होते हुए भी वे विनय, नम्रता और स्वाभाविक भद्रता की मूर्ति थे। उनकी सरलता, निर्लोभता एवं पर-हित-परायणता के तो पद-पद पर दर्शन होते हैं। समग्र ग्रन्थ के पर्यालोचन, परिशोलन और परिदर्शन से ऐसा लगता है कि वे वस्तुतः सम्यग्दृष्टि थे, तभी तो उनके द्वारा यह स्वानुभूति-परिपूर्ण तात्त्विक विवेचना जन-जन के कल्याणार्थ प्रस्तुत हो सकी, अतः हमें बरवस यह लिखने के लिये बाध्य होना पड़ता है कि वे यथार्थतः सम्यग्ज्ञानी थे, उनकी ज्ञान-गरिमा के लिये हम सहस्रशः नतमस्तक हैं, साथ ही उनके समान ज्ञान प्राप्त करने के हेतु प्रतिक्षण भावनाशील हैं।

ग्रन्थ और ग्रन्थकार—प्रकृत ग्रन्थ की मौलिक भाषा सौरसेनी प्राकृत है, जिसे गाथा सूत्र की संज्ञा से अभिहित किया गया है। अतः यह एक पद्यात्मक कृति है, लेकिन यह कृति किस कवि के द्वारा कब, कहां और किस प्रसंग को लेकर की गई, यह एक अत्यन्त विचारणीय और अन्वेषणीय तथा अनुसन्धानीय विषय है।

ग्रन्थ के आद्योपान्त परिशीलन से तो ऐसा लगता है कि यह कृति भी इन्हीं वचनिकाकार विद्वद्वर स्वर्गीय पं० टेकचन्द्रजी की ही होनी चाहिये, कारण कि उन्होंने वचनिका प्रारम्भ करने से पूर्व जो मङ्गलाचरण किया है, उसमें कहीं पर भी यह नामोल्लेख नहीं किया है कि अमुक आचार्य के द्वारा प्रणीत अमुक ग्रन्थ के ऊपर मैं (···· ····) सर्वजनहितार्थ देशभाषामय वचनिका लिखता हूं और न यह भी निर्देश किया है कि मैं स्वरचित सुदृष्टि तरङ्गिणी प्राकृत भाषामय ग्रन्थ के गम्भीरतम भावों को अभिव्यक्त करने के अभिप्राय से यह देशभाषामय वचनिका स्वान्तः सुखाय एवं परजनहिताय प्रस्तुत करने का उपक्रम करता हूं अस्तु इस विषय को मैं अनुसन्धेय कोटि में रख कर विज्ञ-अनुसन्धित्सुओं के ऊपर छोड़ता हूं और चाहता हूं निकट भविष्य में कोई न कोई अनुसन्धाता इस पर खोज शोधपूर्ण अनुसन्धान प्रस्तुत कर इस महती एवं महत्त्वपूर्ण कमी की पूर्ति में हाथ बटायेंगे।

विषय परिचय—प्रकृत ग्रन्थ व्यालीस पर्वों में पूर्ण हुआ है। प्रत्येक पर्व का वर्ण्य विषय अगर संक्षेप में भी लिखा जाय तो भूमिका का कलेवर इतना बढ़ जायगा कि पाठक पढ़ते-पढ़ते ऊब जायंगे। अतः पाठकों से सादर सानुरोध निवेदन है कि वे ग्रन्थ के प्रथम पर्व को प्रारम्भ करने के पहले वचनिकाकार ने जो पूर्व-पीठिका लिखी है उसे मनोयोगपूर्वक आद्यन्त पढ़ने का उपक्रम करें, जिससे उनकी प्रत्येक पर्व में वर्णित विषय की जिज्ञासा-जन्य उत्कण्ठा की आपूर्ति हो जाय। इस सर्वावलोकन पूर्व पीठिका में जो प्रथम पर्व के नाम से उल्लिखित है २१० दो सौ दश विषयों के नामों का उल्लेख किया गया है, जिनका मूलभूत प्राकृत भाषामय गाथा सूत्रों द्वारा संक्षिप्त अर्थ को लिये हुए तथा वचनिका द्वारा विशेष रूप से विस्तृत एवं विशद भावार्थ को अपने में संजोये हुए व्याख्यान किया गया है। ग्रन्थकार ने उक्त सभी विषयों पर अपनी चिरसञ्चित अनुभूत विपुल ज्ञान राशि को जनता जनार्दन तक पहुंचाने में त्रियोग से भारी परिश्रम किया है, उनकी यह परोपकार-निरतता, नितराम् वन्दनीय, सुतराम् अभिनन्दनीय और साभिप्राय शतशः अनुकरणीय है।

पुनश्च प्रत्येक पर्व में वर्णित एवं व्याख्यात विषयों की सूची पर्वानुसार दी गई है, उससे भी वर्ण्यमान एवं व्याख्यायमान विषयों का सांकेतिक-संकेत रूप से आभास मिल सकता है। अतः पूर्वपीठिका को शुरू से आखीर तक पढ़ जाने के बाद एक बार विषय-सूची को भी दृष्टि-गत करने का सफल प्रयास करने पर सारा ग्रन्थ स्मृति-पथ में विचरण करने लगेगा; तब जिज्ञास्य विषय की जिज्ञासा की परिपूर्ति में देर नहीं लगेगी, ऐसा मेरा ध्यान है।

ग्रन्थ की भाषा—सारे ग्रन्थ को प्रारम्भ से अन्त तक पढ़ जाने पर लगता है कि यह किसी एक प्रान्त को बोलचाल की भाषा नहीं है, बल्कि निकटवर्ती अनेक प्रान्तों की बोलचाल की भाषा के शब्दों के मेलजोल से बनी हुई भाषा है। अतएव न तो हम इसे राजस्थानी-भाषा कह सकते हैं और न व्रज-भाषा ही जिसका अधिकतर प्रचार उत्तर प्रदेश में उपलब्ध है और न ढूंढ़ारी-भाषा इसे कहा जा सकता है, जो खास कर ढूंढाहड़ प्रदेश में बोली जाती है, जिसका सद्भाव राजस्थान प्रान्त के महानगर जयपुर के आस-पास में है। अस्तु जो कुछ भी हो, यह तो कहना ही पड़ेगा कि ग्रन्थ की भाषा सर्वसाधारण के समझ में आनेवाली भाषा है, जो सहज ही श्रोताओं को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है, भाषा में मधुरता, कोमलता, सुकुमारता आदि अपेक्षणीय गुण विद्यमान हैं। अतएव स्वभावतः श्रोताओं का मन इस ओर बरबस खिंच जाता है। प्रस्तुत ग्रन्थ में कुछ ऐसे शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं, जिनका अर्थ सहसा समझ में नहीं आता। उदाहरण के तौर पर निम्नलिखित शब्द बतौर बानगी के उद्धृत हैं, जो कोष्ठक के बाहर अंकित हैं और कोष्ठक के अन्दर उनका अर्थ लिखा गया है, कृपया पढने का कष्ट करें।

किसब (व्यापार, धन्धा, रोजगार, रोजी, नौकरी आदि कोई भी आजीविका का साधन) देहरा (देवघर, देवालय, देव-मन्दिर, जिनालय आदि) खिदाय (भेजना, निकालना, हटाना आदि) खोंस (छीनना, चुराना, छीना-झपटी करना आदि) चकार (चोरी करना, उड़ा लेना, भुला देना आदि) घालि (देना) पीहर (रक्षक—दुःख निवारक) घनी (बहुत अधिक ज्यादा आदि) उथापि (नाश करना, फेंकना, मूल से उखाड़ना आदि) तताई (गर्मी) ब्राकी (वास्तव में ठीक आदि) बेला (कटोरा, प्याला आदि) सांठा (ईख-गन्ना) ठाम (स्थान-जगह) छाड़ि (छोड़ना त्यागना) ताकों (उसको) याकों (इसको) जातें (जिससे) तैं (से) जेती (जितनी) तेती (तितनी) आदि ऐसे शब्द हैं जिनकी बहुलता से ग्रन्थ भरपूर है। ये और इस तरह के अन्य शब्द बहुधा राजस्थानी ढूंढ़ारी बोलचाल की भाषा में उपलब्ध हैं। अतः कहना पड़ता है कि ग्रन्थ की वचनिका राजस्थानी ढूंढ़ारी-भाषा प्रधान है जो श्रोताओं के कर्ण-विवर में पड़ते ही बरबस मन को मोह लेती है, अतः मनोमोहिनी मनोहारिणी है। ग्रन्थगत शब्दों के अर्थ की दुरूहता से ग्रन्थ के सौन्दर्य में कमी बताने का दुरभिप्राय नहीं है, बल्कि ग्रन्थ के अर्थ को हृदयङ्गम करने के हेतु उन-उन दुरूहार्थक शब्दों के अर्थ को एक दूसरे जानकार विज्ञ पुरुषों के साहाय्य से जानने का सफल प्रयत्न करने की ओर सद्भावपूर्ण संकेतमात्र है। दुरभिसन्धि या दुरभिप्राय नहीं और न छिद्रान्वेषण जैसी मानसिक कलुषता जो कि मनुष्यमात्र को अवनति के महागर्त में धकेलनेवाली है। ऐसी कलुषित मनोवृत्ति से तो मैं अपने-आप को कोशों दूर रखता हूं और चाहता हूं कि उक्त प्रकार की दुर्मनोवृत्ति मेरे मन में स्वप्न में भी जागृत न हो।

श्री सुदृष्टि तरङ्गिणी, ग्रन्थ का प्रकाशन सर्वप्रथम वी० नि० सम्वत् २४५२ में जिनवाणी प्रचारक कार्यालय कलकत्ता के संस्थापक एवं संरक्षक तथा संचालक श्रीमान् बाबू दुलीचन्द पन्नालालजी परवार ने ही किया था।

उन्होंने जिस हस्तलिखित प्रति से इसका प्रकाशन किया था वह प्रति प्रयत्न करने पर भी हस्तगत न हो सकी, अतः हमने उनकी मुद्रित प्रति पर से ही इस ग्रन्थ का सम्पादन एवं संशोधन यथाशक्ति एवं यथाबुद्धि किया है, अन्य कोई हस्तलिखित प्रति स्थानीय ग्रन्थ-भण्डारों में भी उपलब्ध न हो सकी, अतः विवशता रही।

हां, उक्त ग्रन्थ का द्वितीय प्रकाशन स्वर्गीय बाबू पन्नालालजी चौधरी, गृहपति श्री स्याद्वाद महाविद्यालय भदैनी घाट काशी (वाराणसी) के द्वारा भी वी० नि० सम्वत् २४५४ में किया गया था, जिसका आधार उक्त मुद्रित प्रति ही रही होगी, क्योंकि उक्त प्रथम प्रकाशन में और इस द्वितीय प्रकाशन में कोई खास अन्तर दृष्टिगोचर नहीं हुआ। जिनवाणी प्रचारक कार्यालय संस्थान के यशस्वी साहित्य प्रकाशनानुरागी समाजसेवी श्रीमान् बाबू दुलीचन्दजी पन्नालालजी परवार आज हमारे सामने नहीं हैं, उनका स्वर्गवास वर्षों पहले ही हो चुका है, जिसका हमें हार्दिक खेद है।

हां, यह हर्ष का विषय है कि उनका गौरवपूर्ण साहित्य-प्रकाशन का कार्यभार उनके अनुज सहोदर श्रीमान् बाबू नृपेन्द्रकुमारजी ने अपने ही कन्धों पर ले रखा है और बड़ी ही योग्यता के साथ उत्तरोत्तर उन्नति में कृत-संकल्प हैं।

हम उक्त संस्थान की अभिवृद्धि के हेतु १००८ श्री वीर प्रभु से सतत् प्रार्थनाशील हैं।

ग्रन्थकार का परिचय—मान्य ग्रन्थकार के विषय में परिचर्यार्थ जो-जो बातें अपेक्षणीय होती हैं उनमें से एक भी बात हमारे सामने नहीं है; न जन्म-भूमि, न जन्मकाल, न माता-पिता के नाम, न शिक्षा, न शिक्षालय, न शिक्षक गुरु, न जीविका साधन, न अन्य ग्रंथ रचना, न अन्य धार्मिक सामाजिक दैशिक सेवा प्रभृति परिचर्योपयोगी अत्यावश्यक बातें प्रयत्न करने पर भी उपलब्ध न हो सकीं। हां, ग्रंथ के अन्तिम मङ्गलाचरण के पश्चात् जो छन्द निबद्ध है; उन छन्दों में पांच बार 'टेक' शब्द का प्रयोग किया गया है। लगता है उसके आधार पर 'टेकचन्द्र' नाम की कल्पना की गई होगी अथवा जिस हस्तलिखित प्रति पर से यह ग्रंथ मुद्रित करा कर प्रकाश में आया यदि उक्त पुस्तिका का वाक्य हस्तलिखित प्रति में उपलब्ध हुआ हो तो यह बहुत कुछ सम्भव है कि मूल ग्रंथ औरउसकी बोल-बोधनी नामक टीका जो वचनिका का रूप लिये हुए है, दोनों के कर्ता श्री विद्वत्प्रवर पं० टेकचन्द्रजी ही रहे हों। जो कुछ भी हो लेकिन यह तो निर्विवाद सिद्ध है कि पं० जी निस्पृह एवं निर्लिप्त आत्मनिष्ठ परमास्तिक सिद्धान्त मर्मज्ञ, तत्त्वविज्ञ आत्मश्लाघारहित परहित निरत भावुक विद्वद्रत्न थे। एक कर्मदहन विधान जो हिन्दी में पद्यमय रचना है, उनके अन्तिम पद्य में भी 'टेक' शब्द का प्रयोग उपलब्ध है और विधान के सिरे पर स्व० पं० टेकचन्द्र जी विरचित भी छपा हुआ है, अतः हमने इसका तुलनात्मक अध्ययन किया और हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि यह रचना भी आपके द्वारा ही की गई प्रतीत होती है, ऐसे कमल पुष्प पलाशवन्निर्लिप्त महापुरुष का अपने द्वारा अपनी ही लेखनी से अपने विषय में परिचयात्मक कुछ भी लिखना आत्मदृष्टि और आत्मानुभूति के सर्वथा परे था।

आपकी भाषा-शैली से ऐसा प्रतीत होता है कि आपने अपने पवित्र जन्म से राजस्थान में ही किसी गांव या नगर को अलंकृत किया होगा और ऐसा बहुत कुछ सम्भावित भी है, क्योंकि आपकी वस्तु-तत्त्व को विवेचन करने की पद्धति जयपुरीय पुरातन विद्वद्-रत्नों की पद्धति का आमूल चूल अनुसरण करनेवाली है, इन तमाम अटकल-बाजियों में यथार्थता लाने के लिये हमें भरसक प्रयत्न करने की भारी आवश्यकता है, जो समय और श्रमसाध्य है।

विद्वच्चरणचञ्चरीक
विनम्र
कमलकुमार जैन शास्त्री
व्याकरण न्याय काव्यतीर्थ साहित्य-धर्म शास्त्री
साहु जैन निलय
६, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७

विषय-सूची



ग्रन्थोक्त गाथाओं की अकारादि अनुक्रमणिका



श्री सुदृष्टि तरंगिणी

मंगलाचरण

मनमांहि भक्ति अयान नमिहौं, देव अरिहँत कौं सही। फिर सिद्ध पूजौं अष्ट गुणमय, सूर गुण छत्तीस ही।
अंग पूर्वधारी जजौं उपाध्याय साधु गुण अठब्रीस जी। यह पंच गुरु ग्रन्थ आदि सत् ए मंगदा जगईश जी॥ १॥
वृषभसेन आदिक गणराय, गौतम स्वामी लौं थुतिलाय। और नमूं ग्रन्थ कवि सूर, जिन कीने मिथ्या-मगचूर॥ २॥
सुमति करण, कुमती हरण, भरन ज्ञान भण्डार। दया मूर्ति सर्वज्ञकों, नमों सूर भवतार॥ ३॥
देव धर्म गुरु या विधि थकी मानिये, काय मन वचन तैं भक्ति उर आनिये।
और तीरथ नमों सिद्ध तहां तें भये, नमों जिन बिम्बन किये कृत्तिम थए॥ ४॥
ऐसे इष्ट देवनि जो पूजे, तातैं अगले मारग सूजै।
इन प्रसाद अव बुद्ध सवाई, ग्रन्थ रचूं शुभ शुभ फलदाई॥ ५॥
मैं तो इष्ट देवका दासा, होऊ भक्ति तितने तन श्वासा।
सव जीवनतैं क्षमा कराई. निज सम जानि दया उर आई॥ ६॥

॥ ग्रन्थ महिमा॥

ए ग्रन्थ सागर अर्थ जल करि पूरित सहि। बहु दृष्टान्त युक्ति नय तरंग उठै सही॥
ता मध्य जे अधिकार दीप सम जानिये। तत्त्व रतन करि भरे सकल सुख खानिये॥
सुख खानि तहां समदृष्टि जावें बैठ जिन वचनावजी। ते चहैं भुज बुद्धि बल पहुंचे नहीं तिनको दाव जी॥
तातैं जु सरधा पोत गहि दृष्टि सुरति सागर कौं तिरौ। नहिं कोय और उपाय भवि श्रुति सीख यह हिरदै धरौ॥ ७॥
शंभुरमण समुद्र सो, यह श्रुति उदधि गँभीर। पार कौन जिन बिन लहै, बरणौ बुध सम वीर॥ ८॥

आगे वचनिका लिखिए है। सो ऐसे स्तुति करि अरु प्रथम इस ग्रन्थमें प्रवेश करनहारे ज सुबुद्धि हैं ते धर्मशास्त्रके वेत्ता तिनकौ बतावैं हैं। जो उत्तम तीन कुलमें उपजे धर्मात्मा मोक्षाभिलाषी होय सो ऐसे धर्म शास्त्रनि में प्रवेश करैं हैं। तातैं इस ग्रन्थका टिप्पण सामान्य करि लिखिये है। सो उत्तम श्रावकनि को परभव सुधारवे अर्थ धर्मशास्त्रनिका अभ्यास करना योग्य है। यह धर्मशास्त्र है सो याका सामान्य टिप्पणी कहिये है सो चित्तदेय सुनौ। आगे जो जो कथन इस ग्रन्थमें कहिये तिनकी सूचनिका मात्र सामान्य टिप्पणी जो पीठिका सो लिखिये है। सो इस पीठिकाके जाने सब ग्रन्थका सुमिरण होय है। अर्थात् जिस अधिकारका चिंतन किये उस अधिकारके अर्थकी याद होय है तातैं इस ग्रन्थके आदि कथनका टिप्पण लिखिये है॥ सो प्रथम ही तो ग्रन्थकर्त्ता अपने इष्टदेवको मंगल निमित्त नमस्कार करेगा। १। पीछे देवका कथन करते प्रश्नपाय सिद्धनिके सुखका कथन है। २। आगे इस ग्रन्थके नामका कथन है। ३। तापीछे इस ग्रन्थमें ज्ञेयहेय उपादेयका स्वरूप हे। ४। पीछे स्वज्ञेय परज्ञेयका वर्णन है। ५। बहुरि अवसर पाय पंच प्रकार परावर्तनका कथन है। ६। ता आगे सम्यक्त्व होतैं मिथ्यात्व छूटनेतैं, क्षयोपशमादि पंच लब्धिका स्वरूप है। ७। बहुरि सम्यक दर्शनके दश भेदनिके स्वरूपका व्याख्यान है। ८। पीछै सम्यक्त्वके पच्चीस दोषनिमें जातिमद आदि अष्टमद, अरु शंका आदि सम्यक्त्वके आठ दोषनिका, अरु षट् अनायतन अरु तीन मूढ़ता इन पचीसनका स्वरूप है। ९। आगे सम्यक्त्वके अष्ट गुणनिका व्याख्यान है। १०। सम्यक् दृष्टी वीतराग कह्या तापै शिष्यके प्रश्न उत्तरका कथन है। ११। आगे शुभ अशुभ श्रोतानिका कथन है। १२। आगे वक्ताके गुणोंका कथन है। १३। फिर ग्रन्थकर्त्ता अपनी लघुता सहित ग्रन्थ करिवेकी अभिमानता छाड़ि ग्रन्थकर्त्ताकेवली हैं, मैं नाहीं। १४। व्यवहारमात्र ग्रन्थके अर्थ कवीश्वरोंने मिलाये हैं तिनमें बुद्धिकी समानता करि कोई चूक होय, तो तिसको शुद्ध करिनेको विशेष ज्ञानीनतैं विनती करी तापै शिष्यके प्रश्न पाय उत्तर सहित कथन है। १५। ता ग्रन्थ करनेमें तरकी (तर्क करने वाले) ने मान बताया, ऐसा प्रश्न होते अनेक युक्ति दृष्टान्त सहित, उत्तर कथन है। १६। पीछे ग्रन्थनिमें ग्रन्थकर्त्ता अपने नामका भोग धरें ताको परिपाटी है। १७। पीछै भले बुरे पंडितनका तामैं धर्मार्थी अरु धर्मरहित तिनका दृष्टान्तपूर्वक तरकी नै कही ग्रन्थमैं कोई चूक होइगी तो दोष लागैगा ताके प्रश्न

पाय निर्दोष ग्रन्थकर्त्ताका कथन है। १९। बहुरि ग्रन्थके आदि, आचार्य षट्कार्यनिका कथन करते आये तिनका कथन है। २०। पीछै ग्रन्थके आदि मंगल करिये, सो मंगलके षट् भेदनिका कथन है॥ २१॥ आगे जिन ग्रन्थनि में ए सात कथा होय सोग्रन्थ मंगलकारी होय। तिन कथानि का कथन है। २२। फिर जिन सर्वज्ञ-भाषित तत्त्व, जीव अजीवनि का कथन सत्य है। ऐसा कहते तरकी ने अनेकमतन संबंधी तत्त्व सत्य बताय प्रश्न किया। सो तिन अन्य मतीन के भाषे जीवादि तत्त्वनिमें अरु सर्वज्ञ-भाषित तत्त्वनि विषैं अन्तर है। तिनके कथन का अनेक नय दृष्टान्त युक्ति रूप कथन है। तहां कोई ब्रह्मवादी संसारमें एक आत्मा मानैं है। कोई अवतारवादी मोक्ष-आत्मा कू अवतार मानै है। और कोई क्षणिक मती जीव छिन-छिन मैं शरीर विषैं उपजता मानैं हैं। कोई कर्त्तावादी आत्मा कौं उपजावनहारा मानैं है। कोई नास्तिकमती जीवका अभाव मानैं हैं। कोई अज्ञानवादी मोक्ष विषैं ज्ञानका अभाव मानैं हैं। और कोई अजीव कौं जीव मानैं हैं। स्थिरवादी ऐसा मानैं हैं, जो जैसा मरै सो ही उपजै। कोई जीव को अजीव मानैं हैं। इत्यादिक भरमवादीनका भरम मेटवे कौं सर्वज्ञ-भाषित तत्त्वनिका स्वरूप कथन है। २३। बहुरि सत्य असत्य आप्त आगम पदार्थ तिनका कथन है। २४। पिछे शुद्धदेवके जानिवे का अतिशय चौंतीस आदि छियालीस गुणनिका कथन है। २५। आगे जामें एते दोष होंय सो देव नाहीं। ते दोष कोन, तिन अष्टादश दोषनिका कथन है। २६। बहुरी कुदेवनिका कथन है। २७। आगे कुगुरुके पहचानवेकूं गुणलक्षणका कथन है। २८। फेरि सुगुरुके मूल गुण अट्ठाईस हैं तिनमें एषणा समिति विषैं मुनिके भोजन में छियालीस दोष हैं। तिनका कथन है। तहां भोजन समय बत्तीस अन्तराय बंधै, उनका तथा मल दोषनिका कथन है। २९। आगे बाईस परीषहनिका कथन है। ३०। आगे पंच महाव्रत, पंचसमिति, षड़ावश्यक, पंचेन्द्रीवशीकरण आदि अठाईस मूलगुणनिके कथनमें षड्आवश्यकनका विशेष निर्णय है। ३१। आगे मुनीश्वरनिके दश भेदनिका कथन है। ३२। बहुरि आचार्यनिके गुणनि विषैं दशलक्षणधर्म, बारहतप, पंचाचार, षडावश्यक, तीनि गुप्ति, इन छत्तीस गुणनिका कथन है। ३३। आगे सत्यधर्मके दशभेदनका कथन है। ३४। बहुरि दश अतीचार ब्रह्मचर्य के हैं तिनका कथन है। ३५। आगे उपाध्यायजीके पच्चीस गुण विषैं ग्यारह अंग, चौदह पूर्वका कथन है। तिनमें त्रिलोक बिंदु पूर्वके कथनमें

संक्षेपमें तीन लोकका कथन है। तिनमैं मध्यलोकके कथनमें असंख्यात द्वीप समुद्रनिमें आदिके षोड़स अन्त के षोड़स द्वीपनिके नाम हैं। और तहां ही अढ़ाई द्वीप संबंधी ध्रुबतारनिका प्रमाण कथन है॥ ३६॥ आगे मध्यलोक विषैं चारि सौ अठावण अकृत्रिम जिन मन्दिर हैं, तिनके स्थाननिका वर्णन है। ३७। बहुरि स्वर्गलोकके कथनमें आठ युगलानिके सोलह स्वर्गनके नाम, तिन संबंधी देवनिकी आयु अरु कायकै प्रमाणका कथन है॥ अरु युगलनि प्रति इन्द्रनिका प्रमाण, अरु युगल प्रति विमानकी संख्याका कथन है। और धरती तें केते केते ऊँचे हैं। तिनके प्रमाणका कथन है। विमाननि के वर्णनका कथन है। स्वर्गनिके आधारनिका अरु स्वर्ग प्रति कामसेवनका, देवनिके मरन पीछे उस ही स्थानमें देव उपजनैंका अन्तर; और युगलनप्रति देवनकी अवधि विक्रियाका देवनिके श्वासोच्छ्वासके अन्तरका प्रमाण, मुकुटनिके चिन्हनिका, विमाननकी मौटाईका और स्वर्गप्रति लेश्या अरु देवांगनाकी उत्पत्ति,, देवनीकी आयु, ऐसे सामान्य ऊर्ध्वलोकका कथन है। इत्यादिक त्रिलोकबिंदु पूर्व विषैं इन आदि, ग्यारह अंग चौदह पूर्वका ज्ञान सहित उपाध्यायजीके गुणनका कथन है। ३८। आचारसारजी अनुसार मुनीश्वरोंके विचारवेके समाचार दश हैं। आश्रय पांच हैं। ३९। धर्मके कथन विषैं पहले कुधर्मका कथन है। ४०। बहुरि सुधर्मका। ४१। आगे नव नयका कथन है। ४२। आगे धर्मकी परीक्षाकौ पंचप्रमाण हैं। ४३। कुसंग त्यागका। ४४। सुसंगका। ४५। कौन कौन ध्यान चिन्तवन करने योग्य हैं। कौन कौन नहीं करिए? जौ आर्त्त रौद्र ध्यान, नहीं करिये। अरु धर्म्य शुक्ल ध्यान करने योग्य है। ४६। आर्त्तके चिन्हनका। ४७। सुआचार कुआचारका कथन है। ४८। योग्य अयोग्य खान पानका। ४९। शुभ अशुभ वचन भेदका। ५०। असत्यके ग्यारह भेदनका। ५१। परस्पर बिना प्रयोजन बतलावना सो विकथा है। ताके पचीस भेदनका। ५२। द्रव्य क्षेत्र काल भावके कथन विषैं स्वद्रव्य क्षेत्र काल भाव तथा परद्रव्य क्षेत्र काल भावका कथन है। तहां स्वद्रव्यकी परीक्षाका कथन है। और द्रव्यनके प्रमाण कथनमैं मनुष्य द्रव्य थोरा है। क्षेत्र अपेक्षा मनुष्यका क्षेत्र थोरा है और काल अपेक्षा मनुष्यका काल थोरा है। और भाव अपेक्षा मनुष्यके उपजनेका भाव थोरा है।। ५३। षट्कायके जीवनकी आयु, कायका कथन है। ५४। एकेन्द्रिय तिर्यञ्चनमैं सूक्ष्मवादर है। ५५। षट् कायके शरीरनके आकारका कथन है। ५६। षट् काय जीव केती केती

कर्म स्थिति बांधैं ?। ५७। पंच इन्द्रियका विषय कितना है ताके प्रमाण। ५८। पंचगोलक निगोदके हैं ते कहां कहां हैं ?। ५९। निगोदि जीवनके प्रमाणकी अनन्तता महा दीर्घ है। ।६०। निगोदिके दोय भेद हैं। ६१। षट्काय जीव जघन्य आयु पावै तौ एक अन्तर्मुहूर्त्त मैं केतेक भव करै। ६२। सुतप कुतपका कथन है। ६३। सुतपके बारह भेद हैं तहां आलोचनातपके अतीचार दश हैं। ।६४। कौऊ मुनिमैं दीर्घ दोष पड़े तौ ताकौं आचार्य, दीर्घ दंड कौन कौन दीजिये ताका कथन है ।६५। विनयतपके पांच भेद हैं।६६। सुव्रतके भेद बारह हैं अरु कुव्रत हैं। ६७। बारह अनुप्रेक्षा हैं। ६८। सुदान कुदानका कथन है तहां सुदानके चारि भेद हैं। ६९। जिनकूं दान दीजिये सो पात्र हैं तिनके सुपात्र कुपात्र करि दोय भेद हैं तिनके विशेष भेद पन्द्रह, तिनका अरु तिनके दानके फलका कथन है। ७०। पूजा भेद दोय हैं एक सुपूजा एक कुपूजा। ७१। तीरथ दोय हैं एक सुतीरथ एक कुतीरथ ।७२। चरचा भेद दोय हैं एक सुचर्चा, एक कुचर्चा। ७३। बहुरि अनुमोदनाके भेद दोय हैं कहां तो अनुमोदना किये पापबन्ध होय, सो तो पाप अनुमोदना अशुभ है। एक अनुमोदना किये पुण्य होय सो शुभ अनुमोदना है। ७४। मोक्षके भेद दोय हैं एक तो भोरे जीवनिकी कल्पी कर्ममलसहित मोक्ष है और एक शुद्ध निरंजन सर्व कर्म मलरहित निर्दोष मोक्ष है। ७५। कुज्ञान सुज्ञान करि ज्ञानके दोय भेद हैं तहाँ मतिज्ञानकै तीनिसौछत्तीस भेद रूप वर्णन है। ७६। श्रुतज्ञानका कथन है तहाँ व्यय ध्रुव उत्पात, ज्ञाता ज्ञेय ज्ञान; ध्याता ध्येय ध्यान, कर्त्ता कर्म क्रियाका कथन है। ताहीमैं संक्षेप तैं पल्य सागरका कथन है। ७७। पीछैं कृतघ्नी विश्वासघातीका दृष्टान्तपूर्वक कथन है। ७८। च्यारि गति, पाप पुण्यके फल प्रगट जनावनहारे आगति जागति (आने जाने) रूप दंडकका कथन है। ७९। निमित्त उपादानका सुबनिज कुबनिजका बहुरि श्रुतज्ञान समाप्तरूप कथन है। ८०। अवधिज्ञानका कथन है तहां देशावधि परमावधि सर्वावधि करि तीनि भेद रूप कथन है तहाँ देशावधिके हीयमानादि षट्भेद रूप कथन है। ८१। अर सोई अवधि, भवप्रत्यय गुणप्रत्यय दोय भेद लिये है। ८२। मनःपर्यय, ऋजुमति विपुलमति करि दोय भेद रूप है ।८३। संक्षेपतैं केवलज्ञानका कथन है।८४। आगे कहैं हैं जो यह आतमा अपनी आयुके दिन सोई भए मोतिनकी मालातिनको वृथा खोवे है। ८५। आतमा अपनी भूल तैं आप ही बंध कूं प्राप्त होय ऐसा दृष्टान्त देय बतावैं हैं। ८६। त्रयोदश भय

शुद्धात्मा मैं नाहीं। ८७। चक्री त्रिखंडी महामण्डलेश्वरादि राजानि की विभूति विनाशीक बतावता कथन है।८८। मातापितादि सज्जन कुटुम्बी अपने २ स्वारथरूप बंधन तैं बँधे हैं।८९। जिन २ वस्तूनिका स्वभाव सहज ही चंचल है तिनके मेटवेको कोई उपाय नाहीं। ९०। ऐसा कहै हैं जो कोऊ महापंडित भी होय अरु श्रद्धानरहित मिथ्या श्रद्धानी होय तो ताकै मुखका उपदेश सम्यकदृष्टीनिकौं सुनना योग्य नाहीं। ९१। सर्पकी क्रूरता तैं दुष्टजीवनिकी क्रूरता बहुत बतावे हैं ऐसा कथन है। ९२। सज्जन दुर्जन जीवनिका स्वरूप दृष्टान्तपूर्वक कथन किया है। ९३। भला उपदेश भी मूर्ख जीवनि कूं कारजकारी नाहीं। ९४। केतेक जीव दयारहित हैं ऐसा बतावता कथन है। ९५। कृपणका धन कहा होय?। ९६। केतेक जीव दयारहित ही हैं तिनकों बतावता कथन है। ९७। संतोषी आत्मा आपकूं दरिद्रावस्थामें भी सुखी भया मानि दारिद्रकूं असीस देय हैं। ९८। धर्म सेवनहारे जीव संसारमें च्यारि प्रकार भावनकी वाञ्छा सहित धर्मका साधन करैं हैं। ९९। छन्द काव्यके वक्ता कवीश्वर काव्य छन्दकी जोड़ कला करणहारे पण्डित पाँच प्रकार हैं सो अपने अपने स्वभाव कूं लिये छन्दनिको बनावैं हैं। २००।

पंचमकालकी महिमा जो यामें वांछित निमित्त नाहीं ऐसा कथन है। २०१। अपने शुद्ध भावनि बिना तप संजम ध्यान कार्यकारी नाहीं ऐसा कथन दृष्टान्तपूर्वक कहैं हैं। २०२। अपने हित रूप सुवर्णके परखिवेकों कसौटी समान नव स्थान हैं तिनका कथन है। २०३। इन कसौटी समान स्थानकन पै कौनको परखिये?। २०४। एक रोगके दुःखकूं उपचार अनेक जीव अनेक रूप अपनी-अपनी दृष्टी प्रमाण बतावें॥ २०५। घर कुटुम्बको तज, फेरि घर चाहै, कुटुम्बादि हितू चाहै, घर घर दीन होई याचै, जाको आचार्य कहा कहैं?। २०६। कौनके वास्ते काहे कूं तजिये ?। २०७। जो जो देशमें एती वस्तु नहीं होय तो विवेकी तहां नहीं रहें। २०८। इन दश स्थानकनिमें लाज नहीं करिये ऐसे स्थानक बताये।१०९। जाके बल होय सो बलवान है। ११०। स्नेह समान और बल नाहीं, हित है सोही भुजबल और सैन्य बल है। १११। नीति मार्गरूप परिणति सोही बड़ी सेना वा भुजबल है। २१२। अनेक संकटनिमें एक पूर्वोपार्जित पुण्य सहाय है। ११३। एती वस्तुभई, कार्यकारी नहीं। २१४। आगे एती वस्तु पर उपकारनिमित्त।२१५। धर्मात्मा जीवनिकूं इन स्थानकनिमें लज्जा करना योग्य नाहीं।२१६। एती बात कहै हैं जो संकटमें सत्पुरुषनिको साहस ही सहाय है।२१७।कहै हैं जो एतीन स्थान पंडितनके हँसनेके कारण

हैं।२१८। सतसंगका किया अनादर भी गुणकारी है।२१६। मलेच्छपणेके षट् भेद हैं।२२०। मूढ़ताके सात भेद बताये हैं। २२१। सम्यक्ज्ञानविषैं अरु मिथ्या ज्ञान विषैं दृष्टान्त पूर्वक अन्तर अरु फलभेद बताये हैं। २२२। इन्द्रिय सुखनि तैं आत्माकी तृप्ति नहीं भई।२२३। नरक पशूनिके दीर्घ दुःखनितैं नहीं डरया तो तप संयमके अल्प दुःखनितैं क्यों डरो हो?।२२४। सर्व कषायनि तैं माया कषायका पाप बड़ा बतावता कथन है।२२५। पुण्य वृक्षका फल ईन्द्रिय सुख है सो धर्मघातक नाहीं जीवकूं दुःखदाई नाहीं।२२६। मुनीश्वरोंके मोक्षमार्गका साधन एक, धर्मी श्रावकनिका मन्दिर है ऐसा कथन है।१२७। बुद्धिपाये व धन पायेका कहा।१२८। एते निमित्तकाल समान जान तजना योग्य है। २२६। एती जगह यतीश्वर नाहीं रहैं, रहैं तो संजम भृष्ट होय। २३०। ऐते जीवनिका विश्वास नाहीं करिये। २३१। मुखमीठा, पीछैं तैं द्वेष भाव करैं ऐसे मित्रनकूं दूरतें तजना।२३२। ऐसीसभा विषैं सभा-विरुद्ध नाहीं बोलना।२३३। धर्मशास्त्रपढ़ेकैं ऐते गुण नहीं भये तो पढ़ना बायस (कौवा) के शब्द समान है।२३४। मरणसे भी निद्राको अनिष्ट बतावैं हैं।२३५। दुष्टजीवनका स्वभाव दृष्टान्त देय बतावैं हैं।२३६। पूर्वपापतैं शरीर विषैं रोग होय तिनकी दीर्घता बताबैं है।२३७। कहै हैं जो और रोगनकी ओषधि नाहीं,।२३८। इष्टवियोग अनिष्ट संयोग कहां है कहां नाहीं। २३६। कालतैं आगे भागिकैं बचा चाहै सो कोई उपाय नाहीं। २४०। अग्निके तीन भेद हैं सो कौन सी अग्नि काहे कौं बालै। २४१। कहै हैं जो तप संयम विद्यादि भले गुण रूपीरतन हैं तिनके ठगवेकौं इन्द्रिय सुख ठग समान है। २४२। इष्टवियोगके दोय भेद हैं। २४३। जैसी परणति बिषयकषायनमैं एकाग्र होय है, तैसी धर्म विषं होय तो कहा होय?।२४४। कृपण अपने तनकूं ठगै है। २४५। कौनके अतिशय सहित उपदेश वचन हैं अरु कौनके अतिशय रहित उपदेश वचन हैं ऐसा कथन है।२४६। भिखारी घर-घर मांगै है सो मानूं उपदेश ही देता फिरै है।२४७। नव भेद जीव उपजनेके योनि स्थानके हैं।२४८। तीन भेद गर्भ योनिके हैं। ।२४६। आठ जगह निगोद नाहीं।२५०। निमित्त ज्ञानके आठ भेद हैं।२५१। आगे आठ अंग ज्ञान्के हैं।२५२। ध्यान करवे योग्य स्थान वताये है। २५३। आलोचनाके अतीचार दश हैं। २५४। आचार्य जिस अवसरमैं दीक्षा नहीं दें ऐसेकाल दश हैं तिनको टालि दीक्षा देय हैं।२५५। श्रीगोम्मटसार सिद्धान्तके अनुसार दश कारण हैं तिनके निमित्त पाय कर्मकी अवस्था अनेक प्रकार होय है तिन कारणिका कथन है।२५६। मिथ्यात्वके दोय भेदनिका,

।२५७। भावके तीनि भेदनिका कथन है ।२५८। तीनभेद भव्यके हैं ।२५९। तीन भेद अंगुलीके हैं ।२६०। उगणीस (१९) भेद मापके प्रमाणके हैं ।२६१। तीन भेद अक्षरके हैं ।२६२। तीनि भेद लिये पर्याप्तिन का स्वरूप है ।२६३। चक्षुदर्शनके दोय भेद हैं ।२६४। दोय भेद उपशम सम्यक्त्वके हैं ।२६५। योगस्थानके तीन भेद हैं ।२६६। तीन भेद धर्म तैं अरुचि होनेके हैं ।२६७। मिथ्यात्वपोषित शल्यके भेद तीन हैं ।२६८। आगे च्यारि निक्षेपनिका कथन है ।२६९। अलौकिक मान चारप्रकार हैं ।२७०। अर्जिकाकैं चार गुण हैं ।२७१। दत्ति (दान) के चार भेद हैं ।२७२। कुलकरनिकैं बारह चूंक भये दंड होय, ताके भेद चारि हैं ।२७३। हिंसामें कोई प्रकार पुण्य नाहीं दृष्टान्तकरि बतावता कथन है ।२७४। अनेक दृष्टान्तनिसे दयामें पुण्य बतावता कथन है ।२७५। राजानिमें ऐसे गुण होंय तो तिनकी प्रजा सुखी होय, राज तेज बढै यश प्रगटै, परभव सुधरै, तातैं राजनिमें ऐसे गुण अवश्य चाहिये ।२७६। चौदह विद्या राजपुत्रिनके सीखने योग्य हैं ।२७७। चौदह विद्या लौकिकी हैं ।२७८। चक्रवर्तीके पुण्य योगतैं नव निधि चौदह रत्न हैं ।२७९। चौथेकालके आदि प्रजाके सुखनिमित्त भरत चक्रीने षट् कर्म बताये ।२८०। भरतचक्रीकूं तिनका फल आदिनाथ स्वामीने कहाकि अभी नाहीं, पंचम काल आये आगे प्रकट होयगा ।२८१। चक्रवर्तीकी सेना षट् प्रकार है ।२८२। शुद्ध भगवानकी परीक्षाके मुख्य तीन गुण हैं ।२८३। जबै तीर्थंकर गर्भ विषैं अवतरैं तबै पहिले माताको सोलह स्वप्ने होंय तिनके नाम फलका कथन है ।२८४। तीर्थंकरादि महान पुरुषनके चिन्ह षट् गुण हैं जे इन षट् गुण सहित होंय सो पुण्याधिकारी जानिये ।१८५। आभूषणनिमें हार मुख्य है सो हारके ग्यारह भेद हैं ताका कथन है ।१८६। आदिनाथ स्वामी के कैलाशपर्वततैं निर्वाण जाने विषैं चौदह दिन बाकी रहे तब आठ पुरुषनिको आठ स्वप्ने भये ।१८७। नायक नाम बडे का है तिस नायकके तीन भेद हैं ।१८८। श्रावकका धर्म ग्यारह प्रतिमा तिनमें पंच उदम्बर व तीन मकार का त्याग करने वाला अष्ट मूलगुण धारी है। तिन मूल गुणके अतीचारनिमें सात व्यसनके अतीचारका कथन है। तामैं मांसके अतीचार स्वरूप बाईस अभक्ष्यका कथन है ।१८९। दूसरी प्रतिमामें पंच अणुब्रत तीन गुणब्रत, च्यारी शिक्षाब्रत बारह ब्रतनिका व इनके अतिचारका तथा दश प्रकार परिग्रहनिका कथन है नवधा भक्ति अरु दातारके सात गुणनिका अरु अधाकर्म भोजनके चार भेदनिका अरु चारि प्रकारि दानका अरु सल्लेखना-

ब्रत अरु सम्यकदर्शन इनका अतीचार सहित कथन है। तीसरी प्रतिमाविषै सामायिकका अरु सामायिकके अतीचार बत्तीस अरु फेरि सामायिकके बाईस अतिचारनिका अरु सामायिक कहां करिये तिन स्थानकनिका कथन है। १९०। सातवीं प्रतिमा ब्रह्मचर्य है सो ब्रह्मचर्यके चारि भेदनिका तथा ब्रह्मचारी ब्राह्मणके दश अधिकारका अरु शीलकी महिमा अरु कुशीलका निषेध दस गाथानि कर ऐसे ब्राह्मणकी परीक्षाकूं सिरलिंगादि चारि चिह्नका तहां ही श्रावकके भोजनमें सात अंतरायका। १९१। श्रावकनिके विचारवे योग्य सतरह नियमका। १९२। श्रावकके इक्कीस गुण हैं तिनका। १९३। अन्य मतनके अनुसार ब्राह्मणके लक्षणका ओर तहां तिनके शास्त्र अरु शास्त्रनिके कर्त्ता आचार्य तिनकी साक्षी सहित ब्रह्मका। सो जिनमें एते गुण होंय सो ब्रह्म है। १९४। अन्यमत संबन्धी मारकण्डेजी आचार्यकृत सुमति शास्त्रमें जल छानवेका कथन किया, अरु बिना गालेका दोष कथन है। १९५। व्यासजी कृत भारत नामा शास्त्रका सातवां स्कंध विषैं ऐसे वचन हैं कि ब्राह्मण को शील सहित रहना वैराग्यादिगुण सहित रहना। १९६। सुमतिशास्त्र मारकण्डेय ऋषिश्वर कृत तामैं कही भोजन दिनके च्यारिपहर रहैं तिनमें करै तो कैसा २ फल होय है ऐसा कथन है।१९७। शिवपुराणमें ऐसी कही है जो ब्राह्मणको एतीवस्तु खावना योग्य नाहीं। १९८। अन्यमतके कश्यप नामा आचार्य तिनने कही है जो विष्णुभक्त होय ताकूं कन्दमूल खावने योग्य नाहीं ; ऐसा कहा है। १९९। शिवपुराण अन्यमत सम्बन्धी तामैं कही है जो दया समान तीरथ नाहीं। २००। अन्य मतिनमें ब्राह्मणके दस भेद कहे हैं। २०१। ऐसे अन्यमतनका भी रहस्य दया सहित बताय, ब्रह्मचारीका स्वरूप बताय, पीछैं आठवीं प्रतिमा आदि ग्यारहवीं आदि प्रतिमा पर्यंत कथन है। २०२। ग्यारहवीं प्रतिमामें ऐलक छुल्लक करि दोय भेद श्रावक के कहे हैं। २०३। मुनि श्रावक का कथन पूरणकर शास्त्र पूरण होते अंतमंगलरूप तीनि काल सम्बंधी चौवीसी भरत क्षेत्रकी तिनके नाम, व वर्त्तमान चौबीसीके समयके पुरुषनिका अरु सिद्ध क्षेत्रनि कौं नमस्कार रूप कथन है। २०४। तीन लोक विषैं तिष्टते आठ कोड़ी छप्पन लाख सत्याणवैं हजार च्यारिसौ इक्यासी अकृत्रिम जिन मंदिर हैं तिनकी रचना अरु विस्तारका कथन अरु तिनकौं मंगल निमित्त नमस्कार रूप कथन है। २०५। मंगल निमित्त शास्त्रके अंत में पंच परमेष्टी का कथन है। २०६। अंत मंगल निमित्त श्री अरिहंतदेवका विराजिवेका समोशरणका विस्तार सहित वर्णन है तहां विराजते भगवानकूं

नमस्कार करें हैं। २०७। भगवान के विहारकर्म का वर्णन है। २०८। वादिराज गुरु अरु मानतुंग नामा आचार्यगुरु स्तोत्रके कर्त्ता तिनकों नमस्कार है। ग्रन्थ पूरण होते कवीश्वर अपना जन्म सफल जानि हर्ष पाया।२०९। ग्रन्थपूरण होते कवीश्वर अपना नाम धरि जिस नगरमें पूरण किया ताकों बताय तिस वर्ष मास दिन को सुफल जानि तिनके सुधरने करि ग्रन्थ पूरण करने का कथन है। २१०। ऐसे इस ग्रन्थका सामान्य टिप्पण कहा। सो विवेकी श्रोता तथा वक्ता पीठिकाके कथनकूं याद करि मनमें राखैं तो इस सब ग्रन्थका सुमिरण होय। २११।

इति श्री सुदृष्टितरङ्गिणी नाम ग्रन्थ मध्ये सर्वावलोकन पीठिका संक्षेप अर्थ वर्णन नाम प्रथमो परिच्छेदः सम्पूर्णः ॥ १ ॥

ऐसे सामान्य पीठिका कही अब ग्रन्थारम्भ रूप प्रथम ही इष्टदेव कों नमस्कार किजिये है।

गाथा—अरिहंत देव बन्दे, गुरुबन्दे णगण णाण बीररायो। धम्म दयामय बन्दे, कम्मखय कारणं शुद्धं ॥

अर्थ—जो कर्म-अरिनिका नाश किया तातैं अरिहंत देव हैं सो ऐसे अरहंतदेवको हमारा नमस्कार होऊ। अरु सर्व परिग्रह रहित ममत्व त्यागी नग्न, राग द्वेष रहित वीतरागी गुरुकूं हमारा नमस्कार होऊ। षट्काय जीवनकी माता समान रक्षाकी करणहारीदया, सो ऐसी दयामई धर्म कथन सहित सप्तभंगरूप सम्यकप्रकार सर्वज्ञ वीतरागीका प्ररूपा जो धर्म ऐसे धर्मको नमस्कार होऊ। ऐसे प्रथम मंगलके हेतु अपने इष्टदेव धर्मगुरुकों भक्ति भाव सहित नमस्कार करते पुण्यका संचय किया। कैसे हैं देव गुरु धर्म, भक्त जीवनके कर्मनाशके कारण हैं सर्व दोष-रहित, शुद्ध हैं, तातै भक्त भी परंपराय शुद्ध होय है। सो या बात सत्य है जाकी सेवा करे तैसाही फल होय है। सो लौकिक विषैं भी प्रगट देखिये है। जो जीव जाकी सेवा करे तैसा ही परंपराय होय। जो कोई जौहरीकी सेवा करे तो परंपराय जौहरी होय। कोई सर्राफकी चाकरी करै तो सर्राफ होते देखिये। आटा दालके बेचने हारेकी सेवा करै तो परंपराय दुकानदार होते देखिये है। होन संग विषैं शिल्पीकी सेवा करे तो शिल्पी पद पावै। बढ़ईकी सेवा करै तो परंपराय बढ़ईका पद पावै, इत्यादिक जैसी-जैसी संगति करै तो तैसा ही पद पावै। तैसें शुद्ध देव गुरु धर्मकी सेवा करै तो शुद्ध होय, ऐसा आचार्यने कहा। तातैं मैं ऐसा जानि अपने देव गुरु धर्मकी वंदनाकरी, ताके फल स्वरूप मेरा कर्म मल नाश होय, शुद्ध अवस्था होऊ। यहां

कोई इन्द्रिय सुखका लोभी प्रश्नकर जो तुमने कर्म रहित सिद्धपद चाहा सो वहां खावना पीवना, स्त्रीका भोगना, नाना प्रकार सुगन्ध, आभूषण, वस्त्र, रागरंग, नृत्यादिक भोग सुख तो हैं ही नांही तो मोक्ष विषैं और कहा सुख है। ताको कहिये हे विषयाभिलाषी! तोहि सुखकी अभिलाषा है सो हे भाई तू संसार विषैं कहा (क्या) तो दुःख जानै है और कहा सुख मानै है। सो प्रथम तू कहिले, तब हम तोकौं सिद्धनिका सुख कहेंगे। तब तरकीने कही—संसारमें बड़ा दुःख तो जन्म मरणका है। तब धर्मीने कही ए दुःख सिद्धनिमें नांहीं। तब तरकीने कही एक दुःख निरन्तर भूख तृषा है तब धर्मीने कही कि यह सिद्धनिमें नाहीं। फेरि तरकीने कही, शीत उष्ण रागद्वेष क्रोधमान माया लोभ ए दुःख हैं और नाना प्रकार वायु पित्त कफ़ खांसी कुष्टादि रोगनिका दुःख है। तथा कमावना देशान्तर फिरना इत्यादिक अनेक तो संसारमें दुःख हैं। तब धर्मीने कही भो भ्रात! सो संसारके दुःख सिद्धनिमें एक भी नांहीं और तू सुख इन्द्रिय जनित मानै सो देखि, जब षट्रस जिह्वातै एकमेक होई तब जिह्वाके द्वारा रसका जानपना होई तब षट्रसका सुख होई। अरु रसनाते अंतर रहै तब सुख नांहीं। और सिद्ध हैं सो अनंत पुद्गल परमाणु जा रसरूप भई जैसे-जैसे रसनके अंश धरैं, तिन तीनकाल सम्बन्धी परमाणुओंके रसके स्वादुको एक समय जानि भोगवैं है। और तू नृत्यादिकका सुख मानै है सो तेरी दृष्टि विषैं आवैं तब सुख होय अरु दृष्टिमें नांहीं आवै तो सुख नांही होय। और सिद्धनिके ज्ञानमें जहां-जहां देव मनुष्यनिमें अनंतकालके होय गये, होंयगे होंय हैं जे-जे तीनिकाल सम्बन्धी नृत्य, सो सर्व केवल ज्ञान तैं दीखैं हैं। और तिनके सुखको भोगवैं हैं। संसारमें तू राग रंगका सुख मानै है सो रागका सुख तब हो है जब अपने श्रोत्रनिके सुनिवे विषैं आवै है तब आप सुखी होय है और अपने सुननेमें नहीं आवै तो सुखनहीं होय। और सिद्ध हैं सो अनंतकाल पहिले जे-जे रागरंग भये ते सब जाने हैं अरु अवतार तीनि लोक विषैं राग होय तिनके जानें हैं। और आगामी तीनिलोक विषैं राग होंयगे तिनि सर्व कौं पहिले ही जानैं हैं। ऐसे तीनिलोक विषैं तीनिकाल सम्बन्धी पुद्गल स्कन्ध मिष्ट स्वरूप होय परनमैं तिनिसर्वकूं एक समय जानि सुख भोगवैं हैं। अरु सुगन्धका सुख संसारी जीवनिके तब होय है जब नासिकाके जानपने विषैं आवैहै और सिद्ध हैं सो तीनिकाल तीनिलोककी पुद्गल परमाणु जे-जे सुगन्धरूप भई तिन सबके सुखकूं एककाल जानि सुख भोगिवैं हैं। और स्पर्शन इन्द्रियका

विषय सुख स्पर्श विषैं है सो सो जगत जीव तो तन सूं स्पर्शै तब जानै सुखी होय। और सिद्ध हैं सो तीनिकाल सम्बन्धी तीनिलोकके स्पर्शनके अष्ट विषय सर्वकूं एककैकाल जानि आगे सुखकों भोगै हैं ऐसे भो भाई सिद्धनिमें जगत दुःखतो एक भी नांहों अरु वे इन्द्रिय सुखतें अनंत गुणो अतीन्द्रिय सुख भोगिवें हैं। ऐसे अविनाशी निराकुल सुख सिद्धनिमें हैं सो जानना॥ ऐसें शुद्धदेव गुरु धर्मके श्रद्धानि सम्यकदृष्टि जीवनके ज्ञानसागरमें शुद्धोपयोगकी सी निराकुल धाराकूं लिये शुभ फलकी उपजावनहारी तरंगन विषैं अनेक हेय उपादेय रूप तत्त्वज्ञान मई तरङ्ग उपजैं तिनका कथन इस ग्रन्थ विषैं किया है ताही तैं इस ग्रन्थका नाम सुदृष्टितरङ्गिणी कह्या है सोई लिखिये है।

गाथा—णाम सुदिष्ट तरंगो, गन्थो गेयाय हेय पादेयो। दो भेय गेय गेयं, तिरकापय गेय सुगेय आदेई॥ २॥

अर्थ—इस ग्रन्थका नाम सुदृष्टितरङ्गिणी है ताविषैं ज्ञेय हेय उपादेयका कथन है सो ज्ञेय तो एक है ताविषैं दो भेद करिये है सो एक ज्ञेय तो तजनेयोग्य है अरु एक ज्ञेय उपादेय है। स्वज्ञेय तो उपादेय है अरु परज्ञेय तजने योग्य है। भावार्थ—सम्यग्दृष्टि जीवनिके स्वपर पदार्थका जानपना होय है। सो ज्ञेय हेय उपादेय करि सहज ही तीनि प्रकार होय है। सो तहां प्रथम तो ज्ञानके जाननेमें आवे सो सर्व स्वपरपदार्थ ज्ञेय है। पीछे ताही ज्ञेयके दोय भेद होय हैं। कोई पदार्थ अपने हित योग्य नांही सो हेय है, केतेक पदार्थ अपने हित योग्य होई सो उपादेय हैं। ऐसे ज्ञेयविषें हेय उपादेय करना है सो सम्यक्भाव है और मिथ्यादृष्टि बालबुद्धिनिके त्याग उपादेय नांही होंय है। कदाचित् होय हो तो विपरीत होय भली वस्तुका त्याग करैं अयोग्य वस्तुको अङ्गीकार करैं। ऐसे त्याग उपादेय तैं पर भव बिगड़ि जाय, तातैं सांचे हेय उपादेय विषैं सम्यग्दृष्टिनिका उपयोग प्रवेश करि सकै सो ही कहिये हैं। तहां समुच्चय जीव अजीव ज्ञेयका जानना सो तो ज्ञेय है। ताविषैं अजीव अचेतन जड़ ज्ञेय सो तो परज्ञेय हेय है और जीववस्तु देखने जानने मई चैतन्य ज्ञेय सो उपादेय है। सो चेतन ज्ञेय भी दोय भेदरूप है। परसत्ता परप्रदेश परगुण परपर्याय रूप आत्मा सो परज्ञेय है। सो यह पर आत्मा परज्ञेय है सो हेय है तजने योग्य है और आपमई स्वप्रदेश स्वगुण स्वसत्ता स्वपर्याय एकतारूप सो स्वज्ञेय है उपादेय है अङ्गीकार करने योग्य है। भावार्थ—चेतन अचेतन करि ज्ञेय दोय भेद स्वरूप है। सो धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य काल आकाश पुद्गल ये

पंचभेद तो अजीव ज्ञेय के हैं सो आपतें भिन्न ही हैं। तातैं हेय हैं तजने योग्य हैं और जीव है सो अनन्त हैं अपने-अपने द्रव्य गुण पर्याय सत्ता प्रदेश जुदे-जुदे लिये हैं। तातैं अपनी आतमसत्ता बिना अनन्त परजीवसत्ता परज्ञेय सो तजने योग्य है और ज्ञान के जानपने में आये स्वात्मा के अनन्तगुण सो स्वज्ञेय हैं उपादेय हैं। अङ्गीकार करने योग्य हैं और भी परज्ञेय के अनेक भेद हैं सो व्यवहारनय करि केतीक तो आत्मा को इष्ट सुखकारी उपादेय हैं और केतीक आतमा कूं अनिष्ट दुखकारी सो हेय हैं। सो आतमा को संसारविषैं परज्ञेय में ममत्व करि भ्रमण करतैं अनन्तानन्त परावर्तन काल भये। परावर्तन कहा, सो ही कहिये हैं—

गाथा—दव्व खेका भव भावो, पावत्तं पण अणन्त कय आदा। भवअन्ते पण लद्धी, भव्वो पय मोख होय लब काले॥ ३॥

अर्थ—परावर्तन के पाँच भेद हैं द्रव्यपरावर्तन, क्षेत्रपरावर्तन, कालपरावर्तन, भवपरावर्तन, भावपरावर्तन, अब इनका समान्य अर्थ लिखिये है। प्रथम ही द्रव्यपरावर्तनके सामान्य भावको सुनौ द्रव्य परावर्तन ताकूं कहिये है जो पुद्गलपरमाणु जीवने रागद्वेष भाव करि एक-एक परमाणु अनन्त-अनन्त बार ग्रहीते अरु छौड़ै। भावार्थ—जो परमाणु अङ्गीकार करि छोड़े सो अब येही परमाणु जब ग्रहेगा, तब दूसरी बार गिनती में आवेगा। सो ऐसे एक-एक परमाणु अनन्त-अनन्त बार ग्रहीते अरु छोड़े। भावार्थ—जो परमाणु अङ्गीकार करि छोड़े सो अब येही परमाणु जब ग्रहेगा, तब दूसरी बार गिनती में आवेगा। सो ऐसे एक-एक परमाणु अनन्त-अनन्त बार छोड़े और ग्रहे। एक परमाणु ग्रहि के तजे पीछैं, अनन्तकाल गये उस ही परमाणु ग्रहिवे का निमित्त मिला, फेरि तजि फेरि अनन्तकाल गये उसही परमाणु ग्रहिवे का निमित्त पाया। ऐसे करते जीवराशितैं अनन्ते पुद्गलपरमाणु अनन्तानन्त बार ग्रहे अरु छोड़े, सो एक-एक बार छोड़े पीछे मिलते अनन्तकाल लागैं तौ ऐसे ही अनन्तपरमाणु ग्रहतैं तजतैं जो काल लागै सो द्रव्यपरावर्तन है। तथा याही का दूसरा नाम पुद्गलपरावर्तन है। सो याका काल केवलज्ञान गम्य अनन्तकाल है। इति द्रव्य परावर्तन॥

आगे क्षेत्रपरावर्तन का स्वरूप कहिये है जो सर्वलोक के मध्यप्रदेश तैं गिनिये सो जीव लोक के मध्यप्रदेश आकाश विषैं उपजि मूवा और फेरि और-और क्षेत्र में उपज्या मूवा सो नहीं गिना। ऐसे जन्म-मरण करते अनन्तकाल भया तब कोई कर्म जोगतैं उसकी आकाशप्रदेश विषैं मूवा जन्म्या, तौ भी नहीं गिन्या। पीछे फेरि

अनन्तकाल और-और प्रदेशक्षेत्रनि में उपज्या मूवा गिनती में नाहीं आया। ऐसे करते-करते अनन्तकाल पीछे उसही प्रदेश तैं लगता दूसरा प्रदेश क्षेत्र में आय जन्म्या तब दूसरा भव गिनती में आया। फेरि मर और-और प्रदेश क्षेत्र में उपज्या—मूवा सो नहीं गिना ऐसे भ्रमतैं-भ्रमतैं अनन्तकाल में दूसरे प्रदेश तैं निकसि तीसरा प्रदेश क्षेत्र में उपज्या तब तीसरा भव गिनती भया। ऐसे ही क्रम तैं सर्ब लोकाकाश के प्रदेश विषैं जनमैं मरै इम करतैं जो काल होय सो दूसरा क्षेत्र परावर्तन जानना। इति दूसरा क्षेत्र परावर्तन॥ आगे काल परावर्तन का स्वरूप कहिये है—जो उत्सर्पिणीकाल के आदि समय विषैं उपजा मूवा फेरि इसही काल में अनेक जन्म-मरण किये सो काल नहीं गिन्या ऐसे जन्म-मरण करते एक कालचक्र पूरण भया, फेरि दूसरा कालचक्र लग्या, तामैं आदि के दूसरा समय को तज और काल में उपज्या मूवा ऐसे करते कई कालचक्र हो गये और पीछे भ्रमते-भ्रमते उत्सर्पिणीकाल के दूसरे समय उपज्या तब दूसरा भव गिनती में आया, फिर मूवा जन्म्या और काल में उपज्या मूवा, ऐसे करते अनन्तकाल में अनन्त बार जन्म्या मूवा सो नहीं गिन्या। फेरि भ्रमते-भ्रमते अतन्तकाल गये उत्सर्पिणीकाल के लगते ही तीसरे समय में उपज्या तब तीसरा भव भया। ऐसे करते उत्सर्पिणीकाल के चौथे समय में मूवा-उपज्या। पीछे क्रमते पंचमे समय, छट्ठे समय विषैं उपज्या मूवा ऐसे एक-एक समय बधता लगाय के बीस कोड़ाकोड़ी काल के जेते समय भये तेते सर्ब पूरण किये जेता काल लागै सो तीसरा कालपरावर्तन कहिये है। इति तीसरा कालपरावर्तन॥ आगे चौथा भवपरावर्तन को कहिये है—जो पृथ्वीकाय का प्रथम भवपाय मूवा फेरि मर अप तेज वायु वनस्पति बेइन्द्री तेइन्द्री चोइन्द्री पंचइन्द्री असैनी सैनी देव मनुष तिर्यंच नारकी विषैं उपज्या मूवा सो भव गिनती में नाहीं आये। ऐसे भ्रमते-भ्रमते अनन्तकाल में पृथ्वीकाय का ही भव पावै तब दोय भव होंय। पीछे फिर मरा सो चारि गति में भ्रमा सो ऐसा करते अनन्तकाल पीछे जब पृथ्वीकाय का ही भव पावै तब तीनि भव भये ऐसे भ्रमते एक भव का निमित्त अनन्तकाल में मिले सो ऐसा करि असंख्याते भव पृथ्वीकाय के करै। ऐसे अनुक्रम लिये असंख्याते भव अपकाय के करै। ऐसे ही अनुक्रमतें असंख्याते भव तेजकाय के करे। ऐसे ही अनुक्रम लिये असंख्याते भव वायुकाय के करै। ऐसे ही वनस्पति बेइन्द्री तेइन्द्री चौइन्द्री पंचेन्द्री तिर्यंच के भव अनुक्रमतें करै। असंख्याते भव अनुक्रमते करि पीछे कोई पुण्ययोगतैं देव होय

सुख भोगि मरै। पीछे मनुष्य तिर्यंच नारकी होय सो नहीं गिनना जब कोई पुण्य योगतैं देव ही भया। तब दूसरा भव होय। ऐसे करते देव के असंख्याते भव करै। ऐसे ही क्रम तैं मनुष्य के असंख्याते भव करै। ऐसे ही असंख्याते भव नारकी के करै। ऐसे ही तिर्यंच पंचेन्द्री के भव करै। इत्यादिक ऐसे अनुक्रम लिये चारि गति सम्बन्धी सर्व भव करै सो जाकूं जेता काल लागै सो भव परावर्तन है। इति चौथा भवपरावर्तन॥ आगे पांचमा भावपरावर्तन को कहिये है—जो सूक्ष्म निगोद लब्धपर्याप्तक जीव के अक्षर के अनन्तवें भाग जघन्य ज्ञान है सो ऐसे ज्ञानसहित मूवा सो अनेक पर्यायन में उपज्या सो नहीं गिना। अरु निगोद में भी उपज्या परन्तु बहुत ज्ञानधारी उपज्या सो नाहीं गिन्या ऐसे करते अनन्त भव भये जब कोई कर्मजोग तैं ऐसा भव पाया जो जघन्य ज्ञान तैं एक अंश अधिक ज्ञान का धारी भया। तब दूसरा भव भया, फेरि मूवा उपजा अनेक पर्याय चारगति की अधिक ज्ञान-सहित धरी सो नहीं गिनै। जब अनन्तकाल गये ऐसे भव पावे जो जघन्य ज्ञान तैं दोय अंश बधता ज्ञान होय। ऐसे एक अंश तैं बधता-बधता अनुक्रमते असंख्याते अंश बधते जेता काल लागै सो पांचमां भाव परावर्तन है। इति पञ्चमा भावपरावर्तन॥ आगे इन परावर्तन के काल की अधिकता व हीनता कहिये है—सो प्रथम ही पुद्गलपरावर्तन का काल अनन्त है तातैं अनन्तगुनाकाल क्षेत्रपरावर्तन का है तातैं अनन्तगुनाकाल कालपरावर्तन का है। तातैं अनन्तगुनाकाल भवपरावर्तन का है। तातैं अनन्तगुनाकाल भावपरावर्तन का है। ऐसे-ऐसे परावर्तन, संसार भ्रमण करते दुःख भोगते अनन्त हो गये सो जब जीव के काललब्धि निकट आवे तब संसारी जीव के पंचलब्धि होंय हैं॥ सो आगे लब्धि कहिये हैं—

गाथा—खयुवसम देस सोई, पायोगम कण्णलब्धि पण भेवो। चव सम्म भव्वा भवो, करणो च भवेय होय सम्मत्तं॥ ४॥

अर्थ—क्षयोपशम्, देशना, विशुद्धि, प्रायोग्य, करण, यह पाँच लब्धि हैं। अब इनका सामान्य अर्थ—कर्म के क्षयोपशम तैं प्रगट होय ऐसा संज्ञीपना पंचेन्द्रीपना इनकी शक्तिरूप भाव सो क्षयोपशम लब्धि है। जो संज्ञी पंचेन्द्री नहीं होय तौ सम्यक्त नांही होय। तातैं संज्ञी पंचेन्द्रीपने का क्षयोपशम चाहिये। १। और गुरु के उपदेश धारने की शक्ति सो देशनालब्धि है। जो गुरु के उपदेश धारवे की शक्ति नाहीं होय ता सम्यक्त्व नाहीं होय तातैं गुरु-उपदेश धारने की शक्ति चाहिये। २। आगे समय-समय परिणामन की अनन्तगुणी विशुद्धता होई

सो विशुद्धि लब्धि कहिये। जो परिणामन की विशुद्धता नाहीं होय तो सम्यक्त्व नाहीं होय, तातैं परिणामन की विशुद्धता चाहिये। ३। बहुरि मोहनीय-कर्म की स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर की है ताको अपने परिणाम की विशुद्धता के बलकरि कर्मस्थिति घटाय के अन्तःकोड़ाकोड़ी की राखै सो प्रायोग्य लब्धि है। जो मोह-कर्म की उत्कृष्ट स्थिति होय तो सम्यक्त नाहीं होय। तातैं मोहनीय-कर्म की स्थिति घटनी चाहिये।४। बहुरि करण-लब्धि के तीन भेद हैं—अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण जहाँ अधःकरण होय तब समय-समय परिणामन की विशुद्धता बढ़ती जाय। अार जे-जे कर्मनि की स्थिति आगे बँधे होय थी तातैं कर्मस्थिति घटती बंध होय। साता वेदनीय, अादेय, सौभाग्य, यशःकीर्त्ति इन आदि शुभ प्रकृतिन का अनुभाग बधती (अधिक) बंध होय। और असातावेदनीय, अयशःकीर्त्ति, दुर्भग, अनादेय इन आदिक अशुभ-कर्मनि का अनुभाग घटती बंध होय। पहिले पीछे समय में जीवनि के अधःकरण होय तिनको विशुद्धता के स्थान मिलै भी, नहीं भी मिलै, तातैं याका नाम अधःकरण है। १। और जामें समय-समय असंख्यात गुणी कर्मनि की निर्जरा होय सो अपूर्वकरण है। और अशुभ-कर्मनि का अनुभाग पलट शुभ रूप होय। समय-समय कर्मनि की स्थिति घटती होय। समय-समय शुभ-कर्मनि का अनुभाग बढ़ता होय। जिन जीवन ने समय अन्तरतैं करण मांडा होय तौ परस्पर तिन जीवनि की विशुद्धता नहीं मिलै। जाने प्रथम समय में अपूर्वकरण मांडा और काहू ने दोय च्यारि पांचादि समय पीछैं करण मांडा होय तौ पहिले करणमांडा ताकी विशुद्धता महानिर्मल होय, याकी विशुद्धता कूं पिछले करण करनहारे जीव कबहूँ नहीं पावैं। इनके परस्पर विशुद्धता नहीं मिलै तातैं याका नाम अपूर्वकरण है।२। अनेक जीवनि की समयवर्ती विशुद्धता समान होय। तीनि काल सम्बन्धि जीवनि के अनिवृत्तिकाल समय सर्वजीवनि की विशुद्धता एक-सी होय सो अनिवृत्तिकरण है। ३। ऐसे ये करणलब्धि है। सो यह पाँच लब्धि हैं। तहाँ एता विशेष जो च्यारि लब्धि तौ भव्य अभव्य दोऊनि के होय है तातैं समान हैं। करण लब्धि सम्यक्त्व होतैं निकट संसारी भव्यात्मा के ही होय है इस करणलब्धि के पूर्ण होते अन्त समय में सम्यक्त्व की पूर्णता होय जीव अल्पसंसार का धारणहारा सम्यग्दृष्टि होय है। सो आत्मिक स्वभाव का वेत्ता परद्रव्य तैं उदासीन जान्या है आप चैतन्य स्वभाव अर पर जड़त्व भाव ऐसा सो भव्यात्मा सम्यग्दर्शनी कहिये ऐसे इन पंचलब्धिनि का

सामान्य स्वरूप कह्या। विशेष श्रीगोम्मटसारजी तैं जानना। ऐसे पंचलब्धि पूर्ण भए सम्यग्दर्शन होय है। सो ता सम्यक्त्व के दश भेद हैं सो ही कहिये हैं—

गाथा—आग्ण मग उवदेसो, सूतर वीजा संखेय वित्थारो। अत्थावगाढ़ महागाढ़ो, संमत जिन भास्य य दहधा ॥ ५ ॥

अर्थ—आज्ञा, मार्ग उपदेश, सूत्र, बीज, संक्षेप, विस्तार, अर्थ अवगाढ़, परमावगाढ़, ऐसे ये दश भेद सम्यक्त्व के हैं। सो अब इनका सामान्य स्वरूप कहिये है। जहाँ विना उपदेश, जिन आज्ञा का दृढ़ सरधान होना सो आज्ञा सम्यक्त्व है। भोरे सरल परिणामी जीव अल्पज्ञान तैं ही ऐसा सरधान करैं हैं कि जो हम अलपज्ञानी हैं, विशेष तत्वज्ञान की शक्ति नाहीं, परन्तु जिन देव ने भाष्या है सो प्रमाण है। ऐसा दृढ़ श्रद्धान करि कुदेव कुगुरुन की सेवा नहीं करनी सो आज्ञा सम्यक्त्व है। १। जानैं गुरु-उपदेश तैं जान्या है देव, धर्म, गुरु का स्वरूप जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र ये रत्नत्रय ही हैं। मोक्षमार्ग और विशेषज्ञान तौ नाहीं परन्तु रत्नत्रय विना मोक्षमार्ग नहीं मानैं। ऐसा दृढ़ श्रद्धान होय सो मार्ग सम्यक्त्व है। २। बहुरि जहाँ तीर्थङ्कर चक्री कामदेवादिक के पुराण सुन, जान्या होय पुण्य पाप का भेद जानैं आर तीर्थङ्करादिक के कल्याण आदिक अतिशय सुन उपजी है पुण्य की चाह जाकैं ऐसा गुरु-उपदेश सुनिकैं दृढ़ श्रद्धान भाव भया होय, सो उपदेश सम्यक्त्व है।३। बहुरि आचारांगादि सूत्र का उपदेश जानि सम्यक्त्व श्रद्धान दृढ़ भया होय, सो सूत्र सम्यक्त्व कहिये।४। बहुरि जहां नाना प्रकार गणित शास्त्रनि का स्वरूप जानि, रहस्य पाय, सम्यक् श्रद्धान दृढ़ होय सो बीज सम्यक्त्व कहिये। ५। बहुरि जहां शास्त्रनि का संक्षेप श्लोक, काव्य, गाथा, छन्द, पद इत्यादिक का सामान्य अर्थ जानिकैं आपा पर का भेद पाय सम्यक् श्रद्धान दृढ़ किया हो सो संक्षेप सम्यक्त्व कहिये। ६। बहुरि अनेक द्वादशांग का स्वरूप सुनि सम्यक् श्रद्धान दृढ़ करचा होय सो विस्तार सम्यक्त्व कहिये। ७। और कोई विना ही गुरु व शास्त्र का उपदेश सुनैं अकस्मात् कोऊ उल्कापात आदिक दृष्टान्त देखि संसार की दशा विनाशीक जानि उदास होई दृढ़ सम्यक्त्व श्रद्धान होय, सो अर्थ सम्यक्त्व कहिये।८। और जहां अङ्गपूर्व के सुनने करि इत्यादिक निमित्त पाय दृढ़ सम्यक्त्व होय सो अवगाढ़ सम्यक्त्व कहिये। ९। जहाँ केवलज्ञान भये प्रत्यक्ष सर्वलोक-अलोक भासते ऐसा श्रद्धान है सो परमावगाढ़ सम्यक्त्व कहिये।१०। ऐसे कहे जो यह दशभेदरूप सम्यक्त्व परणति सो

मोक्षरूपी कल्पवृक्ष की दृढ़ जड़ है। तथा मोक्षमहल का प्रथम सोपान कहिये सीढ़ी है। सो ऐसे सम्यक्त्व के ये पच्चीस दोष हैं जहां ये दोष नहीं सो शुद्ध सम्यक्त्व जानना। सो पच्चीस दोष बताईये हैं—

गाथा—मद वसु सम्मक, दोसउ, आयतन षट् य तीन मूढ़ाए। इनदोसय विण सम्मं, निम्मत सिव दीव सम गेय॥ ६॥

अर्थ—मद आठ, सम्यक्त्व के दोष आठ, अनायतन षट् मूढ़ता तीनि ये पच्चीस सम्यक्त्व के दोष हैं। अब इनका सामान्य अर्थ कहिये है। जहाँ मामा नाना महारे से काहू के नांहीं ऐसा माता का पक्ष लै मद करना सो जातिमद है। १। हम बड़े कमाऊ हम अनेक बुद्धि करि धन पैदा करैं इत्यादिक अपनी कमाई का मद करना सो लाभमद है। २। जहाँ हमारे पिता दादा धनादि करि बड़े थे इत्यादिक पिता की पक्ष का मद करना सो कुलमद है। ३। हमारे-सा रूप और काहू का नांही इत्यादिक अपने रूप की महिमा देखि मद करना सो रूप मद है। ४। हम बड़े तपस्वी ऐसैं कहि अपने तप का मद करना सो तप मद है। ५। और अपने बल की अधिकता जानि कहना जो हम-सा बलवान और नाहीं ऐसा कहि मद करना सो बल मद है। ६। हमसे और पण्डित नांहीं हम नाना प्रकार तर्क व्याकरण प्राकृत छन्द काव्य पढ़े हैं। इत्यादिक अपनी पण्डिताई का मद करना सो विद्या मद है। ७। हमारा बड़ा हुकुम है राज पञ्च सर्व हमारी आज्ञा मानैं हैं। ऐसा आपको बड़ा जानि मद करना सो अधिकार मद है। ८। ऐसे यह आठ मद होते सम्यक्त्व मलिन होय हैं। जैसे उज्ज्वल वस्त्र मैल के सम्बन्ध पाय मलिन होय। तैसे इन मदनि के निमित्त पाय सम्यक्त्व-धर्म मलिन होय है। तातैं ऐसा जानि सम्यग्दृष्टि ये मदभाव नाहीं करैं हैं। जे मिथ्यात्वलिप्त अज्ञानी और धर्म भावना रहित मोक्षमार्ग जानिवेकौं अन्ध समानि पापभार बंध करनहारे वे इन अष्टमदन को करैं हैं। और जे जगत तैं उदासीन सुखराशी सम्यक्-गुणपासी, जानैं मदफांसी वे ए मद पापफल करता जानि मदभाव नाहीं करैं हैं॥ इति अष्टमद॥ आगे अष्ट मल लिखिये है। जहां धर्मकार्यनि के सेवनैंविषैं माता-पिता कुटुम्बादि राजा पंच इत्यादिक मुझे पापी जानेंगे ऐसा जानि आप कोई धर्म का सेवन शंका सहित करै सो सम्यक्त्व धर्मकौं मल लागै सो यह शंका नामा दोष है।१। और धर्मसेवन करि पंचेन्द्रिय जनितसुखनि की अभिलाषा करना सो सम्यक्-धर्म का कांक्षा नाम दोष है। २। और धर्मात्मा जीवनि के शरीर में कर्म उदय तैं रोग करि तन मलिन भया। तनमैं फोड़ा, गूमड़ा, वायु, पित्त,

कफ, खांसी, कुष्टादि रोग देखि कैं अपने चित्त में ग्लानि करनी सो दुरगंछा (विचिकित्सा) नामा सम्यक्त्व का दोष है। ३। और विना परीक्षा देव, गुरु, धर्म की सेवा करनी सो सम्यक्त्व-धर्म का मूढ़ता नामा दोष है। ४। और पराये दोष प्रकाशि, परकूं दुःख उपजावे, सो सत्यधर्मकौं घाति परदोष कहना (अनुपगूहन) दोष है। ५। और धर्म सेवन करते अपने परिणाम अथिर राखना तथा औरनि को धर्म-सेवन करते देख तिनकौं अथिरता उपजावनी सो अस्थितीकरणनामा सम्यक्त्व का दोष है। ६। और जाकौं धर्मातमा जीव तथा धर्म की चर्चा धर्म-कथा धर्म-स्थान धर्म-उपकरण धर्म-उत्सवनि विषैं द्रव्य लगता देखि इत्यादिक धर्म-वार्त्ता जाकौं नांहीं सुहावै सो वात्सल्य भावरहित अवात्सल्य दोष है। ७। और जाकूं धर्म के उत्सव नाहीं सुहावैं सो अप्रभावना नामा आठवां दोष हैं। ८। इति सम्यक्त्व के आठ दोष। आगे षट् अनायतन दिखाईये है तहां खोटे देव की प्रशंसा करनी, रागी द्वेषी परिग्रही जीवनि कूं गुरु जान प्रशंसा करनी और दयारहित हिंसा पाखण्ड विष का प्ररूपण हारा असत्यवादी अज्ञानी जीवनि के कल्पनामात्र करि किया जो कुधर्म ताकी प्रशंसा करनी। और खोटे, कामी, क्रोधी, भयानीक, कुदेवनि के सेवकनि की प्रशंसा करनी। और कुगुरुनि के सेवकनि की प्रशंसा करनी। और कुधर्म के सेवकनि की प्रशंसा करनी ए षट् अनायतन सम्यक्-धर्म के दोष हैं। तातैं जे सम्यक्-दृष्टी हैं सो इनकी प्रशंसा नहीं करै हैं॥ इति षट् अनायतन॥ आगे तीनि मूढ़ता लिखिये हैं सो जहां विना परीक्षा देव-पूजा करनी सीस नवावना सो देवमूढ़ता है। १। और जो विना परीक्षा गुरु की सेवा-पूजा करनी सीस नवावना सो गुरुमूढ़ता है। २। और विना परीक्षा धर्म का सेवन करना सो धर्म मूढ़ता है। ३। ऐसे कहे जो अष्टमद, अष्ट सम्यक्त्व के दोष, षट् अनायतन तीनि मूढ़ता ए सर्व पच्चीस दोष सो इनरहित होय सो सम्यक्त्व शुद्ध है॥ इति सम्यक्त्व के पच्चीस दोष। आगे सम्यक्त्वके अष्टगुण बताइये हैं। इन अष्टगुण सहित सम्यक्त्व होई सो शुद्ध है। निःशङ्कित निःकांक्षित निर्विचिकित्सिता अमूढ़दृष्टि उपगूहन स्थितीकरण वात्सल्यता, प्रभावना यह सम्यत्त्व के आठ गुण हैं। इन सहित सम्यग्दर्शन उज्ज्वल होय है सोई कहिये है। धर्म सेवन करते कोई देव व्यन्तर तथा पापी कुटुम्बीजन तथा पंचादिक की शंका नहीं करना। निःशङ्क होय धर्म सेवन करना सो निशङ्क गुण है सो यह गुण अंजनचोर ने पाल्या है। १। धर्म सेवनि करि पंचेन्द्रिय सुखनि की वांछा नहीं करनी

सो निःकांक्षित गुण है। सा यह गुण सेठ की कन्या गुणवती ने पाल्या है। २। जहां पुद्गलस्कन्ध असुहावने देखि ग्लानि नहीं करनी सो निर्विचिकित्सा गुण है। सो यह राजा उद्यायन ने पाल्या। ३। शुद्धदेव, शुद्धगुरु, शुद्धधर्म की परीक्षा करि सेवना सो अमूढ़दृष्टि गुण है सो यह रानी रेवती ने पाल्या। ४। जहां पराया दोष जानिये तौ हू धर्मात्मा जीव प्रकाशैं नहीं सो उपगूहन गुण है। यह गुण सेठि जिनेन्द्रभक्त ने पाल्या। ५। और कोई धर्मात्मा जीव धर्म सेवन करता कोई कारणपाय धर्म तैं डिगता होय रोगकरि विभ्रम करि इत्यादिक कारणनिकरि डिगता होय तथा धर्म सेवन विषैं जाकैं अथिरता होती होय तौ ताकों तनकरि धनकरि वचनकरि धर्म में थिर करै सो स्थितीकरण गुण है। सो वारिषेंण राजा श्रेणिक के पुत्र मुनि भये तिनने पाल्या है। ६। धर्मी जीवनि को देखि धर्मस्थान कूं देखि हर्ष करना सो वात्सल्य भाव है सो यह वात्सल्य गुण विष्णुकुमारजी ने पाल्या है। ७। और जैसे बनैं तैंसे धर्म की प्रभावना उद्योत करैं धर्म उत्सव देखि राजी होई सो प्रभावना अङ्ग है। यह गुण बज्रकुमारजी ने पाल्या है। ८। ऐसे कहे जो यह अष्ट अङ्ग हैं सो इन अष्ट अङ्ग सहित सम्यग्दर्शन के धारी जीवनि के सहज ही दृष्टि शुद्ध होय गई है ताके प्रसाद करि पदार्थनि का स्वरूप जैसे का तैसा भासै है। सो यथावत भासिवे कर रागद्वेष नाहीं होय है। इहाँ प्रश्न। जो आपने कहा सम्यक्त्व भये पदार्थनि पै रागद्वेष नांही होय सो अविरत सम्यग्दृष्टिनि कैं तो प्रत्यक्ष रागद्वेष हिंसा आरम्भ भासै है। ताका समाधान—रागद्वेष का अभाव दोय प्रकार है। एक तो प्रत्यक्ष रागद्वेष का अभाव और एक श्रद्धानपूर्वक। सो प्रत्यक्ष रागद्वेष का अभाव तो जिनदेव केवली के है तथा ग्यारहवें बारहवें गुणस्थानवर्ती मुनीश्वर के है। तथा षष्टम गुणस्थान आदि दसवें गुणस्थानपर्यन्त महाव्रतिन के हैं। और नीचले, अव्रत चौथे गुणस्थानीन के सुदृष्टि होते निकट संसारी भव्यात्मा के श्रद्धानपूर्वक रागद्वेष नांही। वाह्यनिमित्त दोष तैं रागी-सा है। परन्तु शुद्धदृष्टि के प्रसाद तैं अन्तरंग रागद्वेष होता नाहीं। यह बिना ही जतन सहज स्वभाव है। सो ऐसी दृष्टि होते अनेक लहरि परिणति विषैं उठैं हैं। जैसे सागर विषैं तरंग चलै तैसे समभावन विषैं विचार होय है ताही के प्रसाद करि यह सुदृष्टितरंगिणी नाम शास्त्रमैं कहूं हूं। सो ताके सुनने कूं अरु कहने कूं ऐसे शुभ श्रोता तथा शुभ वक्ता चाहिये। सो श्रोतानि के, शुभाशुभ करि अनेक भेद हैं। और वक्तान् के भी शुभाशुभ करि अनेक भेद हैं सो

प्रथम ही श्रोतानि का स्वरूप सुनौ।

गाथा—सोता सुह य असूहो, चउदह मिस्सोय चउदह सुहोई। सोतधरा मण आदा, णियणिय पण्णतिलेय सुह असुही ॥७॥

अर्थ—अब श्रोतानि का शुभाशुभ है सो ही कहिये है। श्रोता शुभ अशुभ करि दोय भेदरूप हैं। सो चौदह श्रोतातौ मिश्र हैं और चारि श्रोता शुभ हैं। भावार्थ। चौदह श्रोता मिश्र हैं तिनमें आठ तो अशुभ हैं अरु षट् शुभ हैं। सो प्रथम अशुभ आठ के नाम—पाषाणसम, फूटा घड़ा सम, मीडासम, घोटकसम, चालनी सम, मशकसम, सर्पसम, भैंसासम इनका स्वभाव कहिये है। सो धर्मात्मा जीवन को चित्तदेय सुनना योग्य है। जो जीव उपदेश सुनै, पूछै, आप पढै, बहुतकाल के कथन यादि राखै इत्यादि बहुत कालतांई धर्म क्रिया करै परन्तु अन्तरंग में पाप बुद्धि मिटै नाहीं अभक्ष्य भोजन व हिंसा मार्ग नाहीं तजै। कुधर्म, कुगुरु के पूजने की श्रद्धा नाहीं मिटै। आप क्रोध मानादिक कषाय नहीं तजै। जाके हृदयमैं जिनवानी नाहीं रुचै सो पाषाण समान श्रोता है। २। जो रोज दिन प्रति शास्त्र सुनै परन्तु सुनती बार तो सामान्य-सा यादि रहै पीछे भूलि जाय दिलविषैं यादि नांहीं रहै सो फूटे घड़ासमान श्रोता है जैसे मेंढ़ा पालनहारेकों मारै तैसे ही श्रोता जा वक्ता अनेक दृष्टान्त युक्ति सीख अनेक शास्त्र कला आदिक करि पीछैं काल पाये जातैं कथन सुन्या सीख्या था ताही का दोषी होय ताका घात करै, सो मेढ़ा समानि श्रोता कहिये। ३। जैसे घोड़े को घास दाना रातिब देतै घोड़ा रातिब देने वालेकूं मारै काटे तैसे जो श्रोता जाके पास उपदेश सुनैं ताही तैं द्वेष करै सो घोड़ा सामानि श्रोता जानना। ४। जैसे चालनी वारीक भला आटा तो डारिदे अरु भूसी अङ्गीकार करै तैसे ही भला उपदेश सुनै ताका गुण तो ना ग्रहै अरु औगुन ग्रहै। जो शास्त्र में दान का तथा चैत्यालय करावने आदि द्रव्य लगावने का उपदेश सुनि यह ज्ञान दरिद्री ऐसा समझै, जो हम धनवान हैं सो हमकौं कहै है कि धन खरचौ सो हमारे धन कहां है ? इमि समझि पापबन्ध करै। तथा तपका कथन शास्त्र में सुनै सो इमि समझै जो हम तन के सुपुष्ट हैं सो हमको कहै है तप करो हमतैं तप होता नाहीं, ऐसा समझ पापबन्ध करै है तथा दान-पूजा शीलसंजम इत्यादि का उपदेश होय तब तौ ऊंघै। तथा चित्तविभ्रम में रहै सो नहीं सुनै। कोई निन्दा करै तथा कोई मूर्ख सभा में कलह की कथा ले उठै ताकूं सुनै। तथा कोई पाप कारज की निन्दा शास्त्र में निकसै कि अभक्ष्य खाना योग्य नाहीं। चोरी करना योग्य नाहीं।

द्यूत रमना, वेश्यागमन, इत्यादिक कार्य किये पाप होई। ऐसे सुनिकैं अभक्ष्य खानेवारा कहै हमारा दोष कहै है। सो अभक्ष्य भोजन तजै तो नहीं दोष करि पापबन्ध करि घर जावे। जुवारी ऐसा समझै जो मेरा दोष सुन्या है सो प्रगट करै है ऐसा जानि सभा छोड़े। इत्यादिक गुण तो नहीं लेय अरु अवगुण लेवे सौ चालनी सामान श्रोता है। ५। सभा विषैं तो नाना प्रकार चर्चा करै धर्मकथा अनेक यादि राखै। अनेक गाथा, काव्य, छन्द, कवित्त इनको पढं तिनको अर्थ औरनि को समुझावै इत्यादिक वाह्य तैं तो धर्मात्मा-सा दीखै। अरु अन्तरंग धर्म इच्छा रहित, महा क्रोध, मान, माया, लोभ करि सहित, शुद्ध धर्म का निन्दक, धर्मात्मा जीवनि का निन्दक कुदेव कुगुरु का प्रशंसक, पापरस करि भीजता, अन्तरंग धर्म भावना रहित होय सो मसकसमान श्रोता है। जैसे मसक रीती (खाली) में पवन भरि मोटी करी सो ऊपरि तैं तो जलभरी भासै। अन्तरंग धूम तैं भरी तथा पवन तै भरी सो ऐसे श्रोता खाली मसकसमान जानना। ६। जैसे सर्प्प को दूध पिलाइये तो महादुखदायी विष होय तैसे काहू को अमृतसमानि जिनवचन सुनाइये तौ तिनकौ सुनि भी पापात्मा पाप का बन्ध करै। जैसे कहीं कुकार्यनि की निन्दा निकसै तथा शास्त्रनि विषैं खोटे खान-पान की निन्दा का कथन होई तथा क्रोधादि कषायनि की निन्दा तथा सप्तव्यसनि की निन्दा इत्यादिक जाति विरोधी, कर्म विरोधी, पंचविरोधी क्रिया पापकारी है सो विवेकीन को तजना योग्य है। ऐसा कथन शास्त्रनि विषैं चलता होई ताके सुने जीव पापकार्य तज, धर्म के मार्ग चलै। इस भव जस पावै, परभव सुखी होई। ऐसे कथन गुणकारी अमृतिसमानि सुनिजो पापाचारी अशुभ आतमा, द्वेष करै, ऐसा समझै जो यह अवगुण अब हममैं हैं सो ए सर्वदृष्टान्त कथन किया सो हमारे ऊपर किया ऐसा विचारि, धर्मद्वेषी होय सो सर्प समानि श्रोता है। ७। जैसे भैंसा, सरोवर के जल में जावे सो पानी पीवै तो थोरा परन्तु गन्धोय के सर्व जल मलीन करै। और पीवने के योग्य ना राखै, सर्व के तन तथा अपना तन मलीन करै तैसे ही सभा विषैं जिनवाणी का कथन महानिर्मलता को सुनि भव्य पाप तैं उदास होई धर्म चाहै। धर्म की प्रशंसा और धर्मात्मा जीवनि की प्रशंसा करि अनुमोदना तैं पुण्य का बन्ध करै महाहर्ष मानै। तहां अनेक जाति के प्रश्न उत्तर होतैं अनेक जीवनि के संशय जांय, ज्ञान की बढ़वारी होय। ताकरि शुद्धतत्व-

श्रद्धान करतैं सम्यक्त्व श्रद्धान दृढ़ होई। ऐसे कथन होतैं केतेक भोरे, मन्दज्ञानी, कषायनि के सताये, कोई ऐसा प्रश्न या कोई न्यावक की वार्ता सभा में चलायदेंय सो ताकरि शास्त्र का कथन विरोधा जावै। सर्वसभा के जीवन के चित्त उद्वेग मई होई सर्व पापबन्ध करैं, आप पापबांधि करि परभव बिगाड़ै, पर को दुःख उपजावै सो पापबन्ध करनहारे हैं। ८।

अब चौदह श्रोता और हैं सो मिश्र हैं तिनमैं केतेक तो खोटे हैं, केतेक भले हैं। तिनमें चालनी समान पाषाण-समान, सर्पसमान, फटेघड़ा समान इन पाँचनि का स्वभाव तो ऊपरि आठ श्रोतान में कहि आये हैं। तातें यहाँ फेरि नहीं कहा। और भी केतेक खोटे श्रोता हैं तिनका स्वभाव कहिये हैं सो जहां धर्म उद्योत देखि आपतैं तो नाहिं बनै परन्तु धर्मघात विचारै, जहां भला शास्त्र का उपदेश होता देखि तहाँ धर्मघात विचारै सो बिलाव समान श्रोता है। जैसे बिलाव भले दूध को पीवै तौ नहीं परन्तु ढोलै व बासन फोरि डारै। तैसे पुण्यकारी उपदेश को धारै तो नांहीं परन्तु उपदेश देता देखि द्वेष करै धर्मघात करै सो बिलाव समान श्रोता जानना। और जे ऊपर तें उज्ज्वल अन्तरंग मलीन जैसे बगुला ऊपरतैं उज्ज्वल अन्तरंग जीवघातक रूप भाव धरै सो तैसे ही कोई जीव बाह्य तौ निर्मलवचन विनय सहित भाषै; तनमलिन करै धर्माजन-सा दीखै अरु अन्तरङ्ग मानी क्रोधी कपटी लोभी बहुतनि का बुरा चाहै कोऊ का धर्मसेवन देखि द्वेष भाव करै। महा कुआचारी दुर्बुद्धि रौद्रपरिणामी सो धर्मघात चाहै धर्मसेवन नहीं चाहै। ऐसा अन्तरङ्ग मलिन ऊपरि तैं भला सो बगुला समान श्रोता कहिये। तथा और बुलाया बोले तैसे ही बोले। आपमें भाव सहित समझिवे की शक्ति नांहीं। जैसैं सूवा को बुलावै वह वैसे ही बोले सो सूवा समानि श्रोता कहिये। और मिट्टी को नीर का निमित्त पाई मिट्टी नरम होई तथा अग्नि का निमित्त पाई जैसे लाख कोमल होई इन दोऊनि का निमित्त छूटै सख्त होई, तैसे ही जिस जीव को जितना काल सत्संग का निमित्त होई तब तौ धर्मभाव सहित होय, कोमल होय, दयावान होय और व्रत संयम की भावना करै धर्मात्मा जीवनि सों स्नेह करि उनकी सेवा चाकरी करचा चाहै और जब सत्संग का तथा शास्त्रनि का निमित्त नहीं मिलै तो कठोर धर्मरहित क्रूर परिणामी होय जावे सो-मिट्टी समान तथा लाख समान श्रोता कहिये। और जो सभा में समताभाव सहित तिष्ठ्या शास्त्र का व्याख्यान सुन्या करै और कोई दन्तकथा करता होय तौ ताकी नहीं सुनै।

और पुण्यकारी कथन का ग्रहण करै। अपने काम से काम सो शुभ श्रोता बकरीसमान है जैसे बकरी नीची भई अपना चारा चरै कोईतैं द्वेष भाव नहिं करै। ऐसे बकरी समानि श्रोता कह्या। आगे जैसे डांस जगह-जगह जीवनि को दुःख उपजावे तैसे ही जो जीव सभा में शास्त्र कथन होते उपदेशदातातैं तथा और धर्मातमा जीवनि तैं द्वेष भावकरि बार-बार कुवचन अविनयवचन बोले, सभा तथा वक्ता को खेद उपजावे सो डांस समानि श्रोता कहिये। और जैसे जौंक है सो दुग्ध के भरे आँचल पै लगा लोहू ही अङ्गीकार करै, वाका कोई ऐसा ही स्वभाव है। तैसे ही वाको चाहे जैसा उपदेश दो परन्तु पापाचारी अवगुण ही ग्रहै। इस दुर्बुद्धि का ऐसा श्रद्धान होय जो हमने ऐसे उपदेश घने ही सुने हैं। कोई हमारा क्या भला करेगा जो हमारे भाग्य में है सो होयगा। ऐसा श्रोता होय सो जौंकसमान श्रोता है। इसको चाहे दयाकरि उपदेश कहो परन्तु दोष ही ग्रहै है सो जानना। आगे जैसे गऊ घासखाय दूध देय, तैसे ही जिनको अल्प उपदेश दिये ही ताको रुचि सहित अङ्गीकार करि अपना बहुत भला करै और तिस उपदेश तैं आपकूं तत्वज्ञान का लाभ भया जानि ताकी बारम्बार प्रशंसा करै। उपदेशदाता का बहुत उपकार मानै, सो गऊ समानि श्रोता है। आगे जैसे हंसपय जो दूध जामें जल मिलाय धरो तो नीर तो नहीं ग्रहै और दूध के अंश अङ्गीकार करै सो हंस की चोंच का ऐसा ही स्वभाव है कि ताका स्पर्श भये नीर अर दूध का अंश जुदा-जुदा होय जाय है सो नीर तो तजै अरु दूध के अंश अङ्गीकार करै, तैसेही शुद्धदृष्टि का धारी सम्यग्दृष्टि है सो अनेक प्रकार उपदेशकों सुनि अपनी बुद्धि तें निरधार करै है। पीछे भले प्रकार तत्वज्ञान सहित जो अर्थ होय है ताको अङ्गीकार करै है। अशुभकारी अनाचार हिंसासहित उपदेश सुनि ताकी किरिया का तजना करै है, ऐसे जो हितदायक उपदेश ग्रहै। तामें जे जिनआज्ञा में निषेधी सो तजै, जो ग्रहिवेयोग्य कही सो ग्रहै। सो हंस समान श्रोता कहिये। ऐसे चौदह श्रोतानि की जाति है सो तिनमैं चालनीसम, मार्जारसम, बगुलासम, पाषाणसम, सर्पसम, भैंसासम, फूटा घड़ासम, डांससम, जोंकसम ए नव जाति के श्रोता तौ हीन पापाचारी हैं। अरु मिट्टीसम, सूवासम ए दो मध्यम श्रोता हैं। और बकरीसम, गऊसम, हंससम ए तीन उत्तम श्रोता हैं। ऐसे चौदह श्रोतानि का कथन किया। आगे उत्तम श्राता च्यारि और हैं तिनका स्वरूप कहिये हैं। तहां प्रथम नाम कहै हैं नेत्रसमान दर्पणसमान तराजू की डंडी समान कसौटी समान अब इनके लक्षण कहिये

हैं—तहां जैसे नेत्र तातैं भला-बुरा नजर आवे तैंसे ही भला श्रोता अपने भला-बुरा मार्ग उपदेशतैं जानि जे बुरा आचार्य पापकारी सो तो तजै और भला पुण्यकारी उपदेश सुनि ताही मार्गपर अपना श्रद्धान करै सो नेत्र समान श्रोता है। १। और जैसे दर्पण तैं अपना मुख देखिये है ताकी अवस्था देखि अपने मुख पै रज मैल लगा होय तो धोयकैं शुद्ध करै। तैसे ही भला उपदेश सुनि अपने चैतन्यस्वभाव पै कर्म रज जानि अपने आत्मप्रदेश निर्मल करने का उपाय करै सो दर्पण समान श्रोता है। २। जैसे तराजू की डंडीतें अधिक व हीन जान्यापरै तैसे ही भले, उपदेशकूं सुनि अपनी बुद्धिरूपी डंडीतै भली-बुरी वस्तु को तोले। हीन को तजै अधिक फ़लदायक अङ्गीकार करै। सो तराजू की डंडी समान श्रोता है। और जैसे कसौटी पर घसि, भले-बुरे सुवर्ण की परीक्षा करै तैसे ही भले श्रोता अपनी बुद्धि कसौटी तैं हितकारी तथा अहितकारीकूं जानि तजन ग्रहण करै सो कसौटी समान श्रोता कहिये। ४। ऐसे ये च्यारि गुन सहित उत्तम श्रोता हैं। सो श्रोता ताकूं कहिये जाके कर्ण इन्द्रिय होई और कान तो होय अरु मन नहीं होई तो शुभाशुभ विचाररहित असेनी को श्रोता पद सम्भवता नाहीं। तातैं मन का धारी सैनी होय ऐसे श्रोत्रइन्द्रिय अरु मन जिनको होई सो शास्त्र के उपदेश धारने को योग्य होय हैं। अरु मन अरु कान तो हैं परन्तु धर्मोपदेश धारबे कों समर्थ नाहीं सो धर्म इच्छा रहित अज्ञानी आत्म, शुभ-अशुभ विचार बिना मनरहित असैनी समान है ताको धर्मलाभ होता नाहीं। और कानतो हैं परन्तु कानन तैं धर्मोपदेशरूप अमृत नांही पीय सकै, तौ कान रहित चौइन्द्री समान जानना। तातैं मन अरु काननके धारी श्रोता हैं सो अपनी-अपनी परिणति प्रमाण फल को पावैं हैं। कोई जीव तौ सभा में तिष्ठतैं शास्त्र का उपदेश सुनि भली भावना करि पुण्य उपजाय, सुफल के भोक्ता होय हैं। सो ऐसे भव्यात्मा को श्रोता कहिये। और कोई जीव शास्त्र का धर्मोपदेश सुनि, खोटी भावना करि पापके भोक्ता होय हैं सो अशुभ श्रोता कहिये। तातैं बुरे-भले दोय जाति श्रोतानि का कथन किया। इति शुभाशुभ श्रोतानि का कथन स्वभाव सम्पूर्णम्।

अब आठ गुण श्रोतानि में होई सो अपना भला करै, सोई कहिये हैं।

गाथा—वांछा सवणग्गहणं, धारण सम्मरण पुच्छ उत्तराये। णिचय ए व सुभेये, सोता गुण एव सुग्ग सिव देई ॥ २ ॥

अर्थ—वांछा कहिये चाह। सवण कहिये सुनना। गहण कहिये ग्रहण करना। धारण कहिये धारना।

सम्मरण कहिये सुमरण करना। पुच्छ कहिये प्रश्न करना, पूछना। उत्तराये कहिये उत्तर करना। णिच्चय कहिये निश्चय करना ए वसुभेये कहिये आठ भेद सोता कहिये श्रोता के हैं। गुण एव कहिये ऐसे गुण, सुग्गसिव देई कहिये स्वर्ग मोक्ष देय हैं। भावार्थ—जे निकट संसारी, धर्मात्मा, भला श्रोता होय ताविषैं ये आठ गुण होय हैं सोई कहिये हैं। तहां जो शास्त्र आपने सुन्या ताके कथन की बारम्बार प्रशंसा करनी। जो इन शास्त्रनि विषैं भला तत्वज्ञान रूप पुण्यफल दायक कथन है ऐसे हर्ष धरि उस शास्त्र के सुनने की अभिलाषा रहै। और जो आपको वल्लभ नांही लागैं तो बाकी प्रशंसा भी न होई और देखने सुनने की अभिलाषा का होगा सो वांछागुण है। १। और जो कोई वस्तु आपकूं हितकारी जानै तो ताकौ सुनैं आपको हर्ष भी होई तातें हर्ष सहित शास्त्र सुनि अपना भव सफल मानना सो श्रवण गुण है। २। और जो कोई वस्तु आपको हितकारी जानै तो ताको अङ्गीकार करवे का उपाय भी करै। तैसे ही जो जिस धर्म को हितकारी जानें ताकी कथा सुनि ताको अङ्गीकार करै ही करै, सो ग्रहण गुण है। ३। और जे विवेकी अनेक बात सुनै और जो बात आपको सुखकारी लाभकारी सुनै तौ तिस बात को यादि राखै हैं। तैसे ही जा उपदेश तैं अपना भला होता जानै तो धर्मात्मा श्रोता ताकों भले प्रकार यादि राखैं सो धारण है। ४। और जौ वस्तु आपको सुखकारी जानै ताको विवेकी बारम्बार यादि किया करै तैसे ही धर्मात्मा श्रोता आपको जो उपदेश हितकारी जानै ताको बारम्बार याद करता की चर्चा करै सो सुमरण गुण कहिये। ५। जैसे काहू को कोई वस्तु की बहुत चाह होई तौ ताको बारम्बार पूछै। तैसे आपको वल्लभ धर्मचर्चा बहुत होय तो प्रश्न करै सो प्रश्न गुण है। ६। काहू ने कोई बात पूछी सो आप तिस बात को जानता होय तौ तिसको उत्तर देय है सो तैसे ही आप धर्मकथा तत्त्वज्ञान बातन को समझता होय तौ उत्तर देय, सो उत्तरगुण है। ७। जो कोई वस्तु अपने हाथ आई है ताको भलो जानै तो ताको जतन तैं दृढ़ राखै। तैसे ही संसार में भ्रमता-भ्रमता उत्कृष्ट धर्म मिला जानि, महायतन तैं दृढ़ होई धर्म को राखै सो निश्चयगुण है।८। ऐसे यह आठ गुण सहित जाका हृदय होय सो श्रोता मोहफांस तैं निकसनेवारा मोक्षाभिलाषी जानना। ऐसे श्रोता के लक्षण गुण वर्णन कीने। तथा श्रोता के भला होने के भाव कहे। आगे वक्ता के लक्षण कहैं हैं। ऐसे गुण सहित वक्ता सुखदायक श्रोतानिका भला करै, सो ही कहिये है—

गाथा—सम दम धर वहुणाणी, सहुहित लोकोयभाववेत्ताये। प्रिक्षिखिमय बियरायो, सिसिहत इच्छोय एव गुरु पूजो॥ ९॥

अर्थ—सम कहिये समता सहित होय। दम कहिये मन इन्द्रिय का जीतनेवारा होई। धर कहिये इनका धारक होई। वहुणाणी कहिये विशेष ज्ञानी होय। सहुहित कहिये सर्व को सुखदायक होय लोकोय भाव बेत्ताए कहिए लौकिक कला का वेत्ता होई। प्रिक्षखिमय कहिए प्रश्नपूछतैं क्षमावान होय उत्तर देनेवारा होय। वियरायो कहिये वीतरागी होय। सिसिहितइच्छोय कहिए शिष्यनिकों भली गति का वांछक होय। एवं गुरु पूज्यो कहिए ऐसे गुरु पूज्य हैं। भावार्थ—शिष्य जननि का भला तब ही होय जब ऐसा गुरु उपदेशदाता होई। सो ही कहिए है। प्रथम तौ समता भाव सहित तिनकी मूर्ति होई। जो उपदेशदाता गुरु की मुद्रा भयानक होय तौ सभाजन को भय उपजावे तौ ताके निमित्त तैं शिष्यनि के ज्ञानलाभ न होय। मन में धर्म स्नेह करि हर्ष नहीं उपजे। जैसे भयानक सिंह का आकार रहता होय तो वन के सर्व पशु भी भय खावैं तथा जैसे राजा तख्त पर बैठनेहारा कोपसहित भयानक होय तौ ताको देखि सब सेवक ताको भयानीक जानि सुख तजि, भयवान होंय। तातैं सभानायक उपदेशदाता, शान्तस्वभावी चाहिये। ताके निमित्त पाये शिष्यनिकौं सन्तोष उपजै। १। जो गुरु उपदेशदाता संजमी इन्द्रिय मन का जीतनहारा होय तौ सभाजन को भी संजम की प्राप्ति होय। कदाचित उपदेशदाता विषयनि का लोलुपी होय तौ सभाजन भी असंजमी होय जावें। तातैं गुरु संजमी चाहिये। २। उपदेशदाता विशेषज्ञानी होय तौ सभाजन को भी ज्ञान की प्राप्ति होय। उपदेशदाता अज्ञानी होय तौ सभाजन भी अज्ञानी रहैं। जैसे राजा द्रव्यवान होय तो राजा के सेवक भी धनवान होंय। अरु राजा द्रब्यरहित होय तौ ताके सेवक भी द्रब्यरहित दरिद्री होय दुःख पावैं। तातैं उपदेशदाता गुरु ज्ञानी चाहिये। ३। और उपदेशदाता सबजन का हितकारी चाहिये। जो शिष्यजन के परभव सुख का इच्छुक होय तौ भला उपदेश देई, सभा का भला करै। और उपदेशदाता शिष्यजनका हितकारी नहीं होय तौ अपना विषय साधै, अपनी मानबड़ाई रहै, पूजा होई, और जीव अपने पांव पूजै, और का धन अपने घर में आवे ऐसा उपदेश देय शिष्यनि तैं दगाकरि विश्वास उपजावे, कषाय सहित उपदेश देवे, पीछे श्रोता चाहे जैसो गति जावो। ऐसे गुरु के उपदेश तैं जीवन का भला नहीं होय। तातैं गुरु, शिष्यनि का हितकारी चाहिये। ४। उपदेशदाता-गुरु लौकिक व्यवहार का वेत्ता होय तौ लोकपूज्य-

द बतावै। लौकिक व्यवहारवेत्ता न होय तौ लोकविरुद्ध उपदेश देवे तौ लोकनिन्दा वा शिष्य का बुरा होय। तातैं उपदेशदाता लोकव्यवहारक वेत्ता चाहिये। ५। उपदेशदाता पराये प्रश्न सुनिवे में धीर-वीर होय, उत्तर का देनेवारा होय, जो कदाचित प्रश्न सुनि कोप करै, पराये प्रश्न का उत्तर देने का ज्ञान नहीं होय तौ श्रोता भयखाय प्रश्न नहीं करि सकैं, सन्देह सहित अज्ञानी रहैं। शुद्ध श्रद्धान नहीं होय। तातैं उपदेशदाता पराये प्रश्न को सुनि समताभाव सहित उत्तर देनेवाला विशेष नय जुगति सहित ज्ञानी चाहिये। ६। और उपदेशदाता गुरु वीतरागी चाहिये जो रागी द्वेषी होय तौ क्रोध मान माया लोभ के वशीभूत होय अशुद्ध उपदेश देवे। कोई ने अपनी सेवा चाकरी करी होय तो ताको विश्वास करि उपदेश देय। अर जो अपनी आज्ञा बाहिर होय तो तापै कोप करि कहै। आपको धन देय ताको भला भक्त कहै। ऐसे कोई तें राग कोई तें द्वेष भावकरि यथावत-उपदेश नहीं देय तो शिष्यनि को धर्म का लाभ नहीं होय। तातैं उपदेशदाता धर्म का धारी वीतरागी चाहिये।७। उपदेशदाता गुरु, शिष्यनि का स्वर्ग मोक्ष होना वांछै ऐसा होय तौ निर्दोष उपदेश देय शिष्यनि का भला करै और उपदेश—दाता शिष्यनि को भली गति नहीं वांछै, तो खोटा उपदेशदेय श्रोता का बुरा करै। तातैं उपदेशदाता गुरु शिष्यनि को भली गती का इच्छुक चाहिये। ८। इत्यादि अनेक भले गुण सहित उपदेशदाता गुरु चाहिये। सोही भले श्रोतानि का गुरु है। सम्यक्दृष्टिनि का गुरु है। ऐसे गुण सहित गुरु सबको मिलें। और रागी-द्वेषी गुरु कोई बैरी को भी मति मिलौ। ऐसा आशीर्वाद वचन जानना।

इति श्री सुदृष्टितरङ्गिणीग्रन्थमध्ये श्रोता वक्ता स्वरूप वर्णनो नाम द्वितीयः परिच्छेदः सम्पूर्णः ॥ २ ॥

ऐसे श्रोता वक्ता का शुभाशुभ स्वभाव कहा। सो इनमें तैं शुभ श्रोता वक्ता के गुण जिनमें होंय सो इस ग्रन्थ को पढ़ो, धारौ। इस ग्रन्थविषैं अनेक रचनारूप कथन है। अरु या ग्रन्थ में अर्थ सो तो अनादिनिधन है काहू का किया नांही। अरु तत्त्वनि का स्वरूप जैसे केवलज्ञानी ने कहा तैसे ही है। जैसे अनन्ते जिनेन्द्र केवलज्ञानी आगे तैं तत्त्वनि का स्वरूप प्ररूपते आये, तैसे ही अर्थ यामैं है। अर्थ तो इस ग्रन्थ में कवीश्वर की इच्छा प्रमाण नाहीं है, अक्षरन का मिलाप कवीश्वर की बुद्धि अनुसार है। सो अर्थ तौ काहू वादी का खण्ड्या जाता नाहीं। काहे तैं, जो अर्थ है सो सर्वज्ञ केवली के वचन अनुसार है। सो ताको वादी हीनज्ञानी

कैसे खण्डि सकै। जैसे कोई एक स्तम्भ कोटीभटनि कर रोप्या हुवा ताहि कोऊ हस्त अङ्ग रहित, रोगी, दीन, तुच्छबल का धारी, रंक पुरुष कैसे उपारि सकै है। अक्षरनि का मिलाप तुच्छबुद्धि के जोग कर किया है। सो यामें कोऊ, चूक होगी। बुद्धि की सामान्यतातैं जो अक्षर मिलाये हैं सो चूक होयगी भी तौ एक उपाय विचार्या है सो प्रथमतौ मैं भी याको शोधि अक्षरनि को ठीक करूँगा तौभी ग्रन्थ की प्रचुरतातैं चूक रहेगी तौ ताके निमित्त दूसरा यह उपाय है। जो विशेष बुद्धि, सम्यग्दृष्टि, निर्मल बुद्धि के धारक, जिनआज्ञा रहस्यनि के जाननेहारे, वात्सल्य अङ्ग के धरनहारे, धर्मातमा पुरुषतिनतैं मैं ऐसी विनती करौं हों—जो हे प्रभावना अङ्ग के धारी धर्मी जन हो, तुम सज्जन अङ्गी हो और पराये तुच्छगुण पै अनुरागी हो, तातैं कवीश्वर तुमतैं ऐसी विनती करै है जो इस ग्रन्थ के प्रारम्भ विषं कहीं मैं अर्थ तथा अक्षरमात्रा विषैं बुद्धि की न्यूनताकरि भूला होऊँ तौ तुम मेरे ऊपर वात्सल्य भाव जनाय, शुद्ध करि लेना। यह विनती जिनेन्द्रदेव की आज्ञा के अनुसारि धर्मश्रद्धान के करनहारे तत्त्वनि का स्वरूप यथावत जाननेहारे सम्यकरुचि के धारीनि तैं करी है। और कोऊ छन्दनि की जोड़ विषैं तथा टीका के करने विषैं कोई अक्षरनि की ललिताई तथा सरलताई नहीं होय तौ छन्दकला के ज्ञान-सम्पदा के धरनहारे भव्यात्मा सरलछन्द कर लेना। आप एता उपकार इस ग्रन्थविषैं मिलाय अपनी धर्मानुरागता प्रगट करेंगे। ऐसी विनती सज्जननितैं करी। सो रही चूक ऐसे शुद्ध होयगी। इहां कोई तरकी कहै—जो आगे भी तौ जिनआज्ञा प्रमाण ग्रन्थ बहुत थे सो तिनकाही अभ्यास किया होता तो भला था। तुमको ऐसे भारी ग्रन्थ गाथा छन्दनि सहित करने का अधिकारी काहे को होना था। तातैं मानबुद्धि के जोगतें तुमने इस ग्रन्थ को किया, सो तुम्हारा मनोरथ पूरा होता नांहीं भासै है। यह ग्रन्थ भारी है, ताविषैं चूक भये उलटे निन्दा को पावोगे। तातैं नहीं करना ही भला था ताको कहिये है। जो हे भाई! तैंने कही जो तुमने मानके अर्थ ग्रन्थारम्भ किया, सो जिनआज्ञाप्रमाण सरधानीनकैं शास्त्रप्रारम्भ में मानादिक प्रयोजन रूप कषाय का कछूही प्रकार नाहीं। यो कार्य तो सातिशयपुण्यबन्ध के निमित्त कीजिये है। मान का इसविषैं प्रयोजन नाहीं। तब तरकी ने कही, मान प्रयोजन नांही अरु पुण्य की चाह थी तौ आगे अनेक शास्त्र थे तिनका स्वाध्याय करि अर्थ का धारन करते तौ महापुण्य का संचय नहीं होता क्या? ताकों कहिये है, जो हे भाई! तैंने कहा सो सत्य है, परन्तु

कोई उपयोग का स्वभाव ऐसा है सो नवीन वस्तुविषैं उपयोग विशेष थिरता पावै है। नवीन ग्रन्थ जोड़ने में चित्त की एकाग्रता विशेष होय है। तातैं चित्त की विशेष लाग देखि धर्मानुराग विशेष बढ़नेकों धर्मध्यान में कालविशेष लगावनेकूं ग्रन्थ प्रारम्भ विचार्‌या है और मान का प्रयोजन यहां कछू नांहीं। मान तौ संसारविषैं दीर्घ कर्मस्थिति के धारक जीव कषायनि के प्रेरे मिथ्यादृष्टि मोहरस भीजै प्राणिनि को चाहै; धर्मीनि के नांही, ऐसा जानना। तब तरकी ने कही ऐसे है तो भले है। परन्तु ग्रन्थविषैं चूक भये पण्डित हैं सो तुम्हारी बुद्धि की निन्दा करेंगे। तातैं हाँसि पावोगे। ताका समाधान। हे भ्रात! धर्म सेवने विषैं निन्दा होने का तो कार्य नांही। ऐसे धर्म भावना रहित प्राणी कौन हैं जो धर्म के कार्य विषैं निन्दा करैं? तब तर्की ने कही धर्मसेवते तौ निन्दा नहीं करेंगे। परन्तु ग्रन्थ में चूक देखि पण्डित हाँसि निन्दा करेंगे। ताको कहिये है—हे भाई, पण्डित दो प्रकार के होय हैं एक तौ धर्मार्थी पण्डित हैं एक मानार्थी पण्डित हैं। सो यह दोय प्रकार पण्डितनि का अन्तरङ्ग स्वभाव भिन्न-भिन्न है। ए पण्डित दोऊही घन तन समा न जानने। जैसे घन कहिये मेघ अन्तरङ्ग विषैं तौ निर्मल जल कर भरे हो हैं। अरु ऊपरि तैं स्यामघटारूप होय हैं तैसे ही जाका अन्तरङ्ग तौ शुद्ध महानिर्मल धर्मस्नेह जल करि भर्‌या है अरु ऊपरि तैं संसार दशा तैं उदासी, संजमी, तनतैं क्षीण मलीन श्याम-सा दीखै, सो तो धर्मार्थी पण्डित है और मानार्थी पण्डित है सो तनसमान है। जैसे, मनुष्यनि का तन ऊपरितैं तो महा-सुन्दर सबजनकौं भला दीखे और अन्तरङ्गविषैं हाड, मांस, रुधिर, चामरूप, महामलीन, घिनकारी, सप्तधातुमई खोटा होय है। तैसे ही मानार्थी पण्डित ऊपरितं महासुन्दर काव्यछन्द मनोज्ञ वाणीसहित सो सबकौं भला भासै। और अन्तरङ्ग धर्मवासनारहित, महामानी, पराये मानखण्डने का अभिलाषी, सज्जनता रहित, पराये भले गुणनि विषैं अप्रीतिभाव करनेवारा वज्रपरिणामी सो पण्डित मानार्थी है। सो हे भाई! संसार में दोय जाति के पण्डित हैं। सो जे धमार्थी पण्डित हैं सो तो महासज्जन हैं सरलस्वभावी हैं सो तो इस ग्रन्थ की चूक देखि ऐसा विचारैंगे जो चूक भई तौ कहा भया। जो बड़े-बड़े पण्डित होय हैं ते भी चूक जांय हैं। जैसे महाअटबी विषैं बड़े-बड़े चलइया, सदैव के आवने-जावने हारे भी दीर्घ उद्यान मार्ग विषैं चूकै हैं। तो ऐसे मार्ग विषैं कबहूं-कबहूं का आवने जानेहारा अन्धासमान पुरुष, अल्प भासने तैं भूलै तो आश्चर्य क्या

है ? परन्तु ऐसे अन्ध समान जीव का पुरुषार्थ अरु लगन सराहिये, जो ऐसे विकटपंथनि मैं गमन करै हैं। सो याका धर्मानुराग सराहिये। जो दीखता तौ थोरा अरु ऐसे विषम मार्गनि में गमन करि तीर्थ-यात्रा का उद्यम करै है। सौ याके धर्मानुराग विशेष है। ऐसा जानि वाका हस्तगहि वाकूं मार्ग लगाये बाकी वांछा पूर्ण करैं हैं। तैसे ही धर्मार्थी पण्डित तौ ऐसा विचारैं जो नवीन ग्रन्थनि के करते बड़े-बड़े पंडित भी भूलैं हैं सो ही ज्ञानी भूलै तो दोष क्या ? परन्तु याकी बुद्धि सराहिये है। सो ऐसा जानि धर्मार्थी पंडित नहीं हँसेंगे। अर तू मानादिक की कहै सो धर्म अभिलाषी वक्ता के मानादिक प्रयोजन नांही। परन्तु तेरी ही बुद्धि विषैं कोई विपरीत विकार उपज्या है तातैं ऐसा भासै है। जैसे कोई कनक का खानेहारा पुरुष आकाश विषैं नाना प्रकार रतनमयी रचनासहित एक नगर देखि हर्षायमान होता भया, हँसता भया। अरु कबहूँ नाना प्रकार भयानीक जीवनि के सिंह, हस्ती, सर्प्प आदि के विकराल आकार देखि महाभयानीक होय रुदन करै है। सो आकाश तौ महा-निर्मल निर्दोष है आकाशविषैं तौ रतनमयी नगर भी नाहीं और सिंहादिक भयानक जीव भी नांहीं। परन्तु धतूरे के अमल में याकी दृष्टि मैं विपरीत भासै है तैसेही ग्रन्थ के कर्त्ता आचार्यादिक भले कवीश्वरनि के मान का भाव नांही। कैसे हैं भले कवीश्वर, जे धर्म के धारी परम्परातैं जिनभाषित धर्म की प्रवृत्ति वांछनेहारे समतारसस्वादी तिनको तौ सत्कार पूजा मान बड़ाई की इच्छा नांहीं। परन्तु याही ने मिथ्यात्वमई धतूरे का ग्रहण किया है। तातैं याकों ग्रन्थारम्भ में भले कवीश्वरनि के मान भासै है। जैसे काहू के नेत्रनि विषें नीलिया रोग है। सो ता पुरुषकों सब सुफेद, नीला भासै है। सो सुफेद वस्तु तौ अपने स्वभावरूप स्वेत है हो परन्तु या पुरुष के नेत्रनि विषैं नीलिया रोग है सो श्वेतवस्तु नीली भासै है। तैसे ही ग्रन्थकर्त्ता कवीश्वरनिकैं तो मान बड़ाई की इच्छा नांहीं, परन्तु याही अल्पबुद्धि भोरे जीव का ज्ञान विपरीत रूप भया है। तब तरकी ने कहो, यामें तुम्हारे मान-बड़ाई नाहीं है तौ ग्रन्थनमैं अपने नाम का भोग काहेकों धरोहो ? ताका समाधान—हे भाई ! अपने नाम का भोग भले कवीश्वर हैं सो नाम की इच्छा तैं नाहीं धरें हैं। नाम का भोग तो अपनी धर्मबुद्धि तैं, पाप तैं भय खाय करि धरैं हैं। ऐसे ही अनादि तैं भले कवीश्वरनि की परिपाटी चली आई है सो ग्रन्थकर्त्ता अपना नाम भोगा अपने किये ग्रन्थ मैं नाहीं धरैं तौ दोष लागै। कवीश्वरों का चोर होय। आचार्यनि की परम्परा का लोप होय।

तातैं पाप का बन्ध होय है। नाम दिये सर्वकों ऐसा ज्ञान हो जाय है जो यह ग्रन्थ फलाने कवीश्वर का किया है सो वाके नामकौं जानि धर्मात्मा ऐसी विचारै जो वह कवीश्वर तौ भला तत्त्वज्ञानी है। भले सम्यग्ज्ञान का धारी है। पक्का दृढ़ सरधानी है। सो वाके वचन प्रमाण हैं। ऐसा धर्मार्थी प्रसिद्ध तत्त्वज्ञानी कदाचित् एक दोय जगह चूक भी जाय तो विवेकी धर्मात्मा ऐसी कहैं जो एक दोय चूक हैं सो ज्ञान की न्यूनता तैं भाव नहीं भास्या तातें ये शब्द लिखे गये। परन्तु वाके श्रद्धान बहुत दृढ़ है। ऐसा जानि उस कवीश्वरकूं नाम धरने तैं भला सरधानी जानि, दोष नहीं लगावैं और वाके वचन प्रमाण मानें हैं। कोई ग्रन्थ का कर्त्ता अतत्त्व सरधानी होय तौ वाके नाम भोग तैं नाम जानि, विवेकी हैं सो ऐसा विचारैं हैं। जो इस ग्रन्थ का कर्त्ता अतत्त्व सरधानी है ताका कहा भया कोई शब्द जिन आज्ञा प्रमाण नांहीं, तातैं इस वक्ता के वचन प्रमाण नांहीं। ऐसे नाम के भोगतैं भले कवीश्वर अरु बुरे कवीश्वर की परीक्षा करिये है, सो ता कवीश्वर के नाम करि ग्रन्थ के वचन प्रमाण करिये है। तातें कवीश्वर अपना नाम धरैं। अरु कदाचित् ग्रन्थकर्त्ता अपना नाम ग्रन्थ में नहीं धरैं तो वह वक्ता अन्य कवीश्वरनि का चोर होय। तातैं ग्रन्थ में कवीश्वर अपना नाम का भोग धरैं हैं। इहां मान का कछु काम नाहीं। यह तौ धर्मात्मा जीवनिकों अनुमोदना होने के निमित्त नवीन ग्रन्थनि की रचना करिये है। सो याको वांचिकै सामान्यबुद्धि तौ ज्ञान को बढ़ावेंगे। मोतैं विशेष ज्ञानी धर्मात्मा जो ज्ञानसम्पदा के धारी हैं सो ऐसी विचारेंगे जो ऐसा दीर्घ ग्रन्थ तत्त्व अर्थ सहित की रचना करी सो स्याबासि है। ऐसा जानि धर्मानुराग बढ़ावेंगे। कदाचित् विशेष ज्ञानी इस ग्रन्थ को सुगम जानि याका अभ्यास नहीं करेंगे तौ वक्ता तैं जो सामान्यबुद्धि होंगे सो भव्यातमा धर्मानुरागी शुभ फल के अरु तत्त्वज्ञान के बढ़ने कौं इस ग्रन्थ का अभ्यास करेंगे। सो इस ग्रन्थ तैं जिन आज्ञा का सामान्य रहस्य जानि पीछे विशेष शास्त्रनिमैं प्रवेश पावें ताकरि पुण्य का संचय करेंगे, अरु तत्त्व का भेद पावेंगे। तातें यह ग्रन्थ भव्यनिकौं गुणकारी है। तातैं यामैं कोऊ सामान्य दोष हो गया तो हम शुद्ध कर देंयगे ऐसा विचार तौ धर्मात्मा पंडित इस ग्रन्थ की रही चूक शुद्ध करेंगे। और दूसरे मानार्थी पंडित हैं सो पराये मान खण्ड करिने का सदैव उपाय करैं हैं सो पराये मान खण्ड भये सुख पावेंगे। सो यों तौ ग्रन्थ में चूक न होयगी तौहू दोष लगावैंगे, सो दोष भये तो दोष लगावैं ही लगावैं। यह अपना

अङ्ग कैसे तजेगा, हाँसि करैगा ही। तातैं ऐसे धर्म भावनारहित मानी पंडितनि का भय हमको नांही। जो भय है तौ जिन आज्ञा सहित धर्मात्मा पंडित पुरुषन का है। सो इनका भय करना भी योग्य है। क्योंकि जो इस ग्रन्थ में मेरी बुद्धि की न्यूनता करि जिन आज्ञारहित अतत्त्वसरधानरूप शब्द कोई लिख्या गया होय, तथा कोई अशुद्ध पाप प्रवृत्ति करावनेहारा लिख्या गया होय तौ तत्त्वज्ञानी उत्तम बुद्धि के धारी जिन-भाषित तत्त्वनि कर रहस्यनि के जाननेहारे उस चूक को देखि ऐसा समझैं जो यह जिन-आज्ञारहित शब्द तथा अर्थ लिख्या गया है सो ऐसा सरधान कवि के होय। ऐसे सन्देहसहित विचार कदाचित् धर्मार्थी पंडित के होय तौ इस बात में मैं भी उनको सरधान चूक-सा दीखूं तौ उन धर्मार्थिन की पांति मोहिं वाह्य-सा जानैं, तौ इनसे मेरे सरधान कूं अरु शुद्ध-धर्म के सेवनेकूं बट्टा लागै। तातैं इसका भय तौ मौकूं है। सो यह धर्मात्मा सर्व ग्रन्थ के रहस्य देखि ऐसा भी विचारेंगे जो सर्व ग्रन्थ का रहस्य तौ भले प्रकार जिन आज्ञा प्रमाण है। और एक दोय चूक हैं सो श्रद्धान-पूर्वक नाहीं। यह कोई बुद्धि की मन्दता करि भूलिसैं मँडि गया है, सो ऐसा जानि सज्जन शुद्ध कर लेंगे, परन्तु मोकों दोष नाहीं लगावेंगे। ऐसे सज्जनादि गुन के धारी विशेष ज्ञानी धर्मात्मा पुरुष हैं सो बड़े हैं, इनका भय करना ही हमको तत्त्वज्ञान सरधान में सहायक है तातें इन पुरुषनि का भय हमको गुणकारी है। यातैं इनकी हाँसि निन्दा का भय है ताहीतैं अतत्त्वसरधान में हमारा ज्ञान नहीं प्रवेश करै है सो ऐसे पुरुषनि के भय का उपकार है। तातैं हमको ऐसे सज्जन जीवनि का भय है। जे जिन आज्ञा रहित, जिन वचन जानिवे को निरन्ध समानि, मिथ्यासरधानी, धर्म के बिछुरे, धर्म अभिलाषारहित अक्षरज्ञानी सो इन पंडितन का हमको भय नाहीं। ये मानार्थी जीव हैं सो परम्पराय कवीश्वरों की परिपाटी मेटन हारे हैं। तातें इनका भय विवेकीनिकों योग्य नाहीं। जैसे कोई जौहरी के दोय रतन थे सो वह रतन उत्कृष्ट मोल के थे सो तिन रतनकों कोई ग्राहक आया बड़ा मोल देय लीये। अरु कही हम दिखाय लावें, परखाय लावैं हैं। ऐसी बदानी कर गया। सो तुच्छ ज्ञानी, मूर्ख, रत्न परीक्षा के ज्ञानरहित ऐसे बड़ी उम्र के धारी घास लकड़ी के बेचनेहारे ऐसे जड़बुद्धि तिनकूं वह रतन दिखाया और उनतैं कही—याके लाख-लाख दीनार दिये हैं। तुम बड़े पुरुष हो, घने रत्न देखे हैं सो ये कैसे हैं? तब सर्व घास के बेचनेहारे बोले—हे भ्रात! यह प्रत्यक्ष काँच

का रंगीला खण्ड है। तुच्छ मोल का है तू काहेकौं द्रव्य खोवे है। ऐसे सर्व घसियारों के वचन सुनि याने देखी जो अस्सी वर्ष के मनुष्य, घने जाननेहारे काँच खण्ड बतावैं हैं सो प्रवीण हैं। ऐसे जानि वह ग्राहक रतन लेय जौंहरीपैं आया। और कहा—याकों तौ बड़ी-बड़ी उम्र के मनुष्य, कांच खण्ड बतावैं हैं। तब जौंहरी ने कही तुमने कौन को दिखाये ? उन जौंहरीनि की दुकान कौन बाजार में है ? तब ग्राहक ने कही दुकान तौ नांही और जौंहरी भी नांही, घास लकड़ी बेचे हैं। और बाजार में खड़े रहते हैं। तब जौंहरी राजी भया। और विचारा जो वह तौ घास लकड़ी के बेचनेहारे मूर्ख जीवन ने रत्न को कांच खण्ड कहा तौ क्या भया ? उनका वचन प्रमाण नांही। ऐसे समझिकै जौंहरी ने बुरा नहीं मान्या। और ग्राहक से कहा—इन रत्नों की परीक्षा घास लकड़ी बेचनेहारेनतैं नहीं होय है। कोऊ जौंहरी को दिखावो। तब ग्राहक ने कही वे भी तो सौ-सौ बरस के बड़े हैं। तब जौंहरी ने कही बड़े भये तौ क्या भया, वह ज्ञान दरिद्री हीन बनज करनहारे रतनपरीक्षा के ज्ञान से रहित हैं। तातें भले रत्नकों कांच खण्ड कहना यह उनका वचन प्रमाण नाहीं। तातैं तुम कोई जौंहरीकों बतावौ। तब उस ग्राहक ने एक बड़े जौंहरी को दिखाये। तब जौंहरी ने उस रतन को देखि सर्व जोग-अजोग जान्यां। कैसा है जौंहरी रतनपरीक्षा का जाननहारा, विवेकी, सांची दृष्टि का धारी कहता भया। भो मित्र, एक रतन तौ सर्वदोष रहित है सो लाखदीनार का है। एक रत्न में कछु कसरि है, तातें यह रत्न दस हजार दीनार घाटि मोल का है ऐसा जानना। तब ग्राहक आश्चर्यवन्त भया कहता भया, हे सुबुद्धि मित्र ! इन दोऊ रत्न का एक-सा तौ रङ्ग है, एक-सा आकार है, एक-सा तौल है, इनके विषैं मोल का अन्तर ऐसा कैसे भया, सो बतावौ। अरु रतन का धनी जौंहरी भी एक का घाटि मोल सुनि, अचिरज पाय उस बड़े जौंहरी सों कहता भया। जो हे मित्र ! उस रतनकौ घास लकड़ी बेचनेहारों ने कांच खंड कहा तब भी उनको मन्दज्ञानी जानि भय न भया। अरु तुमने याके दस हजार दीनार घाटि कहे सो हमको बड़ी चिन्ता भई, तुम विवेकी हो अनेक रत्न परीक्षा में प्रवीण हो अरु हमको ऐसे सूक्ष्मदोष भासते नाहीं, तुम्हारा वचन हमको प्रमाण है। तब उस बड़े जौंहरी ने कहा—भो भ्रात तुम देखो, तुमको याके घाटि मोल का दोष बतावैं। जा दोषतैं याका मोल घटाया है। तब

इस बड़े जौंहरी ने एक जल का बड़ा बासन भराय तामैं एक पोस्त की डोंडी उलटी तिराई, ताके ऊपर प्रथम तौ शुद्ध रतन धरि ता कड़ाही के जल में तिराई सो कड़ाही का जल सर्व रतन के रङ्ग समान भया। सर्व को दिखाय पीछे उस रत्न को उठाय लिया। अरु फिर उस घटमोल रत्न को डौंडी पर धर तिराया, सो यातें भी सर्व जल रतनमयी भया। परन्तु एक राईमात्र जल में छांटा रहा सो जल रूप ही रहा, रत्न के रङ्ग नाहीं भया, जहाँ-जहाँ जल मैं डौंडी रतन सहित फिरै, तहाँ-तहाँ राई मात्र जल ही दीखै। तब या बड़े जौंहरी ने रत्न के धनीकों कही। भो मित्र देखि इस छांटा के दस हजार दीनार घाटि भये हैं। ऐसा दोष है सो तेरे रत्न का दोष देखि। कोऊ तैं तौ हमारा द्वेष नाहीं। परन्तु सांचो दृष्टि के धारी जौंहरी होय तिनका यह धर्म है सो जैसा होय तैसा कहैं। तब याके वचन सुन, याके सांचे ज्ञान की प्रतीत कर ग्राहक ने रतन लिया। अर इनके ज्ञान की प्रतीति कर जौंहरी ने दस हजार दीनार घाटि लिये। अरु याका विशेष ज्ञान जानि, विशेष ज्ञान की स्तुति करी। अर अज्ञानी घास के बेचनेहारे ने रतननिकों कांच खराड कहा सो तौ प्रतीति नहीं करी। अरु विशेष ज्ञान की प्रतीति करी। तैसे ही जे लौकिक पंडित क्रोध मान माया लोभ के धारी, धर्मवासना रहित, जिन भाषिततत्त्वरत्न तिनकी परीक्षा करवेकों घास लकड़ी बेचनेहारे समान तुच्छज्ञानी, विशेष धर्मअर्थ जानने को असमर्थ, कषायनि के दास, तिनकी हास्य निन्दा का भय नांही। ऐसा जानि इस ग्रन्थ का प्रारम्भ करूँगा। अज्ञानी जीवन का भय, विवेकी करते नांही। जैसे कोऊ बैल तथा ऊँट है। सो ताको देखिकैं नग्न पुरुष लज्जा भय नांहि करै, नग्न बैठा रहे। वही मनुष्य दस बरस का बालक भी देखे तौ लज्जा करे। सो बैल ऊँट तौ बीस बरस के बड़े तनके धारी तिनको लज्जा नहीं करै, अर मनुष्य को बालक दृष्टि देखि लज्जा करिये है सो क्यों? पशुन में नग्न पने का ज्ञान नाहीं। अरु बालक को नग्न का ज्ञान है, सो बालक की लज्जा योग्य है। तैसेही अज्ञानी, धर्मवासना रहित, पशु समान अज्ञानिन की शंका-भयतें धर्मकार्य तजना योग्य नांही, ऐसा जानि ग्रन्थारम्भ करौं हों। तब तरकी ने कही—प्रारम्भ तौ करौ हो परन्तु सावधान होई करियौ। ज्यौं छन्दन की जोड़ि न विनशै। अर्थ की शुद्धता, वचन की मिष्टाई सहित ललिताई इत्यादिक कवीश्वरों की परिपाटी अनुसार निर्दोष करना। ताको कहिये है—हे भाई! सर्व दोष रहित ग्रन्थारम्भ तौ बड़े कवीश्वरों के नाथ छत्तीस गुण धारक आचार्य चारि ज्ञान के धारी ते करैं हैं।

तथा ग्यारह अङ्ग चौदह पूर्व के ज्ञानधारक उपाध्याय जी हैं ते शुद्ध सर्वदोष रहित ग्रन्थारम्भ करैं हैं। तथा और यतीश्वर दीर्घज्ञान के धारी अनेक छन्द अर्थ ललताई शब्द की मिष्टताई सहित ग्रन्थ का प्रारम्भ करनहारे हैं। तथा सर्वयतिन के नाथ गणधर देव चारि ज्ञान के धारी सो सर्व दोषरहित ग्रन्थनि का प्रारम्भ करैं हैं। जो कोई सामान्य ज्ञान के धारी धर्मानुरागी कवीश्वर हैं तिनकी जोड़ विषैं तथा ग्रन्थारम्भ विषैं सामान्य-विशेष चूक होयगी। हम पै सर्व प्रकार निर्दोष ग्रन्थारम्भ कैसे बनें है। सामान्य दोष के भयतें ग्रन्थारम्भ नहिं करिये तो परम्पराय कवीश्वरनि का मार्ग बन्द होय। तातैं अल्प चूक में पाप नाहीं। पाप तौ एक कषायनि में है। जो कषायसहित अपनी मान-बड़ाई के अर्थ स्वेच्छा शब्द अर्थ धरै, जानता भी चूकै, तौ ताके पाप लागे और शुद्ध सरधान सहित अपनी बुद्धि की न्यूनता तैं कोऊ भूल भी रहै तौ विशेष ज्ञानी समारि लेहू। ऐसी विनती कर देनी पाप नाहीं। ऐसा जानि किया है। जैसे कोई एक विशेष ज्ञानी पै, अनेक सामान्य बुद्धि के धारी ज्ञानाभ्यास करैं हैं सो अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसारि सर्व बालक पाटी परि लिखैं हैं। सो आय-आय विशेष ज्ञानी कों दिखावैं हैं सो सबकी पाटी देखें हैं जो शुद्ध-शुद्ध लिखा होय ताकी बुद्धि की प्रशंसा करैं हैं। कोऊ की पाटी में एक दोय भूल भी होंय और सर्व पाटी शुद्ध होय तौ विशेषज्ञानी ताकी भी प्रशंसा करैं हैं। जो एक दोय चूक होय तौ बताय देंय, अरु कहैं याकी भली बुद्धि है, यानें भली-भली रहसि सहित पाठ लिखा है। तातें राजी होंय। अरु कदाचित् चूक होय सो बतावें हैं। तैसे ही सामान्य बुद्धि के धारी कवीश्वरनि का अभिप्राय है। लो हम अपने ज्ञान की सामर्थ्य प्रमाण, तत्त्वार्थ अक्षरन का शुभ मिलाप करैंगे। अर कोई सूक्ष्म तत्त्वार्थ भाव हमको न भासै, अरु विशेष ज्ञानी को चूक भासै, तौ हम पै धर्म स्नेह करि शुद्ध करि लेहु। ऐसे दीर्घज्ञानी, जिन आज्ञा प्रमाण, जीव अजीव तत्त्व के भेदी, ज्ञान द्वारा पाया है यथावत् तत्त्वभेद का रस जानें, ऐसे धर्मी जीवन तैं विनती करी है। तब इहाँ कोई तरकी ने कही—सज्जनतैं कहा विनती करौगे? सज्जन तौ चूक होयगी सो शुद्ध करैंहीगे। सज्जन जीव दया-प्रतिपालक पुरुषन का सहज ही ऐसा स्वभाव है। परन्तु जे दुष्ट पापी हैं तिनतैं विनती करनी योग्य थी, जे दुर्जन स्वभावी पर-निन्दा के करनहारे हैं तिनकौं उपशान्त करने को उनकी विनती करनी भली है ताको कहिये हैं। हे भाई! जे दुष्ट हैं तिनका

कोई ऐसा ही अकृत्रिम अनादि-निधन स्वभाव है जो ये पराये भले कार्य को देख सकते नाहीं। यापै कोई अनेक विनती करौ परन्तु यह पापी आत्मा पराई भली वस्तु को दोष लगाये बिना रहता नाहीं। ऐसे कुबुद्धिनकौं खुशी करनेकूं जो उपाय कीजिये, सो सर्व वृथा है। जैसे नीम के मिष्ट करनेकूं नाना मिष्ट रस, दुग्ध, घी ले नीम की जड़ में दीर्घ काल तांई सींचिये तौ भी नीम का रस मिष्ट होता नाहीं। जेती भली वस्तु मिष्ट-रस-धारी नीम को जड़ में डारिये सो सर्व वृथा होय जाय। तैसे ही दुष्ट कूं खुशी करनेकों जेते उपाय करिये, सो-सो सर्व वृथा जांय हैं। तातें हे भ्रात! जो वस्तु होती जानिये तौ इलाज भी करिये। और जो वस्तु होती नहीं जानिये तौ तापै इलाज काहे का? तातें सज्जन हैं ते सरलस्वभावी हैं। तातें विनती करी। अर जे दुष्ट हैं तिनतैं विनती करी तौ क्या, वह भला वस्तुकौं दोष लगावैं ही। जे दुष्ट हैं तिनकें तौ यही मुख्य है जो पराई निन्दा हाँसि को करि, परिकों पीड़ा उपजाय, आप सुख मानना। तातें ऐसे जानि सज्जन जननतें विनती करी, जो यह सज्जन भूल-चूक होयगी सो शुद्ध करैंगे। अरु पराये अवगुणकों हेरनेहारोंतैं समभाव करि इस ग्रन्थ के करने का उपाय करौं हों। ताके आदि ही षट्कार्य आचार्यनि की परिपाटी तैं चले आये हैं। जे आचार्य तथा और ग्रन्थन के कर्ता कवीश्वर भये ते षट्कार्य ग्रन्थारम्भ के आदि ही वर्णन करते आये हैं। सो ही परम्पराय लेय इस ग्रन्थ की आदि इहाँ भी लिखिये हैं।

गाथा—मंगल णिमित्त हेऊ, जोए पमाण णाम कत्ताए। सूरो ग्रन्थारम्भय, ए षड काजोय धम्म सुत्तादो॥ १०॥

मंगल, निमित्त, हेतु, प्रमाण, नाम, कर्ता, यह षट् हैं। सो जे आचार्य ग्रन्थारम्भ करैं तब आदि में इनका स्वरूप वर्णन करैं। सो अब इनका स्वरूप लिखिये है। प्रथम ही मंगल कहैं सो पुण्य, पवित्र, शुभ, क्षेम, कल्याण, सुख, साता इत्यादिक ए सर्व मंगल के नाम हैं। मंगल के षट्भेद हैं सो ही कहिये हैं।

गाथा—णाम सथापण दव्वो, खेत्तो कालोय भाव षड् भेदो। मंगल पुणदय भावो, ग्रन्थारम्भेय सव्व करई॥ ११॥

नाममंगल, स्थापनामंगल, द्रव्यमंगल, क्षेत्रमंगल, कालमंगल, भावमंगल—ये षट् प्रकार मंगल हैं। सो इनका विशेष कहैं हैं। तहाँ नवीन ग्रन्थ के आरम्भ में प्रथम ही मंगल करिये। सो पाप का नाश सो ही मंगल है। सो पंच परमेष्ठी के नाम तथा वृषभादि अनेक तीर्थङ्करन का नाम तथा गणधर देवादि महान् पुरुष तथा चरमशरीरी

आदि धर्मात्मा पुरुषन का नाम लेते पाप का नाश होय, सो नाम मंगल है। तीर्थङ्कर देव के शरीर की नकल बनाय स्थापना करि पूजना, सो स्थापना मंगल है। अरहन्तादि परमेष्ठी के शरीर हैं सो इनका देखना, पूजना, सुमिरण करना, ताकरि पाप का नाश करना, पुण्य का संचय करना होय, सो द्रव्य मंगल है। जहाँ यतीश्वर ध्यान-अग्नि कर अष्ट कर्म नाशि सिद्ध लोककों प्राप्त भये। जैसे सोनागिरिजी, सम्मेदशिखरजी, पावापुरजी आदि उत्तम क्षेत्रन का नाम लिये पूजा वन्दना किये, पुण्य का बन्ध होय, पाप का नाश होय, सो क्षेत्रमंगल है। जिन कालन में जिनेन्द्रदेव के गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, निर्वाण आदि पंच कल्याणक भये होंय सो, तथा नन्दीश्वर विषैं अष्टाह्निका आदिक जिन पूजन के दिन हैं सो कालमंगल हैं। इन काल का नाम लेते, वन्दना करते, ध्यान करते, पाप का नाश होय, पुण्य का लाभ होय, सो कालमंगल है। अष्टकर्मरहित सिद्ध भगवान तथा च्यारि घातिया कर्मरहित तीर्थङ्कर अनन्त चतुष्टय सहित समोशरणादि उत्कृष्ट सम्पदा लेय दिव्य ध्वनि करि उपदेश देते जो साक्षात् भगवान् तिनका नाम ले, स्मरण करते ध्यान करते पाप का नाश होय पुण्य का लाभ होय, सो भावमंगल है। ऐसे ये षट् प्रकार मंगल हैं सो भव्य जीवनकों शास्त्र सुनने में बाँचने में पूजन करने में मंगलकारी होहु। याका नाम मंगल भेद है। सो भले कवीश्वरनि कों प्रथम ग्रन्थारम्भ करते मङ्गलकारी होंय हैं। १। बहुरि ग्रन्थारम्भ करिये है ता समय ऐसा विचारिये है जो यह ग्रन्थ करैं हैं सो भव्य जीवनि के पाप नाश होनेकूं तिनका मिथ्यात्व मिट सम्यक्त्व होने कूं तथा परभव स्वर्ग मोक्ष होने कूं इत्यादि धर्मार्थी जीवन कूं, शुभ फल की प्राप्ति के निमित्त ग्रन्थ करिये है, सो याका नाम निमित्त भेद है। २। और भव्य जीवनि के पढ़ने, सुनने, उपदेश देने हेतु शास्त्र करिये है सो हेतु नाम गुण है। ३। प्रमाण भेद दोय हैं एक तौ अर्थ प्रमाण, एक अक्षर पद प्रमाण। सो अर्थ प्रमाण तौ अनन्त हैं। ताका तारतम्य भेद सर्वज्ञ केवल-ज्ञानी जानैं हैं सो छद्मस्थ के ज्ञानगम्य नाहीं तातैं नहीं लिखा। अक्षर प्रमाण है सो अक्षर की गिनती जो या ग्रन्थ के ऐसे श्लोक हैं सो अक्षर प्रमाण है। ऐसे दोय प्रकार प्रमाण नाम गुण है। ४। ग्रन्थ पूरण होतें कोई मोक्षमार्ग सूचक शुभ नाम विचार, ग्रन्थ का पुण्याधिकारी भला नाम देना, सो नाम गुण है। ५। ग्रन्थ के पूरण होते मङ्गलाचरण करि ग्रन्थ का कर्ता अपने नाम का भोग धरै, सो कर्ता नाम गुण है। ६। ऐसे ए षट् गुणन का कथन ग्रन्थ के आदि में किया।

ता प्रसाद मेरे सुदृष्टि होते हृदय में, उपजी जो नाना प्रकार ज्ञानतरंग, जैसे समुद्र में अनेक तरंग उपजैं तैसे मेरी सुदृष्टि समुद्र में अनेक तत्त्व भेद, वस्तुनि के स्वभाव, जीवनि के वाह्य अभ्यन्तर रूप कर्म की चेष्टा की प्रवृत्ति आदि तरंग सो ही तरंग या ग्रन्थ विषैं लिखिये है। तातैं या ग्रन्थ का नाम "सुदृष्टि तरंगिणी" ऐसा कहा है सो यह शुभ करनहारा ग्रन्थ है सो सम्यक्त्व दृष्टिन के धारने को जानना। तथा और भी जे भव्यात्मा इस ग्रन्थ का अभ्यास करै, ताकूं तत्त्वनि का ज्ञान होय। तातैं सम्यक्त्व पाय अतिशय सहित शुभफलदाता जो पुण्य, ताका लाभ होय। तथा जा ग्रन्थ में यह सात जाति का कथा होई सो भले फलदाता मंगलकारो ग्रन्थ जानना। सो ही सात भेदरूप कथा या ग्रन्थ में समझ लेना। ते कथा कौन, सो बताईये है।

गाथा—दव्वय खेत्रय कालय, भावो तिथ्थय होय फल आदा। पसथावो यह सत्तो, धम्म कथाई धम्म फल देई ॥ १२ ॥

अर्थ—द्रव्यकथा, क्षेत्रकथा, कालकथा, भावकथा, तीर्थकथा, फलकथा, प्रस्तावकथा—ये सात कथा हैं सो इनकूं धर्मकथा कहिये है। इनका कथन जहाँ चलै सो शास्त्र धर्मफल का दातार जानना तथा जो कोई भव्य इन सप्त कथान की परस्पर चर्चा करैं तो धर्मकथा कहिये। सो इनका सामान्य स्वरूप कहिये है। तहाँ जीवद्रव्य, पुद्गलद्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, कालद्रव्य, आकाशद्रव्य—यह षट्द्रव्य हैं सो इनकी चर्चा, इनके गुण पर्यायन की परस्पर चर्चा करनी, सो धर्मफलदायक धर्मकथा कहिये। अब इन कथन का जो शास्त्र विषैं व्याख्यान किया होय, सो धर्मशास्त्र कहिये। ऐसे शास्त्रन कूं पढै-सुनै-उपदेशै, पुण्यफल का लाभ होय है, सो द्रव्यकथा जानना। १। ऊर्ध्व, मध्य, पाताल लोकविषैं तहां ऊर्ध्वलोक विषैं कल्पवासी देवन के सोलह स्वर्ग तिनमें देवन की आयु काय सुख की चर्चा करना तथा नवग्रैवेयक, नवअनुत्तर, पंचपंचोत्तर—इन आदिन का आयु काय सुख का कथनादिक, ऊर्ध्वलोक का व्याख्यान सो ऊर्ध्वलोक कथा है। मध्यलोक विषैं असंख्यात द्वीप समुद्र पच्चीस कोड़ाकोड़ी मध्य पल्य प्रमाण तिनकी रचना तथा अढ़ाई द्वीप, पंचमेरु एक-एक मेरुसम्बन्धी बत्तीस-बत्तीस विदेह, अरु भरत ऐरावत क्षेत्र इनका वर्णन और चौंतीस-चौंतीस विजयार्द्ध पर्वत ताकी दोय श्रेणि, तहाँ विद्याधरन की एक सौ दस नगरीन का कथन, षट्कुलाचल षट्हृदयनतें निकसी चौदह महानदी, जम्बू शालमली वृक्ष आदि एक-एक मेरु सम्बन्धी रचना का कथन तथा पुष्कर द्वीपके मध्य भागमें कनकमई मानुषोत्तर पर्वत का

कथन, ताकरि मनुष्य लोक की हद है। तहाँ तिष्ठते चारचों तरफ चारि जिनमन्दिर तिनका कथन तथा अष्टम द्वीप नन्दीश्वर ताविषैं चारि अञ्जनगिरि, एक-एक अञ्जनगिरि सम्बन्धी चारि-चारि बावड़ी, तिन बावड़ीनि के मध्यभाग सोलह दधिगिरि पर्वत तथा बत्तीस रतिकर पर्वत सो यह पर्वत नीचै तो अनेक प्रकार रतनमई विचित्र शोभा को धरैं हैं और ऊपरि के शिखर लाल हैं तातैं रतिकर नाम कहा है। ऐसे ही नीचै तौ अनेक रत्नमयी अरु तिनके शिखर ऊपरतें श्याम सो अञ्जनगिरि हैं तथा एक-एक बावड़ी सम्बन्धी च्यारि-च्यारि बनन का कथन तथा इन पर्वतन में तिष्ठते बावन चैत्यालय तिनका कथन है तथा ग्यारहवें कुण्डलद्वीप के मध्यभाग विषैं कुण्डलगिरि पर्वत है तहाँ तिष्ठते च्यारि जिनमन्दिर हैं तिनका कथन तथा असंख्यातेद्वीपन में तिष्ठते असंख्याते व्यन्तरदेवन के नगरन की रचना, रुचकगिरि तेरहमां द्वीप विषैं मध्यभाग तिष्ठता रुचकगिरि पर्वत तापै च्यारि जिनमन्दिर का कथन, इन आदिक और असंख्यात द्वीप के अन्त में स्वयम्भूरमण समुद्र चारि कोन्या क्षेत्र तिन विषैं तिष्ठते उत्कृष्ट अवगाहनाधारी तिर्यञ्च तिनका कथन और असंख्याते द्वीपन में तिष्ठते एक अल्प आयु कर्म के धरनहारे तिर्यञ्च तिनका कथन इन आदिक अनेक रचना सम्बन्धी कथन सहित सो मध्यलोक का कथन। सो याकी परस्पर चर्चा करनी सो महापुण्यफल की दाता है। याकों धर्मकथा कहिये और अधोलोक विषैं दस जाति के भवनवासी देवन के भवन तिनके प्रमाण का कथन, देवन की आयुकाय का कथन। तिनतें नीचे पंकभागमैं प्रथम नरक, तिनकी आयुकाय का कथन तथा नीचे षट् नारकी और जिनकी आयु-काय-दुःख का कथन इत्यादिक तीन लोक का कथन तथा तीन लोक के शिखर पर विराजते अष्ट कर्मरजरहित शुद्धात्मा ज्योतिस्वरूप केवलज्ञान के धारी अनन्त सुख के धनी अनन्त सिद्ध भगवान, तिन सर्व सिद्ध परमात्मा भगवान को हमारा बारम्बार नमस्कार करि तिनकी अवगाहना का कथन तथा ऐसे सामान्य रीति से तीनलोक का पुरुषाकार डेढ़मृदङ्गाकार तीनसौ तेतालिस राजू का घनाकार क्षेत्र का कथन। सो ऐसे क्षेत्र का कथन है। इस प्रकार तीन लोक की परस्पर चर्चा करै सो धर्मचरचा जानना और ऐसे तीन लोक का कथन जा शास्त्र में होय, तो धर्मफलदायक शास्त्र है।

तीन काल का कथन सो अनन्त अतीतकाल व्यतीत भया, वर्तमानकाल का एक समय और अतीतकाल

तैं अनन्तगुणा अनागतकाल है तथा उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल, तिन कालन की फिरन को लिये प्रथम दूजे आदिक षट्कालविषैं आयु काय सुख दुःख का कथन की चर्चा इत्यादिक तीनिकाल का कथन है। सो या कथन की परस्पर चर्चा वार्ता करनी सो कालकथा पुण्यदायक है। जिन शास्त्रविषैं इन तीनि का कथन होय सो धर्मशास्त्र है। याको पूजै पढ़ै सुनैं उपदेशै पुण्यफल होय।

आगे भावकथन—सो तहाँ पंचभाव जो उपशमभाव, क्षयोपशमभाव, औदयिकभाव, क्षायिकभाव और पारिणामिकभाव। तहाँ उपशम भाव ताको कहिये जो कर्म के उपशमतें होय। ताके दोय भेद हैं उपशम-सम्यक्त्व, उपशमचारित्र। सो यह दोऊ भाव अपने घातकर्म उपशमाय प्रगट होंवें सो उपशम भाव हैं और तिस कर्म के केते अंश तो उदयभाव रूपहोंय, केते अंश उपशम भये तथा क्षय भये होंय। सो तिनकरि उदय भया जो रस ता रस प्रकट होते, आतमा के भाव जैसे होंय, सो क्षयोपशम भाव कहिये। तिनके भेद अठारह कुज्ञान तीनि, सुज्ञान चार, दर्शन तीनि, क्षयोपशमसम्यक्त्व, क्षयोपशमचारित्र, देशसंयम, पंच अन्तराय का क्षयोपशम ऐसे अष्टादश हैं और तिन गुणन के प्रतिपक्षी कर्म सर्वथा नाश भये होय सो क्षायिकगुण है। सो क्षायिक भाव के नव भेद हैं। क्षायिकज्ञान, क्षायिकदर्शन, क्षायिकचारित्र, क्षायिकसम्यक्त्व, पंचलब्धि—ए नव हैं और जे भाव कर्म के उदय तैं होंय सो औदयिक भाव हैं। ताके भेद इक्कीस—कषाय चारि, गति चारि, लेश्या षट्, वेद तीन, मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम असिद्धत्व और कर्म सहाय रहित स्वयं सिद्ध आतमा के भाव सो पारिणामिक भाव हैं। ताके भेद तीन—जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व—ये सर्व मिलि मूल भाव पाँच और उत्तरभाव तिरेपन जानना। सो इन पंच भावन के मूल भेद अनेक भाविन का जामें कथन होय, सो धर्मशास्त्र है। परस्पर भावन की चर्चा सो भावकथा है। जहाँतें यतीश्वर कर्मनाश शिव गये सो सिद्धक्षेत्र जैसे गिरनारजी, सम्मेदशिखरजी, शत्रुञ्जयजी, सोनागिरिजी, मांगीतुङ्गीजी, गजपंथाजी इन आदि सिद्धक्षेत्रन का जामें कथन होय सो धर्मशास्त्र, भले फल का दाता जानना और इन सिद्धक्षेत्रन की परस्पर चर्चा कीजिये, सो धर्मकथा है तथा पंचकल्याणकन के जे क्षेत्र, तिनकी कथा तथा इन आदि जे धर्मस्थान की कथा करनी, सो तीर्थ कथा होय आगे जहाँ जीव-पुद्गलादि द्रव्य तथा जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष—इन सप्त तत्त्व का तथा इनमें पुण्य

और पाप मिलाये नव पदार्थन का कथन जिस शास्त्र विषैं होइ, सो धर्मशास्त्र है। इन सप्त तत्त्वनि की विशेष भेदाभेद चर्चा करनी सो फ़ल कथा है। आगे अनेक दृष्टान्त, जुगति व नाना प्रकार नयन करि मिथ्यात्व नाश करना, धर्म साधक पापकर्म नाशक अनेक अलङ्कारन का कथन जिन शास्त्रन में होय सो धर्मशास्त्र हैं। अपनी बुद्धि करि धर्म स्थापन कूं, पापमग छेदन कूं, दृष्टान्त जुगति देय प्रश्न-उत्तर करि चर्चा करना, सो प्रस्ताव कथा है। ऐसे कहे सात भेद धर्मकथा के सो इन सात कथान का जा शास्त्र में कथन होय, सो धर्मशास्त्र कहिये। जहाँ इन सात कथा रहित कथन सहित शास्त्र हो सो मिथ्यात्वमयी शास्त्र सामान्य जानि तजना योग्य है। तातैं शुभ सात कथा हैं सो इन बिना, विषयन के कारण, हिंसा के बंधावनहारे, मिथ्यासरधान के करावनहारे जो शास्त्र हैं सो लोक कथामयी विकथारूप हैं। भो भवि हो, इस शास्त्र विषैं सातौं ही कथान का रहसि पाइये है। सर्व प्रकार धर्मकथा धर्मफल दाता है तातें धर्मात्मा जीवनकों इस ग्रन्थ का अध्ययन करना योग्य है। ३। इति श्री सुदृष्टि तरंगिणी नाम ग्रन्थ विषैं इष्टदेव नमस्कारपूर्वक, ग्रन्थ करवे की प्रतिज्ञाकों लिये, अपनी आलोचना सहित सम्यक्त्वके पच्चीस दोष कथन सहित आदि मंगल षट् भेद लिये, सात भेद धर्मकथादिक वर्णन करनेवाला, तीसरा पर्व पूर्ण भया। ३।

आगे कहिये है—जो मोक्षमहल के चढ़वेकों सोपान तथा शिवरूपी कल्पवृक्ष ताका मूल ऐसा सम्यग्दर्शन ताकी उत्पत्तिकों कारण तत्त्व-भेद है। सो जिन देव करि कहे जीवतत्त्व, अजीवतत्त्व इन दोय भेद मई है। सो एक तो चेतना लक्षणकों लिये देखने-जानने हारे जीवतत्त्व हैं। एक अजीवतत्त्व, सो जड़ हैं सो चेतना गुण का धारक आतमतत्त्वज्ञानी के मोण होय है। सो तिनकी उत्पत्ति कहिये है। जो उत्तम तीनिकुल के उपजे सुआचारी बालक, तिनको तिनके माता-पिता महाधर्मी, सो अपने कुल के आचार धर्मपरम्पराय चलावेकों, अरु पुत्र को इहाँ जस अरु परभव सुखी होनेकों, पुत्र पर स्नेह दृष्टि करि, पुत्र को पाँच-सात वर्ष की अवस्थातें विद्या का अभ्यास करावने कूं गृहस्थाचार्यन पर पढ़ावें हैं। कैसे हैं गृहस्थाचार्य, महाधर्म के धारी सर्व धर्मकला विषैं प्रवीण हैं, अनेक शस्त्र-शास्त्र विद्या के वेत्ता हैं, महादयालु हैं, कोमल हैं, सौम्यमूर्ति, शुभाचारी हैं। ऐसे उत्तमगुण सहित, निर्मलचित्त, महापंडित, तिनपर भले श्रावकन के बालक पठन करैं हैं। सो वह सुबुद्धि,

गुरु के दिये अक्षर महाविनय तैं अङ्गीकार करै है। सो गृहस्थाचार्य या शिष्य कूं शुभलक्षणी विनयवात्सल्यादि गुण सहित जानि, या बालक की अनेक प्रकार परीक्षा करि, शुभ चेष्टा जानि, याकों इस भव-परभव कल्याण-कारी सुख की करणहारी उत्तम विद्या पढ़ावैं हैं। सो प्रथम तौ धर्मशास्त्र, पीछे कर्मशास्त्रन का अभ्यास करावैं हैं तहाँ धर्मशास्त्र में प्रथम तौ प्रथमानुयोग पढ़ावैं। ताकरि पुण्य-पाप के फलकों जानि, पापकर्मन का फल नरक-पशून के महातीव्र दुख जानि, पाप तैं भय खाय करि, नहीं करना वांछै। पुण्य का फल मनुष्य में चक्री कामदेव, नारायण बलभद्र, मंडलेश्वरादि महान राजान के वांछित भोग, अर देवन के उत्तम सुख इत्यादि फला फल जानि, पुण्य के उपायवे का उद्यम करै। ऐसे पुण्य-पाप का स्वभाव जनायवेकौं प्रथमानुयोग का अभ्यास पहिले ही करावें हैं। पीछे करणानुयोग पढ़ावें। तातें तीनि लोक का स्वरूप-आकार-स्वभाव जानैं। ताके ज्ञान होतें भोरे जीवन का सा भ्रम नांही उपजै, कि—"जो यह लोक काहू का बनाया है। वह लोक का कर्त्ता चाहे तौ लोक समेटि लेय, तौ संसार का अभाव होय, शून्यता होय जाय। तातें यह लोक कृत्रिम है।" ऐसे कोई एक भोरेजीव बालकवत कहै हैं सो तिनके वचन सुन के करणानुयोग के जाननेहारे को भ्रम नहीं उपजै। अपने सांचे ज्ञान की चेष्टातें लोक स्वयंसिद्ध जानैं। तातें करणानुयोग पढ़ावें। पीछे चरणानुयोग पढ़ावें। ताकर मुनि-श्रावकन का आचार जानैं। मुनि का निर्दोष भोजन, चालना, बोलना, बैठना आदि यति का आचार जानैं तथा श्रावकन का खाना-पीवनादि योग्य-अयोग्य आचार, धर्म सेवनादि क्रिया जानैं। तातैं अपने ऊँच कुल के ऊँच धर्म, ऊँच आचार कूं नाहीं तजैं। तातें आप म्लेक्ष, अभक्ष्य के खायवे हारन की संगतितें कुआचार नहीं ग्रहैं। तातें चरणानुयोग पढ़ावें। पीछें गुरु पै द्रव्यानुयोग पढ़ैं। ताकरि जीव अरु अजीव का भेद जानैं। इन जीव-अजीव के द्रव्य-गुण पर्यायकों जानैं। तातें संसार दशा आपतें भिन्न जानैं। अपने तनतें भी जड़त्व भाव जानि एकत्व तजैं। तन-धन कुटुम्बादि का वियोग होतें अज्ञानी मोही जीवन की नांई दुखी नहीं होंय, तातैं द्रव्यानुयोग पढ़ावैं। ऐसे धर्मशास्त्र का रहस्य जनाय धर्मसम्बन्धी भरम खोवैं। ताके प्रसाद मिथ्या धर्म नहीं रुचै। सद्धर्म-अङ्गीकार करि परभव सुधारें। पीछे कर्मशास्त्र पढ़ावें, तहाँ ज्योतिष-निमित्तशास्त्र, वैदिक, चित्रकला, संगीतकला, शिलपशास्त्र, कोकशास्त्र, पिङ्गलशास्त्र, छन्दशास्त्र, रतनपरीक्षा, धातुपरीक्षा इन आदि अनेक देश-

षा, अनेक देशन के अक्षरन की स्थापना आदि अनेक शास्त्र-कलादिक पढ़ाय प्रवीण करैं। ताके जोग तैं इस लोक विषैं श्रेष्ठता पावैं, सर्व उत्तमलोकन कर पूज्यपद पावै पाखण्डी पापीन करि ठग्या न जाय। सर्वकला-पूरण सुखी होय तातैं अनेक कर्मकला सिखावैं। ऐसे गुरु की दया करि, पाई जो विद्यानिधि, ताकरि उत्तम तीनि कुल के बालक, अपनी बुद्धि को निर्मल करि, सर्वसंसार दशा का वेत्ता होय। सो गुरुप्रसाद के जोग तें पाया जो जीव अजीव तत्त्व का भेद, तातैं निर्मल बुद्धि परद्रव्यन तैं भिन्नचित्तकरि जड़पदार्थ शरीरादि तिनमें निर्ममत्वता करिकैं, कर्मबन्धन तैं छूटवे की है इच्छा जाकें, सो जामनमरण दुःखनतें भय खाय, दीक्षा धरैं तथा यदि दीक्षा को समरथ नहीं होंय तौ अशुभोपयोगी पापारम्भ का फल दुःख जानि, पापकार्य मैं जतन तैं दयामई भाव सहित प्रवर्तें। श्रावकधर्म का साधन करता गृहस्थ ही रहै सो चारित्र मोह के हृदय तें कुटुम्ब शरीरादिक के पोषवेकों तथा अपनी मन इन्द्रिय वशीभूत नहीं भई तिनके पोषनकों तथा अपने पदस्थप्रमाण कषायनि के जोगतें मान-बड़ाई पोषवेकों, अपने गुरु का दिया ज्ञान ताको प्रगट कर जगतविषैं जस रूपी बेल बधाय, न्याय-मार्ग सहित अपनी बुद्धि बलतें धन का उपार्जन करै। ताकरि अपने तन, कुटुम्ब की रक्षा करै। सर्व कुटुम्ब लोकन तैं यथायोग्य विनयवचन बोल, सर्वकौं हित उपजावे। आपतें गुरुजनतें, माता-पिता होंय तिनतैं, नम्रता-पूर्ण वचन सुन्दरविनय सहित प्रकाशिकैं तिनकौं सुखी करैं। अरु आपतें छोटे होंय तिनतें महा हित-मित, अमृत समान कोमल वचन बोलिकें हँस मुख तैं सौम्यदृष्टि करि देखि तिनकूं पुचकार सुखी करैं। ऐसे यथायोग्य सम्भाषण कर, सबको साता करैं। यह तत्त्ववेत्ता सदैव राज-सम्पदादि भोगता ऐसा विचार चित्तविषैं किया करै, जो मैं अनादि काल तैं संसार भ्रमण करता नरकादिक कुगतिन का पापफल भोग दुःखी भया। कबहूं शुभपरिणति के फलकर पुण्य तैं देवादि शुभगति के इन्द्रियजनित सुख मनवांछित भोगे। परन्तु इस जीव की भोगतृष्णा नहीं मिटी, संसार भ्रमण नहीं मिटा। मैं जन्म-मरण के दुःखन तैं कब छूटूंगा ? धन्य हैं मुनि तीर्थङ्कर देव, जिनने राज्यसम्पदा तजि, सिद्ध लोक पाया। सो मैं भी अब भला अवसर पाया है। सो ऐसा कार्य करूँ जातें संसार का भ्रमण छूटै। सदव ऐसा उपाय विचारै। दीक्षा के द्रव्य क्षेत्र काल भावन की एकता का निमित्त न मिले तौ धर्मात्मा श्रावक पुत्र, अपनी बुद्धि बलतैं कमलसमान अलिप्त भया गृह में रहै। सो सर्वगृहपालवेकूं

उद्यम करे। औरन कूं मोही-सा दीखै। अनेक तन क्रिया वचन क्रिया करि सर्व को सन्तोष करि सुख उपजावे। परन्तु यह धर्मातमा गुरु के पास देखा जो प्रथमानुयोग का रहस्य सो पापारम्भ का फल खोटा जानि गृहकार्यन में रंजायमान न होय। यह तत्ववेत्ता उदासीन वृत्ति का धारणहारा, पापारम्भ रहित भया, अपने जुग भव सुधारता अपने शुद्धधर्म की रक्षा करता, विचक्षण, अपने घर के पुत्र-कलत्र-कुटुम्बादिक की रक्षा करै। ऐसे जे भव्यप्राणी गृह में रहैं ते परभव में सुखी होंय। जे बालक अवस्थाही के अज्ञानी, कुआचारी, पाप भयरहित, शरीर भोगन में मोहित, इन्द्रिय सुख के लोभी, तन-धन-सम्पदा शाश्वती जाननहारा धर्मभावना रहित हैं, ते जीव गृहारम्भ में अदयासहित प्रवर्त पापबन्धकरि कुगतिविषैं दुःखी होय हैं। तातैं सुबुद्धि तीनि कुल के उपजे बालकनकूं अपने सुखनिमित्त, बालपने ही तैं विद्या पढ़ावना योग्य है। जो धर्मातमा विद्यावान पुत्र होई तौ माता-पिता को सुखकारी होय। जो मूर्ख, अज्ञानी, पापाचारी, अविनीति पुत्र होय तो माता-पितान को दुखकारी होय। ऐसा जानि धर्मातमा विवेकी पुरुष होय हैं सो अपने पुत्रनकूं धर्मशास्त्रनि विषैं प्रवेश करावैं हैं। जे पण्डित धर्मात्मा, धर्मशास्त्रन का अभ्यास करैं सो धर्मशास्त्र के अभ्यास तैं सम्यक्‌दृष्टि का लाभ होय हैं। सम्यक्त्व के होतै, जीव-अजीव तत्व का जानपना होय है। सो जीवतत्व तौ देखने-जानने रूप है, अरु अजीवतत्व के पांच भेद हैं। ए पांचही जड़ हैं, ज्ञानरहित हैं। ऐसे जीव-अजीव तत्व, जिनदेव ने प्ररूपे हैं। तैसेही सम्यग्दृष्टि श्रद्धान द्वारा धारण करि, पदार्थन में हेय-उपादेय करै हैं। ऐसा विचारै हैं जो जिनदेव ने जीवाजीव तत्व भेद कहे हैं सो प्रमाण हैं, सत्य हैं। ऐसा दृढ़ श्रद्धान सो व्यवहार सम्यक्त्व है। दर्शन मोहनीय की तीनि, अनन्तानुबन्धी का चारि, इन सात प्रकृतिन का उपशम होना तथा क्षय होना, ऐसे सात प्रकृतिन के क्षय तथा उपशम होतें प्रगटा जो आत्मा का अन्तरङ्ग गुण पर्यायसहित प्रत्येक अनुभव को लिये शुभज्ञान, तातैं षट्द्रव्यन में ऐसा भाव जानता भया जो जीव, अजीव तत्व कर दोय भेद तत्व हैं, सो पंचद्रव्य तो ज्ञान-रहित अचेतन हैं, तिनके गुण भी अचेतन हैं, पर्याय भी अचेतन हैं। एक जीवतत्व चेतन है ताके गुण पर्याय भी चेतन देखने-जानने हारे हैं, सो ऐसे जीवतत्व भी अनन्त हैं। सो सर्व जीव अपनी-अपनी सत्ता को भिन्न-भिन्न लिये हैं। कोऊ जीव काहूतं मिलता नहीं, सर्व की सत्ता जुदी-जुदी हैं और सर्व के गुण-पर्याय भी भिन्न-भिन्न सत्ता को लिये हैं, कोऊ के गुण-पर्याय कौऊतैं मिलते नांही ऐसे सर्व संसारी

जीव अनन्ते पाइये हैं। तिन विषैं मैं एक सत्तागुणपर्याय का धारी आतमा, सो अपने शुभाशुभ कर्मन का फल भोगनहारा अरु अपने भावन अनुसार शुभाशुभ कर्मबन्ध का करनेहारा, एक मैं ही हूँ। सो जब मैं ही रागादिक उपाधि से छूटूं, तौ कर्मबन्धन नाश करि, सिद्धलोक का वासी होहुं। ऐसा आतमा के भेदा-भेद रूप अनुभवविषैं जाके दृढ़ सरधान होय सो निश्चयसम्यक्त्व है। सो मुक्ति-स्त्री के विवाहकों प्रथम सगाई समानि है। ऐसे कहे जे व्यवहार अरु निश्चयसम्यक्त्व, सो तत्वसरधान होतें होय हैं। तातें जिनेन्द्रदेव ने प्ररूपे जो जीव-अजीव तत्व, तिन जीवाजीवतत्वन का दृढ़ यथावत् सरधान, सो भव्यन कूं करना योग्य है। यहाँ प्रश्न, जीव-अजीव ए दोय तत्व तो और भी अनेक मतन में कहे हैं। तुमही अपने जिनदेव के भाषें कहने की महिमा काहेकों कहो हो? यामें महत्ता का भई? ताका समाधान—हे भाई! तैंने कही सो प्रमाण है। परन्तु सर्वमतनिविषैं जीवा-जीवतत्व भेद कहा है सो जिनदेव के कहनेविषैं अरु अन्यमतन के कहने विषैं बड़ा अन्तर है। जैसे बालक के वचन अरु बड़े पण्डित पुरुषन के वचन में अन्तर, एता है। जो बालक समानि ज्ञानी भोरे जीव के वचन प्रतीत-रहित हैं और बड़े पण्डित पुरुष के वचन प्रतीत सहित होय हैं। तैसे ही सामान्य ज्ञान के धारी तुच्छबुद्धि अज्ञानी के वचनविषैं अरु अन्तर्यामी सर्वज्ञ केवली के वचनविषैं बड़ा अन्तर है। तातें जिनदेव के कहे जीवाजीवतत्व हैं सो सत्य हैं। तुच्छज्ञानी के कहे तत्त्वभेद प्रमाण नांही। तातें हे भाई! जिनदेव करि कहे तत्वन की महत्ता रहैगी देखो जो सामान्य ज्ञानी के वचन तौ असत्य हैं और केवलज्ञानी सर्वज्ञ के वचन सत्य हैं तातें प्रमाण हैं। यातैं ताका धारण भये तेरा भी भ्रम जाय। ज्ञान की प्राप्ति होय और सम्यक्त्व का लाभ होय। तातें तू धर्मार्थी है सो हे भव्य! तेरे शुभफल के मिलाप की इच्छा होई मिथ्यात्व फन्द तें छुटने की वांछा होई तौ भले प्रकार धारना।

भो भव्य तू देखि जो और मतन में तत्वन का स्वरूप कहा है, सो जैसे अन्धन का हाथी देखना। एक-एक अङ्ग हस्ती का कह के, हस्ती के आकार का अभाव करना। तैसे ही भोरे जीवन का तत्त्व-भेद कहना है। जो तत्व का एक अङ्ग लेयकैं प्रकाशैं हैं सो तत्व का अभाव अतत्वरूप कहैं हैं। जैसे छै अन्धोंने एक हस्ती आवता सुना। तब अन्धों ने कही आपन ने हस्ती नहीं देखा, सो एक हस्ती आवै है ताहि लिपटि जावो। अरु ताके तनपै हाथ फेरिये ज्यों सर्व हाथी जानिये। ऐसा विचारिकैं उस ही हस्तीकूं नजीक आया जान, हस्ती पकड़ा।

सो छहोंही अन्धों ने षट् अङ्ग हस्ती के पकड़े। किसी ने तौ पांव पकड़ा, किसी ने कान, किसी ने दांत, किसी ने सूंड़ि, किसी ने पूंछ, किसी ने पेट इत्यादिक एक-एक अङ्ग पकड़ तापै अपना हाथ फेरा सो अपना सरधान ऐसा किया जो हाथा ऐसा होय है! अपने मन में भिन्न-भिन्न कल्पना करि, हस्ती छोड़ा। सो पीछे सर्व अन्धे आपस में कहते भये। एक अन्धा बोला हे भाई! हमने हस्ती देखा, तब पांव पकड़नेहारा कहै जो हस्ती थम्भ-सा होय है हमने भले प्रकार देखा। तब कान पकड़नेहारे ने कही तू असत्य बोला, हस्ती सूप-सा होय है, हमने नीके देखा है। तब दांत पकड़नेहारे ने कही तैं भी नहीं देखा हस्ती मूसल-सा होय है। तब सूंड़ पकड़नेहारे ने कही तैं भी नहीं देख्या, हस्ती दगली की बांह समान होय है। तब पेट पकड़नेहारा बोला, जो तूं भी असत्य बोला है हस्ती छैने (कंडे) के बिठा समानि होय है। तब पूंछ पकड़नेहारा बोल्या रे भाई! तुम काहे को वृथा कहो हो, हमने हाथी भले प्रकार देख्या, हस्ती सोटि समान होय है। ऐसे इन षट् ही अन्धन में विवाद होय है, सो सर्व झूठ है। एक अङ्ग-सा हस्ती नांहीं। हस्ती का अङ्ग देख्या सो एक अङ्ग कूं हस्ती कहैं हैं। नेत्र होय तो सब हस्ती का स्वरूप दीखे, सो नेत्र नाहीं। तातैं इन अन्धन का विवाद मिटता नांही। अपन-अपन अङ्ग कूं सबही हठतें कहैं हैं। तैसे ही तत्त्वज्ञान का स्वरूप अतत्त्वरूप करि कहै हैं। सो ही स्वरूप तोकों सामान्यपनैं समझाय कर कहैं हैं। सो हे भव्य! तू नीके करि धारणा करियो। जीवात्मा का देखो, कोई मतवारे तौ सब संसारीकैं आकार मानें हैं तहाँ देव, नरक, पशु, मनुष्य तिन अनन्ते-असंख्याते शरीर में एक आतमा मानैं हैं। अरु कोई एक ज्योतिस्वरूप परमब्रह्म है ताका अंश सर्व जगत् के घट-घट विषैं कंकरी-पथरी, जल-थल, पवन-पानी सर्व जगह व्याप रहा है। जहाँ-तहाँ उस ही एक परमब्रह्म का रूप फैल रहा है। जो कुछ करै है सो वह ही करै है, ऐसा कर्त्ता हर्त्ता है; केई तौ ऐसा ही जानि दृढ़ करि रहैं हैं और कोऊ आतमा को क्षण भंगुर मानैं कि शरीर में आतमा छिन-छिन और-और आवैं हैं। कोई कर्तावादी कहैं कि जीव को कोई उपजावै है। ऐसी कहैं हैं कि भगवान नवीन जीव बनाय-बनाय संसार में धरता जाय है। वही चाहै तब मारै है। कोई एक मतवाले जीव का, अभाव ही मानैं हैं। केई मतवाले मोक्ष आतमा पीछे फेरि संसार विषैं अवतार मानैं हैं। केई मतवाले मोक्ष विषैं आतमा कूं ज्ञानरहित मानैं हैं। केई अज्ञानवादी ऐसा कहैं हैं जो आतमा में परवस्तु के जानने का ज्ञान है,

सो ही उपाधि है। जब ज्ञान मिटेगा, तब मोक्ष होगा। कोई स्थिरवादी ऐसा मानें है जो देव मरै तो देव ही होय। मनुष्य मरै तो मनुष्य ही होय। पशु मरै तो पशु ही होय। नारकी मरै तो नारकी ही उपजै। स्त्री मरै तो स्त्री ही उपजै। रंक मरै तो रंक ही उपजै। राव मरै तो राव ही उपजै। ऐसे अनेक मतवाले जीवतत्त्व का स्वरूप अपनी-अपनी इच्छा प्रमाण बतावैं हैं। कोई मतवाले अजीवतत्त्व कों भी और का और ही कहैं। सो कोई मतवाले, कालद्रव्य जड़ है ताको चैतन्य रूप मानैं हैं। ऐसा कहैं हैं जो यह कालद्रव्य है सो यम है। कोई बालबुद्धि मेघ अचेतन कूं देवों का नाथ इन्द्र मानैं हैं। ऐसे इन आदि जीव-अजीव तत्त्वन का भेद अन्यमतनविषैं और ही कहैं हैं। जैसे उन्मत्त की नांई विपरीत भेद कहैं। सो हे भवि! तू सुनि। एकाग्रचित्तकरि तूं इस सम्वाद को धारण करि, ज्यों अनेक नय का ज्ञान बढ़ै, संशय मिटै। तातैं अब सबका भ्रम नाशनेकों जिनमत अनुसार केवलज्ञानधारी सर्वज्ञभगवान-भाषैं तत्त्वभेद ताही प्रमाण कहिये है। ताके जानेसरधान किये सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान होय और अनेक धर्मार्थी जीवन का भ्रम जाय। इहां प्रश्न—तुमने ऐसा समुच्चय वचन क्यों न कह्या जो वाके सुने सर्व का भ्रम जाय। ऐसा ही क्यों कह्या जो धर्मार्थी जीवन का भ्रम जाय। ताका समाधान—जाका भ्रम जाता जानिये, ताका ही कथन करिये और जाका भ्रम जाता ही नांही, तौ ताका कथन काहे कों करिये। जैसे सूरज के उदै सर्व संसार का अन्धकार जाय किन्तु जे पर्वतन की भारी गुफा हैं तिनका अन्धकार नांहीं जाय। तौ ऐसा कथन कैसे कहैं, जो गुफान का भी अन्धकार जाय। तातैं जाका भ्रम जाता जानिये, ताही का कथन इहाँ कहा है। तातैं जे धर्मात्मा निकटभव्य शान्त-स्वभावी हैं ते तौ पापफल नरकादि दुःख जानि पापमार्ग तैं उदास होय, पापकूं तजैं। धर्म का फल स्वर्गादिक परम्पराय मोक्ष का सुखदाता जानि, धर्म को सेवैं तो याका चित्त जिनदेव की आज्ञारूप होय प्रवर्तै। अरु जिन-आज्ञा की प्रतीत भये जीव-अजीव तत्त्व का निर्णय होय, जाकरि सम्यग्दृष्टि होय। ता सम्यक्त्व के होतें इस धर्मार्थी का भरम भी नाश होय जाय है। जे धर्मार्थी नहीं हैं ते पापबुद्धि तें उदास होते नांहीं। धर्म के फल की इच्छा नाहीं। ऐसे भ्रमबुद्धि का भ्रम कैसे जावे और ऐसे भ्रमबुद्धि अनेक धर्म के अङ्गन की सेवा करैं, नाना प्रकार तप करैं। ये अनेक शास्त्र पढ़ैं-होंय और भली-भली चर्चा धर्मकथा आदि होय तौ भी भ्रमबुद्धि कूं धर्म का लाभ नहीं होय। वह मोक्षमार्ग का भूल्या, उलटेपंथ

का जानेहारा, मोक्ष स्थान नहीं पावें। ज्यों-ज्यों ए भ्रमबुद्धि घने-तपकरै, घने-घने शास्त्रों का पाठ करै त्यौं-त्यौं मोक्षमार्गतें घना-घना अन्तर होता जाय। जैसे कोई द्वीपान्तर का जानेहारा पंथी; राह भूल, उलटी राह लागा। ताको जाना तौ था पूर्व दिशा को, अरु मार्ग लागा पश्चिम दिशा को। सो यह मार्ग भूल्या, जेता-जेता रोज चलै है त्यौं-त्यौं पूर्व दिशा तैं दूर-दूर होता जाय है। तैसे ही यह भ्रमबुद्धि ऐसा जानै है जो मैं भले पंथ लागा हूँ। ऐसा जानि यह स्वेछाचारी, काहू का उपदेश मानता नांही। तातैं इस धर्म-भावना-रहित कों जिन-आज्ञा का उपदेश गुणकारी नांहीं। इस वास्ते याके भ्रम जाने की नहीं कहैं। ऐसे तेरे प्रश्न का उत्तर जानना—जो धर्मार्थी का भ्रम जाय और धर्मभावनारहित मिथ्यात्वप्राणी का भ्रम नांही जाय है। जातैं धर्मार्थी का भ्रम जाय ताके निमित्त जो धर्म धुरन्धर, धर्म के धारी, परम्पराय सांचे धर्म का प्रकाश वांछन हारे, मिथ्यात्वगिरिकौं वज्र समानि ऐसे सुदृष्टि आचार्य कहैं हैं—कैसे हैं आचार्य, जिनेन्द्रदेव की आज्ञाप्रमाण धर्मप्रवृत्ति के करनहारे, भेदज्ञानी, सम्यग्दृष्टि, जिनमत के दास, अनेकान्त मत के समझनेहारे, अनेक नय के ज्ञाता, स्याद्वादी, तत्त्वन का स्वरूप कहैं हैं। हे एकान्त मत के धारी सुबुद्धि पण्डित हो! तुमतें मैं परमार्थ के निमित्त 'जिन' का भाष्या अनेकान्त धर्म, ताको रहसि लेय कहूँ हूँ। जो हे एकान्त मत के धारी! तूं ऐसा मानै है, कि सर्व संसारी जीवन के अनेक शरीर हैं। तिन अनेक शरीर में तू एकान्त आतमा मानै है। तू जो ऐसे कहै है कि एक परमात्मा है ताकी ही शक्ति सर्व जगत् विषैं घट-घट, जल-थल, कंकरी-पथरी, पवन-पानी आदि सर्वव्यापिनी है। ऐसा भ्रम तेरे पाईये है। सो हे भव्यात्मा! तू अब भले प्रकार विचार देखि। जो परमात्मा तौ निर्दोष-निर्मल है और सर्व संसारी जीव राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ रूप मलदोष सहित महामलिन हैं। सो हे सुबुद्धि! निर्मल परमात्मा की शक्ति मलिन, दोष सहित कैसे होय? और परमात्मा है सो तो महासुखी है। संसारी, सर्व ही राग, द्वेष, जन्म, मरण, क्षुधा, तृषा, वायु, पित्त, ज्वर, कुष्टादिक दुःख तिन करि रहित, सुख का समूह है। संसारी जीव सर्व ही हैं सो इष्टवियोग अनिष्टसंयोग के दुःख, तनदुःख, मनदुःख, धनदुःख इत्यादिक अनेक दुःखसागर विषैं डूब रहै हैं सो भी हे भव्य! तू विचारि। जो महासुखी रोगरहित परमात्मा की शक्ति, दुःखमई कैसे संभवै? परमात्मा तो अविनाशी, निर्दोष जन्म-मरण रहित है तातैं परमात्मा की शक्ति होती तौ सर्व जीव भी निरोग,

निर्दोष अरु महासुखी होते। सर्व अविनाशी होते, निर्मल होते, जन्म-मरण रहित होते। जैसे अग्नि आप तापमई है तौ ताकी प्रभा जो शक्ति, सो भी तापमई है तथा जैसे दीपक आप प्रकाशरूप है तो ताकी प्रभा भी प्रकाशमई है। तातैं जैसी वस्तु होय तैसी ही ताकी शक्ति होइ। सो तो परमात्मा की शक्ति संसारी जीवनिविषैं एक भी नहीं दीखती है। हे भाई! तू देखि जो सर्व जीवनि विषैं परमात्मा की एक सत्ता तौ एक जीवकौं सुख होते सर्व ही जीव सुखी होते और एक दुखी होता तो सर्व जीव दुखी होते। एक जीव का नाश होते सर्व का नाश होता। जो हे भाई! सर्व की एक सत्ता होती तौ एक जीव की जो अवस्था होती सो सर्व की अवस्था होती। जैसे एक सूर्य की सत्तामई अनेक किरण अनेक घट-पट व पृथ्वीकों प्रकाशमान किये हैं। सो सूर्य और सूर्य की किरणें तिन दोऊन की एक सत्ता है। सो उस सूर्यसत्ता का प्रकाश पृथ्वीविषैं जेते घट-पट, कंकर-पत्थर, जल-थल, पवन-पानी, भली-बुरी वस्तु इत्यादिक सर्व पदार्थन को जाय प्रकाशमान किये है—सर्व को प्रकाशै है। सर्व मैं रविप्रभा एक-सी दीखे है। परन्तु जब सूर्य अस्त होय, तब ताके संग ही ताकी शक्ति रूप जो किरण सो भी अस्त होय। क्योंकि इनकी सत्ता एक है। तातैं सूर्य अस्त होतें किरण भी अस्त भई। अरु किरण अस्त होते सर्व पृथ्वी विषैं अन्धकार होय है। तैसे ही सर्व जीवनि की सत्ता एक होती तौ सुख-दुख एकै काल एक-सा सर्व जीवनिकूं होता। सो संसार विषैं तो कोई जीव सुखी है कोई जीव दुःखी है। कोई रंक है कोई राजा है। कोई रोगी है कोई निरोगी है। कोई दुःख तैं रुदन करै है कोई सुख तैं प्रफुल्लित है कोई कैसा दीखै। काहू के गर्मी है। कोई जीव मरि अन्य गति गया है। कोई आय उत्पन्न भया है। ऐसे सांसारिक दशा भिन्न-भिन्न देखिये है। तातैं हे एकान्तमत के धारणहारे भव्य! तूं भले प्रकार विचार। जो एक सत्ता सर्व जीवनि की कैसे सम्भवै? और सुनि—जो परमातमा सर्व जगत् विषैं व्यापक होय शुभाशुभ कर्म जीवन पै करावता तौ परमात्मा के पुण्य-पाप का बन्ध होता। तुम कहौगे परमात्मा के कर्म का बन्ध होता नहीं। तौ ए पाप-पुण्य का बन्ध कौन के भया? तुम कहोगे काहू को भी नहीं भया तौ पाप-पुण्य का फल वृथा हो गया। अर पाप-पुण्य का फल वृथा भये पापी जीव तौ पाप बधावेंगे-तजैंगे नांही। कहेंगे पाप का फल तो कोई को होता नांहीं। अरु कोई

पुण्य उपजावने को नाना दान, पूजा, तप, संयम काहे को करेगा ? क्योंकि पुण्य का फल तो होता नांही। तातैं ऐसे श्रद्धानतें तौ पृथ्वी में पाप बहुत फैलि जाय। शास्त्र-उपदेश, देहरे (मन्दिर) बनावना, तप, संयम, तीर्थ करना इत्यादिक धर्म के अङ्ग हैं सो ए सर्व मिट जायें। सो या वचन कहने विषैं प्रत्यक्ष में बड़ी विपरीतिता प्रगट होय और जे पापाचारी विषयाभिलाषी ते ऐसा कहेंगे जो हमारी शक्ति पाप करने की नाहीं जो कुछ करै है सो परमात्मा करै है। तो पाप की वृद्धि होयगी। जो तुम कहोगे कि ए पाप-पुण्य का फल संसारी जीवन को ही होय है तौ तुम्हारे परमातमा की एक सत्ता का क्या माहात्म्य रहा ? तातैं हे भाई ! तूं ऐसा भ्रम तजिकैं ऐसा दृढ़ करि कि जो जीव पुण्य-पाप करै ताका फल ते ही जीव सुख-दुःख स्वर्ग नरकादिक भोगवैं हैं। ऐसा श्रद्धान होतें यह जीव पाप का फल महादुःख जानि पाप तजै और जे जीव दान पूजा बड़े-बड़े दुद्धर तप संयम इन आदिक शुभ कर्म करैं सो ही जीव स्वर्गादिक विषैं नाना प्रकार इन्द्रियजन्य सुख भोगवैं हैं। तातैं भो-भो धर्माभिलाषी तूं ऐसा समझि 'जो करै सो पावै।'

अरु कोई भ्रमबुद्धि कहै सो हमको पाप कर्म का बन्ध होता नांहीं। सो इस अज्ञान आत्मा ने अपनी दृष्टि ससा (खरगोश) की-सी करलई है। जैसे ससा कान तैं अपने नेत्र मूंद सन्तोषी भया, तो क्या भया ? जब यह खेटकी (शिकारी) नहीं मारै तब ही सुखी होय। जैसे कोई एक शिकारी एक ससा के मारिवे को वन में गया सो ससा भागा। ताके पीछे शिकारी लागा। सो ससा के बूते भागा नहीं गया तब अपने कानन तैं नेत्र मूंद करि बैठ रहा। याने जानी शिकारी गया, मोकूं अब यहाँ कोई दीखता नहीं। ऐसा विचारि सुखी भया, तौ क्या भया ? पीछे तैं आय शिकारी ने ससा के शस्त्र मार्‍या। सो ससा अपनी मूर्खता के जोग मर्‍या। तैसे ही यह एकान्तमती भोरा जीव ऐसा विचारै है जो ए पाप मोकों नहीं लागै है, ऐसा जानि राजी होय पापभार लेह नरकादिक दुःख को प्राप्त भया चाहै है। सो पापाचारी, पराये धन हरणहारे, पराये मान हरनहारे, अपनी महत्ता बताय औरन कूं छलि अपने उपायन तें ताका मान खण्ड करि, अपने महत्त्व भाव का किंचित चमत्कार औरन कूं बताय कैं, अपनी बुद्धि की चतुरता करि माया जो दगाबाजी ताको विचारि, भोरे जीवन का मान हरि, धन हरि, बहकाय, कुपंथ लगाय, आपको धर्मी जानि ऐसा मानते भये जो हमको पाप नहीं लागै। ऐसे विचारि पाप-

बन्ध करि परभव कुगति के पात्र भये। तातैं भो भव्य ! तूं ऐसा जानि। ज्यौं संसार विषैं जीव अनन्त है तिनकी सत्ता भी भिन्न-भिन्न अनन्त है, ऐसा तू जानि। पापात्मा पाप तौ आप करै और फल औरन को लगावै तथा पाप लागै हो नांहीं ऐसा मानै। ऐसे जीव हैं तिनका मनोरथ ऐसा है जो पाप नहीं तजिये। ऐसे दुरात्मा पापारम्भी को कुगतिगामीं जानहु। जे धर्मी हैं ते पुण्य-पाप का फल आपको लागता जानि, पापतैं भयखाय, पाप तजि, शुभ उपजावैं हैं। तातैं भो भव्य ! जो ऐसे नहीं होती तौ बड़े-बड़े पण्डित दान, पूजा, तप, संयम, तीर्थ काहेकों करते। तातैं हे भव्य ! तूं ऐसा जानि, जो करै है सो ही पावै है। जगत् में भी ऐसा ही सर्वजन कहैं हैं "जो करैगा सो भोगैगा।" तातैं जाका किया कर्म ताही कूं लागै है। अरु जब ये आतमा पाप-पुण्य तैं रहित होय है तब परमात्मा होय है। ताहीकौं परब्रह्म कहिये ताहीकों भगवान कहिये। ऐसा दृढ़ जानि दयाभाव सहित प्रवर्तन योग्य है। जगत् जीव अनन्त हैं तिनकी सत्ता जुदी-जुदी है। अपने परिणामन के फल करि सुखी-दुखी होय हैं और जाके आप्त आगम पदार्थन विषैं सर्व जीवनि की एकही सत्ता मानैं हैं सो असत्य है, तजने योग्य है। ऐसे सर्व जगत् विषैं एक सत्ता सर्व जीवन की माननहारे ताकों समझाय, अतत्त्व श्रद्धान मिटाय, जिनभाषित तत्त्व का श्रद्धान कराया। सत्यधर्म के सन्मुख किया।

इति सर्व जीवनि की एक सत्ता माननेहारे एकान्तवादी का भ्रम निवारण सम्पूर्ण ॥ १ ॥

आगे क्षणिकमति का सम्बोधन कहिये है—केई क्षणिकमतवाले आतमा को क्षणभंगुर समय-समय एक शरीर विषैं अनेक आतमा क्षण-क्षण और-और उपजते मानैं हैं। ताकों समझाइये है। भो भव्यात्मा क्षणिकवादी मत के धरनहारे ! तू आतमा को क्षणिकस्थाई मानै है। एक शरीर विषैं क्षण-क्षण और-और आतमा आवते मानै है सो हमको यह बड़ा आश्चर्य है। तुम सरीखे बुद्धिमान ऐसे भूलो तो भोरे जीवनकों कहा कहिये ? हे विचक्षण ! तू ही विचार। वर्ष-दो वर्ष पहलै की कोई दस-पांच बात तोकों याद हैं या नाहीं ? तथा पहर दोय पहर की कोई बात तोकों याद है कि नाहीं ? जो तोकों याद होय तो तू ही विचार कि आतमा क्षणभंगुर नाहीं तथा एक-दो वर्ष पहिले तूने काहू कों दस-पांच हजार रुपया कर्ज दिये थे। सो तोकों याद है कि नाहीं। तूने ताके पास तैं खत मंडाया था तापै दस-पाँच भले मनुष्यों की गवाह कराई थी। सो तोकों यह बात याद है कि

नाहीं ? तू कहैगा यादि है। तो तेरे मत के आप्त आगम पदार्थ झूठे होंयगे। जो तू कहेगा कि मेरे आप्त आगम पदार्थ झूठे नाहीं सत्य हैं आतमा क्षणभंगुर है। तो तेरे खत-पत्र दोय वर्ष पहिले के हैं सो झूठे होय हैं। तोकूं कर्ज के दाम नाहीं मिलेंगे। क्योंकि आतमा तो क्षणभंगुर है। सो एक शरीर में क्षण-क्षण और-और आवै है। सो कर्ज देनेवाला कोई रह्या नाहीं। आतमा नवीन आया। सो लेन-देन की तिन्हें ठीक नहीं। तेरे रुपया गये। अरु गवाहवाले भी सर्व क्षणभंगुर सो भी गये। उनके तन विषैं अन्य-अन्य आत्मा आया सो उनकी गवाह भी ठीक नाहीं। तातैं गवाह भी झूठी भई। खत मांड्या था सो भी झूठा भया। रुपया गये और तू कहैगा रुपया कैसे जांयगे ? भले आदमिन की तौ गवाह है। अरु मोकों भी भले प्रकार मितिबार याद है और इनके दोय हजार आये हैं सो मैंने जमा किये हैं। सो मोकों याद है। मेरे कर्ज में सन्देह नाहीं। यामैं सन्देह कहा है ? तो हे भाई ! तेरे मत की तू ही विचार देख तेरा मत तेरे ही श्रद्धान करि झूठा भया तो और विवेकी परभव के सुख निमित्त, तेरा क्षणभंगुर मत कैसे अङ्गीकार करैगा ? अरु एक और भी सुन। हे भाई ! तेरा क्षणिकमत कोई हमारे ही आगम करि नाहीं निषेध किया किन्तु और भी संसार विषैं जेते तुच्छबुद्धि बालगोपाल हैं तिनकर भी निषेधिये हैं। देखि, तू किसी बालक से कहै कि हे पुत्र तोकूं कोई दस-बीस दिन की बात यादि है। तौ बालक भी कहै मोकों तौ महीना दो महीना की केई बात यादि हैं। तब बालक कौं कहिए। भाई आतमा तौ क्षणभंगुर है सो शरीर में छिन-छिन में आवै है तौ तोकों पहिले की बात कहां से यादि होयगी ? तौ बालक भी कहै या बात झूठ है। मोकूं कहौ तो दस-बीस बात पाँच-चार महीना की बताऊँ हमको सांचे कहौ। जो कोई आतमा क्षणभंगुर बतावै है सो झूठ है। बालक भी ऐसा कहै है। सो हे भाई तूं सुनि। देखि बालक अज्ञानी भोरा है वह भी तेरा क्षणिक मत झूठा कहै है। तौ विवेकी कैसे सत्य मान सरधान करैं ? और सुन कोई भोला अज्ञानी पशुओं का चरावनहारा गुवाल कोई क्षणिकमति के ढोर चरावै था सो ढोर के धनी पास जाय कही। तुमारे ढोर चरावतैं चारि महीना भये, सो अब मेरी चढ़ी गुवाली देऊ। तब ताकूं ता क्षणिकमति ने कही। हे गुवाल ! आत्मा तो क्षणभंगुर है, शरीर मैं आतमा छिन-छिन और आवै है। सो दोय महीना पहले कौन आतमा था, तानै गुवाली देनी कही थी सो आतमा अब नाहीं अरु गुवाल भी वह नाहीं। तब ऐसी सुनिकैं गुवाल ने कही। भो सेठ ! ऐसे बड़े आदमी होयकें ऐसी

महाझूठी-वृथा बात काहेकों कहौ हो। अब तांई शरीरविषैं आतमा छिन-छिन उपजते मरते सुने नांही। कोई हजारौं बात तौ बीस-बीस बरस की देखी मोकों यादि है। केई बात हमारे बड़ों के मुख तैं सुनी थी सो सौ-सौ बरस की सो भी केतीक यादि हैं। परन्तु ऐसी तुम्हारी-सी झूठ अब ताईं नहीं सुनी। मेरी गुवाली देवो। तब या सेठ ने नहीं दई। तब गुवाल ने अपने मन में विचारि मतौ (सलाह) करिकै वाके ढोर अपने घर बांधि राखे। दोय दिन भये जब ढोर नाहीं आए। तब गुवाल कौं बुलाय सेठ ने कही। रे गुवाल! दोय दिन भये सो हमारी भैंसि-गईयां नहीं आईं सो क्यों? तब या गुवाल ने कही। सेठ साहिब, गैया तौ कैसी, अरु भैंसि कैसी? मोकों कछु ठीक नांही। आतमा, शरीर में छिन-छिन और आवै है सो अगले तो गये और मैं तो अब आया हौं। सो मोकों किसी के ढोरन की ठीक खबर नाईं। तब या सेठ ने कही। रे गँवार! हमतैं चौट्टाई (धूर्तता) करि झूठ बोलै है। तब या सेठ ने कुतवाल कूं कहि, गुवाल कूं रुकाया। तब गुवाल ने कही मोकों काहेकों रोक्या है। तब कुतवाल ने कही, सेठ के ढोर ल्याव। तब गुवाल ने कही, मेरो न्याय करौ। तब कुतवाल ने कही, न्याय काहे का है। गुवाल ने कही, सेठ कूं पूछौ। तब कुतवाल ने सेठ कूं बुलवाया। अरु कही, गुवाल कूं क्यों रुकाया है। तब सेठ ने कही, आजि दोय बरसतें हमारे ढोर चरावै है। सो अब दोय दिनतें, ढोर चुराय राखे हैं। तब कुतवालकूं गुवाल ने कही। भो कुतवाल! याके मत विषैं एक शरीर में आतमा छिन-छिन और-और आवता मानै है। मैंने यापै गुवाली माँगी, तब या ने कही गुवाली काहै की। वह आतमा लैने-दैनेवाला नांही। तब मैंने या के ढोर बांधि राखे यह सेठ अपना मत झूठा कहि मेरी ग्वाली मोकूं देय अपने ढोर लेवे। तब कुतवाल ने हजारों ही आदमीन मैं सेठ को झूठा कह्या। गुवाल की गुवाली दिवाई, ढोर धनी को दिवाये। सो हे भ्रात! क्षणिकबाद मत धरनहारे, तेरे मतकौं गँवार अज्ञान ढोरन का चरावनहारा गुवाल भी झूठा कहै है। सो तूं देखि, यह बाल-गोपाल संसार में सबतें हीन अज्ञानी हैं, सो भी तेरा मत असत्य कहैं हैं। तौ भो भ्रात क्षणिक मतवाले! जो विवेकी होंय, सो कैसे सत्य कहैं! तातैं जाके मत विषैं आतमा क्षणभंगुर कह्या होय ताके आप्त, आगम, पदारथ असत्य हैं। ऐसे याका क्षणिकमत प्रत्यक्ष असत्य बताय स्याद्वादमत के सनमुख किया।

इति क्षणिकमति सम्बोधन। आगे कर्त्तावादीकौं सम्बोधन का सम्वाद लिखिये है—

केई मतवारे, नवीन आत्मा उपजावनहारा मानैं हैं। ऐसा कहैं है जो कोई नवीन आत्मा बनाय-बनाय पृथिवी पै धरता जाय है, ऐसा कोई भगवान है। याही भगवान की जब इच्छा होय तब आत्माकों हरै है। जो उपजावै हैं सो ही मारै है। जो ऐसा कहै हैं ताकौं कहिये है। हे भाई! आत्मा कोई का बनाया बनता व उपजाया उपजता, तौ लौकिक में सन्तान की उत्पत्ति के निमित्त विवाहादि काहे कौं करते। जो कोई पुरुष नवीन आत्मा बनावै था ताही का सेवा करते। जब वह आत्मा का पैदा करनहारा राजी होता, तब सौ-पचास तथा लाख-दो लाख क्षौहणी बन्ध आत्मा कर देता। जैसी जाकी सेवा देखता, तैसे आत्मा बनाय देता। तौ लोक, चाकर फौज काहैं कौं राखतै। अरु विवाहादिक करिकैं कुटुम्बादिक की वृद्धि काहै कौं करते। सो ऐसी प्रवृत्ति अनादिकाल तैं कोई सुनी नांहा कि कोऊ ने कोई कैं दसबीस आत्मा बनाय दए। अरु अब कोई बनावनेवाला नाहीं कि वह फलाना तथा कोई देव-दानव नवीन जीव बनावै है। कदाचित् तेरे ऐसा ही हठ होय जो, कोई जीव का कर्त्ता है तौ हम तोकौं पूछैं हैं। कि उस कर्त्ता ने जब पहले कोई ही जीव नहीं बनाये थे। तब संसार सृष्टि थी या नाहीं। या वह कर्त्ता अकेला ही था और कहौ कि उस कर्त्ता ने पहले कौन-सा जीव बनाया था, ताके पीछे कौन-सा बनाया। अब नई वस्तु बनाइए है सोई काहू की नकल बनाइए है। सो प्रथम कोई वस्तु होय तौ बनावै। जैसे कोई सिंह का आकार बनावै है। तौ प्रथम कोऊ सिंह होय तो ताकौं देखि, ताकी नकल का सिंह बनावै है। बिना नकल नवीन वस्तु होती नांहीं। सो कर्त्ता ने जीव किया, सो कौन की नकल बनाया और आत्मा, बनाया होय है तौ वह परब्रह्म-आत्मा कूं किसने बनाया। कर्त्ता का कर्त्ता बताओ और तुम कहोगे जो सृष्टि तौ अनादि की है और कर्त्ता भी अनादि का है। तो हे भाई! जहाँ अनादि सृष्टि होय, तहाँ नवीन कर्त्ता का अभाव आया। संसार स्वयंसिद्ध अनादि-निधन है अनादिकाल का है। अरु तुम स्वयंसिद्ध आत्माकौं मानते नांहीं। आत्मा नया होता-उपजता मानौ हौ। सो कै तौ कोई कर्त्ता बताओ जाने सृष्टि करी है तथा सृष्टि जब इस कर्त्ता ने नहीं बनाई थी तब कछू था कै नांही था। अरु तुम कहोगे पहले कछू नहीं था, कर्त्ता ने बनाई तब भई है, तौ पहले शून्यता आवगी। जो कर्त्ता बिना भी संसार रह्या था तौ ऐसे कहने में तुमारे कर्त्ता का अभाव हो गया।

तातैं भो विवेकी ! तुम एक वचन की ठीकता करके कहो। तब कर्त्तावादी ने विचारी। जो कर्त्ता कहैं, तौ संसार का अरु कर्त्ता इन दोऊ का ही अन्त आवे। तब कर्त्तावादी बोल्या जो कर्त्ता भी अनादि अरु सृष्टि भी अनादि है। तब स्याद्वादी ने कही जो सृष्टि अनादि है तौ कर्त्ता की महन्तता कहाँ रही। कर्त्ता कहना शब्द वृथा भया। अरु हे भ्रात ! और भी देखो जो तुम कहौ हौ कि कर्त्ता प्रथम तो बनावै है अरु पीछे कर्त्ता ही चाहै तब मारै है। तौ या विषैं कुछ गम्भीरता नाहीं। जो प्रथम तो बनावै पीछै वाकौं आपही बिगाड़ै तो बालक की-सी लीला भई। जैसे प्रथम तौ नाना प्रकार रचना, खेल मैं बनावै, पीछे बिगाड़ै। तातैं भो भवि ! प्रथम तो बनावै पीछे बिगाड़ै, ताको बालक समानि कौतुकी अज्ञानी जानना तथा संसारमैं कोई एक जीव मारै, ताकौं दोष लगावें हैं। सो कोई अनन्ते जीव मारै, तौ ताकौं तौ बड़ा ही दोष होय तथा जाकौं आप पैदा करै, सो पुत्र समानि हैं, अरु ताहीं कूं मारै तौ पुत्र मारे-सा दोष लागै। तातैं कर्त्ता कौं हर्त्तापना सम्भवै नाहीं। अरु तुम कहोगे कर्त्ता हरै, ताकों दोष नांहीं। सो तुम देखो कोई को मारै हैं तब प्रथम तो क्रोध-अग्नि उपजै है तब अन्य (दूसरे) का घात करै है। बिना कषाय पर की घात होती नांही। तातें जाके कषाय होय सो संसारी, तन का धारी जगत् जीव जानना। ता विषैं नवीन जीव उपजावने की शक्ति होती नाहीं। तातैं हे भाई ! घनी (बहुत) कहाँ ताईं कहिए। अनेक नयों से कर्त्तापने का वचन खण्डित होय है। तातैं भो धर्मार्थी ! ऐसा सरधान तजना ही योग्य है। अब तूं देखि, जो यह संसार अनादि-निधन है, कोई का किया नाहीं। इस संसार विषैं अनन्तै जीव हैं। सो भी अनादि-निधन हैं, काहू के किये नांहीं। अनन्ते जीव द्रव्य, अपनी-अपनी भिन्न-भिन्न सत्ताकों लिए अपने-अपने गुण-पर्याय सहित अनादिकाल से चार गतिनि विषैं, सुख-दुखकौं भोगवैं हैं। जैसी-जैसी अपनी परिणति उसके अनुसार पुण्य-पाप के फल को भोगता, पुण्य-पाप उपार्जता, जगत्मैं भ्रमण करैं हैं। ताही का फल सुरग नरकादिक के सुख-दुख कौं पावैं हैं। अरु जब यह आतमा पुण्य-पाप के उपजावनै रहित होय है। तब वीतराग दशाकों धारेगा। तब ही सर्व कर्म नासिके, परमातमा-सिद्ध पद कौं धारैगा। तब यह सिद्ध भगवान, ज्योतिस्वरूप, स्वयंसिद्ध, जगतनाथ काहू का कर्त्ता होता नांहो अरु जेते कर्त्ता-हर्त्ता हैं, तेते भगवान नांही और सिद्ध भये, कर्त्ता नहीं। तातैं जो नवीन आतमा कोई उपजावे है ऐसा सरधान जाकै मतमैं होय, ताकै आप्त आगम,

पदारथ असत्य हैं। ऐसैं नवीन जीव का कर्त्ता कोई है ऐसा मानै था सो ताका सरधान मिटाया शुद्ध सरधान कराया। आत्मा स्वयंसिद्ध है काहू का किया होता नाहीं ऐसा दृढ़ कराय, जिन भाषित सरधान कराया। इति कर्त्तावादी को समझाय शुद्ध किया।

आगे कोई नास्तिकमतनि का सम्वाद लिखिये हैं। केई मतवाले जीवकों नास्ति ही मानैं हैं। ऐसा कहै हैं जो, जीव वस्तु है ही नाहीं। वह जीव का अभाव मानैं हैं। ते नास्तिकमती यह भी कहैं हैं। जो जीव होय तो दया करिए। तातैं जीव नांही, जीव के अभावतैं दया का भी अभाव है। अरु दया के अभाव तें पुण्य-पाप का भी अभाव है। जो जीव ही नाहीं, तो पुण्य-पाप का फल कौन भोगवै? तातैं पुण्य-पाप भी नांहीं और पुण्य-पाप के अभाव तैं परलोक का भी अभाव है। जो परलोक ही नाहीं, तो पुण्य-पाप का फल स्वर्ग-नरकादिक की गति कहाँ तैं होय। तातैं जीव नांहीं, पुण्य-पाप नाहीं, नरक-सुरगादिक गति भी नाहीं। संसार भी नांहीं। ऐसा नास्तिमती का मत है। सो ता नास्तिमती तैं कहिये है सो कौन है? और यह तूं ऐसे ज्ञान का जाननेहारा कौन है? जाके ऐसा ज्ञान तैं विचार होय है। सो तूं इसे निश्चय आतमा जानि। आतमा बिना, सन्देह काहू के होता नांही। आतमा ही कैं विकल्प उपजैं हैं। ऐसा तूं सत्य करि जानि। यह शरीर है सो तो जड़ है, मूतिक है। या विषैं देखने-जानने की शक्ति नांहीं। या तनकैं विकल्प होता नांहीं। तातैं यह पूछनेहारा, सन्देह करनेहारा, हठ का करनहारा, खाटे-मीठे का स्वाद जाननेहारा, अच्छी-बुरी धारि रागद्वेष करनेहारा, क्रोध, मान, माया, लोभ का करनेहारा कोई है। ताही कूं तूं आतमा जानि और लौकिक विषैं भी जीव ऐसा कहैं हैं, जो फलानां मूवा है, सो फ़लानी जगह भूत भया है तथा केई कहै हैं जो हमारा फलाना बड़ा बुड्ढा, आगे मूवा था सो अब आय, हमारे पास पूजा मांगै है तथा केतेक लोक ऐसा कहैं हैं, जो फलाना भूत भया था सो आज फलाने कौं लागा है। ऐसी जगत् विषैं प्रसिद्धि सब कोई कहै हैं। हे नास्तिमती! अवार तोकूं भी कहिये। जो समान भूमि विषैं तुम रात्रि कौं रहौ, तौ तू भी या कहै कै जो मसांन विषैं बहुत भूत-प्रेत हैं। हम ऐसी भयानीक जगह मैं नहीं जांय, ऐसा तू भी कहै और लोक भी या कहैं हैं। तातैं हे नास्तिमती भ्रात! तूं विचारि। जो कोई जीव है तभी तो भूत भया है और कोई परलोक है तभी तौ व्यन्तर देव भया है। तातैं हे नास्ति बुद्धि! तूं ऐसा जानि कि जीव है,

अरु परलोक भी है और पाप के फलतैं जीव नरक-पशु के दुख पावै है। मनुष्य ही होय तो अन्धा, लूला, बहरा, दरिद्री, अभिमानी, रोगी, दीन, वस्त्र-रहित होय; पुराय के फल तैं देव होय अरु मनुष्य होय तो सर्व दुख-रहित सुखी होय तातैं विवेकी हैं सो पाप नहीं करैं हैं। बड़े बुद्धिमान शुभकार्य करैं हैं। एक अज्ञानी है सो भी कहै है। जो कोई हमारी दया लेयकैं हमारी आतमा जो अन्नपट बिना दुखी है सो देय पोखै। हमारी दया करि रोटी वस्तर देय हमारी आतमा पोख सुखी करै, ताकौं पुराय होय। ऐसे रंक भी कहै है। तातैं हे भव्यात्मा, देखि। जीव भी है, जीव की दया भी है। पाप भी है, पाप का फल नरकादि दुःख भी हैं। पुण्य भी है, पुण्य का फल स्वर्गादिक भी है। ऐसा जानिकैं अनेक मतन के धर्मात्मा हैं सो पाप का निषेध करैं हैं। अरु पुराय करना उपादेय बतावें हैं। पाप-पुराय फल के स्थान, अनादि संसारिक देवादिक चारि गति रचना सहित षट्द्रव्यनि करि बनी जो जगत् रचना, सो यह चारि गति रचना भी अनादि की है। तातैं हे नास्तिबुद्धि! देख। संसार भी है, अरु सर्वकर्मनाश करनहारा भी है। सर्व दुख तैं रहित सुख समूह अतीन्द्रिय भोग का स्वादी अनन्तबली ज्योतिस्वरूप परब्रह्म भगवानपद का धारी सदैव मोक्षरूप है, तातैं मोक्ष भी है। हे नास्तिकमती! तेरा नास्तिमत सर्वमतन तैं खण्ड्या जाय है। तेरे नास्तिकमत का सरधान होतें-सर्वमत, देहरे (मन्दिर) दान, पूजा, भगवान की भक्ति, जप, संयम, शीलादिक, भले जगत् के पूज्य गुण, तिन सर्व को अभाव होय। तातैं कोई मत तैं मिलता नाहीं। सर्व मतन के शास्त्रन के अभिप्राय तैं, अरु लौकिक प्रवृत्तितैं नास्तिमत झूठा भया। जो लोक मैं तौ दान-पूजादि गुण पूज्य दीखें। तातैं नास्तिमत अनेक भाव विचारतैं असत्य हैं। तातैं जाके मत विषैं आतमा नास्ति कह्या होय। ताके आप्त आगम, पदार्थ, अति हेय हैं। ऐसे नास्तिकमती का श्रद्धान मिटाय स्याद्वाद मत के सनमुख किया। इति नास्तिमती सम्वाद विजय कथन। ४। आगे अवतारवादी एकान्तमती का सम्वाद लिखिये है।

आगे कई एक अवतारवादी मोक्ष गये आत्मा का पीछा अवतार मानैं हैं। ताकौं कहिये है। भो मोक्ष-जीवन कूं अवतार मानने-हारै भव्य आतमा तू सुनि। चांवल जामैं निकसैं ऐसा धान ताकौ उगावै तौ उगै है। जब धानकौं कूटि, ताके छिलका दूरिकरि, शुद्ध चांवल भए पीछे उनको उनके ही भुसमैं धरि उगईए,

तौ ऊगतौ नाहीं। तैसे ही इस संसारी अशुद्ध आत्माकौ कर्मरूपी छिलका लगा है, तेते काल तौ चारि गति शरीरन मैं उपजि, शुभाशुभ फलकौ भोगवता उपजै है। जब नाना प्रकार चारित्र सहित तपकरि अष्ट कर्म नाशतैं, कर्म-रहित शुद्धात्मा होय सिद्धलोक विषैं विराजैं हैं तब पीछे संसारिक शरीर कबहूँ नहीं धारैं हैं। जे आत्मा अवतार धारैं हैं सो संसारी हैं। शुद्धात्मा नाहीं। शुद्ध है ताके अवतार नाहीं है। कोई कहै जौ भगवान तौ शुद्ध ही है; परन्तु जब कोई देव, दानव, राक्षस, भगवान की प्रजा को पीड़ा करै है। तब वह ज्योतिस्वरूप परमात्मा भगवान, प्रजा की रक्षा करवे कों, राक्षसनिकैं मारिवैकौं, अवतार लेय है। इस भांति शुद्धात्मा अवतार नाहीं लेय है। ताकों कहीए है। हे भाई! तैंने कही सो तेरे कहने करि और दोष प्रगट भया। तूनैं कही जो भगवान की प्रजाकौं राक्षस, देव, दानव, पीड़ा उपजावैं हैं तिन राक्षसादि मारवेकौं अरु प्रजा की रक्षा-निमित्त भगवान अवतार लेंय हैं। सो प्रजा तैं तो रागभाव आया और राक्षसादिक तैं द्वेष भाव आया। तातें हे भाई! जाकैं राग-द्वेष होय, सो भगवान नाहीं। भगवानकैं रागद्वेष नाहीं। परकौं मारै सो क्रोधी होय है। सो क्रोधी जीव जगनिन्दा पावै है। तातैं क्रोधी होय सो संसारी है, भगवान नांहीं। तातैं धर्मार्थी तू ऐसा जानि जाकैं काम, क्रोध, राग, द्वेष, मान, मत्सर, छल, जन्म, मरण होय सो भगवान नाहीं ऐसा जानना। देखि, गर्भवास मेटवे के निमित्त नाना प्रकार के दुर्धर तप कर बाईस परीषहन के महासंकट सहकैं वीतराग भाव धरिकैं महाकठिनतैं कर्मनाशिकरि मोक्ष भए तब बन्दीखाने तैं छूटै। गरभवास के महादुखनतैं बचै। अब फेरि गर्भवास के विकट दुखनमैं कैसे जांय? कबहूँ भी नहीं जाय। जैसे कोऊ भले आदमीकौं दोष लगाय कुतवाल ने पकरि कैं तह-खानेमैं मूंधा। तहाँ मलमूत्र करना, तुच्छ अन्न जल देना, सो वह महामरण समानि दुख सहता व्याकुल भया। रोज के रोज नाना प्रकार दुख भोगना। औरन के दुर्वचन सहता। ऐसे महादुख सदैव देखि व्याकुल होय इस भले आदमी ने बिचारी, बन्दीखानेमैं दुःख भोगतैं दीर्घकाल भया सो कैसे छूटिये? तब याने कोई बीचवाले की बड़ी स्तुति करी। अरु कही मैं इहां महादुखी हौं सौ यह कुतवाल माँगै सौ दैहों। मोकों छोड़ो, मैं महादुखी हों। तब बीचिवाले ने याकी दया करि कुतवाल कूं बड़ा धन देना कराय यह छुड़ाया। वांछित धन देय बीचिवाले की बड़ी स्तुति करि उपकार मानि छूटा। कठिन तैं अपनै घर आया। कुटुम्बीजनतैं मिल महासुखी भया। अब

कोई उस भले आदमी कौं फेरि कहै तुम इस कुतवाल के तहखाने मैं चालौं, तौ वो कैसे आवै कबहूँ नहीं आवे तैसे ही तन बन्दीखाने तैं महादुख भोगतैं कोई पुण्यते छूटनै का उपाय गुरुनि का निमित्त पाय जान्या। सो राज सम्पदा तजि चारित्र अङ्गीकार करि नाना तपकरि कर्म बन्धन का क्षय करि सिद्धलोक कौं प्राप्त भये निर्बन्ध महासुखी भये। सो अब जगत्पूज्यपद पाय वह केवल-ज्ञान का धारी परमात्मा भगवान इस दुर्गन्ध स्थान सप्तधातमई गर्भ स्थान में कैसे आवै, कबहूँ भी नहीं आवै। तातैं भो भव्य! अब सुनि। जाके मन में मोक्ष तैं पीछा अवतार होता होय ताकै आप्त, आगम, पदारथ हेय हैं। इति अवतारवादी का सम्वाद कथन।

आगे अज्ञानवादी का सम्वाद लिखिये है। अब केई मतवाले मोक्ष आत्माकौं ज्ञान-रहित मानें हैं। ऐसा कहैं हैं, जो आत्मा विषैं पर-पदारथ के जानने का जेता ज्ञान है सो ही उपाधि है। जब पर के जानने के ज्ञान का अभाव होयगा तब मोक्ष होयगी। ऐसा मानै हैं। ताकौं कहिये है। भो मोक्ष आत्मा को ज्ञानरहित माननेहारे! तू आत्माकौं मोक्षविषैं ज्ञानरहित मानें हैं। जो पर-पदारथ के जानने का आत्म विषं ज्ञान है। सो तो आत्मा का स्वभाव है। ज्ञान स्वभाव का नाश भए आत्मा का अभाव होय है। जैसे अगनि विषैं तताई (गर्मी) का गुण है सो तहाँ तताई का अभाव भये अगनि का भी नाश होय तथा दीपक का गुण प्रकाश है सो प्रकाश का नाश भये दीपक का भी अभाव होय। तातैं हे भव्य! पर-पदारथ के जानने का ज्ञान है सो आत्मा का स्वभाव है। सोई ज्ञान के अभावतैं आत्मा का अभाव होय है। सो आत्मद्रव्य का अभाव कबहूँ होता नाहीं। तातैं भो भव्यात्मा! तूं सुनि। आत्मा पर-पदारथ कौं जानै है। सो पर-पदारथ के जाननें विषैं कछू दोष नाहीं। दोष तौ राग-द्वेष विषैं है। सो राग-द्वेषकरि पर-पदारथकौं देखना, सो आतमा की अशुद्धता हैं और भो अज्ञानवादी! तूं मोक्ष भये पीछे, आत्माकौं ज्ञानरहित मानैगा तौ भगवान के सर्वज्ञपने का अभाव होयगा। तब भगवान्कूं अन्तरयामीपने का पद नहीं बनैगा और तब अन्तरयामीपना नहीं भए भगवान कूं अज्ञानता आवेगी अज्ञानता आये अज्ञानीकौं जगत्नाथपना नहीं सम्भवै है। तातैं हे अज्ञानवादी! सुख है सो पर-पदारथ के जानने का ही है। सो जानपना ज्ञानतैं होय है। तातैं ज्ञान बिना सुख नाहीं। सुख बिना दुखी रहै। सो मोक्षजीवकौं दुखीपना सम्भवता नांहीं। तातैं अनन्त सुख का धनी भगवान है। सो केवलज्ञान ही सुख का कारण जानना। सो तूं देखि, लौकिक विषैं

भी जानैं थोरे पदारथ देखे-जानै होंय, ताकै ज्ञान भी थोड़ा होतें, सुख भी थोरा होय। विशेषज्ञानी कूं विशेष सुख होय है। जैसे—कोई पुरुष अनेक देशन का फिरनहारा होय, अनेक राज-सभा का बैठनेहारा होय, अनेक मनुष्यन तैं बात करनहारा होय, अनेक तरह के नृत्य-गीतादिक का देखनेहारा होय, अनेक जाति के लौकिक चरित्र देखनेहारा होय, अनेक शास्त्रनि का देखने-जाननेहारा होय, ताकैं ज्ञान विशेष होय। जाने एते स्थान नहीं देखे, ताके ज्ञान भी अल्प होय। सो सुख हैं, सो ज्ञान के आश्रय हैं। सो जाके ज्ञान बहुत, सो बहुत सुखी और जाके अल्पज्ञान ताकैं सुख भी थोरा होय तथा कोई स्थान विषैं नृत्यगीत अनेक कौतुक होंय हैं। सो जाकौ दीखता नाहीं ताकैं तिनका सुख भी नाहीं। जाकूं अल्प दीखै हैं तिनको अल्प सुख हैं। कोई पुरुष उत्तुंग (ऊँचे) स्थान पै नजदीक बैठा, ताकौं सर्व दीखै है सो सर्व सुखी है ऐसा जानना तथा जैसे—काहू सेठ का मन्दिर है सौ नाना प्रकार की महिमा को लिए है। कहीं तो अनेक रत्न जड़ित शोभा है, कहीं अनेक प्रकार चित्राम है, कहीं मनोज्ञ महलन सहित बाग हैं। कहां फुहारे अनेक छूटैं हैं। कहीं नृत्य गान होय है। कहीं अनेक प्रकार की बिछायत बिछी हैं, कहीं महासुन्दर नर-नारी अनेक वादित्र बजाय क्रीड़ा करैं हैं, इत्यादि अनेक शोभा सहित मन्दिर है। तहाँ केई परदेशी अनेक पुरुष, इस मन्दिर की शोभा देखने कूं गये। सो किसी ने एक स्थान देख्या; किसीनै दोय, किसीनै चारि, किसी ने दस और किसी ने सर्व स्थान देखे। सो अब देखि, जानें जैसा स्थान देख्या, याकै जानपने में आया तैसा ही सुख भया। जानैं सर्व स्थान देखे ताकैं सर्व सुख भया। तैसे ही यह तीन लोकमन्दिर मैं अनेक रचना पाइए है। तामैं अनन्ते जीव परदेशी तमाशगीर आए हैं। तिन जीवन कूं लोक विषैं जेता-जेता पर पदार्थन का जानिपना होय। ता जीवकों तैसा ही सुख होय है। श्रुतज्ञान के वंश भी अनेक हैं। सो कोई जीव श्रुतज्ञान थोरा पढ्या है, ताकैं सुख थोरा है। जो अङ्ग पूर्व विशेष पढ़ैं हैं तिनकैं बड़ा सुख है। अवधिज्ञानी अपने ज्ञानतैं लाखों योजन प्रमाण क्षेत्रकों अवधिज्ञानतैं जानैं, सो विशेष सुखी है। ये ज्ञान एक स्थान पै तिष्ठता दूरवर्ती पदारथन कौं जानैं, ताके सुख विशेष ही होय। मनः पर्ययज्ञानतैं पर के मन-विकल्प जो होंय तिन सबन कौं जानै। ताकैं और भी विशेष सुख होय और इनतैं अनन्तगुणा सर्व लोकालोक के घट-घट की जानै सो केवलज्ञानी महासुखी हैं तातैं भो अज्ञानवादी ! तूं ऐसा जानि। जो पर-पदार्थन के जानने

का ज्ञान है सो ही सुख का कारण है। परन्तु इतना विशेष है कि जो संसारी जीव पर-पदार्थन कौं जानैं हैं। सो तो रागद्वेष सहित जानैं हैं। ताकरि कर्मबन्ध का कर्त्ता होय है। जे वीतरागी कर्मनाशक सर्वज्ञकेवली स्वपर पदार्थन कूं जानैं हैं सो राग-द्वेष रहित जानैं हैं। सो इन भगवान के राग-द्वेष अभावतैं कर्मबन्ध नहीं होय है। तातैं पर-पदार्थन का ज्ञान राग-द्वेष सहित तौ संसार का कारण है। सो तो आतमा कूं दुखदाई है। राग-द्वेष रहित पर-पदार्थन का जानपने-रूप ज्ञान है सो सुखदाई है। तातैं हे भ्रात अज्ञानवादी! तू ऐसा दृढ़ सरधान करि, कि जो ज्ञान है सो आत्मा का गुण है। ज्ञान बिना जीव नाहीं। जीव बिना ज्ञान नाहीं। ज्ञान अरु जीव इन विषैं गुणगुणीपना है। सो गुणी के नाश तैं गुण का नाश होय; गुण के नाशतैं गुणी का नाश होय। तातैं गुण गुणी का नाम भेद है, सत्ता भेद नाहीं। जैसे—लवण में अरु क्षारगुण में नाम भेद है सत्ता भेद नाहीं लवण है सो तौ गुणी हैं अरु क्षारपणा लवण का गुण है। गुण है सो गुणी के आश्रय है। ऐसे ही आत्मा में अरु जैसे सार गुण है सो लवण के आश्रय है। ज्ञान में गुणगुणीपना जानना। आत्मा तौ गुणो है अरु ज्ञान गुण है। जाकरि गुणीकौं जानैं सो गुण कहिये तैसे आतमा को ज्ञान कर जानिये है। ऐसे ही गुणगुणी में एकता जानना। एक के अभाव तैं दोऊ का अभाव होय है जैसे—सूरज तो गुणी है अरु जाकरि सूर्य जान्या जाय ऐसा प्रकाश सो सूर्य का गुण है। सूर्य के अभाव होतै तेज-प्रकाश का अभाव होय। प्रकाश के अभाव तैं सूर्य का अभाव होय। तैसे ही आतमा विषैं अरु ज्ञान विषैं एकता जानि। नाम भेद है, प्रदेश सत्ता भेद नाहीं। तातैं भो सुबुद्धि! तूं आतमा विषैं ज्ञानकौं उपाधि मति मानैं। ज्ञान है सो आतमा का गुण जानि। ज्ञान के अभाव तैं आत्मा का अभाव होय, आत्मा के अभाव तैं मोक्ष का अभाव होय मोक्ष के अभावतैं कर्म का बंधाव होय कर्म के बँधावतैं जगत् में भ्रमाव होय और जगत् भ्रमावतैं दुख का बढ़ाव होय। तातैं भो भव्य! आत्मा तूं जगत् तैं छूठ्या चाहै अरु सुखकौं भोगा चाहै है तौ आतमाकौं मोक्ष विषैं केवल-ज्ञान सहित जानि जाके मत विषैं मोक्ष-आतमा ज्ञान रहित होय ताके आप्त, आगम, पदार्थ असत्य होय हैं। ऐसे अज्ञानवादी कौं समझाय शुद्ध श्रद्धान कराया। इति अज्ञानवादी का कथन। ६। आगे स्थिरवादी का सम्वाद लिखिये है। केई स्थिर-वादी ऐसा मानैं हैं जो जैसा मरै, तैसा ही उपजै। जो देव मरै तो देव ही होय, नारकी मरै तो नारकी उपजै,

तिर्यञ्च मरै, तौ तिर्यञ्च ही उपजै। तामैं भी जैसी जाति का पशु मरै, सो ही जाति का पशु उपजै। हस्थी मरै तो हस्थी उपजै, घोटक (घोड़ा) मरै तो घोटक उपजै इत्यादिक जिस जाति में जैसा मरै सो ही उपजै, अपनै स्थान को नहीं तजै। मनुष्य मरै तो मनुष्य उपजै, तामैं भी राव (राजा) मरै तौ राव उपजै, रंक मरै तो रंक उपजै, ऐसैं जो मरैं सो ही उपजै। याके मत का यों रहस्य है। जो चार गति संसार तौ है। परन्तु जैसा मरैं तैसा ही उपजै सो अपनै मत के पोषनैंकों ऐसा शब्द ताके ग्रन्थ में कहैं।

राज करन्ता जे मरैं, ते फिर राज करांय। मरैं भीख कण मांगते, ते नर भीख मगांय ॥

ऐसे शब्द करि स्थिरवादी ने अपना मत दृढ़ कर रक्खा है ऐसे स्थिरवादी कौं कहिये है—भो भाई! तूं सुनि। तेरा मत प्रत्यक्ष अनेक नयन करि खराड्या जाय है। तेरा मत कोई मत तैं नाहों मिलै, तातैं असत्य है। प्रत्यक्ष तूं देखि। जो तेरा मत प्रमाण होता तौ संसार में मतान्तर भी नहां होता और कोई काहेकौं धर्म सेवन करते? जब जैसा मरै तैसा ही उपजे तौ धर्म के अङ्ग कहा फल करेंगे तातैं देखि, अनेक मतवाले कोई तौ नाना तप करैं हैं, जप करैं हैं, भगवान की पुजा करैं हैं। इत्यादिक धर्म अङ्ग सेवनि करि, ऐसा विचारैं हैं जो हमैं धर्मप्रसाद तैं कुगति नहीं होय तौ भली है। धर्म फलतैं देवादिक शुभ गति होय है, ताके निमित्त केई धर्मात्मा तौ तीर्थ-यात्रा करैं हैं तामैं अनेक धन खर्चनैतैं खेद सहैं हैं। अनेक घर धन्धा तज, कुटुम्बादि तैं मोह तज दूर देशान्तर जांय हैं। केई परभव सुख कौं नाना तप करैं हैं, केई परभव सुखकौं वांछित दान देय हैं, केई भगवान के मन्दिर बनावैं हैं, केई धर्मफल कौं भगवान के नाम का सुमरन करैं हैं, केई राज, सम्पदा, कुटुम्ब, लोक, इन्द्रिय सुख, शरीरपैं ममत्व इत्यादि सुख छोड़ि दीक्षा धरि वन मैं ध्यान करि अपनैं पापनाश किया चाहैं हैं। इत्यादिक अनेक जीव अनेक मतन में अनेक प्रकार धर्म का साधन करते देखिये है। तातैं भो भ्रात! तेरे मत का रहस्य लेय, तौ सर्व धर्म-सेवन का अभाव होय। तातैं तेरा मत कोई मत मैं सम्भावता दीखता नाहीं, तातैं असति है। तूं देखि, जो सर्व संसार ऐसा कहै है, जो धर्म-सेवन करैगा सो देव पद पावैगा, मनुष्य होय तो बड़े पुराय का धारी राज-पद पावेगा। सेठ-पद पावेगा। जे पापाचारी दुर्बुद्धि पाप का सेवन करेंगे ते पशु होयंगे। तहां भूख, तृषा, शीत उष्णादिक अनेक दुःख भोगैंगे तथा पाप के करनहारे नरक विषैं नाना विधि के छेदन-

भेदनादि दुःख पावेंगे तथा लोक विषैं तथा शास्त्रन विषैं ऐसा कहैं हैं। फलाना धर्मात्मा धर्मप्रसाद तैं देव भया। फलाना पापाचार करि नरक गया। ऐसे-ऐसे व्याख्यान लौकिक विषैं प्रकट सुनिये है। अरु कदाचित ऐसी होती कि जो जैसा मरै तैसा ही उपजै तौ "पुण्य-पाप का फल जीव भोगवैगा" ऐसा नहीं कहते। तातैं भो भव्य! आत्मा, यह चार गति संसार विषैं जीव अनन्त काल का अरहट की नांई भ्रमण करै है। पाप के फल तैं अधो-गति विषैं और पुण्य फल तैं उर्ध्वगति विषैं इत्यादिक जीव उपजैं हैं। तातैं जाके मत विषैं पुण्य-पाप का फल उथापि (नष्ट करि) जैसे का तैसा ही उपजता मानैं ताके आप्त आगम, पद असत्य हैं। सो हेय हैं। तातैं भो भव्य! धर्मार्थी, अशुभ कर्म किये दुःख स्थान विषैं उपजै है और शुभ-कर्म तैं सुख स्थान विषैं उपजें है। ऐसा धारणि करि मिथ्या श्रद्धान तजि। तो तेरा भला होय ऐसे या स्थिरवादी का भरम गुमाय, जिन-भाषित श्रद्धान कराया। इति स्थिरवादी का सम्वाद कथन। ७। आगे केई विपरीतमति अजीव तैं जीव उपजता मानैं हैं तिनकौं समझाइये है। केई भोले प्राणी ऐसा कहैं हैं जो यह आकाश तैं जल बरसै है सो इन्द्र है। ताके भरम मिटावे कौं ताकौं कहिये हैं। हे भाई! मेघ है सो तौ वरषा-ऋतु विषैं ऋतु का कारण पाय "पुद्गल" है सो जलमई परणमि जाय है। सो पुद्गलन के स्कन्ध वरषा-ऋतु के कारणतैं जलरूप होंय, धारा सहित वरषैं हैं। सो यह जल अचेतन है जड़ है, चेतन नाहीं। मूर्तिक पुद्गल है सम्बन्ध जलमयी भये पीछे अन्तर्मुहूर्त काल गये उस जल में अपकायिक एकेन्द्रिय थावर नाम-कर्म के उदयतैं महापाप के फल करि आय, एकेन्द्रिय जीव उपजै हैं। सो यह महादुःखी हैं। ताकैं एक शरीर ही है। च्यारि इन्द्रिय नाहीं। पाप उदयतैं होय हैं इन्द्र है सो पंचेन्द्रिय है महा जप, संयम, ध्यान, पूजा, दान आदि अनेक धर्म के फलतैं होय है। सो इन्द्र देवनि का नाथ बड़ी शक्ति का धारी है। अद्भुत बड़ी लक्ष्मी का ईश्वर है। अनेक देवांगना सहित सुख का भोगनहारा है ऐसा इन्द्र पद वीतरागी, योगीश्वर समता रस के स्वादी-षट् काय के पीहर (रक्षक) दीनदयाल, जगत् गुरु, उत्कृष्ट दया के फलतैं इन्द्र होंय हैं। हीन-पुनीन को इन्द्र पद होता नाहीं। तातैं इन्द्र है सो देव नाथ है और मेघ है सो पुद्गल स्कन्ध की मिलापतैं ऋतु का कारण पाय जल होय वरसै है तामैं पाप करनहारा महाजीव हिंसा का करनहारा जीव आय एकेन्द्रिय उपजै है। यहां प्रश्न—जो इन्द्र नहीं तौ ऐसा निर्मल आकाश विषैं

अनेक प्रकार के बादल अरु दीरघ गरजना के शब्द कौन करै है ? और तुम पुद्गल बन्ध कहौ हौ, सो पुद्गल अचेतन में ऐसी शक्ति कैसे सम्भवै। ताका समाधान जो हे भाई ! तैंने कही कि शब्दादिक की शक्ति इन्द्र बिना कैसे बनै। सो हे सुबुद्धि पुद्गल की शक्ति बड़ी है देखि चिन्तामणि रत्न जड़ है तामैं मनवांछित देवे की शक्ति है पारस पाषाण जड़ हैं उसमें लोहकों कंचन करने की शक्ति हैं कल्पवृक्ष है सो जड़ है। तामैं वांछित फल देवे के शक्ति है और-और अनेक ओषधि हैं सर्व जड़ हैं, तिनमैं अनेक रोग खोवने की शक्ति है और धतूरा में ऐसी शक्ति है जो विवेकी का ज्ञान भंगिकरि नाशै है ? इत्यादिक जड़ वस्तून में ए शक्ति है कै नाहीं ? और देखि हल्दी पीत है साजी श्याम है तिन दोनोंकै मिलाये तैं लाली होय है और देखो चकमक अरु लोह पाषाणकै मिलाप करि झाड़ वृक्ष दाह करने की शक्ति है कि नाहीं। ऐसी अगनि उपजैं है। इत्यादिक और भी अनेक शक्ति पुद्गल द्रव्य मैं है। तैसे ही मेघ की गर्जना का शब्द भी तूं पुद्गल स्कन्धमयी जानना। तातैं हे भाई ! या मेघ विषैं जीवत्वपना नाहीं, यह अचेतन-जड़ है तातैं तूं इस जड़ द्रव्य विषैं जीवतत्त्वभाव मत कल्पना करै। यह देवनि का नाथ इन्द्र नाहीं। तूं कहेगा कि इस मेघ कूं तो सब जगत्मैं इन्द्र ही कहैं हैं सो हे भाई ! जे भोले, सांचे शास्त्रज्ञान रहित जीव हैं तिनने याका नाम रूढ़ितैं इन्द्र धर लिया है जैसे—कोई भूखे पुरुष का नाम इन्द्रदत्त धर लिया होय। सो इन्द्रदत्त तो ताकों कहिये जो औरनकों इन्द्र पद देय, यह तो भूखा-दीन है। सो याका नाम रूढ़िक नयते इन्द्रहो कहिये है। तैसे हो आकाश विषैं बिना सहाय जल बरसता देखि गरज शब्द होता देखि भोले प्राणी देवत्वभाव की कल्पना करि इन्द्र नाम कहैं। बाकी (वास्तव में) यह इन्द्र देवन का नाथ नाहीं। चेतना नाहीं, ज्ञान सहित नाहीं, यह मेघ है सो पुद्गल में स्कन्ध हो वर्षा ऋतु का निमित्त पाय जलमयी होय हैं जैसे—शीत ऋतु का निमित्त पाय सर्व आकाशमैं पुद्गल महाशीत रूप होय हैं उष्ण ऋतु का निमित्त पाय सर्व आकाश विषैं पुद्गल स्कन्ध उष्ण रूप होय हैं। सो इन तीनों ऋतु का कोई कर्त्ता नाहीं। अनादितैं ऐसा ही स्वभाव है जैसे—काल का निमित्त होय ताही प्रमाण पुद्गल रूप परणमैं हैं। ऐसा तूं निश्चय जानना। इस मेघ कूं इन्द्र कहैं हैं सो यह इन्द्र चेतन नाहीं, जड़ है। तातैं भो भव्य ! जे विवेकी हैं तिनकौं अजीव विषैं जीव मानना योग्य नाहीं। ऐसैं मेघ अचेतनत्व विषैं इन्द्र पद देवनाथ मानने का सरधान मिटाय

जथावत सर्वज्ञ केवली भाषित सरधान कराया। अरु जाके मत विषैं मेघकौं देवनाथ इन्द्र मानें ताके आप्त आगम पदारथ सत्य नाहीं होय हैं। इति मेघ जड़कौं देवनाथ मानैं था ताका सन्देह निवारक कथन। ८।

आगैं और भी कोई भोले जीव मन्द ज्ञान तैं अजीवतत्त्व में जीवतत्त्व का भाव मानैं हैं। इस अचेतन काल द्रव्यकों ऐसा कहैं हैं। जो यह कालद्रव्य है सो यम है। सो यह भगवान हजूर के पास का रहनेहारा सेवक है। सो यह भगवान की आज्ञा पाय जीवनकों शरीर में तैं काढ़ ल्यावै है। यह यम महानिर्दयी है। सो जीव मोह के योग तैं कुटुम्ब नहीं तज्या चाहै हैं। तिन कुटुम्ब में तथा ता तन में सुखी हैं। ताकौं सोंटा तैं मारि-मारि महादुखी करि जोरावरी शरीर तैं काढ़ि ल्यावै हैं। केई जीव, भगवान के भगत हैं तिनकूं मारै नाहीं। तिनके तन में छापे तिलक कण्ठ में काष्ठ की माला देखि वाकै तन तैं दूर तैं ही विनय तैं काढ़ लावे हैं। परन्तु छोड़ता काहूकौं नाहीं। फेर कैसा ही समय होय, रात होय दिन होय, शीत उष्ण, बरसा, सुखिया, दुखिया होय, शादी होय या गमी होय, भोजन करता होय, सूता होय, धनधारी होय, रोगी होय, निरोगी होय इत्यादिक चाहे जैसा समय होय; परन्तु दया रहित यम काहू कौं छोड़ता नाहीं। ऐसा विभ्रम उपजाय कैं अजीव तत्त्व विषैं जीवत्व-भाव की कल्पना करैं हैं। तिनकौं कहिये है। हे भाई! भगवान तौं काहू कौं मारता नाहीं और काहू कौं मारवे की आज्ञा भी करता नाहीं। वह भगवान जगत् का पिता सर्व का रक्षक दयानिधान, वीतराग, केवल-ज्ञानी, शुद्ध आत्मा, निर्दोष काहू के मारनैं का विचार भी करै नाहीं। यहां भी लौकिक में किसी कौं कहकैं काहूकौं कोई मरवावैं तौ ताकौं भी पाप लगाय दण्ड पहुंचाइये है। तातैं अल्प से धर्मधारी जीव होय हैं सो भी पापतैं डर ऐसा वचन नाहीं कहैं जो तूं याकौं मार। कोई कषाय के वश होय कहै ही, तौ ताके धर्म कूं दोष लागै और लौकिक में कहैं यह महापापी है, यानैं फलानेंकौं फलाने के हाथ मराया है, ऐसा लोक भी कहैं हैं। शास्त्रनिविषैं भी ऐसा ही उपदेश दे हैं। जो मन-वचन-काय, कृतकारित अनुमोदना इनका पुण्य-पाप में फल एक-सा है। तौ हे भाई! तूं विचार। जो जगपति दयानिधान वीतराग भगवान, पर के मारवे का वचन कैसे कहैं। तातैं ऐसा दोष भगवान को लगावना योग्य नाहीं। जो कोई निर्दोष कौं दोष लगावै ताकौं महा-पापी कहिये है। तातैं भो भव्य! भगवान है सो तौ निर्दोष है। वीतराग, दया भण्डार, सर्व का रक्षक है।

तिस भगवान के वचन हैं सो सर्व जीवकौं अमृत समान सुखदायी हैं। सो भी अमृत तं तौ तन का आताप ही मिटै है। भगवान के वचन-अमृत तैं जन्म-मरण आताप मिटै है तातैं भगवान का वचन परघात रूप होता नाहीं और जो यमकूं तूं जीव मानै है। सो यम कोई जीव वस्तु नाहीं। जाकौं तूं यम कहै सो काल द्रव्य जड़ है, जीव नाहीं। इस संसार विषैं षट् द्रव्य हैं तिनमें एक जीव और पांच अजीव हैं। तिन अजीव द्रव्यन में भी एक पुद्गल द्रव्य तौ जड़ मूर्तिक है बाकी चार अमूर्तिक हैं। तिन अमूर्तिन में सर्व भिन्न-भिन्न गुण पर्याय सत्ता धरं हैं। तिनमें एक काल द्रव्य है ताका गुण तौ वर्तमान है। ताकी व्यवहार पर्याय समय, घटी, पहर, दिन, पक्ष, मास, वर्ष, पूर्व, पल्य, सागर है सो यह समय-समय करि हो, जीव की जैसी-जैसी पल्य सागरन आदि की आयु है सो बीतती जाय है। जा जीव ने पूरव भव में जेते समयन का आयु बान्ध्या है। तैसा स्वासोच्छ्वास भोगि पर्याय पूरण करि परगति कों जाय है। ताका नाम भोरे या कहैं हैं कि काल ले गया। सो यम कोई चेतना नहीं था। ये ही काल द्रव्य की व्यवहार पर्याय समय-समय करि प्रवर्त्तती पलक, घरी, दिन, पक्ष, बरष तैं जाय है। सो जाका जितना आयु होय तेते समय ही रहै, पीछे तन तजै। बन्धी आयु के समय भोग लिये पीछे एक समय नहीं रहै है। देव, इन्द्र चक्री आदि ये भी तिथि पूरण भये पीछे एक घरी भी नहीं रहैं। जा समैं थित पूरी हो, आत्मा काय तजै है। ताकौं भोले प्राणी कहैं हैं। जो याकौ यम ले गया। सो काल तौ जीव नाहीं, जो जीवकौं ले जाय यह काल द्रव्य तौ जड़ है अरु जड़त्व ही ताकी पर्याय हैं। सो व्यवहार पर्याय तौ अपनै स्वभावमयी समय-समय प्रवर्त्तती जाय सो तौ अनन्त काल अनन्त परिवर्तनमयी होते चले जांय हैं। तिनमें इन संसारी जीवन की थिति के भी समय पूरण होते चले जांय हैं। सो थिति पूरण का नाम मरण कहिये है। सो यह इस जीव ही का उपारजा (किया) है। सो शुभ परिणामन तैं तौ देवन की तथा उत्कृष्ट भोग भूमि की आयु-कर्म पावै है। पाप-कर्म तैं नरकादि का उत्कृष्ट आयु-कर्म पावे हैं। भली जांयगा ऊँच कुल में उपजि हीन आयु पाय मरण करै सो पर-जीवन की हिंसा का फल जानना। जैसी-जैसी इस जीव की परणति शुभाशुभ भई, तेती ही थिति पाई, अरु वह पूरण भये पर्याय तजता भया। तातैं हे भाई ! तूं ऐसा भ्रम तजि, कि कोई, यम जीवनकौं ले जाय है। सो यम (काल) कोई जीव नाहीं, जड़ है। तातैं जाके मत विषैं काल जड़ द्रव्य कौं यम नामा जीव मानते

होय ताके आप्त, आगम, पदारथ असति हैं। ऐसे काल कौं यम नाम जीव माननेवाले का भ्रम दूर करि शुद्ध सरधान कराया। इति काल द्रव्य-जड़ कौं यम माननेहारे जीवन का सरधान पलटन कथन। ६।

आगे केई मतवारे अजीव वस्तून तैं जीवतत्त्व वस्तु उपजते मानैं हैं ताका सम्बोधन कथन कहिये है। केई अल्पज्ञानी, पञ्च अजीव वस्तूनकों मिलाय कर जीव की उत्पत्ति मानैं हैं ऐसा कहैं हैं कि जो जीव वस्तु जुदी ही नाहीं, अजीव तत्त्वन के मिलाप तैं एक जीव शक्ति उपजै है। जैसे—अजीव वस्तु-जड़ द्रव्य जे महुआ बेरजड़ी, गुड़, दही इत्यादि अचेतन वस्तु विषैं—भिन्न-भिन्न देखिये तौ मद शक्ति नाहीं अरु इन सबनकौं इकट्ठी करि यन्त्र में धरि इन सबका अर्क काढ़िये है, ता अर्क जो दारू, ता विषैं मद-शक्ति प्रगट होय है। सो मद भये नाना शक्ति प्रगट होय अनेक जाति के चरित्र जीव ताके पीये बरैं हैं मद उतर गये नाना कौतुक करने की शक्ति मिट जाय है। तैसे ही पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश—इन पंच तत्त्व के मिलाप कर जीव-शक्ति प्रगट होय। भिन्न-भिन्न देखिये तौ जीवत्व-शक्ति काहू में नाहीं, मिलाप तैं जीव होय है। जब शक्ति प्रगट होय तब नाना देखने-जाननैमयी क्रिया करै है। अरु जब तत्त्वन का मिलाप छूट जाय, तब पंच ही तत्त्व अपने-अपने तत्त्वन विषैं मिल जांय हैं। तब शक्ति भी मिट जाय है। तहां वे एक दृष्टान्त देय अपना मत पोषैं हैं सो सुनो।

दोहा—पवन पैंच आँटी परी, धर्‌यौ वधूर्‌यौ नाम। निकस पैंच बाहर पर्‌यौ, नाम ठाम नहिं ग्राम ॥ १ ॥

ऐसा इस तत्त्ववादी के मतमैं कह्या है जो पवन चलती मैं (वेगमैं) आँटी पड़ गई, ताके योगतैं रज, बालू, रेत, पत्ता, तिणकादि पदारथ उड़ने लगे, जो सबनै देखे। तब बाका नाम सबने बधूरच्या धरच्या। विस्तार भया पीछे पवन का पेच पड्या था सो मिट गया। तब अँधूरे का भी नाम मिट गया तैंसे ही अँधूरे की नांई पंच तत्त्वन का मिलाप मिटता नाहीं, तेते कालतौ जीवनामा विकार प्रगट भया और सबने देखा, परन्तु जब तत्त्व बिछुरै सो तो अपने-अपने तत्त्वन में मिलै। तब देखिये तौ जीव तत्त्व तो कछू वस्तु नाहीं। ऐसा केई तत्त्ववादीन का मत है। तिनके मिथ्यात्व दूर करने कौं स्याद्वादी कहैं हैं। भो तत्त्ववादी! तूं सुनि सिंहनो कै गर्भतैं मृगन का अवतार होता नाहीं। मृगी के गर्भतैं सिंह का अवतार होता नाहीं। तैसैं

ही जड़-अचेतन वस्तून तं चेतन पदारथ वस्तु होती नाहीं। जीव वस्तून तं अजीव वस्तु होती नाहीं, ऐसा नियम है जो पंच जड़ तत्व तैं जीव होता तो पंच तत्त्वनतैं लोक भर्‍या है सो हर कोई पंचतत्व मिलाय जीव तत्व बनाय लेता। पुत्र-कलत्र करने कूं काहे कौ कोई उपाय करते। हे तत्ववादी! पंचतत्त्व मिलाय करि तूं हमारे पास पांच जीवतत्व बनाय तौ सही, देखें कैसैं बनाइए है। जैसे—तैंने दारू का दृष्टान्त दिया, सो जैसे—गुड़-दही, मऊआ, विरजड़ी इत्यादिक मिलाय हर कोई दारू कर लेय है तैसे एक-दो जीव तूं भी बनाय लेयं। अरु तूं कहेगा, मेरे बने तौ नाहीं बनैं। तो हे भाई! ऐसा सरधान झूठा है। वृथा तूं काहैकौ हठग्राही होय है। अजीव वस्तु तैं जीव वस्तु होती नाहीं। संसार विषैं जीव और अजीव—ये दोय तत्त्व अनादि-निधन हैं। यह अजीव वस्तु तैं कर्‍या, जीव होता नाहीं। तातैं जाकै मत विषैं पंच अजीव तत्त्वन का जीव होता मानै, ताके आप्त, आगम, पदारथ, असत्य हैं। ऐसे अजीव का जीव तत्व होता माने था, ताकौं समझाय, यथा-योग्य जिन भाषित तत्वन का सरधान कराया। इति तत्त्ववादी व पंचतत्व अजीव तैं जीव होता मानै था ताका सम्वाद कथन। २०। अब इन एकान्तवादीन के एक पक्ष कूं मिथ्यात्व बताय इनहीं के वचन तिनको केई नय करि स्याद्वाद मततैं मिलाय, सत्यमैं बताईए है। जैसे—अन्धन का हाथी, अन्धन के वचन करि एक पक्षतैं असत्य हैं अरु नेत्रन-वाला, अन्धन के वचन मिलाय सबकौं हाथी कहै, कोई-कोई नय अन्धन के हाथी कहने के वचन सत्यमैं बतावै, तैसे ही कथन कहिए है। भो संसार विषैं एक आतमा माननेहारे! जो तूं एक ही आतमा की सर्व लोक में सत्ता मानै है सो या नय करिकैं तौ तेरा शब्द असत्य बताय आये। जैसे—अन्धा दगलो की बाँह ऐसा हाथी मानै, सो तो असत्य है, ऐसा हाथी होता नाहीं। तो इन अन्धे का वचन कोई नयतैं सत्य है। ऐसे ही तेरा सब संसारमैं आत्मा है सो सर्व बात तेरी या नयतैं सत्य है। सो तूं सुनि इस संसारमैं अनन्ते आतमा भिन्न-भिन्न सत्ताकौं धरैं, सर्व लोकमैं सूक्ष्म जाति के भरे हैं। पृथिवी कायिक सूक्ष्म, तेजकायिक सूक्ष्म, वायुकायिक सूक्ष्म और वनस्पति-कायिक सूक्ष्म—इन पंचस्थावर सूक्ष्मन करि यह लोक भर्‍या है। घी घटवत्। जैसे—घी का घड़ा भर्‍या है। तामैं कोऊ जगै खाली नाहीं। तैसे ही यह लोक सूक्ष्म जीवन तैं भर्‍या है। तहाँ वनस्पति सूक्ष्म तौ अनन्त हैं। चारि स्थावर सूक्ष्म असंख्यात हैं। सो सर्व सूक्ष्म जीवन करि पूरित है। कोई स्थान खाली नाहीं जल, थल, अग्नि, वायु,

आकाश, कंकर, पत्थर, घट, पट, सर्व जगै सूक्ष्म जीव भरचा है। जीव बिना कोई क्षेत्र नाहीं। तेरा वचन सत्य होय है। ऐता विशेष जानना, जो तेरा वचन एक सत्ता रूप सर्व जीव, सो तो असत्य है और सर्व जीवनि की सत्ता भिन्न-भिन्न है। यह जिन-वचन सत्य है। तातैं धर्म उपदेश भी सम्भवै और पुण्य-पाप फल भी सम्भवै है। तातैं सर्व संसारमैं जीव भरि-पूर हैं। परन्तु एक सत्ता नाहीं। सर्व की सत्ता भिन्न-भिन्न हैं। ऐसा श्रद्धान कर। इति कोई नय तैं सर्व संसारमैं घट, पट, जल, पवन, पानीमैं आत्मा है ऐसा कथन आगे अवतारवादी का वचन कोई नय प्रमाण बताइये है। अहो अवतारवादी ! तू मोक्ष आत्मा कौं अवतार मानै है सो मोक्ष दोय प्रकार है एक तो सालोक मोक्ष है सो भोले जीवतौ सालोक कौं ही मोक्ष कहैं हैं। सो सालोक मोक्षतौ ताकौं कहिए जो या चारि गति समानि जनम-मरण दुख सहित होय। इन्द्रियजन्य सुख बहुत होय। जीवना एक शरीरतैं बहुत होय। सागरों पर्यन्त असंख्यात वर्ष ताईं जीवना होय। ऐसा इन्द्रलोक ता इन्द्रलोककौं भोले जीव मोक्ष कहैं हैं। इहाँ कोई कहै, देवलोक को मोक्ष कौन नयकरि भोले जीवन नैं मानी ताकौ कहिये। हे भव्य ! मोक्ष कर्म-रहित है। तहाँ तिष्ठते सिद्ध, सो महासुखी हैं; कबहूँ मरैं नाहीं। तातैं तिन मोक्ष जीवनकौं अमर कहैं हैं। इन्द्रलोक के देव भी दीर्घ आयुधारी हैं। सो मनुष्यनि अपेक्षा, अत्यन्त जीवैं हैं। मनुष्य के असंख्याते भव बड़ी-बड़ी आयु के होंय तो भी देव का एक भव पूरण नहीं होय। देव का आयु-कर्म बड़ा है। तातैं शास्त्रनमैं देव का नाम अमर है और सिद्धन का नाम भी अमर है सो अमरपने की कल्पना करि देवलोककौं भोले जीवननैं मोक्ष मानी है। सो बालक ज्ञानी, ताही तैं इन्द्रकौं भगवान जानि ऐसा कहैं हैं। जो मोक्षमैं नाना रतनमई महल हैं। तहाँ भगवान विराजैं हैं। बड़े-बड़े देव, दानव, भगवान के पास हस्त जोड़े खड़े हैं अनेक अपसरा भगवानपै निरत गान करैं हैं। ऐसा अनेक सुखन सहित भगवान हैं। इनकौं आदिलै बहुत पंचेन्द्रिय-जनित सुख दीरघ जानि भोले प्राणीन तैं याका नाम सालोक मोक्ष कहिए है। सो इस सालोक मोक्ष का नाथ इन्द्र है। सो भोले जीव इन्द्र को भगवान मानैं हैं। इन्द्रलोक को मोक्ष मानैं हैं सो हे अवतारवादी भव्य ! इस सालोक तैं इन्द्र मरि अवतार धरै है सो या नयतैं अवतार मत प्रगट्या है और दूसरा निरालोक मोक्ष है। सो यह मोक्ष अष्ट कर्मन के नाशतैं शुद्ध परिणति के धारी यतीश्वरों को

होय है। जब यह आत्मा कर्म नाश, तन छोड़ि, मोक्ष होय। सो फेर संसारमैं अवतार नाहीं लेय है। याका नाम निरालोक मोक्ष है। या मोक्षमैं जनम-मरण नाहीं, इन्द्रिय-जनित सुख नाहीं, तन का पुद्गलीक आकार नाहीं। निरंजन, निराकार, निर्दोष, शुद्ध भगवान सिद्ध हैं। सो निरालोक मोक्ष जानना। भो अवतारवादी भव्य! यह शुद्ध मोक्ष है इहाँ तैं अवतार नाहीं होय है ऐसा जानना। तेरे मत का वचन सालोक मोक्ष जो इन्द्रलोक, तहां तैं अवतार जानना। इति अवतारवादी का मोक्ष तैं अवतार कथन। आगे क्षणिकमती नय का स्थापन। जो एक नयतैं तौ असति है और कोई नयतैं आत्मा क्षणभंगुर है ऐसा कहिए है—भो क्षणिक मतवादी भव्य! तूं एक शरीर में अनेक आत्मा छिन-छिन आवते मानै है। सो तेरा मत तोकूं प्रत्यक्ष असत्य बताया। सो या नय तौ तेरी खंडी गई। अरु जा नय तैं आत्मा क्षणभंगुर है, सो तोकौं जिन-आज्ञा-प्रमाण आत्मा में क्षणभंगुरपना कहिए है, सो सुन। एक शरीरमैं तिष्ठता इस जीव ने अपनी विशेष आयुकर्म के जोगतें, अनेक अल्प आयु के धारी मनुष्य, तिर्यंचन की पर्याय विनशती देखी। सो यह निकट संसारी जीवन की पर्याय विनशती देख, उदास होय विचारता भया। जो मेरे देखते एती पर्याय उपजीं, एती पर्याय विनशीं, सो संसार में जीवों की पर्याय क्षणभंगुर है। ऐसा क्षणभंगुर जगत्-जीवों का जीवन है। ऐसी ही अपनी पर्याय क्षणभंगुर जानि, उदास होय, राज-सम्पदा तजि, दीक्षा अङ्गीकार करैं हैं। ऐसे क्षणभंगुरपना जानना है। सो कल्याण करता है। एक शरीर में ही आत्मा रहता नांही, कबहूं देव होय मरै है। कबहूं मनुष्य होय मरै है। कबहूं पशु होय मरै है। कबहूं नारकी होय मरै है। ऐसे चारि गति में अनादिकाल का परिभ्रमण करै है, कहीं थिर रहता नांहीं। थिरि रहने का स्थान एक मोक्ष है। ऐसा विचार, संसार दशाकूं क्षणभंगुर जानि, संसारतैं उदास होय, परिग्रह तज करि, मोक्षाभिलाषी अपना कल्याण करैं हैं। तातैं भो भव्य क्षणिक मतवादी! तूं संसार में आत्मा तौ सदैव शाश्वत जानि। परन्तु पर्याय चारगति रूप है सो क्षणभंगुर जानि। ऐसा श्रद्धान करि तो तोकौं कल्याण करता होयगा। इति क्षणिक मतीन का भ्रम निवारण कथन। आगे केई कर्तावादी आत्माकूं भगवान उपजावै हैं ऐसा मानें हैं। ताका श्रद्धान तौ आगे खण्डन कऱ्या है। परन्तु कर्त्तापना भी कोई वस्तु का अङ्ग है सो जिन-आज्ञा-प्रमाण कर्त्ता का स्वभाव कहिए है। भो कर्त्तावादी भव्यात्मा! तूं नवीन आत्मा का कर्त्ता भगवान मानै, सो नय तौ तेरी असति है; परन्तु

कर्त्ता का शब्द कोई वस्तु का अङ्ग है ताका छल लेयकैं भोरे जीवन ने कोई भगवान कर्त्ता जान्या है सो सांसारिक जीवों की पर्याय का कर्त्ता भगवान है, सो तौ नांहीं। अब संसारी जीवन की पर्यायन का कर्त्ता बताईए है। सो कर्त्ता के भेद दोय हैं। एक तौ भावकर्म कर्त्ता है। दूसरा द्रव्यकर्म कर्त्ता है। सो भाव कर्मन का कर्त्ता तौ यह संसारी आत्मा है। अपने रागद्वेष भावन तैं शुभाशुभमरि च्यारिगति रूप उपजावे योग्य विकल्प का करना सो भाव-कर्म है। अरु इन भाव-कर्म के अनुसार प्रवृत्ते जो लोक विषैं तिष्ठते पुद्गलस्कन्ध, ज्ञानावरणादिक कर्मरूप, सो द्रव्य-कर्म हैं। सो इन द्रव्य-कर्म के जोगतैं आतमा देव, मनुष्य, नारक, पशु एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय आदि की उत्पत्ति रूप आकार सो नाना प्रकार जे शुभाशुभ शरीर तिनका कर्त्ता द्रव्य-कर्म है। सो जैसा-जैसा शरीर आकार होय तैसा-तैसा भीतर आत्मा का आकार होय है। ता प्रमाण आत्मा सुख दुख का भोक्ता होय है। हे कर्त्तावादी! इन शरीर, च्यारि गति का कर्त्ता तौ द्रव्य-कर्म पुद्गल है। भाव-कर्म रागद्वेष है, ताका कर्त्ता आतमा है। जैसा-जैसा भाव-कर्म उपार्जता है, तैसा-तैसा शुभाशुभ शरीर होय है। तातैं याका कर्त्ता आतमा ही है। ऐसा जानना जो भगवान काहू का कर्त्ता नाहीं। ताही तैं धर्मात्मानकूं पाप कार्यन का कर्त्तापना तजि, शुभ कार्यन का कर्त्ता होना योग्य है। इति कर्त्तावादी की एक नय मिटाय जीवादि तत्त्वनि का कर्त्तापना कोई नय बताया। आगे नास्तिकमती सर्व प्रकार जीव का अभाव मानै है। ताका एकान्त छुड़ाय, आत्मा कोई नय करि नास्ति भी है ऐसा कथन बताईए है। भो नास्तिकमती! तेरा मत जीवकौं सर्व प्रकार नास्ति मानै है। सो यह एकान्त मत तौ असति है। जीव-द्रव्य का कबहूँ नाश नाहीं। परन्तु जा अपेक्षा जीव नास्ति भी है ऐसा उपदेश जिन-भाषित तत्त्वन की नय करि तोकौं बताईए है, सो तूं चित्त देय सुन। भो भव्य! जीव, द्रव्यार्थिक नयतैं तौ सदैव शाश्वत है। सो द्रव्य वस्तु का तौ कबहूँ नाश नाहीं और देव नारकादि च्यारि गति पर्याय हैं सो नास्तिरूप हैं। सो पर्याय के नाश होते जीव का नाश कहिए है, सो व्यवहार नय है। या व्यवहार नय तें पर्याय विनशते लौकिक में ऐसा कहैं हैं। जो यह देव जीव मुआ (मऱ्या), यह नारकी जीव मुआ। जो यह नर जीव हुआ। यह तिर्यञ्च जीव हुआ। ऐसा कहैं हैं। सो पर्याय नाशतैं जीव की नास्ति कही, सो पर्यायार्थिक नय जानना। इति नास्तिक नयकौं सर्व प्रकार असत्य बताय, कोई नय नास्ति

कहैं ऐसा कथन। आगे केई मतवाले मोक्ष आत्माकौं सर्व प्रकार अज्ञान मानैं, ताका एकान्त मिटाय कोई नय तैं ज्ञानरहित मोक्ष जीवकौं बताइए है—

भो अज्ञानवादी भव्य आत्मा! तूं सर्व नयकरि मोक्ष आत्मा ज्ञानरहित मानै है। अरु तूं ऐसा कहे है। जो आत्मा में पर-पदारथ देखने-जानने की शक्ति है सो ही उपाधि है। जब पदारथ के देखने-जानने की शक्ति मिटेगी तब जीव को मोक्ष होयगा। ऐसा एकान्त मत तेरा है सो तो असत्य तोकौं पूर्व बताया हो। अब ज्ञानरहित मोक्ष आत्मा है। यह वचन कोई नय है सो तोकों बताइए है। जो या ज्ञान तैं रहित मोक्ष जीव है, सो तूं चित्तदेय सुनि। देखना-जानना तौ जीव का स्वभाव है तातें ज्ञान का अभाव भये तौ आत्मा का अभाव होय। तातें जेते इन्द्रिय जनित पदारथन को देखना-जानना, सो आत्मा में उपाधि है, तबलौं मोक्ष आत्मा नाहीं। इन्द्रिय जनित ज्ञान का अभाव होय, केवलज्ञान होयगा। तब जीव मोक्ष होयगा। तातैं उपाधि ज्ञान जो इन्द्रिय जनित ज्ञान, सो तो इन्द्रिय ज्ञान है। तबलौं पदारथन में राग-द्वेष होय है। जब इन्द्रिय ज्ञान मिटि केवलज्ञान होयगा, वह अतीन्द्रिय ज्ञान है, सो यह अतीन्द्रिय ज्ञान आत्मा का स्वभाव है। याके भए पदारथ तैं रागद्वेष नाहीं होय है। तातैं भो भव्य! ज्ञानवादी सुनि, मोक्ष आत्मा है सो सर्वज्ञ लोकालोक का जाननहारा, घट-घट का अन्तरयामी भगवान, ताके अतीन्द्रिय ज्ञान है सो कर्म-बन्ध-रहित है। सो तो मोक्ष जीव का स्वभाव है, ऐसा जानना। मोक्ष आत्मा मैं इन्द्रिय ज्ञान नाहीं। यह इन्द्रिय ज्ञान है सो विनाशिक है, चंचल है, हीन ज्ञान है, कर्म बंध करता है। सो यह इन्द्रिय-ज्ञान-रहित, मोक्ष आत्मा जानना। ऐसा इस नयतैं मोक्ष आत्मा ज्ञान-रहित कह्या। इति मोक्ष आत्मा, इन्द्रिय-ज्ञान-रहित कोई नय है, सो कथन कह्या। आगे केई मतवाले जैसा ही जीव मरे तैसा ही उपजता मानैं हैं, सो इसका एकान्त मत खंडकैं अब कोई नय करि जैसा मरै, तैसा ही उपजै है, ऐसा कहैं हैं। भो स्थिरवादी! तेरा मत व तेरी नय तो असति है, सो तोकों कह्या अब कोई नय तेरा वचन सत्य कहैं हैं, सो सुनि जो तूं जानैं कि जैसी पर्याय छोडै सो ही पर्याय उपजै, सो सर्व प्रकार तेरा एकान्त मत तौ असत्य है। कोई नयतैं वही पर्याय धरै है, कोई और भी पर्याय धरै है, सो तूं सुनि। जिनदेव कह्या है ता प्रमाण कहिये है—जो मनुष्य मरै तो शुभ भावनतैं देव होय, अशुभ भावनतैं नारकी व पशु होय और कोई सरल भावतैं मनुष्यतैं मनुष्य भी होय

उपजै है, ऐसा जानना और तिर्यंच मरै सो शुभ भावनतैं देव होय, अशुभ भावनतैं नारकी होय, कोई सरल भावतैं मनुष्य होय तथा आर्त-भावनतैं पशुमरि पशु भी होय है, ऐसा जानना और नारकी मर नारकी होता नाहीं, यह निश्चय है और देव मर देव होता नाहीं। ऐसैं कोई जैसा मरै, तैसा ही उपजै, और कोई मरै, और ही पर्याय में उपजै है। ऐसा जिन भगवान ने कह्या है और तेरे मत में या कही कि मरै सो ही उपजै। सो पर्याय नय तौ बनै नाहीं। सो तूं ऐसा जानि, कि जो मरै सो ही उपजै। आत्मा ही पर्याय तजि मरण करै है सो ही आत्मा और पर्याय में उपजै है। सो ही आत्मा, अनेक पर्याय में मरण करै है। यही आत्मा, अपने भाव प्रमाण शुभाशुभ गति में उपजै है। सो ऐसे अनन्तकाल भ्रमण करते भया। यही आत्मा मर्‌या, यही उपज्या, ऐसा जानना। इस नयतैं यह वचन सत्य है कि जो मरै सो ही उपजै है। मोक्ष भये पीछे मरता भी नाहीं, अरु उपजता भी नाहीं, ऐसा जानना। इति स्थिरवादी का वचन कोई नय करि सत्य बताया ऐसा कथन।

इति सुदृष्टितरङ्गिणी नामग्रन्थमध्ये एकान्तवादीन के नय वचन असत्य किए। कोई नय, वचन प्रमाण बताए। जैसे एक अङ्ग तो हस्ती नाहीं, सर्व झूठे हैं। अङ्गन का समूह हस्ती है। कोई नय, एक अङ्ग करि सत्य भी है। ऐसा कथन करनेवाला चतुर्थ पर्व समाप्त। ४।

इति सन्धि में अनेक मतनि का विचार किया, ऐसे अन्य मतन के धर्मार्थी जीव थे तिनको समझाय, अब जिनदेव करि भाषे जीव अजीव तत्त्व तिनका स्वरूप कहिए हैं। सो मोक्षाभिलाषी जीव होंय, सो इन तत्त्व भेदनकौं समझैं। सो जा मोक्ष के निमित्त, तत्त्व भेद जानिए, सो प्रथम मोक्ष का स्वरूप कहूँ हौं।

भो मोक्षाभिलाषी! हो तुम धर्मार्थी हो, तातैं प्रथम मोक्ष का स्वरूप सुनौ। पीछे तुम्हारे इस मोक्ष की इच्छा होयगी, तौ तुमकौं मोक्ष का मार्ग भी बतावेंगे। कैसा है मोक्ष? जेते संसार में जनम-मरण, भूख-प्यास, वात-पित्त कुष्टादि रोग—इन अनादि अनेक दुख हैं। तिन सर्व दुख-दोषतैं-रहित है और अविनाशी, निराकुल, इन्द्रिय-रहित, सुख का स्थान है और अनुपम सर्व लोकालोकवर्ती पदारथ का जाननहारा, ऐसा केवलज्ञान-सहित भगवान पद, जगत् के पूज्यवे योग्य है। ता मोक्ष कौं इन्द्र, देव, चक्री, गणधर, मुनि, सर्व सदैव ताकौं वांछैं-पूजैं हैं। तहां के सुख अखण्ड हैं, अविनाशी हैं, सर्व कर्म मल रहित हैं, निराबाध हैं तिनके सुख का कबहूँ अन्त

नांहीं है आर जेते संसार में देव, इन्द्र, अहमिन्द्र, चक्री, कामदेव, विद्याधर—इन सबनि के सुख अनन्तकाल के बीते; सो सबनिकौं इकट्ठे करिए, तौ भी मोक्ष सुख के एक समय मात्र भी नाहीं होय हैं। इहाँ प्रश्न—जो अहमिन्द्र अरु इन्द्र के सुखतैं भी बहुत सुख और कहा होयगा, सो कहो? ताकौं कहिए हैं। भो भव्य! सुनि, जैसे—कोई पुरुष ऊँट की असवारी किए राह में ऊँट को दौड़ावता, चल्या जाय है। सो ताके पीछे एक मारने को वैरी पीठि पीछे लागा, सो वाकौं देखि भय खाय ऊँट दौड़ाया, सो कुदाता चल्या जाय है। पीछे वैरी भी चल्या आवे है। ऐसे जाते राह (रास्ते) में भूख लागी, अरु प्यास लागी। सो ताके पास लाडू थे सो खाता जाय है। अरु प्यास लागी सो ठण्डा नीर था सो बेला (कटोरा) भरि, पीवता जाय है। सो कछु अन्न-पानी मुख में, कछू भूमि में पड़ता जाय है। ऐसे पुरुष ने ऊँटपै लाडू खाय, ठण्डा पानी पीयकै, क्षुधा तिरषा मेटि, सुख मान्या है! अरु एक पुरुष अपने घर के बाग में सघन छाया में तिष्ठा ताके पासि अनेक सज्जन सुखकारी बैठे हैं। सो द्वेषी कोई नाहीं। सो या पुरुष ने भूख तिरषा मेटवेकौं ठण्डा जल पीया भोजन खाया अरु सुखतैं सोय रह्या। सो इन दोनों में घना (बहुत) सुख किसकैं? लाडू जलतौ ऊँटवाले ने भी खाये। लाडू जल घर बैठनेवाले ने भी खाये सो जैसा अन्तर इनके सुख में है। तैसा अन्तर देव इन्द्र, अहमिन्द्रन के सुख में अरु मोक्ष के सुख में है। मोक्ष का सुख तौ निराकुल है, भयरहित है अविनाशी है और इन्द्र अहमिन्द्र देव के सुख हैं सो विनाशिक हैं। इनके पीछे कालरूपी वैरी लागा है तातैं भय सहित सुख है। ऐसे सामान्य दृष्टान्त का भाव जानना। सो हे भाई! संसारी इन्द्रादिक के सुख इन्द्रिय जनित तिनतैं मोक्ष के अतीन्द्रिय सुखतैं अनन्तानन्त गुणा अन्तर है। तातैं जो भव्य सुख का अर्थी होय सो मोक्ष जावे का उपाय करौ। ऐसा उपदेश सुनि कोई भव्यात्मा मोक्ष सुख का अभिलाषी पूछता भया। हे गुरु नाथ! मोक्ष के सुख आपने सर्व दुख-रहित कहे। सो मोक्ष कैसे पाईए ताका मार्ग कहो। तब गुरु हैं सोई शिष्य के प्रश्नपाय ताके हितकूं कहते भये। भो भव्य! सुनि, सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र है। सो मोक्ष मार्ग है। सो हे भव्य सम्यग्दर्शन तैं तो मोक्ष का सरधान (श्रद्धान) होय है। मोक्ष अनन्त सुख का स्थान है। ऐसे श्रद्धान होते पीछे सम्यग्ज्ञान होय। तातैं मोक्ष-मार्ग जान्या जाय है। ता मोक्ष-मार्ग में चालिए है। तातैं प्रथम तौ श्रद्धान चाहिये पीछे जानपना चाहिये पीछे मार्ग में चलना होय है। तब वांछित स्थान

पहुँचैं हैं। तातैं हे भव्य तूं प्रथम तौ ऐसा सरधान करि कि मोकूं ऐसो मोक्ष कब होय? ऐसैं गुरु वचन सुनिकैं महाविनयतैं रुचि सहित पूंछता भया। भो गुरो सरधान का करावनहारा! सम्यक्त्व कैसे होय सो मोहि कहौ। तब गुरु या शिष्यकूं रुचिक जानि कहते भये। तत्त्वार्थसूत्र की फाकी—तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्। याका अर्थ—भो भव्य! तत्त्वन का श्रद्धान है सो ही सम्यग्दर्शन है। तब शिष्य कही भो गुरो! तत्त्व कहा सो कहौ। तब गुरु दया करि कही—भो वत्स! तत्त्व भेद जीव अजीव कर दोय प्रकार है। तब शिष्य कही—भो गुरो! जीव अजीव का स्वरूप मोहि विशेष समझाय करि कहौ। तब गुरु कहैं हैं। भो भव्य! तूं चित्त देय सुनि। अजीव का स्वरूप तोहि प्रथम कहों हौं। सो अजीव-द्रव्य पञ्च प्रकार है। धर्म-द्रव्य, अधर्म-द्रव्य, काल-द्रव्य, आकाश-द्रव्य, पुद्गल-द्रव्य—ये पञ्च द्रव्य अजीव हैं जड़ हैं। तिनमें धर्म, अधर्म, काल, आकाश—ए च्यारि अजीव-द्रव्य अमूर्तिक हैं। सो इनका स्वरूप आगे कहेंगे, तातैं यहां नहीं कह्या है और पुद्गल अजीव-द्रव्य है, सो मूर्तिक है, सो ताके दोय भेद हैं। एक तौ नो-कर्म, एक द्रव्य-कर्म। तहां जाकों देखि जों कर्म प्रगट होय, सो नो-कर्म। जैसे—अपने वैरीकौं देखि क्रोध प्रगट होय, सो वैरी कौं क्रोध का नो-कर्म कहिए तथा रूपवान स्त्रीकौं देखि विकार भाव होय, सो विकार भाव का नो-कर्म स्त्री है। ऐसे सर्वत्र नो-कर्म का स्वरूप जानना और द्रव्य-कर्म है, सो पुद्गलीक है। सो ताके तेईस भेद हैं। सो ही कहिए हैं; अणु, संख्याताणु, असंख्याताणु, अनन्ताणु, आहाराणु, आहार अग्राह्याणु, तैजस अणु, तैजस अग्राह्याणु भाषाणु, भाषा अग्राह्याणु मनोवर्गणा, मनो अग्राह्यवर्गणा, कार्मणवर्गणा, ध्रुववर्गणा, सान्तरवर्गणा, शून्यवर्गणा, प्रत्येक वर्गणा, ध्रुवशून्य-वर्गणा, बादर निगोद वर्गणा, बादर शून्य वर्गणा, सूक्ष्मनिगोदवर्गणा, नभो वर्गणा, महास्कन्ध वर्गणा—ऐसै ए तेईस जाति के पुद्गल वर्गणा के भेद हैं। सो अपने-अपने स्वभावरूप सदैव वरतैं हैं। ए सर्व भेद पुद्गल के, तीनलोक प्रमाण महास्कन्ध है तामैं तिष्ठै हैं। ए महास्कन्ध है सो सर्वलोक में जेतो (जितने) परमाणु हैं तिन सर्व का एक बन्धन रूप है। अनादि-निधन महाबज्र समानि महास्कन्ध जानना। तामैं असंख्यात परमाणु तो ऐसे हैं सो स्कन्धरूप नाहीं, एक-एकही हैं। असंख्याते स्कन्ध दोय परमाणु के हैं, असंख्याते स्कन्ध तीन-तीन परमाणु के हैं। ऐसे ही एक-एक अधिक परमाणून के स्कन्ध च्यारि परमाणु का स्कन्ध,

पांच का षट् आदि उत्कृष्ट संख्यात पर्यन्त जानना। सो ए संख्याताणु स्कन्ध हैं। अब या संख्याताणु स्कन्धतें एक अधिक परमाणु के असंख्याते स्कन्ध हैं। सो ए जघन्य असंख्याताणु स्कन्ध है। यातें एक परमाणु और अधिक के असंख्याते स्कन्ध हैं असंख्याते स्कन्ध ऐसे हैं जो उत्कृष्ट संख्यात तैं तीन-तीन परमाणु के अधिक जानना। च्यारि-च्यारि परमाणु अधिक के असंख्याते स्कन्ध हैं। पांच अधिक के असंख्याते स्कन्ध हैं इन अधिक उत्कृष्ट संख्याततें एक-एक परमाणु के स्कन्ध वधते उत्कृष्ट असंख्यात पर्यन्त जानना। सो एक-एक परमाणु के अधिक हैं सो असंख्याते असंख्याते जानना। उत्कृष्ट असंख्यात परमाणु से एक परमाणु अधिक के स्कन्ध असंख्याते हैं। सो यह जघन्य अनन्ताणून के स्कन्ध हैं। दोय परमाणु अधिक के स्कन्ध असंख्याते हैं। तीन अधिक, च्यारि आदि अधिक के स्कन्ध एक-एक जाति के असंख्याते स्कन्ध हैं सो सब अनन्ताणु पुद्गल स्कन्ध हैं। ऐसे संख्यात, असंख्यात, अनन्त परमाणु के स्कन्ध हैं। सो सर्व जाति के स्कन्ध असंख्याते असंख्याते हैं। ऐसे पुद्गल के स्कन्ध अनेक प्रकार हैं। तहां जे तैजस जाति के पुद्गल स्कन्ध हैं तिनका तौ तैजस शरीर होय है। भाषा जाति के पुद्गल स्कन्धन करि भाषा योग्य जो बेन्द्रिय आदि जीवन के यथायोग्य वचन बोलने की शक्ति लिये स्थान कण्ठादि बनि भाषा खिरै है। मन जाति की वर्गणा करि संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवन के हृदय-कमल में अष्टपाखड़ी का कमलाकार द्रव्य मन होय है। जातें आतमा के शुभाशुभ विचार की शक्ति होय है। बादर निगोदि वर्गणा के स्कन्धन तैं, बादर निगोदिया जीवन के शरीर बने हैं और सूक्ष्म निगोद वर्गणा के स्कन्धतें सूक्ष्म निगोदिया जीवन के शरीराकार होंय हैं और प्रत्येक जाति की वर्गणातैं प्रत्येक शरीरन का बन्धन होय है। कार्मण वर्गणातैं ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मरूप कर्म-स्कन्धमई ऐसा कार्मण शरीर होय है। कर्म होने योग्य होंय जे पुद्गल स्कन्ध सो कार्मण वर्गणा है। तहां आतमा के जैसे-जैसे राग-द्वेष भावन सहित आतमा परिणमै, ताही प्रमाण अष्टकर्म रूप होय कार्मण वर्गणा परिणमै है। सो अष्टकर्म कौन हैं। तिनके नाम कहिए हैं। ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, वेदनी, मोहनी, आयु, नाम, गोत्र, अन्तराय—ऐसैं ए अष्ट-कर्म तो मूल हैं तिनकी उत्तर प्रकृति एक सौ अड़तालीस हैं। ज्ञानावरणी के नाम; मतिज्ञानावरणी, श्रुतज्ञानावरणी, अवधिज्ञानावरणी, मनपर्ययज्ञानावरणी, केवलज्ञानावरणी—ए पंच हैं सो जिस-जिस ज्ञान के आवर्ण की हैं ते-ते ज्ञानकों घातें तातैं

इनका नाम आवरण कहिये है। ज्ञान नाम तौ जानपने का है। जातैं ज्ञेय जानिए, सो तौ ज्ञान है। सो ज्ञानपने की अपेक्षा तो एक है। अरु अब एक ज्ञान को जितना-जितना इन पंच ज्ञानावरणीननै आवरण्या है, तेता ज्ञान की पंच भेद करि कल्पना करी है। अरु जब इन आवरणीन का अभाव होय तब भेद-भाव मिटि एक ज्ञान भाव ही रहै है। पंच भेद ज्ञानावरणी के निमित्ततें कहिये हैं। ऐसा जानना और दर्शनावरणी प्रकृति नव हैं। सो प्रथम ही चक्षुर्दर्शनावरणी, अचक्षुर्दर्शनावरणी, अवधिदर्शनावरणी, केवलदर्शनावरणी—ए च्यारि दर्शनावरणी की हैं सो अपने आवरणे योग्य दर्शनकौं आवरणें हैं। निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, स्त्यानगृद्धि, निद्रा; प्रचला—ए नव दर्शनकौं घातैं हैं। यहाँ प्रश्न—जो दर्शन तौ च्यारि भेद रूप है और दर्शन की आवरणी नव हैं। सो च्यारि दर्शनावरण तौ च्यारि दर्शनकौं घातैं हैं। यह पंच निद्रा काहेकौं घातें हैं। ताका समाधान। च्यारि दर्शन के क्षयोपशम की घातक च्यारि दर्शनावरणी हैं। दर्शन की देखने रूप प्रवृत्ति ताकौं पंच निद्रा घातैं हैं। ऐसा जानना। आगे वेदनीय के साता, असाता—ए दो भेद हैं। सो मोह सहित जीवनकौं वेदनीय का उदय साता तौ अपना उदय बताय जीवकौं सुखी करै है और असाता के उदय तें मोही जीव दुखी होय। ऐसा वेदनीय हैं। आगे मोह-कर्म दोय भेद है—एक दर्शनमोह एक चारित्रमोह; तहां दर्शनमोह के भेद तीन हैं—मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व—ए तीन भेद हैं। चारित्रमोह के पच्चीस तिनके नाम—अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, संज्वलन—इन चारि चौकड़ी के क्रोध, मान, माया, लोभ—इन करि सोलह भेद जानना। नव हास्यादिक के नाम—हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद—ए पच्चीस चारित्र मोहनीय के हैं। इनका सामान्य अर्थ कहिये है—तहाँ अनन्तानुबन्धी क्रोध, महातीव्र पाषाण की रेखा सामानि। याका वासनाकाल अनन्त भव में भी नहीं जाय जातें एक बार क्रोध भया होय, तौ अनन्ते भव तांई तातैं समता भाव नाहीं होय। याके उदय से प्राणी अनन्तकाल संसार भ्रमै है। सो अनन्तानुबन्धी क्रोध जानना और अनन्तानुबन्धी मान महातीव्र पाषाण स्तम्भ समान। कठोर परिणामी प्राण देय, पै नमै नाहीं। याका भी वासनाकाल अनन्तकाल है। जातें एक बार मान खण्डना होय, तातैं अनन्तभवन में भी निशल्यभाव करि नमैं नाहीं, सो अनन्तानुबन्धी मान जानना और अनन्तानुबन्धी माया महातीव्र बांस की जड़

की गांठी समानि, वचन में कटुताई रूप भाव रहै, ताका वासनाकाल अनन्त है; जातें एक बार परिणति में द्वेष-भाव होय तौ तातैं अनन्ते काल में भी निशल्यभाव-सरलता नहीं होय। सो अनन्तानुबन्धी माया जानना। अनन्तानुबन्धी लोभ, महातीव्र किरम के रङ्ग समानि जैसे—वस्त्र फटै परन्तु किरम का रङ्ग नहीं जाय। ऐसा ही यह लोभ है। याका वासनाकाल अनन्त है। एक बार लोभ प्रगट भया पीछे अनन्तकाल गए भी समता भाव-निर्लोभता नहीं होय। ऐसे ए अनन्तानुबन्धी की चौकड़ी ही है। याके फलतैं अनन्तकाल संसार में भ्रमण नहीं मिटै। इनके उदय होते सम्यग्भाव नहीं होय। अप्रत्याख्यान की चौकड़ी—तहां अप्रत्याख्यान का क्रोध, सो हल रेखावत। जैसे—हल की रेखा वर्ष, छः महीना में वर्षादि कारणपाय मिटै। तैसें ही यह अप्रत्याख्यान क्रोध मिटै और अप्रत्याख्यान मान अस्थि के स्तम्भ के समान जगत्‌विशेष किए नमै है। तैसे ही यह मान कारणपाय विशेष काल गए पीछे मिटै भी है। अप्रत्याख्यान माया हिरन के सींगवत गांठिकौ धरै है। याकी माया बहुत काल गए मिटै है। अप्रत्याख्यान लोभ कुशुम्भ के रङ्ग समान है। जैसे—विशेष जतनतैं कुशुम्भ रङ्ग मिटै है। तैसे ही बहुत काल गए यह लोभ जाय है। ऐसे यह अप्रत्याख्यान की चौकड़ी, श्रावक के अणुव्रत का स्थान जो पंचमगुण-स्थान ताकौं रोके है याके उदय में पंचमगुण-स्थान नाहीं होय है। प्रत्याख्यान की चौकड़ी कहिए है। तहां प्रत्याख्यान क्रोध गाड़ी की रेखा समानि है। जैसे पांच-च्यारि दिन तथा पहर में तथा मास पक्ष में गाड़ी की रेखा मिटि जाय। तैसे ही अल्पकाल में प्रत्याख्यान क्रोध उपशान्त होय प्रत्याख्यान मान कछु मन्द है। जैसा काष्ठ का स्तम्भ अल्प जतन तैं नमैं तैंसे ही, स्तुतिमात्र अल्पकाल में उपशान्त होय है। प्रत्याख्यानी माया मेंढे के सींग में अल्पगांठि होय तैसे ही इस माया का उदय अल्पकाल होय मिटै। प्रत्याख्यान लोभ है सो हल्दी के रङ्ग समानि है। जैसे हल्दी का रङ्ग अल्प जतनतैं मिटै। तैसे ही प्रत्याख्यान लोभ शीघ्र ही मिटै। ऐसे प्रत्याख्यान की चौकड़ी है। सो अपने उदय मुनि-पद नहीं होने देय है। अब संज्वलन की चौकड़ी कहिए है—सो संज्वलन क्रोध महामन्द। जैसे जल रेखा तुरन्त मिटै, तैंसे यह संज्वलन क्रोध का उदय मिटै है। संज्वलनमान, उदय देय बेत समान तुरन्त मार्दव भाव होय। जैसे—बेत का स्तम्भ तुरन्त नमै है। संज्वलनमाया, गईया के सींगवत्, अल्प बांकी

लियें सरल है। याका उदय, तुरन्त होय तुरन्त मिटै है। संज्वलन लोभ पतङ्ग के रङ्ग समानि है। जैसे पतङ्ग रङ्ग तुरन्त मिटै, तैसे संज्वलन लोभ उदय होय, अल्प रस देय मिटै है। ऐसे संज्वलन की चौकड़ी अपने उदय होतैं यथाख्यात-चारित्र नहीं होने देय है। ऐसे तो सामान्य सोलह कषाय जानना आगे नो कषाय तहाँ जाके उदय जीव के हाँसि, कौतुक प्रगटै सो हास्य-कर्म है। जाके उदय जीवकूं पर-वस्तु शुभ लागै सुख उपजावै, सो रति-कर्म है। जाके उदय जीवकूं पर-वस्तु अनिष्ट लागै सो अरति-कर्म है। जाके उदय जीवकूं चिन्ता शोक होय, सो शोक-कर्म है। जा कर्म के उदय जीव का उर कम्पायमान होय, पर-वस्तु तैं भय उपजै सो भय-कर्म है। जा कर्म के उदय जीवकूं पर-वस्तु देखि ग्लानि उपजै, सो जुगुप्सा-कर्म है। जा कर्म के उदय जीवकूं स्त्रीके स्पर्श करने की अभिलाषा होय, सो पुरुषवेद-कर्म है। जा कर्म के उदय से जीवकूं पुरुष के सेवन-स्पर्श की इच्छा होय, सो स्त्रीवेद-कर्म है। जा कर्म के उदय युगपत पुरुष-स्त्री के स्पर्श की इच्छा रूप भाव होय, सो नपुंसकवेद-कर्म है। ऐसे चारित्रमोह की पच्चीस कहीं। दर्शन-मोह का स्वरूप आगे कहैंगे। आगे देव आयु का उदय जेते काल रहै, तेते काल देव का शरीर आत्मा तैं नहीं छूटै। जाके उदय मनुष्य का शरीर आतमा तैं नहीं छूटै, सो मनुष्य आयु है। जा कर्म के उदय जीव तिर्यंच गति को न छोड़ि सकै, सो तिर्यंच आयु-कर्म है। जा कर्म के उदय जीव नारकी का शरीर नहीं तज सकै, सो नारक आयु-कर्म है। ऐसे चार आयु जानना। आगे नाम-कर्म कहिये है, सो प्रथम ही वर्ण चतुष्क की कहैं हैं। सो तहां स्पर्श की आठ—जाके उदय शरीर कठोर होय, सो कठोर-कर्म है। शरीर कोमल होय, सो कोमल-कर्म है। शरीर भारी होय, सो भारी-कर्म है। शरीर हलका होय, सो हलका-कर्म है। शरीर उष्ण होय, सो उष्ण-कर्म है। शरीर शीतल होय, सो शीतल-कर्म है। शरीर चिकना होय, सो चिक्कन-कर्म है। शरीर रूखा होय, सो रूक्ष-कर्म है। आगे रस की—जाके उदय शरीर खाटा होय, सो खट्टा-कर्म है। शरीर मिष्ट होय, सो मीठा-कर्म है। शरीर कड़वा होय, सो कड़वा-कर्म है। शरीर कषायला होय, सो कषायला-कर्म है। चिरपरा होय, सो चिरपरा-कर्म है। आगे गन्ध की कहिये—जाके उदय शरीर में सुगन्ध होय, सो सुगन्ध-कर्म है। शरीर में दुर्गन्ध होय, सो दुर्गन्ध-कर्म है। आगे वर्ण कहिए है।

जाके उदय शरीर सुरख होय, सो लाल-कर्म है। जाके उदय शरीर सब्ज (हरा) होय, सो हरा-कर्म है। जाके उदय शरीर श्याम होय, सो श्याम-कर्म है। जाके उदय शरीर पीत होय, सो पीत-कर्म है। जाके उदय शरीर श्वेत होय, सो श्वेत-कर्म है। ऐसे वर्ण चतुष्क हैं। आगे संहनन षट् के नाम—बज्रवृषभनाराच, बज्रनाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलक, स्फाटिक—ए षट् हैं। अब इनका अर्थ—वृषभ नाम तौ नस का है। अरु नाराच नाम कीली का है। अरु संहनन नाम हाड़ का है। सो जाके उदय नस, हाड़, कीली, बज्रमयी होय, सो बज्रवृषभ-नाराच संहनन-कर्म है। जाके उदय शरीर में नसें तो बज्ररहित होंय अरु कीली, हाड़, बज्रमयी होय, सो बज्र-नाराचसंहनन-कर्म है। सन्धनि में दृढ़ कीली होय तीनों ही हाड़, कीली व नसें बज्ररहित जाके उदय होंय, सो नाराच-संहनन-कर्म है। जाके उदय सन्धनि में अर्ध कीलिका होय, अर्धनाराच-संहनन-कर्म है। शरीर में कीली रहित हाड़न की नौक तैं नौक अड़ी होय, अरु गाँठतें दृढ़ होय, सो कीलक-संहनन-कर्म है। शरीर के हाड़, घास के पूला समानि नशा चांमतैं दृढ़ि होंय, सो स्फाटिक-संहनन-कर्म है। ऐसे संहनन-कर्म है। आगे संस्थान षट् कहिये हैं। तिनके नाम—समचतुरस्र, न्यग्रोध, परिमण्डल, स्वाति, कुब्जक, वामन, हुंडक—ए षट् हैं। अब इनका अर्थ बताइये है—तहां जा कर्म के उदय शरीर महासुन्दर शास्त्रोक्त प्रमाणमयी अंगोपांग सहित होय, सो समचतुरस्र-संस्थान-कर्म है। जाके उदय शरीर ऊपरि तैं चौड़ा, नीचे तैं कृशि होय, सो न्यग्रोध-परिमण्डल-संस्थान है। शरीर ऊपरि तैं कृश अरु नीचे तैं दीर्घ होय, सो स्वाति-कर्म है। शरीर में पीठि, छाती ऊँची होय, सो कुब्जक-संस्थान-कर्म है। शरीर काल मर्यादा तैं बहुत छोटा होय, सो वामन-नाम-कर्म है। शरीर बेघाटि-रुण्डमुण्ड-हीनाधिक अंगोपांग सहित अशुभ होय, सो हुंडक-संस्थान है। आगे च्यारि गति कहिए हैं—जाके उदय देव का शरीर होय, सो देव-गति है। जाके उदय मनुष्य शरीर पावै, सो मनुष्य-गति-कर्म है और जा कर्म के उदय तिर्यंच का शरीर पावै, सो तिर्यंच-गति-कर्म है। जा कर्म के उदय नारक शरीर पावै, सो नारक-गति-कर्म है। ऐसे गति। आगैं गत्यानुपूर्वी कहिए है—तहां देवगति में उपजनेहारा मनुष्य अपनी आयु भोग, शरीर तजि, जा कर्म के उदय, ताही मनुष्य के आकार आतम प्रदेश अन्तराल में राखे और रूप नाहीं होंय, सो देवगत्यानुपूर्वी-कर्म है। १। मनुष्य गति में उपजनेहारा जीव, अनियतगतितैं आवै, सो

अपने तैजस शरीर के आकार आत्मप्रदेश अन्तराल में राखै, पलटै नाहीं, सो मनुष्यगत्यानुपूर्वी-कर्म है। २। तिर्यंच गति में उपजनेहारा जीव जा कर्म के उदय जा शरीरकौं तजि आवै ताका आकार उपजने के संस्थान ताईं लिये आवै और रूप नाहीं होने देय, सो तिर्यंचगत्यानुपूर्वी-कर्म है।३। जा कर्म के उदय नरक में उपजनेहारा जीव पर-गति का जैसा शरीर तजै तैसे ही आकार नरक में उपजने के संस्थान तांई आवै आत्म प्रदेश और रूप नाहीं होंय, सो नरकगत्यानुपूर्वी-कर्म है।४। ऐसे पूर्वी हैं। आगे पंच शरीर स्वरूप कहिए हैं—तहां जा कर्म के उदय वैक्रियिक शरीर रूप पुद्गलन कूं परिणमाय शरीर का बन्धान करि पुण्य-पाप फल तैं देव नारकी होय, सो वैक्रियिक शरीर है।१। जाके उदय आहारक जाति शरीर रूप पुद्गलन के स्कन्धकौं परिणमाय आहारक शरीर का बंधान होय, सो आहारक शरीर है। २। जा कर्म के उदय पुद्गल का ग्रहण करि मनुष्य तिर्यंच के शरीरमयी परिणमावै, सो औदारिक शरीर है। ३। जा कर्म के उदय तैजस जाति के पुद्गलनकौं ग्रहण करि आत्मा शरीर के बंधान रूप करै, सो तैजस शरीर है।४। संसारी जीव पुरातन अगले कर्म के शुभाशुभ परिणाम तिनतैं ज्ञानावरणादिक कर्मरूप होने योग्य जे कार्मणवर्गणा पुद्गल स्कन्ध तिनकूं ग्रहण करि अष्ट कर्मरूप शरीर का बंधान करै, सो कार्मण शरीर है। ५। इति शरीर भये। आगे पंच बंधान व पंच संघात का स्वरूप कहिए है, सो जैसे—दिवाल कौं गारा, ईंट पत्थरादि इनकर दिवाल खड़ी करिये ऐसा तौ बंधान है। ता दिवाल पै लेप करि साफ करिए, सो संघात हैं। तैसे ही शरीरन के बन्धान संघात हैं। तहां इन पंच शरीरन के नस, हाड़ मांसादि अवयवन का बन्धानकरि शरीर का करना, सो बन्धान है। ते पांच जानना। अरु इन शरीरन में वातादि लपेटन रूप सफाई, सो पंच संघात है। इति बन्धान संघात। आगे पंच जाति का स्वरूप कहिये हैं—तहाँ जाके उदय एकेन्द्रिय का क्षयोपशम पावै ताके स्पर्श इन्द्रिय सहित जो एकेन्द्रिय का शरीर तामें आत्मा का रहना, सो एकेन्द्रिय जाति है। १। जा कर्म के उदय स्पर्श व रसन इन दोय इन्द्रिय के क्षयोपशम सहित शरीर में आत्मा का रहना, सो इन्द्रिय जाति है। २। जा कर्म के उदय स्पर्शन, रसन, घ्राण—इन तीन इन्द्रिय के क्षयोपशम सहित शरीर का धारण, सो ते इन्द्रिय जाति है।३। और जा कर्म के उदय स्पर्शन, रसन, घ्राण और चक्षु—इन च्यारि इन्द्रिय के क्षयोपशमसहित शरीर का धारना, सो चौ इन्द्रिय जाति है। जा कर्म के उदय पांचों

इन्द्रियों का क्षयोपशम सहित शरीर का धारना, सो पंचेन्द्रिय जाति है। इति जाति। आगे अङ्गोपाङ्ग का स्वरूप कहिये हैं—अङ्ग आठ वाके उपाङ्ग। सो हाथ दोय पैर दोय मस्तक एक नितम्ब एक छाती एक पीठ एक ऐसे आठतौ ए अङ्ग है। अङ्ग में लक्षण होंय, सो उपाङ्ग हैं। जैसे—शीश में मुख, कान, नाक, नेत्रादि—ए उपाङ्ग है तथा हाथ, पांवन की अंगुली आदि अनेक विधि, सो उपाङ्ग हैं। सो ए अङ्ग-उपाङ्ग तीन शरीरन में होंय हैं। तैजस कार्मण कै नाहीं। तहां जा कर्म के उदय मनुष्य तिर्यंच के शरीरन में अङ्गोपाङ्ग होंय, सो औदारिक अङ्गोपाङ्ग है और जा कर्म के उदय प्रमत्तगुणस्थानवर्ती मुनीश्वर के मस्तकतैं संशय के निमित्तपाय आहारक शरीर में अङ्गोपाङ्ग होंय, सो आहारक अंगोपांग है। जा कर्म के उदय देव नारकी के वैक्रियिक शरीर में अंगोपांग होय, सो वैक्रियिक अंगोपांग है। इति तीन अंगोपांग। आगे विहायोगति कहिये है। तहां जा कर्म के उदय जीव की शुभ चाल होय, सो शुभ विहायोगति-कर्म है। जाके उदय अशुभ चाल होय, सो अशुभ विहायोगति-कर्म है। इति चाल। ऐसे पिंड प्रकृति पैंसठि कहीं। आगे अपिंड प्रकृति कहिए है—तहां जा कर्म के उदय जीव का शरीराकार आतमप्रदेश यथावत् रहै, हलका भारी नहीं होय, सो अगुरुलघु-कर्म है। जहां शरीर में जाके उदय ऐसे स्थान होंय, जिनकरि पवन खैंचे-निकासे, सो श्वासोश्वास-कर्म है। तहां जाके उदय ऐसा शरीर होय, जो मूल में तो शीतल अरु जाकी प्रभा उष्ण, सो आतप-कर्म है। सो यह प्रकृति सूर्य के विमान सम्बन्धी पृथ्वी कायिक जीव हैं, तिनकैं होय है। इन एकेन्द्रिय बिना और स्थावरनकैं इसका उदय नाहीं। जाका शरीर शीतल होय, व ताकी प्रभा भी शीतल होय, सो उद्योत-कर्म है। ए प्रकृति एकेन्द्रिय आदि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चन के उदय होय है, बाकी तीन गति में नाहीं। जहां जा शरीर में चिह्न अंगोपांग होय जाकरि अपना ही घात होय, जैसे—साम्हरि के सींगादिक जाके भारतैं मरै, सो अपघात-कर्म है। जहाँ जाके उदय शरीर में ऐसे चिह्न अंगोपांग होंय जाकरि आप-पर का घात करै, सो पर-घात-कर्म है। निर्माण प्रकृति के दोय भेद हैं। एक स्थान-निर्माण—एक प्रमाण-निर्माण है। जहां शरीर में जाके अंगोपांग के स्थान होंय, सो तौ स्थान-निर्माण-कर्म है। जाके उदय शरीर में अंगोपांग के प्रमाण यथावत् होंय, सो प्रमाण-निर्माण है। जो प्रमाण-निर्माण भला नहीं होय तौ अंगोपांग अधिक हीन होय, कै तौ अंगुली चारि होंय तथा छः अंगुली होंय तथा हस्त, पांव,

नाक, नेत्र, कानादि छोटे होंय तथा छः अंगुली होंय तथा बड़े होंय। अरु जो स्थान-निर्माण भला नहीं होय तौ अंगोपांग स्थान चूकि होंय, तब असुहावने होय। ऐसे निर्माण-प्रकृति दोय प्रकार जानना। जा जीवनैं पहले भव में सोलहकारणभावनादिक निमित्तकरि तीर्थङ्कर-कर्म बांध्या होय जाके उदय पञ्चकल्याणक होंय तथा दीक्षा के आठ वर्ष पहिले जिनने तीर्थंकर का कर्म बांध्या ताके तीन कल्याणक होंय तथा दीक्षा लिये पीछे बांध्या होंय, ताके दोय कल्याणक होंय और जाके अन्तर्मुहूर्त आयु में बाकी रह्या ऐसा यतीश्वरकैं तीर्थंकर का बंध भया होय तिनकैं ज्ञान-निर्वाण दोय ही कल्याणक एकैं काल होंय। समवशरणादि विभूति प्रगट नहीं होंय। ऐसे जा कर्म के उदय पंचकल्याणक तथा तीन कल्याणक होंय, जिनके समवशरणादि विभूति प्रगटै सो तीर्थंकर-कर्म है। ऐसा अगुराष्टक। आगे दुकदश है। तहां जाके उदय अपने योग्य जीव पर्याप्ति धारि पांच षट् का धारन करै, सो पर्याप्त कहिये। जाके उदय शरीर पर्याप्ति पूरण नहीं होय पहले ही मरण करै, सो अपर्याप्ति-कर्म है। जा कर्म के उदय एक शरीर का स्वामी एक जीव होय, सो प्रत्येक-कर्म है। जाके उदय एक शरीर के अनन्त जीव स्वामी होंय, सो साधारण-कर्म है। जाके उदय दुख आये दुख मेटवे की शक्ति होंय और सुखी होने कौं अपनी शक्ति प्रमाण करि कायकौं चंचल करि सकै, सो त्रस-कर्म है। जाके उदय सुख दुख आये स्थावर पै ही सहै, मेटने को असमर्थ, सो स्थावर-कर्म है। जाके उदय ऐसा शरीर पावै जाकरि अन्य बादर पदार्थन कौं आप रोकै तथा अन्य बादर पदार्थन करि आप गमन करता रुकै, सो बादर-कर्म है। जाके उदय आपकै ऐसा शरीर होय, सो कोई पर्वत, बज्रादिक तैं नहीं रुकै तथा आप कोईन कूं नहीं रोकै अग्नितैं, शस्त्रतैं, इत्यादिक निमित्तन तैं नहीं मरै, सो सूक्ष्म-कर्म है। महानिष्ट सुस्वर सबकौं प्रिय शब्द निकसै सो सुस्वर-कर्म है। जाके उदय ऐसा शब्द निकलै जो सर्वकों बुरा लगै सो आपकौं भी बुरा लागै सो दुस्वर-कर्म है। जाके उदय शरीर में कोई ऐसा शुभ चिह्न अंगोपांग में होंय जाकरि सर्वकौं वल्लभ (प्रिय) होय, सो शुभ-कर्म है। जाके और उदय शरीर में ऐसा कोई चिह्न होय, जाकरि आप सबकों बुरा लागे, सो अशुभ-कर्म है। जाके उदय शरीर के सप्तधातु आदि चलाचल रहैं जाकरि रोग वेष्टित शरीर होय, सो अस्थिर-कर्म है। जाके उदय आत्मा जहाँ जाय तहाँ आदर पावै, सो आदेय-कर्म है। जाके उदय आत्मा जहाँ जाय तहाँ अनादर पावै, अपमानतें आत्मा दुखी होय, सो अनादेय-

कर्म है। जाके उदय जीव सुखी रहै और सर्व लोग सुखी कहैं, भले कहे, सो सुभग-कर्म है। जाके उदय जीव दुख दारिद्रय करि पीड़ित होंय ताके जन्मतैं ही माता-पितादिक कुटुम्ब के मरण कूं प्राप्त भए होंय महादुखी रहता होय, लोग ताकों रंक दीन कहते होंय, सो दुर्भग-कर्म है। जाके उदय जगत् तैं यश पावै, बिना दिये बिना जाने लोग जाकी कीर्ति करैं, सो यशस्कीर्ति-कर्म है। जाके उदय जगत् विषैं बिना जानें बिना देखैं लोग जाकी निन्दा करैं अपकीरति धारी होय, सो अयशस्कीर्ति-कर्म है। ऐसे नाम-कर्म की तिरानबे प्रकृति जानना। इति नाम-कर्म। आगे गोत्र-कर्म। जहाँ जाके उदय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य—इन तीन कुल के मनुष्यों में तथा चारि प्रकार के देवन में उपजै, सो ऊँच-गोत्र-कर्म है। जाके उदय नरक, तिर्यंच इन दो गति में उपजे तथा मनुष्य में हीनाचारी शूद्र तिनमें उपजे, सो नीच-गोत्र-कर्म हैं। इति गोत्र-कर्म। आगे अन्तराय का स्वरूप कहैं हैं। जो कर्म के उदय धन होतें भी दान नहीं दिया जाय, सो दानान्तराय-कर्म है। जा कर्म के उदय अनेक दिनलों उद्यम करै, पराई सेवा करि परिकौं राजी करै, अपनी चतुरतातें सर्वकों प्रसन्न राखैं अनेक उपाय द्वीप, उदधि, फिरि व्यापारादि करै तौ भी लाभ नहीं होय, सो लाभान्तराय-कर्म है। जा कर्म के उदय से वस्तु भोगी नहीं जाय, आपका चित्त अपने घरमें अनेक शुभ वस्तु देख भोग्या चाहे है, परन्तु भोगि नहीं सकै, सो भोगअन्तराय-कर्म है। जा कर्म के उदय घर में अनेक उपभोग योग्य वस्तु हैं बिस्तर, हाथी, घोटक, रतन, आभूषन, मन्दिर, स्त्री, रथादि अनेक हैं; परन्तु भोगि नहीं सकै, सो उपभोगान्तराय-कर्म है। जा कर्म के उदय अनेक भेषजादि यतन करना, नाना प्रकार षट्रस भोजन करना तौ भी तन में पुरुषार्थ पराक्रम नहीं होय, सो वीर्यान्तराय-कर्म है। इति अन्तराय-कर्म। ऐसे अष्टमूल कर्म की एक-सौ अड़तालीस (१४८) उत्तर प्रकृति कहीं आगे घाति अघाति कहैं हैं। तहां ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अन्तराय—ए चारि कर्म घातिया हैं, तिनकी प्रकृति सैंतालीस हैं। वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र—ए चारि कर्म अघातिया हैं। इनकी प्रकृति एकसौ एक हैं तहां घातिया के भेद दोय हैं; एक तो देशघातिया, एक सर्वघातिया। तहां केवलज्ञानावरणीय बिना चारि तौ ज्ञानावरणीय, तीन दर्शनावरणीय, अन्तराय पांच, हास्यादि नव, संज्वलन की चारि और सम्यक् प्रकृति—ए छब्बीस प्रकृति देश घातिया हैं और केवलज्ञानावरणीय, केवलदर्शनावरणीय, निद्रा पांच, अनन्तानुबन्धी चारि, अप्रत्याख्यान चारि,

प्रत्याख्यान चारि, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व—ए सर्व इक्कीस सर्वघाती हैं। जे अपने घातवें योग्य जे गुरा तिनकौं सर्व प्रकार नहीं घात सकैं। एकोदेश घातै, सो तौ देशघातिया कहिये और जे अपने घातवें योग्य जे गुरा तिनकौं सर्व प्रकार घातैं, सो सर्व घातिया कहिये हैं। ऐसे घातिया के दोय भेद कहे आगे जीवविपाकी, पुद्गलविपाकी, भवविपाकी, क्षेत्र विपाकी—इन सबका स्वरूप कहिए है। तहाँ प्रथम ही पुद्गलविपाकी है, सो कहिए है। शरीर पांच, अंगोपांग तीन, संहनन षट्, संस्थान षट्, वर्ण चतुष्ककी बीस, स्थिर, उद्योत, आतप, निर्माण, अस्थिर, अगुरुलघु, अशुभ, साधारण, प्रत्येक, अपघात, शुभ, परघात—ए बासठि प्रकृति हैं, सो तो पुद्गलविपाकी हैं। इन सर्व का उदय शरीर स्कन्ध ऊपर ही होय है। जीव पै इनका बल नाहीं। तातैं पुद्गलविपाकी कही हैं। इति पुद्गलविपाकी। आगे जीवविपाकी कहिये है। तहाँ घातिया की सैंतालीस, गोत्र की दोय, वेदनीय की दोय, जाति पाँच, चाल दोय, गति च्यारि, तीर्थंकर उच्छ्वास पर्याप्ति—अपर्याप्ति, त्रस, स्थावर, सूक्ष्म, बादर, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, अनादेय, सुभग, दुर्भग, यशस्कीर्ति, अयशस्कीर्ति—ऐसे अठत्तरि प्रकृति अपना उदय जीव पै करि सुख-दुख करै हैं। तातैं इनकों जीवविपाकी कहिए। इति जीव-विपाकी। आगे क्षेत्रविपाकी। आनपूर्वी च्यारि ए अपने योग्य अन्तराल का क्षेत्र तामैं इनका ही उदय होय है। भावार्थ---जो जीव वर्तमान शरीर तजिकैं वक्रगति सहित अन्य पर्याय में उपजनेकौं जाय तब अन्तराल में कार्मण अवस्था के क्षेत्र विषैं आनुपूर्वी का उदय होय है। इति क्षेत्रविपाकी। आगे भवविपाकी। आगे च्यारि आयुकर्मन का उदय अपने-अपने भव विषैं ही होय है। तातैं च्यारि आयु भवविपाकी जानना। इति भवविपाकी। ऐसे पुद्गलविपाकी बासठि, जीवविपाकी अठत्तर, क्षेत्रविपाकी च्यारि, भवविपाकी च्यारि, ऐसे ए सर्व एकसौ अड़तालीस हैं। १४८। ऐसे कहे जो ए अष्टमूल कर्म सो द्रव्यकर्म है। ए सर्व द्रव्यकर्म पुद्गलन के स्कन्ध जानना। सो इन अष्टकर्मन करि समस्त संसारी जीव बंधे हैं। सो जीवराशि दोय प्रकार हैं। एकतौ संसारी एक मोक्षजीव। तिनमें संसारीन के दोय भेद हैं। एक भव्य एक अभव्य। तहाँ अभव्य राशि, अरु भव्यराशितैं अनन्तानन्त गुणे जीव और दूरभव्य, अभव्य, समानि कबहूं मोक्ष योग्य नाहीं तथा और भी केते मिथ्यादृष्टि जीव मोहराग के जोर सो कर्म सांकलान (जंजीर) तैं बधे मोहनृप के बन्दी खाने पड़े हैं सो मिथ्यात्व योग्य बंधानतैं

कबहूं नाहीं छूटैं। ऐसे अनादि मिथ्यात्वधारी जीव अनन्त हैं। इनमें कोई जीव मोक्ष जावे योग्य हैं, ते कारण पाय मोक्ष होंय, सो एतौ संसारी राशि कही। अरु निकटभव्य जीव जो सासादन दूसरे गुणस्थान तैं लगाय अयोगी गुणस्थान पर्यंत है, सो यह मोक्षजीव हैं। ए सर्व मोक्ष जावे योग्य हैं। इनमें यथायोग्य कर्मन का सम्बन्ध है। कोई कर्म बन्ध करने योग्य हैं। इन जीवन पै द्रव्य-कर्म का बन्ध पाइये है। सर्व अष्टकर्म की प्रकृति एकसौ अड़तालीस हैं। तिनमें बंध योग्य एकसौ बीस हैं। बाकी अठाईस इनकी इनही में गर्भित करी हैं। वर्णचतुष्क की बीस थीं सो च्यारि ही मूल राखी, उत्तर भेद तिनके सोलह सो तिन च्यारि में ही गर्भित किये और पंच बंधन, पंच संघात ए दश प्रकृति पंच शरीरन में मिला दई। दर्शनमोह के तीन भेद थे सो दोय भेद एक मिथ्यात में मिलाए। ऐसी वर्ण की सोलह शरीरादिक की दश दर्शनमोह की दोय। ए सर्व अठाईस एकसौ बीस में गर्भित करीं। एकसौ बीस राखीं सो बंध योग्य प्रकृति नाना जीवापेक्षा एकसौ बीस। तिनकौं अब गुणस्थानत्व प्रति कहिये हैं। सो मिथ्यात्व गुणस्थान में आहारक द्विक की दोय एक और तीर्थंकर ये तीन प्रकृति नहीं बधं हैं। ऊपरिले गुणस्थानमैं यथायोग्य आय मिलैंगी। मिथ्यात्व में एकसौ सत्तरा प्रकृति नाना जीवापेक्षा बंध योग्य हैं और मिथ्यात्व छूटि जब इस जीवकूं ऊपरिले गुणस्थान की प्राप्ति होय है। तिनकैं बंध कहिये है। सो सासादन में ये सोलह प्रकृति का बंध नाहीं। मिथ्यात्व ही में रहै है। तिनके नाम मिथ्यात्व। "नपुंसक वेद" के "नरकत्रिक"। ३। स्फाटिक संहनन, हुंडक संस्थान, जाति च्यारि, सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्ति, आताप, स्थावर—ए सोलह का बन्ध दूसरे सासादन गुणस्थान में नाहीं। तातैं सासादन में एकसौ एक का बन्ध है। तीसरे गुणस्थान में दूसरे सासादन से पच्चीस की व्युच्छित्ति करी तिनके नाम। अनन्तानुबन्धी च्यारि, मध्य के संहनन च्यारि, संस्थान मध्य के च्यारि, निद्रामोटी तीन, तिर्यंचत्रिककीं तीन, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय स्त्रीवेद, नीचगोत्र १ उद्योतनाम, अशुभ चाल—ए पच्चीस तजि तीसरे गुणस्थान छिहन्तरि लेय आया यहां देव और मनुष्य आयु ये दो का बन्ध भी नाहीं चौहत्तरि का बन्ध तीजे गुणस्थान है। यहां व्युच्छित्ति नाहीं एही चौहत्तरि लेय चौथे गुणस्थान आय तहाँ-तहाँ देवायु मनुष्यायु तीर्थंकर, ए तीन यहाँ मिली तब सर्व मिल सतेत्तरि का बन्ध चौथे गुणस्थान में है। तहाँ दश की व्युच्छित्ति तिनके नाम। अप्रत्याख्यान की च्यारि मनुष्यात्रिक औदारिक

श्री सुदृष्टि

शरीर, औदारिक अंगोपांग, बज्रवृषभनाराच संहनन, इन दश की व्युच्छित्ति करि सड़सठि का बंधलेय पंचम गुणस्थान में आया। तहाँ प्रत्याख्यान की चौकड़ी की व्युच्छित्ति करि तिरेसठि लेय छठे गुणस्थान में आया। यहां प्रमत्त में त्रेसठि का बन्ध है। यहां षट् की व्युच्छित्ति तिनके नाम अस्थिर, अशुभ, असाता, अयश, अरति, शोक—ए षट् की व्युच्छित्ति करि सत्तावन लेय सातवें गुणस्थान गए तहां आहारक द्विक मिल्या तब गुणसठि का बन्ध अप्रमत्त में। तहां देवायु को व्युच्छित्ति। अठावन लेय आठ में गुणस्थान आया। तहाँ छत्तीस प्रकृति की व्युच्छित्ति तहाँ सात भाग। सो प्रथम भाग में निद्रा, प्रचला ए दोय की व्युच्छित्ति और चार भाग में व्युच्छित्ति नाहीं। छठे भाग में तीसकी व्युच्छित्ति। तहां अगुरुलघु, उच्छवास, अपघात और परघात—ए च्यारि अगुरुलघु चतुष्कको हैं। तीर्थंकर, निर्माण, पर्याप्त, प्रत्येक, त्रस, बादर, सुस्वर, शुभ, स्थिर, आदेय दो, सुभग दो, वर्णचतुष्कको दो, च्यारि पंचेन्द्रिय दो, समचतुरस्र-संस्थान दो, शुभचाल दो, देवगति दो, देवगत्यानुपूर्वी दो, वैक्रियिक अंगोपांग दो, आहारक अंगोपांग एक, वैक्रियिक शरीर दो, आहारक शरीर तैजस शरीर कार्मण शरीर दो, ऐसे ए तीस प्रकृति की छठे भाग में व्युच्छित्ति। अरु सातवें भाग में हास्य, रति, भय, जुगुप्सा—ए च्यारि, ए सर्व सातही भाग की छत्तीस की अष्टम् में व्युच्छित्ति करि नवम् में गये तहाँ बा इसका बन्ध है इहाँ संज्वलन की चौंकड़ी की च्यारि, पुरुषवेद, इन पंचन को व्युच्छित्ति अनिवृत्त में करि सत्तरा प्रकृतिन का बन्ध दश में लेय गया। तहां सोलह की व्युच्छित्ति। ज्ञानावरणी की पांच, अन्तराय पाँच, दर्शनावरण च्यारि, उच्च-गोत्र, यशस्कोर्ति, इन सोलह की व्युच्छित्ति दश में गुणस्थान में करि। एक सातावेदनीय रही। सो ग्यारह में, बारह में, तेरह में—इन तीन गुणस्थान में एक साता का बन्ध है। तेरह में तैं चौदह में गये तब साता की व्युच्छित्ति, तेरह में करि चौदहवें गुणस्थान गया। तहां बन्ध नाहीं। यह कर्म बन्ध सयोग गुणस्थानवर्ती भगवानकैं कह्या है। सो योगन के निमित्तपाय सातावेदनीय का उपचार करि बन्ध कह्या है। सो बन्ध स्थिति-अनुभाग रहित है। परन्तु निमित्त के सद्भाव होते प्रकृति प्रदेश बन्ध है। सो आतमाकों सुख-दुखकारी नाहीं। सुख-दुखदायक तौ स्थिति-अनुभाग है। सो मोह के अभावतैं कषायन का अभाव है। अरु कषायन के अभाव तैं स्थिति अनुभाग-बन्ध का अभाव है तथापि यहाँ योगत्रिक है। तातैं योगन के निमित्ततैं तेरहवें गुणस्थान तांई

कर्म का बन्ध कह्या है। केतेक अतत्त्वश्रद्धानी दीर्घमोह के उदयतैं ऐसा मानैं हैं जो हम सम्यक्वन्त हैं। सो हमारे कर्मबन्ध होता नाहीं—हम अबन्ध हैं। ऐसा उल्टा श्रद्धानकरि कर्मबन्ध के मेटवेतैं निरुद्यमी होय, आपकौं अशुद्ध का शुद्ध मानि अनेक असंयमक्रियाकरि विषय-कषायेन रूप परणति करि, अपना परभव बिगाड़ें हैं। ताकौं कहिये है। भो विषयन के लोभी! तूं देखि। कर्मन का बन्ध मुनीश्वरों तैं लगाय केवली भगवान् तांई यथायोग्य गुणस्थान तांई पदस्थप्रमाण, समस्त संसारी जीवनकों होय है। जे कर्मरहित जीव हैं तिनके कर्म का बन्ध नाहीं होय है। तातैं भो भव्यात्मा! तूं स्वेच्छाचार परिणाम तजिकैं जिनदेव-भाषित प्रमाण, सरधान करि, आपका अनादि संचित कर्मबन्ध रूप मलतैं शुद्ध होयवे का उपाय करि। तातैं अतीन्द्रिय सुख का भोक्ता होय। ऐसे सयोग केवलीगुणस्थान में एक सातावेदनीय का बन्ध ताकी व्युच्छित्ति करि अयोगकेवली होय, अल्पकाल रहकैं सिद्धपद पावैं हैं। ऐसा सामान्य बन्ध का स्वरूप कह्या। इति बन्ध प्रकरण समाप्तम्। ४।

आगे गुणस्थानप्रति कर्मन का उदय कहिये है। तहाँ बन्ध में मिथ्यात्व एक था। यहां दर्शनमोहनीय की तीन जानना, सो एकसौ बीस तौ बन्ध की। सम्यग्मिथ्यात्व सम्यक्प्रकृति ए दोय और बधाई, तब उदय योग्य एकसौ बाईस हैं। १२२। अब नाना जीव अपेक्षा गुणस्थान कहिये हैं तहाँ मिथ्यात्व में आहारकद्विक की दोय। तीर्थंकर सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, ए पंच प्रकृति मिथ्यात्व में उदययोग्य नाहीं। तातैं प्रथम गुणस्थान में एकसौ सत्रह का उदय है। तहां सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्ति, आतप और मिथ्यात्व—ए पंच प्रकृति मिथ्यात्व में व्युच्छित्ति करि एकसौ बारह प्रकृति लेय सासादन में आया। सो यहाँ नरकानुपूर्वी उतारी, तहाँ एकसौ ग्यारह का सासादन में उदय। तहां अनन्तानुबन्धी चार, जाति च्यारि। ४। स्थावर इन नव की व्युच्छित्ति करि मिश्रगुणस्थान में एकसौ दोय लेय आया। तीन आनुपूर्वी उतारी तब निन्यानवै रहीं। तहाँ एक मिश्रमोहनीय मिली। तहाँ मिश्रगुणस्थान में एकसौ प्रकृति का उदय है। तहाँ मिश्रमोहनीय की व्युच्छित्ति तीजे गुणस्थान करि चौथे गुणस्थान में आया। तहां आनुपूर्वी च्यारि सम्यक्प्रकृति ए पंच यहाँ मिली तब चौथे में एकसौ च्यारि का उदय है। इहाँ सत्तरह की व्युच्छित्ति। तिनके नाम—अप्रत्याख्यान। ४। देवगति

देवगत्यानुपूर्वी, देवायु, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरक आयु, वैक्रियिक, वैक्रियिक अंगोपांग, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दुर्भग, अयशस्कीर्ति, अनादेय—ए सत्तरह व्युच्छित्ति करि पंचगुणस्थान में आया। तहाँ सत्यासी का उदय है। इहाँ आठ की व्युच्छित्ति, प्रत्याख्यान च्यारि। ४। तिर्यंचगति, तिर्यंचायु, नीचगोत्र उद्योतनाम—ए आठ की व्युच्छित्ति करि पांचमें तैं छठेमें आया। यहाँ आहारकद्विक मिले तब इक्यासी का उदय होय हैं। इहां आहारकद्विक की दोय मोटी निद्रा तीन इन पंचन की व्युच्छित्ति छठे में करि सातवें में आया सो अप्रमत्त में छिहत्तरि का उदय है। यहाँ संहनन अन्त के तीन सम्यक्प्रकृति, इन च्यारि व्युच्छित्ति करि आठवें में आया, सो यहाँ बहत्तर का उदय है। यहाँ षट् हास्यादिक की व्युच्छित्ति करि नववें में आया, तो यहां छयासठि का उदय है। नववें में तीनवेद, संज्वलन की लोभ बिना तीन, इन षट् की व्युच्छित्ति करि साठि लेय दशवें में आया। दशवें में सूक्ष्मलोभ की व्युच्छित्ति कटि ग्यारहवें में आया, यहां गुणसठि का उदय। नाराच, वज्रनाराच, इन दोय की व्युच्छित्ति करि बारहवें में गया। यहां विशेष एता जो नाराच, वज्रनाराच, इन दोय संहनन सहित क्षायिक श्रेणी नहीं चढ़ै है। जो उपशान्त के मार्ग आवै सो उपशम श्रेणीवाला आवै है। जे जीव क्षायिक श्रेणी चढ़ैं सो पंच संहनन की व्युच्छित्ति सातवें में ही करैं हैं। एक वज्रवृषभनाराचसंहननसहित श्रेणी चढ़ि दशमें ते बारहवें में ही आवै। ग्यारहवें मैं नहीं जाय। ऐसा जानना और इहां उपशम श्रेणीवाले की अपेक्षा ग्यारहवें में नाराच, वज्रनाराचसंहनन की व्युच्छित्ति कही है। प्रथम संहननवाला तौ दोऊ श्रेणि चढ़ै है ऐसा जानना। अब ५७ लेय बारहवें मैं आया। तहां ज्ञानावरणीय ५, दर्शनावरणीय ६, अन्तराय ५—ए सोलह प्रकृति बारहवें में व्युच्छित्ति करि तेरहवें में आया। तहाँ तीर्थंकर प्रकृति आय मिली वियालीस का उदय सयोग मैं है। तहां तीसकी व्युच्छित्ति—वर्णचतुष्ककी ४, अगुरुचतुष्ककी ४, संस्थान ६, चाल २, औदारिक १, औदारिक अंगोपांग, तैजस, कार्मण, शुभ, अशुभ, स्थिर, अस्थिर, सुस्वर, दुस्वर, प्रत्येक, निर्माण, वज्रवृषभनाराच संहनन, वेदनीय—ए तीस की व्युच्छित्ति तेरहवें मैं करि ग्यारह लेय अयोगगुणस्थान गया। तहाँ चौदहवें में बारह का उदय अरु बारह ही प्रकृति की व्युच्छित्ति पंचेन्द्रिय, पर्याप्ति, त्रस, बादर, मनुष्यगति, मनुष्यायु, ऊँचगोत्र, यशस्कीर्ति, आदेय, सुभग, तीर्थंकर, वेदनीय—इन बारहों ही की चौदहवें मैं व्युच्छित्ति करि, आत्मा अष्टकर्मरहित

शुद्ध, परमात्मा निरंजन अमूर्तिक इत्यादि गुण प्रगट होय, सिद्धलोककों प्राप्त होय हैं। ऐसे सिद्ध भगवानकौं हमारा नमस्कार होऊ। ऐसे उदय का सामान्य स्वभाव कह्या। इति उदय।

आगे सत्ता का स्वरूप संक्षेप से कहिए है। तहाँ सत्ता योग्य प्रकृति एकसौ अड़तालीस हैं। नाना जीव अपेक्षा जहाँ विशेष है सो पहले कहिये है। जो जीव सम्यक् पायकैं ऊपरले गुणस्थान में कबहूँ नहीं गया होय, सो ऐसा अनादि मिथ्यादृष्टि, ताके आहारक चतुष्ककी च्यारि, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और तीर्थंकर— इन सात बिना १४१ की सत्ता है। सादि मिथ्यादृष्टिकें जाके मिश्रमोहनीय की सत्ता होय, ताके १४२ की सत्ता है। जहां मिश्रमोहनीय की सत्ता नाहीं, ताकी जगह सम्यक्प्रकृति की सत्ता होय तौ भी १४२ की ही सत्ता होय। १४१ तौ अगला अरु मिश्रमोहनीय व सम्यक्प्रकृति इन दोय की और भए १४३ की सत्ता होय है। जाके तीर्थंकर की सत्ता होय मिश्रमोहनीय का नहीं होय ताके भी १४३ की ही सत्ता होय है। जाके मिश्रमोहनीय व आहारक चतुष्ककी सत्ता होय ताके १४८ की सत्ता होय। ऐसे सामान्य सत्ता का स्वरूप कहिए है। विशेष भंग इहाँ ग्रन्थ बढ़ने के भय से तथा यह बालबोध ग्रन्थ है सो कठिन होने के भयतैं नहीं लिखे हैं। इनका विशेष श्रीगोम्मटसारजी के "कर्मकाण्ड" महाधिकार तामैं विशेष सत्ता अधिकार है तहां तैं जानना। ऐसे सत्ता योग्य प्रकृति नाना जीव अपेक्षा १४८ हैं। तहाँ प्रथम गुणस्थान में १४८ की सत्ता है। आहारकद्विक, तीर्थंकर इन तीन बिना सासादन में १४५ की सत्ता है। इन तीन प्रकृति की जाकें सत्ता होय, ताके दूसरा गुणस्थान नहीं होय। सो तीसरे गुणस्थान में आहारकद्विक आय मिला। तातैं मिश्रमैं १४७ की सत्ता भयी। चौथे गुणस्थानमैं तीर्थङ्कर भी मिला, सो चौथे में १४८ की सत्ता है। यहाँ चौथे गुणस्थान में नरकायु की व्युच्छित्ति करि पांचवें गुणस्थान आया। भावार्थ—जाके नरकायु की सत्ता होय ताके पंचम गुणस्थान नहीं होय, तातैं पांचवें में १४७ की सत्ता है। जाके तिर्यंचायु की सत्ता होय तिनकौं महाव्रत नहीं होय, तातैं तिर्यंचायु की व्युच्छित्ति पांचवें में करि छठे में आया। तहां प्रमत्त में १४६ की सत्ता है। इहां व्युच्छित्ति नाहीं। आगे जे जीव उपशम श्रेणी चढ़ैं ताकें ग्यारहवें गुणस्थान लूं १४६ की सत्ता होय है, आगे गमन नाहीं। क्षायिक श्रेणी चढ़नेवाला जीव सप्तम गुणस्थान में अनन्तानुबन्धी की ४, दर्शनमोहनीय की ३, देवायु—इन आठन की व्युच्छित्ति अप्रमत्तमैं करि

एकसौ अड़तीस लेय अष्टम् में आया, इहां व्युच्छित्ति नाहीं। अरु १३८ लेय नवम्मैं गया। तहां नवम् में व्युच्छित्ति तिनके नाम—प्रत्याख्यान ४, अप्रत्याख्यान ४, लोभ बिना संज्वलन की ३, हास्यादि ९—ए मोह की २० दर्शनावरणीय की मोटीनिद्रा ३ और नामकर्म की जाति ४ नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, सूक्ष्म साधारण, अपर्याप्ति आतप स्थावर—ए सोलह नाम-कर्म की सर्व मिलि छत्तीस भईं। ए नवमैं मैं व्युच्छित्ति करि दशवें में आया। इहां एकसौ दोय की सत्ता है। तहां सूक्ष्म लोभ की व्युच्छित्ति करि बारहवें मैं आया। तहां १०१ की सत्ता है। सो इहां ज्ञानावरणीय पांच, दर्शनावरणीय की षट्, अन्तराय की पाँच—ए सोलह की व्युच्छित्ति करि बारहवेंतें पच्यासी लेयकें तेरहवें में गया। तहां व्युच्छित्ति नाहीं। पच्यासी लेय चौदहवें में गया। तहाँ पच्यासी की सत्ता अरु यहाँ ही उनकी व्युच्छित्ति सो चौदहवें गुणस्थान के अन्त के दोय समय में पच्यासी की व्युच्छित्ति। सो प्रथम समयमैं बहत्तरि, चरम समय में तेरा। सो प्रथम समय बहत्तरि तिनके नाम—वेदनीय गोत्र की एक नीचगोत्र, वर्णचतुष्ककी २०, संस्थान ६, संहनन शरीर ५, बन्धन ५, संघात ५, अंगोपांग ३, चाल २, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, निर्माण, उच्छ्वास, अपघात, परघात, उद्योत, प्रत्येक स्वरदुककी दोय, शुभ, अशुभ, स्थिर, अस्थिर, दुर्भग, अनादेय, अयश—ए सर्व मिलि ७२ जानना। ए तौ चौदहवें गुणस्थान का सर्व काल पूरण होते दोय समय बाकी रहे तहाँ ताँई तो व्युच्छित्ति नाहीं। अरु दुचरम समय में इन बहत्तरि की व्युच्छित्ति करी। अब अन्त के समयमैं व्युच्छित्ति-पंचेन्द्रिय, पर्याप्ति, त्रस, बादर, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, मनुष्यायु, ऊँचगोत्र, यशस्कीर्ति, आदेय, सुभग, तीर्थङ्कर, वेदनीय—ए तेरा प्रकृति चरम समय व्युच्छित्ति करि जीव सिद्ध होय है। ऐसे अयोग गुणस्थान में पच्यासी कर्म प्रकृतिन की व्युच्छित्ति करि सर्व कर्मरज-रहित शुद्ध निरंजन अमूर्ति सिद्ध परमात्मा होंय हैं। ऐसे शुद्ध आत्माकौं बारम्बार नमस्कार होऊ। ऐसे यह पुद्गल द्रव्य संसारी जीवन के रागद्वेष परणाम करि ज्ञानावरणादि अष्टकर्मरूप होय जीवन के बन्ध उदय सत्ता रूप होय नर नारकादि अनेक गतिनमैं भ्रमण करावैं हैं।

इति श्री सुदृष्टितरङ्गिणीनामग्रन्थमध्ये अजीवतत्त्व द्रव्य कर्म पुद्गलीक तिनका बन्ध, उदय, सत्तारूप परिणमन शक्ति सहित कथन वर्णनो नाम पंचमपर्व सम्पूर्णम् ॥ ५ ॥

श्री सुदृष्टि

अथानन्तर मोही जीवनकूं जसे द्रव्य कर्म नचावै है तैंसे ही नाचैं हैं। जैसे बाजीगर दण्डकरि बन्दरकौं अनेक बार नचावै है। तैसे ही संसारी जीवनकौं कर्म बाजीगर आशारूपी दराड तैं अनेक बार नचावै है तथा जैसे—कोई नट धन के लोभ तैं अपने एक तनके अनेक स्वांग धरि, लोकन कूं दिखाय आश्चर्य उपजावे। कबहूं राजा का स्वांग धरै, कबहूं रंक का, कबहूं स्त्री, कबहूं नर, कबहूं सिंह, कबहूं बकरी, कबहूं सर्प आदि अनेक स्वाँग अपने तन के ऊपरला खलका रूपी वस्त्र ताकूं फेरि-फेरि स्वाँग बदलि-बदलि तमाशगीरिकौं हर्ष—विषाद उपजावै है। तैसे ही यह जीवरूपी नट अपने कर्मजनित शरीर का आवरण ताकौं पलटि-पलटि अनेक स्वाँगकरि नाँचै है। अनेक स्वाँगधरि जगत्मैं नृत्य करता गमन करै है सो या जीव के गमन करने के मार्ग चौदह हैं। इनही चतुर्दश मार्गन में अनादि काल का जीव गमन करै है। सोही मार्ग बताइए हैं। गाथा—

गई इन्दियं च काये, जोए वेए कसाय णाणेया। संजम दंसण लेस्सा, भविया सम्मत सण्णि आहारे॥

गति ४, इन्द्रिय ५, काय ६, योग १५, वेद ३, कषाय २५, ज्ञान ८, संयम ७, दर्शन ४, लेश्या ६, भव्य-अभव्य। मार्गणा, सम्यक् ६, संज्ञी २ और आहार २ ऐसे चौदह भेद मार्गणा हैं। अब इनका सामान्य अर्थ लिखिए है। तहाँ गति नाम-कर्म के उदय गति सम्बन्धी शरीरन के आकार धरना सो गति है। इन्द्रिय नाम-कर्म के उदयतें जेती इन्द्रिय अपने शरीर योग्य इन्द्रियन के आकार होंय सो इन्द्रिय मार्गणा है। त्रसस्थावर नाम-कर्म के उदय करि त्रस और स्थावर पर्याय में जन्म लेना सो काय है। नोइन्द्रिय-कर्म के बलतैं अष्टपांखड़ी का कमलाकार द्रव्यमन के निमित्त आतमा के प्रदेशन का चंचल होना सो मनोयोग है। स्वर कर्म के उदय वचन बोलने का क्षय, उपशम होना ताके निमित्त पाय आत्मा के प्रदेशन का चंचल होना सो वचन योग है। पंच प्रकार शरीर के उदयतें यथायोग्य काय का निमित्त पाय, आतमा के प्रदेशन का चंचल होना सो काय योग है। ऐसे योग हैं। वेद-कर्म के उदय से स्त्री की चाहि तथा पुरुष की चाहि तथा स्त्री-पुरुष की युगपत चाहि इत्यादि भाव सो वेद है। चारित्रमोह के उदय क्रोध-मानादिक कषाय रूप होना, सो कषाय है। जाकरि आतमा स्वपर पदार्थनकौं जानैं, सो ज्ञान है। मोह के तीव्र उदय करि विषयन में मोहित होय, दया विषैं प्रमादी होय प्रवर्तना सो असंयम है। अप्रत्यक्ष ज्ञान के उदय सहित आतमा का व्रताव्रत रूप युगपत प्रवर्तना, सो देश संयम है। सर्व

तरंगिणी

सावद्यरहित क्रिया रूप प्रवर्तना, सो सकल संयम है। ताके पंच भेद हैं। दर्शनावरणीय के क्षयोपशमतैं स्वपर के देखने की शक्ति सो दर्शन है। कषायनमैं रंजायमान योग सो लेश्या है। मोक्ष होने योग्य सम्यग्दर्शनादि सामग्री प्रकट होने की नाहीं, सो अभव्य है। मोक्ष होने योग्य रत्नत्रयादि सामग्री प्रगट होय ताकें, सो भव्य है। ता भव्य के तीन भेद हैं। जीव अजीव तत्त्वन का भले प्रकार जानपना दृढ़ श्रद्धान सो सम्यक्त्व है। सो तत्त्व श्रद्धान तथा अतत्त्व श्रद्धान करि षट् भेद रूप है। मन का क्षयोपशम होने योग्य तथा मन का क्षयोपशम नहीं होने योग्य ऐसा जीव सो संज्ञी मार्गणा है। औदारिक, वैक्रियिक, आहारक—इन तीन शरीर रूप पुद्गलन का ग्रहण सो आहारक है। कार्मण अन्तराल में इन तीन शरीर का ग्रहण नाहीं, सो अनाहारक है। ऐसे जीव के आवागमन करने के चौदह मार्ग कहे और भी जीव के गमन के स्थान हैं, सो कहिए हैं—

गाथा—गुण जीवा पज्जत्ती, पाणा सराणा मग्गण ओय। उवओगोविय कमसो, बीसन्तु परुवणा भणिदा ॥

अर्थ—तहाँ गुणस्थान जीव समास पर्याप्ति प्राण संज्ञा चौदह मार्गणा उपयोग ऐसे इस गाथा में बीस प्ररूपणा जानना। अब सामान्य अर्थ—तहां प्रथम गुणस्थान का सामान्य अर्थ—तहां दर्शनमोह ३, अनन्तानुबन्धी ४ इन सात कर्म प्रकृतिन के उदय जीवकों अतत्त्व श्रद्धान भाव का होना ताकरि पंच प्रकार मिथ्यात्वरूप रहना सो मिथ्यात्व गुणस्थान है। इसके होतें जेते गुण होय सो मिथ्यात्व गुण है। तातें याका नाम मिथ्यात्व गुणस्थान है। प्रथमोपशम सम्यकधारी अपने योग्य अन्तर्मुहूर्त काल पूरण करतैं, उत्कृष्टपने छः आवली काल बाकी रहतैं अनन्तानुबन्धी च्यारिमैं ते कोई एक कषाय का उदय होतें मिथ्यात्व रहित अनन्तानुबन्धी सहित होय सो सासादन सम्यक् कहावै है। सो यह सासादन मिथ्यात्व समानि गुण कों धरै है। जैसे क्षीर भोजन करि पीछे वमन करिए ताका लेश रह जाय अल्पकाल क्षीर का स्वाद रहै पीछे जाता रहैगा। तैसे ही सम्यक् पाय कैं, ताकौं वमन कहिए तजिकैं मिथ्यात्वका आवै है। सम्यक् काल है तातैं सम्यक् कह्या है। तातें सासादन सम्यक् है। मिश्रमोह के उदयतैं मिश्र श्रद्धान होय है। जैसे मिश्री अरु दही मिलाकैं खाये खाटामिष्ट स्वाद दोऊ एकै काल आवै। तैसे ही मिथ्यात्व अरु सम्यक् इन दोऊ रूप एक श्रद्धान होय है तातैं याका नाम मिश्रगुणस्थान है। दर्शनमोह की तीन अनन्तानुबन्धी च्यारि इन सातन के क्षयोपशमतैं भया जो आत्माकैं षट्

द्रव्य नव पदार्थ पंचास्तिकाय इनके गुण पर्यायिन का यथावत् श्रद्धान का अनुभव सो ही सांचो दृष्टि यही सम्यक् कहिए। यह चारित्रमोह के उदय संयम नहीं धर सकै सो असंयमी है। तातें अव्रत सम्यग्दृष्टि कह्या है। तहां त्रस हिंसा का त्याग सो तो व्रत है। पंच स्थावरन में व्रत करना तो है परन्तु सर्व प्रकार हिंसा बचती नाहीं निमित्त पाय स्थावर हिंसा होय है तातैं स्थावर हिंसा का त्याग नाहीं। मन और इन्द्रिय वश रहती नाहीं। तातैं ग्यारह अव्रत हैं तातैं इस पंचम गुणस्थान में व्रत अव्रत दोऊ हैं। तातैं याका नाम व्रताव्रत है तथा अल्प व्रत के योगतैं देशव्रत भी नाम है। तहां प्रत्याख्यान के अभावतैं सकल संयम भया ताके सो एकाग्र ध्यान का अवलम्बन छुटि किंचिद् प्रमाद के वश करि आहार विहार उपदेशादि रूप क्रिया वचन इत्यादिक रूप प्रवृत्ति होना सो प्रमत्त छठा गुणस्थान है। तहां विहार उपदेशादि क्रिया रहित ध्यानावलम्बी योगीश्वर ताकौं प्रमादरहित अप्रमत्त गुणधारी कहिए। तहां कारण होने के निमित्त पाय परिणामन को महा विशुद्ध ताके योगतैं समय-समय अनन्त गुणी विशुद्धता लिये समय-समय असंख्यात गुणी निर्जरा कर्मन की होय सो अपूर्वकरण अष्टम गुणस्थान कहिये। याहीतें अधिक विशुद्धता लिये हास्यादिक नो कषाय के रस रहित अपने गुण योग्य काल एक रूप वर्तना अनेक जीवन की एक-सी विशुद्धता होनी और रूप नाहीं होनी सो अनिवृत्तकरण है। अल्प मोह के अंशनि का सद्भाव और सकल मोह का अभाव सहित निराकुल सुख का स्थान, सो सूक्ष्मसाम्पराय दशमो गुणस्थान है। सकल मोह के उपशम भावतैं आत्मा के प्रदेश अडोल—निराकुल सुखमयी यथाख्यात चारित्र का स्थान, उपशान्त मोह नाम ग्यारहमां गुणस्थान है। सकल मोह के क्षय भावतैं प्रगट होय महासुख स्थान, केवल-ज्ञान का निकटवर्ती सो क्षीण-मोह बारहमां गुणस्थान है। च्यारि घातिया कर्मरहित अनन्त चतुष्टय सहित केवलज्ञानी सकल सिद्ध भगवान्, रागद्वेष कषायरहित मन-वचन-काय योग सहित सो सयोग गुणस्थान है। इहां भव्य जीवन के सम्बोधन निमित्त वचनप्राण की शक्ति सहित, वचनयोग के निमित्त पाय वचन का उपदेशरूप खिरना, ताकौं सुनि भव्य ताकौं शिव सुख मार्ग बतावनेकूं दिव्य-ध्वनि करि उपदेश करते, काय प्राण के जोरतैं काययोगतैं अनेक देशन में विहार कर्म करते, समोशरण सहित विचरैं, सो तेरहमां गुणस्थान है। सो याही गुणस्थान विषैं अन्तर्मुहूर्त बाकी रहै, केईक केवलीन कैं समुद्घात होय है। सो समुद्घात के भेद सात हैं। सो

यहां केवल समुद्घात का निमित्त पाय समुद्घात का स्वरूप कहिये हैं। सो प्रथम ही नाम कहिए है—वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणान्तिक, तैजस, आहारक, केवल—ए सात तौ समुद्घात हैं। एक भेद उत्पाद ऐसे ए आठ भेद हैं। अब इनका संक्षेप स्वरूप लिखिए है। तहां महावेदना के योगतैं आत्मा के प्रदेश शरीर के बाहिर निकसना, सो वेदना समुद्घात है। सो बात, पित्त, ताप, पेट, नेत्र, क्रिमि इत्यादिक अनेक रोग सहित, कोई जीव के तौ शरीरतैं एक प्रदेश, कोऊ कैं दोय प्रदेश, किसीकैं तीन प्रदेश इत्यादिक अनेक जीवन सम्बन्धी एक-एक प्रदेश बधतैं असंख्यात प्रदेश वधते भेद वधैं हैं। सो उत्कृष्टपने मूल शरीरतैं नव गुणे भये और शरीर प्रमाण ऊँचे ऐसे आत्माकौं तीव्र वेदना होय तौ मारे वेदना के शरीरकौं छौड़ि प्रदेश बाहिर निकसैं हैं! सो इस वेदनासमुद्घातवाले वनस्पति जीव तीन अशुभलेश्या सहित अनन्त हैं। वायु, तेज, अप, पृथ्वी—इन च्यारि स्थावरन मैं तीन अशुभलेश्या सहित जीव असंख्याते हैं। इनका क्षेत्र तीन लोक है सो इसमैं ऐसा कोई प्रदेश क्षेत्र नहीं बच्या है जहां इस आत्मा नैं अनन्त-अनन्त बार महादुख भावन करि वेदना समुद्घात तैं क्षेत्र नहीं स्पर्शा सो सर्वदेश प्रदेशनि विषैं वेदना भोगी है। सो पाप परिणति का फल जानना। इति वेदना समुद्घात।

आगे कषाय समुद्घात का स्वरूप लिखिये है। तहां क्रोधादिक तीव्र कषाय के निमित्त पाय आत्मा के प्रदेश, मूल शरीरतैं निकसैं तौ एक प्रदेश, कोई के दोय प्रदेश, तीन प्रदेश आदि एक-एक प्रदेश बधतैं मूल-शरीरतैं तिगुणे निकसैं हैं। ऊँचे शरीर प्रमाण निकसैं सो घन रूप करिए तौं मूल-शरीरतैं नव गुणे होंय सो इस कषाय समुद्घातवाले अशुभ तीन लेश्यावाले वनस्पतिमैं अनन्त हैं और वायु, तेज, अप, पृथ्वी—इन च्यारि स्थावरन में असंख्यात हैं। भावार्थ—इस लोक मात्र प्रदेशन में कोई एक प्रदेश नहीं रह्या जहां अनेक बार कषाय समुद्घाततैं क्षेत्र नहीं स्पर्शा। यानैं सर्वलोक प्रदेशन पै कषाय समुद्घात किए हैं। सो अशुभ फल का उदय जानना। इति कषाय समुद्घात। २।

आगे मारणान्तिक समुद्घात का स्वरूप लिखिये है—मारणान्तिक समुद्घातवाले जीव तीन अशुभ-लेश्या सहित तिनका क्षेत्र सर्व लोक है। तहां जो जीव मरण के अन्तर्मुहूर्त पहले अपने शरीरमैं तिष्ठता ही आत्मा प्रदेशन कूं बधायकैं अपने उपजने के स्थान क्षेत्र कूं जाय स्पर्शै पीछे आय मूल शरीर में समाहि पीछे

मरै। सो पहले तहां ताँई आत्म प्रदेशन की डोरी पङ्क्ति रूप विस्तारै सो मारणान्तिक समुद्घात है। भावार्थ— तीन लोक क्षेत्र विषैं ऐसा प्रदेश क्षेत्र नाहीं, जहां इस आत्मा ने अनन्त बार मारणान्तिक समुद्घात करि प्रवेश नाहीं स्पर्शा। सर्व आकाश क्षेत्रन में मारणान्तिक समुद्घात करै है। सो पाप के उदय का फल है। इति मारणान्तिक समुद्घात। ३।

ऐसे वेदना कषाय मारणान्तिक इन तीन समुद्घात सहित अशुभ तीन लेश्या सहित जीव वनस्पति में अनन्ते और स्थावर आदि स्थानमैं असंख्याते व मनुष्यन में संख्याते हैं। ऐसे तीन अशुभ लेश्या में समुद्घात कह्या। आगे शुभ तीन लेश्यान में समुद्घात कहिए है। तहां कषाय समुद्घात विषैं तथा वेदना समुद्घात विषैं तौ प्रदेशनि का निकलने का प्रमाण आगे अशुभ लेश्या में कहि आए। मूल शरीरतैं नवगुणे चौड़े शरीर प्रमाण ऊँचे ताही प्रमाण जानना। मारणान्तिक समुद्घात विषैं पीत लेश्यावाले भवनत्रिक तथा सौधर्म ईशानवाले देव विहार कर कोई निमित्त पाय तीसरी नारकी पृथ्वी पर्यन्त जांय अरु तहाँ ही आयु अन्त होय मरण करैं, सो जीव आठमी मोक्ष शिला में बादर पृथ्वी काय में उपजैं। सो अपने अशुभ भावन की उपार्जना तैं सो जीव नव राजू क्षेत्र पर्यन्त आत्म प्रदेशकौं बधाय अपने उपजने का क्षेत्र स्पर्शै है। ऐसा जानना और तैजस समुद्घात में आत्म प्रदेश बारह योजन लम्बे, नव योजन चौड़े और सूच्यंगुल के संख्याते भाग ऊँचे विस्तरैं हैं। तहाँ कोई देश में बड़ी वेदना प्रजाकौं होय तथा कोई देश में महा दुःख ईति भीति करि भरया होय। अरु ताकूं देखि कदाचित ऋद्धिधारी मुनिकौं करुणा उपजै, तौ मुनीश्वर के दाहिने स्कन्धतैं शुभ तैजस पुतला निकसै सो बारह योजन चौड़े क्षेत्र तांई के जीवन की सर्व वेदना तत्क्षण मेटि, सर्व प्रजाकौं सुखी करै है। कदाचित् प्रजा (देश जीवन) कैं पाप का उदय आवै तौ ऋद्धिधारी मुनिकौं कोप उपजै तौ वा में स्कन्धतैं अशुभ तैजस निकसै, सो अपने विषय योग्य क्षेत्रकूं भस्म करै। पीछे मुनि के आत्म प्रदेश निकसि कोपतैं अग्निमयी होय पृथ्वी को क्षय करि, पीछे मुनि के तन में प्रवेश करैं, सो मुनि का तन भी भस्म होय। ऐसे तैजस दोय प्रकार है। सो तैजस समुद्घात जानना। इति तैजस समुद्घात। ५। आगे आहारक समुद्घात का स्वरूप कहैं हैं। तहां आहारक समुद्घात विषैं एक जीव अपेक्षा कोई योगीश्वर को तत्वज्ञान विचार में संशय उपजै, तौ ऋद्धिधारी मुनिकौं ऋद्धियोगतैं आहारक

पुतला निकसै सो संख्यात योजन अढ़ाई द्वीप प्रमाण क्षेत्र लम्बे आतम प्रदेश होंय। अरु सूच्यांगुल के संख्यात भाग चौड़े ऊँचे विस्तार धरैं हैं। शुक्ललेश्या बिना इन लेश्यान में केवल समुद्घात होता नाहीं। इति आहारक समुद्घात। आगे केवल समुद्घात विशेष कहिए है। शुक्ललेश्या में और समुद्घात तो पूर्ववत जानना। केवल समुद्घात का विशेष है। सो कहिये है—तहाँ केवल समुद्घात के च्यारि भेद हैं। दण्ड कपाट प्रतर लोकपूर्ण। तहाँ दण्ड के दोय भेद हैं—एक स्थितिदण्ड एक उपविष्टदण्ड और प्रतर व लोकपूर्ण इनका एक-एक ही भेद है। तहाँ पद्मासन सहित दण्ड समुद्घात होय सो स्थिति दण्ड समुद्घात है। कायोत्सर्ग आसन सहित दण्ड होय सो उपविष्ट दण्ड है। तहाँ स्थितिदण्ड समुद्घात में एक जीव अपेक्षा प्रदेशन का विस्तार—बातबलय बिना लोक की ऊँचाई प्रमाण है। सो किंचिद् घाटि चौदह राजू प्रमाण तौ लांबे होय है। बारह अंगुल प्रमाण चौड़ा गोलाकार प्रदेश हो है। उपविष्ट दण्ड समुद्घात विषैं लम्बाई तौ पूर्ववत् ही है। चौड़ाई स्थिति दण्डतैं तिगुणी छत्तीस अंगुल प्रमाण गोलाकार दण्ड हो है। ऐसा तौ समुद्घात कह्या। आगे कपाट समुद्घात के च्यारि भेद हैं। पूर्वाभिमुख स्थिति कपाट, उत्तराभिमुख स्थितिकपाट, पूर्वाभिमुख उपविष्ट कपाट, तहाँ उत्तराभिमुख उपविष्ट कपाट पूर्वदिशामुख सहित केवली पद्मासन होय कपाट करें, सो पूर्वाभिमुख स्थिति कपाट, कहिए। तहाँ इस कपाट में आतमा के प्रदेश वातवलय बिना लोक प्रमाण कछू घाटि चौदह राजू तौ लम्बे हैं। उत्तर-दक्षिण दिशा विषैं लोक की चौड़ाई प्रमाण सात राजू चौड़े हैं। पूर्व-पश्चिम दिशा विषैं बारह अंगुल मोटाई लिये ऊँचे हैं। ऐसे पूर्वाभिमुख स्थिति कपाट समुद्घात जानना। पूर्वदिशा मुख किए केवलज्ञानी कायोत्सर्ग आसन सहित कपाट समुद्घात करें, सो पूर्वाभिमुख उपविष्ट कपाट समुद्घात कहिए। तहाँ एक जीव अपेक्षा प्रदेशन की लम्बाई कछुघाटि चौदह राजू हैं। चौड़ाई सात राजू और छत्तीस अंगुल मोटाई प्रमाण प्रदेश ऊँचे हैं। ऐसे पूर्वाभिमुख उपविष्ट कपाट समुद्घात है तथा उत्तराभिमुख स्थिति कपाट समुद्घात ताकौं कहिए है, जहाँ उत्तर दिशा मुख किए केवली पद्मासन सहित कपाट समुद्घात करें सो कछूघाटि चौदह राजू लम्बे आतम प्रदेश होय हैं। पूर्व-पश्चिम दिशा विषैं अधोलोक नीचे सात राजू आतम प्रदेश चौड़े होय हैं, अरु ऊपरि क्रमतैं घटते-बधते मध्यलोक में एक राजू मोटे पीछे ऊपरि क्रमतैं बढ़ते-बढ़ते ब्रह्म स्वर्ग पर्यन्त पाँच राजू, ऊपरि क्रमतैं

घटते-घटते लोक शिखर पै एक राजू हैं। ऐसे पूर्व-पश्चिम दिशा में लोक प्रमाण प्रतर होय हैं। उत्तर-दक्षिण दिशा विषैं बारा अंगुल प्रदेश मोटे जानना। ऐसे उत्तराभिमुख स्थिति कपाट कह्या। आगे उत्तर दिशा कौं मुख करि कायोत्सर्ग आसन सहित केवलज्ञानी कपाट करैं, सो उत्तराभिमुख उपविष्ट कपाट कहिए। तहाँ आत्म प्रदेशन की लम्बाई तौ किंचित् न्यून चौदह राजू है। उत्तराभिमुख स्थिति कपाट की मोटाई का प्रमाण बारह अंगुल है। तातैं तिगुणे छत्तीस अंगुल मोटाई आत्म प्रदेश जानना। इति कपाट। आगे प्रतर का स्वरूप कहिये है। तहाँ तीन वातवलय बिना सर्व लोक विषैं आत्म प्रदेशन का फैलना सो ए सर्व क्षेत्र प्रतर समुद्घात है और वातवलय सहित सर्व लोक चौदह राजू पुरुषाकार में सर्व जगह आत्म प्रदेश फैलें सो लोकपूर्ण समुद्घात है। तातैं ही एक जीव के प्रदेश लोक प्रमाण कहे हैं। सो ही "तत्त्वार्थसूत्र" में कहिए है। फाँकी—"असंखेययाः प्रदेशाः धर्माधर्मैकजीवानाम्।" याका अर्थ—जो धर्म-द्रव्य, अधर्म-द्रव्य और एक जीव इन तीनू के प्रदेश असंख्याते हैं तथा लोक प्रमाण हैं। इति सामान्य समुद्घात स्वरूप। ऐसें समुद्घातन का सामान्य स्वरूप कह्या। विशेष 'श्रीगोम्मटसारजी' से जानना। तहाँ तेरहवें गुणस्थान में केवल समुद्घात करै ताका विशेष कह्या। सो या विधि केवल समुद्घात करि पीछे समुद्घात मेटि मूल शरीर में सर्व आत्म प्रदेश समाहिकैं तिष्ठैं, सो तेरहवाँ सयोग-केवली गुणस्थान जानना। अन्तर्मुहूर्त पीछे अयोग-केवली गुणस्थान होय। तहाँ मन-वचन-काय योग नाहीं। तातें अयोग चौदहमां गुणस्थान हैं। पीछे इहाँ लघु पंच अक्षर काल प्रमाण स्थिति करि निर्माण हो है। ऐसे सामान्य भाव चौदह गुणस्थान का स्वरूप कह्या। इति गुणस्थान। आगे जीव समास कहिए है। तहां एकेन्द्रिय सूक्ष्म बादर एकेन्द्रिय बेन्द्रिय (दोय इन्द्रिय) तेन्द्रिय चौ इन्द्रिय सैनी असैनी ऐसे सात भये। तिनके पर्याप्ति, अपर्याप्तिकरि चौदह भेद जीव समास है। इनहीं के विशेष भेद एक, दोय, तीन, च्यारि आदि एक-एक बढ़तो उगनीस (उन्नीस) भेद हो हैं। अड़तीस सन्तावन चारिसौ षट् भेद भी हैं सो आगे कहेंगे। सो भी इन चौदह ही में गर्भित हैं। इति जीव समास। आगे पर्याप्ति का स्वरूप कहिये है। तहां शरीरादि यथायोग्य इन्द्रियन का पुद्गलीक आकार होना सो पर्याप्ति है। तहाँ औदारिक, वैक्रियिक, आहारक—इन तीन शरीर जाति की पुद्गल परमाणु को ग्रहण करि इन तीन शरीररूप परमाणु परिणमाय केतीक अस्थि चाँम नश

मांसादि कठिन अवयव करना सो इनका नाम खलरूप है और केतेक परमाणूनकौं श्रोणित वीर्यादिक रसभाग रूप पतले अवयव परणमावै है ऐसे पुद्गलनकौं परिणमाय रस रूप करै। ऐसे अन्तर्मुहूर्त काल यथायोग्य ताँई क्रिया करै, सो आहार पर्याप्ति कहिए है। इन ग्रहे पुद्गल स्कन्धनकौं आत्मा आकर्षण करि शरीररूप करै सो शरीर पर्याप्ति है। इहां प्रश्न—जो तुमने कह्या कि आहार पर्याप्ति करतैं पुद्गल हाड़ मांसादि रूप करै है, सो वैक्रियिक आहारक शरीरन में हाड़ माँस कैसे सम्भवै? ताका समाधान—जो पुद्गल तीन शरीर रूप होने योग्य होय ताकौं आत्मा आकर्षण करकैं खलरूप रसरूप करै है। सो खलरूप करै तिनकै तो कठोर अवयव अपने शरीर योग्य बनावै है अरु रसरूप भई तिनके बह चलै ऐसे रसरूप पतले अवयव बने हैं। पीछे अपने-अपने शरीरन के अङ्गोपाङ्गरूप परणमै हैं। तहाँ आहारक वैक्रियिक शरीरनकै तौ उन प्रमाण अङ्गोपाङ्ग बनै हैं। औदारिक शरीर के औदारिक शरीर प्रमाण अङ्गोपाङ्ग बनै हैं। ऐसे अपने-अपने शरीर पदस्थ योग्य पुद्गल स्कन्धन का परिणमन है। सो सहजै ही परणमै हैं। असहाय, बिना यतन परिणमन जानना। ऐसे आहार पर्याप्ति करि पीछे तिन ग्रहे परमाणु कठोर तथा नरम अव्यवरूप पुद्गलन का शरीररूप बन्धान करना सो शरीर पर्याप्ति है। किया जो शरीर ताके यथायोग्य इन्द्रियन के आकार स्थान के स्थान होना, सो इन्द्रिय पर्याप्ति है। जा शरीर में श्वासोच्छ्वास लेने के स्थानक होना, सो तिनतैं पवनकौं अङ्गीकार करि बाहिरतैं भीतर लेना पीछे बाहिर काढ़ना। ऐसे पुद्गलीक आकार शरीर में होना, सो श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति है। ऐसे पीछे जिन स्थाननतैं वचन बोल्या जाय, ऐसे पुद्गलीक आकार शरीर में होना, सो भाषा पर्याप्ति है। हिरदे विषैं विकल्प करने का आकार तातैं शुभाशुभ विचार कीजिए, ऐसा अष्ट पांखड़ी का कमलाकार द्रव्यमन पुद्गलीक स्कन्ध का परिणमन सो मनः पर्याप्ति है। इति पर्याप्ति। आगे प्राणन का संक्षेप स्वरूप कहिए है। तहां शरीरादि यथायोग्य इन्द्रियन में अपने-अपने विषय ग्रहण की शक्तिरूप परिणमन, सो प्राण कहिए। तहाँ पंचेन्द्रिय अपने विषय में रंजायमान करै, सो जैसे—स्पर्श इन्द्रिय अपने योग्य अष्ट विषय तिनका निमित्त मिलै सुख-दुख करने की शक्ति सो स्पर्श इन्द्रिय प्राण है। जहां रसना इन्द्रिय अपने योग्य पंच विषय तिनमें रंजायमान करै, सो रसना इन्द्रिय प्राण है। घ्राण इन्द्रिय अपने योग्य दोय विषयन में रंजायमान

करै, सो घ्राण इन्द्रिय प्राण है और तहाँ चक्षु इन्द्रिय अपने योग्य पंच विषयन में रंजायमान करै, सो चक्षु इन्द्रिय प्राण है और जहां श्रोत्र इन्द्रिय अपने योग्य विषय में रंजायमान करै, सो श्रोत्र इन्द्रिय प्राण है। ऐसे तौ पंचेन्द्रिय प्राण हैं और जहाँ मन विषैं शुभाशुभ संकल्प-विकल्प करि हर्ष-विषाद उपजावने की शक्ति, सो मनः प्राण है और वचन बोलने की शक्ति सो वचन प्राण है और जहाँ काय विषैं हलन-चलन रूप गमनागमन की शक्ति सो काय प्राण है और जहाँ शरीर विषैं श्वासोच्छ्वास लेने की शक्ति सो श्वासोच्छ्वास प्राण है और जहां अनेक दुख-सुखन में आत्मा शरीरतैं भिन्न नहीं होय, सो आयु प्राण है। ऐसे सामान्य दश प्राण जानना। इति प्राण स्वरूप।

आगे संज्ञा का स्वरूप सामान्यपने लिखिए है जहाँ वस्तु की इच्छा का क्षयोपशम होय, सो संज्ञा है। जहां आहार की इच्छारूप निमित्त सहित क्षयोपशम, सो आहार संज्ञा है और जहां भय का निमित्त मिले भय की इच्छा का क्षयोपशम सो भय संज्ञा है और जहाँ मैथुन की सामग्री सहित इच्छा का क्षयोपशम, सो मैथुन संज्ञा है और परिग्रह का निमित्त मिले परिग्रह को इच्छा सहित त्तयोपशम, सो परिग्रह संज्ञा है। ऐसे सामान्य संज्ञा कही। इति संज्ञा। आगे चौदह मार्गणा, तिनका स्वरूप ऊपर कहा है नाममात्र यहां कहिए है। गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्य, सम्यक्, सैनी, आहार—ए चौदह मार्गणा हैं। इति मार्गणा। आगे उपयोग—तहां ज्ञानोपयोग आठ प्रकार दर्शनोपयोग च्यारि प्रकार ए दोऊ दर्शनज्ञान मिलि उपयोग के भेद बारह जानना। इति उपयोग। ऐसे सामान्य गुणस्थान मार्गणानि का स्वरूप कह्या। आगे इनहीं गुणस्थान में मार्गणा लिखने रूप अलाप कहिए है। सो प्रथम ही गुणस्थान में मार्गणादि चौबीस ठाम (स्थान) लगाईये है। तहां चौथे गुणस्थान ताँई तौ गति च्यारि ही हैं। पंचम गुणस्थान में मनुष्य वा तिर्यंचगति है। छठेतैं ऊपरिलै गुणस्थानन में एक मनुष्यगति ही जानना। इन्द्रिय मार्गणा—सो प्रथम गुणस्थान तौ पंच ही इन्द्रिय धारक जीवनकैं होय है। दूसरेतैं लगाय चौदहवें गुणस्थान पर्यन्त ए सर्व स्थान पंचेन्द्रिय सैनीकें होय हैं। कोई आचार्य एकेन्द्रियादि असैनी पर्यन्त जीवनकैं सासादन कहैं हैं। ताकी मुख्यता नाहीं जानना। यथायोग्य समझि लेना बहुरि कायमार्गणा—सो प्रथम गुणस्थान तौ षट्काय जीवनकैं ही जानना। दूसरेतें लगाय चौदहवें तांई ए

स्थान त्रसजीव काय के होंय हैं। आगे योग मार्गणा—तहाँ प्रथम गुणस्थान में आहारकद्विक बिना योग तेरह हैं और सासादन में भी ए ही तेरह योग हैं और मिश्र में मन के च्यारि, वचन के च्यारि, काय के दोय ऐसे दश योग हैं। असंयत चौथे में आहारकद्विक बिना तेरह योग हैं। पांचवें में नव, छठे में आहारकद्विक सहित ग्यारह योग हैं। सातवें ते लगाय बारहवें पर्यन्त नव योग हैं। तेरहवें में सात योग हैं। चौदहवें में योग नाहीं। आगे वेद—सो प्रथमतैं लगाय नववें गुणस्थान के सवेद भाग पर्यन्त तीनों वेद हैं। आगे वेद नाहीं। आगे कषाय—सो प्रथमतैं दूसरे तांई कषाय पच्चीस ही हैं। तीसरे-चौथे में कषाय इक्कीस हैं। पांचवें में कषाय सत्तरह हैं। छठेतैं अपूर्वकरण पर्यन्त तेरह कषाय हैं। नववें में सात हैं। दशवें में एक सूक्ष्म लोभ है। आगे कषाय नाहीं। बहुरि अब ज्ञान कहिए हैं। सो प्रथम-दूसरे में तौ तीन कुज्ञान हैं। तीसरे में मिश्र ज्ञान है और चौथे-पांचवें में तीन सुज्ञान हैं और प्रमत्त तैं लगाय बारहवें पर्यन्त ज्ञान च्यारि हैं। तेरहवें-चौदहवें में एक केवलज्ञान है। आगे संयम कहिए हैं—सो मिथ्यात्व तैं असंयत पर्यन्त तौ असंयम है और पांचवें में देश संयम एक है। प्रमत्त-अप्रमत्त इन दोऊन में सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि—ए तीनि संयम हैं। आठवें-नववें में सामायिक, छेदोपस्थापना ए दोय संयम हैं और दशवें में सूक्ष्म साम्पराय संयम है और ऊपरे एक यथाख्यात ही संयम है। आगे दर्शन कहिए हैं—सो प्रथम तैं तीजे पर्यन्त तौ दोय दर्शन हैं। चौथे तैं लगाय बारहवें पर्यन्त तीन दर्शन हैं। तेरहवें-चौदहवें में एक केवलदर्शन है। आगे लेश्या कहिए है—सो चौथे गुणस्थान पर्यन्त तौ षट् लेश्या हैं। पांचवें तैं लगाय सप्तम पर्यन्त तीन शुभलेश्या हैं। अष्टमतैं लगाय तेरहवें गुणस्थान पर्यन्त एक शुक्ललेश्या है। चौदहवें में लेश्या नाहीं। आगे भव्य कहिए है—तहां मोक्ष कबहूँ नहीं जाय, सो अभव्य हैं। मोक्ष जाने योग्य होय सो ताकों भव्य कहिए सो प्रथम गुणस्थान में तौ भव्य अभव्य दोय हैं और ऊपरले सर्व गुणस्थान भव्य को होंय हैं। आगे सम्यक्त्व कहिए है। सो मिथ्यात में मिथ्यात सम्यक्त्व है। सासादन में सासादन सम्यक्त्व है। मिश्र में मिश्र है और असंयततैं लगाय अप्रमत्तलौं उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक सम्यक्त्व है। आठवें तैं लगाय ग्यारहवें लूं उपशम और क्षायिक दोय सम्यक्त्व हैं। बारहवें तैं लेय सिद्धन पर्यन्त एक क्षायिक सम्यक्त्व है। आगे संज्ञी कहैं हैं। सो प्रथम गुणस्थान में सैनी असैनी दोऊ। दूसरे तैं लेय बारहवें लौं सैनी

ही हैं। तेरहवें चौदहवें में दोऊ नाहीं। आगे आहार मार्गणा कहिये हैं। तहां प्रथम दूसरे चौथे इनमें आहारक अनाहारक दोऊ हैं। मिश्र तीजे में व पांचवें में एक आहारक है। छठे में आहारक अनाहारक दोऊ हैं। अप्रमत्ततैं लगाय बारहवें पर्यन्त आहारक है। तेरहवें में दोऊ हैं। चौदहवें में अनाहारक है। इति प्रथममार्गणाप्ररूपणा।

आगे गुणस्थान प्ररूपणा—तहां गुणस्थान का स्वरूप अपने-अपने गुणस्थान में स्वकीय गुणस्थान चौदह ही सामान्यवत् जानना। आगे जीव समास गुणस्थान पै लगाइए है। तहां प्रथम गुणस्थान में चौदह ही जीव-समास हैं। सासादन, असंयत, प्रमत्त, सयोगकेवली—इन च्यारि गुणस्थानन में पंचेन्द्रिय की पर्याप्ति, अपर्याप्ति ए दोऊ ही जीव समास हैं। बाकी के सर्व गुणस्थानों में एक पंचेन्द्रिय पर्याप्ति जीव समास है। आगे पर्याप्ति कहिए हैं—सो प्रथम गुणस्थानतैं लगाय चौदहवें पर्यन्त छहौं पर्याप्तियाँ हैं। आगे प्राण कहिये हैं—सो मिथ्यात्व तैं लगाय बारहवें गुणस्थान पर्यन्त तौ दश प्राण हैं और तेरहवें के अपर्याप्ति में तौ आयु, काय दो प्राण हैं। पर्याप्ति में च्यारि हैं। अयोग में एक आयु प्राण है। आगे संज्ञा कहैं हैं—तहां संज्ञा च्यारि हैं। सो तहां प्रथम तैं लगाय प्रमत्त छठे तांई संज्ञा चारौं हैं। सातवें-आठवें गुणस्थान में आहार बिना तीन संज्ञा हैं। नववें में मैथुन परिग्रह दोय संज्ञा हैं। दशवें में एक परिग्रह संज्ञा है। आगे कषायन के अभावतैं संज्ञा का भी अभाव है। ए संज्ञा हैं, सो कषायन के योगतैं होंय हैं। सो अप्रमत्तमैं ध्यान अवस्थातैं आहार विहारादि प्रमाद के अभाव तैं आहार संज्ञा का अभाव है। भय कषाय के निमित्त तैं भय संज्ञा उपजै है। वेद कषाय तैं मैथुन संज्ञा होय है। लोभ कषाय के निमित्त पाय परिग्रह संज्ञा होय है। जहां कषाय नाहीं, तहाँ संज्ञा भी नाहीं। ऐसे संज्ञा जानना। आगे उपयोग बारह हैं—तहाँ मिथ्यात्व, सासादन इन दोऊ गुणस्थानन में दर्शन दोय, कुज्ञान तीन ए पांच उपयोग हैं। मिश्र गुणस्थान में मिश्र ज्ञान तीन, दर्शन दोय ए पांच उपयोग हैं। कोई आचार्य यहां तीन दर्शन भी कहैं हैं। ता अपेक्षा छः उपयोग हैं। चौथे पांचवें में सुज्ञान तीन, दर्शन तीन ए षट उपयोग हैं। छठे तैं लगाय बारहवें गुणस्थान पर्यन्त ज्ञानि च्यारि, दर्शन तीन ए सात उपयोग हैं। तेरहवें-चौदहवें में केवलज्ञान, केवलदर्शन ए दोय उपयोग हैं। ऐसे सामान्य बीस प्ररूपणा का स्वरूप कह्या। इति बीस प्ररूपणा। आगे ध्यान आस्रव जाति कुल ए चारि गुणस्थान प्रति लगाईए है—

गाथा—झाणवेय पत्तावेय जायए कुलकोड संजया सब्वे । गाहा तयेण भणिया, कमेण चौबीस ठाणाणीं ॥ १३ ॥

अर्थ—ध्यान सोलह, आस्रव सत्तावन (कषाय २५, योग १५, अव्रत १२, मिथ्यात्व ५—ए सर्व सत्तावन जानना) सो ध्यान अरु आस्रवन का स्वरूप आगे कह्या है। तातैं यहाँ नहीं कह्या वहाँ तें जानना। एकेन्द्रिय जाति में पृथ्वी, अप्, तेज, वायु—साधारण वनस्पति के इतरनिगोद, नित्यनिगोद करि दोय भेद हैं। ए षट् स्थावरन की सात-सात लाख जाति हैं। प्रत्येक वनस्पति की दश लाख जाति हैं। बेन्द्रिय (दो इन्द्रिय) तेन्द्रिय, चौइन्द्रिय—इन तीन की दोय-दोय लाख जाति हैं। देव, तिर्यंच, नारकी—इन तीनन की च्यारि-च्यारि लाख जाति हैं। मनुष्य की चौदह लाख जाति हैं। ए सर्व मिल चौरासी लाख जाति जानना। इति जाति। आगे कुल कहिए हैं। सो पृथ्वी काय के बाईस लाख कोड़ि कुल हैं। अप्, वायु इन दोऊ के सात-सात लाख कोड़ि कुल हैं। तैजस काय के तीन लाख कोड़ि कुल हैं। वनस्पति के अट्ठाइस लाख कोड़ि कुल हैं। बेन्द्रिय के सात लाख कोड़ि कुल हैं। तैन्द्रिय के आठ लाख कोड़ि कुल हैं। चौइन्द्रिय के नव लाख कोड़ि कुल हैं। पंचेन्द्रिय के तहां जलचर जीव जे जल ही में रहैं तिनके साढ़े बारह लाख कोड़ि कुल हैं। थलचर जो पृथ्वी पर विचरनेहारे दुपद, चौपद ऐसे जो थलचर हैं, सो इनके बारह लाख कोड़ि कुल हैं। नभ में उड़नेहारे पक्षी सो नभचर हैं, तिनके दश लाख कोड़ि कुल हैं। जे छाती ही तैं चलैं ऐसे सर्पादि जीव, तिनके नव लाख कोड़ि कुल हैं। मनुष्यन के बारह लाख कोड़ि कुल हैं। देवन के छब्बीस लाख कोड़ि कुल हैं। नारकीन के पच्चीस लाख कोड़ि कुल हैं। ए सर्व मिलि एकसौ साढ़े सित्यानबै लाख कोड़ि कुल जानना। ऐसे इस गाथा का सामान्य स्वरूप कह्या। अब इन ध्यान आस्रव, जाति कुल च्यारनकों गुणस्थानन पै लगईए हैं। तहाँ प्रथम ध्यानकूं कहिए हैं। सो प्रथम-दूसरे गुणस्थान में आर्त-रौद्रध्यान के आठ भेद हैं। तीसरे मिश्र में आर्त-रौद्र के आठ धर्म्यध्यान के एक आज्ञाविचय ए नव ध्यान हैं। असंयत में आर्त-रौद्र के आठ भेद अरु आज्ञा, अपायविचय ए दोय धर्म्यध्यान के
 ऐसे दश भेद हैं और पांचवें में आर्त-रौद्र के आठ स्थानविचय बिना धर्म्यध्यान के तीन सर्व मिल ग्यारह ध्यान है। प्रमत्त में धर्म्मध्यान च्यारि आर्तध्यान निदान बन्ध बिना तीन ए सात ध्यान हैं। अप्रमत्त में धर्म्यध्यान के च्यारि भेद हैं। आठ में ते लगाय ग्यारहवें पर्यन्त एक पृथक्त्ववितर्क वीचार नाम शुक्लध्यान है। बारहवें

गुणस्थान में एकत्ववितर्कवीचार नामा शुक्लध्यान है और तेरहवें में सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति नाम शुक्लध्यान है और चौदहवें में व्युपरतिक्रिया निवर्ति नाम शुक्लध्यान है। इति ध्यान। आगे गुणस्थान प्रति आस्रव कहिये हैं, आस्रव सन्तावन हैं तहां मिथ्यात्व में आहारकद्विक योग बिना पचवन आस्रव हैं और सासादन में पंच मिथ्यात्व व आहारकद्विक बिना पचास आस्रव हैं। मिश्र में कषाय इक्कीस, योग दश, अव्रत बारह सर्व मिलि तियालीस आस्रव हैं। आगे चौथे में अव्रत बारह, कषाय इक्कीस, योग तेरह सर्व मिलि छयालीस आस्रव हैं। पंचम में कषाय सत्तरा, योग नव, अव्रत ग्यारह ए सर्व मिलि सैंतीस आस्रव हैं। प्रमत्त में कषाय तेरह, योग ग्यारह ए सर्व मिलि चौबीस आस्रव हैं। सातवें-आठवें में कषाय तेरह, योग नव मिलि करि बाईस आस्रव हैं। कषाय सात, योग नव मिलि आस्रव सोलह नवमें गुणस्थान में हैं। कषाय एक, योग मिलि दश आस्रव सूक्ष्म साम्पराय में हैं। ग्यारहवें-बारहवें में नव योग आस्रव हैं। तेरहवें में सात योग आस्रव हैं और चौदहवें में आस्रव नाहीं। इति आस्रव। आगे जाति गुणस्थानपै कहिए हैं। तहां जाति चौरासी लाख हैं, सो प्रथम गुणस्थान में तो सर्व जाति हैं। सासादन, मिश्र, असंयत इन तीन में देव, नरक, पंचेन्द्रिय, तिर्यंच, मनुष्य इनकी छब्बीस लाख जाति हैं। पांचवें में मनुष्य तिर्यंच सम्बन्धी अठारह लाख जाति हैं। इति जाति। आगे गुणस्थान पै कुल लगाइये हैं। कुल एकसौ साढ़े सत्याणबै लाख कोड़ि कुल हैं। तहाँ मिथ्यात्व में सर्व कुल हैं। सासादन, मिश्र, असंयत इनमें एकेन्द्रिय बिकलेन्द्रिय सम्बन्धी घटाय एकसौ साढ़े छै लाख कोड़ि कुल हैं। पंचम गुणस्थान में पंचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्य सम्बन्धी साढ़े पचपन लाख कोड़ि कुल हैं। प्रमत्त तैं लगाय चौदहवें गुणस्थान पर्यन्त मनुष्य सम्बन्धी बारह लाख कोड़ि कुल हैं। इति कुल। ऐसे सामान्य गुणस्थानन पै चौबीस ठाणौं लगाया। अब कहे जो ए जीव तिनमैं स्थावरन के पंच भेदन में वनस्पति है। सो वनस्पति जीवन की उत्पत्ति के कारण बीज सो सात प्रकार हैं। सो ही कहिए हैं—

गाथा—पल्लव मूल पव्वो, कर खन्दोय वीय समुच्छो। भेयो सत्त पयारो, इक अक्खो वणप्फदी वीयो ॥ १४ ॥

अर्थ—पल्लव, मूल, पर्व, कन्द, स्कन्ध, बीज, सम्मूर्च्छन—ए सात भेद वनस्पति उपजने कूं बीज समान हैं। जाकी कोंपल ऊपरितैं तोड़ि लगाय लोग, ऐसे हजारी गेंदा कौं आदि देय केतोक वनस्पति हैं जिनका पल्लव

लगावै तौ लगै। सो पल्लव बीज कहिए तथा अग्रबीज कहिए। केतीक वनस्पति ऐसी हैं। तिनका मूल कहिये जड़ सो ताकी जड़ कों लगाये लागें, ऐसे कदली आदि अनेक वनस्पति ऐसी हैं तिनका मूल ही बीज हैं। मूलतैं ही उपजैं, तातैं मूल बीज कहिए। केतीक वनस्पति ऐसी हैं, तिनकी पोरी ही तैं उत्पत्ति है। ताकी पोरी लगाय लागै ऐसे सांठे [ईख] आदि सो इनका बीज पोरी ही है तातैं इनकूं पर्व बीज कहिए है और केतीक वनस्पति ऐसी हैं। तिनका कन्द ही लगाय लागै। सो कन्द ताकौं कहिए है जो भूमि ही विषैं जाकी वृद्धि होय ऐसे आदा, सूरण, जमीकन्द, सकरकन्द, रतालु, पिंडालू आदि इनकी कन्द ही तं उत्पत्ति है। तातैं इनकौं कन्दबीज कहिए है। केतीक वनस्पति ऐसी हैं तिनका स्कन्ध जो शाखा सो तिनकी छोटी-मोटी शाखा तोड़ि लगाईए तौ लागें। ऐसे गुलाब, चमेली, अमरवेलि आदि वनस्पति सो स्कन्ध बीज हैं। केतीक वनस्पति ऐसी हैं जिनकी उत्पत्तिकौं कारण बीज ही है, बिना बीज नाहीं होय, ऐसे गेहूँ, तन्दुलादि अन्न ए बीज ही तैं उपजे हैं इनका बीज अन्नादि है केतीक वनस्पति ऐसी हैं जिनकी उत्पत्तिकौं कछु कारन नाहीं बिना बीज सहज ही उत्पत्ति होय ऐसे घास, डाभ, जड़ी, बूटी आदि सो इनकी उत्पत्तिकूं बीजादि नाहीं, सो सम्मूर्च्छनपना ही बीज है। ऐसे सात भेदरूप वनस्पति की उत्पत्ति कही। इति सुदृष्टि तरंगिणी नाम ग्रन्थमध्ये जीवतत्व वर्णन विषैं चौबीस प्ररूपणा सामान्य गुणस्थान पै समुद्घात के लक्षण तथा सात भेद वनस्पति उत्पत्ति इत्यादि कथन वर्णनो नाम षष्ठ पर्व सम्पूर्णम्। आगे गुणस्थान सम्बन्धी जीवन की संख्या कहिए है। तहाँ प्रथम ही मिथ्यात्वी जीवन की संख्या कहिये है—

गाथा—थावरमिच्छ अणन्तो, विकलतीय पंचखअ सव्वविणसंखा देव असंखाणारय मिच्छण रसं स्वभासयं देव ॥ १५ ॥

अर्थ—अब कहिए है जो स्थावर एकेन्द्रिय मिथ्यात्विन की राशि अनन्त हैं और विकलत्रय मिथ्यादृष्टि राशि असंख्यात हैं। मिथ्यादृष्टि देव असंख्यात हैं। नारक मिथ्यादृष्टि असंख्यात हैं। मनुष्य मिथ्यादृष्टि संख्यात हैं। ऐसे च्यारि गति सम्बन्धी मिथ्यादृष्टिन का प्रमाण कह्या। भावार्थ—पांच स्थावर हैं। तिनमें सर्व तैं थोड़े प्रमाणधारी अग्निकायिक जीव जानना। सो भी ऐसे-ऐसे असंख्यात लोकन के जेते प्रदेश होंय, तेते अग्निकाय जीव हैं। अग्निकायतें असंख्यात अधिक पृथ्वीकायिक जीव हैं। पृथ्वीकायतें असंख्यात अधिक अपकाय के

जीव हैं। अपतैं असंख्यात अधिक वायुकाय के जीवन का प्रमाण है। अग्निकाय के असंख्यातवैं भाग घटते वेन्द्रिय जीव हैं। वेन्द्रियतैं असंख्यात घाटि तेन्द्रिय हैं। तेन्द्रिय से असंख्यात घाटि चौइन्द्रिय हैं चौइन्द्रियतैं असंख्यात घाटि पंचेन्द्रिय हैं। ऐसे सर्व से थोड़े पंचेन्द्रिय हैं। तिनमें भी मिथ्यात्वी बहुत हैं पंच ही स्थावर में सर्व कहे स्थावर तिनतैं अनन्त गुणे जीव वनस्पति का प्रमाण जानना। इन पंच स्थावरन में सूक्ष्म जीवराशि बहुत हैं, बादर थोड़े हैं। काहेतें सो बताइये है—कि सूक्ष्म जीवन का क्षेत्र तौ लोक है। सर्व लोक सूक्ष्म पंच स्थावरनतैं जल घटवत् भर्‌या है। बादर, सहायतैं होय है। सो सहाय का क्षेत्र अल्प है। तातैं सूक्ष्म राशि विशेष, बादर राशि थोड़ी ऐसा जानना। सो ए स्थावर विकलत्रय राशि, एतौ सर्व मिथ्यात्व-समुद्र में मगन ही हैं और च्यारि गति सम्बन्धी पंचेन्द्रियन में भी मिथ्यात्व राशि तौ बहुत है, अरु सम्यग्दृष्टि थोड़े हैं। सो अगली गाथा में सम्यग्दृष्टि च्यार गति सम्बन्धी सासादन मिश्र गुणस्थान अविरत तथा पंचम षष्टम तैं लगाय चौदहमा गुणस्थानवर्ती जीवन का प्रमाण कहिए हैं—

गाथा—वावण इकसय चउक्को, सत्ताय तिदसय कोड़ीए। सासा मिस्सा संजय, देस संजाय होयणर भव्वा ॥ १६ ॥

अर्थ—भव्यराशि मनुष्यन में—सासादन गुणस्थानवर्ती मनुष्य बावन कोड़ि हैं और मिश्र गुणस्थानवर्ती मनुष्य एकसौ च्यारि कोड़ि हैं और असंयत चौथे गुणस्थानवर्ती मनुष्य सात कोड़ि हैं और पंचम गुणस्थानवर्ती मनुष्य तेरह कोड़ि हैं। ऐसे सासादनतैं लगाय पंचम गुणस्थानवर्ती कहे। सो उत्कृष्टपने कहे। इनतैं अधिक नहीं होंय, ऐसा जानना। इति मनुष्यन में गुणस्थानवर्ती जीवन का प्रमाण कह्या। आगे देव, नारकी, तिर्यंचमैं सासादन, मिश्र, असंयत तिनका प्रमाण, अरु पंचम गुणस्थानवर्ती तिर्यंच और छठे गुणस्थान तैं लगाय चौदहवें गुणस्थानवर्ती मनुष्यन का प्रमाण कहिए है—

गाथा—सुरय सुणारय गतयो, सासामिस्सो असंजविए संखा। असंख पसु अणुवरती, पमत्तादो णो कोड़ि ति उड़ोय ॥१७॥

अर्थ—देव, नारक, तिर्यंच यह असंयत सम्यग्दृष्टि, मिश्र सासादन और तिर्यंच देश संयमी ए सर्व प्रत्येक असंख्यात जानना और प्रमत्त तैं लगाय अयोगि पर्यन्त जीवन का प्रमाण तीनि घाटि नव कोड़ि जानना।

भावार्थ—तीन गति सम्बन्धी सासादन, मिश्र, असंयमी देश संयमी तिनके प्रमाण की अधिक हीनता बताइए है।

सो सर्व तै बहुत सम्यग्दृष्टि देवन में हैं। सो ही दिखाइये हैं। तहां प्रथम युगल में सम्यग्दृष्टि सर्व तैं अधिक हैं। सो असंख्याते हैं। ते सर्व पल्य के असंख्यातवें भाग जानना। याही युगल के सम्यग्दृष्टितैं असंख्यातवें भाग ह्यांके मिश्र गुणस्थानी हैं और इन मिश्रनतैं संख्यातवें भाग प्रथम युगल के सासादनी हैं और प्रथम युगल के सासादनी तैं दूसरे युगल के सम्यग्दृष्टि असंख्यातवें भाग हैं। दूजे युगल के सम्यग्दृष्टितैं असंख्यातवें भाग यहां ही के मिश्र गुणस्थानी हैं। इन मिश्रनतैं संख्यातवें भाग इसही दूसरे युगल के सासादनी हैं। दूसरे युगल के सासादनीनतैं असंख्यातवें भाग तीसरे युगल के सम्यग्दृष्टिन का प्रमाण है। इन सम्यग्दृष्टिनतैं असंख्यातवें भाग यहीं के मिश्र हैं। इन मिश्रनतैं संख्यातवैं भाग तीसरे युगल के सासादनी हैं। तीसरे युगल के सासादनीन के असंख्यातवैं भाग चौथे युगल के सम्यग्दृष्टि हैं। इनतैं असंख्यातवैं भाग मिश्र गुणस्थानी हैं। मिश्रनतैं संख्यातवैं भाग सासादनी हैं। चौथे युगल के सासादनी तैं असंख्यातवैं भाग पंचम युगल के सम्यग्दृष्टि हैं। इन सम्यक्त्वीनतैं असंख्यातवें भाग ह्यां ही के मिश्र हैं। इन मिश्रन तैं संख्यातवें भाग पंचम युगल के सासादनी हैं। पंचम युगल के सासादनीन तैं छठे युगल के सम्यग्दृष्टि असंख्यात गुने घाटि हैं। इन सम्यग्दृष्टिनतैं असंख्यातवैं भाग मिश्र गुणस्थानी हैं। मिश्रनतैं संख्यातवें भाग ह्यां ही के सासादनी हैं और छठे युगल के सासादनीतैं असंख्यातवें भाग ज्योतिष देवन के सम्यग्दृष्टि हैं। तिनतैं असंख्यातवें भाग मिश्र गुणस्थानी हैं। मिश्रनतैं संख्यातवें भाग ज्योतिषीन के सासादनी हैं। ज्योतिषीन के सासादनीनतैं असंख्यातवें व्यन्तरन में सम्यग्दृष्टि हैं। ह्यांके सम्यग्दृष्टिनतैं असंख्यातवैं भाग मिश्र हैं। व्यन्तर मिश्रनतैं संख्यातवैं भाग सासादनी व्यन्तर हैं। आगे सासादनी व्यन्तरनतैं असंख्यातवैं भाग भवनवासीनके सम्यग्दृष्टि हैं। सम्यक्त्वीनतैं असंख्यातवें भाग मिश्र हैं। मिश्रनतैं संख्यातवें भाग भवनवासी सासादनी हैं। आगे सासादनी भवनवासीनतैं असंख्यातवैं भाग तिर्यंचनके सम्यग्दृष्टि हैं सम्यग्दृष्टिनतैं असंख्यातवें भाग मिश्रगुणस्थानी तिर्यंच हैं। मिश्रतैं संख्यातवें भाग सासादनी तिर्यंच हैं और सासादनी तिर्यंचनतैं असंख्यातवैं भाग देश-संयमी तिर्यंच हैं और जेते देश-संयमी तिर्यंच हैं। तितने ही प्रथम नरक में सम्यग्दृष्टि हैं। इनतैं असंख्यातवें भाग मिश्रसम्यक्त्वी हैं। इन मिश्रनतैं संख्यातवें भाग प्रथम नरक के नारकी सासादनीनतैं असंख्यातवें भाग दूसरे नरक के सम्यग्दृष्टि हैं। इनतैं असंख्यातवैं भाग मिश्रसम्यक्त्वी हैं। इन मिश्रनतैं

संख्यातवैं भाग दूसरे नरक के सासादनी जीवन का प्रमाण है और दूजी पृथ्वी के सासादनीनतैं असंख्यातवैं भाग तीसरे नरक में सम्यग्दृष्टि हैं। इन सम्यक्त्वीनतैं असंख्यातवैं भाग मिश्र हैं। मिश्रनतैं तीसरे नरक के सासादनी संख्यातवैं भाग हैं। तीसरे नरक के सासादनीनतैं असंख्यातवैं भाग चौथे नरक के सम्यग्दृष्टि हैं। इन सम्यक्त्वीनतैं असंख्यातवैं भाग यहां यहां ही के मिश्र हैं। इन मिश्रनतैं संख्यातवैं भाग चौथे नरक के सासादनी हैं। चौथे नरक के सासादनीन के असंख्यातवैं भाग पंचम नरक के सम्यग्दृष्टि हैं। इनतैं असंख्यातवैं भाग पंचम नरक के मिश्र सम्यक्त्वी हैं। मिश्रनतैं संख्यातवैं भाग पंचम नरकके सासादनी हैं। पंचम नरकके सासादनीनतैं असंख्यातवैं भाग छठे नरक के सम्यग्दृष्टि हैं। इनतैं ह्यांही के मिश्र असंख्यातवैं भाग हैं। इनतैं संख्यातवैं भाग छठे नरक के सासादनी हैं। इन छठे नरक के सासादनीनतैं सातवें नरक के सम्यग्दृष्टि असंख्यातवैं भाग हैं। इन सम्यक्त्वीनतैं असंख्यातवैं भाग ह्यां के मिश्र सम्यक्त्वी हैं। इन सातवैं नरक के सासादनी हैं। इहां ताईं षट् युगल भवनत्रिक में, पंचेन्द्रिय तिर्यंच मैं, सात ही नारकीन मैं, सम्यग्दृष्टिनतैं असंख्यातवैं भाग मिश्र अरु मिश्रतैं संख्यातवैं भाग सासादनी, ऐसा अनुक्रम कह्या आगे सातवें युगलतैं संख्यात भाग को अनुक्रम लिये जानना। आगे सातवें नरक के सासादनीतैं संख्यातवैं भाग सातवें युगल के सम्यग्दृष्टि देव हैं। सातवें युगल के सम्यक्त्वीनतैं संख्यातवैं भाग ह्यां ही के मिश्र हैं। इन मिश्रनतैं संख्यातवैं भाग हैं सातवें युगल के देव सासादनी हैं। सातवें युगल के सासादनीनतैं संख्यातवैं भाग आठवें युगल मैं सासादनीन आठवें युगल के सासादनीनतैं संख्यातवैं भाग प्रथम ग्रैवेयक में सम्यग्दृष्टि हैं। इनतैं संख्यातवैं भाग इहां के मिश्र हैं। इन मिश्रनतैं संख्यातवैं भाग प्रथम ग्रैवेयक के सासादनी हैं। इन प्रथम ग्रैवेयक के सासादनीनतैं संख्यातवैं भाग दूसरे ग्रैवेयक में सम्यग्दृष्टि हैं। इन सम्यक्त्वीनतैं संख्यातवैं भाग इहां के मिश्र हैं। इन मिश्रनतैं संख्यातवैं भाग दूसरी ग्रैवेयक के सासादनी हैं। इन दूसरी ग्रैवेयक के सासादनीनतैं संख्यातवैं भाग तीसरी ग्रैवेयक के सम्यग्दृष्टिन का प्रमाण है। इन सम्यक्त्वीन के संख्यातवैं भाग इहां के मिश्र जीव हैं। इन मिश्रनतैं संख्यातवैं भाग तीसरी ग्रैवेयक के सासादनी हैं। इन तीसरी ग्रैवेयक के सासादनीनतैं संख्यातवैं भाग चौथी ग्रैवेयक के सम्यग्दृष्टि हैं। इनतैं संख्यातवैं भाग इहां के मिश्र सम्यक्त्वी हैं। मिश्रनतैं संख्यातवैं भाग चौथी ग्रैवेयक के सासादनी हैं। इन चौथे ग्रैवेयक के

सासादनीनतैं संख्यातवैं भाग पंचम ग्रैवेयक के सम्यग्दृष्टि हैं। इनतैं संख्यातवैं भाग इहां के मिश्र सम्यक्धारी हैं। मिश्रनतैं संख्यातवैं भाग पंचम ग्रैवेयक के सासादनी हैं। अरु पंचम ग्रैवेयक के सासादनीतैं छठी ग्रैवेयक के सम्यग्दृष्टि हैं। सो संख्यातवैं भाग हैं। इन सम्यक्त्वीनतैं संख्यातवैं भाग इहां के मिश्र हैं। इन मिश्रनतैं संख्यातवैं भाग छठी ग्रैवेयक के सासादनी हैं। इन छठी ग्रैवेयक के सासादनीतैं सातवीं ग्रैवेयक के सम्यग्दृष्टि संख्यातवैं भाग हैं। इनतैं संख्यातवैं भाग यहां के मिश्र हैं। इन मिश्रनतैं संख्यातवैं भाग सातवीं ग्रैवेयक के सासादनी हैं और सातवीं ग्रैवेयक के सासादनीतैं संख्यातवैं भाग आठवीं ग्रैवेयक के सम्यग्दृष्टि हैं। इनतैं संख्यातवैं भाग यहां के मिश्र हैं। मिश्रनतैं संख्यातवैं भाग आठवीं ग्रैवेयक के सासादनी हैं और आठवीं ग्रैवेयक के सासादनीनतैं संख्यातवैं भाग नव ग्रैवेयक के सम्यग्दृष्टि हैं। इनतैं संख्यातवैं भाग यहां के मिश्र। मिश्रनतैं संख्यातवैं भाग नववें ग्रैवेयक के सासादनी हैं। ऐसे प्रथम युगलतैं लगाय नव ग्रैवेयक पर्यन्त अनुक्रमतैं असंख्यात भाग कही। संख्यात भाग घटे। परन्तु अन्त ग्रैवेयक मैं जे सम्यग्दृष्टि हैं। ते भी असंख्याते जानना और इन अन्त ग्रैवेयकतैं अल्प सम्यग्दृष्टि देव ऊपरले नव अनुत्तरमैं हैं। इहां सर्व सम्यग्दृष्टि ही हैं। नव ग्रैवेयक ऊपरि मिथ्यात्वी नाहीं, सर्व सम्यग्दृष्टि ही हैं। अनुत्तरों तें थोड़े विजय, बैजयन्त, जयन्त, अपराजित—इन च्यारि विमान में सम्यग्दृष्टि हैं। इन च्यारि विमाननतैं असंख्यातवैं भाग जीव सर्वार्थसिद्धि विमानमैं हैं। सो सर्व संख्याते जानना। सो केते हैं? सो ही कहिए हैं। अढ़ाई द्वीपवासी मनुष्यन का जो प्रमाण है। तिनतैं नवगुणे सर्वार्थसिद्धि के देवन का प्रमाण जानना। ऐसे च्यारि गति सम्बन्धी सम्यग्दृष्टि, मिश्र, सासादन, देशसंयमी, इनका सामान्य प्रमाण कह्या। आगे कहे गाथा विषैं सकल संयमीन का प्रमाण तीन घाटि नव कोड़ि जीव, नव गुणस्थान सम्बन्धी तिनकौं गुणस्थान प्रति कहिए हैं। सो प्रथमतैं छठे गुणस्थानवर्ती यतीन का प्रमाण पांच कोड़ि तिराणवै लाख अठ्याणवै हजार दोयसौ छै, ५९३९८२०६ जानना। अप्रमत्त सातवैं गुणस्थानवर्ती मुनीन का प्रमाण दो कोड़ि छयानवै लाख निन्यानवै हजार एकसौ तीन २९६९९१०३ एते जानना और च्यारि उपशम श्रेणि के गुणस्थानवाले जीव ग्यारहसौ छ्यानवै ११९६ जानना, तेईससौ बाणवै २३९२ और तेरहवें सजोग गुणस्थानवर्ती जीवन का प्रमाण आठ लाख अठ्याणवें

हजार पांचसै दोय, ८६८५०२ एते जानना। चौदहवें गुणस्थान सम्बन्धी जीवन का प्रमाण पांचसौ अठ्याणवै जानना। ऐसे प्रमत्ततैं लगाय अयोग पर्यन्त आठ कोड़ि निन्यानवै लाख निन्यानवै हजार नवसौ सित्याणवै, ८९९९९९९७ ए सर्व जानना। यह नाना जीव नाना काल अपेक्षा उत्कृष्टपने कथन हैं। इनतें अधिक प्रमाण नहीं होय, निश्चय कर ऐसा जानना। छः महीना आठ समयमैं "छः सौ आठ" जीव मोक्ष जाय हैं। ऐसी परिपाटी अनादि चली आई है। अधिक-हीन, नाहीं जांय। केई अनन्तकाल गए कदाचित विरह काल पड़ै तौ षट् मास मोक्ष बन्द होय। कोई जीव मोक्ष नहीं जाय, तौ अन्त के आठ समयमैं 'छै सौ आठ' जीव मोक्ष होय हैं। ऐसा जानना और कदाचित उपशम श्रेणि का भी बिरह पड़ै तौ छै महीना कोई जीव उपशम श्रेणि नहीं चढ़ै और अन्त के आठ समयनमैं 'तीनसौ च्यारि' जीव उपशम श्रेणि माँडैं, ताकी विधि—जो प्रथम समय मैं सोलह, दूसरे समय मैं चौबीस, तीसरे समय मैं तीस, चौथे समय मैं छत्तीस, पंचम समय मैं बियालीस, छठे समय मैं अड़तालीस, सातवें समय मैं चौवन, आठवें समयमैं चौवन ऐसे इन आठ समय मैं तीनसौ च्यारि जीव निरन्तर उपशम श्रेणि माँडं और कदाचित् क्षायिक श्रेणि का उत्कृष्ट अन्तर पड़ै तौ षट्मास होय, तौ अन्त के आठ समय में 'छः सौ आठ' जीव निरन्तर माँड़ं—सो प्रथम समयमैं ३२, दूसरे समय में ४८, तीसरे समय में ६०, चौथे समय में ७२, पंचम समय में ८४, छठे समय में ९६, सातवें मैं १०८, आठवें मैं १०८ ऐसे आठ समय में निरन्तर श्रेणि चढ़ैं हैं कदाचित् एक समय युगपत क्षायिक श्रेणि माँडं तौ च्यारिसौ बत्तीस, जीव एकै काल माँडैं। ताकी विधि—जो इनमैं कौन-कौन जीव श्रेणी चढ़ैं सो कहिए हैं। तहाँ बुद्धिबोधित ऋद्धि के धारी १०८, जीव और पुरुषवेद सहित श्रेणी चढ़ैं ऐसे जीव १०८ और सुरगनतैं चय मनुष्य होय महाव्रत धरि क्षपकश्रेणि माँडैं ऐसे जीव १०८ और प्रत्येक बुद्धि ऋद्धि के धारी क्षपक श्रेणी चढ़े जीव १० और तीर्थङ्कर प्रकृति के उदय सहित तीर्थङ्कर पदवीधारी क्षायिक श्रेणी जीव स्त्री वेद सहित जीव श्रेणी चढ़े ऐसे २० और नपुंसक वेद सहित श्रेणी चढ़ै ऐसे जीव १० मनः पर्ययज्ञान सहित श्रेणी माँडैं ऐसे जीव २० और अवधिज्ञान सहित श्रेणी चढ़े ऐसे जीव २८ उत्कृष्ट अवगाहना के धारी मोक्ष होने योग्य शरीर सहित क्षायिक श्रेणी चढ़ैं ऐसे जीव दोय, मोक्ष होने योग्य जघन्य अवगाहना के धारी ऐसे

जीव ४ मध्यम अवगाहना के धारी श्रेणी चढ़ैं ऐसे जीव ८ ऐसे ए कहे जीव युगपत एक समय ४३२ जीव क्षायिक श्रेणि चढ़ैं हैं सो जानना। युगपत एक समय उपशम श्रेणी चढ़नेवाले क्षायिकतैं आधे इनही पदस्थवाले जीव २१६ जानना। कदाचित् केवलज्ञान का विरह काल पड़ै तौ षट् महीना ताँई कोई जीवकूं केवलज्ञान नहीं उपजै। अढ़ाई द्वीप मैं तौ अन्त के आठ समय मैं 'बाईस जीवनकूं' केवलज्ञान होय। ताकी विधि—आदि के षट् समयन मैं तीन-तीन जीव एक-एक समय मैं केवली होंय और अन्त के दो समय मैं दोय-दोय जीव केवली होंय, ऐसे अन्त के आठ समय मैं बाईस कहे। केई आचार्य, अन्त के आठ समयमैं चवालीस केवली कहैं हैं। सो आदि के षट् समय मैं षट्-षट्, अन्त के दोय समय मैं च्यारि-च्यारि जीव केवली होंय। केई आचार्य अठ्यासी केवली कहैं हैं। तहां आदि के षट् समयन मैं बारह-बारह और अन्त के दोय समय मैं आठ-आठ ऐसे अन्त के समय में केवली होंय हैं केई आचार्य अन्त के आठ समय मैं 'एकसौ छिहत्तरि' केवली कहैं हैं। सो आदि के षट् समयन मैं चौबीस-चौबीस और अन्त के दोय समय मैं सोलह-सोलह- केवली होंय हैं। ऐसा विशेष जानना। ए उत्कृष्ट कहैं हैं। इनतैं अधिक नाहीं हों हैं, ऐसा जानना। ऐसा सामान्यपने चौदह गुणस्थान सम्बन्धी जीवन की संख्या कही। विशेष श्रीगोम्मटसारजी के "जीवकाण्ड" तैं जानना। यहाँ राह पावने के निमित्त तथा यादि राखने-सीखने निमित्त कथन किया है। सो धर्मात्मा जीव इस समान्य कथन कौं जानि महाग्रन्थन मैं प्रवेश करो, तातैं मोह मन्द होय, सम्यक् श्रुत का प्रकाश होय। ऐसा जानि आत्म-कल्याणी जीवनकौं इन ग्रन्थन मैं प्रवेश करना योग्य है। विशेष यह जो ऊपर कहे सम्यग्दृष्टि तिन विषैं क्षायिक सम्यग्दृष्टि बहुत है और तिनतैं असंख्यातवैं भाग क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि हैं। इनतैं असंख्यातवैं भाग उपशम सम्यग्दृष्टि हैं। उपशमतैं असंख्यातवैं भाग मिश्र सम्यक् धारी हैं। मिश्रतैं संख्यातवैं भाग सासादनी हैं तहां विशेष एता जो सर्व तैं सम्यग्दृष्टि देवलोक मैं बहुत हैं। तिनमैं भी तीन गति के सम्यग्दृष्टिनतैं तथा चारौं गति के सम्यग्दृष्टिनतैं प्रथम युगलमैं असंख्यात गुणे बहुत हैं। ऐसे च्यारों गति संसार मैं तिष्ठे सो जीवन की संख्या, अरु अपनी-अपनी गति सम्बन्धी गुणस्थानवर्ती जीवन की संख्या कही। सो इन संख्या मैं संसारी जीव तन धरता, मरता, शुभभावन का फल भोगता, अनादि का भ्रमण करै है।

तिन मैं विरले भव्यात्मा सत्संग के निमित्त करि, जिन देव के वचन की प्रतीति करि, सम्यग्दर्शनादि मोक्षमारग योग्य सामग्री पाय, कर्म नाश करि शुद्ध होय, आगे मोक्ष पावैं। इति सामान्य जीव तत्त्व कथन।

आगे धर्म-द्रव्य वर्णन। अब अजीव तत्त्वन मैं धर्म-द्रव्य है, सो ताका गुण 'चलन सहाई' है। तीन लोक में तिष्ठते जे जीव, पुद्गल तिनकूं गमन करते धर्म-द्रव्य सहाय करै है। जैसे—जलचर जीव, मच्छी आदि तिनके चलनेकूं जल सहाई है, प्रेरक होय गमन नहीं करावै है। जो मच्छादि जीव जल मैं चलैं, तौ उदासीन वृत्ति सहित सहज ही सहाय होय है। तैसे यह धर्म-द्रव्य प्रेरक होय जीवादि पदार्थनकौं गमन नहीं करावै है। जो जीव पुद्गल अपनी शक्ति तैं गमन करैं, तौ उदासीन वृत्ति तैं गमन मैं सहाय होय है। ऐसा अनादि-निधन इस द्रव्य का स्वभाव है। ऐसे चलन सहाई गुण सहित धर्म-द्रव्य की अनादि स्थिति लोक मैं जानना और इस धर्म-द्रव्य की पर्याय दोय प्रकार हैं। एक अर्थ पर्याय, सो तो द्रव्य का परिणमन है। सो तो व्यञ्जन पर्याय द्रव्य का आकार है। सो धर्म-द्रव्य की व्यञ्जन पर्याय; तीन लोक प्रमाण है। एक पटल रूप है, खण्ड नाहीं। अरु पुद्गल परमाणु के गजतैं नापिए तौ असंख्यात प्रदेशी होय। ऐसे इसका स्वरूप है। सौ धर्म तौ द्रव्य है गुण चलन सहाय है। पर्याय तीन लोक है ता सामानि है। इति धर्म-द्रव्य।

आगे अधर्म-द्रव्य। अब अधर्म-द्रव्य है अरु ताका गुण 'स्थितीकरण' है। तीन लोकमैं तिष्ठते जेते जीव पुद्गल तिनकौं स्थिति करने में सहाय है। प्रेरक होय स्थिति नाहीं करावै है। जो जीव पुद्गल अपनी शक्तितैं स्थिति करैं तौ यह अधर्म-द्रव्य उदासीन वृत्ति धरे स्थिति करतैं सहकारी है। जैसे—राहके चलनहारे पंथीकूं ग्रीष्म ऋतु में वृक्ष की छाया स्थितिकूं करते सहाय होय है। वृक्ष बुलायकैं पंथीकूं अपनी छाया में बैठारि, सहाय नाहीं करै है। पंथी अपनी ही इच्छा तैं ताप मेटवेकौं वृक्ष नीचे तिष्ठै, तौ उदासीन वृत्ति सहित पंथी कूं स्थितिमैं कारण है। ऐसे ही अधर्म-द्रव्य का गुण स्थित करना जानना और अधर्म-द्रव्य की पर्याय भी अर्थ पर्याय, व्यञ्जन पर्याय करि दोय प्रकार हैं। सो अर्थ पर्याय तौ रतन लहरिवत् द्रव्य परिणमन है और व्यञ्जन पर्याय धर्म-द्रव्य प्रमाण लोक के आकार है। ऐसे अधर्म-द्रव्य के गुण पर्याय कहे। इति अधर्म-द्रव्य।

आगे काल-द्रव्य। आगे काल तौ द्रव्य है। गुण ताका वर्तना लक्षण है। पर्याय दोय प्रकार हैं। सो अर्थ

पर्याय तौ रतन लहरिवत् द्रव्य का परिणमन है। अरु व्यञ्जन पर्याय द्रव्य का आकार है। जैसे—नदी तौ द्रव्य, अरु नदी के दोऊ तटन की समुद्र पर्यन्त लम्बाई का आकार, सो नदी की व्यञ्जन पर्याय है। ता नदीमैं निरन्तर जल का प्रवाह चलना, रात-दिन पानी का बहना सो नदी का गुण है और नदी के जल में अनेक प्रकार तरंगनि का उपजना अरु ताही मैं विनशना, सो नदी की अर्थ पर्याय है। तैसे ही काल-द्रव्य का नदी की नाईं निरन्तर वर्तना लक्षण गुण है। कालाणु-द्रव्य का मन्द गमन पल्टा खाना, एक आकाश प्रदेश पै तिष्ठती जो कालाणु सो पलटि, दूसरे लगते प्रदेश पै आवना सो मन्द गमन है सो याका नाम समय है। सो यह समय काल की व्यवहार पर्याय है। इस समयतैं, काल का सूक्ष्म अंश और नाहीं। ऐसे-ऐसे समय असंख्यात होंय, तब एक आवली नामा काल की पर्याय का भेद होय। ऐसी-ऐसी हजारों आवली व्यतीत होंय, तब एक श्वासोच्छ्वास काल का प्रमाण है। सात श्वासोच्छ्वास काल का एक स्तोक नामा काल की पर्याय होय है और सात स्तोक का एक लव मात्र काल पर्याय होय है। साढ़े अड़तीस लव की एक नाली होय है इस नाली ही का नाम घड़ी है। दोय घड़ी का नाम एक मुहूर्त है। एक समय घाटि दोय घड़ी का नाम अन्तर्मुहूर्त है। तीस मुहूर्त का एक अहोरात्रि है। पन्द्रह अहोरात्रि का पक्ष होय है। दोय पक्ष का एक मास होय है। दोय मास की एक ऋतु होय है। तीन ऋतु का एक अयन होय है। दोय अयन का एक वर्ष होय है। सत्तरि लाख करोड़ि वर्ष अरु छप्पन हजार करोड़ि वर्ष इन सबनि को मिलाय एक पूरब काल होय है। ऐसे असंख्यात पूरब काल का एक पल्य होय है। दश कोड़ाकोड़ि पल्य का एक सागर होय है। अरु बीस कोड़ाकोड़ि सागर का एक काल-चक्र होय है। ऐसे-ऐसे अनन्तानन्त काल-चक्र व्यतीत होंय, तब एक काल का परावर्तन होय है। ऐसे काल की व्यवहार पर्याय का स्वरूप जानना। ऐसे काल तौ द्रव्य, गुणवर्तना लक्षण और कालाणु तैं निपज्या जो समय, घड़ी, दिन, मास, वर्ष, पल्य, सागर, सो पर्याय हैं। ऐसे काल-द्रव्य का लक्षण कह्या।

आगे आकाश-द्रव्य। आगे आकाश तौ द्रव्य है। ताका अवगाहन देना गुण है। पर्याय लोकालोक प्रमाण है। ता आकाश में दोय भेद हैं। एक अलोक है, सो अनन्त प्रदेशी है तहां और द्रव्य नाहीं, शून्यता लिए है। शुद्ध एक आकाश ही है। एक लोकाकाश है। तहां षट् द्रव्य रचना सहित च्यारि गतिरूप संसारकूं धरे है।

अरु कर्म-रहित शुद्ध जीव तिन सहित यह असंख्यात प्रदेशी, सो सर्व रचना जामैं पाईए, सो ऐसा लोकाकाश है। यामैं षट् द्रव्य तिष्ठैं हैं। इति आकाश-द्रव्य। ऐसे ए षट् ही द्रव्य अपने-अपने गुण-पर्याय सहित, अपने-अपने स्वभावमैं हैं एक क्षेत्र में सर्व की स्थिति है, परन्तु कोई काहूतैं मिलते नाहीं। ऐसा कोई अनादि व्यवहार है जो कोई द्रव्य काहू द्रव्य तैं मिलता नाहीं। किसी के गुणतैं कोई का गुण नहीं मिलै किसी पर्यायतैं पर्याय नहीं मिलै। ऐसी उदासीन वृत्ति है। जैसे एक गुफा मैं षट् मुनि बहुत काल रहे। परन्तु कोई काहूतैं मोहित नाहीं। उदासीनता सहित एक क्षेत्र मैं रहैं हैं। तैंसे ही षट् द्रव्य एक लोक क्षेत्र में जानना। तिनमैं पञ्च अजीव-द्रव्य हैं। तिन पञ्च अजीव-द्रव्यन के गुण भी अजीव हैं। पर्याय भी अजीव हैं। एक चेतन-द्रव्य है। ताके द्रव्य, गुण और पर्याय भी चेतना हैं। तातैं भो भव्यात्मा! तू देखि यह जीव ज्ञानरूप देखने-जानने रूप है। सो अनादि पर-द्रव्यन के मोहतैं, परमैं ममत्व भाव धरकैं, आपा भूलि, पर-द्रव्यकौं अपना इष्ट जानि पररूप-सा होय गया। आप अमूर्तिक है। सो भूलितैं आपकूं मूर्तिक जड़ भावरूप मानने लागा, परन्तु जड़ नहीं होय गया। आप अपने चेतना के व्यवहार कौं नहीं तजै है। जैसे—कोई नट मनुष्य लोभ के वशीभूत होय अपने तनपै नाहर की खालि नाखि, सिंह का स्वांग धरि आया, नाना चेष्टा, कूंदना, धड़ूकनादि भी करै है। ताकूं देखि अजान भोरे जीव याकौं सिंह जानि भयभीत होंय हैं। परन्तु वह सिंह नाहीं है। लोभ के वशीभूत होय इस नटनै अपना रूप पशु का बनाया, आपकूं पशू मानि विचरै है। परन्तु पशु नाहीं, नर ही है। तैसे ही यह संसारी जीव अपनी अनादि भूलितैं जा गति मैं गया, ताही गतिरूप होय रह्या। च्यारि गति के शरीर पुद्गलीक अनेक धारि, आपकौं देव नारकादि आकार मान्या, मैं देव हौं, मैं नारकी हौं, मैं पशु हौं, मैं मनुष्य हौं, मैं सुखी हौं मैं दुखी हौं, यह धन-धान्यादि कुटुम्बी मेरै हैं। मैं बड़े तन का धारी हौं। ऐसे आपकौं कर्म निमित्ततैं जड़ समान पुद्गलीक तन मैं तिष्ठता, अचेतन की चेष्टा बतावता भया। परन्तु अपना विशेष देखना-जानना रूप चैतन्यरूप भाव सो नहीं छूटता भया। आप जीव ही है। जैसे नट, सिंह की खालि नाखि दूरि भया, तब सबका भरम गया। सर्व याकूं नर मानते भये। यह भी नर ही रह्या और आगे भी नर ही था। भरमतैं सिंह भया था। तैसे तनरूपी खालि तजि, तब शुद्ध आतमा भया। ऐसे जीव अजीव का स्वरूप है। सो हे भव्य! तू निश्चय करि जानि। जैसे जीव,

अजीव का स्वरूप कह्या तैसे ही सम्यक् होते ये विचार सहज ही होय उपजै हैं। पर-वस्तुनतैं ममत्व छूटि भरम मिटि शुद्ध श्रद्धान होय है। सो अमूर्तिक शुद्धात्मा सिद्ध भगवान ताका स्वरूप सम्यग्दृष्टि अपने अनुभवन मैं ऐसा विचारैं है। चौदहवें गुणस्थान जा शरीर मैं तिष्ठता आत्मा, अपनी शुद्ध परिणति के जोगतैं जा शरीर मैं था, ताके हाड़, मांस, चांम नशादि जो पुद्गलीक आकार स्कन्ध सो तिनकौं छोड़िकैं ता शरीरकै आकार आप चेतनरूप सिद्ध देव होय तिष्ठै। तैसे ही सम्यग्दृष्टि विचारै है, जो मैं भी दिव्य दृष्टितैं निश्चय करि देखौं तो अपना चैतन्य भाव इस पुद्गलीक शरीरतैं, ऐसे भिन्न विचारौं हौं। कि जो मैं वर्तमान में ए शरीर क्षेत्र मैं तिष्ठौं हौं। सो या तन में देखन-जाननहारा गुण तौ मेरा है यह तन जड़ है। सो आयु अन्त खिरै है तथा सिद्ध होते खिरै है। सो तैसे ही मैं तौ या क्षेत्र मैं तिष्ठौं ही हौं। अरु या तन के चांम, हाड़, मांस, नश, पुद्गलीक आकाररूप मूर्तिक हैं, सो मेरा अङ्ग नाहीं, मैं तौ चैतन्य हौं। ए चांम तन के खिर जावो, मांस स्कन्ध खिर जावो, हाड़ खिर जावो इत्यादिक पुद्गलीक स्कन्ध खिरैं हैं तौ खिरौ। मैं देखने-जाननेहारा, मेरे स्थान मैं तिष्ठौं हौं। सर्व पुद्गलीक मूर्तिक मेरे प्रदेशनतैं एक क्षेत्र हैं, सो सर्व खिर गये। मैं ही एक, अमूर्तिक देखने-जाननेहारा, सिद्ध समानि आत्मा रहजा हौं। सम्यक् होते आपा-पद का विचार ऐसे भी होय है। ऐसा विचार हौतैं सम्यग्दृष्टिनकैं शरीरादि पर-वस्तुनतैं ममत्व छूटे हैं पर-वस्तुनतैं ममत्व छूटनेतैं निराकुलता सहज ही प्रगट होय है। निराकुलता प्रगटै चारित्र की बधवारी (बढ़वारी) होय है और चारित्र की वृद्धितैं विशुद्धता की विशेष वृद्धि होय है। विशुद्धता वधे (बढ़े) केवलज्ञान की प्राप्ति होय है और केवलज्ञान भए संसार भ्रमण मिटि सकल शुद्ध सिद्ध पद पाय सर्व सुखी होय है। पीछे सिद्ध स्थान विराजि अकलङ्क निर्दोष सिद्ध होय हैं। जगत्पूज्य पदधार अविनाशी सुखरूप होय है। ऐसे सिद्ध पदकौं हमारा नमस्कार होऊ। इनकी भक्ति के प्रसाद मौकौं इन-सा पद होऊ। ऐसे भी सम्यग्दृष्टि भावनाभाय, अतिशय सहित पुण्यबन्ध का संचय करै है। इहां प्रश्न—जो सम्यग्दृष्टिकौं पुण्य की इच्छा काहे को चाहिए? और तुमने कह्या जो अतिशय सहित पुण्य का बन्ध सम्यग्दृष्टि ही करै है, सो औरन कैं क्यों नहीं होय? अरु अतिशय सहित पुण्य काहेकौं कहिए? ताका समाधान। भो भव्य! जो पुण्य के बन्ध भये पीछे वह पुण्य घटने नहीं पावै। दश पांच-भव जेते लेना होय, तैते

११६

जाय लेय, पीछे ताकौं मोक्ष ही होय है। ताकौं अतिशय सहित पुण्य कहिए और कबहूँ शुभभावतें पुण्य का बन्ध होय। कबहूं अशुभ भावनतें पाप-बन्ध होय। पुण्य-बन्ध होता रहि जाय। ता फल कबहूं देव कबहूं पशु होय। ऐसो पुण्यकौं अतिशय रहित कहिए। ए पुण्य, संसार का ही कारण है। ऐसा जानना और सुनि। भो भव्य! सम्यग्दृष्टिकैं तौ पुण्य-बन्ध की इच्छा नाहीं। परन्तु सम्यक् भए पीछे दोय-तीन भव लेने होंय, तौ तेते काल संसार मैं रहै। पुण्य-फल सम्यग्दृष्टिन के बन्ध भए पीछे टूटता नाहीं। सो संसार मैं रहैं जेते देव, इन्द्र, चक्री, महान राजा, सुखी होय पीछे परम्पराय मोक्ष ही होय। तातैं सम्यग्दृष्टिकैं ऐसा अतिशय सहित पुण्य-बन्ध ही होय है। ऐसा यह सहज ही भाव जानना। ऐसो तेरा उत्तर जानहु। ऐसा जीव-अजीव तत्त्वन का स्वरूप जिन-देवनें दिव्य-ध्वनि करि कह्या। तैसे ही गणधर देव ने प्ररूप्या तैसे परम्पराय आचार्य प्ररूपते आए। तिनके भेद पाय-पाय अनेक भव्य प्राणी अनादि मिथ्यात्व बन्धन तोड़ि सम्यग्दृष्टि भए। ताही का अनुसार लेय इहां भी सामान्य तत्त्व भेद कह्या है। ताका रहस्य जानि अब भी भव्य तत्त्व-ज्ञानी होऊ। इति जिनभाषित अनुसार सामान्य तत्त्व भेद कथन। ऐसे अनादि भरम भूले, भोरी चेष्टा के धरनहारे, अतत्त्व श्रद्धानी जीव कुगुरुन के उपदेशरूपी फांसी मैं परे, धर्मवासना-रहित, संसार भोग के अभिलाषी, समता-रस बिना उत्पत्ति भई है तृष्णा रूपी ताप जिनकैं, ऐसे ज्ञान चक्षु रहित अन्धसम, बालक सम लीला करनहारे, भोरे प्राणी, तिनकौं सोमबुद्धि धर्मार्थी जानिकैं, दयाभाव करि तिनके समझावे के अर्थ कुवादीन के प्ररूपे जे अनेक कर्तृत्व मत, तिन विषैं भिन्न-भिन्न स्वइच्छा बुद्धि कल्पना करि, तत्त्व भेद कहे थे। तिन वादीनकूं प्रगट असत्य करि जिनभाषित जीव-अजीव तत्त्व, द्रव्य गुण पर्याय सहित भिन्न-भिन्न नय करि बताए। सो यह सर्वज्ञ-भाषित तत्त्व भेद सत्य है। काहू वादी करके खंड्या नाहीं जाय। ऐसो तत्त्व भेद है, सो प्रमाण है। ए जीव-अजीव तत्त्व सत्य हैं। इति श्री सुदृष्टि तरङ्गिणी नाम ग्रन्थ मध्ये, अतत्त्व श्रद्धान अन्य मतन सम्बन्धी जीव-अजीव तत्त्व विपरीत कथन प्ररूपणहारे कुवादी तिनका भरम मेटि, जिनभाषित तत्त्वज्ञान वर्णनो नाम, सप्तम् पर्व समाप्तम्।

इन शुद्ध तत्त्वन का जिस विषैं भले प्रकार कथन पाइए, सो शुद्ध आगम है और आगम है सो काहू का उपदेश्या नाहीं। जो ऐसे शुद्ध आगम का करता है, सो ही सर्वज्ञ भगवान वीतराग शुद्ध आप्त है। आप्त नाम

भगवान का है। सो उस शुद्ध भगवानकौं जान्या चाहिये। सो कैसे जानिए ? तौ विवेकी ऐसा विचारै जो वस्तु जानिये है, सो गुणतें जानिए है। तातैं प्रथम ही भगवान के गुण जानैं, तौ शुद्ध भगवान जान्या जाय। तातैं भगवान के गुण कहिए है। सो एक तौ जिन भगवान वीतरागी होंय, वीतराग भाव बिना सरागी जीवन पै यथावत् उपदेश होता नाहीं, अपना भगत होय ताकी प्रशंसा करै रक्षा करै। अपना भक्त नहीं होय तौ ताकी निन्दा करै, ताका बुरा चाहै। तौ ऐसे देव का वचन प्रमाण नाहीं। तातैं यथावत् उपदेश, वीतरागी बिना होता नाहीं। तातैं देव वीतरागी चाहिये और सर्वज्ञ चाहिए। सर्वज्ञ बिना लोकालोक को नहीं जानैं। जीवन के अन्तरंग घट-घट की नहीं जानैं, ऐसे तुच्छ ज्ञानीन का वचन प्रमाण नाहीं। तातैं भगवान् सर्वज्ञ चाहिये और वीतराग सर्वज्ञ तौ है। किन्तु तारक नाहीं, तौ किस काम का भगवान् ? काहू का तौ भला करता नाहीं। तातैं भगवान् तारक चाहिये। जाका नाम लिए, ध्यान किए, पूजे, भगतन का भला होय इहाँ प्रश्न—जो भगवान वीतराग है तामैं तारकपना कैसे संभवै ? तारकपना तौ सरागी कौं होय है। अरु वीतरागी कूं भगत के तारने की इच्छा भए, वीतराग भाव कैसे रहै ? अरु बिना इच्छा भगत का भला कैसे होय, सो कहो। ताका समाधान। जैसे—सूर्य के ऐसी इच्छा नहीं, जो मैं अपना उदय करौं, जिससे कमल प्रफुल्लित होय। परन्तु सूर्य का उदय होते सहज भाव ही कमल प्रफुल्लित होय हैं, सूर्य मैं कोई ऐसा गुण सहज हो पाईए। तैसे ही भगवान् कैं तो ऐसी इच्छा नाहीं, जो भगतन का भला करौं। परन्तु भगवान् मैं कोई तारण गुण सहज ही ऐसा पाईए है। जो ताकरि भगत का भला होय ही होय और जो सूर्य की तरफ़ कड़ी नजरि (दृष्टि) करि देखै, तौ ताके नेत्रन आगे अन्धकार-सा फैलि जाय, नेत्रन की ज्योति मन्द होय, सो सूर्यकैं तौ ऐसी इच्छा नाहीं जो मेरा तरफ क्रूर देख्या, तातैं अन्धा करौं। परन्तु सूर्य के तेज मैं कोई सहज ही ऐसा अतिशय है। सो सूर्य की तरफ सख्त दृष्टि करि देखै, तौ नेत्र की ज्योति मन्द होय। तैसे ही भगवान् की तौ ऐसी इच्छा नाहीं जो इस निन्दक का बुरा करौं। परन्तु कोई ऐसा ही अतिशय है। जो भगवान् की निन्दा किए नरकादि दुःख सहज ही होंय। तातैं भगवान् में वीतरागता, सर्वज्ञता, तारकपना—ए तीन गुण तौ मुख्य हैं। अरु और अनन्तै गुण हैं, तिनमैं केतेक बाह्य, अभ्यन्तर गुण अतिशय कहिए हैं। तिनके जानैं भगवान् कौं पहचानिए। सो ही कहिए है—

गाथा—दोह अठारह रहियो, गुणसड चालीस होय संजुत्तो। सवग्गो वीयरायो, सदेवो भव्वतार पणमामी ॥ १८ ॥

अर्थ—दोह अठारह कहिये, अष्टादशद्दोष रहित होय। गुण सड चालीस होय, संजुत्तो कहिए, छयालीस गुण सहित होय। सवग्गो कहिए, सर्वज्ञ होय। वीयरायो कहिए, वीतरागी होय। सदेवो कहिए, सो देव। भव्वतार कहिए, भव्यन का तारक होय। पणमामी कहिए, ताकों नमस्कार करौं हौं। भावार्थ—जाके राग-द्वेष नहीं, सो वीतरागी है। केवलज्ञान सहित होय सो सर्वज्ञ कहिए। जाका नाम लिए पाप का नाश होय ऐसे अतिशय का धारी होय और क्षुधादिक अठारह दोष रहित होय और छयालीस गुण सहित होय, सो देव जानना। तहाँ प्रथम अठारह दोषन का स्वरूप कहिए है। सो प्रथम क्षुधा जगत् के जीवनकौं महादुःख करनहारा, ताके पोखे बिना मरण होय ये क्षुधा बड़ा रोग है, सो जाकें ऐसी क्षुधा होय, सो देव नाहीं। जाके बूते (किये), अपनी क्षुधा महाव्याधि ही नहीं मिटी, तो भक्तन की क्षुधा कैसे मेटे ? तातें भगवान् कैं क्षुधा रोग नाहीं। १। बहुरि तृषा समान तीव्ररोग दुखदाई नाहीं, जो जलनामा औषध नहीं मिलै, तौ प्राण जाय। ऐसी तृषारूपी व्याधि जाकैं होय, सो देव नाहीं। भगवान् कैं तृषारोग नहीं। अपनी तृषा-तपन जाकैं नहीं मिटी, तौ भगतन की तृषा-तपन कैसे मेटै ? तातैं प्रभुकैं तृषा नाहीं। २। बहुरि जहाँ राग-भाव होय, सो भगवान् नाहीं, भगवान्‌जी कै राग-भाव नाहीं। ३। जाके द्वेष-भाव हो, सो पर का बुरा करै। तातैं जाकैं राग-द्वेष होय, सो भगवान् नाहीं। अरु भगवान् कैं द्वेष-भाव नाहीं। ४। जो माता के गर्भ में आवै, गर्भ के महा दुःख, मल-मूत्र विषैं नव मास अधोशीश ऊर्ध्व पांव महासंकट मैं अवतार लेय, सो भगवान् नाहीं। अरु भगवान्‌कैं अवतार नाहीं। ५। जरा जो बुढ़ापा जाकरि सर्व अङ्ग शिथिल होंय, दीनता पावै, ऐसी जरा जाकैं होय, सो भगवान् नहीं। भगवान् कै जरा नाहीं।६। जाका मरण होय, सो भगवान् नाहीं। जो अपना ही मरण नहीं मेटै तौ भगत का मरण कैसे मेटै ? तातैं भगवान् कैं मरण नाहीं।७। जाकैं रोग होय, सो देव नाहीं, जो अपना रोग हीं नहीं हरै, सो भगत कूं कैसे सुखी करै ? तातैं भगवान् कैं रोग नाहीं। ८। जाकैं इष्ट वस्तु का वियोग होतैं शोक होय, सो देव नाहीं। जो अपना ही शोक-दुःख नहीं टारि सकै, सो देव, भगत का शोक कैसे टारि सकै है ? तातैं जाकैं शोक होय, सो देव नाहीं। भगवान कैं शोक नाहीं। ९। जाकैं शत्रु, रोग, मरणादि दुःखन का भय होय, सो भगवान् नाहीं। जो अपना ही

भय नाहीं टारै, सो भगतन कौं कैसे सुखी करै? तातैं सर्वज्ञ देवकैं भय नाहीं। २०। जाकैं विस्मय होय। जो यह कहा भया तथा बड़ा आश्चर्य भया, ऐसा विद्या रहित अज्ञानीनकैं होय, याका नाम विस्मय है। सो जाके विस्मय होय, सो भगवान् नाहीं। केवलज्ञानीकैं कछु विस्मय नाहीं। २१। निद्रा के जोरतैं प्राणी सर्व सुध-बुध भूलि जाय। महाप्रमाद की करनहारी, मृतक समान करनहारी, ऐसी निद्रा जाकै होय, सो भगवान् नाहीं। भगवान् सदैव चैतन्यमूर्तिक, जागृत दशारूप, सर्व प्रमाद रहित, जगत् गुरुकैं निद्रा नाहीं। २२। और जाके खेद होय, सो देव नाहीं। जो अपना ही खेद नाहीं मेट सकै, सो भगतकौं निर्खेद कैसे करै? तातैं भगवान् सर्व सुखीकं, खेद नाहीं। २३। शरीरमैं पसेव होय, सो हीन पराक्रमतैं होय है। तातैं जाकैं पसेव होय, सो भगवान् नाहीं। अनन्तवली भगवान् कैं पसेव नाहीं।२४। मद है सो मान कर्म के उदय तैं, मानी संसारी अनेक क्रोधादि कषायन के पात्र तिनकैं होय है। सो जाकैं मद होय, सो भगवान् नाहीं। भगवान् कै मद नाहीं।२५। पर-वस्तु कूं देखि अरति होय है। जो अरति के उदयतैं होय, सो अरति है। जाके कर्म उदय अरति होय, सो भगवान् नाहीं, वीतराग भगवान् कै अरति नाहीं। २६। महादुख का मूल, संसार का बीज, संसार भ्रमण करावनहारा ऐसा मोह जाकैं होय, सो भगवान् नाहीं। जगत् उदासी भगवान् कैं मोह नाहीं। २७। और जाकैं रति-कर्म के उदय, अनेक वस्तुनमैं हर्ष मानै-रंजावै, ऐसा रति-कर्म का जोरि जाकैं होय, सो देव नाहीं। भगवान् वीतराग देव कैं रति नाहीं। २८। ऐसे कहे अठारह दोष जाके पाईए, सो भगवान् नाहीं। भगवान्कैं ए अठारह दोष, सब प्रकार नाहीं, ऐसे जानना और भगवान्कैं छियालीस गुण होय हैं, तिनका कथन कहिए है—

अतिशय चौंतीस। तहां प्रथम ही भगवान् अन्त का शरीर धरैं हैं। जब गर्भ अवतार होय, तब ए दश अतिशय होंय हैं—सो तहाँ पसेव (पसीना) नाहीं समचतुरस्र-संस्थान है, वज्रवृषभनाराचसंहनन, तनमैं मल नाहीं शरीर महासुगन्ध, अनन्त महासुन्दररूप होय है, शरीर में अनेक भले लक्षण होय हैं, तन मैं श्वेत-रुधिर होय, वचन महासुन्दर मधुर होय और तिनके तनमैं अनन्त बल होय ऐसे दश अतिशय तौ जन्मते ही होंय, सो भगवान् जानना। दश अतिशय केवलज्ञान भये पीछे होय हैं। तिनके नाम—तहां समोशरण मैं चतुर्मुख दीखैं। भगवान् का समोशरण जहाँ होय, तहांतैं चौतरफ सौ योजन दुर्भिक्ष नहीं होय। आकाश निर्मल होय। सर्व जीवनकैं

दया-भाव होय। गमन करते कोई जीवकों बाधा न होय, कवलाहार नाहीं। इहाँ प्रश्न—कवलाहार के षट् भेद हैं सो यहाँ कवलाहार मने किया, सो केवलज्ञान में पंच आहार तौ होते ही हैं। ताका समाधान—भो भव्य! तू षट् ही प्रकार आहार का स्वरूप सुनि, ज्यौं तेरा सन्देह जाय। प्रथम नाम-कर्म आहार, नो-कर्म आहार, ओज आहार, मानसिक आहार, कवलाहार, लेप आहार षट् हैं। अब इनका सामान्य अर्थ कहिए है—तहाँ ज्ञानावरणी आदि कर्म वर्गणा का ग्रहण करना, सो कर्म आहार है। सो केवली कैं और कर्म का बन्ध नाहीं, सो बन्ध के अभावतैं कर्म का आहार नाहीं। एक सातावेदनीय का बन्ध है, सो भी नाममात्र उपचार बन्ध है। सो स्थिति अनुभाग रहित है। परन्तु उपचार से कर्म आहार इहां कहिए है। औदारिक, शरीर जाति के नो-कर्म परमाणु का ग्रहण तेरहवें गुणस्थान तक है। तातैं नो-कर्म आहार केवली कैं पाइये है, परन्तु यहां कवलाहार की मुख्यता है, तातैं याका विचार नाहीं किया। ओज आहार ताका नाम है। जैसे—चिड़िया अण्डेनकूं छाती नीचै दाबै तिष्ठी रहै, ताकरि अण्डा में उपजनहारेन का पोख है। सो ओज आहार कहिये सो ये आहार अण्डज जीवन के होय है और के नाहीं। तातैं केवली कैं ओज आहार नाहीं भोजनपै मन चलै ही तृप्ति होय, सो मानसिक आहार कहिए। यह आहार देवन के होय है और कै नाहीं तातैं जिनदेव कै मनसा आहार भी नाहीं। शरीर में लगै तृप्तिता होय, सो लेप आहार है। यह एकेन्द्रियनकैं होय है औरन कैं नाहीं। तातैं भगवान केवली कैं लेप आहार भी नाहीं। अन्न, मेवा, जल इन आदि आहार मनुष्य तिर्यंचन के है, सो कवलाहार है। यह जिह्वा इन्द्रिय द्वारा ग्रहण होय है। सो यह कवलाहार भी, निर्दोष जिन भगवान कैं नाहीं। अरु यहां मुख्यता कवलाहार के कथन की है। तातैं भगवानकैं कोई आहार नाहीं जानना। ऐसे भगवानकैं केवलज्ञान भए कवलाहर नाहीं, केवलज्ञान भए पीछे जगत्बन्धु कैं उपसर्ग नाहीं होय, केवली के शरीरकैं छाया नहीं होय, सर्व विद्या के नाथ हैं, नख केश नहीं बढ़ै, केवलज्ञान उपजतैं जेते थे तेते ही रहैं अनन्तबली की भौंह टिमकैं नाहीं, एकाग्र रहैं ऐसे भगवानकूं केवलज्ञान होय पीछे, ए दश अतिशय प्रगट होय हैं। ऐसे केवलज्ञान भए के अतिशय कहे। आगे देवनकृत चौदह अतिशय कहिए हैं—

जब भगवान् केवली की समोशरणमैं वाणी खिरै, ताकूं सुनि सर्व प्राणी अपनी-अपनी भाषा में समझि लेय

हैं। ऐसा ही अतिशय है। जहां भगवान् तिष्ठै, तहां तिष्ठते—सर्प, मोर, सिंह-गाय इत्यादि जाति विरोधी जीव, द्वेष तजि मित्रता भजैं। तहां की भूमि आरसी समान निर्मल होय, भगवान् विराजैं ता वन में, षट् ऋतु के फल-फूल होंय और समोशरण के चारों तरफ मन्द-सुगन्ध-पवन चालै तातैं सुखमयी रहैं सर्व जीव सुखी होंय और जहाँ भगवान् विराजैं, तहाँ के प्राणी सदैव-सहज ही सर्व भूमि कंटक रहित होय महासुगन्ध जल की वर्षा होय। भगवान्जी विहार कर्म करैं, तब पद-पद पै देव कमल रचते जाँय, भगवान् जहां पांव धरैं तहां देव पन्द्रह-पन्द्रह फूलन की पन्द्रह-पन्द्रह पंक्ति करि दो सौ पच्चीस कमलन का चौकोर समूह धरते जाय हैं। आकाश निर्मलताकूं धरै। रज वद्दलादि नाहीं होंय। दशों दिशा महाशोभायमान निर्मल भासैं। विहार समय देव अपने शीश पै धर्म-चक्रकौं आगे लिए चलैं अष्ट द्रव्य-पंखा, चमर-छत्र, कलश, झारी, दर्पण (एना), ध्वजा, ठौनाँ—ए मंगल द्रव्य एक-एक जाति के एक सौ आठ होंय, सो आठसौ चौंसठि भए। तिनकों एक-एक देव, एक-एक मंगल द्रव्य, विनय सहित भगति [भक्ति] तैं विहार समय लिए चलैं। आकाश मैं असंख्यात देव जय-जय शब्द करते चले जाँय। ४। ऐसे चौदह अतिशय देव कृत हैं। सो अतिशय का माहात्म्य तौ भगवान् का है, निमित्त मात्र देवन की भक्ति का सहाय है। ए सर्व मिलि चौंतीस अतिशय भए। आगे वसु [आठ] प्रातिहार्य कहिये हैं—

गाथा—तरु असोय सविठी, दिव्वधुणि चमर सीहपीठाया। भामण्डल दुन्दुभि बयणो, आतपहर पातहाज वसुभेयो ॥ १९ ॥

अर्थ—अशोकवृक्ष, महासुगन्धित फूलों की वर्षा, दिव्य-ध्वनि, चमर, सिंहासन, प्रभामण्डल, दुन्दुभी बाजे और छत्र—ए अष्ट प्रातिहार्य हैं। भावार्थ—भगवान के विराजवे की गन्धकुटी ताके ऊपरि अशोक नाम रतन-मयी वृक्ष है। तामैं ऐसा अतिशय पाइए है, जो ताकौं देखैं महातीव्र शोक होय, सो भी जाता रहै और सुखी होय। १। जहाँ भगवान् विराजैं, तहाँ कल्प वृक्षन के रतनमयी, महासुगन्धित, कोमल अनेक वरण के फूलों की वर्षा होय। २। भगवान् की वाणी बिन अक्षरी, मेघ की गर्जना समान, होटतैं होट नहीं लगै, सर्व जीवनकौं हितदाई, अनेक संशय नाशनी, भगवान् की दिव्य-ध्वनि खिरै है। सो एक दिन मैं तीन बार प्रभात, मध्याह्न और साँझ खिरै। कोऊ शास्त्रन मैं अर्धरात्रिकूं खिरै, ऐसी कही है। ताकी अपेक्षा एक दिन मैं च्यारि बार वाणी खिरै है। सो एक-एक वाणी की ध्वनि छै-छै घड़ी पर्यन्त काल समय होय। सो दिव्य-ध्वनि प्रातिहार्य कहिए है। ३।

...की ध्वनि छै-छै घड़ी पर्यन्त काल समय होय। सो दिव्य-ध्वनि प्रातिहार्य कहिए है। ३। चौंसठि चमर इन्द्रन के हस्ततैं ढुरैं हैं। ४। अति रमणीक, महामनोज्ञ, अनेक शोभा सहित रतनमयी, मेरु समान उत्तुंग कौं धरैं, सिंहासन है। ताके चारों पायन की जगह, च्यारि बैठे सिंहन के आकार रतनमयी महासौम्य मूर्तिक, सर्व अङ्ग सुन्दर, नेत्र, कर्ण, मुख, जिह्वा, केशावली आदि सर्व नख, मानो साक्षात् कोई धर्मात्मा श्रावक व्रत के धारी सिंह ही भक्ति के भरे सिंहासन धरैं तिष्ठैं हैं। ऐसा सिंहासन प्रातिहार्य है। ५। भगवान् के शरीर की प्रभा का चौतरफ मण्डलाकार होना, सो प्रभा-मण्डल है। तामें देखैं जीवन कूं परभव केई (बहुत) दीखैं हैं। ६। अनेक जाति के वादित्र (बाजे) मधुर शब्द सहित एक रंग होय बाजना, सो दुन्दुभी प्रातिहार्य है। ७। भगवान के मस्तक पर तीन छत्र फिरैं सो मानो तीन लोक की प्रभुताई बतावैं है, सो छत्र प्रातिहार्य है। ८। ऐसे आठ प्रातिहार्य कहे। अनन्त पदार्थन देखने-जानने रूप प्रवर्तैं, सो अनन्तज्ञान व अनन्तदर्शन कहिए। अनन्त पदार्थन के देखने-जानने से अनन्त ही अतीन्द्रिय सुख है। अन्तराय-कर्म के नाशतैं अनन्त पदार्थ जानने की प्रगटी जो शक्ति सो अनन्तवीर्य है। ऐसे ए अनन्तचतुष्टय हैं इन सर्वकौं मिलाए जन्म के दश, केवलज्ञान के दश, देवकृत चौदह, प्रातिहार्य आठ, अनन्तचतुष्टय चार, सर्व मिल छयालीस गुण हैं। सो ए गुण जामैं पाइए सो तरणतारण, शुद्ध भगवान सम्यग्दृष्टिन करि पूज्यवे योग्य जानना। ऐसा भगवान् उपादेय है। इति सुदेव लक्षण। आगे कुदेव का लक्षण कहैं हैं—

जहां ऐसे लक्षण होय सो कुदेव। जो सरागी होय भक्त कूं देखि राजी होय अपना अविनयवान् को देखि कोप करै। ऐसा रागी-द्वेषी होय, तिनकूं लोक विषैं भी और कोई-कोई जीव ऐसा कहै हैं जो यह देव रीझै तौ राज-सम्पदा देय सुखी करै है। ए देव कदाचित कोप करै तौ दुखी करै रोग करै पीड़ा देय धन रहित करै मरण करै और कल्पवासी, भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी—ए च्यारि जाति के देव हैं, सो योनिभूत देव हैं। जन्म-मरण सहित है। अपने किये पुण्य के फल ताहि भोगवैं हैं। ए सौम्यदृष्टि, तिनकूं देखैं सुख होय है। ए काहूकूं दुखी करते नाहीं और केतेक भोरे प्राणीनतैं अपनी बुद्धि कल्पना करि देवनाम देव, स्थापन किए, सो लौकीक देव हैं। सो ए लोकनकौं आश्चर्यकारी हैं। सो ऐसा कहै हैं। जो हमकौं पूजौ, तृपति करौ अनेक भोग योग्य वस्तु हमकौं चढ़ावो, तो हम तुमतैं प्रसन्न होय हैं। ऐसी सुनि भोरे जीव, केतेक तौ ऐसा कहै हैं।

जो याकौं तेल चढ़ाय प्रसन्न होय है। केई कहैं, या देव कौं सिन्दूर चढ़ाय राजी होय है। केई कहैं, याकौं बड़ा रोट चढ़ाय सन्तुष्ट होय है। कोई कहैं याकूं जीर्ण वस्त्र चढ़ानू यह नये देव है। कोई कहैं, या देव कौं गुड़ चढ़ै है। कोई कहैं याकौं मोदक (लड्डू) चढ़ाई है। कोई कहै याको फूल, फल, पत्र, दोभ चढ़ाये प्रसन्न होय है। कोई कहैं याकौं मद की धारा चढ़ावो। कोई कहै याकौं जीव का भक्षण चढ़ै है। इत्यादिक अनेक लौकिक देव हैं। सो इनकी चेष्टा राग-द्वेषरूप जानि, सम्यग्दृष्टि जीवनकैं सहज ही हेय भावरूप हैं। त्यागवे योग्य हैं। इनकी सेवा-भक्ति सुख दैने योग्य नाहीं। ए संसारी देव हैं, ऐसा जानना। इति कुदेव कथन। आगे गुरु परीक्षा मैं ज्ञेय, हेय, उपादेय बताइए है—

गाथा—कोहादीय कसायो, गन्धो गह तन्तमन्त च कत्ताए। पर वंचण पासंडो, पूजा सत्तार वंच्छई कुगुरो ॥

अर्थ—क्रोधादि कषाय सहित होय। ग्रन्थ जो परिग्रह ताका धारी होय। तन्त्र, मन्त्र, नाड़ा वैद्यक का करता होय। परकौं ठगनेहारे होय, पाखण्डी होय पूजा-मान बड़ाईकौं आप चाहता होय ताकूं कुगुरु जानहु। भावार्थ—जे अपना मान भए राजी होंय, अपना अपमान भए क्रोधी होय, आपकों कोई आय नमस्कार करै स्तुति करै तासों खुशी होंय, व भला भोजन दिये राजी होंय, परकौं धनवान जानि ताकी विशेष शुश्रूषा आव आदर करैं। कोई धन अपनी नजरि लाय करै तांकौं भला सेवक मानैं, इत्यादि लक्षण तैं कुगुरु जानहु और परिग्रह धारिकै आपकूं गुरुपद मानता होय राग-द्वेष भाव सहित होय तथा बड़े धन का धनी होय और धन मिलायवे की इच्छा होय बहुत खेद खाय द्रव्य इकट्ठो करने कौं महा लोभी होय और अपने गुरुपद मनायवेकौं अनेक जन्त्र, मन्त्र, तन्त्र, वैद्यक, ज्योतिष इन आदि अनेक चमत्कार प्रकट करि, भोरे जीवनकौं विस्मय उपजाय मोहित करै, सो कुगुरु है और परके ठगवेकौं महाप्रवीण होय अपने चित्त की बात महागूढ़ राखिकैं अपनी बुद्धि के बलतैं भोरे जीवन का धन हरवेकौं आप महा समता भाव धरै अनेक मिष्ट वचन बोले। आये भक्त का भले प्रकार सत्कार करै। परकौं सन्तोष विश्वास उपजाय तिनतैं पुजावना तिन भोरे जीवनकौं अपने प्रति नमावना, सो कुगुरु है। आपकूं गुरुपद मान हिंसा रूप प्रवर्तना अरु हिंसा का उपदेश देना। आप क्रियाहीन होय खाद्य-अखाद्य के विचार रहित होय, उपसर्ग आये दीन होय, साता भये प्रफुल्लित होय। चाम, घास, बक्कल इत्यादिक

पटकाधारी होय। याचना जो रंकवृत्ति ता याचना का धारी होय, सो कुगुरु हैं। आपका अपमान भए तथा आपकौं मनवांछित दान नहीं दिये परकौं सराप देवेकौं महाक्रोधी होय। आपकूं गुरु संज्ञा मानि अवधि धारत होय पर पीड़ा करवेकौं निरदई होय। अरु पराए आश्रयकूं वांछता होय और मिष्ट सुर करि गावना-बजावना आदि क्रिया करि अन्य गृहस्थीनकौं राजी करवे का उनाई होय। रसायन रसकूप धातु मारवे की प्रवीणता बताय, अपने वशीभूत करवे की इच्छा होय। भूख, तृषा, शीत उष्णादि परीषह आये महाकायर होय। काम विकार रोकवेकौं असमर्थ होय। स्त्री सहित होय तथा मन इन्द्रिय के जीतवेकौं दीन होय तथा इन्द्रिय फाड़ि तामैं लोह सांकल तथा कड़ी नाथे होय तथा संसारी गृहस्थीन की नांई नाता पालता होय। होली, दिवाली, त्योहार आए बहिन बेटीनकौं भेंट देता होय, सो कुगुरु है। ध्यान-अध्ययन विषैं प्रमादी होय। शरीर के धोवने, पौंछने, खुजावने, पियावने, लिटावने, उठावने आदि काय शुश्रूषा में प्रवीण होय। आचार्यन की परम्पराय परिपाटी मर्यादा का लोपनेहारा होय। रात्रिविषैं अन्न-जल का ग्रहण करता होय। अज्ञान तपस्या करता होय और महल, मन्दिर, अटारी बनाय स्थिति करता होय। कूप, बावड़ी, तालाब, बाग बनवायकैं अपना नाम चलायबे की इच्छा होय। इत्यादिक अनेक भेष बनाय अपनी-अपनी परणति लिए जगत् मैं आपकूं गुरुपद मानै है। सो ए कुगुरुन के लक्षण हेय जानना। इति कुगुरु वर्णन। आगे सुगुरु तरण-तारण, संसार सागरकौं नौका समान तिनका स्वरूप कहिए है—

गाथा—अरिमित जीतव मरणं, तिणधण सुहदुह सकल समभावो। यो गुरु भवदधिणावो विराई णगणणाणमय जोई ॥२०॥

अर्थ—वैरी अरु मित्र में समभाव होय। जीतव्य-मरण मैं समभाव होय। तिनका अरु कंचन में समान भाव होय। सुख-दुख मैं समभाव होय और जो गुरु भवदधि कूं नाव समान होय। वीतरागी होय, नग्न होय, ज्ञान-मूर्ति होय, सो यतीश्वर हमारे गुरु हैं।

भावार्थ—जिन यतीश्वरन कैं अपनी निन्दा करनहारा क्रूर स्वभावी, अविनयी अपना द्वेषी अरु अपनी सेवा का करनहारा विनयवान शिष्य तथा अपना मित्र इन दोऊन मैं समभाव होय, सो गुरु पूज्य हैं। बहुत काल शरीरमैं रहना, सो जीवना। अरु अल्पकालमैं तन का तजना, सो मरण। इन जीवन-मरण दोऊमैं जिनकैं

समभाव होय, सो जगत् गुरु हैं। तिनके पुष्ट करनहारे नाना प्रकार भोजन। नाना प्रकार तन निरोगतादि अनेक सुख तथा अनेक परीषहन का खेद। तन-रोगादिक अनेक सुख-दुखमैं समताभाव जाकैं होय, सो सुगुरु हैं। जीर्ण घास के तिनका मैं अरु नाना प्रकार रतनादि स्वर्ण इनमैं समता होय इत्यादिक वीतरागता सहित गुण जामैं होंय ते गुरु भव समुद्र के तारवेकौं नौका समान हैं। कैसे हैं उन गुरु का काहूतैं राग-द्वेष नाहीं, वीतरागी हैं और अन्तरङ्ग तो कषाय कीच रहित महानिर्मल। अरु बाहिर सर्व प्रकार परिग्रह रहित मातृजात नगन हैं। मति, श्रुति, अवधि, मनःपर्यय इन आदि महाअतिशयकारी ज्ञान के धारी हैं। ऐसे योगीश्वर सो सुगुरु हैं। इन्द्र देवादि चक्रवर्त्यादि सम्यग्दृष्टि जीवन करि पूजने योग्य हैं। आगे सुगुरु ही का स्वरूप कहिए है—

गाथा—मणइन्दी जय सूरा, वीरा संकट सहण दो वीसा। तणः खीणा मण सुखिया, सो होई गुरु तरण ताराए ॥ २१ ॥

अर्थ—पंच-इन्द्रिय अरु मन का ए महाबलवान हैं। इनके वश इन्द्र, चक्री आदि तीन लोक के राजा होय रहे हैं। जैसे मन-इन्द्रिय चलावै है तैसे इन्द्रियादिक चालै हैं। तातैं संसारमैं ए मन-इन्द्रिय ही महायोधा है। तिनके जीतनेकौं यतीश्वर ही महासूरमा हैं और कैसे हैं गुरु बाईस संकट जो परीषह तिनके देखैं ही बड़े-बड़े साहसीन का साहस भयखाय जाता रहै। ऐसे दुर्धर परीषह तिनके जीतवेकौं ये ही योगीश्वर महाधीरवीर हैं। सो इन परिषहन का स्वरूप आगे कहैंगे तातैं यहां नाहीं कह्या। फेरि गुरु कैसे हैं? नाना प्रकार तपरूप अगनि मैं जल्या शरीर सो तन तपतैं महाक्षीण भया है। बाकी नसैं, चांम, हाड़न का जाल रह गया है। तातैं तनके तौ क्षीण हैं अरु मन विषैं समताभाव करि अनुपम अमृतपानतैं महासुखी हैं। सो ही गुरु तरण-तारण हैं। ये ही सम्यग्दृष्टिन करि पूजने योग्य उपादेय हैं। आगे और भी सुगुरु का स्वरूप कहिए है—

गाथा—पंच महावय सहियो, समदीपन अक्खगयन्द बशीकरई। आवसि षट् सेसो जो सत्त अट्ठबीस मूलगुण साहू ॥ २२ ॥

अर्थ—पंच महाव्रत सहित होंय, पंच समिति के रक्षक होंय, पंच इन्द्रियरूपी हस्ती कूं वशीकरनहारे होंय, षट् आवश्यकन मैं सावधान होंय और जो सात शेष गुण के धारक होंय। ऐसे अठाईस मूल गुण जा मुनि कैं नोंय, सो शुद्ध गुरु हैं। भावार्थ—जे योगीश्वर ध्यान-अध्ययन विषैं प्रवीण, जगत् गुरु, अठाईस मूल गुण पालवे मैं प्रमाद रहित होय प्रवर्तै हैं। सो ही मूलगुण यतीश्वर का धर्म है। सो मूलगुण बताइए हैं। महाव्रत पाँच,

समिति पांच, पंच इन्द्रिय वशीकरण, आवश्यकषट्, भूमिशयन, मंजनतजन, वसनत्याग, कचलोंच, एक बार भोजन, आसनस्थिति, दन्तधोने का त्याग—ए सर्व मिलि अठाईस भए। अब इनका सामान्य स्वरूप कहिए है। प्रथम ही महाव्रत का सामान्य लक्षण—तहाँ सर्वत्र स्थावर जीवन पै समताभावधरि, जगत् का पीर हर, परम-दयालु, कोमल चित्त का धारी, जगत् जीव सर्व आप समानि जानि सर्व जीव को रक्षा करनी, सर्व प्रकार हिंसा का त्याग, सो अहिंसा महाव्रत है। याही का नाम अभयदान है। केई भोरे जीव जन्मते गौ-पुत्र के मुखमैं मोती सुवर्ण धरि दान देना। ताकौं अभयदान कहैं हैं। सो यह उपदेश लोभ के माहात्म्यतैं भोरे जीवनकूं लोभी गुरु ने बताया है। अभय नामतौ वाकौं कहिए जो ताकूं सर्व भयतैं रहित करै। मरणतैं राखै, ताका नाम अभयदान है। सो ए अभयदान वाकों होय जो हिंसा रहित व्रत का धारी होय। १। सर्व प्रकार असत्य का त्यागी होय, जिन आज्ञा प्रमाण बोलना, सो सत्यमहाव्रत है।२। और सर्व प्रकार अदत्ता-दान जो बिना दिया पदार्थ नहीं लेना, राह पड़ी वस्तु मन-वचन-काय करि नाहीं लेय, इत्यादिक चोरी का त्याग, सो अचौर्य महाव्रत है। ३। सर्व प्रकार स्त्री के विषयन का मन-वचन-काय, कृत कारित अनुमोदना करि देव-स्त्री, पशु-स्त्री, मनुष्य-स्त्री, काष्ठ पाषाण की अचेतन-स्त्री—इन च्यारि प्रकार स्त्रीन के भोग स्पर्शनादि विषय का त्याग, सो ब्रह्मचर्य महाव्रत है। इहां प्रश्न—जो चेतन-स्त्री का त्याग सो शील है। अरु अचेतन-स्त्री का भोग त्याग को शील कह्या, सो ब्रह्मचर्य महाव्रत हैं। सो अचेतन मैं भोग काहे का है? ताका समाधान—भो भव्य! भोग हैं सो यथायोग्य मनकरि, वचन करि, काय करि तीन प्रकार हैं। चैतन्य-स्त्री भोगतौ तीनों प्रकार करि होय है। सो तुम भले प्रकार जानौ ही हो और अचेतन-स्त्री तैं काय-वचन का भोग तौ नाहीं बनैं है और मन के भोगकौं अचेतन-स्त्री कारण है। अचेतन-स्त्री कूं देखि हर्ष का होना कि जो यह चित्रांम काष्ठ पाषाण की स्त्री महासुन्दर है याका रूप देवांगना समान है। इत्यादिक अचेतन-स्त्री कूं देखि चेतन-स्त्रो का सुमरनि करि हर्ष का होना, सो मन सम्बन्धी तथा कोई प्रकार वचन सम्बन्धी भोग जानना। तातैं ब्रह्मचर्य व्रत का धारी अचेतन और चेतन-स्त्री का त्यागी जानना। यह ब्रह्मचर्य महाव्रत है। ४। कषाय नव, मिथ्यात्व एक, संज्वलन की चौकड़ी चार—ये चौदह प्रकार अन्तरङ्ग परिग्रह का त्याग और धन, धान्य, दासी, दासादि, दस प्रकार बाह्य परिग्रह—ए चौबीस प्रकार

परिग्रह का त्याग, सो नगन यतीकैं परिग्रह त्याग नामा महाव्रत है। ५। इति महाव्रत। आगे पंच समिति का स्वरूप कहिए है—तहां योगीश्वर दया के भण्डार जब पृथ्वी विषैं विहार करै तब चलते च्यारि हाथ धरती देखतैं चले हैं। सर्व जीवन प्रति महा कोमल चित्त का धरनहारा करुणानिधान, धरती देखै कि कोई जीव हमारे तनतैं पीड़या नहीं जाय। जैसे—काहू का रतन भूमि विषैं पड़ गया, सो रतन शोधवे निमित्त नीची दृष्टि किए, धरती देखता चालै। तैसे ही जगत् का पीर हर, जीवरूपी आप समानि रतन, ताके बचावने के निमित्त देखता चलै, सो ईर्या-समिति है। १। यतीश्वर वचन बोलैं, तब महाहित वचन बोलै। ताकूं सुनि अन्य जीव सुखी होय, पुण्य का बन्ध करैं। ऐसा पाप रहित जिन-आज्ञा सहित मिष्ट वचन बोलैं, सो भाषा-समिति है।२। भोजन समय यती भोजन करैं तब मन-वचन-काय एकाग्र करि भोजन विषैं दृष्टि राखैं सो निर्दोष छयालीस दोष टारि [बत्तीस अन्तराय, चौदह मलदोष टारि] भोजन करैं। सो भी यति, जगत् भोगनतैं उदासीन तन ममत्व रहित, निस्पृहता लिए भोजन करै। सो मुनि का भोजन पंच प्रकार है। सो ही कहिये है। प्रथम नाम—गोचरी, भ्रमरी, गरतपूरन, दाह शमन, ओंगण। इनका अर्थ—जैसे गैया वनमैं चरै सो घास रूखड़ी वृक्षकूं चरै, सो मूलतैं नहीं उपारे। ऊपरि-ऊपरि तैं चरै। तैसे ही मुनि गृहस्थकूं नहीं सतावै, सहज भ्रमण करि भोजन लेंय। सो गोचरी भेद है। १। जैसे भ्रमर फूलकूं नहीं सतावै दूरतैं बास लेय, तैसे मुनि गृहस्थकूं नहीं सतावै, गृहस्थकूं घरतैं दूरि अन्तर गमन करै, यह पड़गाहै तब भोजन लेय। सो भ्रमरी भेद है। २। जैसे कोई खाड़ा (गड्ढा) पूरै तब घास, लकड़ी, पत्थर, राख, मिट्टी, धूल जो हाथ आवै, तातैं खाड़ा पूरै। तैसे ही यतिनाथ क्षुधारूपी खाड़ा पूरैं। सो चाहे तौ भोजन रस सहित होय तथा रस रहित होय। मुनि, योग्य भोजन आचार सहित लेंय। पीछे कैसा होय, इनकैं स्वाद तैं काम नाहीं। क्षुधारूपी खाड़ा जैसे-तैसे भरैं, सो गर्त पूरण है। ३। जैसे घर कूं अग्नि लगै तब राखि धूलि पानी से जैसे बनै तैसे बुझावैं। तैसे ही मुनिकों नीरस तथा रस सहित चाहै जैसा भोजन मिलौ, क्षुधा अग्नि बुझावनी। सो याका नाम दाह शमन है। ४। गाड़ी नहीं चलै तब तिल तेल घृततैं औंग के चलाय जैसे-तैसे मंजिल (रास्ता) काटि घर पहुँचैं। तैसे ही मुनि मोक्ष घर जातैं तनरूपी गाड़ी पै चलैं है। सो रूखा-सूखा शीत-उष्ण चाहै जैसा होहु, शुद्ध आहार चाहिये सो जब क्षुधा का निमित्त जानैं तब भोजन का

ओंगन देय मोक्ष घर पहुँचे, सो ओंगण भेद है। ५। ऐसे यति भोजन करैं, सो दोष रहित करैं, दोष कसे, सो कहिए हैं—

गाथा—दोह छियाली रहियो, अन्ताय तीस दो शुद्धो। दह चब मल दोह हीणो, मुणि भोयण होइ णिदोसो ॥ २३ ॥

अर्थ—छयालीस दोष, बत्तीस अन्तराय, चौदह मल दोष, जहाँ एते दोष टलैं, तब मुनीश्वर का भोजन शुद्ध होय है। भावार्थ—यति का भोजन निर्दोष होय, तौ लेय हैं। कदाचित् दोष लगै तौ अन्तराय करैं। सो दोष कैसे, सो कहिए हैं। प्रथम छयालीस दोष के नाम—अर्थ कहिए है। तहां प्रथम उद्गम दोष सोलह, सो दाता के आधीन हैं। इनकी रक्षा दातार के आधीन हैं। इनकी सावधानी दातार करै, नहीं तो दातारकौं दोष लागै। तिन सोला के नाम—तहाँ मुनि के निमित्त भोजन करै तौ दाताकौं दोष लागै। याका नाम उद्दिष्ट-दोष है। १। तहां आगे भोजन किया होय अरु मुनिकौं आये जानि, उस भोजनकौं अल्प जानि तामैं और अन्नादि मिलाए मुनिकौं भोजन देय तौ दाताकौं दोष लागै। याका नाम साधिक (अध्यधि) दोष है। २। मुनीश्वरकौं अप्रासुक जो सचित्त भोजन देय तौ दाताकौं दोष लागै याका नाम पूर्ति-कर्म-दोष है। ३। केई असंयमी की भाँति मुनिकौं भोजन देय तौ दाताकौं दोष लागै याका नाम मिश्र-दोष है। ४। जिस पात्र मैं भोजन किया (बनाया) था तातैं काढ़ि और पात्रनि मैं धरि मुनिकौं भोजन देय तौ दाताकों दोष लागै। याका नाम स्योपिमन्यस्त-दोष है।५। कोई व्यन्तरादिक देवनके निमित्त भोजन किया होय तामैं मुनिकों दान देय तौ दाताकौं दोष लागै। याका नाम बलि-दोष है। ६। काल की हीनता अधिकता तथा भोजन का समय चूकि पड़गाहना तथा काल जो दुर्भिक्ष ताके योग करि जो सस्ता धान होय, सो उसका मुनिकौं भोजन देय तथा आपकूं आकुलता जानि शीघ्र-शीघ्र भोजन देय तथा धीरे-धीरे भोजन देय। ऐसे काल की हीनता-अधिकता करि यथायोग्य भोजन नहीं देय, तौ दाताकौं दोष लागै। याका नाम प्राभृतक-दोष है। ७। मुनि महाराज के घर आने पर, भाजनों का अन्य स्थान से अन्य स्थान पर ले जाना, बर्तनों का भस्मसे मांजना, जलसे धोवना तथा मण्डप का उघाड़ना, दीपक का उद्योत करना, सो प्रादुष्कर नामा दोष है। ८। मुनीश्वरकौं भोजन के निमित्त आए जानि, तत्काल ही अपना सचित्त-द्रव्य व अचित्त-द्रव्य देय करके आहारकों मोलि ल्याय साधुकों आहार देवै वा मन्त्र-तन्त्र विद्या परकूं देय भोजन बनवायकैं मुनिकौं

दान देय तौ दाताकौं दोष लागै। याका नाम क्रीत-दोष है। ९। अपनी शक्ति तौ नाहीं परन्तु पराया कर्ज लेय मुनिकौं भोजन देय तौ तादाकूं दोष लागै, याका नाम प्रामित्य-दोष है। २०। अपने घर में हीन अन्न था जो जवारि कोदू, सो तिनकूं बदलाय तन्दुल गेहूं लाय मुनिकौं दान देय, तौ दाताकौं दोष लागै, याका नाम परिवतित [परावर्त] दोष है। २१। अन्य गृह, अन्य ग्राम, स्वदेश व अन्य देश से आये हुए भोजन को, दाता मुनि को पड़गाह करके देय, तो दोष लागै। ताका नाम अभिघट (अभिहृत) दोष है।२२। और यतिकौं पड़गाह लाये, कोई वस्तु किसी पात्रमैं थी ताका मुख बंधा था ताका मुख खोलि, मुनिकौं दान देय, तौ दाताकौं दोष लागै। याका नाम उद्भिन्न-दोष है। २३। और मुनि आए पीछे, कोई वस्तु ऊपरले खरड है ताकूं, लाय मुनिकौं भोजन देय तौ दाताकों दोष लागै, याका नाम मालारोहण-दोष है। २४। और श्रावक कूं तौ मुनि-दान देवे की वांच्छा नाहीं, परिणामन मैं भक्ति नाहीं। परन्तु राजा, पंच, नगर के लोक धर्मात्मा है, सो राजपंच के भय करि लोक दिखावने कूं मुनिकौं दान देय, तौ दाताकौं दोष लागै। याका नाम आच्छेद-दोष है। २५। अनिसृष्ट (निषिद्ध) दोष दो प्रकार है। एक ईश्वर दूसरा अनिश्वर। तहाँ घर का मालिक तो होय परन्तु मन्त्री आदि के आधीन हीय, सो सारक्ष ईश्वर है और जो मन्त्री आदि के आधीन न हो सो असारक्ष ईश्वर है और जो मन्त्री आदि के अधीन न होकर उनसे सलाह लेकर कार्य करता है, सो सारक्षासारक्ष ईश्वर है। इस प्रकार के ईश्वर से प्रतिषिद्ध आहार को देना, सो ईश्वर-निषिद्ध-दोष है। जाका घर-धनी तौ नाहीं और ही आय दान देय, तौ दाताकौं दोष लागै। याका नाम अनीश्वर-निषिद्ध-दोष है।२६। इनका जतन दाता करै। यह उद्गम दोष कहे। आगे सोलह उत्पादन दोष हैं। सो पात्र के आधीन हैं। सो ही कहिये हैं। तहां मुनीश्वर दाता के घर भोजनकौं जांय ताके बालकन कूं धाय की नाईं रमावैं। सिंगारादि करावैं। तौ यतिकौं दोष लागै। याका नाम धात्री-दोष है। १। यतीश्वर भोजनकौं दाता के घर जायकैं ताकौं सम्बन्धी व दूरदेश के समाचार कहैं तौ पात्रकों दोष लागै। याका नाम दूत-दोष है। २। मुनीश्वर दाताकूं निमित्तज्ञानादि अतिशय बताय भोजन करैं तो यतीश्वर कों दोष लागै, याका नाम निमित्त-दोष है। ३। मुनीश्वर दाता के घर जाय आजीविका की बात कहैं जो आज काल भोजन का निमित्त अल्प है इत्यादिक कहि भोजन करैं तौ मुनीश्वर कों दोष लागै। याका नाम आजीव-

दोष है। ४। यतीश्वर दाता के सुहावनी बात कह भोजन लेंय तौ मुनिकौं दोष लागै। याका नाम विनयक-दोष है। ५। मुनि दाता के घर भोजनकौं जाय नाड़ी वैद्यकादि औषधि बताय भोजन करैं तौ मुनिकौं दोष लागै। याका नाम चिकित्सा-दोष है। ६। जहां मुनीश्वर भोजन समय कोईपै कोप करि भोजन करैं तौ यतिकौं दोष लागै। याका नाम क्रोध-दोष है। ७। मुनि आपकूं उत्तम राजवंश का जानि दाता के घर मान सहित भोजन करैं तौ यतिकौं दोष लागै, याका नाम मान-दोष है। ८। यतीश्वर अपने चित्त की गूढ वार्ता कोईकौं नहीं जनावता भोजन करै तौ यतिकौं दोष लागै, याका नाम माया-दोष है।९। यति भले भोजनकौं रुचि सहित करै तौ मुनिकौं दोष लागै, याका नाम लोभ-दोष है। १०। मुनिराज दाता के घर जाय भोजन किये पहले दाता की स्तुति करैं तौ यतिकौं दोष लागै। याका नाम पूर्व-स्तुति-दोष है। ११। यतीश्वर भोजन लिये पीछे दाता की स्तुति करैं तौ मुनिकौं दोष लागै, याका नाम पश्चात्-स्तुति-दोष है। १२। यतीश्वर श्रावकनकौं पढ़ाय भोजन करैं तौ यतिकौं दोष लागै, याका नाम विद्या-दोष है।१३। यति मन्त्र, तन्त्र, जन्त्र, टोना, जादू इन आदि अनेक अतिशय अपने-अपने श्रावकनकौं बताय तिनकैं भोजन करं तौ मुनिकौं दोष लागै, याका नाम मन्त्र-दोष है। १४। मुनीश्वर गृहस्थकूं नेत्र का अञ्जन पेट रोगकूं चूरन बताय भोजन करैं तौ यतिकौं दोष लागै, याका नाम मूल-कर्म (वश्य-कर्म) दोष है। १६। यह षोड़श दोषों की यति सावधानी राखै नांहीं तो मुनिकौं दोष लागै, यति का पद कलङ्क पावै। ऐसे सोलह उत्पादन दोष हैं। आगे एषणा दोष दश कहिये हैं। भोजन करते ऐसा सन्देह उपजै जो यह भोजन शुद्ध है अथवा अशुद्ध है ऐसा सन्देह होतैं भोजन करै तौ यतीश्वरकौं दोष लागै, याका नाम शंकित-दोष है। १। यति दाता के हाथ चीकने देखैं तथा बासन चिकने देखैं तौ भोजन नहीं लेंय अरु लेंय तो यति कों दोष लागै, याका नाम मृक्षित-दोष है। २। सचित्त वस्तु तैं व भारी अचित्त वस्तुतें भी ढांकी जो भोजन वस्तु सो यति नहां खाँय तौ मुनिकौं दोष लागै, याका नाम पिहित-दोष है। ३। सचित्त पृथिवी जल, अग्नि, वनस्पति, बीज तथा त्रस जीव के ऊपर धर‍्या हुआ आहार मुनि नांहीं ग्रहण करें यदि करें तो याका नाम निक्षिप्त-दोष है। ४। सूतक के घर, रोगी के हाथ का, वृद्ध बालक नपुंसक गर्भ सहित स्त्री इनके करतैं भोजन नहीं लेंय और जलती अग्निकौं बुझावती देखैं तथा स्त्रीकों बालक चुखाती, बालककौं आँचल से छुटावती

देखैं, तौ भोजन नाहां करैं। करैं तौ दोष लागै याका नाम दायक-दोष है।५। जो भोजन पृथ्वी, जल, हरितकाय पत्र पुष्प, फल, बीज इत्यादिक करि मिल्या होय, सो मिश्र-दोष सहित है।६। भय से अथवा आदर से वस्त्रादिक को यत्नाचार रहित खींच कर जो मुनीश्वर को आहार देना, सो व्यवरा (साधारण) दोष है।७। जा वस्तु का वर्ण नहीं फिरया होय, अधकच्ची वस्तु होय, सो यतीश्वर नहीं लेंय याकूं लेंय तौ दोष लागै, याका नाम अपरिणात-दोष है। ८। यति भोजन समय दाता के हाथ व तौला, भरत्याई, हांडी तथा और पात्र, खिचड़ीतैं तथा व्यञ्जन तिरकारी तैं लिपटे देखैं तौ गुरुनाथ भोजन नहीं करैं। करैं तौ दोष लागै, याका नाम लिप्त-दोष है। ९। जो हाथ की चञ्चलता कर छाछ, घृत, दुग्धादि का झरना अथवा छिद्र सहित हस्तनिकर बहुत भोजन तो गिर जाय अर अल्प ग्रहण में आवे अथवा हस्तपुट को पृथक् करके भोजन करना, सो त्यक्त-दोष है। १०। ए दश एषणा समिति के दोष हैं।

आगे च्यारि खेरीजि (फुटकर) दोष अथवा भुक्ति-दोष कहिए हैं। जहाँ शीत उष्ण वस्तु मिलाए सुख निमित्त खावना, ताका नाम संयोग-दोष है। १। भोजन का प्रमाण तथा काल का प्रमाण ताकौं उलंघिकैं भोजन करै, तो यतिकौं दोष लागै, याका नाम प्रमाण दोष है। २। भला भोजन, षट्रस सहित मिष्ट भोजनकौं, रति सहित खाय खुशी होय दाता की शुश्रूषा करं तौ मुनीश्वरकौं दोष लागै, याका नाम अङ्गार-दोष है।३। यतिकौं रूखा-सूखा, रस रहित, प्रकृति विरुद्ध भोजन मिलै तौ अरुचि सौं खांय तौ यतिकौं दोष लागै, याका नाम धूम-दोष है। ४। ए च्यारि खेरीज हैं। ऐसे उद्गम सोलह, उत्पादन सोलह, एषणा दश, खेरीज च्यारि। सब मिलि छ्यालीस दोष भए। इन टले शुद्ध भोजन हो है। इति छ्यालीस दोष। आगे बत्तीस अन्तराय कहिए हैं। जहाँ मुनि भोजन करतैं कोई काकादिक जीव बीट करता देखैं, तौ भोजन तजैं। याका नाम काक-अन्तराय है। १। गमन करतै साधु के पग में अमेध्य जो मल लग जाय, तो भोजन नाहीं करें, याका नाम अमेध्य-अन्तराय है। २। मुनि के भोजन करतैं वमन होय जाय तौ, भोजन तजैं, याका नाम छर्दि-अन्तराय है। ३। मुनीश्वर को भोजन के लिये गमन करते समय कोई रोक देवे, तौ भोजन तजें, याका नाम रोधन-अन्तराय है। ४। भोजन समय मुनि आपकैं तथा परकैं लोहू चार अंगुल या अधिक बहता देखैं, तो भोजन तजैं, याका नाम रुधिर-अन्तराय

है ।५। साधु दुःख शोकादिकतें आपके अश्रुपात देखें अरु समीपवर्ती जनन का मरणादि कर अति रोदन-विलाप श्रवण करें तौ भोजन तजैं, याका नाम अश्रुपात अन्तराय है । ६ । भोजन करतैं दातार तथा पात्र कोई प्रमाद वशाय, जंघा नीचे का अङ्ग छीवैं तौ यति भोजन तजैं, याका नाम जावन्धः-परामर्श-दोष है ।७। जानु प्रमाण तिर्यग् निक्षिप्त काष्ठादि का उल्लंघन करना, सो जानुह्वतिक्रम-अन्तराय है ।८। यति भोजन करतैं कोई मनुष्यकौं नाभि नीचैं मस्तककौं नवायनिकलता देखैं, तौ यति भोजन तजैं, याका नाम नाभ्यधोनिर्गमन-अन्तराय है ।६। और मुनि भोजन समय तजी वस्तु का ग्रहण करैं, तौ भोजन तजैं, याका नाम प्रत्याख्यात-सेवन-अन्तराय है ।१०। भोजन करतें यति सामने दूसरे से कोई जीव मरा देखें तो भोजन तजं, याका नाम जन्तुवध-अन्तराय है । ११ । भोजन करतें काकादिक जीव ग्रास ले जाय, तौ यति भोजन तजैं, याका नाम काकादि-पिण्डग्रहण-अन्तराय है । १२ । भोजन करतैं पात्र के हाथतैं ग्रासपिण्ड भूमि में पड़े तौ यति भोजन तजैं, याका नाम पिण्डपतन-अन्तराय है । १३ । और साधु के हाथ में जीव स्वयं आकर मर जाय तौ भोजन तजैं, याका नाम पाणिजन्तुवध-अन्तराय है ।१४। भोजन समय यति आमिष (मांस) व मुर्दा देखैं तौ भोजन तजैं, याका नाम मांसादि-दर्शन-अन्तराय है ।१५। भोजन समय कोई उपसर्ग होय तौ यति भोजन तजैं, याका नाम उपसर्ग-अन्तराय है ।१६। भोजन करते समय यति के दोनों पांव के बीच में होय पंचेन्द्रिय जीव कोई गमन करता मुनि जानैं तो भोजन तजैं, याका नाम पंचेन्द्रिय-जीव-गमन-अन्तराय है ।१७। भोजन करते दाता के हाथतैं भूमिमैं पात्र पड़ै, तौ भोजन यति नहीं करै, याका नाम भाजन-सन्ताप-अन्यराय है । १८ । भोजन करतैं मुनीश्वर अपना मल खिरऱ्या जानैं तौ भोजन नहीं लेय, याका नाम उच्चार-अन्तराय है । १६ । भोजन करतैं यति आपके मूत्र खिरऱ्या जानै तौ अन्तराय होय, याका नाम प्रस्रवण-अन्तराय है ।२०। भोजन समय मुनि प्रमाद वशाय भूलमैं, शूद्र के घर में प्रवेश कर जाँय, तौ अन्तराय करैं, याका नाम अभोज्य-गृह-प्रवेश-अन्तराय है । २१ । यति का मूर्छा कर पतन हो जाय, तौ अन्तराय करैं, याका नाम पतन-अन्तराय है ।२२। भोजन समय कर्म करि, भूलिकैं तथा प्रमाद तैं तथा तन की हीन शक्ति तैं कबहूँ मुनि बैठि जाँय, तौ अन्तराय होय, याका नाम उपवेशन-अन्तराय है ।२३। भोजन करतैं कोईकौं कुत्ता, बिल्ली काटिता देखितैं भोजन तजैं,

याका नाम सदंश-दृष्ट-अन्तराय है। २४। भोजन पहले सिद्ध भक्ति के पश्चात् करतैं भूमि स्पर्शैं तौ अन्तराय है, याका नाम भूमि-स्पर्श-अन्तराय है। २५। भोजन करतं मुनीश्वर स्वतः कफादिक का निष्ठीवन करें, तौ भोजन तजैं, याका नाम निष्ठीवन-अन्तराय है। २६। भोजन समय मुनि अपने उदरतैं कृमि खिरी जानैं, तौ अन्तराय करैं, याका नाम कृमि-गमन-अन्तराय है। २७। भोजन समय दाता के बिना ही दिए प्रमाद योगतें कोई भोजन यति अङ्गीकार करं, तो भोजन तजैं, याका नाम अदत्त-ग्रहण-दोष है सो अन्तराय है। २८। खड़गादितें ककरते साधु का कोई घात करै वा अन्य का घात करै, तो अन्तराय होय, याका नाम शस्त्र-प्रहार-अन्तराय है। २९। भोजन समय मुनिनाथ ने नगरमैं जाते, नगर में अग्नि लागी देखी तौ भोजन तजैं, याका नाम ग्रामदाह-अन्तराय है। ३०। भोजनकौं नगरमैं जाते कोई पड़ी वस्तु पावतैं ग्रहण करैं तौ भोजन तजैं, याका नाम पादग्रहण-अन्तराय है। ३१। भोजनकौं नगरमैं प्रमाद वशाय कोई राह पड़ी वस्तु हाथतै छीवें तौ भोजन तजैं, याका नाम कर-ग्रहण-अन्तराय है। ३२। ऐसे जगत् का गुरु शरीरतैं मोह का तजनहारा, संसारीक सुखतैं उदास इन्द्रिय जनित आनन्दतैं निस्पृह ए बत्तीस अन्तराय भोजन समय टालैं, तब शुद्ध भोजन होय है। चौदह मल-दोष औरं टालैं, तिनके नाम कहिए है—नख, रोम, मृतक जीव, हाड़ गेहूँ—जब अन्न के वाह्य-अभ्यन्तर, अवयव, पक्व, रुधिर, तिलादिक के सूक्ष्म अवयव, चाम, रुधिर, आमिष, ऊँगने योग्य बीज, फल, जाति, आदादि, कन्द (अदरक आदि) मूलादि मूल ऐसे चौदह मल-दोष हैं सो मुनि के भोजनमैं आवें तौ तथा केईक देखैं तौ वे भोजन तजैं। ऐसे छयालीस दोष बत्तीस अन्तराय और चौदह मल-दोष टालैं। तब वीतरागी गुरु का शुद्ध भोजन होय है। याका नाम तीसरी एषणा-समिति है। ३। आदान तौ नाम लेने का है, अरु निक्षेपण नाम धरवै का है। सो पुस्तक पीछी कमण्डलु शरीर इनकूं जहां धरै सो निर्जीव जगह देखि धरै। इनको उठावै तब जतन तैं उठावै। सो आदान-निक्षेपण-समिति है। ४। और यति तन के मल-मूत्र सो निर्जीव भूमि देखि नाखैं (डालैं) सो प्रस्थानी (व्युत्सर्ग) समिति है। ५। ए पांच समिति कहीं। आगे पंचेन्द्रिय वशीकरण कहै हैं। सो तहां स्पर्श के आठ विषय हैं। तिन आठ का निमित्त मिलै राग-द्वेष नहीं करै सो स्पर्शन इन्द्रिय विजयी साधु कहिए। १। रसना इन्द्रिय के पांच विषय हैं। सो इन

पांच का निमित्त मिलै तहां राग-द्वेष नहीं करै, सो रसना इन्द्रिय साधु कहिए। २। घ्राण इन्द्रिय के विषय दोय हैं। तिनका निमित्त मिलैं, रागी-द्वेषी नहीं होय, सो घ्राण इन्द्रिय विजयी साधु कहिए।३। चक्षु इन्द्रिय के पंच विषय हैं। तिनका निमित्त मिलै रागी-द्वेषी नहीं होय, सो चक्षु इन्द्रिय विजयी साधु कहिए। ४। श्रोत्र इन्द्रिय के तीन विषय हैं। तिनका निमित्त मिलै रागी-द्वेषी नहीं होय, सो श्रोत्र इन्द्रिय वशीकरण (विजयी साधु) कहिए है।५। ऐसे पंच इन्द्रियन के विषय का निमित्त मिलै रागी-द्वेषी नहीं होय, सो पंचेन्द्रिय विजयी साधु हैं। बहुरि आवश्यक षट् का स्वरूप कहिए है। सो प्रथम ही सामायिक आवश्यक कहिये है—

गाथा—णाम सथापण दव्बो खेत्ते कालेय भाव सम्मायो। एसड भेय मुणिन्दो, अह णिस धारणेय आवसियो॥

ऐसे सामायिक के षट् भेद हैं। नाम-सामायिक, स्थापना-सामायिक, द्रव्य-सामायिक, क्षेत्र-सामायिक, काल-सामायिक और भाव-सामायिक। अब इनका अर्थ सामान्य करि बताइए है। तहां इष्ट, पदार्थ, राग, रंग, गीत, नृत्य, रूप, रतन, कंचन, सपूत पुत्र, भाई, माता-पिता, राजा इन आदिक वस्तु के नाम सुनि राग नहीं करना, सो नाम-सामायिक है तथा शत्रु, अविनयी, दुराचारी इत्यादि खोटे नाम सुनि द्वेष नहीं करना, सो नाम-सामायिक है तथा ऐसा विचारना कि जो मैं सामायिक करौ हौं, इत्यादिक भावना, सो नाम-सामायिक है और मनुष्य, पशु तथा मिट्टी काष्ठ पाषाण के मनुष्य पशून के नाना प्रकार आकार देखि ऐसा नहीं विचारना कि ए भला है ए भला नाहीं तथा बावड़ी, कूप, सरोवर, मन्दिर आदि देखि राग-द्वेष भले-बुरे नहीं कल्पना, सो स्थापना-सामायिक है और चेतन-अचेतन द्रव्य-पदार्थ देखि राग-द्वेष नहीं करै तथा कोई भव्यात्मा द्रव्य सामायिक के सर्व पाठ जाननेवाला सन्ध्या समय सामायिक करवे को पद्मासन तथा कायोत्सर्ग तन की मुद्रा किए तिष्ठै है। ताका चित्त वशीभूत नाहीं, सो अनेक जगह भ्रमण करै है। अरु पाठ शुद्ध पढ़ता तिष्ठै है सो जीव तथा शरीर सामायिक रूप है, ताकूं द्रव्य-सामायिक कहिये और स्वर्ग, नरक, पाताल, मध्यलोक के अनेक द्वीप-समुद्र, अढ़ाई द्वीप विषैं तिष्ठते आर्य-म्लेच्छ क्षेत्र, वन, बाग, पर्वत इत्यादिक जो सुख-दुख रूप शुभाशुभ देश, ग्राम, क्षेत्र तिनमैं राग-द्वेष नहीं करना सो क्षेत्र-सामायिक है। वसन्तादि षट् ऋतु तथा शीत-उष्ण, वर्षाकाल तथा शुक्लपक्ष, कृष्णपक्ष तथा दिन, रात्रि तथा वार, नक्षत्रादि

ए शुभाशुभ देखि इनमें राग-द्वेष नहीं करना तथा उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी तथा प्रथम, दूजा, तीजा, चौथा, पंचमा, छठा काल इन सब कालन की प्रवृत्ति विषैं शुभाशुभ नाहीं होना राग-द्वेष नाहीं करना सो काल-सामायिक है। सामायिक करते जीव-अजीवादि तत्त्वन मैं तौ उपयोग की प्रवृत्ति शरीर की एकाग्रता-निश्चलता और मिथ्यात्व प्रमाद के अभावतैं शुद्ध समता रस भोंजते भाव और सामायिक करते वचन, मन, काय इनकी एकता सहित सामायिक ही विषैं भावन की प्रवृत्ति, सर्व जीवनतैं स्नेह-भाव सर्व की रक्षा-भाव व्रत संयम की बढ़वारी रूप परिणाम धर्म शुक्लध्यानमयी भाव चेष्टा सो भाव-सामायिक है। सो इन षट् भेद रूप सामायिक का धरनहारा शुद्ध भावन सहित जगत् गुरु मुनीश्वर षट् काय का पीर हर सो सदैव सर्वकाल सर्व संयम का धारी गुरु के सामायिक आवश्यक है।१। यतीश्वरकैं अरहन्त-सिद्धि की बारम्बार स्तुति सो स्तवन आवश्यक है। २। अरहन्त सिद्ध कौं बारम्बार नमस्कार रूप मन-वचन-काय सो वन्दना आवश्यक है। ३। कोई प्रमादवशाय संयमकों दोष लागा होय तो ताकों यादि करि ताके दूर करवेकों क्रिया करनी सो प्रतिक्रमण आवश्यक है। ४। और पाप क्रिया का त्याग सो प्रत्याख्यान आवश्यक है। ५। और तहां शरीर तैं मोह रहित होय प्रवर्तना ध्यान रूप होना, तन त्याग रूप उदास भावना कायोत्सर्ग आसन करि तिष्ठना सो कायोत्सर्ग आवश्यक है।६। ऐसे महाव्रत, समिति पंचेन्द्रिय वशीभूत करण षट् आवश्यक, सात खेरीज गुण ऐसे अष्टाविंशति मूल गुण की रक्षा रूप सदैव प्रवर्तना, गुरु बन्दने योग्य है।

इति श्री सुदृष्टितरङ्गिणीनामग्रन्थमध्ये अठाईस मूल गुणन में एषणा-समिति में छ्यालीस दोष, बत्तीस अन्तराय, चौदह मल-दोष-रहित शुद्ध एषणा-समिति सहित गुण वर्णनो नाम अष्टमपर्व सम्पूर्णम् ॥ ८ ॥

आगे भी मुनि-धर्म की प्रवृत्ति है। तरां तेरह प्रकार चारित्र—उत्तम-धर्म सो पंच महाव्रत पंच समिति इनका स्वरूप तौ ऊपरि कहि आए हैं। तीन गुप्ति तिनका स्वरूप कहिए है। जहां मन का चिन्तवन होय, सो जिन-आज्ञा अनुसार होय। सर्व जीवन कूं सुख रूप प्रमाद रहित मन का विचार अपने अभिप्राय बिना और रूप नहीं होय, सो मन वशी जानना। याही का नाम मन-गुप्ति है। जहां वचन का बोलना सो स्वपर-हितकारी जिन-आज्ञा समानि बोलना आतमा के अभिप्राय बिना प्रमाद वचन नहीं बोलना सो प्रमाद रहित सत्य जिन-आज्ञा अनुसार

कहना सो वचन वशी जानना याही का नाम वचन गुप्ति है। जहाँ कायतैं चालना सो समिति सहित चालना अपने अङ्गोपाङ्ग चञ्चल करना सो जिन-आज्ञा अनुसार करना महादया भावन सहित शान्ति मुद्रा कर रहना अशुभ तन की शुश्रूषा रूप नहीं रहना अपनी काय करि कोई प्राणी भय नहीं करै, सो मुद्रा बनाय तिष्ठकैं रहै। आत्मा के अभिप्राय बिना कायक्रिया प्रमाद तैं नहीं करना, सो काय का वशी करना है। याही का नाम काय-गुप्ति है। ऐसे तेरह प्रकार चारित्र जानना। इस चारित्र सहित जे मुनि होंय सो गुरु सत्य जानना। ये ही गुरु सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र इन रत्नत्रय सहित हैं। सो सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र का स्वरूप तौ ऊपरि कहि आए हैं। अरु सम्यग्ज्ञान का स्वरूप कहिए है। सो सम्यग्ज्ञान पांच प्रकार का है। जिन-आज्ञा अनुसार स्वपर पदार्थन का स्वभाव जानना, सो सम्यग्ज्ञान है। इनका स्वरूप आगे कहेंगे, तहां तैं जानना। ऐसे शुद्ध रतनत्रय का धारी योगीश्वर सम्यग्दृष्टिन का गुरु है पूजवे योग्य है। ये ही गुरु महाधीर कर्मशत्रु के जीतवेकूं महासामन्त तन ममत्व के त्यागी जगत् गुरु कर्म-शत्रुन के किए महाघोर परीषह तिनके सहवेंकूं साहसी हैं। ते परीषहन के भेद बाईस हैं। सो ही कहिए हैं—

गाथा—छुद तिस सीतय उसणऊ, दंसा णगणाय भरतितीय चज्जाए। आसण सयण कुवयणं, बधबंधा जाचमालाभो ॥२४॥
गद तण फासय मल्लयो, सवकारो पुरुसकार पण्णाय। अण्णाणोय अदसणं, सब्बे वाबीस मुण सहधीरा ॥ २५ ॥

युग्मार्थ—क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक, नगन, अरति, स्त्री, चर्या, आसन, शयन, दुर्वचन, बधबन्धन याचै नाहीं, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कार, पुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान, अदर्शन—ए बाईस उपद्रव हैं। अब इनका अर्थ कहिए है। तहां मुनीश्वर नाना उपवास के पारणे को भोजन समय नगर मैं जाँय अरु तहां अन्तराय होय, तौ यति व्रत का लोभी, पीछा वनकूं जाय। क्षुधातैं तन महाक्षीण होय परन्तु जगत्गुरु, परिणति खेद रूप नहीं करैं। अन्न के सहाय बिना तनने अपनी सत्ता छोड़ दई, परन्तु यति ने अपना मन का पुरुषार्थ नहीं तजा, सो शिथिल भया शरीर ताकूं अपने पुरुषत्व करि यथावत् उचित क्रिया चलावते भए। जैसे—कोई दीपान्तर का जानेहारा सेठजी कर्णरथ पै चढ्या गमन करै है, सो कहीं-कहीं पर्वतन की घाटी विकट पत्थरन सहित आवै। तहाँ रथकूं जीर्ण जानि जतनतैं साधि, दीपान्तर पहुँचै। तैसे यति मोक्ष द्वीप का चलनेहारा, तन रूपी रथपै चढ़ि

के जाय है। सो कहीं क्षुधा परिषह रूपी घाटी आवे है तहां महाउदासीन व्रत का धारी अपनी साहस वृत्ति कर क्षुधा परीषहकूं जीतै सो क्षुधा परिषह विजयी साधु कहिए।१। तहां जे गुरु नाना तप, उपवास, दुर्धर करते ज्येष्ठ मास के दीर्घघामनि का निमित्त पाय भई जो तन विषैं तपन की ज्वाला, अरु ऐसी ऋतु मैं भोजनकौं नगर मैं गए, तहाँ प्रकृति विरोधी दाहकारी भोजन का निमित्त मिल्या तथा मासोपवासीकौं नगर में अन्तराय भई। ताके निमित्त तैं बधी (बढ़ी) जो तन मैं तृषा को वेदना, ताके निमित्त पाय सर्व शरीर अग्निवत् तपि चला, नेत्रनकैं आगे तमारे आवनें लगे, तारागन-सी (चिनगारी-सी) नेत्र पै टूटनै लगी, लोचन फिरने लगे इत्यादिक भई जो तृषा की बाधा, ताकौं सहते धीर साधु वीतरागी मुनि खेद भाव नाहीं करैं। ताकूं तृषा परीषह विजयी साधु कहिए।२। तहां राज अवस्था में शीत की बाधा मेटवेंकौं अनेक उपाय करते अग्नि, रुई, रोम शाल-दुशाले, रजाई कोमल स्त्री के तन का उष्ण स्पर्श अनेक गर्म मेवा भोजन और औषधादिक रस भोगना और अनेक महलन के गर्भनकैं अन्दर सोना इत्यादि गृहस्थ अवस्था मैं तन के जतन करते सो अब व्रतिपद विषैं नदीतट, चौपट वन इत्यादिक शीत के स्थान तिनमैं तिष्ठतैं योगीश्वर समता रस पीवते, ध्यान अग्नि की महिमा विषैं तपते, शीत की बाधा नहीं गिने, सो शीत परीषह विजयी साधु कहिये।३। बहुरि समता रस अमृत के स्वादी यतीश्वर, तप कर भया है जो तन क्षीण ताकरि तन की शोभा अरु ज्ञान शोभा प्रगट करी ऐसे तपज्ञान भण्डार यति, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ इन मासन के घामनि करि सूखि गए हैं नदी सरोवर के नीर, अरु वन के वृक्षन के पत्ता अरु कूप बावड़ीन के जल नीचे बैठि गए और पृथ्वी, पर्वत, अग्निवत् तप चलै। वन बाग शोभा रहित होय गये। ऐसे दुर्धर (घोर) घामन मैं अनेक वनचर जीव अपने-अपने स्थानन मैं गमन तजि तिष्ठ रहे। केईक पशु वृक्षन की छाया में तिष्ठ रहै हैं। मार्ग चलनहारे पंथीजन मनुष्य, सो भी मार्ग तजि बैठि रहे हैं। ऐसे घामन विषैं योगीश्वर, पर्वतन के शिखरन पै, शिलान पै समता सुधारस पीवने हारे। सुखतैं अडोलशरीर करि तिष्ठते, नहीं है परिणति मैं खेद जिनकै, ऐसे यतीश्वर सो उष्ण परीषह विजयी साधु कहिए। ४। वर्षाकाल विषैं वर्षा का निमित्त पाय, वृक्षन के नीचे डांस, मशक, बिच्छू, कानखजूरे आदिक दुःख के उपजावनहारे जीव, मुनि के तनकूं उपद्रव करैं है। तिन यतीन कै तनकौं काटै हैं। तनकैं लिपटैं हैं। तिन बाधा के आगे, जगत् का पीर हर दया भण्डार तनकौं

नहां हिलावै हैं। ऐसा विचारै है जो मेरा तन चञ्चल भया तौ ए हीन शक्ति के धारी दीन जीव भय पावैंगे तथा दीन जीवन की घात होय तौ हिंसा का दोष उपजेगा, ऐसा जानि तिन दीन जीवन की रक्षा कूं धीर-वीर अपनी काय निश्चल करि बाधा सहता कायर भाव नहीं करैं, सो दंशमशक परीषह विजयी साधु कहिए।५। जे गृहस्थ अवस्था मैं आप चक्री, कामदेव मराडलेश्वर, महामराडलेश्वरादि बड़े पदधारी राज-सम्पदा मैं, तन में अनेक श्रृङ्गार करते तनक भी शरीर उघड़ता तौ लज्जाकौं धरते अपने तन की शोभा आपही देखि-देखि देवन का रूप अल्प मानते महाभोगी शरीर के अङ्ग-उपाङ्ग उघाड़तै शंका करते सो ही अब संसार की दशा विनाशीक जानि सर्व राज-सम्पदा चपला-सी चपल जानि तातैं ममत्व छोड़ि नग्न अवस्था धारि निशंक निर्विकार पद धरि जगत् शंकाकूं छोड़ि नग्न पद धारते भए। सो नगन परीषह विजयी साधु कहिए। ६। और जे वीतरागी इन्द्रियनकौं अनेक अनिष्ट सामग्री मिलै भी चित्त अरति रूपी नहीं करैं, सो अरति परीषह विजयी साधु कहिये। ७। जो निर्विकार यति, देवाङ्गना, मनुष्यनी, तिर्यञ्चनी, काष्ठ-पाषाण-चित्राम की सुन्दर पुत्तलिकायें ए चेतन-अचेतन च्यारि प्रकार की स्त्रीन का निमित्त मिलै राग-द्वेष नहीं करैं। तहां कोई देवांगना तथा विद्याधरी आय यतिपै अनेक हाव-भाव विनय मन्दहास्य नेत्रनतैं सरागता बताय यतिकौं विकार उपजावे तौ भी यह ज्ञान-सम्पदा का धारी सुमति रूपी सखी करि जान्या है मोक्ष स्त्री का स्वरूप अरु सुख तिननैं सो यती मोक्ष स्त्री अनुरागी इन च्यारि जाति स्त्रीन के शुभाशुभ देखि राग-द्वेष नहीं करैं सो स्त्री परीषह विजयी साधु कहिये। ८। और राज अवस्था मैं जे रथ, पालकी घोटकादि की सवारी करते पांवन कबहूं नहीं चलते सो अब वही सुकुमाल सत्संग के निमित्त पाय सर्व सम्पदा विनाशिक जानि सर्व बाहन की सवारी तजि नगन अवस्था धरि एकाएक वनविषैं पगप्यादे फिरै हैं सो विहार करतैं कोमल पावन मैं कंटक तिनका पाषाण खराड कठिन धरती चुभती भई। ताकरि पावन में रुधिर धारा चलती भई। ताकरि भी यति समता रस का भस्मा धीर वीर साहसी संयम का लोभी खेद नहीं लेता भया। सो चर्या परीषह विजयी साधु कहिये।९। और मुनि गुफा मशान मण्डप वृक्ष के कोटर वनादिक मैं तिष्ठैं आसन करैं वहां आगे पीछे विचारैं जो यहां गुफादि में सिंहादिक जीवन कै खोजि बिल मालूम होय है। तौ इस स्थान में तो नाहीं रहे ? यह स्थान आगे काहू जीव करि रोक्या गयो तो नाहीं ? कदाचित्

कोऊ देवादिक के क्रीड़ा का स्थान न होय और कोऊ स्थान में काहू का ममत्व भाव होय ऐसे स्थानन में यति नहीं रहै ऐसे अनेक विचार सहित निर्दोष स्थान तामैं काहू का ममत्व नांहीं ऐसे स्थान में स्थिति करि तिष्ठैं अरु तिष्ठैं पाछे कोई देव विद्याधर सिंहादिक दुष्ट जीव उपद्रव करि स्थानतैं यति कौं चलाया चाहें तौ यति महाधीरज का धारी शूर-वीर साहसी समता रस का स्वादी सकल परीषह सहै परन्तु आसन नहीं तजै सो जगत् गुरु आसन परीषह विजयी कहिये। २०। और मुनिनाथ निशि दिन ध्यान अध्ययन में बितावैं प्रमादवशी नहीं होंय। कदाचित् प्रमाद वसाय निद्रा-कर्म का उदय होय ही तौ पिछली रैनि (रात्रि) तुच्छ निद्रा करि प्रमाद खोवैं। सो भी सोवैं तो महाविकटासन सोवैं। तिन आसन के नाम बताइये हैं। गौदूहन आसन, वीरासन, धनुष्कासन, वज्रासन, मडासन इन आदि अनेक आसन हैं। अब इनका अर्थ कहिये है। तहां जैसे—गैया के दूहनकौं ग्वाल बैठे। ऐसे प्रमाद खोवनेकूं तिष्ठैं सो गो-दूहन आसन है और तहां जैसे—लौकिक में भोरे जीवन नैं हनुमान का स्थापन किया है, सो वीरासन है। जैसे—शूर-वीर लड़वेकूं ठाड़ो होय यति प्रमाद शत्रु तैं लड़वेकूं वीरासन करै तथा जैसे—लौकिक में घनुष बांका होय है तैसे यतीश्वर तनकूं बांका भूमि मैं डारि शयन करैं, सो घनुष्कासन है और जैसे बज्र दण्ड भूमि डारिये तब सरल सूदा पड़ा रहै। तैसे यति सरल तन करि अंगोपांग सोवैं, सो बज्रासन है तथा जैसे मसान भूमिमैं डरऱ्या मुर्दा का तन चेतना रहित अडोल पड़ा होय। तैसे यति मसान भूम्यादिमैं सर्व श्वासोच्छ्वास मैंटि शरीरकूं काम गुप्ति के योगतैं लम्बा कर तिष्ठै, सो मडासन है। इन आदि क्रियादि करि प्रमाद कौं खोय ध्यान अध्ययन मैं स्थिर रहै, सो शयनासन परीषह विजयी कहिये।२१। और जे दुष्ट नर योगीश्वर कौं देखि दुर्वचन कहैं हैं कोई कहै चोर है, कोई कहैं ठग है, कोऊ कहैं पाखण्डी है। कोऊ कहैं दीन है, कोऊ कहैं रंक है। कोऊ कहैं कमाऊ है और केई कहैं राज लक्षण नाहीं तातैं राज तजि उदर भरवेकूं मुनि भया है। इत्यादिक दुष्ट अज्ञानी जीव वचन रूपी बाणन करि मुनिकूं पीड़ा का निमित्त मिलावैं हैं तौ भी योगीश्वर समता रस का भरऱ्या भली भावना भावनेहारा वीतरागी कोई के वचन रूपी बाण अपनी समता रूपी ढाल करि अपने लागनै नहीं देय और परिणाम निर्दोष राखै, सो दुर्वचन परीषह विजयी साधु कहिए। २२। और कोई पापीजन निर्दोष वीतराग मुनिकुं मारैं हैं। बांधैं हैं केई अग्नितैं जलावैं हैं। इत्यादिक

उपद्रव करैं हैं। तौ भी करुणाभावी समता सागर जगत् का पीर हर कोई तं द्वेष-भाव नहीं करै। जो कोई निर्दयी पुरुष मुनिकों लात मुक्कीतैं मारैं। तब योगीश्वर ऐसा विचारैं जो मोतैं याका कछु अपराध बना है तातैं यह मारै है। यह कोई दयावान है। तातैं मोकूं लकड़ी तैं तो नहीं मारै है। तनतैं ही देय है। कोऊ कठोर चित्तधारी मुनिकूं लाठी लकड़ी तैं मारै तौ ऐसे विचारैं जो कोई शस्त्र तौ नहीं मारै है और कोऊ पापात्मा शस्त्र ही मारै तौ यति ऐसा विचारैं जो मैं चेतना अमूर्तिक मेरा तो घात है नांहीं। मैं इस तन बन्धन बन्दीगृह में रुका हौं। सो यह उपकारी मोकूं करुणा करि तन बन्दी गृह तैं छुड़ावै है ऐसा विचारैं समता रस का धारी आपमैं दोष जाने पर तैं द्वेष-भाव नहीं करै सो बधबन्धन परीषह विजयी साधु कहिये। २३। जो मुनीश्वर तप भण्डार अनेक उपवासन के पारणे नगर मैं भोजनकौं जांय तहां अन्तराय होय तौ पीछे वनकौं जांय ध्यान अध्ययन करैं। दूसरे दिन फिर जांय तब अन्तराय होय ऐसे अनेक उपवासन के पारणे मुनिकौं ऊपरा ऊपरि अन्तराय होय तौ भी ज्ञाना मृतपानपुष्ट यति तनतैं निस्पृह क्षुधा के योगतैं याचना नहीं करैं। ध्यानमूर्तिक चारित्रभण्डार अपनी संयम प्रतिज्ञा का लोभी अपनी अयाची वृत्ति मलिन नहीं करै सो अयाचना परीषह विजयी साधु कहिए।२४। मुनीश्वर के भोजनकौं नगर मैं भ्रमतैं अन्तराय होय तथा काहूनैं पड़गाहा नाहीं। ऐसे बहुत दिन भए होंय भोजन का लाभ नहीं होय तौ परम योगी तन का त्यागी। सन्यासी गुरुकौं खेद नाही होय तो यतीश्वर पुद्गलीक तनकूं जुदा जानि उपचार नाहीं करैं सो रोग परीषह साधु कहिए। २५। राज अवस्था में गलीचा गदेलादिक (गद्दादि) अनेक कोमल बिछौना पै पांव धरैं सो ही जीव जग का विभव विनाशिक जानि सब विषय सामग्री विषवत् जानि करि जगत् पूज्य यतिपदकौं धारि एकाकी कठिन धरती पै चलै सो कोमल पांवन लगैं जो तीक्ष्ण कांटे, पाषाण-खण्ड, काष्ठ-खण्ड, तिनकादिक तिनकरि पांव फटि गए सो पांवनतैं श्रोणित की धारा चलो तौ भी यति ईर्या-समिति धारक चित्त विषैं कायर नाहीं होय, सो तृणस्पर्श परिषह विजयी साधु कहिए। २६। जे राज अवस्था मैं अनेक सुगन्ध लेप, चन्दन अरगजा अतर खुशबू केशर कस्तूरी आदि अनेक सुगन्ध लेप करि गमन होते, सो ही अब सर्व दशा संसारिक की विनाशिक जानि तनतैं ममत्व भाव छोड़ि, डारी है तन की शोभा जिनने। तिनका सर्व तन मांस सूख गया। नशा जाल रह गया। यावज्जीवन स्नान का त्यागी, तप करै तनपै

मैलि पुञ्ज जमि चल्या। सो बाह्य मैलि करि शरीरतैं वास चलने लगी है। तो भी नासिका इन्द्रिय का वशीभूत करनेहारा ग्लानिचित्त नाहीं करै। ताको मल परिषह विजय कहिए।२७। यहां मल के दोय भेद हैं। एक द्रव्य-मल एक भाव-मल। तहां द्रव्य-मल के भेद दोय हैं। एक बाह्य-द्रव्य-मल। एक अन्तरङ्ग-द्रव्य-मल। सो कीच, कांदो पसेवतैं रज का जमना ए तौ बाह्य-द्रव्य-मल है। ज्ञानावरणादिक द्रव्य कर्म का आत्माकें लेप सो अन्तरङ्ग-द्रव्य-मल है और राग-द्वेष भाव पाप परिणति ए भाव मल है। ऐसे कहे जो मल तिनमैं भाव-मल का त्यागी, अन्तरङ्ग पवित्र है आत्मा तिनकी, सो अति महानिर्मल है और द्रव्य-मलतैं समभावो यति सो मल परीषह विजयी साधु कहिए।२८। राज अवस्था मैं आप चक्री थे तथा कामदेव तथा विद्याधर मण्डलेश्वर महामण्डलेश्वर इन आदि बड़े वंश के राजा थे, सो मान के अर्थ अनेक युद्ध करते। अनादर भए दण्ड देते अपना अमल (हुक्म) सर्व पर चलावते। सो ही अब संसार दशा चञ्चल जानि, राजभार तजि नगन होय, वनवासी भए। सो अब वैराग्य के बल करि कषाय जीती, सो ऐसे जगत्गुरु वीतरागी को कोई मन्दभागी अज्ञानी आव-आदर नहीं करैं नमस्कार वन्दना नहीं करैं ताजीम नहीं करैं तौ वीतरागी सर्व का बन्धु काहू तैं रोष भाव नहीं करै सो सत्कार पुरस्कार परीषह विजयी साधु कहिए। २९। जे जगत् गुरु नाना प्रकार तप भण्डार अनेक चारित्र गुण के धारी वीतरागीकौं, कोई ज्ञानावरणी-कर्म के क्षयोपशमतैं तथा उदयतैं ज्ञान की बढ़वारी नहीं होय तो यतिनाथ और मुनीश्वरकौं अनेक शास्त्रन के पाठी विशेष ज्ञानी देखि ऐसे नहीं विचारैं। जो मैं बड़ा तपसी बड़ी उम्र का हूं भले पद का धारी, सो मेरी विशेष बुद्धि नाहीं मोकौं कोई कहा कहेगा? ऐसा विचार नहीं करै, सो प्रज्ञा परीषह विजयी साधु कहिए। २०। यतिकौं तपस्या करते, चारित्र पालते, बहुत दिन भए होंय, अरु कर्म योगतैं कोई अवधि मनःपर्यय केवलज्ञान नहां भया होय तौ योगीश्वर अपना चित्त धर्मतैं तथा चारित्र तैं अरुचि-भाव नहीं करैं हैं। सो साधु अज्ञान परीषह विजयी कहिए। २१। मुनिकौं तप करते चारित्र पालते बहुत दिन होंय अरु तप बलतैं कोई ऋद्धि नहीं उपजी होय तथा कोई निमित्त ज्ञानादिक अतिशय नहीं देख्या होय, तौ ऐसा नहीं विचारै जो आगे शास्त्र मैं ऐसी सुनी थी जो तप के बलतैं अनेक ऋद्धि होय हैं। सो हमकौ कछु प्रगट नहीं भयी। सो न जानै शास्त्र भाषित सत्य है तथा असत्य है। ऐसा सन्देह रूप मिथ्यामयी विकल्प नहीं

करैं, सो अदर्शन परीषह विजयी साधु कहिए।२२। ऐसे बाईस परीषह सहनेकौं धीर सो ही जगत् का गुरु है। सो ही गुरु सम्यग्दृष्टिन करि पूज्य है। सो ही गुरु जानना। सो ऐसे मुनीश्वरन के भेद दश है। सो ही कहिए—

गाथा—सूरोप वज्झाय तपसी, सिसिगलांणगण कुलय संजाती। साहू मणोगय दहदा, जोई भेयाण जिणसुते भासई॥ २६॥

अर्थ—आचार्य, उपाध्याय, तपसी, शिक्ष्य, ग्लान, गण, कुल, संघ, साधु, मनोज्ञ। ए मुनि जाति के दश भेद हैं। तहाँ प्रथम आचार्य का स्वरूप कहिये है।

गाथा—दहधम्मो तप वारह आवसि सड़ पण्णाचार तीए गुत्ती। इण छत्तीस गुण जुत्तो, सूरो जगपूज्ज होई मुणणाहो॥ २७॥

अर्थ—धर्म दश भेद, बारह भेद तप, षट् भेद आवश्यक, पंचभेद आचार, गुप्ति भेद तीन—ऐसे ए सर्व छत्तीस गुण आचार्यजी के हैं। तहाँ प्रथम ही दशधर्म भेद कहिये है—

गाथा—सार खमा मादव्वो, आज्जव सच्च सौचधर्म्म संज्जाए। तप तागो अहकंचो, वंभचज्जाय धम्म दह भेवो॥ २८॥

अर्थ—उत्तमक्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्य—ए दश प्रकार धर्म हैं। तहां प्रथम ही उत्तमक्षमा का लक्षण कहिए है। तहां आप समान पद के धारी जीवन का शुभाशुभ चारित्र देखि क्षमा करनी सो क्षमा है। आपके पदतैं हीन शशि के धारी तथा चौइन्द्रिय, तेन्द्रिय, बेन्द्रिय, एकेन्द्रिय आदि ए महा हीन शक्ति के धारी तिनतैं समता भाव क्रोध नहीं करना सो उत्तम क्षमा है। इहां प्रश्न, जो पंचेन्द्रिय आदि आप समान पदधारी तौ कोपादि कषाय करैं हैं सो इन तैं द्वेष-भाव नहीं करना सो तौ क्षमा जानिए है और एकेन्द्रिय जीवन पर्यन्त जीवन कैं तौ कोई कैं कोप करने की शक्ति नाहीं इनतैं क्षमा कैसे करैं ? इनतैं क्षमा करनी सो उत्तम क्षमा कैसे कही, सो कहौ। ताका समाधान। भो भव्य ! तूं चित्त देय सुनि। जो आप समान पदस्थधारी जीवन तैं तो कोप का कारण, इनकी हिंसा का निमित्त तौ अल्प समय पाय परै है। अरु एकेन्द्रिय विकलत्रय की हिंसा का निमित्त बारम्बार बहुत मिलै है। ताही तैं श्रावककैं स्थावर हिंसा नहीं बचै है। इनकी हिंसा महाव्रती यति तैं बचै है। सो तू सुनि वनस्पति तोड़ना, तुड़ावना, खावना, मसलना, चालते खूंदना, सुखावना, छीलना, छीलवाना, सूंघना इत्यादिक मिटै तब वनस्पति एकेन्द्रिय की हिंसा नहीं लागै और कच्चे जल का छीवना, ऊलातपावना, स्नान करना, धोवना, धुवावना, पीना और कौं प्यावना इत्यादि जल का कार्य छूटै, तब जल काय

स्थावरन की हिंसा छूटै और अग्नि का बारना, कहिकैं जलवाना, छीवना, दावना, प्रगट करना, दीपक करना, करावना, याकी प्रभा मैं तिष्ठना इत्यादिक अग्नि के आरम्भ छूटै है और पवन पंखेतैं लेना, कपड़ा हलावना, कूदना, हाथन तैं तारी बजावना, फूकैं देना, वस्तु पटकना इत्यादि पवन घात के कार्य छूटें तब पवन कायकन की हिंसा छूटै और पृथ्वी का खुदावना, खोदना, झाड़ना, छीवना, फोड़ना, फड़ावना इत्यादिक पृथ्वी काय के कार्य छूटैं। तब पृथ्वी एकेन्द्रिय की हिंसा छूटै है। इत्यादि पंच स्थावरन की हिंसा कही। विकलत्रय की हिंसा तब टरै। जब जतनतैं चलै, जतनतै बैठे, जतनतैं सोवे, जतनतैं बोलैं, जतनतैं खाय, जतनतैं वस्तु धरती पै धरै, जतनतैं उठावै, खाजि चलै तौ नहीं खुजावै, अन्न मेवा जे वस्तु खावे योग्य होय सो खाय अयोग्य नहीं खाय। अन्न, तेल, घी मेवादिक किरानादिक वस्तु नहीं बेचै, नहीं लेय इत्यादिक जे कार्य एकेन्द्रिय के आरम्भ घात निमित्त बहुत हैं। तातैं जो इनकी रक्षा रूप वर्तना सो उत्तम क्षमा जानना। सो ए कहे जेते कार्य्य सो सर्व ही सर्व प्रकार यति महाव्रती कैं पालै हैं। गृहस्थ कैं नाहीं तातैं याका नाम उत्तम क्षमा कह्या है।१। और अष्ट प्रकार मद का त्याग सो मार्दव-धर्म है। २। और भावन मैं दगावाजी का त्याग और बाह्याभ्यन्तर एक-सी मन काय की क्रिया सरल भाव कुटिलता रहित परिणाम सो आर्जव-धर्म है। ३। और मन-वचन-कायकर असत्य का त्याग जिन-आज्ञा प्रमाण हित-मित बोलना सो सत्य-धर्म है। ता सत्य वचन के दश भेद हैं सो कहिए है—

गाथा—जणवद संवदिठवणा, णाम सत्तोय रूपी पत्तीतो। ववहारण संभावण, भावउपमाए सत्यदह भेवो ॥ २९ ॥

अर्थ—जनपद-सत्य, संवृत्ति-सत्य, स्थापना-सत्य, नाम-सत्य, रूप-सत्य, प्रतीत-सत्य, व्यवहार-सत्य, संभावना-सत्य, भाव-सत्य, उपमा-सत्य—ए दश। इनका अर्थ—तहां जिस देश विषैं जिस वस्तु का जो नाम होय ताको तैसेही कहना जैसे—कर्नाटक देश में उड़दन का नाम भूतिया कहै हैं। सो वह देश प्रमाण है। याका नाम जनपद-सत्य कहिए।१। बहुरि जाको वहु जीव मानैं ताकौं तैसा ही कहिए। जैसे—काहू निर्धन पुरुष का नाम लक्ष्मीधर हैं। ताको सर्व देश नगर के लोक लक्ष्मीधर ही कहैं हैं। याका नाम संवृत्ति-सत्य है। २। और जहां काहू राजा की छवि काहूनै काष्ठ पाषाण चित्राम की करी है। सो वा छवि कूं राजा कहना जो यह फलाने राजा की छवि है ऐसा कहना याका नाम स्थापना-सत्य है। ३। जिसका नाम लोक में प्रसिद्ध होय तिस वस्तुकूं ताही नाम

लिए सब जानै। जैसे—काहू देश के पुरुष का नाम बाबा है। तिसकूं सर्व देश नगर बाबा ही कहे। सो याका नाम ठाम (स्थान) पूछिए तो बाबा के नामतें मिलै तातैं बाबा कहना याका नाम सत्य है। ४। और शरीर के वर्ण की अपेक्षा करि कहना जो यह काला है, लाल है इत्यादिक कहना सो रूप-सत्य है। ५। और वर्तमान काल में वस्तुकौं छोटी बड़ी कहना जो बड़ी की अपेक्षा ये छोटी है। छोटी की अपेक्षा यह वस्तु बड़ी है। ऐसा कहना सो प्रतीति-सत्य है। ६। और नैगमनय करि वचन बोलिए सो व्यवहार-सत्य है। जैसे—कोई कमर बांध घरतैं बिदा होय परदेशकूं गया। अरु वाके घर कोऊ तब ही पूछे, जो फलाना कहां है तब वाके घरवाले कहैं, वह तौ फलाना देश गया। सो तुरन्त तौ ग्राम बाहिर भी निकस्या नहीं होयगा देश गया कैसे कहैं हैं। तौ इन घरवालों की तरफतैं गया ही कहिए, सो व्यवहार-सत्य है। ७। इन्द्र विषैं ऐसा बल है जो चाहे तौ पृथ्वीकौं उठाय लेय। सो पृथ्वी तौ अनादि ध्रुव है। काहूनै उठाई नाहीं; परन्तु इन्द्र मैं ऐसी शक्ति जाननी। सो शक्ति अपेक्षा कहिए, सो सम्भावना-सत्य है।८। सिद्धान्त शास्त्र के अनुसार अमूर्तिक पदार्थन का श्रद्धान। जैसे—धर्म-अधर्म द्रव्य लोक प्रमाण हैं तथा जल की बूंद में असंख्याते जीव हैं। परन्तु प्रत्यक्ष नाहीं। जिन प्रमाण हैं, सो सत्य है। याका नाम भाव-सत्य है। ९। कोई वस्तु की कोई वस्तुकूं अपेक्षा देनी। जैसे—यह राजा कल्प वृक्ष सो वृक्ष नाहीं मनुष्य ही है; परन्तु वांच्छित दान देय है। ताकी अपेक्षा लेय कल्प वृक्ष कह्या याका नाम उपमा-सत्य है। १०। ऐसे कहे जो सत्य के दश भेद सो नय प्रमाण ए दश ही सत्य हैं। तातैं जो इन दश भेद वचननकौं बोलैं सो सत्य है। १। पर वस्तु का सर्व प्रकार त्याग सो शौच-धर्म है। २। पंचेन्द्रिय और मन का वश करना सो इन्द्रिय-संयम है और षट् कायक जीवन की दया रूप प्रवर्तना सो प्राण-संयम है। ऐसे दोय भेद रूप संयम-धर्म है। ३। बाह्य आभ्यन्तर करि तप भेद बारह हैं। सो तप करना सो तप-धर्म है। ४। मन-वच-कायतैं पर वस्तु के ममत्व भाव का त्याग, सो तथा तन, धन, कुटुम्बादि का त्याग सो त्याग-धर्म है।५। बाह्य आभ्यन्तर दोय प्रकार परिग्रह का त्याग सो आकिंचन्य-धर्म है।६। चेतन अचेतन स्त्री का भोग अभिलाष का त्याग सो ब्रह्मचर्य-धर्म है। सो आगे या ब्रह्मचर्य के दश अतीचार हैं सो कहिए हैं। शील व्रत का धारी शरीरकौं श्रृङ्गार सुगन्ध लेपन नहीं करै। धोवना, पोंछना, स्नानादि तन की शुश्रूषा नहीं करनी। इत्यादि कहे

कार्य तौ व्रतकौं दोष लागै। ९। और पेट भर भोजन करै, गरिष्ठ भोजन करै, वेश्यादिक के गीतनाद नृत्य सुनै शीलवान पुरुष स्त्री का निमित्त करै। शीलवान स्त्री पुरुष का निमित्त मिलावै, गृहस्थ अवस्था के इन्द्रिय जनित भोग सुख रूप जानि तिनकौं विचारै, आपने तथा स्त्री के अङ्गोपाङ्ग निरख राग-द्वेष करै स्त्रीन के आव आदर शुश्रूषा सत्कार बहुत करना सो शील को दोष है पूरव भोगे जो सुख इन्द्रिय जनित तिनकौ बार-बार विचारै स्त्री के मिलापकौं बार-बार आरति करना चाहना वीर रज के खेरवे का जैसे-तैसे उपाय करना ये दश अतीचार शील के सो शील-धर्म को मलिन करे हैं। तातैं ब्रह्मचर्य व्रत का धारी ए दश दोष नहीं लगाय कै अपना ब्रह्मचर्य व्रत निर्दोष राखे हैं। याका नाम ब्रह्मचर्य-धर्म है। इति दश धर्म। तप बारह इनका स्वरूप आगे कहेंगे। आवश्यक षट् और गुप्ति तीन इनका स्वरूप आगे कह आये। पंचाचार का स्वरूप आचार सारजी से जानना ऐसे धर्म दश, तप बारह, आवश्यक षट् पंचाचार ५, गुप्ति तीन इन छत्तीस गुण सहित आचार्य मुनि के भेद हैं।

इति श्री सुदृष्टितरंगिणी नाम ग्रन्थ मध्ये अष्टाविंशति यति का धर्म तेरह प्रकार चारित्र रत्नत्रय बावीश परीषह कथन दशभेद सत्य अतीचार शील के दश छत्तीस गुण आचार्य वर्णनो नाम पर्व पूर्णम् ॥ ९ ॥

आगे पच्चीस गुण सहित उपाध्याय का स्वरूप कहिये है।

गाथा—अङ्ग एकादह जुत्तो चउदह पुव्वाय णाण संजुत्तो सो उवझाओ अप्पा, गुणवीसाय पण सहिओ ॥ ३० ॥

अर्थ—ग्यारह अङ्ग चौदहपूर्व उपाध्यायजी के ए पच्चीस गुण हैं। सो ही संक्षेप मात्र कहिये हैं। आचारांग, सूत्रांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्तयांग, ज्ञातृकथांग, उपासकाध्ययनांग, अन्तकृतदशांग, अनुत्तरोपपाद-दशांग, प्रश्नव्यांकरणांग, विपाकसूत्रांग—ए ग्यारह अङ्ग है। अब इनका अर्थ सो जिस-जिस अङ्ग में जो कथन है ताकी मुख्यता लेयकैं सामान्य भाव इहां कहिये हैं। तहां प्रथम ही गणधर देव नैं प्रश्न किये। जो हे प्रभो! कैसे खाईए? कैसे बोलिये? कैसे चालिये? कैसे बैठिये इत्यादिक क्रिया तौ कीजै अरु पाप नहीं लागै सो मार्ग बताइये जिस करि जीवन का कल्याण होय। ऐसा प्रश्न होतै जिन देव ऐसा उत्तर करते भए। जो यतनतैं खाईए। यतनतैं चालिए, यतनतैं बोलिए, यतनतैं बैठिये। इत्यादिक जो क्रिया करिए सो यत्नतैं करिये तो पाप नहीं लागै। यति के आचार का कथन जहां चलै सो आचारांग नाम अंग है। इसके अठारह हजार पद हैं। १।

आगे जहां देव धर्म गुरु का विनय ऐसे कीजिए। ऐसे विनयतैं देव की पूजा कीजै। विनयतैं शास्त्रन का वांचना, सुनना, धरना, राखना, गुरुकौं वन्दना करनी, पूजा करनी, सो विनयतैं करनी। ऐसे विनय का कथन तथा अपना मत पर के मतन की क्रिया स्वभाव प्रवृत्ति आदि कथन होय सो दूसरा सूत्रांग कहिए याके छत्तीस हजार पद हैं। २। आगे जीवस्थान के एक भेदकौं आदि एक-एक जीव समास बधावते (बढ़ावते) च्यारि सौ षट् स्थान आदि जीव के स्थान का कथन होय जामैं सो तीसरा स्थानांग है। याके बियालीस हजार पद हैं। ३। आगे जहां द्रव्य क्षेत्र काल भाव करि सम ही सम का जामैं कथन होय। जैसे—धर्म, अधर्म द्रव्य लोकाकाश सम हैं तथा सब सिद्ध राशि सम है। इत्यादिक तौ द्रव्य सम हैं क्षेत्र-करि प्रथम नारक का प्रथम पाथरे का प्रथम इन्द्रकविल पैंतालीस लाख योजन प्रमाण है और अढ़ाई द्वीप पैंतालीस लाख योजन है और प्रथम स्वर्ग का प्रथम इन्द्रक रुचिक नाम सो पैंतालीस लाख योजन है और मोक्ष शिला पैंतालीस लाख योजन है और सिद्धन के विराजिवे का सिद्धक्षेत्र पैंतालीस लाख योजन है। ये पंच पैंताले हैं सो क्षेत्रसम हैं तथा जम्बूद्वीप सर्वार्थसिद्धि विमान सातमैं नरक का इन्द्रक विल नन्दीश्वर द्वीप की वापिका ये चार एक लाख योजन क्षेत्र प्रमाण हैं। तातैं क्षेत्र सम कहिये इत्यादिक क्षेत्र समान जानना। आगे समयतैं समय सम है उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी दोऊ का दस-दस कोड़ाकोड़ी सागर काल है, तातैं सम हैं। इत्यादिक काल सम के भेद हैं। केवलज्ञान, केवलदर्शन ए दोऊ भाव सम हैं। इत्यादिक भाव सम हैं। ऐसे सम ही सम का व्याख्यान जामैं होय सो समवायांग है। याके एक लाख चौंसठि हजार (१६४०००) पद हैं। ४। आगे जहां गणधर देव ने प्रश्न किए। भो भगवान्! ये वस्तु अस्ति हैं अथवा नास्ति हैं? अरु जीव एक है या अनेक हैं। जीव सादि है कि अनादि है? इत्यादि साठ हजार प्रश्न किए। तहाँ उत्तर कि वस्तु द्रव्य की अपेक्षा सदैव अस्ति है, द्रव्य वस्तु का नाश कबहूं होता नाहीं और वस्तु पर्याय की अपेक्षा नास्ति है। जितनी पर्यायें उपजैं हैं सो निश्चय करि नाश हो हैं सो जीव अनन्त है और नाम अपेक्षा तो एक है कि यह जीव द्रव्य है। जैसे—बहुत रतन की राशि है सो नय अपेक्षा तौ रतन राशि एक। अरु पर्याय गुण सत्ता की अपेक्षा रतन भिन्न-भिन्न अपनी कीमत लिए हैं। केई रतन उत्कृष्ट

हैं, केई मध्यम हैं, केई हीन हैं, झूठे हैं। तैसे ही जीव भी पर्याय सत गुणतैं जुदे भिन्न-भिन्न हैं, केई सिद्ध हैं, केई संसारी हैं। तामें भी केई भव्य हैं, केई अभव्य हैं। ऐसे अपने कर्म उपार्जन प्रमाण फलरूप हैं और जीव द्रव्य अपेक्षा अनादि है। पर्याय अपेक्षा सादि हैं। इत्यादि अनेक उत्तर करते भए। ऐसा कथन जामें चलै सो व्याख्याप्रज्ञप्ति अंग है। याके २,२८,००० पद हैं जहां समोशरण कथन तथा दिव्य-ध्वनि खिरवे का कथन तथा तीर्थङ्करन के अतिशयन का कथन इत्यादिक कथन जामैं होय सो ज्ञातृ-कथा छठा अंग है। याके पांच लाख छप्पन हजार पद हैं। ६। आगे श्रावक आचार ग्यारह प्रतिमादि जामैं श्रावककौं धर्म कर्म रूप कैसे प्रवर्तना इत्यादिक कथन जामैं होय सो उपासकाध्ययन सातवां अंग है। याके ११ लाख सत्तर हजार पद हैं।७। एक-एक तीर्थङ्कर के समय में दश-दश मुनीश्वरों ने आयु के अन्त समय केवलज्ञान पाया तिनकूं अन्तकृत केवली कहिए। तिनका कथन जहां चलै सो अन्तकृत दशांग है याके २३,२८००० पद हैं।८। एक-एक तीर्थङ्कर के समय में दश-दश मुनीश्वर अति उपसर्ग सहकैं अहमिन्द्र भए। तिनका कथन जहां चलैं सो अनुत्तरोपपाददशांग है। याके ९२,४४००० पद हैं।९। जहां होनहार त्रिकाल सम्बन्धी होय सो बतावैं। मुठी वस्तु राखि पूछै तौ बतावैं। इत्यादिक जो प्रश्न करै सो ही बतावैं याका नाम प्रश्न-व्याकरण अंग है। याके ९२,१६,००० पद हैं।१०। जहां कर्म का उदय भया तब शुभाशुभ रस जिस-जिस तरह जीव ने उपार्जे अरु वे जिस-जिस तरह उदय होय। ऐसा कथन जामैं होय सो विपाकसूत्र नामा अंग है। याके १८४,००००० पद हैं।११। ऐसे ग्यारह अंग का ज्ञान उपाध्यायजीकूं होय और चौदह पूर्व का स्वरूप नाम लिखिये है। तहां उत्पाद पूर्व, अग्रायणी पूर्व, वीर्यानुवाद, अस्तिनास्ति, ज्ञानप्रवाद, सत्यप्रवाद, आत्मप्रवाद, कर्मप्रवाद, प्रत्याख्यान, विद्यानुवादपूर्व, कल्याणप्रवाद, प्राणवाद, क्रियाविशालपूर्व, त्रिलोक-बिन्दुपूर्व—ए चौदह पूर्व के नाम हैं। अब इनका अर्थ—ताका रहस्य लेय सामान्य अर्थ दिखाईए है। तहां व्यय ध्रुव उत्पाद का लक्षणकौं लिए षट् द्रव्यादि वस्तुन का परिणमन है। जहां इन व्यय ध्रुव उत्पाद का लक्षण होय, सो उत्पाद पूर्व है। याके एक कोड़ि पद हैं। जहां वस्तु कहा, पदार्थ कहा, द्रव्य कहा, सुनय कहा, कुनय कहा इत्यादिक व्याख्यान जामैं होय सो आग्रायणी पूर्व है। याके छयानवै लाख पद हैं। जामैं वीर्य का

कथन जो आत्म-वीर्य कहा, भाव-वीर्य कहा इत्यादि वीर्य का कथन जहां होय तहां सामान्य भाव जो चेतना-शक्ति सहित अनन्त पदार्थन मैं प्रवर्तते खेद नहीं होय सो ही अनन्त-वीर्यरूप आतमा का परिणमन सो काल-वीर्य जानना और अनन्त पदार्थ जीव अजीवनकौं अवगाहना देने की शक्ति सो क्षेत्र का वीर्य है और इस लोक मैं तिष्ठते द्रव्य जीवाजीवरूप षट् द्रव्य तिनका तीन काल सम्बन्धी शुभाशुभ परिणामन जानने रूप केवलज्ञान सो भाव-वीर्य है। इत्यादिक वीर्य का ही व्याख्यान जामैं होय सो वीर्यानुवाद-पूर्व है। याके सत्तरि लाख पद हैं और जीव-अजीवादि द्रव्य के स्वभाव अस्तिनास्ति रूप काल क्षण आदि जामैं कथन होय सो अस्तिनास्ति-पूर्व है। याके साठि लाख पद हैं और जहां आठ ज्ञान का लक्षण कहा ज्ञान का फल कहा। ज्ञान का विषय कहा। इत्यादिक कथन जामैं होय सो ज्ञानप्रवाद-पूर्व है। याके एक घाटि एक कोड़ि पद हैं और जहां नाना प्रकार वचन बोलने के भेद। ए वचन सत्य हैं। ए असत्य हैं। ऐसे निर्धार करता नय प्रमाण लिए कथन जामैं होय सो सत्यप्रवाद नाम पूर्व है। याके एक कोड़ि षट् पद हैं। जहां आत्मा की स्तुति बनायवे का तथा निश्चय व्यवहार रूप नयन करि आत्म-स्वभाव का साधना सो आत्मप्रवाद-पूर्व है। याके छत्तीस कोड़ पद हैं और तहाँ आठ मूल-कर्म के उत्तर भेद एकसौ अड़तालीस तिनका स्वरूप बन्धरूप जो आतमा अमूर्तिक ए कर्म कैसे बांधै सो बंधे पीछे जेते काल आवाधा पूरण न होय उदय नहीं आवै सो सत्त्व है। आवाधा पूरण भए उदय होय सो अपना रस कर्म प्रगट करि जीवकूं सुखी-दुखी करै सो उदय, ऐसे बन्ध उदय सत्तारूप का परिणमना सो कर्म-प्रवाद नाम पूर्व है। याके एक कोड़ अस्सी लाख पद हैं। जहां व्रत विधि व्रत का फल चारि निक्षेपणान का विस्तार इत्यादि जहां कथन होय सो प्रत्याख्यान-पूर्व है। याके चौरासी लाख पद हैं। जहां अनेक विद्या साधने का विधान, विधानकौं कैसे साधिए सो विधान, विधान के सिद्ध होने योग्य तप जान जो मन्त्रतें जो विद्या सिद्ध होय ऐसे मन्त्र से फ़लानी विद्या सिद्ध भई तथा ऐसा फल करै या विद्या की इतनी सामर्थ्य है। अष्ट निमित्त-ज्ञान के भेद इत्यादिक कथन विद्यानुवाद पूर्व में होय है। तहां निमित्त-ज्ञान के आठ भेद बताइये है।

गाथा—अन्तरिक्खं भौमाए, अङ्ग सुर णिमित्त णाण विजणायो। लक्खण सुपणय छिण्ण वसु णिमित्त णाण भेदाहु ॥ १ ॥

अर्थ—अन्तरिक्ष-निमित्त, भौम-निमित्त, अंग-निमित्त, स्वर-निमित्त, व्यञ्जन-निमित्त, लक्षण-निमित्त, स्वप्न-निमित्त, छिन्न-निमित्त। अब इनका सामान्य अर्थ—जहां सूर्य-चिह्न, शशि-चिह्न, तारानक्षत्र-चिह्न, बादल-चिह्न, सन्ध्या समय आकाश के वर्णादिक-चिह्न इत्यादिक आकाश में शुभाशुभ उल्का (बिजुली) पातादि देखि शुभाशुभ कहैं। सो अन्तरिक्ष-निमित्त-ज्ञान है। १। भूमि में रतन, सुवर्ण, चाँदी, पाषाणादिक भूमि के चिह्न जानि शुभाशुभ बतावै सो भूमि-निमित्त-ज्ञान है। २। मनुष्य तिर्यंचन के रस, रुधिर, प्रकृति इत्यादि चिह्न देखि शुभाशुभ कहै सो अङ्ग-निमित्त-ज्ञान है। ३। जहां मनुष्य तिर्यंचन के शब्द सुनि शुभाशुभ होनहार कहै सो स्वर-निमित्त-ज्ञान है। ४। जहां शरीर के तिल, मसा, करमैं, पांवमैं, उरमैं, मुखपै इत्यादि अङ्ग उपाङ्ग में तिल, मसा देखि शुभाशुभ होनहार बतावै सो व्यञ्जन-निमित्त-ज्ञान है। ५। जहां शरीर में श्रीवत्स लक्षण, स्वस्तिक भृङ्गार, कलश, वज्र मत्स्यादिक चिह्न देखि शुभाशुभ बतावै सो लक्षण-निमित्त-ज्ञान है। ६। कोई वस्तु वस्त्रादि मूसादिक पशुनैं काटी होय। ताकौं देखि शुभाशुभ चिह्न बतावै सो छिन्न-निमित्त-ज्ञान कहिए। ७। जहां नाना प्रकार के स्वप्न तिनकूं जानि तिनके शुभाशुभ लक्षण कहै सो स्वप्न-निमित्त-ज्ञान है। ८। ऐसे ए आठ प्रकार ज्ञानकौं आदि अनेक ज्ञान का शुभाशुभ बतावै सो विद्यानुवाद नामा पूर्व है। याके एक कोड़ी दश लाख पद हैं और जहां तीर्थङ्कर के पञ्च कल्याणक तथा और चरम शरीरन के एक दोय कल्याणन का कथन तथा ज्योतिष देवन का गमन किया होय सो कल्याणवाद-पूर्व है। याके छब्बीस करोड़ पद हैं और जहां वैद्यक कथन, व्यन्तरादिक वशीभूत करवे के विधान, विष उतारने के मन्त्रादिक इत्यादिक विधान जहां होय सो प्राणवाद-पूर्व है। याके तेरह करोड़ पद हैं और जहां सङ्गीत-कला, छन्द-कला, अलङ्कार-कला, चित्राम-कला, शिल्प-कला, गर्भाधान शोधवे की कला तथा स्त्रीन की चतुराई हाव-भावरूप चौसठि कला इत्यादिक कथन जहां होय सो क्रियाविशाल-पूर्व है। याके नब्बे कोड़ि पद हैं। जहां त्रिलोक विन्दु में तीन लोक ऊर्ध्व, मध्य, पाताल तथा पाताल लोक विषैं प्रथम पृथ्वी रतनप्रभा ताके तीन भेद हैं। खरभाग, पङ्कभाग, अब्बहुलभाग। तहां खरभाग सोलह हजार योजन मोटा है ताकूं हजार-हजार योजन के मोटे सोलह भेद हैं। तिनके नाम—चित्रापृथ्वी, वज्रापृथ्वी, वैडूर्या, लोहिता, मसारकल्पा, गोमेधा, प्रवाला,

ज्योतिरसा, अंजना, अंजनमूलिका, अंकापृथ्वी, स्फाटिका, चन्दना, सर्वार्थका, वकुला, शैला—ऐसे सोलह भाग हैं। पंक भाग चौरासी हजार योजन है। इन दोऊ भागन में तौ व्यन्तर भवनवासी देव बसै हैं और अस्सी हजार योजन का जाड़ापरण (मोटा) लिये अब्बहुल भाग है। तहां प्रथम नरक है। तहां पाथड़े तेरह हैं और सर्व बिल तीस लाख हैं। तहां आयु उत्कृष्ट एक सागर है। काय की ऊँचाई संवा इकतीस हाथ है। ऐसे प्रथम नरक।१। आगे दूसरा शर्करा नामा नरक तहां पाथड़े ग्यारह। काय साढ़े बासठि हाथ आयु तीन सागर और बिल पच्चीस लाख, मोटाई पृथ्वी की बत्तीस हजार योजन है। २। बालुका नरक में पाथरे नव, बिल पन्द्रह लाख, आयु सात सागर, पृथ्वी की मोटाई अठाईस हजार योजन और काय एक सौ पच्चीस हाथ। इति तीजी नारक। ३। चौथी पृथ्वी पंकप्रभा में पाथड़े सात आयु सागर दश की काय दोय सै पचास हाथ है। भूमि की मोटाई चौबीस हजार योजन है और बिलन का प्रमाण दश लाख है। ऐसे चौथी नारक। ४। आगे धूम प्रभा पांचवीं नारक। तहां पाथड़े पांच काय हाथ पांचसै आयु सत्तरह सागर बिलन का प्रमाण तीन लाख पृथ्वी की मोटाई बीस हजार योजन। इति पांचवीं नारक। ५। आगे छठी पृथ्वी तमनामा तहां पाथड़े तीन है। काय एक हजार हाथ है। बिलन का प्रमाण पांच घाटि एक लाख है। भूमि की मोटाई सोलह हजार योजन है। इति छट्ठी पृथ्वी।६। आगे सातवीं पृथ्वी महातम। तहां पाथड़ा एक है। बिल पांच हैं। काय दोय हजार हाथ (पांच सै धनुष) है। आयु तैंतीस सागर है। भूमि की मोटाई आठ हजार योजन की है। इति सातवीं पृथ्वी। ७। ऐसे अधोलोक का सामान्य कथन कह्या।

आगे मध्यलोक एक राजू विस्तार सहित है। तहां असंख्याते द्वीप असंख्याते समुद्र हैं। तहां असंख्यात द्वीप तौ तिर्यक-लोक है। तिनके मध्य मैं अढ़ाई द्वीप पैंतालीस लाख योजन क्षेत्र मनुष्य-लोक है। इससे आगे मनुष्य का गमन नाहीं। तहां प्रथम लाख योजन विस्तार सहित जम्बूद्वीप है। तहां दोय चन्द्रमा, दोय सूर्य हैं और लवण समुद्र मैं चन्द्रमा चार हैं। सूर्य चार हैं। सो ए सागर दोय लाख योजन विस्तार धरै है। जम्बूद्वीप तैं दूना जानना। तहां आगे च्यारि लाख योजन विस्तार सहित लवणोदधितैं दूना बड़ा धातकीखण्ड द्वीप है। तहां चन्द्रमा बारह और सूर्य बारह हैं और धातकीखण्डतैं दूना विस्तार सहित आठ लाख योजन विस्तार धरैं

कालोदधि समुद्र है। तहां चन्द्रमा बियालीस हैं, सूर्य बियालीस हैं। याकें आगे यातें दूना विस्तार सहित पुष्कर द्वीप है। ताके अर्द्ध मध्य भाग में मानुषोत्तर पर्वत के बाहर कूं आधे पुष्कर द्वीप में चन्द्रमा बहत्तरि हैं और सूर्य बहत्तरि हैं। ऐसे ए सर्व मिल अढ़ाई द्वीप विषैं चन्द्रमा एक सौ बत्तीस और सूर्य एक सौ बत्तीस जानना। तहां एक चन्द्रमा का परिवार कहिए है। तहां चन्द्रमा एक, सूर्य एक, ग्रह अठ्यासी, नक्षत्र अट्ठाईस, छयासठि हजार नव सौ पिचहत्तरि कोड़ाकोड़ि तारे हैं। यह एक चन्द्रमा ज्योतिषी देवन का इन्द्र, ताका सर्व परिवार जानना। सो जम्बूद्वीप विषैं चन्द्रमा दोय, सूर्य दोय, ग्रह एक सौ छिहत्तरि, नक्षत्र छप्पन और तारे एक लाख तेतीस हजार नव सौ पचास कोड़ाकोड़ि हैं। सो जम्बूद्वीप के भाग भरत क्षेत्र समान करिए, तौ एक सौ नब्बे होंय। सो भरत तैं लगाय विदेह पर्यन्त क्षेत्र पर्वत दुगुने-दुगुने विस्तारवाले हैं और विदेह क्षेत्र तैं उत्तर दिशाकौं क्षेत्र पर्वत हैं। सो ऐरावत क्षेत्र पर्यन्त अर्ध-अर्ध हैं। ऐसे जम्बूद्वीप की शलाका भरत क्षेत्र समान एक सौ नब्बे कही १,२,४,८,१६,३२,६४,३२,१६,८,४,२,१—ए सर्व एक सौ नब्बे हैं, सो एक-एक शलाका पै केते तारे आए सो ही कहिए हैं। तहां भरतक्षेत्र पै सात सौ पांच कोड़ाकोड़ि तारे हैं और हिमवत पर्वत पै चौदह सौ दश कोड़ाकोड़ी तारे हैं और हैमवत क्षेत्र पै अट्ठाइस सौ बीस कोड़ाकोड़ी तारे हैं और महाहिमवत पर्वत पै छप्पन सौ चालीस कोड़ाकोड़ी तारे हैं और हरिक्षेत्र पै ग्यारह हजार दोय सौ अस्सी कोड़ाकोड़ी तारे हैं और निषध पर्वत पै बाईस हजार पांच सौ साठि कोड़ाकोड़ी तारे हैं और विदेह क्षेत्र पै पैंतालीस हजार एक सौ बीस कोड़ाकोड़ी तारे हैं और नील पर्वत पै बाईस हजार पांच सौ साठि कोड़ाकोड़ी तारे हैं और रम्यक क्षेत्र मैं ग्यारह हजार दोय सौ अस्सी कोड़ाकोड़ी तारे हैं और रुक्मि पर्वत पै छप्पन सौ चालीस कोड़ाकोड़ी तारे हैं और हिरण्यवत क्षेत्र पै अट्ठाईस सौ बीस कोड़ाकोड़ी तारे हैं और शिखरी पर्वत पै चौदह सौ दश कोड़ाकोड़ी तारे हैं और ऐरावत क्षेत्र पै सात सौ पांच कोड़ाकोड़ी तारे हैं। ऐसे जम्बूद्वीप के एक सौ नब्बे भागन पै तारान का प्रमाण कह्या। ऐसे अढ़ाई द्वीप सम्बन्धी चन्द्रमा सूर्यन का प्रमाण परिवार सहित कह्या। आगे मध्यलोक मैं असंख्यात द्वीप हैं। तिन मैं आदि के सोलह द्वीपन के नाम कहिए है। जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड, पुष्कर-द्वीप, वारुणी-द्वीप, क्षीरवर-द्वीप, घृतवर-द्वीप, क्षुद्रवर-द्वीप, नन्दीश्वर-द्वीप, अरुणवर-द्वीप, अरुणाभासवर-

द्वीप, कुण्डलवर-द्वीप, संखवर-द्वीप, रुचिकवर-द्वीप, भुजङ्गवर-द्वीप, कुसङ्गवर-द्वीप, क्रौंचवर-द्वीप—ए आदि के सोलह द्वीप कहे। आगे असंख्याते द्वीपन के अन्त के सोलह द्वीपन के नाम बताईए है। मशिला-द्वीप, हरताल-द्वीप्र, सिन्दूरवर-द्वीप, श्यामवर-द्वीप, अञ्जवर-द्वीप, हिंगुलवर-द्वीप, रूपवर-द्वीप, सुवर्णवर-द्वीप, वज्रवर-द्वीप, वैंडूर्यवर-द्वीप, नागवर-द्वीप, भूतवर-द्वीप, पक्षवर-द्वीप, देववर-द्वीप, अहमिन्द्रवर-द्वीप और स्वयम्भूरमण-द्वीप ए अन्त के द्वीप कहे और विशेष एता जो आदि दोय ससुद्र-द्वीपन का नाम तौ और-और है। बाकी असंख्याते द्वीप समुद्र हैं तिनका समुद्र का नाम सो ही द्वीप का नाम जानना ऐसे सामान्य मध्यलोक का कथन कह्या। सो एक राजू तौ मध्यलोक चौड़ा है। लाख योजन मेरु प्रमाण मध्यलोक की ऊँचाई है। तामैं ही ज्योतिष-लोक जानना और ज्योतिषी देवन का प्रमाण अढ़ाई द्वीप सम्बन्धी सामान्य कहिये है। तिनमैं ध्रुवतारान का प्रमाण कहिए है। तहां जम्बूद्वीप सम्बन्धी ध्रुवतारे छत्तीस हैं। ३६। लवण समुद्र मैं १३९ ध्रुवतारे हैं धातकीखण्ड विषैं एक हजार दश हैं। कालोदधि समुद्र विषैं ध्रुवतारे ४११२० हैं। आधे पुष्कर द्वीपमैं मनुष्य-लोक की तरफ ५३२३० ध्रुवतारे हैं ऐसे सर्व मिलि अढ़ाई द्वीप के विषैं ९५,५३५ ध्रुवतारे हैं। अब मध्यलोक सम्बन्धी अकृत्रिम जिन चैत्यालय जहां-जहां हैं, सो ही बताइए है। तहां एक मेरु सम्बन्धी च्यारि वन हैं। एक-एक वन में च्यारि-च्यारि जिन मन्दिर हैं। सो च्यारि वन के सोलह जिन मन्दिर भये और एक मेरु सम्बन्धी च्यारि गजदन्त हैं। तिन पै च्यारि मन्दिर हैं। षट् कुलाचलन पै षट्। जम्बू शालमली दोय वृक्षन पै दोय मन्दिर हैं। विजयार्ध चौंतीस पै चौंतीस जिन-मन्दिर हैं। बक्षार सोलह पै सोलह ही मन्दिर हैं। ऐसे एक मेरु सम्बन्धी अठहत्तरि भए, सो पांचन के मिलाए तीन सौ नब्बे होय। इष्वाकार च्यारिन पै च्यारि जिन-मन्दिर हैं। मानुषोत्तर की चारों दिशा सम्बन्धी च्यारि जिन-गृह हैं। नन्दीश्वर के च्यारि दिशा सम्बन्धी बावन जिन-मन्दिर हैं आर ग्यारहवाँ कुण्डलगिरि-द्वीप के मध्य भाग कुण्डलगिरि है ताकी चारों दिशा च्यारि जिन-मन्दिर हैं और तेरहवाँ रुचक गिरि-द्वीप ताके मध्य भाग में रुचिकगिरि पर्वत है। ताके चारों दिशा च्यारि मन्दिर हैं। ऐसे सब मिलाईए तौ च्यारि सौ अठावन भए, तिनकूं बारम्बार नमस्कार होहु। ऐसे यहां सामान्य मध्यलोक का कथन पूर्ण किया। आगे ऊर्ध्व-लोक रचना सामान्य कहिये। तहां स्वर्ग-लोक के दोय भेद हैं। एक कल्पवासी,

एक कल्पातीत। तहां कल्पवासीन के स्वर्ग सोलह हैं। तिनके नाम—सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव, कापिष्ट, शुक्र, महाशुक्र, सतार, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत—ए सोलह हैं। तिनके आठ युगल जानना। तहां युगल-युगल प्रति उत्कृष्ट आयु-कर्म कहिए है। तहां प्रथम युगल में दोय सागर कुछ अधिक उत्कृष्ट आयु है। दूसरे युगल में उत्कृष्ट आयु सात सागर कुछ अधिक है। तीसरे युगल में दश सागर कुछ अधिक उत्कृष्ट आयु है। चौथे युगल विषैं चौदह सागर कुछ अधिक आयु है। पांचवें युगल में सोलह सागर कुछ अधिक आयु है और छठे युगल में अठारह सागर कुछ अधिक आयु है। सातवें युगल में बीस सागर आयु है। आठवें युगल में आयु बाईस सागर है। ऊपरि नव ग्रैवेयक हैं, तहां प्रथम ग्रैवेयक में तेईस सागर आयु है। दूसरे ग्रैवेयक में चौबीस सागर है। तीजे ग्रैवेयक में पच्चीस सागर है। चौथे ग्रैवेयक में छब्बीस सागर है। पाँचवीं ग्रैवेयक में सत्ताइस सागर है। छठी ग्रैवेयक में अठाईस सागर है। सातवीं ग्रैवेयक में गुणतीस (उनतीस) सागर है। आठवों ग्रैवेयक में तीस सागर है। नववीं ग्रैवेयक में इकतीस सागर उत्कृष्ट आयु है। ऐसे अच्युत स्वर्गतें एक-एक सागर अधिक ग्रैवेयक पर्यन्त बधाय (बढ़ाय) लेनी और नव अनुदिश में बत्तीस सागर है। पञ्च पञ्चोत्तर में तेतीस सागर आयु है। इति आयु। आगे युगल प्रति काय का प्रमाण कहिये है। युगल प्रति शरीरन की ऊँचाई। तहां प्रथम युगल के देवन की काय हाथ सात है। दूजे युगल के देवन की काय हाथ षट् है। तीसरे युगल के देवन की काय हाथ पांच है। चौथे युगल के देवन की काय हाथ पांच है। पञ्चम युगल के देवन की काय हाथ च्यारि है और छठै युगल के देवन की काय हाथ चार है और सातवें युगल के देवन की काय हाथ साढ़े तीन है और आठवें युगल के देवन की काय हाथ तीन है। नव ग्रैवेयकमैं प्रथम त्रिक के देवन की काय हाथ अढ़ाई है। दूसरे त्रिक देवन की काय हाथ दोय हैं। तीसरे त्रिक देवन और नव अनुदिश की काय हाथ डेढ़ हैं। आगे पञ्च पञ्चोत्तरन के देवन की काय हाथ एक है। इति काय। आगे स्वर्गन के पटल कहिये हैं। तहां प्रथम युगल के पटल इकतीस हैं और दूजे युगल के पटल सात हैं और तीसरे युगल के पटल च्यारि हैं। चौथे युगल के पटल दोय हैं। पंचम युगल का पटल एक है। छठे युगल का पटल एक है। सातवें युगल के पटल तीन हैं। आठवें युगल के पटल तीन हैं। नव ग्रैवेयक के पटल नव हैं। नव अनुत्तरन का पटल

एक है, पञ्चपञ्चोत्तरन का पटल एक है, ऐसे स्वर्ग स्वर्गन के पटल त्रेसठि हैं। इति पटल। आगे स्वर्ग प्रति इन्द्र कहिये है। तहां प्रथम युगल के इन्द्र दोय हैं। दूसरे युगल विषैं इन्द्र दोय हैं। तीसरे युगल में इन्द्र एक है। चौथे युगल में इन्द्र एक है। पाँचवें युगल में एक इन्द्र है। छठे युगल में इन्द्र एक है। सातवें युगल में इन्द्र दोय हैं। आठवें युगल में इन्द्र दोय हैं और अहमिन्द्रन में इन्द्र नाहीं। वह सर्व ही आप-आप इन्द्रसम हैं। इति इन्द्र संख्या। आगे स्वर्ग प्रति विमान की संख्या कहिये है। तहां प्रथम स्वर्ग के विमान बत्तीस लाख हैं और दूसरे स्वर्ग के अठाईस लाख विमान हैं। ऐसे सर्व मिलि प्रथम युगल के साठि लाख विमान हैं। तीसरे सनत्कुमार स्वर्ग के बारह लाख विमान हैं और चौथे महेन्द्र स्वर्ग के आठ लाख विमान हैं—ए सर्व मिलि दूसरे युगल के बीस लाख विमान हैं। ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर के मिलि च्यारि लाख विमान हैं। चौथे युगल के पचास हजार विमान हैं। पाँचवें युगल के चालीस हजार विमान हैं। छठे युगल के षट् हजार विमान हैं और सातवें युगल के अरु आठवें युगल के मिलिकै सात सौ विमान हैं और नव ग्रैवेयक के तीन त्रिक हैं। तहां प्रथम त्रिक के १११ विमान हैं, दूसरे त्रिक के १०७ विमान हैं, तीसरे त्रिक के (९१) विमान हैं। ऐसे सर्व मिलि नव ग्रैवेयक के ३०९ विमान हैं। नव अनुत्तरों के ९ विमान हैं। पञ्च पञ्चोत्तरों के पाँच विमान हैं। ऐसे सर्व कल्पातीतन के ३२३ विमान हैं। ऊर्ध्व-लोक के स्वर्गवासी देवन के विमान मिलाईए तो ८४,९७,०२३ विमान हैं। सो इन सर्व विमाननमैं एक-एक जिन-मन्दिर है। तिनकौं हमारा बारम्बार नमस्कार होहू। इति विमान संख्या। आगे धरतीतैं स्वर्ग की ऊँचाई कहिये। तहां पृथ्वीतैं लगाय लाख योजन ऊँचा तौ प्रथम युगल का प्रथम इन्द्रक है और पृथ्वीतैं डेढ़ राजू ऊँचा प्रथम युगल के इकतीसवाँ पटल का इन्द्रक है। पृथ्वीतैं तीन राजू अरु अन्त पटल के अन्त पटलतैं डेढ़ राजू ऊँचा दूसरे युगल का अमल है। दूसरे युगलतैं आधा राजू ऊर्ध्वकौं तीसरे युगल का अमल है। तीसरे युगलतैं आधा राजू तांई ऊपर चौथे युगल का अमल है। चौथे युगलतैं आधा राजू ऊपर तांई पाँचवें युगल का अमल है। पाँचवें युगल तैं आधा राजू ऊँचे तांई छठा युगल का अमल है। छठे युगल तैं सातवाँ युगल आधा राजू ऊँचा है। सातवें युगलतैं आठवाँ युगल आधा राजू ऊँचा हैं। ऐसे षट् राजू मैं तौ सोलह स्वर्ग के आठ युगल हैं। ऊपरि राजू के आदि नव ग्रैवेयक हैं राजू के मध्य भाग विषैं नव अनुत्तर है। राजू के अन्त सर्वार्थ-

सिद्धि है। ताके ऊपर संख्यात योजन सिद्धशिला है। ताके ऊपरि तनुवातवलय मैं सिद्ध चक्र चैतन्य अमूर्तिक सिद्ध भगवान विराजै हैं। तिनको बारम्बार नमस्कार होहु और जिस क्षेत्रमैं सिद्धदेव विराजैं सो पैंतालीस लाख योजन सिद्ध क्षेत्र है। तिस उत्कृष्ट तीर्थ-क्षेत्र कूं नमस्कार होहु। इति स्वर्गन की ऊँचाई।

आगे विमानन के वर्ण कहिये है। आगे प्रथम युगल के विमानन के पश्च ही वर्ण हैं। दूसरे युगल के विमान कृष्ण बिना च्यारि वर्ण के हैं। तीसरे युगल के विमान नील, कृष्ण बिना तीन वर्ण के हैं। चौथे युगल के विमान तीन कृष्ण बिना तीन वर्ण के हैं। पाँचवें युगल के विमान पीत श्वेत दोय वर्ण के हैं। छठे युगल के विमान पीत श्वेत वर्ण के हैं और सातवें युगल, आठवें युगल तथा अहमिन्द्रन के विमान—ए सर्व एक शुक्ल वर्ण के ही हैं। इति विमान वर्णन। आगे स्वर्गन के आधार कहिये हैं। तहां प्रथम युगल तौ जल के आधार है। दूरसा युगल पवन के आधार है। तीसरा युगल पवन के आधार है। चौथा, पाँचवाँ, छठाँ—ए तीन युगल जल पवन के आधार हैं। सातवाँ, आठवाँ युगल तथा अहमिन्द्रन के विमान सर्व आकाश के आधार हैं। इति आधार। आगे स्वर्ग प्रति देवन के काम सेवन कैसे है, सो बतावै हैं। प्रथम युगल मैं देवनकौं काम सेवन मनुष्य पशुवत् है। दूसरे युगल मैं तनतैं तन स्पर्श कर तृप्ति होय है। तीसरे युगल मैं देव देवीनकौं परस्पर राग दृष्टि करि रूप देखि ही भोगन की तृप्ति होय है। चौथे युगल में भी रूप देखि तृप्ति होय है। पाँचवें, छठें युगल में देव देवीन का परस्पर राग का भरचा शब्द सुनि भोगवान् तृप्ति होय है और सातवें, आठवें युगलन के देव देवीन के मन में भोग अभिलाषा भई अरु तृप्ति होय है। अरु ऊपरि लै अहमिन्द्रनकौं काम सेवन की इच्छा नाहीं। इति काम सेवन। आगे देवन के अवधि क्षेत्र कहैं। तहां प्रथम युगल के देवन को अवधि का विषय प्रथम नरक पर्यन्त जानैं। इतनी ही विक्रिया होय, अधिक नाहीं और दूसरे नरक पर्यन्त दूसरे युगल के देवन की अवधि, विक्रिया है और तीसरे युगल के देवन की अवधि विक्रिया तीसरे नरक पर्यन्त हैं। चौथे युगल के देवन की अवधि, तीसरे नरक पर्यन्त शुभाशुभ जानने। इतनी ही विक्रिया होय। पाँचवें, छठे युगल के देवन की अवधि, विक्रिया चौथे नरक पर्यन्त जानना और सातवें, आठवें युगल के देवन की अवधि, विक्रिया पाँचवें नरक तांई होय। नव ग्रैवेयक के देवन की अवधि, विक्रिया छठे नरक पर्यन्त होय है। नव अनुदिश पंच पंचोत्तरन के देवन की अवधि, विक्रिया

सातवें नरक पर्यन्त होय हैं। विशेष एता, ऊपरले देवन की विक्रिया विविक्तपने तौ तीसरे नरक पर्यन्त ही है। आगे नाहीं। अरु शक्ति रूप सातवें तांई कही है और अवधिज्ञान अपने-अपने विषय योग्य क्षेत्र के शुभाशुभ भाव सर्व जानैं हैं। इति अवधि, विक्रिया। आगे देव चए पीछे केतेक काल पीछे देव तहां उपजै ताका स्वर्ग पर्यन्त अन्तर कहिए है। तहां प्रथम युगल विषैं अन्तर उत्कृष्ट सात दिन का है। पीछे कोऊ उपजै ही उपजै। दूसरे युगल मैं पन्द्रह दिन का अन्तर है। तीसरे युगल में अन्तर एक मास का है। चौथे युगलमैं अन्तर एक मास का है। पाँचवें, छठे युगल में अन्तर उत्कृष्ट दोय मास है और सातवें, आठवें युगल मैं च्यारि मास का है। ऊपर अहमिन्द्रन मैं उत्कृष्ट अन्तर षट् मास का है। ऐसे उत्कृष्ट अन्तर षट् मास है। पीछे अपने अन्तर उपरान्त कोई पुण्याधिकारी जीव उपजै ही उपजै। स्थान खाली रहै तौ इतना रहै। मध्य के अनेक भेद हैं। इति उत्पत्ति अन्तर। आगे देवन के मनसा भोजन केतेक काल में होय सो कहिये है। तहां देवन की जितने सागर की आयु होय तेते हजार वर्ष गये भोजन पै मन होय है। पीछे तृप्ति होय है और जहां जितने सागर की आयु होय तेते पक्ष गये श्वासोच्छ्वास होय है। इति भोजन श्वासोच्छ्वास। आगे स्वर्ग प्रति देवन के मुकुट के चिह्न कहिये हैं। सूर, हिरण, महिष, मछली, कछुवा, मैंडक, घोटक (घोड़ा), हस्ती, चन्द्रमा, सूर्य, खड्गी, बकरी, बैल, कल्पवृक्ष इत्यादिक चिह्न देवन के मुकुटन में होय हैं। इति मुकुट चिह्न। आगे देवन के विमान की मोटाई स्वर्ग प्रति कहिये है। तहां प्रथम युगल के विमानन की मोटाई ११२१ योजन जानना। दूसरे युगल के विमानन की मोटाई १०२२ योजन जानना। तीसरे युगल के विमानन की मोटाई ९२३ योजन जानना। चौथे युगल के विमानन की मोटाई ८२८ योजन जानना। पाँचवें युगल के विमानन की मोटाई ७२५ योजन जानना। छठे युगल के विमानन की मोटाई ६२६ योजन जानना। सातवें युगल के विमानन की मोटाई ५२७ योजन जानना। आठवें युगल के विमानन की मोटाई ४२८ योजन जानना। नव ग्रैवेयक के विमानन की मोटाई ३२९ योजन जानना। नव अनुत्तर विमानन की मोटाई २३० योजन जानना। पंच अनुत्तरन के विमानन की मोटाई १३१ योजन जानना। ऐसे स्वर्ग प्रति विमानन की मोटाई कही। इति विमानन की मोटाई। आगे स्वर्ग प्रति देवन के लेश्या कहिये है। तहां प्रथम युगल में लेश्या पीत है। दूसरे युगल में पीत पद्म दोय लेश्या हैं। तीसरे युगल में

पद्म लेश्या है। चौथे युगल में लेश्या पद्म है। पाँचवें युगल में लेश्या पद्म है। छठे युगल में पद्म शुक्ल दोय लेश्या हैं। सातवें, आठवें युगल तथा अहमिन्द्रन में लेश्या एक शुक्ल है। इति लेश्या। आगे स्वर्ग प्रति देवांगना की उत्कृष्ट आयु कहिये है। तहां सौधर्म प्रथम स्वर्ग के देवीन की आयु पाँच पल्य है। ऐसान स्वर्ग के देवन की देवीन की आयु सात पल्य की है। आगे तीसरे स्वर्गतें लगाय बारहवें पर्यन्त दोय-पल्य बधती (बढ़ती) जानना। ऐसे पल्य—५,७,९,११,१३,१५,१७,१९,२१,२३,२५,२७ अनुक्रम तैं जानना और तेरहवें स्वर्ग की देवीन की आयु चौंतीस पल्य की है और चौदहवें स्वर्ग की देवीन की आयु इकतालीस पल्य की है और पन्द्रहवें स्वर्ग की देवीन की आयु अड़तालीस पल्य की है और सोलहवें स्वर्ग की देवीन की आयु पचपन पल्य की है। ऐसे स्वर्ग प्रति देवीन की आयु कही। इति देवीन की आयु। ऐसे सामान्य देव-लोक का कथन कह्या। ऐसे अधो-लोक, मध्य-लोक, ऊर्ध्व-लोक का व्याख्यान जामैं होय सो त्रिलोकविन्दु नामा चौदहवाँ पूर्व जानना। ऐसे ग्यारह अङ्ग चौदह पूर्व-ज्ञान के धारी होय सो उपाध्याय मुनि हैं। ये गुरु नगन वीतराग पूजवे योग्य हैं और जिनकी तप करने की बड़ी शक्ति होय, नाना प्रकार तप करते शरीर मन वचन शिथिल नहीं होंय सो तपसी जाति के मुनि कहिये। ऐसे दुर्धर तपनकौं तपसी करैं तिनका संक्षेप कथन कहिये है। प्रथम जिनेन्द्रगुणसम्पत्ति नाम तप कहिये है। या तप के उपवास तिरेसठि, तिनकी विधि सोलह कारण भावना का पड़िवा सोलह और पंच-कल्याणक की पांचें पांच, प्रातिहार्य की आठैं आठ, चौंतीस अतिशय की दशैं बीस और चौदसि चौदह, ऐसे एक-एक तिथि का एक-एक उपवास करे ताके सर्व मिल उपवास त्रेसठि करै। सो यतीश्वर निर्ममत्व इस तपकूं करैं हैं। याका नाम जिनगुणसम्पत्ति तप है। आगे श्रुतज्ञान तप कहिये है। याके उपवास एकसौ अठावन। तिनकी विधि, मतिज्ञान के उपवास अठाईस और ग्यारह अङ्ग के उपवास ग्यारह। उपक्रम के उपवास दोय। अरु सूत्र के पद अठ्यासी लाख ताके उपवास अठ्यासी। प्रथमानुयोग का उपवास एक और चौदह पूर्व के उपवास चौदह और पांच चूलिका के उपवास पांच। अवधिज्ञान के उपवास षट्। मनःपर्यय के उपवास दोय। केवलज्ञान का उपवास एक। ऐसे एक सौ अठावन उपवास, जो यति तनतैं निस्पृह होय सो इस तप को करै है। ऐसा श्रुतिज्ञान तप जानना। आगे कर्मक्षय तप कहिये है। अष्टकर्म नाश करने के निमित्त तपसी जाति के

मुनि कर्मक्षय तप करैं। याके उपवास एकसौ अड़तालीस हैं। तिनकी विधि—चौथि के उपवास सात। सातैं के उपवास तीन। नवमी के उपवास छत्तीस। दशमी का उपवास एक। बारसि के उपवास सोलह। चौदश के उपवास पच्यासी। ऐसे एक सौ अड़तालीस उपवास सहित तप करैं। आगे सिंह निष्कीड़ित तप कहिये है। यह तप एक सौ सतहत्तरि दिन का है। तिनमैं उपवास तौ एकसौ पैंतालीस। अरु पारणा बत्तीस तिनकी विधि कहिए है। उपवास १, पारणा १। उपवास २, पारणा १। उपवास १, पारणा १। उपवास ३, पारणा १। उपवास २, पारणा १। उपवास ४, पारणा १। उपवास ३, पारणा १। उपवास ५, पारणा १। उपवास ४, पारणा १। उपवास ६, पारणा १। उपवास ५, पारणा १। उपवास ७, पारणा १। उपवास ६, पारणा १। उपवास ८, पारणा १। उपवास ७, पारणा १। उपवास ९, पारणा १। उपवास ८, पारणा १। उपवास ७, पारणा १। उपवास ८, पारणा १। उपवास ६, पारणा १। उपवास ७, पारणा १। उपवास ५, पारणा १। उपवास ४, पारणा १। उपवास ५, पारणा १। उपवास ३, पारणा १। उपवास ४, पारणा १। उपवास २, पारणा १। उपवास ३, पारणा १। उपवास १, पारणा १। उपवास २, पारणा १। उपवास १, पारणा १। ऐसे १४५ उपवास और ३२ पारणा करि व्रत करैं हैं।४। आगे सर्वतोभद्र तप कहिये है—याके उपवास ७५, पारणा २५। सर्व एक सौ दिन का तप है। ताकी विधि—उपवास १, पारणा १। उपवास २, पारणा १। उपवास ३, पारणा १। उपवास ४, पारणा १। उपवास ५, पारणा १। उपवास ३, पारणा १। उपवास २, पारणा १। उपवास १, पारणा १। उपवास ५, पारणा १। उपवास ४, पारणा १। उपवास ३, पारणा १। उपवास २, पारणा १। उपवास ३, पारणा १। उपवास ४, पारणा १। उपवास ५, पारणा १। उपवास १, पारणा १। उपवास ४, पारणा १। उपवास ३, पारणा १। उपवास २, पारणा १। उपवास १, पारणा १। उपवास ५, पारणा १। उपवास ४, पारणा १। उपवास ५, पारणा १। उपवास १, पारणा १। उपवास २, पारणा १। ऐसे यह व्रत गुरुनाथ निशंक होय करैं हैं। आगे महासर्वतोभद्र तप की विधि—उपवास १, पारणा १। उपवास २, पारणा १। उपवास ३, पारणा १। उपवास ४, पारणा १। उपवास ५, पारणा १। उपवास ६, पारणा १। उपवास ७, पारणा १। उपवास १, पारणा १। उपवास २, पारणा १। उपवास ३,

पारणा १। उपवास ४, पारणा १। उपवास ५, पारणा १। उपवास ६, पारणा १। उपवास ७, पारणा १। उपवास १, पारणा १। उपवास २, पारणा १। उपवास ३, पारणा १। उपवास ४, पारणा १। उपवास ५, पारणा १। उपवास ६, पारणा १। उपवास ७, पारणा १। उपवास १, पारणा १। उपवास २, पारणा १। उपवास ३, पारणा १। उपवास ४, पारणा १। उपवास ५, पारणा १। उपवास ६, पारणा १। उपवास ७, पारणा १। उपवास १, पारणा १। उपवास २, पारणा १। उपवास २, पारणा १। उपवास ४, पारणा १। उपवास ५, पारणा १। उपवास ६, पारणा १। उपवास ७, पारणा १। उपवास १, पारणा १। उपवास २, पारणा १। उपवास ३, पारणा १। उपवास ४, पारणा १। उपवास ५, पारणा १। उपवास ६, पारणा १। उपवास ७, पारणा १। उपवास १, पारणा १। उपवास २, पारणा १। उपवास ३, पारणा १। उपवास ४, पारणा १। उपवास ५, पारणा १। उपवास ६, पारणा १। उपवास ७, पारणा १। या भांति उपवास १९६ हैं और पारणा गुणचास हैं। ए सर्व मिलि दोयसौ पैंतालीस दिन का तप है। या तपकौं तपसी जाति के गुरु करैं। इति महासर्वतोभद्र तप। ६। आगे लघु सिंह निष्क्रीड़ित तप कहिये है। इस लघु सिंह निष्क्रीड़ित तपकौं यति करैं। ताकी विधि कहिए है—उपवास १, पारणा ६। उपवास २, पारणा १। उपवास १, पारणा १। उपवास ३, पारणा १। उपवास १ पारणा १। उपवास ४, पारणा १। उपवास ४, पारणा १। उपवास ५, पारणा १। उपवास ४, पारणा १। उपवास ५, पारणा १। उपवास ५, पारणा १। उपवास ४, पारणा एक। उपवास ५, पारणा एक। उपवास ३, पारणा एक। उपवास ४, पारणा एक। उपवास २, पारणा एक। उपवास एक, पारणा एक। ऐसे यह लघु सिंह निष्क्रीड़ित तप के उपवास ६० और पारणा २० सर्व मिलि ८० दिन का तप है। ताहि तपसी गुरु करैं। इति लघु सिंह निष्क्रीड़ित तप।७। आगे मुक्तावली तप कहिये है—उपवास एक, पारणा एक। उपवास २, पारणा एक। उपवास ३, पारणा एक। उपवास ४, पारणा एक। उपवास ५, पारणा एक। उपवास ४, पारणा एक। उपवास ३, पारणा एक। उपवास २, पारणा एक। उपवास एक, पारणा एक। ऐसे या तप के उपवास पच्चीस और पारणा नव सर्व दिन चौंतीस का तप है। याकौं मुक्तावली तप कहिये। याकौं करैं सो यति तपसी गुरु कहिये।

१६०

इति मुक्तावली तप। ८। आगे रत्नावली तप कहिये है। रत्नावली तप की विधि—उपवास १, पारणा १। उपवास २, पारणा १। उपवास ३, पारणा १। उपवास ४, पारणा १। उपवास ५, पारणा १। उपवास ५, पारणा १। उपवास ४, पारणा १। उपवास ३, पारणा १। उपवास २, पारणा १। उपवास १, पारणा १। ऐसे या रत्नावली तप के उपवास तीस और पारणा दश सर्व चालीस दिन का तप है। ताकौं तपसी गुरु करैं हैं। इति रत्नावली तप। ९। आगे कनकावली तप कहिए है। कनकावली तप की विधि—शुक्ल पक्ष की पड़िवा पांचैं और दशैं ए तीन तौ शुक्ल पक्ष की और कृष्ण पक्ष की दोज, छठि और बारसि ऐसे एक महीना के उपवास षट् होंय। एक वर्ष के बहत्तरि उपवास करैं। ऐसा कनकावली तपकौं तपसी करैं हैं। इति कनकावली तप। १०। आगे आचारवर्धन तप कहिये है। आचारवर्धन तप की विधि—उपवास १, पारणा १। उपवास २, पारणा १। उपवास ३, पारणा १। उपवास ४, पारणा १। उपवास ५, पारणा १। उपवास ६, पारणा १। उपवास ७, पारणा १। उपवास ८, पारणा १। उपवास ९, पारणा १। उपवास १०, पारणा १। उपवास ९, पारणा १। उपवास ८, पारणा १। उपवास ७, पारणा १। उपवास ६, पारणा १। उपवास ५, पारणा १। उपवास ४, पारणा १। उपवास ३, पारणा १। उपवास २, पारणा १। उपवास १, पारणा १। ऐसे या व्रत के उपवास सौ और पारणा उन्नीस सर्व मिलि एकसौ उन्नीस दिन का तप है। ताहि वीतराग तपसी करैं हैं। इति आचारवर्धन तप। ११। आगे सुदर्शन तप कहिये है। या तप की विधि—तहां उपशम सम्यक्, क्षयोपशम सम्यक् और क्षायिक सम्यक्—ये तीन सम्यक् हैं। तिन एक-एक सम्यक् के शङ्का कांक्षादि आठ-आठ दोष हैं। सो तीनों सम्यक् के चौबीस मल दोष भये। तिन चौबीस दोष के चौबीस उपवास एकान्तर करैं। या तप के सर्व अड़तालीस दिन भये। १२। इत्यादिक तप तपसी गुरु करैं। इनकौं आदि लेय अनेक दुर्द्धर तप तीन काल के करैं। अपनी परणति महाधर्म शुक्लध्यानमय राखि समता की वृद्धि करैं सो तपसी जाति के मुनि हैं। जे यति आचार्य के पास शास्त्र अभ्यास करैं तिनकूं शिष्य जाति के मुनि कहिये। जैसे—लौकिक में जेते जाका पिता जीवैं ताकौ कुमार कहैं हैं। तैसे जेते काल जिनके आचार्य गुरु विराजै होंय उन गुरुन पै शास्त्राभ्यास करैं, सो शिष्य जाति के मुनि कहिये। ४। अनेक रोगन सहित शरीर के धारी मुनीश्वर, वीतरागी, तन भोगनतैं

उदास आतम रसराते, शान्त चित्त के धारी, सो ग्लानि जाति के मुनि हैं। ५। बड़े-बड़े यतीन का संघ, सो गण जाति के मुनि हैं। सो बड़े-बड़े यतीन के तीन भेद हैं। वय करि बड़े तथा गुण-ज्ञानादि करिके बड़े तथा दीक्षा करि बड़े, यतिन का समूह, सो गण जाति के मुनि हैं। ६। श्रावक, श्राविका, मुनि, अर्जिका—इन चारौं प्रकार के संघमैं रहैं, सो संघ जाति के मुनीश्वर हैं। ७। जे मुनि शिष्यन की आम्नाय जानैं, दीक्षा देने की विधि जानैं इत्यादिक मुनि-धर्म की क्रिया मैं प्रवीण होय, सो कुल जाति के मुनीश्वर हैं।८। जे बहुत काल के दीक्षित होंय, सो साधु जाति के मुनीश्वर हैं। ९। जे बाह्य परिग्रह का त्याग करि नगन होय, गुरु चरणारविन्दन के पास मुनिपद धरवे कूं सन्मुख भया, मुनि होयबे की क्रिया नेग-चार करावता होय, सो मनोज्ञ जाति के मुनि हैं। १०। ऐसे दश जाति के मुनिपद पूज्य हैं। आगे ऐसे गुरु के विचारने योग्य समाचार दश हैं। महामुनि इनका विचार कैसे करैं, कहां करैं, सो कहिये हैं। सो प्रथम ही नाम "आचारसार" ग्रन्थ अनुसार कहिये हैं। इच्छाकार, मिथ्याकार, तथाकार इच्छा व्रत आशीष निषधि का अप्रच्छिन्न प्रति प्रछिन्न आन मन्त्र संश्रय अब इनका सामान्य अर्थ कहिये है। पुस्तक, आतापन, योगादि अनेक शुभ क्रिया अपने हित निमित्त सीखी जाय, विनय सहित आचार्य पै याचै, सो इच्छाकार है। बिना उपदेश, आप अपनी इच्छातैं अपने हितकारी परभव सुखकारी पुण्य-कारी वस्तु विचारि करि गुरुन पै याचना करै, सो इच्छाकार समाचार है। १। जे यति महाधर्म मूरती उदास वृत्ति का धारक च्यारि गति के जन्म-मरण करि खाया है, भय जानैं सो मुनि ऐसा विचारैं जो मैंने अपनी अज्ञान अवस्था मैं अनेक पाप किये तिनका फल अब समझा सो पाप का फल अनिष्ट जानि महाभयभीत होय या कहैं जो मेरे एकीएक अगले पाप मिथ्या होहु। अब मैं पाप नहीं करूँगा। ऐसे पापतैं भय खाय निःशल्य होय सो मिथ्याकार कहिये। २। जहां तत्त्व पदार्थनकौं श्रद्धै, सो सत्य जिन-आज्ञा प्रमाण श्रद्धा है तथा जिन अङ्ग-पूर्व शास्त्रन का गुरु मुखतैं श्रवण करना सो विनय सहित करना तथा आप सभाजनकूं हित का करनहारा उपदेशक है सो जिन-आज्ञा प्रमाण कहै। अरु कदाचित् अपनी इच्छाकरि (मनमाना) उपदेश करै तौ महान् पापी होय। तातैं जीवनकौं दयापूर्वक कहै। जिन-आज्ञा सहित सत्य कहै। अपनी बुद्धितैं बनाय नहीं कहै तथा आप जिन-आज्ञा प्रमाण श्रद्धान राखै। औरकौं धर्म-राह बतावै सो जिन-आज्ञा प्रमाण कहै, सो तथाकार समाचार कहिये।३।

और आगे किये जो गुरु के निकटि आतापन योग तथा उपवासादि तप धर्मोपकरण पीछी कमण्डलु पुस्तकादिक तथा महाव्रतादि जो मोक्षमार्ग की साधक क्रिया तिनमैं स्वेच्छारूप नहीं प्रवर्ते सारी मुनि-धर्म की साधन हारी जो प्रवृत्ति सो तामैं प्रमाद छोड़ि साहसी होय पापतैं भय खाय व्रत का लोभी धर्मात्मा शिष्य गुरु की आज्ञा प्रमाण प्रवर्तै सो इच्छाव्रत समाचार कहिये। ४। शिष्य गुरु के पासि तीर्थादि जानैंकौं सीख मांगै तब ऐसे विनय सौं कहै। भो प्रभो! अब तांई आपके पद-कमल के शरण रह्या संयम निधि पाई। अब मेरा मन सिद्ध-क्षेत्रादि यात्राकौं है। सो मोपै दया-भाव करि आज्ञा देउ। ऐसे भक्ति सहित विनयपूर्वक विनति करि मौनि करि गुरु के निकट हस्त जोड़ि खड़ा होय रहै। यथायोग्य अन्तरतैं तिष्ठै। तब ऐसे वचन आचार्य शिश्य के सुनि दया-भाव शिष्य पै धारि शिष्य के चारित्र की बधवारी (बढ़नेवारी) की वांच्छातैं आचार्य मंगलीक वचन कहैं। भो वत्स! हे आर्य तेरे व्यन्तरादि उपसर्गतैं रहित संयम की प्रति पालना होऊ। ऐसे आचार्य शिष्यकौं मोक्षरूप लक्ष्मी की प्राप्ति वांच्छते आशीष देय, सो आशीष नामा समाचार है। ५। जे मुनीश्वर जहां जाय तिष्ठैं ता जगह के ऋषि, देव, मनुष्यादि होय तिनकौं यतीश्वर ऐसा वचन कहैं। जो हम इहां तिहारी आज्ञा सहित तिष्ठैं हैं। ऐसा कहिकैं विश्राम करें। सो निषधि का समाचार है सो निषधि का तौ मुनि जा स्थानपै गुफा मसान वृक्ष की कोटर मण्डप वसतिका इत्यादिक स्थानकन के देव-मनुष्यादिक की आज्ञा सहित तिष्ठैं, सो निषधि का समाचार जानना।६। ऊपर कहा जो आशीष समाचार कहां करैं, सो कहिये है—मुनीश्वर जहां तिष्ठै थे ता स्थानक तजि अन्य स्थान जांय तब जातैं यतीश्वर तहां के रक्षक देवादिक कूं ऐसे हित-मित वचन कहैं। जो हम तिहारे स्थानपै रहे, सो अब हम चलैं हैं। ऐसे प्रिय वचन कहि गमन करैं, सो आशीष कहिये और अपृच्छनी समाचार सतावैं। ताका अर्थ मूल ग्रन्थ आचारसारजी तैं जानना। ७। यति कौं अपना लौंच करना होय तथा नवीन ग्रन्थ जोड़वे विषैं प्रारम्भ करना होय तथा कोई अपूर्व ग्रन्थ वांचना होय तथा नगर मैं भोजनकौं जाना होय तथा इन आदि कोइक महान् कार्य करना होय, तौ आचार्यपै आय विनय सहित हस्त जोड़, मस्तक नमाय, गुरुपै आज्ञा याचै। सो जैसी गुरु का आज्ञा होय, ताही प्रमाण करैं। सो प्रति-प्रच्छिन्न समाचार कहिये। ८। और जब काहू मुनिकूं पुस्तक चाहै, सो अपने गुरु पास होय तौ गुरु की आज्ञा सहित लेय तथा अपने गुरुपै नाहीं होय

और संघ में आचार्य के पास होय और शिष्य को ल्यावना होय, तो गुरु की आज्ञातैं ल्यावै। अपनी इच्छातैं नहीं करै, सो आन मन्त्र समाचार कहिये है।६। आगे संश्रय। सो संश्रय के पांच भेद हैं। सो कहिये—विनय-संश्रय, क्षेत्र-संश्रय, मार्ग-संश्रय, सूत्र-संश्रय और सुख-दुख-संश्रय—ऐसे ये पञ्च भेद हैं। अब इनका सामान्य अर्थ कहिये हैं। तहां कोई मुनीश्वर अन्य देशान्तर तैं आवैं तौ जिस संघ में आवे तिस संघ के यति आचार्य महाहर्ष सहित प्रमाद रहित होय आये मुनि के सत्कार कौं ताजीम (स्वागत) देय ताके अर्थ सात पैंड़ सन्मुख जाय यथायोग्य नमस्कार करें। पीछे आये मुनि के मार्ग खेद निवारण कूं यथायोग्य तिष्ठवैकौं स्थान देवें। पीछे मुनि के चारित्र की कुशल पूछैं। या कहें हे प्रभो! तिहारे रतनत्रय कुशल हैं? याका भावार्थ—यह जो तुम्हारे मोक्ष-मार्ग निरतिचार रह्या ऐसे आये मुनिकौं महा विनय सहित वचन कहि अपना धर्मानुराग प्रगट करते मन-वचन-काय की क्रिया करि तिनकूं साता उपजावैं, सो विनय-संश्रय इति विनय-संश्रय कहिये। १। आगे क्षेत्र-संश्रय। तहां जिस क्षेत्र का राजा पापी होय, अन्याई होय, अनाचारी होय तिस क्षेत्रमैं यति नहीं रहैं तथा जिस देश का कोऊ रक्षक नहीं होय राजा रहित क्षेत्र होय तो उस देशमैं मुनि नहीं रहैं और जिस देश-नगरमैं जीव-हिंसा विशेष होय, तहां यति नहीं रहैं तथा जिस देशमैं पापी-निर्दयी जीवन की वधवारी (बढ़वारी) की प्रवृत्ति होय। जहां धर्म रहित विपरीत जीवन का अधिकार होय ऐसे क्षेत्रमैं यतीश्वर नहीं रहैं तथा जो देश दीक्षा योग्य नहीं होय तथा जहां के जीव महाकसाई होंय, भोग-रत होंय, अनाचारी शुभ आचार रहित होंय, दीक्षा योग्य नहीं होंय, तिस क्षेत्र विषैं जगत् गुरु नहीं रहैं और जिस देश में अकाल पड़ गया होय, अन्न की वेदना करि अनेक जीव दुखिया होय रहे होंय इत्यादिक उपद्रव सहित क्षेत्र मैं मुनि का धर्म सधै नाहीं। तातैं दया-भण्डार संयम का लोभी ऐसे क्षेत्रन मैं नहीं रहै। अरु कदाचित् रहै तौ संयम नष्ट होय। तातैं ऐसे कहे कुक्षेत्रन में योगीश्वर नहीं रहैं और कैसे क्षेत्रन में रहैं, सो कहिये हैं। जहां कोई जाति का उपद्रव नहीं होय जिस क्षेत्र का राजा धर्मी होय, देश की प्रजा धर्मात्मा होय, दयावान होय, दीक्षा योग्य जीव होंय, संयमी जीवन की प्रवृत्ति शुभाचारी होंय इत्यादिक शुभ क्षेत्र का विचार करि अपने संयम की रक्षा योग्य क्षेत्र मैं रहैं। सो क्षेत्र-संश्रय कहिए। इति क्षेत्र-संश्रय। २। आगे मार्ग संश्रय कहिये है—जहां कोऊ मुनि देशान्तर तीर्थ विहार करतैं बहुत दिनतैं मिले होंय

तथा अपूर्व मिलाप होय। तब यतीश्वर परस्पर-आपस मैं सुख-दुख परीषहादिक मैं चारित्र की कुशल पूछैं। सो मार्ग-संश्रय है। इति मार्ग-संश्रय। ३। आगे सुख-दुख-संश्रय जहां कोई महामुनिकों देव मनुष्य पशुकृत महाघोर उपसर्ग हुआ ताकरि पीड़ित मुनिकौं देखि तिनकौं साता के निमित्त ओषधि आहार रहने को स्थानादिक देय साता उपजावैं, साता भये पै ऐसे वचन कहै विनय सहित धर्म अमृत की धारा बढ़ावते वचन बोले। जो हे यतिनाथ! हम दुख-सुख मैं तिहारे हैं। इत्यादिक हित-मित वचन का कहना, सो सुख-दुख-संश्रय है। ४। आगे सूत्र-संश्रय कहिये है। तहां शिष्य ने कोऊ आचार्य के पास अनेक शास्त्रन का अभ्यास किया। श्रुत समुद्र का पारगामी होय बहुत काल पर्यन्त पठन-पाठन किया अनेक शास्त्र गुरु के मुखतैं सुनैं तिनका रहस्य पाय सुखी भया। पीछे कोऊ और आचार्यन के ज्ञान की महिमा सुनि तिनके शास्त्र सुनिनै की इच्छा होय तथा अन्य मत के अनेक षट् मतन सम्बन्धी शास्त्र का रहस्य जानने की इच्छा होय तथा कोई तीर्थ विहार करवे की इच्छा होय इत्यादिक अपने उर का रहस्य गुरु के पास कहै। पीछे आचार्य की आज्ञा सहित एक मुनि साथ तथा दोय मुनि साथ तथा अनेक मुनि संघ सहित विहार करै सो सूत्र-संश्रय है। इति सूत्र-संश्रय। ५। ऐसे दश समाचार मुनीश्वर के विचारवे योग्य हैं, सो कहे ऐसे कहे जो गुरु दश भेद सो यह गुरु जब भगवान के मन्दिर विषैं दर्शनकौं प्रवेश करैं, सो कैसे जांय? सो कहिये है। उक्तं च "आचारसारजी।"

श्लोक—सर्वव्यासंगनिर्मुक्तः, सशुद्धकरणत्रय। धौतहस्तपदद्वन्दः, परमानन्दमन्दिरम् ॥ १ ॥
चैत्यचैत्यालयादीनां स्तवनादौ कृतोद्यमः। भवेदनन्तसंसारसन्तानोच्छित्तये यतिः ॥ २ ॥

अर्थ—सर्व संग रहित होए मन-वचन-काय शुद्ध करि दोऊ हाथ, पांव धोय महाहर्ष सहित चैत्यालय विषैं जाय प्रतिमाजी की स्तुति करै सो यति अनन्तभव संसार का छेदन करै है। भावार्थ—जब महामुनि श्री भगवान् के दर्शनकौं चैत्यालयमैं प्रवेश करैं। तब कमण्डलु, पीछी, पुस्तकादि परिग्रह होय सो तिनकौं बाह्य स्थान पै, एकान्त उच्च स्थान पै धरिकै आप निःपरिग्रह होय मन-वचन-काय शुद्ध करि अपने दोय हस्त, पांव प्रासुक जलतैं धोयकैं हर्ष सहित परमानन्दित होय ईर्या समिति करि जिन-मन्दिरमैं प्रवेश करैं। पीछे भगवान् की स्तुति करिवे का उद्यम करैं। विनयतैं अनेक स्तवन करैं। कैसी है भगवान् की स्तुति अनन्त संसार भवन की मृत्यु-

उत्पत्ति की पंक्ती ताकी छेदनहारी है। कैसी स्तुति करैं ? सो कहिये है—

श्लोक—तथार्हदादणश्चास्तरागद्वेष प्रवृत्तयः। भक्तिः भक्तयनुसारेण, स्वर्गमोक्षफलप्रदा ॥ ३ ॥

अर्थ—आप भक्ति रस करि भींजते मुनीश्वर भगवान् की स्तुति करैं। भो भगवन्! तुम अष्ट कर्म रहित वीतरागी हो आपके राग-द्वेष भाव नाश हो गये हैं। सो हे भगवान्! तुम तौ भक्तनकौं स्वर्ग-मोक्ष नहीं करौ हौ। परन्तु हे भगवन्! हमसे भक्तजन हैं तिनके भावन की प्रवृत्ति आपके चरण-कमलन मैं भक्ति रूप भई। सो वह भाव भक्ति ही भक्तन कूं स्वर्ग-मोक्ष की दाता है। आपतौ वीतराग हो ही परन्तु भक्ति की महिमा अपार है। तातैं इस बात निश्चय भई जो आप वीतरागी ही हौ।

श्लोक—घोरसंसारगम्भीरे, वारिराशौनिमज्जताम्। दत्तहस्तावलम्बस्य जिनस्येक्षणार्थमागमेन् ॥ ४ ॥

अर्थ—हे भगवन्! यह संसार-सागर दुख-जलि करि भऱ्या। तिस विषैं डूबते हमसे संसारी जीव तिनकौं हस्तावलम्बन करि आप काढ़ौ हौ। सो तिहारे देखवेकौं भक्तजन आवैं हैं। भावार्थ—जिनदेव की स्तुति मुनिजन करैं हैं। हे नाथ! यह संसार-सागर महागम्भीर जाका छोर नाहीं। तामैं पड़ते (गिरते) हमसे संसारी जीव तिनकूं आप अपनी वाणीरूपी हस्तावलम्बन का सहाय देय दया-भाव करि भव जल मैं डूबते बचावैं। तातैं हे प्रभु! तुमकूं परम उपकारी जानि आपके दर्शनकूं हम आये हैं तथा संसार जल मैं डूबते भव्य जीव तिनपै दया-भाव करि आप अनेक जीव डूबते बचावैं हैं। सो तिहारा जगत् यश सुनि जे भव्य हैं सो तिहारे देखवेकौं आवैं हैं। तिन भव्यन का भी यही मनोरथ है। जो हे भगवन्! हमकूं भी संसार-समुद्र मैं ते डूबने ते राखौ। इत्यादिक वीतरागी मुनि भी जिनदेव की स्तुति ऐसे करैं हैं। विनय तैं हस्त, पांव धोय हर्ष आनन्द सहित धरती देखते ईर्या करते जिनदेव के मन्दिरन मैं जांय हैं। तातैं अब भी जो भव्य जीव हैं जिनकौं भक्ति का फ़ल लैना होय, सो भव्य जीव धर्मात्मा मन-वचन-काय की क्रिया शुद्ध करि हर्ष सहित जिन-दर्शन कूं करना, सो ईर्या सहित करना योग्य है। आगे कहै हैं जो यह मुनि अपनी प्रमाद अवस्थातैं मन-वचन-कायतैं, कोई क्रिया मैं सूक्ष्म अतीचार लगै तौ ताके मेटवेकौं कायोत्सर्ग करैं। कायोत्सर्ग उसका नाम है जो अपनी भूलि की आलोचना, निन्दा, गर्हा करै, सो कायोत्सर्ग कहिए। सो केतेक काल तांई कायोत्सर्ग करै ?

ताके काल का प्रमाण बताईए है। कौन-कौन प्रमाद कार्य भये कायोत्सर्ग करैं, सो स्थान बताइये है—

श्लोक—ग्रन्थारम्भे समाप्ते च, स्वाध्यायेस्तवनादिपु। सप्तविंशतिरुच्छ्वास, कायोत्सर्गा मता इह ॥ ५ ॥

अर्थ—मुनीश्वर इतनी जगह कायोत्सर्ग करैं। एक तौ कोई नूतन ग्रन्थ जोड़वे का प्रारम्भ करैं, तब प्रथम कायोत्सर्ग करैं। जब शास्त्र की पूर्णता हो चुकै, तब कायोत्सर्ग करैं। शास्त्र का स्वाध्याय करैं, तब कायोत्सर्ग करैं, अर्हन्त सिद्धजी के गुणों का स्तवन करैं, तब कायोत्सर्ग करैं। इन जगह योगीश्वर कायोत्सर्ग करैं। ताके काल का प्रमाण सत्ताईस श्वासोच्छ्वास है। भावार्थ—इतनी जगह धर्म क्रियान मैं प्रमाद वशाय अतीचार लागा होय, तौ ताके मेटवेकौं यति कायोत्सर्ग करैं, सो एक-एक कायोत्सर्ग का काल सत्ताईस-सत्ताईस श्वासोच्छ्वास है।

श्लोक—अष्टाविंशति मूलेषु, दिनस्य मल शुद्धये। अष्टाग्रशत मुच्छ्वासाः, निशायामपि तद्दलम् ॥ ६ ॥

अर्थ—यतीश्वर अपने अठाईस मूलगुणनकौं तथा और व्रतकौं, कोई प्रमादवशाय अतीचार लागा जानैं, तौ ताके शुद्ध करवेकौं कायोत्सर्ग करैं। सो च्यारि प्रहर दिन मैं कोई अतीचार लागा होय, तौ ताकौं यादि करि ताके मेटवेकौं कायोत्सर्ग करैं। ताका काल एकसौ आठ श्वासोच्छ्वास है। कोई च्यारि प्रहर रात्रिमैं दोष लागा होय, तो ताके मेटवेकौं चौवन श्वासोच्छ्वास काल तांई कायोत्सर्ग करैं।

श्लोक—पाक्षिके त्रिशतं ज्ञेयं, चतुर्मास समुद्भवे। चतुः शतं शतं पंच, सांवत्सरे यथागमम् ॥ ७ ॥

अर्थ—और जहाँ यतीश्वर अपने व्रत मैं पन्द्रह दिन विषैं अतीचार लागा जानैं। तौ ताके मेटवेकौं तीन-सौ श्वासोच्छ्वास काल तांई कायोत्सर्ग करैं और च्यारि महीना मैं अपने संयम कूं दोष लागा यादि आवै तौ ताके दूर करवेकौं च्यारि सौ श्वासोच्छ्वास काल तांई कायोत्सर्ग करैं। आपकौं वर्ष दिन मैं कोई दोष लागा यादि होय, तिसके मेटवेकौं पाँचसौ श्वासोच्छ्वास काल तांई कायोत्सर्ग करैं।

श्लोक—पंचविंशति रुच्छ्वासा गोचरे जिन वन्दना। गते मले निषद्यायां, पुरीषादि विसर्जने ॥ ८ ॥

अर्थ—जो यतीश्वर गोचरी जो नगर मैं भोजनकौं जायकैं आवै, तब राह मैं प्रमादवश दोष लागा होय तौ ताके दूर करवेकौं पच्चीस श्वासोच्छ्वास काल तांई कायोत्सर्ग करैं। कहीं जिन वन्दनाकौं गये होंय, तौ राह मैं

प्रमादवशाय हिंसा भई ताके मेटवेकौं पच्चीस श्वासोच्छ्वास काल तांई कायोत्सर्ग करैं। आपतैं गुण अधिक आचार्यादिक मुनीश्वरों की वन्दनाकौं गये होंय अरु गमन करते दोष लागा ताके मेटवेकौं कायोत्सर्ग करैं। ताका काल पच्चीस श्वासोच्छ्वास जानना। यति कोई स्थान तजि कोई और ही स्थान जाय तिष्ठैं। तो पच्चीस श्वासोच्छ्वास काल तांई कायोत्सर्ग करैं। तनका मल क्षेपवे जांय, तब आय के कायोत्सर्ग करैं। मूत्र क्षेपैं तब कायोत्सर्ग करैं। नाक का, मुख का श्लेष्मा क्षेपैं तब कायोत्सर्ग करैं। सो पच्चीस-पच्चीस श्वासोच्छ्वास काल तांई कायोत्सर्ग करैं। ऐसे कहे जे ऊपरि अपने संयम कूं अतीचार के स्थान तिनके मेटवेकौं यथायोग्य काल तांई कायोत्सर्ग करि शुद्ध होंय, सो गुरु वन्दवे योग्य हैं। कैसे हैं गुरु संसार दशा तैं उदास हैं। तनतैं निष्पृह हैं पंचेन्द्रिय भोगनतैं विमुख हैं। आत्मिक रस कर रांचे, धर्म मूर्ति, जगत् वल्लभ, जगत् पूज्य पाप-कर्म तैं भय-भीत दयानिधान मुनि अपने दोष मेटवेकौं ऐसे कायोत्सर्ग करि शुद्ध हो हैं। ऐसे कहे भेद सहित यतीश्वर अनेक गुण सागर पूजवे योग्य हैं। ये ही गुरु उपादेय हैं। पहले कहे कुगुरुन के लक्षण तिन सहित होंय ते कुगुरु हेय हैं। जे गुरु होय शिष्य ते छल करि शिष्य का धन हरै वाकौ अपने पांवन नमाय मान करै सो कपटी गुरु पाषाण की नाव समान शिष्य के परभव सुधरवे-बिगड़वे का जाकै सोच नाहीं सो गुरु लोभी आप संसार-सागर डूबैं। और शिष्यनकौं डोवैं। ऐसे गुरु विवेकीन करि तजिवे योग्य हैं। इति गुरु परीक्षा मैं हेय-उपादेय कही।

इति श्रीसुदृष्टितरंगिणी नाम ग्रन्थ मध्ये गुरु परीक्षामैं आचार्यादि दश भेद मुनि अरु मुनि योग्य समाचार दश आचारसारजी ग्रन्थानुसार कायोत्सर्ग करने के स्थान तथा कायोत्सर्ग का काल वर्णनो नाम दशमोऽध्यायः समाप्तः ॥ १० ॥

आगे धर्म विषैं हेय-उपादेय कहिये है। तहां प्रथम ही कुधर्म के लक्षण कहिये हैं—

गाथा—केवलणाणय रहियो कल्लाण जीव परघादो। माण णांण धण हर्‌यो एवं कुधम्मभासियो देवं ॥ ३२ ॥

अर्थ—जो धर्म केवलज्ञान रहित होय, दया-भाव रहित होय, पर जीव का घातक होय, मान-ज्ञान-धन का हरणेवाला होय, ऐसा होय, सो कुधर्म है। ऐसा जिनदेव ने कह्या है। भावार्थ—जो केवलज्ञानी के वचन रहित होय, हीन ज्ञानी के वचन करि प्ररूप्या होय, दया-भाव रहित हिंसा करवे का जामैं उपदेश होय। जीव हिंसामैं बड़ा पुण्य बन्ध बताया होय। पराये मान हरवे का छल-बल करि परकूं अपने पांव नमावे का कथन होय, सो

कुशास्त्र है तथा जिनकौं सुनि, भोले जीव ज्ञान बढ़ावे की इच्छा तजैं, सो ये पराए ज्ञान हरनहार कु-शास्त्र कहिये पराया धन पापमैं लागै ऐसा उपदेशदाता शास्त्र सो कु-शास्त्र है। भोले जीवनकौं बहकाय पाप पंथ लगाय नरक मन्दिर का हिंसा द्वार तामैं घालि नरक मन्दिर पहुँचावै, सो कु-धर्म है और जा विषैं अनेक मायाचार सहित पाखण्डिन करि भोले जीवनके ठगने का कथन होय, सो कु-धर्म है। जामैं अनेक विषय कषाय पोषने का कथन होय, सो कु-धर्म है। जिनका उपदेश सुनैं स्त्रीन के भोग की इच्छा होय, धन बढ़ावे की इच्छा होय, राज की इच्छा होय, तिनकौं सुनि युद्ध की इच्छा होय, सो कु-शास्त्र हैं और अपनी महन्तता प्रगट करवे के निमित्त कोई व्यन्तरादिक देवन का सहाय पाय बनाए होंय, सो कु-शास्त्र हैं और जहां अनेक अभक्ष्य वस्तु का भोजन कह्या होय तथा जामैं आचार जो भली क्रिया ताका निषेध करि हर कछू का भोजन बताया होय ऐसा अनाचार सहित होय, सो कु-शास्त्र है। जहां मद्य-मांस—भक्षण मैं पाप नहीं कह्या होय, सो कु-शास्त्र है और जिनमैं तीर, गोली, बन्दूक, पिंजरा, फन्दा, फांसी, धनुष, बाण, तोप की नालि, रामचंगी, दारू, रंजक, छुरी, कटारी, बरछी, गुप्ती इत्यादि हिंसा के कारण ए सर्व शस्त्र तिनके बनायवे की कला-चतुराई कही होय, सो कु-शास्त्र हैं। नाना प्रकार चित्राम-कला, शिल्प-कला इत्यादिक चतुराई जहां कही होय, सो कु-शास्त्र हैं और जहां कु-दान जो स्त्री का दान, रति-दान, दासी-दान, दास-दान—ए विषयी जीवन के प्ररूपे, पर-स्त्रीन के भोगन की इच्छावाले पण्डित, तिनके कहे है। जिनमैं ऐसा कथन चलै, सो कु-शास्त्र हैं। जिनमैं कु-तप हिंसाकारी, कु-तीर्थन की महन्तता का कथन हो, सो कु-शास्त्र हैं। जिनमैं विषय पोषने के कारण राग-रङ्ग, नृत्य-गान बजावने की कला प्ररूपी होय, सो कु-शास्त्र हैं। जहां मन्त्र, जन्त्र, तन्त्र, ठान, टोना इत्यादिक पर के वशीकरणादि का कथन होय, सो कु-शास्त्र हैं। जिनके सुनैं हिंसा, मोह, क्रोध, मान, लोभ बढै, सो कु-शास्त्र हैं। जिनके सुनें काम की उत्पत्ति होय, जिनमैं चार कला का व्याख्यान होय, कन्दमूल सहित भोजन, रतालू, पिण्डालू, जमीकन्द, गूलर, बड़फल, पीपरफल इत्यादिकन का भक्षण करैं पाप नहीं कह्या होय, सो कु-शास्त्र हैं। जिनमैं भूत-प्रेतादि, व्यन्तर-देव तथा अपनी मति कल्पना करि माने ऐसे शीतलादिक देवन का चमत्कार, जिनकी पूजा करवे की विधि, तिनके प्रसन्न होने की विधि

अरु प्रसन्न भये प्रगट होय पुत्रादिक की प्राप्ति यह फल, इत्यादिक जहां कथन-उपदेश होय, सो कु-शास्त्र हैं। अनेक शास्त्र जो परमार्थ कथा रहित, पाप-बन्ध के करनेहारे, हीन ज्ञानी कु-कविन के प्ररूपे स्वेच्छा करि रचे जो रसिक प्रिय सुन्दर शृङ्गारादि विषयों कर पूर्ण हैं, कु-शास्त्र हैं। क्योंकि ये मोक्ष-मार्ग रहित संसार दशा के बढ़ावनहारे ही हैं। ऐसा जानना। तातैं तजनै योग्य हैं। इन ही शास्त्रन की आज्ञा प्रमाण जीव का श्रद्धान सो ही कु-धर्म है। इनका फल अनिष्ट जानि सम्यग्दृष्टिन की दृष्टि मैं सहज ही हेय भासै है। इति कु-धर्म कथन। आगे सु-धर्म का कथन संक्षेप कहिए है।

गाथा—अपरापर अविरुद्धो णवणय भंगाय सत्तस्याज्जुत्तो। पण पमाण अखण्डो सधम्मो जिण भासयो सुद्धं ॥ ३२ ॥

अर्थ—अपरापर जो आगे-पीछे अन्त तांई शुद्ध कथन होय। नव नय, सप्तभङ्ग "स्यात्" पद सहित होय पञ्च प्रमाण करि अखण्डित होय, सो धर्म जिन भाषित शुद्ध धर्म है। भावार्थ—भगवान की वाणी में जो वस्तु निषेध करी ताका ग्रहण कोई भी जिन-शास्त्र में नाहीं। जैसे—कोई शास्त्रन में प्रथम ही सप्त व्यसन का निषेध किया ताका ग्रहण आदितैं अन्त तांई कहूँ नाहीं तथा और क्रोधादि कषाय पाप के अर्थ अभक्ष्यादि अनाचार हिंसादिक पापन का निषेध किया तिनका ग्रहण कोई भी शास्त्रन मैं नाहीं। ताका नाम—आदि-अन्त अविरुद्ध कहिये और जो जिस वस्तुकूं कहीं तौ निषेधी कहीं ग्रहण करी। सो कथन विरुद्ध रूप है। तातैं सत्य-धर्म आदि अन्त शुद्ध है और नव नय के नाम—नैगम संग्रह व्यवहार ऋजूसूत्र शब्द समभिरूढ़ एवं भूत द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक इनका सामान्य अर्थ—जिस वस्तु का प्रारम्भ किए ही ताकौं भई कहिये। सो नैगमनय है। जैसे—कोई पुरुष घर तजि अन्य देशकूं गया। सो दस-बीस दिन गये पहुँचेगा। तुरन्त ही वाके घर बारों को पूछिए जो फलाना कहां है? तब वह घरबारे कहैं, फलाना देश गया। सो तुरन्त तौ अपने नगर मैं ते ही निकसा नहीं है। परदेश गया काहे कूं कहे हैं? परन्तु इनकी तरफ तैं गया सबतैं मिलि बिदा मांगि गया तातैं इनकी तरफ तैं गया कहिए। यह नैगमनय हैं। ऐसे ही अनेक जगह लगाय लेना।१। एक वचन में बहुत का नाम ग्रहण होय, सो संग्रह-नय है। जैसे—काहूनै कही वह बाग है। सो बाग कछू वस्तु नाहीं, किसी वृक्ष का नाम बाग नाहीं। जुदे-जुदे वृक्ष देखिये, तौ बाग कछू वस्तु नाहीं। परन्तु बहुत वृक्षन का

समूह होय, सो बाग कहिये। याका नाम संग्रह-नय है तथा बहुत मनुष्य के समूहकौं यात्रा कहिये तथा हाट कहिये तथा गुदरी कहिये तथा बारात कहिये। ए सर्व यथायोग्य कारण पाय संग्रह नय के शब्द हैं। २। जातैं लौकिक सधै, सो व्यवहार-नय है। जैसे—हुण्डी विषैं लाख रुपये सौ योजन दूर क्षेत्र पै दिशावर, तहां कूं लिख दिए। वह तनक-सा कागज काहूकूं दिया। सो वानै परतीत करी, रुपये दिए, हुण्डी लाई। पीछे दूसरी दिसावर ये हुण्डी के लाखों रुपये पावना, सो व्यवहार-नय है तथा ऐसा कहना जो यह हमारा पुत्र है, ए पिता है, ए माता है, ए स्त्री है, ए अरि (शत्रु) है, ए मित्र है इत्यादिक ए सर्व वचन व्यवहार-नय करि प्रमाण हैं। निश्चय-नय करि आतमा काहू का पिता-पुत्र नाहीं। संसार भ्रमण करते ऐसे अनन्ते नाते भए हैं। परन्तु लौकिक-नय करि सत्य भी हैं। तातैं यह व्यवहार-नय है। ३। और "तक्काले तम्मं ये परणातीं" याका अर्थ—जिस काल में द्रव्य जैसा है, तैसा ही कहिए। जैसे—कोई कच्चा आम है ताकौं तब खट्टा ही कहिए। तिस ही आमकौं पाल मैं देय पकाय लाल-पीत करिए तब ही उस आमकौं मिष्ट कहिए। जब कच्चा था, तब खट्टा ही था। अरु अब पका, तब मिष्ट ही है तथा कोई पुरुष काहू तैं युद्ध करै है तब ताकूं क्रोधी कहिए। जिस समय वही जीव पूजा-दान करता होय तब धर्मी कहिए। जिस समय जैसा होय तैसा ही कहिए, सो ऋजुसूत्र-नय है। ४। और शुद्ध शब्द का मानना, सो शब्द-नय है। जैसे काहू ने कही राजा। तब शब्द-नय बारा कहै। राजा कहना अशुद्ध शब्द है। तातैं ऐसा कहौ नरेन्द्र यह शुद्ध शब्द है। इत्यादिक शब्द के शुद्ध अशुद्ध भाव की अपेक्षा बोलिये, सो शब्द-नय है।५। जिस वस्तु मैं गुण तो और अरु नाम और सो समभिरूढ़-नय है। जैसे—चलतीकूं गाड़ी कहिए तथा गाड़ी कूं उखली कहिए तथा बलहीनकौं जौरावर नाम कहना तथा धन हीन को लक्ष्मीधर कहिए। ए सर्व वचन समभिरूढ़-नय तैं सत्य हैं। ६। जा वस्तुकौं जैसी की तैसी ही कहिए। जैसे—काहूकौं राज करते राजा कहिए, सो एवं भूत-नय है। ७। और वस्तु का कबहूं अभाव नाहीं। जैसे—जीव का कबहूं अभाव नाहीं। ऐसा कहना द्रव्यार्थिक-नय है। जैसे—कहिए जीव चेतना रूप अविनाशी है, अजर है, अमर है, शुद्ध है, अमूर्तिक है इत्यादिक कहिए सो निश्चय (द्रव्यार्थिक) नय है तथा ऐसे कहिये जो एक ही जीव च्यारि गति में भ्रमण करै है, यह निश्चय-नय है। ८। ऐसा कहिये जो यह देव जीव, ये मनुष्य जीव, ये पशु जीव,

ये नारकी जीव इत्यादिक कहना, सो पर्यायार्थिक-नय हैं तथा ऐसे कहिए जो ये जीव अनन्तकाल का जन्म-मरण करै है। ए सर्व पर्यायार्थिक-नय हैं। ६। इनका सामान्य भाव कह्या। विशेष नव ही नयन का नय चक्र आदि ग्रन्थन तैं जानना। इनही नव नयन करि अनेक वस्तुन का स्वभाव साधिये है। आगे कहिये है सप्तभङ्ग सो भी इनही नय करि सिद्ध होय हैं। तिनके नाम—स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, स्यात् अस्तिनास्ति, स्यात् अवक्तव्य, स्यात् अस्ति अवक्तव्य, स्यात् नास्ति अवक्तव्य, स्यात् अस्तिनास्ति अवक्तव्य—ए सप्तभङ्ग हैं। अब इनका अर्थ—एक ही वस्तु पै नय प्रमाण सप्तभङ्ग साधिए है। जैसे—कोई नय कही हमारा तन स्वद्रव्य, क्षेत्र काल, भाव स्वचतुष्टय की अपेक्षा अस्ति है। तब जैनी नै कह्या स्यात् कोई नय करि। १। तब काहू नैं रतन पै अशर्फी धरी और कही कि रतन पर-द्रव्य के चतुष्टय करि नास्ति और मेरी अशर्फी अपने द्रव्य क्षेत्र काल भाव करि स्वचतुष्टय की अपेक्षा अस्ति है। तब जैनीनै कह्या स्यात् कोई नय करि। २। अपने चतुष्टय की अपेक्षा रतन अस्ति है। पर अशर्फी के चतुष्टय की अपेक्षा रतन नास्ति है। अरु अशर्फी के चतुष्टय की अपेक्षा अशर्फी अस्ति है। रतन के चतुष्टय की अपेक्षा अशर्फी नास्ति है। ऐसे एक बार ही एक वस्तुमैं अस्ति नास्तिपना दोऊ सधै है। तातैं अस्ति नास्ति। तब जैनी ने कह्या स्यात् कोई नय करि। ३। जो रतन कूं अस्ति कहिये, तौ अशर्फी अपने चतुष्टयकौं लिए है। सो ताकौं नास्ति कैसे कहिए? अरु रतनकूं नास्ति करि अशर्फी अस्ति कहिए तौ रतन अपने चतुष्टय तैं अस्ति है ताकौं नास्ति कैसे कहिए? अरु एक ही बार अस्तिनास्ति कही जाती नहीं। तातैं अवक्तव्य कहैं। तब जैनी नै कह्या स्यात् कोई नय करि। ४। अरु हे भाई! रतन तौ अस्ति है अपने चतुष्टय करि और रतन के चतुष्टय करि अशर्फी नास्ति भी है। परन्तु कही नाहीं जाय। क्योंकि अपने चतुष्टय तैं अशर्फी अस्ति है तातैं स्यात् अस्ति अवक्तव्य है। ५। असर्फी के चतुष्टय करि रतन नास्ति है। परन्तु कह्या नहीं जाय क्योंकि रतन प्रत्यक्ष है। तातैं स्यात् नास्ति अवक्तव्य कहैं। ६। रतन अपने चतुष्टय की अपेक्षा अस्ति है। अरु पर चतुष्टय की अपेक्षा नास्ति है। परन्तु दोऊ एक ही बार कहे जाते नाहीं। अरु अशर्फी अपने चतुष्टय की अपेक्षा अस्ति अरु पर के चतुष्टय की अपेक्षा नास्ति है, परन्तु कह्या नहीं जाय। तातैं स्यात् अस्ति-नास्ति अवक्तव्य कहैं। ७। ऐसे सप्तभङ्ग अनेक पदार्थन पै द्रव्य क्षेत्र काल भाव करि साधिये। ऐसे सप्तभङ्गन

सहित जिनवाणी मैं कथन है। बहुरि कैसा है जिन-धर्म जो पञ्च प्रमाणन करि खण्ड्या नाहीं जाय हैं। सो पञ्च प्रमाण कौन से? सो कहिए हैं। लौकिक-प्रमाण, परम्पराय-प्रमाण, अनुमान-प्रमाण, शास्त्र-प्रमाण और प्रत्यक्ष-प्रमाण—ये पञ्च प्रमाण हैं। सो इन करि जो धर्म खण्ड्या जाय सो धर्म झूठा है। इन पांच प्रमाणों का सामान्य भेद करि निर्धार करिए है। जो वस्तु लौकिक विषैं निषेधी होय सर्व करि निन्दवे योग्य होय जाके किये राज पञ्च का दिया दण्ड पावैं ऐसी क्रिया जाके देव-गुरु करते होंय, सो ताके देव-गुरु झूठे हैं। तिनके करवे का जिनके शास्त्रन मैं कथन होय, तिनका धर्म झूठा अयोग्य है। तजिवे योग्य है। सो ही कहिये है। जैसे—लौकिक मैं सप्त-व्यसन निन्द्य हैं। सो जिनके देव-गुरु द्यूत-व्यसन रमते होंय, सो हीन हैं। लौकिक मैं द्यूत रमैं ताकूं लुच्चा कहैं हैं। तिस जुवारी की कोई प्रतीत नहीं करै। ऐसा जुवा जाके देव-गुरु रमते होंय, सो धर्म तजिवे योग्य है। पर जीवन के मांस-कलेवर कोई छीवता नाहीं अरु कदाचित् छीवै ही तौ महाग्लानि उपजै। जब स्नान करै सर्व वस्त्र उतारै तब शुद्ध होवै। जाके देखै ही घृणा आवै दीखते महाअशुभ महादुर्गन्ध जाकौं स्वनादिक (कुत्ते आदिक) भी नहीं ग्रहैं ऐसा अशुचि का समूह आमिष है। ऐसे मांसकौं जाके देव-गुरु खावते होय जिनके शास्त्रन मैं मनुष्यनकूं मांस का भोजन लेनै योग्य कह्या होय। सो धर्म पापाचारी तजवे योग्य है। यह धर्म लौकिक के निषेधवे योग्य है और मदिरा के पीये बुद्धि नष्ट होय। माता, पुत्री, स्त्री, भगिनी इत्यादिक भेद ताकौं नहीं भासै ए सर्व एक-सी जानै। पग-पग पै मूर्छा खाय पड़े है। लोकन मैं हाँसि होय अनेक लोक ताकी अज्ञान चेष्टा देखि कौतुक देखवेकौं इकट्ठे होंय ताकी सर्वजन निन्दा करैं। ऐसी मदिरा जगत्-निन्द्य ताकौं जाके शास्त्रन मैं लेने योग्य कही होय ऐसी मदिरा जाके देव-गुरु-भक्त लेते होंय, सो धर्म निन्द्य हीन तजिवे योग्य है। ये भी लौकिक के निन्दवे योग्य है जिस वेश्या का तन सदैव सूतवत् है। जाकी जाति-कुल की खबर नांहीं। सर्व ऊँच-नीच कुल के मनुष्यन की भोगनहारी। निर्लज्जता की हद्द जाके घर मार्ग की राह विवेकी भूल हू नहीं जाय। ऐसी कुशील मन्दिर या वेश्या जाके घर गमन किए लोक निन्दा पावै। पञ्च सुनै तौ पांति तैं निकासैं। ऐसी वेश्या-कंचनी का सेवन जाके देव-गुरु-भक्त करते होय, सो धर्म भी असत्य पापमयी, झूठा है। यह भी लौकिक तैं निन्द्य है। कोई जीव काहू जीव का घात करै, तौ लोक कहैं, याने पंचेन्द्रिय मनुष्य या पशु

जीव मार्‌या, सबनैं देख्या। सो यह महापापी है। हत्यारा है। तब पञ्च तौ याकौं जीव-हत्या लागी जानि, न्यातितैं निषेधैं और राजा याकौं पापी जानि, बिना प्रयोजन दीन-पशु का घाती देख, घर लूटि ले, ताका हाथ, नांक छेदै। ऐसा प्रत्यक्ष लौकिक मैं जीव घात करना जाके शास्त्र में पुण्य कह्या होय और जाके देव-गुरु-भक्त जीव घात मैं मगन होय, जीव घात करते होंय। सो धर्म, दया रहित, जीव घातक, तजिवे योग्य है। ये भी धर्म लौकिक तैं निन्द्य है। क्यों, जो लौकिक है तौ दया करि जीवन की रक्षाकौं सदाव्रत देय हैं। पशूनकों घास निक्षेपै है, प्यासेन कूं जल देय हैं। नग्न को वस्त्र देय है। रोगीकौं भेषज देय है। इत्यादिक जैसे-तैसे जीवन की रक्षा करै है। जाके धर्म मैं जीव घात मैं पुण्य कहा होय, जीवन की हिंसा कही होय, सो धर्म दया रहित, असत्य है। यह धर्म भी लौकिक करि खण्ड्या जाय है। जे पराया चेतन-अचेतन परिग्रह, छल-बलि करि हरै, ताकौं चोर कहिए। सो जीव राज, पञ्च करि दण्डवे योग्य है। लोक निन्द्य है। सो ऐसी चोरी जाके देव-गुरु करते होंय। अपने भक्तकौं छलतैं फुसलाय वाका धन ठगैं, पराई स्त्री, पुत्री शुभ देख, ले जाँय, सो चोर। ऐसे कथन जाके धर्म मैं होंय। जाके देव-गुरु ने पराया धन, स्त्री, पुत्री हरना कह्या होय, सो धर्म असत्य है। यह भी चोर-धर्म लौकिक तैं निन्द्य है तातैं हेय है। पर-स्त्री के सेवन के योग्य तैं पञ्च तौ जाति तैं निकासै हैं। इस कुशीली पुरुष का राजा घर लूटै है अङ्ग उपाङ्ग छेदै है, मारै है। खररौपणादि (गधे पर सवारी) अपमानादिक अनेक दुख देय है। ऐसी अवार लौकिक विषैं प्रत्यक्ष देखे हैं। अरु जाके धर्म मैं पर-स्त्री का सेवन, जो पर-स्त्री जाका भरतार जीवता होय तथा भर्तार रहित विधवा होय तथा बिना ब्याही कुमारी होय तथा दासी होय इत्यादिक पर-स्त्री हैं। तिनके सेवन का दोष, जिनके धर्म विषैं नहीं कह्या होय। जाके देव-गुरु पर-स्त्री हर ले जांय तथा उनके सेवन करते दोष नहीं कह्या होय। जाके देव-गुरु पर-स्त्रीनतैं हाँसि-कौतुक करतें होंय, पर-स्त्री सेवते होंय, सो धर्म भी कामी देव-गुरुन का उपदेश्या असत्य है। यह भी लौकिक करि खण्डिये है। कुशील है सो तौ महापाप, लोक मैं प्रगट कह्या। अरु शील है सो उत्तम-धर्म है। तातैं यह भी धर्म, लोकापवाद सहित तजिवे योग्य है। ऐसे सात व्यसन लौकिक मैं दण्डवे योग्य कहे हैं सो ऐसे व्यसनों का प्रवेश जाके धर्म मैं पाईए, जो धर्म लौकिक-नय प्रमाण तैं खण्ड्या जाय, सो असत्य है। जो क्रोधी होय, ताकौं

लोक कहैं यह महा क्रोधी है। पापी, बात कहै ही लड़ै है। मारै है। याका सहज-स्वभाव सर्प समान है। जो कोई मानी होय, ताकौं लोक कहैं यह बड़ा मानी है, सो कहीं मारऱ्या जावेगा, बहुत-मान योग्य नाहीं। मायावीकों लोक कहैं, यह बड़ा दगाबाज है। याके चित्त की कोई नहीं जानैं। यह महापापी है। कोई लोभी होय, तो ताकौं लोक कहैं, यह बड़ा लोभी है। याके चित्त पास बड़ा धन है। यह वा धन कूं नहीं खाय हैं। नहीं काहूकौं खवावै है। नहीं धर्म मैं लगावै है और भी धन जोड़वे का उपाय करै है। ऐसे यह क्रोध-मान-माया-लोभ सहित जीव होंय, जो पर कूं मारने कूं शस्त्र धारते होंय ऐसी कषाय जाके धर्म मैं करनी कही होय, जाके देव-गुरु-भक्त महाकषायी होंय, सो भयानीक-धर्म तजवे योग्य है। तातैं धर्म कषाय रहित है। लौकिक विषैं बड़ा परिग्रह-आरम्भ होय, ताकूं बड़ा गृहस्थ कहिए। पुत्र-स्त्री आदि कुटुम्ब होय, काहूतैं स्नेह, काहूतैं द्वेष करनहारा होय, रागी-द्वेषी होय, ते गृहस्थ हैं। सो जाके धर्म मैं परिग्रह-आरम्भ-कुटुम्ब सहित, रागी-द्वेषी देव-गुरु, कहे होंय। सो धर्म संसार विषैं भ्रमण करावनहारा है। क्यों? देखो, लोक विषैं तो त्याग पूज्य है। अब भी जो घर कूं तजि, वन मैं रहैं। नगन रहैं तथा लंगोट मात्र होय, तिनकूं बड़े-बड़े परिग्रह धारी राजादि, पूजते देखिए हैं। तातैं परिग्रह सहित जे देव-गुरु हैं, सो लौकिक तैं निषेधिये है। तातैं धर्म सोही सत्य है जाके देव-गुरु, राग-द्वेष-परिग्रह रहित होंय। इत्यादिक लौकिक प्रमाण तैं जो धर्म खण्ड्या जाय, तो और प्रमाण तैं तो खण्डै ही खण्डै। ऐसे जे-जे दोष लौकिक निन्द्य हैं, तिन सहित कोई धर्म होय सो असत्य है। कोई लौकिक मैं भगवान की पूजा करै, दान देय, तप संयम करै, समता भाव सहित रहै, शीलवान होय, जाके क्रोध-मान माया-लोभ दीर्घ नाहीं होय इत्यादिक गुण हैं, तिनकौं सर्व लोक पूजैं हैं। अच्छे जानि प्रशंसा करै हैं। कोई जीव प्रभु की पूजा स्तुति करै, तो ताकौं देखि लोक कहैं, यह धन्य है, भलाभक्त है। याके सदैव प्रभु की भक्ति-पूजा-सुमरण ही रहै है। ऐसा जानि सर्व पूजैं। कोई धर्मातमा कूं दान देता देखैं, ता लोक कहैं। यह धन्य है। महादयावान है। बहुत दीनन कूं दान देय, तिनकी रक्षा करै है। कोई तपसी नाना उपवास सहित अनेक तप-संयम करता होय, तौ लोक याकी अवस्था देखि, हर्ष पाय कहैं। यह तपसी महासंयमी है, पूज्य है। सर्व याको ऊँच जानि पूजैं। कोई समताभावी कूं, दुष्ट

जीव दुर्वचन कहै, मारे, बन्धन देय। अरु वह तपसी काहू कूं कछू नहीं कहै। कोई तैं द्वेष नहीं करै, समता भाव राखै, तौ उस तपसी कूं लोक कहैं, यह धन्य है। बड़े धीर समता परिणामी हैं। ऐसा जानि सकल लोक पूजै हैं। कोई मान नहीं करै, तो लोक कहैं यह बड़ा मनुष्य है। याकैं मान नाहीं। कोई दगाबाज नाहीं होय तौ लोक कहैं, यह बड़ा शुद्ध जीव, सरल परिणामी है। याके कुटिलताई नाहीं, यह धन्य है। ऐसा जानि स्तुति करैं, याकौं पूजैं। कोई परिग्रह पुत्र, स्त्री, घर, धन तजि वन में रहै तौ लोक कहैं यह धन्य है। सर्व घर-धन-भोग तजि समता धरि योग धर‍्या है। ऐसा जानि सर्व लोक पूजैं और कोई नगन रहता होय। मिलै तौ खाय नहां भूखा रहै। काहू पै जांचै नाहीं। तौ लोक याकी पूजा करैं। ऐसे कहे लौकिक करि पूजने योग्य जे जगत् गुण सो जिस धर्म मैं इन गुणन का कथन होय सो धर्म पूजने योग्य सत्य धर्म है। ऐसे तौ लौकिक प्रमाण करि धर्म की परीक्षा करिये। सो यह जिन-धर्म लौकिक करि पूज्य है। ऊपर कहे जे गुण यह तिन सहित है। तातैं लौकिक प्रमाण करि खण्ड्या नहीं जाय है। ऐसे लौकिक प्रमाण करि अखण्ड जिन-धर्म जानना। इति लौकिक प्रमाण। २।

आगे परम्पराय कहिये है। बहुरि परम्पराय ताकौं कहिए। जो वस्तु आगे तैं होती आई होय। अरु काल-दोष तैं वर्तमान काल कबहूँ नहीं होय, तो परम्पराय तैं जानि लेनी। जैसे—अपने पितामह (पिता के पितादिक) कुल विषैं आगे बड़े थे अवार वर्तमान काल मैं नाहीं सर्व परलोक गए। परन्तु तिनकी बड़ाई धन की प्रचूरता हुक्म शुभ क्रियादि और के मुख तैं सुनि जानिए है जो हमारे बड़े ऐसे थे। तिनकी ऐसी धर्म-कर्म रूप व्यवहार-चलन क्रिया थी। ऐसी प्रतीति भई तथा कागज-पत्रन तैं देखिये जो अपने बड़ौं के लाखौं रुपये औरन से लेने हैं और लाखौं ही बड़ौं के शिर के देने हैं। सो सर्व रोजनामचा-खातान तैं जानिये। परम्पराय प्रमाण करिकै ही लेनेवालों तैं लीजिये हैं और देनेवालोंकौं दीजिए है। सो आप तौ लेने-देने तैं वाकिफ-हाल नाहीं। परन्तु रोजनामचा-खातान तैं खत-पत्रन तैं देना-लेना सत्य होय है। सो यह परम्पराय प्रमाण है। तैसे ही तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती, नारायण, बलभद्र, प्रतिनारायण, कामदेव, नारद, रुद्र, मण्डलेश्वर, महामण्डलेश्वर, अर्धमण्डलेश्वर इत्यादि पदस्थधारी पुरुष आगे भये थे। अब काल-दोष तैं इन पदस्थधारी नाहीं; परन्तु

तिनके नाम लौकिक मैं सुनिए हैं। सौ तिन पदवीधारीन पुरुषन के कुल तिनके माता-पितान की परिपाटी आदिक कथा तथा तिनकी उत्पत्ति नाम राज्य-सम्पदा भोग सुख पुरुषार्थ शूरपणा पराक्रम सैन्य दल इत्यादिक वार्ता है, सो परम्पराय प्रमाण है। सो ऐसा परम्पराय शास्त्रन तैं जानिए अरु लौकिक तैं जानिए है ऐसा ही श्रद्धान करिए है। सो जिनके धर्म-शास्त्रन मैं ऐसे पुरुषन की उत्पत्ति कुल राज्य-सम्पदा भोग सुख वैराग्य भए दीक्षा ग्रहण मुनिपद का पालना मुनि-श्रावकन का आचार प्रवृत्ति इत्यादिक कथन जहां पाइए, सो धर्म सत्य है। सो ऐसे परम्पराय करि मिलता होय सो धर्म सत्य है और नग्न गुरु जिनका निर्दोष भोजन आरम्भ रहित वीतराग अनेक गुण सम्पदा सहित देव-इन्द्रन करि वन्दनीक मुनीश्वर आगे थे अब कालदोष तैं नाहीं, परन्तु शास्त्रनतैं सुनिये हैं कि ऐसे गुरु होंय सो आगे थे सो ऐसे गुरुन का कथन जिस धर्म मैं होय सो धर्म परम्पराय प्रमाण है तथा नवनिधि चौदह रतन कल्पवृक्ष पारस चिन्तामणि, ए उत्तम वस्तु हैं। सो इनका नाम तो सुनिए है और अवार काल-दोष तैं दीखता नाहीं। आगे थे सो तिनके नाम गुण आकार और ए कौन-कौन कैं होंय सो ऐसा कथन जिस धर्म विषैं होय सो धर्म परम्पराय प्रमाण करि शुद्ध सत्य है। या नय तैं भी अखण्ड है। ऐसा जिन-धर्म अखण्ड जानना। इति परम्पराय प्रमाण। २। आगे अनुमान प्रमाण कहिये है। बहुरि अनुमान ताकौं कहिए जो अपनी बुद्धि के प्रभाव करि वस्तुकौं यथावत् विचारकै श्रद्धान कीजिये। जैसे— लौकिक में तथा परम्पराय धर्म दया सहित कहें हैं। अरु कोई अल्पज्ञानी खेटक (शिकारी) व्यसन रंजित धर्म हिंसा मैं बतावै तौ विवेकी अनुमान तैं ऐसा विचारैं। जो हिंसा मैं धर्म होय, तौ दीन जीवनकौं तौ सब मारैं। रङ्कन कूं दान कोई भी नाहीं देय। जहां रङ्क जाय सो धर्म होनेकूं हर कोई ही मारै। सर्व जीव धर्म के लोभी परस्पर वह वाकौं मारै वह वाकौं। धर्म के वास्ते सर्व परस्पर युद्ध करि मरैं। सो तौ अनुमान मैं तुलती नाहीं और लौकिक मैं भी दीखती नाहीं और लोक मैं भी धर्म के निमित्त केई तो सदावर्त देते दीखैं हैं। केई धर्म निमित्त प्यासे कूं जल पियावैं है। केई दया करि शीत मैं दीननकूं वस्त्र देय हैं। इत्यादिक तौ लौकिक मैं दीखैं हैं। सो ऐसा भासै है कि धर्म दयामय ही है और हिंसा मैं धर्म सम्भवता नाहीं ऐसा विचार बुद्धि ही तैं अनुमान करि धर्म का श्रद्धान दयामयी करै। इनकौं आदि अनेक नयन करि, वस्तुकौं अनुमान तैं विचारना।

सो अनुमान प्रमाण सत्य है। ऐसे जिस धर्म मैं अनुमान का कथन होय, सो सत्य-धर्म जानना। सो जिन-धर्म अनेक नय युक्ति और अनुमान का समुद्र है। सो यह अनुमान नय तैं अखण्ड जानना। इति अनुमान प्रमाण।३।

आगे शास्त्र प्रमाण कहिए हैं। केतेक वस्तु पदार्थ ऐसे हैं, जो शास्त्रन तैं प्रमाण कीजिये है। द्रव्य-पदार्थ अपने श्रद्धानपूर्वक तथा प्रत्यक्षपूर्वक भासै हैं। सो तौ निसन्देह हैं ही और केई पदार्थ ऐसे हैं। जिनकौं निर्धारि करने को बुद्धि, समर्थ नाहीं। तिन वस्तुन का निर्धार शास्त्रन तैं करिए है। जैसे—लौकिक मैं किसी के लेने-देने मैं सन्देह होय तो सर्व कहैं तुम अपने कागज-रोजनामचा-खाते लावो। जो कागजन मैं निकसैं सो सत्य है। तैसे ही केतेक वस्तु मति-श्रुत-ज्ञानतैं प्रत्यक्ष गोचर नाहीं। जैसे—स्वर्ग-नरक की कहा रचना है? तीन लोक की रचना कैसे हैं? जीव, देव, मनुष्य, पशु, नारक मैं कैसे भ्रमैं? सिद्ध पद कैसे होय? इत्यादिक तथा मेरु पर्वत कुलाचल महान नदी असंख्यात द्वीप समुद्र इत्यादिक नाम तो सुनिए हैं, परन्तु प्रत्यक्ष नाहीं। सो शास्त्रन तैं जानिए हैं सो जिन शास्त्रन मैं इन स्वर्ग नरक की रचना आयु काय दुख-सुख का कथन होय तथा मेरु कुलाचलादि अगोचर वस्तुन का कथन जिस धर्म मैं होय, सो धर्म सत्य है। अनेक शास्त्रन मैं प्रमाण करि भी यह जिन-धर्म ही अखण्ड्या जानना। इति शास्त्र प्रमाण।४। आगे प्रत्यक्ष प्रमाण कहिए है। बहुरि जो वस्तु इन्द्रिय-गोचर तथा श्रद्धान-गोचर दृढ़ होय सन्देह रहित होय, सो प्रत्यक्ष कहिए है। जैसे—कोई पुरुष अपने गले विषैं रतनन का हार परम उत्तम पहरे तिष्ठै है। ताकी शोभा देखि-देखि आनन्दित होय है। सो हार वा पुरुष के प्रत्यक्ष है। कोई आय तिस पुरुष कूं कहै, जो यह हार नाहीं है और ही कछू है, तौ वह पुरुष कैसे मानै? कहनेवाले कूं ही मन्दज्ञानी जानै। वाकैं तौ प्रत्यक्ष है। ताकै सुख कूं भोगवै है। तैसे ही जीवकैं सम्यग्दर्शनादिक गुणमयी रतनन का हार धरनेहारा भव्य कै आप आत्म-देखने जाननेवाला जो आत्मा सो प्रत्यक्ष है। इहां कोऊ प्रश्न करै। जो आत्मा तौ अमूर्तिक है। सो अमूर्तिक द्रव्य अव्रत सम्यग्दृष्टिकैं प्रत्यक्ष कैसे होय? ताका समाधान। जो प्रदेशन की अपेक्षा तौ आत्मा प्रत्यक्ष नाहीं, परन्तु गुण अपेक्षा प्रत्यक्ष है। चैतन्य गुण सम्यग्दृष्टि कैं प्रत्यक्ष अनुभव मैं आवे है। तातैं प्रत्यक्ष-सी प्रतीति कूं लिये है। जैसे—तहखाने मैं तिष्ठता कोई पुरुष राग करै है। सो पुरुष तौ दृष्टि-गोचर नांहीं। परन्तु रागकौ सुनैं तैं ऐसी दृढ़ प्रतीत होय है, जो यह

राग है, ताकों कोई पुरुष करै है यामैं सन्देह नांहां। तैसे ही इस जड़ तन विषैं देखने-जानने रूप क्रिया, अनेक चेष्टा का करनेहारा आत्मा है, सो मैं ही हौं। मैं ही देखूं जानूं हौं। सुख-दुख मैं ही वेदूं हूँ और नाहीं। ऐसा प्रत्यक्ष होते कोई देव भी कहै जो तूं आत्मा नाहीं देखने-जाननैहारा कोई और ही है। तौ सम्यग्दृष्टिनकौं वा देव की ही मिथ्या बुद्धि भासैं। परन्तु आप आत्मा है तामैं सन्देह नाहीं। ऐसी दृढ़ प्रतीत सहित प्रत्यक्ष भाव भासै है। अब प्रत्यक्ष देखने-जाननेहारा आत्मा तो मैं हौं सो नाहीं, यह कैसे कह्या जाय? जो वस्तु सन्देह सहित होय तौ तामैं 'हां' 'ना' भी कही जाय। निसन्देह विषैं परोक्ष-सा सन्देह कैसे कह्या जाय? ऐसे दृढ़ जानि सम्यग्दृष्टिनकँ आत्म स्वभाव को प्रत्यक्षता कही है। ऐसे अनेक वस्तु निसन्देह होय सो प्रत्यक्ष प्रमाण कहिए है। ऐसे प्रत्यक्ष प्रमाण वस्तु का स्वरूप जिन-धर्म मैं बहुत है। तातैं और के प्रत्यक्ष प्रमाण तैं अखण्डित जिन-धर्म, सत्य है। ऐसे लौकिक विषैं धर्म दयामयी है और परम्पराय भी धर्म दयामयी, अनुमान मैं भी धर्म दयामयी और शास्त्रन मैं भी धर्म दयामयी और प्रत्यक्ष भी धर्म दयामयी। ऐसे पञ्च प्रमाण जिन-धर्म मैं मिलैं हैं। तातैं काहू के भी पञ्च प्रमाण करि अखण्डित, जिन-धर्म है, सो सत्य है। ऐसे अनेक नयन करि धर्म की परीक्षा करी सो जिन-धर्म पूज्य है। इति प्रत्यक्ष प्रमाण। ५।

इति श्री सुदृष्टितरंगिणी नाम ग्रन्थ मध्ये शुद्ध धर्म परीक्षा, सप्तभंग नवनय, पंच प्रमाणादि कथन सुधर्म-कुधर्म में ज्ञेय-हेय-उपादेय वर्णनो नाम एकादश पर्व सम्पूर्णम् ॥ ११ ॥

आगे किस प्रकार की संगति करनी। सो तामैं ज्ञेय हेय उपादेय कहिए है—

गाथा—सुह दुह दाणदि जहियो, सो उपादेयो संग हिद करदो। हेय हेय विभावो, सुद्दिट्ठी सो होय आदायो ॥ ३४ ॥

अर्थ—जो दुखदायक जगत् निन्द्य संग होय, सो तजिए और हितकारी संग होय सो उपादेय है। इस तरह योग्य-अयोग्य विचारि संग करै, सो आत्मा सम्यग्दृष्टि जानना। भावार्थ—सम्यग्दृष्टिन कैं ऐसा विचार सहज ही होय है विवेकी जो संगति करै, तामैं तीन भाव हो हैं। शुभाशुभ भाव संग का समुच्चय विचारना सो तो ज्ञेय संग है। ताही ज्ञेय कै दोय भेद हैं। एक तजन योग्य एक ग्रहण योग्य। तहां ऐसा विचारै जो जिस संगति तैं आपकौं दोष लागै तथा अपयश होय, तथा आपकूं निन्दा आवती होय तथा पाप का बन्ध होता होय,

सो संगति नहीं करनी तथा जिस संगतें अपना यश होय, लोकन मैं सत्कार होय, भली वस्तु का लाभ होय, शुभ-कर्म का बन्ध होय इत्यादिक सुबुद्धि प्रगटै, कुबुद्धि नाश होय, जो अपने भले की संगति होय, सो करै। पीछे ऐसा विचारै जो इतने तौ कुसंग हैं—चोरी के करनहारे निशदिन चोरी की चतुराई की नाना कला करनहारे चोर तथा पराये द्रव्य हरवेकौं अनेक छल-छिद्रम करैं, विचारैं, ते चोर हैं। अरु माया करि नाना प्रकार भेष धरि परकौं ठगैं, सो चोर हैं तथा पराये ठगवेकौं अनेक असत्य वचन भाखनेहारे, इत्यादिक लक्षरगन सहित होंय, सो चोर हैं। तिनका संग हेय है। भीजे तांत सूत्र रेशम वस्त्र की फ़ांसी बनाय पर जीवन का घात करि पराया द्रव्य हरैं, सो फांसिया चोर हैं तथा स्त्री का स्वांग मांगता वैरागी जोगी व्यापारी अनेक भेष धरि परकूं छलतैं मारि द्रव्य हरें, सो ठग जाति के चोर हैं। राह के मारनेहारे जे जबरदस्ती धन खोसैं नहीं देय तौ मारैं। ऐसे निरास करनेहारे भील, मीणा, मौढ़, मेर इत्यादिक ए चोर हैं। जैसे—लौकिक मैं चोर-चकार कहैं हैं जो पराये घर फोड़े छल-छिद्र करि पराया धन हरैं। सो तो चोर कहिये। जे जबरीतैं पराया माल खोसैं आपकौं जोरावर मानैं तुरङ्गन के असबारादि तिनतं दीन जन डरें। बहुत धन के धरनहारे गिरासियादिक ए चकार है। ऐसे चोर अरु चकार ए चोर के दोय भेद हैं। इनकौं आदि और भी लकड़ी, घास, भाजी के चोर अरु इन चोरन के मित्र तथा चोरन की विनय करनहारे, चोरन के पास बैठनेहारे ए सब चोर समान जानि विवेकी पुरुष इनका संग तजैं हैं और द्यूतकार जो चौपरि, गंजफा, नरद, मूठि, होड़ादिक। जुवा के खेलने मैं प्रवीण द्यूत व्यसन के प्रसिद्ध व्यसनी तिनकूं सब जानैं जो ए प्रसिद्ध जुवारी हैं। ऐसे द्यूतन का कुसंग तजना योग्य है। जे अभक्ष्य के भखनेहारे मलिन प्राणी मांसाहारी अशुचि के भोगी तिनका संग तजने योग्य है। जे मद्यपायी मदोन्मत्त खफ्त दिवाने समान बेसुधि जिनके वचनन की प्रतीति नांहीं ऐसे मद्यपी जीवन का संग तजिवे योग्य है और वेश्या व्यसनी निर्लज्ज विनय रहित वेश्यान के संगम के तथा गाने के नृत्य के लोभी कौतुकी तिनका संग तजवे योग्य हैं और जे महाहिंसक जीवन के घाती महापापी, निर्दयी, भील, चण्डाल, मोघिया, कसाई, खटीक—इन आदिक जे करुणा रहित नाशकारी ज्ञान अन्ध दुराचारी इन आदिक हिंसक जीवन का संग तजवे योग्य है और जे पर-स्त्रीन का रूप देखि भोग अभिलाषी कुशील के

प्यारे दुर्बुद्धि तिनका संग तजवे योग्य है। ऐसे कहे ये सप्त व्यसनी जीव पापी, पाखण्डी, तीव्र, क्रोधी, मानी, मायावी, लोभी, हाँसि, कौतुक-मद, मत्सर के धारी, तिनका संग तजवे योग्य है। इत्यादिक कहे कुसंगन का त्याग, सो सम्यग्ज्ञान सत्य है। इति हेय संग। आगे उपादेय संग एते संग सुखकारी हैं। तीर्थङ्कर केवली मुनीश्वर व्रती श्रावक सम्यग्दृष्टि शान्त स्वभावी दानी, तपसी, जपी, संयमी, धर्म-ध्यानी, धर्म-चरचा, करनेहारे ऊँचकुली, दयावान, विद्यावन्त इत्यादिक गुणवान पुरुषन की संगति पूज्य है। ये पुरुष प्रगटपने जगत् में पूज्य पदधारी हैं। इनका यश सब लोग कहैं हैं। ये शुभाचारी हैं। ऐसे ऊँच पुरुषन का संग करना उपादेय है। ऐसे सम्यग्दृष्टिन की बुद्धि सहज ही शुभ संग चाहती व अशुभ संगतैं उदासीन होय है। इति संगति में हेय, ज्ञेय, उपादेय, अधिकार। आगे विचार मैं हेय-ज्ञेय-उपादेय कहिये हैं।

गाथा—अशुहो बिवारो हेयो, चदुधो धम्म झाण चिन्ताये। सम्मन्तं सहल सुहाबो, गेहेआदेय हेयणे माए ॥ ३५ ॥

अर्थ—तहां सम्यग्दृष्टि जो विचार करै सो सहज ही ज्ञेय-हेय-उपादेय करि तीन प्रकार होय जाय है। तहां भले-बुरे विचार का समुच्चय विचार करना, सो तौ ज्ञेय है। ताही के भेद दोय हैं। एक विचार तौ हेय हैं एक उपादेय हैं। सो प्रथम हेय जो त्याग योग्य सर्व विचार ताका स्वरूप कहिये है। विचार नाम ध्यान का है। सो अशुभ-ध्यान के दोय भेद हैं। एक आर्त विचार है, एक रौद्र विचार है। जहां पर-वस्तु की चाहि, सो आर्त है। जहां पर-जीवन का बुरा चिन्तना, सो रौद्र विचार है। सो आर्त के चार भेद हैं। एक तौ भली वस्तु का वियोग होय तब ऐसा विचार उपजै जो ये भली वस्तु थी। मोकूं इष्ट थी। याके निमित्त पाय मोकौं विशेष सुख था। अब मेरा सुख गया। ऐसे पुत्र, भाई, मात, तात, धन, हस्ति, घोटिक, राज, मित्र, शरीरादिक का वियोग होते मोह के वशी होय शोक करै। सो इष्ट वियोग रूप विचार है। यह विचार विवेकीन कौं त्यागने योग्य है। याका नाम इष्ट वियोगज आर्त-ध्यान कह्या है। १। दूसरा भेद अनिष्ट संयोगज आर्त-ध्यान है। ऐसे विचार जहां आपकूं नाहीं चाहिये, ऐसे जो खोटे निमित्त का मिलाप होना। ऐसे खोटे मिलाप तैं ऐसा विचार होय, जो मोकों मिल्या, सो मोहि खेदकारी है। मैं याकौं नहीं चाहै था। याके निमित्त तैं मोकों अरति उपजै है। ऐसे बैरी तथा जाका बहुत धन देना होय तथा राह जाते चोर नाहर इत्यादिक का मिलाप होते, इनके भय दूर करवे का

निमित्त पाय, परिणति खेद रूप होय विचार करना, सो अनिष्ट संयोगज आर्त-विचार है ।२। और तीसरा आर्त-विचार ताकौं कहिए। जो अपने तन मैं पाप-कर्म उदय होते भए जो नाना रोगन की उत्पत्ति, तिनके तीव्र दुख देख ऐसी अरति करनी जो रोग तीव्र है, कौन उपाय तैं जाय तथा कब जायगा ? ताके मेटवेकूं अनेक सोच, चिन्ता, मन्त्र, जन्त्र, तन्त्र, औषधादि करना तथा अन्यकूं तीव्र रोग देख कैं आप डरना, जो ऐसा रोग मोकौं नहीं होय तौ भला है। ऐसे रोग पीड़ा का निमित पाय बारम्बार विचार करना, सो पीड़ा चिन्तन आर्त-ध्यान है ।३। चौथा विचार जो कोई धर्म-कर्म का कार्य करते पहले ऐसा विचार करै जो मोकूं याका ऐसा फल होहु। याका नाम निदान बन्धा आर्त-विचार है। ४। आगे ए आर्त प्रगट होनेकूं चिह्न कहिए है। प्रथम तौ अन्तरङ्ग चिह्न जो अन्तरङ्ग में परिग्रह की तीव्र वांच्छा होय, जो मैं बहुत धन कैसे पाऊँ। १। कुशील की इच्छा जो मोकौं स्त्री का निमित्त कब मिलैगा। ऐसी चिन्ता होय। २। माया कुटिलताई रूप परिणति, अपने चित्त के छल कुटिलता औरन कौ न जनावना, सो आर्त का लक्षण है। ३। अन्तरङ्गकौं दाह ऐसी रहै जो कोई कौं साता नहीं चाहै और कौं सुखी देखि आप वाके दुखी करने का उपाय विचारना। ४। अति लोभ परिणति, जो राज्य व लक्ष रुपये होंतैं तृप्ति नहीं होय ।५। अपने भावन का कृतघ्नीपना, जो और अपने ऊपर उपकार करै, काहू का उपकार होय तौ ताकूं भूलिकैं उल्टा तातैं द्वेष भाव करना ।६। चित्त महाचञ्चल करना ।७। पंचेन्द्रिय विषयन की बारम्बार चाहना करना। ८। सदैव शोक रूप परिणति राखना। ९। ए नव चिह्न तौ अन्तरङ्ग आर्त होतें प्रगटें हैं। बाह्य चिह्न आर्त के तहां दिन-दिन प्रति खान-पान अल्प होता जाय, तन क्षीण होय सो तन-सोखन है। १। शरीर का वर्ण मारे चिन्ता के फिर जाय, सो विवर्ण-चिह्न है। २। कपोल पै हाथ धरि बैठना, सो आर्त-चिह्न है। ३। तीव्र चिन्ता तैं बार-बार नेत्रन तैं अश्रुपात का चलना। ४। ए च्यारि चिह्न बाह्य प्रगट होय हैं। ऐसे चिह्न संहनन सहित आर्त-ध्यान के जानना। सो ऐसा विचार तिर्यञ्च गति का दाता जानना। ऐसा आर्त-भाव सम्यक् भये सहज ही हेय होय है। सम्यग्दृष्टि के त्याग भाव ही रहै है। इति आर्त-विचार। आगे रौद्र-विचार कहिए है। रौद्र-विचार ताकौं कहिए। जहां पर-जीवनकौं आप मारि हर्ष मानैं तथा और को आदेश देय जीव घात कराय, हर्ष मानैं तथा और कोई काहू जीवकूं मारता आप देखै तब हर्ष मानैं तथा काहू कूं युद्ध करते देखि हर्ष मानैं

तथा अपनी चतुराई करि औरन कौं परस्पर युद्ध कराय कैं हर्ष मानं। कोई अन्य जीव के, हाथ-कान-नाकादिक अङ्ग-उपाङ्ग छेदकैं आनन्द मानैं तथा और कोई, काहू के अङ्ग-उपाङ्ग छेदता होय ताकों देख आप हर्ष मानैं तथा और का घर-धन लुटता देख आप आनन्द मानैं। इत्यादिक जीवन कूं दुखी देखि आप हर्ष पावै, सो हिंसानन्द-रौद्र-विचार है।१। जहां अपनी चतुराई करि असत्य बोलि हर्ष मानैं तथा औरन्कौं भूठ बोलते देखि हर्ष मानैं, जाकों भूठ प्रिय होय इत्यादिक भूठ मैं आनन्द मानैं, सो मृषानन्द-रौद्र-ध्यान है। २। आप चोरी करि आनन्द मानैं और को आदेश देय चोरी कराय आनन्द मानैं, कोई के चोरी भई सुनि आनन्द मानैं, चोर ताकौं अति प्यारे लागैं। इत्यादिक चोरी के कार्य कारणनकौं देखि आनन्द मानैं, सो चौर्यानन्द-रौद्र-ध्यान-विचार है।३। जहाँ बहुत परिग्रह इकट्ठे करि आनन्द मानैं, और आप गैया, भैंसि, बैल, घोड़ा, हाथी, गाड़ा, गाड़ी, रथ, सैनादिक परिग्रह तथा महल, बाग, कूप, बावड़ी, तलाब इनकौं आदि बहु आरम्भ करि आनन्द मानैं तथा और कौं ऐसे आरम्भ करावते देखि आनन्द मानैं इत्यादिक बहुत परिग्रह मैं बहु आरम्भन मैं आनन्द का मानना, सो परिग्रहानन्द-रौद्र-ध्यान है।४। ऐसे च्यारि भेद रौद्र-विचार हैं। सो नरक गति के दाता जानना। ऐसे रौद्र-ध्यान च्यारि भेद रूप है। आर्त-विचार सम्यग्दृष्टिकैं सहज ही हेय हैं। ए आर्त-विचार, रौद्र-विचार ए दोऊ ही अशुभ फल के दाता हेय हैं। ऐसी जानि इन कुविचारन कूं तजै हेय करै है! इति कुविचार। आगे सुविचार कहिये है। तहां धर्मात्मा जीवनकैं निरन्तर सहज ही ऐसा विचार रहै है। जीवाजीव पदार्थ केई प्रगट हैं, केई अप्रगट हैं, केई भासैं हैं, केई ज्ञान की मन्दता करि नाहीं भासैं हैं। परन्तु जैसे—जिनदेव ने केवलज्ञान करि कह्या है, सो प्रमाण है। मेरी मन्द बुद्धि करि मोकूं नाहीं भासैं, तौ मति भासौ। परन्तु केवली के कहे मैं मेरे संशय नाहीं। जिनदेव का कह्या प्रमाण है। ऐसी दृढ़ प्रतीत रूप विचार करना, सो आज्ञा-विचय-धर्म्य-ध्यान है। १। और जहां निरन्तर ऐसा विचार रहै जो मेरा धर्म निर्दोष कैसे रहै? मेरे आयु पर्यन्त-धर्म का साधन कैसे रहै? और मेरे तत्त्वज्ञान कैसे बढ़ै? और धर्म्यध्यान मैं चित्त की एकता कैसे होय? मेरे क्रोध, मान, माया, लोभ कषायन की घटवारी कैसे होय? समता-भाव कैसे बढ़ै। मैं शान्तिरस अमृत का पान कब करूँगा? मेरे संयम-

भाव कब प्रकट होंयगे ? इत्यादिक समता सहित धर्म्य-ध्यान बढ़ावे रूप धर्म-रक्षा रूप बारम्बार विचार का होना, सो अपाय-विचय-धर्म्यध्यान है । २ । पूर्व पुण्यके उदय करि प्रगटी जो अनेक सम्पदा, अनेक पंचेन्द्रिय जनित भोग सुख, तिनकूं पाय धर्मात्मा हर्ष नहीं करैं, मगन नहीं होय और ऐसा विचारैं, जो मैं या संसार मैं भ्रमण करते अनेक बार नरकादिक, तिर्यंचादि, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय आदि के महादुःख मैंने अनेक बार भोगे, अनेक बार पशु होय, मनुष्य होय घर-घर बिक्यौ । भूख सही । अनेक बार वनस्पति मैं उपजि कटि के अनन्तानन्त भाग होय बिक्यौ । इत्यादिक अनेक आपदा का भोगनहारा मैं संसारी जीव, सो कोई किंचित पुण्य के उदय देव, इन्द्र, चक्री, विद्याधर, मण्डलेश्वर इत्यादिक विभूति, पंचेन्द्रिय सुख मोकूं आय मिलै हैं । सो यह सुख-सम्पदा कर्म की करी है । सो सर्व चपल है । अपना अल्पकाल उदय करि जाते रहैंगे । ऐसा जानिकैं सम्यक् धन-धारी, भोगरक्त चित्त नहीं करै । मगन नहीं होय, सो विपाक-विचय-धर्म्यध्यान है तथा अपने कोई पाप के उदय तैं अनेक दुख, संकट, आपदा, वेदना, शरीर पै आई होय । तो ज्ञाता पुरुष असाता नहीं करै दुख नहीं मानैं । ऐसा विचारै, जो मैं पूर्व भव मैं देव राजादिक के अनेक पंचेन्द्रिय सुख भोगे, कामदेव समान शरीर सम्पदा भोगी है । अब कोई किंचित् पाप-कर्म के उदय मोकों तन पीड़ा वेदना भई है । सो आप ही अपना रस देय, खिर जायगी । इत्यादिक शुभ विचार करि खेद नहीं करे । ऐसे ही साता के उदय सुख नाहीं मानै । असाता के उदय दुखी नहां होय । ऐसे विचार का नाम विपाक-विचय-धर्म्यध्यान कहिये ।३। स्थान, जो तीनौं लोक के आकार का विचार । जो ए तीन लोक पुरुषाकार है । अनादि-निधन है । षट् द्रव्यनतैं भरया, च्यारि गति जीवन का स्थान तहां संसारी प्राणी शुभाशुभ भावन का फल भोगता तन धरता, तजता, अनन्तकाल का भ्रमण करता सुख-दुख भाव करै है । ताही के फल फिर जन्म-मरण बढ़ावै है । राग-द्वेष भाव तजि कर्म नाश मोक्ष होवे, सो लोक के शीश सिद्ध होय विराजैं हैं । वे सिद्ध भगवान् जगत् दुखतैं रहित हैं । जन्म-मरण संसार भ्रमण ए सर्व दोष छांड़ि, सुखी होय हैं । ते सिद्ध दो प्रकार है । जो च्यारि घातिया-कर्म रहित, केवलज्ञान सहित, अनन्त सुखी, समोशरण सहित, अनेक लक्षणों से मण्डित, परम औदारिक के धारक सो तौ सकल सिद्ध हैं और ज्ञानावरणादि अष्ट-कर्म रहित, अमूर्ति, चेतन, शुद्धात्मा सो अकल सिद्ध हैं ।

औदारिक शरीर का नाम कल है। शरीर रहित अकल हैं। इन दोय गुण सहित जो सिद्ध हैं सो सर्व लोक के मस्तक, मुकुट समान विराजैं हैं। ऐसे लोकालोक का विशेष विचार चिन्तन-ध्यान करना, सो संस्थान-विचय-धर्म्यध्यान है। ४। ऐसे कहे जे च्यारि प्रकार धर्म्यध्यान, सो धर्मात्मा जीवन के सहज ही होय हैं। यह विचार का फल स्वर्गादि उत्तम गति है, परम्पराय मोक्ष होय है। तातैं ए विचार धर्मात्मा जीवन करि, उपादेय करने योग्य हैं। इति धर्म्य-ध्यान। आगे शुक्ल-ध्यान—जहां आत्म स्वभाव का अरु पुद्गल स्वभाव का भिन्न-भिन्न विचार करना, सो पृथक्त्ववितर्क विचार शुक्ल-ध्यान है। १। मनकौं एकाग्र-भाव करि एक ही अर्थ के विचार करतैं केवलज्ञान होय, सो एकत्ववितर्क विचार शुक्ल-ध्यान है। २। जहां मन-वचन-काय योग के अंश सूक्ष्म करने रूप आत्म परिणति, सो सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति नाम शुक्ल-ध्यान है। यहां मन प्राण के अभाव होते विचार का भी कथन नाहीं। एक आत्म-भाव ही शुद्ध रूप है ए तीसरा शुक्ल-ध्यान है। ३। जहाँ पुद्गलीक तन क्रिया का सम्बन्ध छोड़ि निर्बन्ध-भाव होना, सो व्युपरीत क्रिया निवृत्ति शुक्ल-ध्यान है। ४। इत्यादिक शुद्ध विचार सो उपादेय हैं। ऐसे विचार निकट संसारी जीवनकैं होय हैं तथा कर्म रहित जीवन के होय हैं। संसारी, धर्म रहित, भोरे, परभव में विपरीत दुख-फल के उपजावनहारे जीवन कूं ऐसा विचार महादुर्लभ है। दीर्घ संसारी, भव भ्रमणहारे, अशुभ भावना के धारी जीवनकौं तौ, शुभ विचार होना महाकठिन है। ऐसे शुभाशुभ विचार में सम्यग्दृष्टि जीवन कौं हेय-उपादेय करना महाउत्तम है। सो शुद्ध दृष्टि के होते, हेय-उपादेय भाव सहज ही प्रगट होय हैं। इति विचार विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय भावाधिकार समाप्त भया।

आगे आचार जो क्रिया, तामैं ज्ञेय-हेय-उपादेय कहिए है। तहां समुच्चय शुभाशुभ क्रिया के विचार, सो तो ज्ञेय हैं। अरु ताही ज्ञेय के दोय भेद हैं। सो एक तो शुभाचार है, सो तौ उपादेय है। एक अशुभाचार है, सो हेय है सो जहां दया सहित चलना, भूमि विषैं जीव देखि, बचाय चलना, सो शुभाचार है। बोलना सो सर्व कूं सुखकारी वचन, दया सहित, हित-मित, सत्य, पुण्यकारी वचन बोलना, सो शुभ क्रिया है और स्नान करना, गाले जलतैं करना, सरोवर नदी वापीन मैं प्रवेश करि नहीं सपरना आपके शरीर की आताप तैं बहुत जल जीवन का घात होय है तातैं यह कार्य तजना भला है और कदाचित् ऐसा ही निमित्त मिलै, तौ जलाशय मैं ते जल

गालि, दूर जाय स्नान करना, यह शुभाचार है। चौका देना बुहारी देना, तौ भूमि शुद्ध देखि, जीव बचाव करना ए शुभाचार है। अग्नि प्रजालना सो ईंधन भूमि शोधि, शुद्ध देखि जलाना, यह शुभाचार क्रिया है और पीसना सो अन्न, चक्की शोधि, दिन को, उद्योत स्थान मैं, दृष्टिगोचर देख पीसना, सो शुभाचार है। धोवना सो गाले जल से वस्त्रादि धोवना। कचारना, सो दिन छित उद्योत स्थान मैं कचारना। रोंधना भोजन करना सो सब दिन में करना, सो शुभाचार है। इत्यादिक क्रिया करनी, सो सर्व विचारि देखि दया भावनतैं करनी, सो शुभ क्रिया हैं और आभूषण-वस्त्र पहिरना, सो शुभाचार है और अपनी वय प्रमाण पहराव बन्देज राखै, सो शुभाचार है। जाकरि लौकिक निन्दा नहीं पावै। जैसे—ऊँच कुल मैं वस्त्र-आभूषण पहनते आये ता प्रमाण पहरै। जो राज करनहारे होय तथा सेठ व्योपारी होय तथा निर्धन होय तथा धनवान होय। सो सर्व अपने-अपने पदस्थ माफिक राखै। इत्यादिक शुभाचार की प्रवृत्ति, सो शुभ क्रिया है। ऐसी क्रिया-आचार विवेकीन करि उपादेय है। इति शुभाचार। आगे अशुभाचार कहिये है। बिना देखैं शीघ्र-शीघ्र चलना बेमर्याद बिना विचारै राज विरुद्ध लोक विरुद्ध वचन बोलना, सो कु-क्रिया है और अनेक आचार ऊपरि कहे तिनतैं विपरीत खोटे आचार पर-पीड़ाकारी दया रहित बोलना, नदी सरोवर विषैं कूंदना बड़े द्रह अनगाले जल के समूह तिन मैं पैठना तैरना कौतुक सहित सपरना, सो कु-क्रिया हैं तथा वस्त्रादि धोवना और कुल निन्द्य इत्यादिक बेमर्याद आभूषण-वस्त्र का पहरना, सो कु-आचार है। सो ए क्रिया तजवे योग्य हैं। ए घरन सम्बन्धी केतीक क्रिया हैं। सो स्त्रीन के आधीन हैं। तिन स्त्रीन के दोय भेद हैं। एक स्त्री तौ आचार-क्रिया रहित धर्म भावना तैं विमुख विषय-कषाय मैं रञ्जायमान क्रोध-मान माया-लोभ सहित क्रूर स्वभाव धरनहारी कुटिल चित्त की धरनहारी अपने शील-गुण की रक्षा का नहीं है लोभ जाके अशुभ भावना हीनाचरणी इत्यादिक कुलक्षण सहित खोटी स्त्री होय हैं। एक स्त्री है सो शुभाचरणी धर्म परिणतिकौं धरै पवित्र चित्त की धरनहारी शील-गुण सहित होय। गुरुजन जो सास, श्वसुर, माता-पिता की आम्नाय प्रमाण विनय सहित प्रवर्तनहारी, सौभाग्य गुण की धरनहारी यशवन्ती, भले गुण सहित स्त्री होय हैं। यह दोय जाति, शुभाशुभ स्त्री की जाननी। सो इनकी कूंखि विषैं भी जो बालक अवतार लेय, सो शुभ स्त्री के गर्भ तैं शुभ सन्तान की

उत्पत्ति होय आर अशुभ स्त्री की कूंख तैं अशुभ जीव अवतार लेय है। जैसे—पृथ्वी विषैं दोय खान निकसैं, सो एक खान मैं तौ उत्तम रतनादिक निकसैं हैं। कोऊ खान मैं लोहा निपजै है। तैसे ही स्त्रीन की शुभ-अशुभ कूंख जानना। सो तिन शुभ-अशुभ सन्तान होवे के कारण बताइए है—

गाथा—पुच्छवती जुगवासर, सेवत सन्ताण होय विण सीलो। विसणाणी अपलक्छो, धम्म रहीयो अण्णि विणचारो ॥३६॥

अर्थ—तहां पुष्पवती स्त्री धर्म सहित नारी होय, ताकौं कोई कु-बुद्धि पुरुष पहले दिन तथा दूसरे दिन, तातैं संगम करै। अरु ताकौं सन्तान उपजै तो वह शील रहित, पर-स्त्री वेश्यादिक विषैं महाकाम लम्पटी होय, सप्त-व्यसनी होय, अपलक्षणी होय, धर्मरहित होय, अज्ञानी होय, अनाचारी होय। भावार्थ—जो स्त्री स्त्री-धर्म-ऋतुवती होय ताके करबे योग्य क्रिया कहिए है। जो खोटी स्त्री हैं ते तौ स्त्री-धर्म भए सर्व पुरुष स्त्री बालकनकों छीवैं हैं। घर का सकल धन्धा काम करैं हैं। घर के घटपटादि सर्व छीवैं हैं। तन श्रृङ्गार करैं हैं। ताम्बूल खाय, गरिष्ट पेट भर भोजन करैं; गीत नृत्यादि रति क्रिया करैं। हाँसि कौतुकादिक क्रीड़ा करैं। अपना तन, अन्य जीवन के तनतैं स्पर्श करावैं। इत्यादिक क्रिया कही, सो ए अनाचार रूप क्रिया हैं। सो इस रूप रहने से खोटी स्त्री जानना। हे भव्य! यह ऋतुवती-स्त्री, अस्पर्श शूद्र समान है। छीवे योग्य नाहीं। याके खान-पान का बासन अस्पर्श शूद्र के बासन समान है। तातैं जो स्त्री, स्त्री-धर्म क्रिया मैं शिथिल है। सो महाअशुभ, पाप क्रिया कर्मकूं उपजाय प्रमाद योग तैं अपना पाया मनुष्य भव बिगाड़ि परभवकूं दुख करैं है। तातैं ऊपर कही जो स्त्री-धर्म भए पीछे अशुभ क्रिया सो नहीं करना योग्य है, खोटी स्त्री ऐसी क्रिया करैं हैं। अब शुभ स्त्रीन की क्रिया कहिए है, सो जे शीलवान स्त्री हैं ते ऋतुवन्ती भये पीछे अपने मलिन वस्त्र उतारकैं अप्रच्छन्न धोवैं कोई देखे नाहीं। आप स्नान कर कैं उज्ज्वल और वस्त्र पहिरकैं एकान्त स्थान में तिण-घास-डाभ का बिछौना बिछाय तिष्ठैं। अपना मुख काहू को नहीं दिखावै। नहीं काहू का मुख आप देखैं। भोजन करैं सो रस रहित-नीरस भोजन करैं। सो हू उदर भर नहीं खांय दिन मैं निद्रा नहीं करैं और तनपै श्रृङ्गार नहीं करैं। तांबूलादिक नहीं खांय गीत-नृत्य हाँसि-कौतुक आदि नांहीं करैं। सुगन्धादिक तन लेपन नाहीं करैं। अजन सुरमादि नेत्रन में अजन नहीं करैं। हाथ-पांव के नख नाहीं सुधारैं। अपना अङ्ग छिपाय तीन दिन अप्रच्छन्न रहैं। सो रात्रि मैं ऋतुवन्ती

भई होय दिन नाहीं गिनै। जो सूर्य के उद्योत ऋतुवन्ती भई होय तौ दिन गिनै। ऐसे तीन दिन एकान्त में रहैं। भोजन पातल में खाय तथा कड़ाही में खाय। जल पीवैकौं मिट्टी का बासन राखै तातैं जल पीवै। शुद्ध भए मिट्टी के बासण डार देय तथा फोरि डारै, चौथे दिन शुद्ध होय स्नान करि अपने पति का मुख देखै तथा पाँचवें दिन पति का मुख देखे पीछे सांस, ननद का मुख देखे ऐसी उत्तम स्त्रीकैं आस रहै। पति संगमतैं सन्तान होय। सो पवित्र बुद्धि का धारक पिता समान रूप-गुण-लक्षण-काय का धारी होय। शुभाचारी दयावन्त, धर्मवन्त, शील-वन्त इत्यादिक गुण सहित शुभ पुत्र होय। अब कु-स्त्री का स्वरूप कहिये है। जो कु-स्त्री तथा खोटी स्त्री है सो ऋतुवन्ती भए पीछे पहले दिन तथा दूसरे दिन विषैं ही कुशील सेवन करैं है। जे महाअभागी भोरे काम-लम्पटी दुर्बुद्धि हैं तिनके वीर्य तैं जो पुत्र-पुत्री होय, सो कु-शीलवान होय द्यूतादिक सप्त-व्यसनी होय, मांस भक्षी होय, सुरापायी होय, वेश्यागमनी होय, जीव घाती-निर्दयी होय, चोर-कला मैं प्रवीण होय, पर-स्त्री का इच्छुक होय, अभक्ष्यका भोगी अभक्ष्य भक्षणहारा होय, शुभ-अशुभ विचार रहित महामूर्ख अज्ञानी अन्ध समान होय। खाद्य-अखाद्य के विचार मैं पशु समान अनाचारी होय, महाक्रोधी होय, मानी होय, महादगाबाज होय, लोभी होय, अविनयी होय इत्यादिक अपलक्षणी होय। परभव के सुख का कारण जो धर्म तातैं रहित अधर्मी होय। माता-पितान कौं दुखदाई अविनयी होय। विशेष ज्ञान-कला-चतुराई लौकिक-कलातैं रहित मूढ़ होय। कुरूप होय, दीन होय, दरिद्री होय, बाल अवस्था ही तैं बड़े कोप का धारी होय। महामानी होय, क्रूर दृष्टि होय। अपना मान भङ्ग भए मरन विचारै देशान्तर निकस जाना विचारै। महागूढ़ चित्त का धारी अपने चित्त का अभिप्राय काहू कौं नहीं जनावै। महालोभी तन देय धन नहीं देय। आप भूख सहै अपयशादि तैं नाहीं डरै जैसे-तैसे धन जोरे ऐसा लोभी होय। इत्यादिक अनेक औगुणी होय। ऐसे पुत्र तैं कुल-कलङ्क चढ़ै है। तातैं तिन उत्तम कुल के स्त्री-पुरुषनकूं ऋतु समय की क्रिया मैं प्रमाद तज शुभ रूप प्रवर्तना योग्य है और जे उत्तम स्त्री हैं सो ऊपर कहि आए शुभ स्त्रीन के शुभ लक्षण स्त्री-धर्म की मर्यादा, सो ताही प्रमाण प्रमाद रहित पालैं हैं। उत्तम धर्मात्मा स्त्री, मन्द है भोग अभिलाषा जाकै ऐसी शुभ स्त्री महासती कैं, चौथे दिन स्नान करि पति संग तैं गर्भ रहै तथा पञ्चम दिन तथा षष्टम दिन तथा सप्तम दिन भर्तार तैं संगम तैं गर्भ रहै है। ता गर्भ विषैं शुभातमा पुण्य बन्ध करनेहारा

अन्य गति तैं चय करि, ताके गर्भ विषैं अवतार लैय। सो चौथे दिन का गर्भ रह्या जीव मन्द कषायी, धर्म रुचि सहित, संयम-सम्पदा सहित, सम्यग्दर्शन रतन का धारी होय है और पञ्चम दिन का गर्भ रह्या होय, तहां महा-उत्तम जीव आय अवतार लेय, सो पुण्याधिकारी अनेक राज भोग का भोक्ता होय, पीछे अणुव्रत तथा महाव्रत का धारी होय। षष्टम दिन का गर्भ रह्या, सो जीव दया रस का धारी, देशव्रत धारी शुभ गति जाय तथा महाव्रती होय और सप्तम दिन का गर्भ रह्या जीव निकट संसारी भव्यात्मा आय कैं अवतार धरैं सो अनेक पंचेन्द्रिय भोग सुख भोगि तीर्थङ्कर, चक्री, कामदेवादिक, महान राज-सम्पदा भोगे पीछे संयम पाय सिद्ध पद पावे ऐसा पुत्र होय। ऐसे शुभ स्त्रीन की शुभ क्रिया कही। इस तरह शुभाशुभ क्रियाचार कह्या। सो विवेकीनकौं समझि अपने भले योग्य होय, सो करना योग्य है। इति आचार क्रिया मैं ज्ञेय-हेय-उपादेय कही। आगे कहैं हैं जो उत्तम श्रावकन के धर्म-आभूषण कर्म-आभूषण क्या सो कहिए है। सो आभूषण भेद दोय हैं। एक तो धर्म-आभूषण, एक कर्म-आभूषण। इन दोय आभूषण सहित होय तेही महासुन्दर हैं। तेई बड़ भागी हैं। ते ही सराहवे योग्य हैं। सो दोय भेद आभूषण का, विशेष कहिए है। जो कर्म अपेक्षा हाथ आभूषण चूरा अंगूठी आदिक जिन तैं कर शोभैं सो कर आभूषण हैं। धर्मातमा जीवनकैं जिन हाथन तैं देव-गुरु-धर्म की पूजा करतैं, नमस्कार करतैं कर दौऊ कमलाकार होंय। सो ही हाथन का पावना सुफल है। जिन हाथन तैं देव पूजादि शुभ कार्य करना, सो ही कर आभूषण है।१। भुजबन्ध-बाजूबन्धादि जातैं भुज शोभैं सो भुजा भूषण है। सो ये कर्म सम्बन्धी भुज आभूषण हैं और धर्मातमा जीव जिन भुजनतैं पर-जीवन की रक्षा करैं तिनकूं देखि कोई दुष्ट जन दीन जीवनकूं नहीं पीड़ित करि सकै। साधुनकी रक्षा तिन भुजन तैं दुष्ट जीवनकौं पीड़ा-दण्ड देने की शक्ति दीन जीवन की रक्षा कूं योधा, शरण आयके रक्षक, इत्यादिक पुरुषार्थ तिन करि जाकी भुजा शोभायमान है, सो ही भुज आभूषण हैं। यातैं धर्मातमा पुरुषन के भुज शोभा पावैं। २। कंठी, माला, हार इन आदिक आभूषण जिनतैं उर शोभा पावै है। सो उर आभूषण हैं। ए कर्म सम्बन्धी हैं। जा उर मैं सदैव अरहन्तादि पञ्चपरमेष्ठी के गुणन का सुमरण वैराग्य चिन्तन बारह भावना तथा सोलह कारण भावना का चिन्तन करना, सो धर्मातमा जीवनकैं उर आभूषण हैं। ३। पांवन के आभूषण जातैं पद शोभा पावैं, सो कर्म सम्बन्धी पद आभूषण हैं।

धर्मात्मा जीवन के जिन पावन तैं सिद्ध क्षेत्रादिक यात्रा करिए सो पद पाए का फल है, सो पद आभूषण है।४। आगे मुकुट, तुररा, शिरपेंचादि इनतैं शिर की शोभा होय, सो शिर आभूषण कर्म सम्बन्धी हैं। जा शिरतैं देव-गुरु-धर्मकूं नमस्कार कीजिये, सो सिर सफल है। धर्मी-जीवन कैं ये शिर आभूषण।५। और कर्म अपेक्षा मुखमण्डल के तिलकादि आभूषण हैं तथा ताम्बूलादिक पान का खावनादिक ए सर्व मुख के आभूषण हैं। इनतैं मुख भला शोभै है, धर्मात्मा जीवनकैं जा मुखतैं सर्व हितकारी मिष्ट हित-मित वचन का बोलना सो मुख आभूषण है तथा अन्य जीवन के रक्षक दयामयी वचन जा मुख तैं बोलना तथा सम्यक् प्रकार सत्य मन वचन की एकता सहित जिस मुखतैं पञ्च परमेष्ठी की स्तुति करना तथा जा मुखतैं इन्द्र, चक्रवर्ती, नारायण, कामदेवादि महान पुरुषन की कथा करिए सो मुख का शृङ्गार है तथा मुनि गणधरन के वचन सुनिकैं पीछे अपने मुखतैं वही वचन औरन पै प्रकाशित करना सो मुख सफल है तथा यथायोग्य विनयकारी करना पर के श्रवणनकूं हितकारी वचन जा मुखतैं बोलना सोही धर्मकारी जीवनकैं मुख आभूषण है।६। कर्म अपेक्षा नेत्र-अञ्जन जाकरि नेत्र भले लागैं सो अञ्जनादि नेत्र के आभूषण हैं। धर्मात्मा जीवन के जिन नेत्रनतैं जिनदेव का दर्शन करिकैं हर्ष मानिए सो ही नेत्र आभूषण हैं तथा जिन नेत्रनतैं अनेक जिन शासन के शास्त्रनकों परमार्थ-दृष्टि करि देखिये, सो नेत्र सफल हैं तथा पर-वस्तु जे सुन्दर स्त्री, देवांगनादिक का रूप जे परम पदार्थ तिनकूं निर्विकार क्रूरता रहित होय देखना सो नेत्रनकौं आभूषण हैं। तिन करि नेत्र सफल हैं।७। कर्म अपेक्षा कर्ण मण्डन जो कुण्डलादिक जिनतैं कान भलै शोभैं सो कर्ण आभूषण हैं और धर्मात्मा जीवनकैं जिन काननतैं जिन-गुण श्रवण करना तथा तीर्थङ्कर, केवली, गणधरादिक महामुनीन के गुण श्रवण करना तथा जिन भाषित दयामयी धर्म का जिन काननतैं सुनना सो कान कूं आभूषण हैं। कान पाए का फल है।८। और कर्म सम्बन्धी तन-मण्डन वस्त्रादि अनेक तन आभूषण हैं। इनतैं तन भला शोभै है और धर्म सम्बन्धी जा तनतैं महाव्रत-अणुव्रत पालना पञ्च समिति, तीनि गुप्ति ए गुण रतन करि तन शोभायमान करना सो तन पाए की शोभा है तथा जा तनतैं कोई जीवनकूं नहीं पीड़ना अन्य की रक्षा करनी तन का भयानीक आकार बनाय भोरे जीवनकूं भय नहीं उपजावना जा शरीर तैं शुभाचार करि शान्ति मुद्रा सहित रहना अपनी मूर्ती देखि औरकौं विश्वास उपजावना सो ही तन आभूषण है।

ऐसा तन सफल है। ६। कर्म अपेक्षा घर मराडन धन की वृद्धि सहित सपूत पुत्र का होना। आज्ञाकारिणी, सुलक्षणी, शीलवान, विनयवान, रूपादि गुण सहित भली स्त्री का होना सो तथा माता-पिता, भाई, पुत्रादि सकल कुटुम्ब विषैं परस्पर स्नेह, इत्यादिक निमित्तन का मिलना, सो यातैं घर भला दीखै। सो कर्म अपेक्षा ए घर आभूषण हैं। धर्म अपेक्षा जा घर विषैं शुभाचारी दयावान धर्मी जीव होंय तथा जा घर मैं मुनि श्रावकादि धर्मात्मा जीवन का सदैव प्रवेश होय। सो घर की शोभाकारक घर आभूषण हैं। यातैं घर सफल है। १०। कर्म अपेक्षा धन मण्डन चित्त की उदारतापने सहित अपनै अनेक जीव-कुटुम्बादिक तिन सब मैं बाँट खावना। पंचेन्द्रिय सुख में लगावना रतन कनकादिक के अनेक मनोज्ञ मन्दिर बनाय तिनमैं अनेक चित्रामांदि शोभा कराय रहना। अनेक जाति के जननकूं यश के निमित्त दान देना और पुत्र, पुत्री आदिक की शादीन मैं द्रव्य लगावना तथा पुत्रादिक की उत्पत्ति के उत्सवन मैं धन खर्चना तथा भाई, बन्धु, मित्रन मैं धन देना तथा बहिन-भांजीकूं धन देना इत्यादिक स्थानकन मैं उदारता सहित हित-मित करि धन लगावना सो धन का आभूषण है। यातैं धन शोभायमान होय है और धर्म की अपेक्षा अपना धन उदारता सहित धर्मानुराग करि नवधा-भक्ति सहित मुनिकूं दान देना तहां धन लगावना। १। तथा सुवर्ण चाँदी के अक्षरन सहित स्पष्ट भारी पत्रन विषैं शास्त्र लिखाना। तिनमैं अनेक भारी मोल के मनोज्ञ वस्त्रन के पूठे बन्धन कराय लगावना। २। तथा जिन-पूजा विषैं मोतीन के अक्षत, सुवर्ण चाँदी के फूल, रतनन के दीपकादि उत्तम अष्ट द्रव्य मिलाय प्रभु की पूजा में लगावना तथा भारी पूजा-विधान तीन लोक के जिन-मन्दिर की पूजा तथा तेरह द्वीप की पूजा तथा नन्दीश्वर-विधान पूजा तथा अढ़ाई द्वीप का विधान तथा जम्बूद्वीप-विधान, कर्मदहन-विधान, पञ्चपरमेष्ठी-विधान, पञ्चकल्याणकादि अनेक विधान कराय जिन-पूजा मैं धन लगावना। ३। महादीर्घ उत्तुङ्ग विस्तार सहित, जिन-मन्दिर कराय तिन विषैं अनेक चाँदी-सुवर्ण का चित्राम तथा शुभ रङ्ग का चित्राम करावना तामैं धन लगावना तथा अनेक परदा चाँदनी, गलीचा, शतरञादि अनेक बिछावना तथा नौबत, निशान, घरटा, छत्र, सिंहासन, चमर, ध्वजा इत्यादि करावना तथा पूजा के उपकरण थाल, रकेबी, झारी, प्यालादि अनेक चाँदी-सुवर्ण के करावना इत्यादिक शोभा सहित जिन-मन्दिर बनाय तामैं धन लगावना। ४। जिन-बिम्बन की विधि सहित, जिन-बिम्ब करावना। सो ताका

संक्षेप विधान कहिए हैं। सो जिन-बिम्ब करनेकौं प्रथम तौ पाषाण कूं खानि देखै, सो उत्तम रतन समान पाषाण की खानि देखै। पीछे पहले दिन तौ खानि-शोधन-क्रिया करै। पीछे तहाँ अनेक वादित्र सहित शिल्प शास्त्र का वेत्ता शिल्पी सो अपना तन शुद्ध करि, उज्ज्वल वस्त्र धारि, उस खानि की शास्त्रोक्त पूजा करै। पीछे पाषाण काटै, सो शुद्ध पाषाण होय तौ लावै। रेखा जो जनेऊ तामैं नहीं होय, बीधा नाहीं होय, गल्या नाहीं होय, ऐसे अनेक दोष सौं रहित शुद्ध पाषाण लावै। पीछे एकान्त स्थान पै प्रतिबिम्ब का निर्मापण करै। तहां शिलपी अरु करावनहारा धर्मी श्रावक दोऊ शील सहित रहैं। जेते काल काम करै तेते काल प्रमाद रहित शिलपी रहै। प्रमाद भये विनय करि उठ खड़ा रहै, काम नहीं करै। ऐसे जेते दिन प्रतिबिम्बन का निर्मापण करै, तेते ब्रह्मचर्य सहित रहै। दीन-दुखीनकूं सदैव दान भया करै। शिलपी एक बार भोजन करै, सो भी अल्प करै। तन मैं विकार नहीं होय। इत्यादिक अनेक शुद्धता सहित जिन-बिम्ब कराय धन लगावै। सो धन सफल है।५। पीछे जिन-बिम्बन की प्रतिष्ठा करावै। तहां देश-देश के धर्मी श्रावक विनयतैं पत्रनतैं न्योते देयकैं बुलावै, पीछे सर्व की आये पै शुश्रूषा करै। वांछित दान दुखित-भुखितकूं अन्न, वस्त्र देय और याचिकनिकूं प्रभावना के हेतु वांछित पट आभूषण घोटिक दान देय इत्यादिक उत्सवन मैं धन खर्चै। सो धन सफल है।६। सिद्ध क्षेत्रादिक की यात्रा के निमित्त अनेक साधर्मी आप जैसे धर्मात्मा जीवनकूं संघ लेय यात्रा करै, सो मन्द गमन करै। जामैं मुनि-श्रावक व्रतीन का निर्वाह होय, ऐसे तौ चलै। राह मैं, वन मैं, नगर मैं, तहां जे-जे जिन-मन्दिर आवैं, तहां-तहां सर्व जगह भगवान की पूजा-उत्सव करते चलैं। दीन-दुख-तन कौं दान देता, संघ की समाधानी करता, निराकुलभाव सहित यात्रा करि, धन खर्चे। सो धन सफल है। ७। ऐसे मुनि-दान, शास्त्र लिखवाना, जिन-पूजा, जिन-बिम्ब करावना, जिन-मन्दिर करावना, जिन-प्रतिष्ठा करावना, सिद्धक्षेत्र-यात्रा, इन सप्त क्षेत्रनमैं धन लागै। सो धनकौ आभूषण है।२१। कर्म अपेक्षा पुत्र मण्डन जाकौं कहिए, गुरुजन जो माता-पितादिक बड़े होंय तिनकूं सुखदायक होय और यथायोग्य सर्व के विनय-साधनमैं प्रवीण होय। माता-पितादिकनिकैं वह आप ही सपूत कहाय, अपने गुणनतैं माता-पितानिकौं साता उपजावै। लोकन मैं अपनी सज्जनता, विनय-गुण, उदारतादि गुण प्रगट करि, सर्व सपूततैं

कहावे सो ए पुत्र कौं आभूषण हैं। धर्म अपेक्षा चल्या आया जो अनादिकाल का श्रावकन का धर्म, ताकौं उत्तम जानि सेवते आए तीर्थङ्करादि उत्तम श्रावक, ताकी परम्पराय लिये देव-धर्म-गुरु की विनय सहित, च्यारि प्रकार संघ की सेवा कूं लिये, शुभाचार रूप, देव-धर्म-गुरु की श्रद्धा सहित, धर्मकौं दृढ़ करि, अशुद्ध क्रिया आचारकूं टालिकै, अपने कुल-मर्याद जो श्रावक-धर्म की परिपाटी, बड़े चले आए ता प्रमाण माता-पिता के आप चालै, कुल-धर्मतैं छूटै नाहीं। आप माता-पितान की धर्म-मर्यादा नहीं तजै, सो पुत्रकौं आभूषण है।२२। लौकिक अपेक्षा स्त्री मण्डन दोऊ पक्ष की मर्यादाकूं पवित्र करती। गुरुजन जो सास-स्वसुर-भर्तारादि तथा माता-पिता तिन दोऊ पक्ष में विनय सहित चलन होय, सो स्त्री को आभूषण हैं। या करि लोकन तैं प्रशंसा पावै, भली दीखै है। धर्म आभूषण ये हैं जो शुभाचार सहित होय, शील-श्रृङ्गार जाके उर में होय, पति आज्ञा में तत्पर होय, देव-धर्म-गुरु की परिपाटी की जाननहारी, दृढ़ श्रद्धान सहित होय सो स्त्री, धर्मात्मा, लज्जा के भार करि नम्रीभूत दृष्टि धरै, संसार भोगन तैं उदास, भर्तार आज्ञा भङ्ग नहीं करवेकूं भोगनकूं भोगवै है। ऐसे गुण सहित जा स्त्री के आभूषण होय, सो स्त्री महासुन्दर जानना। यह कहे जे गुण, सो स्त्रीन के आभूषण हैं।२३। ऐसे कहे जे कर्म-मण्डन आभूषण और धर्म-मण्डन आभूषण, सो विवेकी ऊँचकुली धर्मात्मा पुरुषन कौं, दोऊ जाति के आभूषण पहरना योग्य है। कर्म-मण्डन तैं तन भला दीखै है, इहां शोभा पावै और धर्म-मण्डन तैं या भव, पर-भव दोय ही भव, शोभा होय है। तातैं ऐसा जानि, ऐसे दोऊ भव यश-सुख निमित्त, दोऊ आभूषण उर विषैं धारणा योग्य है। ऐसे दोऊ भव सुधारने का निमित्त योग्य काय, कोई दीर्घ-पुण्य तैं मिले है। तातैं भव-भव मैं सुख यश जिनकौं चाहिए, सो भव्यात्मा धर्म का शरण लेहु। ऐसे शुभ खान-पान तथा अशुभ खान-पान तथा स्त्री-धर्म के भेद तथा धर्म-कर्म आभूषण इत्यादिक कथन ऊपर कहि आए सो विवेकी जीवन कूं इन विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय करना योग्य है। अशुभ आचार का त्याग व शुभ का ग्रहण कार्यकारी है।

इति श्री सुदृष्टि तरङ्गिणी नाम ग्रन्थ मध्ये, शुभाशुभ आचार, स्त्री-धर्म वर्णन, धर्म-कर्म आभूषण कथन वर्णनो नाम द्वादश पर्व सम्पूर्णम्॥ १२॥

आगे खान-पान विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय कहिए है। तहां खान-पान क्रिया है, सो क्षेत्र काल भाव करि, विचार देखि करना योग्य है। सोई द्रव्य विषैं तौ शुभाशुभ जीवन कूं विचारना। क्षेत्र मैं शुभाशुभ क्षेत्र का विचारना और काल मैं शुभाशुभ काल का विचारना। भावन मैं शुभाशुभ भाव विचारना ऐसे विधि विचारिए, जो यह खान-पान किस जीव में किया है? सो करनेहारा आचरणी धर्मी है अथवा मूर्ख है, पापाचारी मलीन है? सो तौ द्रव्य विचारि है। यह खान-पान किस क्षेत्र का किया है? सो क्षेत्र योग्य है वा अयोग्य है? ऐसे क्षेत्र विचारिए। ए खान-पान किया, सो कौन काल में किया है? सो काल योग्य है वा अयोग्य है? ए खान-पान किया, सो कैसे भावन तैं किया? सो वाके भाव शुभ है अथवा अशुभ हैं? ऐसे भावन का विचार करै। ऐसे विचार कैं, विवेकी खान-पान मैं ज्ञेय-हेय-उपादेय करै। सो कैसे करै सो कहिए है। तहां क्षेत्र ऐसा होय जो हाड़ नहीं दीखै, मांस पिण्ड नहीं दीखै, जहां रुधिर नहीं दीखै, जहां मदिरा नहीं दीखै, तजी वस्तु अपने भोजनमैं नहीं आवे, अपने भोजन मैं जीव पतन नहीं होय, जहां पंचेन्द्रिय का मल नहीं दीखै—ए सात कारण रहित शुद्ध क्षेत्र होय। जहां अन्धकार नहीं होय, बहु मनुष्य पशून का गमन नहीं होय, एकान्त होय, सो भोजन-पान शुद्ध है और भली क्रियावान भोजन करनेहारा होय। भोजन करनेहारे का शरीर शुद्ध होय, करनहारा दयावान होय, करनेहारा पाप तैं डरता होय, खांसी श्वास रोग नहीं होय, करनेहारे के तन में जुकाम नहीं होय, कफ नहीं होय, वमन नहीं होय, अतीसार नहीं होय, तन में फोड़ा-दुखना नहीं होय, राजरोग कुष्टादि नहीं होय, खुजली नहीं होय इत्यादिक रोग-दुखन करि रहित, शुद्ध भोजन करनहारा होय, विकलता रहित होय, सो द्रव्य शुद्ध है तथा भोजन मैं आवैं ऐसे अन्न, जल, घृत, दुग्धादि तथा तन्दुल, गेहूँ, चना, मूंगादि अन्न बींधे गये, जीव सहित नहीं होंय तथा घृत-जल, चर्मादिक का नहीं होय। इत्यादि वे भी द्रव्य शुद्ध जानना। काल शुद्ध जो रात्रि का किया आरम्भ नहीं होय, बड़ी बार जो भोजन की मर्यादा का काल उंलघन नहीं भया होय तथा रात्रि वसाया वासी नहीं होय। इत्यादिक काल शुद्ध होय, सो काल शुद्ध जानना। भाव शुद्धता, जो करनेहारा भोजन का, सो विकल परिणामी नहीं होय। भोजन का स्वाद-लम्पटी नहीं होय, भोजन की तीव्र क्षुधा सहित परिणामी नहीं होय। योग्य-अयोग्य भोजन मैं समझनेहारा होय। इत्यादिक धर्मवान विवेक सहित जाके भाव

होंय, सो भाव शुद्ध जानना। क्रोधी नहीं होय, जो भोजन करते लड़ता जाय, कोप वचन कहता जाय। इत्यादिक शुद्ध होय, सो भाव शुद्ध है। ऐसे द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव करि खान-पान शुद्ध होय, सो शुद्ध है। धर्मात्मा जीवन करि उपादेय है। इति शुद्ध खान-पान। आगे अशुद्ध खान-पान बताइए है। जहां भोजन करनेहारा क्रोधी, भोजन करता ही परतैं शुद्ध करता जाय वे मर्याद बोलता जाय सो खान-पान अशुद्ध है विकल परिणामी होय, भोजन का भूखा लोलुपी होय सो भोजन करता कछू कछू खावता जाय सो भोजन अशुद्ध है। इत्यादिक भाव अशुद्ध हैं। १। रात्रि का पीसा-पकाया-आरम्भा होय, बहुत काल का मर्यादा रहित होय गया होय तथा रात्रि का किया बासी होय। इत्यादिक काल-अशुद्ध है। २। अन्धकार क्षेत्र मैं किया, जहाँ छोटे-बड़े जीव पतनादिक की ठीक ना होय, जहाँ बहुत जीवन का गमन होय, चौपट स्थान होय, जहाँ बहुत जीवन की उत्पत्ति होय, मच्छर-चींटी-मक्खी बहुत होंय इत्यादि क्षेत्र अशुद्ध है।३। करनेहारे का तन, रोग पीड़ित होय। खांसी, श्वांस, खुजरी, जुखामादि रोग सहित होय। तन मैं फोड़ा दुखना बहुत होय, निद्रा जाके तन मैं बहुत होय, इत्यादिक दोष सहित करनेवारा होय, सो द्रव्य अशुद्ध है तथा वीधा अन्न न होय, जल अनगाला होय, घृत चर्म का होय, आटा रात्रि का पीसा होय, इत्यादिक द्रव्य अशुद्ध है। ४। सो ऐसे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव करि अशुद्ध होय सो खान-पान अशुद्ध है धर्मातमा जीवन करि हेय है और राह चलते खाते-पीते जाना। चौड़े बैठि खावना। पांति विरोधी के संग बैठि खावना। कौतुक सहित खावना। बाजार मैं बिकता, सीधा तैयार भोजन मोल लेय खावना। इत्यादिक खान-पान अशुद्ध हेय है। ऐसे जानि विवेकी हैं तिन कूं शुभ भोजन ग्रहण और अशुभ भोजन तजन योग्य है। इति खान-पान मैं ज्ञेय-हेय-उपादेय कही। आगे वचन में हेय-ज्ञेय-उपादेय कहिए है। तहां शुभाशुभ समुच्चय वचन का जानना सो ज्ञेय है। ता ज्ञेय के ही दोय भेद हैं। एक उपादेय है और एक तजवे योग्य है। सो जहां जो अन्य जीव कूं सुखदाई होय दया सहित होय क्रोध, मान, कुटि-लता, लोभ—इन च्यारि कषाय रहित होय धर्म-बुद्धि सहित होय। दान, पूजा, शील, संयम, तप, व्रतादि महान पुरुषन की चर्या सहित होय तथा धर्म उतसव वचन शान्ति भाव सहित हित वचन सौम्यता सहित प्रिय वचन इत्यादिक जिन-आज्ञा सहित सत्य हित-मित वचन है सो उपादेय है। इति उपादेय वचन। आगे

हेय वचन कहिए है। तहाँ क्रोध वचन मान-माया-लोभ वचन सप्तव्यसन रूप वचन पाप पोषण झूठ वचन सो या झूठि के च्यारि भेद हैं सो ही कहिए है। एक तो छती वस्तुकौं अछती कहना सो असत्य है। १। अछतीकौं छती कहना सो भी झूठ है। २। वस्तु थी तौ कछु और ही अरु वाकूं कहना कछु और ही सो भी झूठ है। ३। जिन-आज्ञा रहित परमार्थ तैं शून्य ऐसा वचन सो झूठ है। ४। योग्य अयोग्य वचन भेद हैं सो कहिए हैं।

गाथा—वयणो हेयादेयो, सत्तोपादेय वयण जिण धुणि सो। हेयो वयण अनत्तो, णिन्दो कुगइदेय सुत रहियो॥ २७॥

अर्थ—वचन हेय उपादेय रूप है। सो सत्य तौ उपादेय है। सो वचन जिन-आज्ञा प्रमाण है, ग्रहवे योग्य है। अतत्त्व वचन है सो हेय है निन्द्य है कुगति का दाता है और जिन-आज्ञा के विरुद्ध है। भावार्थ—सत्य जिन वचन सो तौ उपादेय है और अतत्त्व असत्य वचन हेय है। ता असत्य के भेद ग्यारह हैं। सो ही कहिए है। प्रथम नाम-अभ्याख्यान कलह वचन, पैशुन्य वचन, असम्बद्ध प्रलाप वचन, रति वचन, अरति वचन, उपाधि वचन, निकृष्ट वचन, अपरिणति वचन, मौखर्य वचन और मिथ्या वचन। अब इनका अर्थ—तहाँ ऐसा वचन बोलना कि देखो याने बहुत बुराई करी, याने बहुत बुरा वचन कह्या, याका नाम अभ्याख्यान वचन है। तहां ऐसा कहना जातैं परस्पर युद्ध होय सो कलह वचन है। ऐसा वचन कहना सो जाकरि पराया छिपा दोष प्रगट होय सो पैशुन्य वचन है। जहाँ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इनके सम्बन्ध तैं रहित बोलना सो असम्बद्ध प्रलाप वचन है। इन्द्रियनकौं सुखदाई जाकूं सुनि रति उपजै ऐसा वचन बोलना सो रति वचन है। जाकूं सुनि इन्द्रिय मन कूं अरति उपजै अनिष्ट लागै सो अरति वचन है। जहाँ अति परिग्रह की आसक्तता रूप लोभ की वृद्धि लिए वचन का बोलना सो उपाधि वचन है। जहाँ व्यवहार विषैं ठगवे कूं जुगत रूप वचन का बोलना सो निकृष्ट वचन है। जहां देव, गुरु, धर्म, व्रतादिक पूज्य स्थान तिनकौं अविनय रूप वचन कहना सो अपरिणति वचन है। जहां चोरन की चतुराई कला की शुश्रूषा रूप वचन सो मौखर्य वचन है। जहां धर्म घातक दया रहित अव्रत पोषित वचन सो मिथ्या वचन है। इनकूं आदि जे अशुभ वचन सो सम्यग्दृष्टिकैं सहज ही हेय हैं। जो बिना प्रयोजन परस्पर बात करना सो विकथा वचन है। ता विकथा के भेद पच्चीस हैं। सो ही कहिए हैं। प्रथम नाम स्त्री

कथा, धन कथा, भोजन कथा, राज कथा, चोर कथा, बैर कथा, पर पाखण्ड कथा, देश कथा, भाषा कथा, गुणबन्ध कथा, देवी कथा, निष्ठुर कथा, पर पैशुन्य कथा, कदर्प कथा, देश कालानुचित कथा, भण्ड कथा, मूर्ख कथा, आत्म-प्रशंसा कथा, पर परिवाद कथा, पर जुगुप्सा कथा, पर पीड़ा कथा, कलह कथा, परिग्रह कथा, कृष्यारम्भ कथा, सङ्गीत कथा—ए पच्चीस हैं। इनका अर्थ—जहां च्यारि पुरुष परस्पर बतलावना ताका नाम कथा है। सो शुभकारी वचन बतलावना, सो तो शुभ कथा है। वृथा बिना प्रयोजन बतलाय, पाप बन्ध करि, काल गमावना, सो विकथा है। ताके यह पच्चीस भेद हैं। सो जहां परस्पर स्त्रीन के स्वरूप की, चाल की, यौवन की—इन आदिक स्त्रीन की परस्पर कथा करि, काल गमाय, पाप का बन्ध करि परभव बिगाड़ै, सो स्त्री विकथा है। जहां परस्पर धन की वार्ता करना, जो धनवान् धन्य हैं। धन बिना जीवन कहां है? धनवान की सब सेवा करैं हैं। जगत् मैं धन ही बड़ा है। ये धन कैसे पैदा करिए? पारस तैं धन होय, रसायन तैं धन होय, चिन्तामणि मिले भला धन होय है। गिरा पावै, गढ्या पावै, कोऊ देवादि मिलै तौ धन जांचैं। फलाने राजा कैं धन बहुत है। केई कहैं उस सेठ कैं बड़ा धन है। इत्यादिक परस्पर धन की कथा करना, सो धन विकथा है। जहां परस्पर भोजन की बात करना। जो कोई कहै यह भोजन भला है वह भोजन भला है, वह व्यञ्जन भला है, वह भोजन भला बनावै है, इत्यादिक भोजन की कथा है। जहां राजान मैं काहू की बड़ाई, काहू की निन्दा। राजान के न्याय-अन्याय की बात तथा फौज की दीर्घता की तथा लघुता की कथा। ऐसे कोई राजा की निन्दा, कोई की स्तुति करि, परस्पर काल खोय बात करना, सो राज विकथा है। जहां अनेक चोरन की चतुराई की कथा। कोई चोर के पुरुषार्थ की कथा। चोरन कूं ऐसो दण्ड देना। वे चोर जोरावर हैं। इत्यादिक परस्पर चोरन की बात करना, सो चोर कथा है और जहां कोऊ कहै। मेरे-वाकै बैर भाव है। केई कहैं वाके-वाकैं द्वेष है। याके केई वैरी हैं। कोऊ कहै, हम वाकै क्या सारे हैं? इत्यादिक परस्पर कथा करनी, सो वैर कथा है और जहां पराया छिपा दोष प्रगट करना। वह कहै तूं महापाखण्डी है। कोई कहै तेरे दोष मैं सब जानूं हूँ वह कहै, तोसे दुराचारी संसार मैं नाहीं। इत्यादिक परस्पर बात करना सो पर-पाखण्ड विकथा है। जहां देशन की निन्दा-स्तुति करनी। कोई कहै यह देश भला है, वह देश भला नाहीं। उस देश में शीत-गर्मी बहुत वा

देश मैं अन्न नाहीं होय वा देश मैं जल थोरा इत्यादिक देशन की बात करना सो देश विकथा है। जहां कु-कविन किये अनेक छन्द, कवित्त, गीत, दोहा, पहेली, साखी, कहानी, किस्सा—इन आदि अनेक वचन बन्धान परमार्थ रहित जिनकी कथा जो वाने रस-कवित्त बनाये हैं। वाने वा राजा के भले-यशरूप कवित्त किए हैं। वह बहुत किस्सा-कहानी जानै है। इत्यादिक कथा करनी सो भाषा कथा है तथा पशून के वचन जो वह सूवा भला बोले है वाकी मैना अच्छी बोले है वाकी तूती अच्छी बोलै है। तीतुर, लाल, कबूतर, काक, कोयल, गर्दभ, स्वानादि अनेक पशून की भाषा-शुभाशुभ की कथा करनी सो भाषा कथा है और पराए गुण मेटने रूप उपाय राज पञ्चसभा मैं ऐसा कहै जो वामैं कहा गुण है ? वैसे तुम कूं बहुत बतावैगे। याही तैं बहुत गुणी हमने देखे हैं। कई कहैं हमनैं बातैं भी घने गुणी देखै हैं। केई कहैं यह कहा है वामैं बड़े गुण हैं। इत्यादिक परस्पर कथा करना सो गुण बन्ध-कथा है। जहां कुदेवन का अतिशय-करामात की कथा जो केई कहैं शीतला जागती ज्योति हैं। केई कहैं वह भैंरो प्रत्यक्ष कोई कहै वह देवी प्रत्यक्ष हैं। बैटा, धन देय है। इत्यादिक परस्पर कथा करनी सो देवी कथा है। जहां कोई कहै तूं महादुष्ट है। यह महापापी है। याकी मूर्खता जगत् जानैं है। ऐसे परस्पर कठोर वचन बतलावना सो निष्ठुर वचन कथा है। जहां पराया बुरा करवे की बात पराई निन्दा की बात परकौं पीड़ाकारी वचन इत्यादि परस्पर कथा करनी सो पर-पैशुन्य विकथा है। जहां नाना प्रकार की श्रृङ्गार कथा जाके सुनैं चित्त विकार रूप होय ऐसी कथा परस्पर करना सो श्रृङ्गार कथा है और जहां इस देश मैं यह रीति भली है यह रीति भली नाहीं। वा देश मैं फलानी वस्तु अच्छी नाहीं वह वस्तु अच्छी है। इत्यादिक परस्पर बतलावना सो देश कालानुचित विकथा है और जहां कौतूहल हांसी रूप परस्पर हर्ष-हर्ष गाली बोलना विपरीत बोलना सो भण्ड कथा है और जहां अविवेकी वार्ता करना सो मूर्ख विकथा है और जहां परस्पर अपने गुणन की कथा। जहां कोई कहै, अहो ! हममैं ऐसे गुण हैं। केई हैं परोपकार हमनैं केई करे हैं केई कहैं, हम बड़े मनुष्य हैं, हमसे बड़ा कोई नाही। इत्यादिक अपने-अपने गुण की सर्व कथा करैं सो आतम-प्रशंसा नाम कथा है। परस्पर औरन की निन्दाकारी कथा करनी सो पर-परिवाद कथा है और जहां अन्य का शरीर तथा वस्त्र मलिन देख तथा रोग-मलिन देख, ग्लानि रूप कथा करै सो दुर्गन्ध

विकथा हैं और पर को दुखी करने की, पर के घर लूटने की इन आदि औरन कूं आकुलताकारी कथा करना सो पर-पीड़ा कथा है और जहां परस्पर युद्ध करने की लड़ने की कथा करनी सो कलह विकथा है। परिग्रह बधावै (बढ़ावै) की वार्ता परस्पर करनी सो परिग्रह कथा है और परस्पर खेती निपजने की कथा है। जो अब के मेघ भला हैं धरती हमनैं बहुत जोती है। वानै छोड़ दई धरती थोरी उठाई इत्यादि खेती की कथा सो कृष्यारम्भ विकथा है। जहां नाना प्रकार राग, नृत्य, गीतादिक की कथा सो सङ्गीत विकथा है। ऐसे ए पच्चीस विकथा रूप वचन हैं। सो सर्व पापकारी तजवे योग्य जानना। ऐसे शुभाशुभ वचन मैं हेय-ज्ञेय-उपादेय कह्या। इति वचन मैं ज्ञेय-हेय-उपादेय कथन। आगे द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव का स्वरूप लिखिये है—

गाथा—दव्वो खेतो कालय, भावो चत्तादि भेय जिण उत्तं। गेयोपादेय हेओ सम्मोदिट्ठी सोवि णादव्बो ॥ ३८ ॥

अर्थ—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव—ए चारि भेद जिन देव ने कहे हैं। तिनमैं हेय-ज्ञेय-उपादेय करै, सो आत्मा सम्यग्दृष्टि जानना। भावार्थ—द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव करि वस्तुन का धारन होय है। तहां प्रथम ही द्रव्य विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय कहिए है। समुच्चय जीव का जानना, सो ज्ञेय है। ताही ज्ञेय के दोय भेद हैं। एक हेय एक उपादेय। सो तामैं जाकूं पर-द्रव्य जानिये सो हेय है। जैसे—पुद्गल, धर्म-अधर्म, आकाश, काल और आप आतम तत्त्व भेद ज्ञान का विचारनहारा अनुभवी हेय-ज्ञेय-उपादेय का करनहारा आतम द्रव्य है। ता एक आत्मा के सिवाय अनन्ते जीव द्रव्य और ऐसे ही षट् ही द्रव्य हैं। सो पर-ज्ञेय जानि हेय हैं, तजवे योग्य हैं। ए सर्व अपने आतम स्वभाव तैं भिन्न हैं तातैं तजवे योग्य हैं। इनके गुण-पर्याय भी जड़ हैं, अज्ञान हैं, मूर्ति हैं, अमूर्ति हैं, तातैं हेय हैं। इहां प्रश्न—जो मूर्ति तौ तजवे योग्य हैं यह हमने भी जानी। परन्तु अमूर्ति चेतना गुण सहित इनकूं हेय क्यौं कह्या ? ताका समाधान—भो भव्य ! जो तेरे मन मैं पुद्गल द्रव्य पर है ऐसी आई है तौ ये भी आजाय है। तू चित्त देय सुनि। देखि पुद्गल तौ अमूर्तिक है। सो पर है ही, सो तैं जानी ही है। धर्म-अधर्मादि च्यारि द्रव्य अमूर्तिक तौ हैं; परन्तु चेतना रहित जड़ हैं। तातैं तजवे योग्य हैं तातैं हेय हैं और आप स्वभाव तैं अन्य जीवन के प्रदेश सत्व गुण पर्याय भिन्न हैं। उनके किये राग-द्वेष भाव का फल आपकौं नहीं लागै। अपने किये राग-द्वेष का फल उन पर-जीवन कूं नहीं लागै। अन्य कूं सुख भए आपकूं सुख नाहीं। परकूं दुख भए आपकूं

सु
दृ
ष्टि

दुख नाहां। अन्य जीवकूं मोक्ष भए आपकूं मोक्ष नाहीं तातैं संसार विषैं अनन्ते जीव हैं सो सर्व भिन्न-भिन्न हैं। अपने-अपने परिणाम के भोगता हैं और संसारी भोरे जीव भी ऐसी कहैं हैं कि जो करेगा सो पावैगा ऐसी सर्व जगत् मैं बात प्रगट है। तातैं अनेक नयन करि भी विचार देखि कि आप तैं भिन्न और अनन्ते जीव हैं। सो भी पर-द्रव्य जानि तजवे योग्य है। तातैं हेय किये है। ऐसा समाधान जानना और भी सम्यग्दृष्टि समता रस प्रगट भए वैराग्य बढ़ावे कूं जगत् का स्वरूप विचारैं। सो द्रव्यन मैं अल्प बहुत तो ऐसे विचारैं। जो जीव द्रव्यन मैं तीन गति के जीव तौ बहुत हैं और मनुष्य गति के जीव-द्रव्य बहुत ही थोरे हैं। तहां देव च्यारि प्रकार हैं। सो जुदे-जुदे असंख्याते हैं और नारकी सात हैं। तहां भी एक-एक मैं जीव असंख्यात हैं और तिर्यञ्च गति विषैं जीव तथा पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजकायिक, वायुकायिक—इन सर्व मैं असंख्याते-असंख्याते जीव हैं। तिन सर्व तैं थोरी जीव राशि अग्निकायिक है। सो भी असंख्यात लोकन के जेते प्रदेश होंय तेते जानना। सोई बताइए है। एक सूच्यांगुल क्षेत्र प्रमाण एक प्रदेश सूची में केते प्रदेश हैं सो सुनौं। असंख्यात सागर के जेते समय होंय तेते प्रदेश जानना। एक अंगुल के क्षेत्र के ऐते प्रदेश होंय तौ हाथ भर के केते प्रदेश होंय ? तौ एक कोस के केते होंय ? तौ सर्व लोक के केते होंय ? सो ऐसे-ऐसे असंख्यात लोक के जेते प्रदेश हैं तेतै तेजकायिक जीव जानना। ए सर्व तैं थोरे हैं और इन तेजतैं असंख्यात अधिक पृथ्वीकायिक हैं। पृथ्वी तैं असंख्यात बढ़ते अप्कायिक हैं। अपतैं असंख्यात अधिक वायुकायिक हैं वायुकायिकतैं असंख्यात अधिक प्रत्येक वनस्पति के जीव हैं। प्रत्येकतैं तथा सर्व जीव राशितैं अनन्तगुणे साधारण वनस्पति जीव हैं। इनही पञ्च स्थावरन मैं सूक्ष्म और बादर दोय भेद हैं। तहां आश्रय बिना उपजैं आयु अन्त बिना मरैं नाहीं काहूतैं रुक न सकै सो सूक्ष्म हैं। परकौं रोकैं परतैं आप रुकैं शास्त्रादिकतैं घात पावैं सहायतैं उपजैं सो बादर हैं। सो बादर चार स्थावरन मैं असंख्यात हैं। बादर तैं असंख्यातगुणे सूक्ष्म हैं साधारण मैं बादर अनन्त हैं। तातैं अनन्तगुणे सूक्ष्म साधारण हैं। वेन्द्रियतैं तेन्द्रिय, चौन्द्रिय, पंचेन्द्रिय व तिर्यञ्चराशि असंख्यात-असंख्यात है और कर्मभूमि के मनुष्य सर्व संख्यात हैं। ऐसे जीव द्रव्य अपेक्षा कथन कह्या। इति द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव का स्वरू। आगे षट्कायिक जीवन के शरीरन के आकार कहिए हैं। तहां पृथ्वीकायिक का आकार मसूर के समान है और अपकायिक का आकार जलबिन्दु

त
रं
गि
णी

समान है। तेजकायिक का आकार बहुत सूजी के समूह समान है और पवनकायिक का शरीर आकार ध्वजा समान है। वनस्पति के तन का आकार अनेक प्रकार है वेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चौन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जीवन के शरीर के आकार अनेक प्रकार हैं। इति षट्कायिक शरीराकार। आगे षट्कायिक का आयु-कर्म कहिए है। तहां पृथ्वी के भेद दोय। एक नरम और एक कठोर। पीली मिट्टी, खड़ी मिट्टी, गेरू मिट्टी आदि ए नरम पृथ्वीकायिक हैं। याकी उत्कृष्ट आयु बारह हजार वर्ष प्रमाण है। कठोर पृथ्वी जो हीरा रतनादि पाषाण ताकी उत्कृष्ट आयु बाइस हजार वर्ष है। जलकायिक उत्कृष्ट आयु सात हजार वर्ष है। अग्निकायिक को उत्कृष्ट आयु तीन दिन है। पवनकायिक की उत्कृष्ट आयु तीन हजार वर्ष है। वनस्पतिकायिक की उत्कृष्ट आयु दश हजार वर्ष की है। जल की जोंक, गिंडोला, लट, नारुवादि वेन्द्रिय जीवन की उत्कृष्ट आयु बारह वर्ष हैं। चोंटी, खट्मल, कुन्थुवादि तेन्द्रिय की उनचास दिन की है। चौन्द्रिय मक्खी, भौंरा, टीड़ी आदि की उत्कृष्ट आयु षट् मास की है और असैनी पंचेन्द्रिय की उत्कृष्ट आयु कोड़ पूर्व वर्ष प्रमाण सैनी पंचेन्द्रिय विषैं देव नारकीन की उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर की है। उत्कृष्ट भोग भूमियां मनुष्य तिर्यञ्चन की तीन पल्य की है। कर्म भूमियां मनुष्य-पशु की उत्कृष्ट आयु कोड़ि पूर्व वर्ष प्रमाण है। देव नारकी की जघन्य आयु दश हजार वर्ष की है। मनुष्य तिर्यञ्चन की जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त है। इति षट्कायिक आयु। आगे षट्कायिक जीव उत्कृष्ट कर्म-स्थिति केती करैं, सो कहिए है। तहां पञ्च स्थावर एकेन्द्रियन की उत्कृष्ट कर्म-स्थिति एक सागर जानना और सर्व अष्ट कर्मन मैं उत्कृष्ट स्थिति दर्शनमोहनीय की जानना। वेन्द्रिय उत्कृष्ट कर्म-स्थिति बांधैं तौ पचास सागर जानना और तेन्द्रिय उत्कृष्ट कर्म-स्थिति बांधैं तो पचास सागर जानना और चौन्द्रिय उत्कृष्ट कर्म-स्थिति बांधैं तौ सौ सागर जानना व असैनी उत्कृष्ट स्थिति हजार सागर की बांधै है। संज्ञी पंचेन्द्रिय उत्कृष्ट सत्तरि कोड़ाकोड़ि सागर कर्म-स्थिति बांधैं है। इति कर्म-स्थिति। आगे षट्कायन की पंचेन्द्रिय हैं तिनके आकार कहिए है। तहां स्पर्शन इन्द्रिय शरीर है, सो शरीरन के आकार अनेक प्रकार तैसे ही स्पर्शन इन्द्रियन के भी आकार जानना और रसना इन्द्रिय का आकार गौ के खुर के समान है और नासिका इन्द्रिय का आकार तिल-फूल के आकार है और नेत्र इन्द्रिय का आकार मसूर की दाल समान है। श्रोत्र इन्द्रिय का आकार जव

की नाली के आकार है। इति आकार। आगे पंचेन्द्रियन का विषय केता-केता है। सो बताइए है। तहां संज्ञी पंचेन्द्रिय स्पर्शन, रसना, घ्राण—इन तीन इन्द्रियन तैं उत्कृष्ट नव-नव योजन की जानैं और नेत्र इन्द्रियतैं उत्कृष्ट सैंतालीस हजार दोय सौ तिरेसठ योजन जानैं हैं और श्रोत्र इन्द्रिय उत्कृष्ट बारह सौ आठ योजन की जानै। इति सैनी। आगे असैनी विषैं—तहाँ असैनी पंचेन्द्रिय स्पर्शन इन्द्रिय तैं उत्कृष्ट चौसठि सौ धनुष की जानैं और रसना इन्द्रियतैं उत्कृष्ट पांच सौ बारह धनुष की जानैं। नासिका इन्द्रिय तैं च्यारि सौ धनुष की जानैं और चक्षु इन्द्रिय तैं गुणसठि (उनसठि) योजन की जानैं और श्रोत्र इन्द्रिय तैं आठ हजार धनुष की जानैं। इति असैनी। आगे चौन्द्रिय का विषय—तहां चौन्द्रिय स्पर्शन इन्द्रिय तैं बत्तीस सौ धनुष की जानैं और रसना इन्द्रियतैं दोयसौ छप्पन धनुष की जानैं। घ्राण इन्द्रिय तैं दोय सौ धनुष की जानैं और चक्षु इन्द्रियतैं गुणतीस सौ चौवन योजन जानैं। इति चौन्द्रिय। आगे तेन्द्रिय का विषय—तहां तेन्द्रिय, स्पर्शन इन्द्रिय तैं सोलह सौ धनुष की जानैं। रसना इन्द्रियतैं एक सौ अठाईस धनुष की जानैं है। घ्राण इन्द्रिय तैं सौ धनुष की जानैं है। इति तेन्द्रिय। आगे वेन्द्रिय का विषय—और वेन्द्रिय स्पर्श तैं आठ सौ धनुष की जानैं और रसना इन्द्रिय तैं चौंसठि धनुष की जानैं। इति वेन्द्रिय। आगे एकेन्द्रिय का विषय—तहां एकेन्द्रिय स्पर्शन इन्द्रिय तैं च्यारि सौ धनुष की जानैं। इति एकेन्द्रिय विषय। पंचेन्द्रिय का विषय कह्या। आगे एकेन्द्रिय के भेदन मैं निगोदि। सो निगोदि पञ्चस्थान हैं, ताको भोरे जीव पञ्च गोलक कहैं हैं। सो कहिए हैं। उक्तं च सिद्धान्त गोम्मटसार—

गाथा—जंवूदीवं भरहो, कोसल सागेदतग्घराइं वा। खंधडरअवासा, पुलवि सरीराणि दिट्ठन्ता ॥ ३९ ॥

अर्थ—जैसे जम्बूद्वीप, तामैं भरतक्षेत्र, भरतमैं कौशल देश, देशमैं साकेत नगर, नगर में घर। तैसे ही निगोद के पञ्च गोलक हैं। स्कन्ध, अण्डर, आवास, पुलवी और शरीर—ए पञ्च गोलक हैं। इनका सामान्य स्वरूप कहिए है। तहां एक सूजी की अणी (नोंक) पै साधारण वनस्पति के जेते स्कन्ध आवें। तेते स्कन्ध कूं ले केवलज्ञानी सर्वज्ञ कूं पूछिए। भो प्रभो! इन विषैं जीव संख्या कहो। तब ज्ञानी कहैं। इस सूजी के ऊपर निगोद हैं। तामैं असंख्यात लोग प्रमाण स्कन्ध हैं। तिस एक-एक स्कन्ध में असंख्यात-असंख्यात लोक प्रमाण अण्डर हैं। एक-एक अण्डरमैं असंख्यात-असंख्यात लोक प्रमाण आवास हैं। एक-एक आवास में असंख्यात-

असंख्यात लोक प्रमाण पुलवी हैं। एक-एक पुलवी मैं असंख्यात-असंख्यात लोक प्रमाण शरीर हैं। एक-एक शरीर मैं अक्षत अनन्त जीव हैं। एक-एक शरीर मैं तैं जीव घड़ी-घड़ी मैं अनन्त-अनन्त निकसि मोक्ष जाया करैं सो ऐसे अनन्तकाल तांई मोक्ष जाया करैं, तौ भी एक शरीर खाली नहीं होय। तातैं वाका नाम अक्षय अनन्त है। ऐसे सूजी के अणी प्रमाण साधारण निगोद के जीवन की दीर्घता है। ऐसी निगोद तैं तीन लोक भरचा है। कोई भोरे जीव ऐसा मानै हैं। जो सातवें नरक के नीचे पांच गोलक हैं, तहां निगोदियान का स्थान है। सो हे भव्य ! हो, ऐसा नाहीं है। ए भ्रम है। पञ्च गोलक तौ एक स्कन्ध मैं ऊपर कही, तैसे हैं। या सर्व लोक मैं निगोदि राशि जल के घटवत् भरी है। ता निगोद के दोय भेद हैं। एक तो नित्य-निगोदि एक इतर-निगोदि है। सो अनन्तकाल से जानै व्यवहार राशि स्पर्शी हा नाहीं सो तौ नित्य-निगोद कहिए और जे जीव निगोदि तैं निकसि व्यवहार राशि च्यारि गति पाय फेरि कर्म तैं निगोदि मैं गया सो इतर-निगोदिया कहिए। ऐसे निगोदि आदि पंचेन्द्रिय पर्यन्त जे जीव हैं सो इन षट्कायिक का उत्कृष्ट आयु तौ ऊपरि कहि ही आए हैं और जघन्यमैं विशेष एता जो बहुत ही अल्प आयु कर्म षट्काय का होय तो एक श्वास के अठारहवें भाग होय। एक अन्तर्मुहूत मैं उत्कृष्ट भव धरै तौ छ्यासठि हजार तीन सौ छत्तीस बार जन्मे और एते ही बार मरै है। सो ही विधिवार कहिए है। तहां पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजकायिक, वायुकायिक और वनस्पति के भेद प्रत्येक साधारण करि दोय हैं। सो एक शरीर का एक जीव स्वामी होय सो तौ प्रत्येक वनस्पति है। जहां एक शरीर के अनन्त जीव स्वामी होंय सो साधारण वनस्पति है। तहां प्रत्येक वनस्पति का एक शरीर नाश भये एक जीव का ही घात होय। साधारण वनस्पति का एक शरीर घात होतैं अनन्त जीवन का घात होय है। तातैं धर्मात्मा जीवनकूं साधारण वनस्पति का विशेष यतन करना योग्य है। ऐसे साधारण प्रत्येक वनस्पति तिनमैं तैं प्रत्येक वनस्पति लीजै। ऐसे पञ्च स्थावर के सूक्ष्म बादर करि दश भेद हैं। एक प्रत्येक वनस्पति ए सर्व ग्यारह भेद एकेन्द्रिय के भये। तिनमैं जुदे-जुदे छै हजार बारह छै हजार बारह जन्म-मरण करैं तौ ग्यारह स्थान के मिलि छ्यासठि हजार एक सौ बत्तीस जन्म-मरण भये सो तौ एकेन्द्रिय के जानना। वेन्द्रिय के अस्सी, तेन्द्रिय के साठ, चौन्द्रिय के चालीस, पंचेन्द्रिय के चौबीस तिनमैं आठ भव सैनी आठ भव असैनी के

और आठ भव मनुष्य के ए चौबीस पंचेन्द्रिय के। सर्व मिलि छयासठि हजार तीन सौ छत्तीस जन्म-मरण षट्कायिक जीवन के होय हैं। सो सर्व जीवन मैं मनुष्य राशि अल्प है। क्षेत्र विषैं देव नारकीन का क्षेत्र असंख्यात योजन का है और तिर्यञ्च का एकेन्द्रिय अपेक्षा सर्व लोक त्रस अपेक्षा भी असंख्यात योजन क्षेत्र है। सर्व तैं अल्प क्षेत्र मनुष्य का है सो पैंतालीस लाख योजन प्रमाण है। काल अपेक्षा भी देव नारकीन का आयुकाल तौ असंख्यात वर्ष प्रमाण है। मनुष्य का काल थोरा है। या मैं जीवन अल्प है। भाव अपेक्षा देव, नारकी, पशु उपजने के भाव बहुत हैं। अल्प से पुण्यरूप भाव हौंते देव होय है और अल्प से पापन तैं नरक के दुख का भोगता होय है और आर्त-भाव तैं तिर्यञ्च होय है। सो आरति जीवकूं सदैव ही लगी रहै है। परन्तु मनुष्य होवे के भाव महाकठिन हैं। कोई दीर्घ पुण्य भाव नाहीं पाप भाव कोई नाहीं। मध्य भाव सरल भाव मन्द कषाय भाव व्रत सम्यक् रहित भोरे सरल कोमल भाव ऐसे महाकठिन भाव तैं मनुष्य होय। सो ऐसे मनुष्य होने के भाव थोरे काल करि मनुष्य थोरा काल जीवे। क्षेत्र करि मनुष्य का क्षेत्र थोरा है। भाव भी मनुष्य होने के थोरे है। सो द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव करि मनुष्य थोरे हैं। याका निमित्त मिलना कठिन है। तातैं ऐसी मनुष्य पर्याय द्रव्य में ज्ञेय-हेय-उपादेय करना योग्य है। इति द्रव्यमैं ज्ञेय-हेय-उपादेय कथन। आगे क्षेत्रमैं ज्ञेय-हेय-उपादेय कहिये है। तहां शुभाशुभ क्षेत्र का जानना सो तो ज्ञेय है। ताके दोय भेद हैं एक हेय एक उपादेय। सो जिस क्षेत्र में चोर रहते होय, हिंसाधारी मद्यपायी रहते होंय, सो क्षेत्र तजवे योग्य है। जहां महाक्रोधी, मानी, मायावी, महालोभी रहते होंय सो क्षेत्र हेय है। जहां धर्म रहित, दुराचारी, पापी जीव रहते होंय, सो क्षेत्र तजवे योग्य है। जहां कामी-जीवन की क्रीड़ा का अप्रच्छन्न स्थान होय, सो क्षेत्र तजवे योग्य है। जहां भांड़, बालक निर्लज्ज पुरुष कौतुक करते होय इत्यादिक क्षेत्र जहां आपकौं पाप लागै, निन्दा आवै, सो क्षेत्र तजवे योग्य है। जहां धर्मात्मा तिष्ठते होंय, धर्म-चर्चा होती होय तथा जिन-मन्दिर होय तथा वन, मसान, गुफा विषैं वीतरागी मुनि विराजते होंय सो क्षेत्र, तीर्थ समान उपादेय है। इत्यादिक शुभ क्षेत्र, व्यवहार नय करि उपादेय हैं और निश्चय नयतैं पर-द्रव्य क्षेत्र हेय हैं। अरु स्वद्रव्य क्षेत्र जो असंख्यात प्रदेशरूप, आत्माकार, ज्ञानमयी, अमूर्तिक, पुरुषाकार आत्मा करि रोक्या जो क्षेत्र, सो उपादेय है। इति क्षेत्र विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय। आगे काल में ज्ञेय-हेय-उपादेय बताइये है।

तहां शुभाशुभ समुच्चय काल का जानना सो ज्ञेय है। ताके दोय भेद हैं। एक हेय है, एक उपादेय है। तहां तीर्थङ्कर के गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और निर्वाण—ए पञ्च कल्याणकन के काल हैं, सो उपादेय हैं। ए शुभ काल हैं तथा अष्टाह्निका आदि बड़ी प्रभावना उत्सव के काल तथा भादवांजी आदि संयम के दिन, संवर सहित रहने के दिन तथा आठैं चौदश पर्व के दिन तथा जिस दिन उपवास, एक अन्तर, बेला, तेलादि तप दिन सो यह सब काल उपादेय हैं तथा जिस समय अपनी परिणति भली होय, शुभ धर्म्यध्यानरूप, शास्त्र अभ्यासरूप, तपरूप, संयम शीलरूप, समता भावरूप इत्यादिक अपने भावन की विशुद्धता रूप काल सो शुभकाल उपादेय है। तजवे योग्य जो खोटे पर्व होंय। हिंसा का काल होय तथा जिस समय क्रोध, मान, माया, लोभ की तीव्रता होय। तीन वेदन मैं कोई वेद का तीव्र उदय होय, सो समय-काल हेय है तथा कलहकारी पर्व होय, जिस पर्व का निमित्त पाय भले जीव विपरीत बुद्धि होंय। ऐसा मानें, जो आज वर्ष दिन के त्योहार का समय है। या मैं ऐसी खोटी चेष्टा होय। ऐसे पर्वकाल हेय हैं और जिस काल में कोई दया रहित कठोर परिणामी ऐसा विचारै जो आज का बड़ा दिन है। यामैं जीव घात किये बड़ा पुण्य होय है। आगे बड़े करते आये है। ऐसी जानि तिस दिन पापरूप परिणामैं, सो काल हेय है। कोई ज्ञान धन रहित भोरे जीव ऐसा मानैं, जो आज का दिन-मास भला है। इन दिनों में नदी, सरोवर, वापीन मैं जाय, अनगाले जल मैं स्नान करै तौ बड़ा पुण्य है तथा वृक्षन मैं लाय जल डारिए तौ पुण्य होय, ऐसी क्रिया करना जिन दिनों में कही होय, सो पर्व हेय है। केई मिथ्या रस भीजे जीव ऐसा समझैं हैं। जो या पर्व मैं वनस्पति काटिये, छेदिये, पत्ता-फूल तोड़ि देवादिक कौं चढ़ाईये, तौ बड़ा पुण्य होय। ऐसे पर्व काल भी हेय हैं केतेक भोरे जीव ऐसा मानै हैं, जो आज दिन ए पर्व ऐसा है, इन दिनों मैं अपने घर का भोजन नहीं खाईये। घर के वस्त्र नहीं पहरिये। परतैं भीख मांग कैं खाइये व वस्त्र पहरिये, तौ भला फल होय, ऐसे पर्व-काल भी हेय है तथा जगत्, अज्ञान दुख करि भऱ्या ऐसा मानैं हैं। जो कोई व्यन्तरादि देवता तथा कोऊ कुगुरुआदिक के चमत्कार का दिन जानि कहैं, जो फलानैं की तीर्थ-यात्रा का काल है। इत्यादिक काल सम्यग्दृष्टि तैं सहज ही हेय है तथा पाँचवाँ-छठा काल की प्रवृत्ति हेय है। इत्यादिक पापकारी धर्म-रहित दिन-पर्व-काल सो हेय हैं, तजवे योग्य हैं। इति काल विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय कथन। आगे

भाव विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय कहिये है। तहां शुभाशुभ भावना का समुच्चय जानना, सो ज्ञेय भाव है। ताही ज्ञेय के दोय भेद हैं। एक शुभ-भाव, एक अशुभ-भांव। तहां क्रोध-भाव, मान-भाव, माया-भाव, लोभ-भाव, सप्तव्यसन-भाव, द्यूत-भाव, अभक्ष्य-भक्षण-भाव, सुरापान-भाव, वेश्यागमन-भाव, पापार्घ जो जीव हिंसा-भाव, पर-द्रव्यादि हरण जो—चौर-भाव पर-स्त्रीनसंग—कुशील-भाव, धर्म-घातक-भाव इत्यादिक कु-भाव तजवे योग्य हेय हैं। व्रत भञ्जन-भाव, तप-शील-संयम दया-मार्ग के भञ्जन-भाव, पाखण्ड-भाव इत्यादिक दुराचार-भाव हैं, सो विवेकी जीवन करि तजवे योग्य हैं। इति हेय-भाव। आगे उपादेय भाव—तहां ऊपरि कहै जो कु-भाव तिनतैं विपरीत भाव जो तप-भाव, दान-भाव, शील-भाव, पूजा-भाव पर-वस्तु त्याग रूप जे—सन्तोष-भाव, वीतराग-भाव, शुद्धोपयोग-भाव, तीर्थ-वन्दनारूप-भाव, करुणा-भाव, सर्वहित-भाव, सर्व जीवतैं मैत्री-भाव, गुणीतैं प्रमोद-भाव, माध्यस्थ-भाव सो जहां दुखित दीन जीव, दरिद्री रोगी इत्यादिक कूं देखि कोमल-भाव राखना, सो करुणा-भाव है और सर्व जीवन कूं आप समान जानि सर्व की रक्षा करनी सो मैत्री-भाव है और आपतैं गुणाधिक कूं देखि हर्ष उपजना, सो प्रमोद-भाव है और पापी, पाखण्डी, दुराचारी, धर्म-द्रोही, अन्याई, कृतघ्नी, स्वामी-द्रोही, मित्र-द्रोही, विश्वासघाती इत्यादि दुष्ट जीवकूं देखि, राग-भाव-द्वेष-भाव नहीं करना, सो माध्यस्थ-भाव है। विनय-भाव, प्रभावना देखि प्रभावना करवे रूप भाव इत्यादिक शुभ-भाव हैं। सो विवेकी पुरुष कौं उपादेय हैं तथा सम्यग्दृष्टिन कैं सहज ही उपादेय हैं। इति भाव। ऐसे द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव करि, भेदन मैं हेय-उपादेय कथन। आगे तप विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय कहिए है।

गाथा—पणअग्गि आदि कुतव द्वादश तवोय कम्म णगवज्जो। चउ गई हेउ कुतवो सुह तवजीव रक्खु पादेओ ॥ ४० ॥

अर्थ—तहां पञ्चाग्नि आदि संसार कारण, कु-तप हैं और अनशनादि बारह तप सु-तप हैं, सो कर्म पर्वतन कौं वज्र समान हैं। तातैं जे हिंसा सहित, जीव घातक तप हैं, सो तजवे योग्य हैं और दया सहित, जीव रक्षाकारी सु-तप उपादेय हैं। भावार्थ—तप भेदन मैं समुच्चय तप का जानना सो तो ज्ञेय है। ताही के दोय भेद हैं। एक हेय तप और एक उपादेय तप। तहां पंचाग्नि व तन के नख केश बढ़ावना तप सो कु-तप हेय हैं। ऊर्ध्व मुख तप भूमि गड़ना तप, तरु झूलना तप, भोजन सहित उपवास मानना तप, दिन कौं अन्न

तजि रात्रि-भोजन सहित तप, ए कु-तप हैं, सो हेय हैं कु-देवन के साधनकूं कु-तप सो हेय हैं तथा पुत्र, धन, स्त्री इन आदिक अभिलाषा सहित तथा शत्रु के नाश के अर्थ तप ये कु-तप हैं हेय हैं जीवतही अग्नि मैं प्रवेश करि जल मरण तप अन्न तजि वनस्पति फल, फूल, पत्ता, दूध, दही, मठा इत्यादि का भक्षण तप इन्द्रिय का छेदन करि तामैं लोह की कड़ी-सांकल नाथना तप नीचा शिर ऊर्ध्व पांव करि तपना शीश पै अग्नि धारण तप, शीशपै तथा हस्तपै शिला धारण तप, ए सर्व कु-तप हैं शस्त्रधारा तैं मरना जलधारा मैं प्रवेश करि मरण तप तथा चाम टाट घास रोम के वस्त्र रख राक्षस तप करना इत्यादिक ए सर्व कु-तप हेय हैं। इति कु-तप। आगे सु-तप कहैं हैं। जिस तप के करते स्वर्ग-मोक्ष होय, सो शुभ तप है। ताके बारह भेद हैं। तिनमैं षट् बाह्य व षट् अभ्यन्तर के हैं। सो तहां अनशन, अवमोदर्य, व्रतपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन, कायक्लेश—ए षट् बाह्य तप हैं और प्रायश्चित्त, विनय, वैयाव्रत, स्वाध्याय, व्युतसर्ग और ध्यान—ए षट् अन्तरङ्ग तप हैं। अब सबनि का सामान्य अर्थ कहिये है—तहां वर्ष षट् मास, चौमास, पक्ष, पञ्च दिन, दो दिन, एक दिन इत्यादिक उपवास करना, सो अनशन-तप है।१। भूखतैं आधा चौथाई तथा कछू घाटि खाना, सो अवमोदर्य-तप है। २। रोज के रोज षट् रसन मैं तैं कोई एक-दो, च्यारि रसन का त्याग, सो रस-परित्याग-तप है।३। जो रोजि के रोजि खान-पान का प्रमाण तथा और भोग-उपभोग योग्य जे सर्व वस्तु तिनका प्रमाण करना, सो व्रत-परिसंख्यान-नाम-तप है। ४। और जहां तिष्ठैं, तहां स्थान की शुद्धता करि तिष्ठैं शून्य-एकान्त ऐसे स्थान को देखें जहां संयम की विराधना न हो, सो विविक्त-शय्यासन-तप है। ५। अन्तरङ्ग की विशुद्धता बढ़वेकूं बाह्य तनकौं जैसे कष्ट होंय सो ही निमित्त मिलावना, सो कायक्लेश-तप है।६। ए षट् तपकौं बाह्य कहैं। इनकूं करैं तब औरकौं जान्या परै जो याके तप है तातैं बाह्य तप कहिये और जहां अपने तप-चारित्रकूं तथा षट् आवश्यककौं तथा मूलगुणन इत्यादिक अपने मुनि-धर्म कौं कोई अतीचार लागा जानैं। तो गुरु के पास अपने अन्तरङ्ग का दोष जाकूं और कोई नहीं जानैं ऐसा छिपा दोष ताकौं धर्म का लोभी गुरुनपै प्रकाशै। पीछे गुरु का दिया दण्ड लेय लगे दोषकौं शुद्ध करै, सो प्रायश्चित्त-तप है। ता प्रायश्चित्त के दश भेद हैं, सो कहिये हैं। आलोचना, प्रतिक्रमण, तदुभय, विवेक, व्युतसर्ग, तप, छेद, मूल, परिहार और श्रद्धान—ए दश भेद हैं। अब

इनका विशेष—जहां प्रमादवशाय अपने मुनि-पदकूं दोष लाग्या जानि उर विषैं आलोचना करै तथा गुरु के पास जाय प्रकाशै पापतैं भय खाय जैसे आपकौं दोष लागा होय तैंसे ही मन-वचन-काय की सरलता सहित जिस-जिस विधितैं दोष लागा होय तिस विधि तैं आप गुरुन के पास कहै। तब सहज ही लाग्या पाप नाश होय। इनके परिणामन की सरलता तैं निर्दोष संयम होय, दोष नाशै सो आलोचना प्रायश्चित्त है। केतैक पाप ऐसे हैं जिनका दण्ड आलोचना ही है। आलोचना ही तैं दोष मिटै। जैसे—लौकिक मैं काहू का बिगाड़ किसी तैं भया होय। तौ, जाय धनी तैं कहै जो मेरे प्रमाद तैं भूलिकर आपका बिगाड़ मोतैं भया। अब आपकी इच्छा सो करौ। मोतैं भूलि भई आप बड़े हौ नीकी जानौं सो करौ। ऐसे कहे तौ धनी याकूं सरल जानि यातैं द्वेष नाहीं करै दिलासा दे सीख देय। दोष दूर होय तैंसे आलोचना शुद्धभाव तैं किए दोष जाय हैं।१। जहां अपने चरित्र कौं दोष लाग्या जानि आप मन में बहुत पछतावै। अपनी निन्दा-गर्हा करै तो दोष दूर होय। जैसे—लौकिक मैं काहूतैं पंचन की चूक भई होय तौ वह जाय पंचन पै सरल-दीन होय कहै। जो मोपै चूक भई आगे से मैं ऐसी कबहूं नहीं करूँ। अब पंचन की आज्ञा होय सो मोकौं कबूल है। ऐसे कहते पंच याकूं सरल जानि दोष माफ करैं। तैसे ही केतेक दोष ऐसे हैं जो निन्दा-गर्हा किये जांय हैं। सो प्रतिक्रमण आलोचना है।२। जहां अपने चरित्रकौं कोई दोष लागा जानैं तौ गुरु के पास भी कहै अरु बारम्बार आलोचना अपनी निन्दा-गर्हा भी करै तो दोष मिटै। केतेक दोष ऐसे हैं जो लौकिक मैं काहू का बिगाड़ रूप काहूतैं भूल होय गयी होय तौ धनी पै जाय कहै जो मैं आपके पास आया हौं आपका कार्य मोतैं कछू बिगड्या है मैं महामूर्ख मेरे कर्तव्य का निमित्त देखो। आप बड़े हो। जैसे—भला होय सो करो। मैं तौ भूल्या हौं। ऐसे कहै तौ धनी याकूं निश्शल्य जानि-भला मनुष्य जानि दोष क्षमा करै। तैसे ही केतेक दोष ऐसे हैं। सो तिनके मेटवेकौं गुरु पास भी अपना दोष प्रकाशै अरु अपनी निन्दा-गर्हा भी करै। याका नाम तदुभय प्रायश्चित है।३। जहां आपकूं कोई वस्तुकरि दोष लाग्या होय पीछे ताकौ यादि भए वाके दूर करवे को जा वस्तु तैं दोष लागा था ता वस्तु ही का त्याग करै, तब दोष दूर होय। जैसे—लौकिक मैं कोई भूलिकैं किसी मार्ग राजगृह मैं जाय पड्या तहां पकड्या। कही चोर है, मारो। तब यानैं कही भूलिकैं इस राह आया हौं, चोर नाहीं। अब कबहूँ इस राह नहीं आऊँगा, मोहि तजौ। तब राजा

के सेवकौं नैं याकों शुद्ध जानि तज्या। अरु कही अबकैं बच्या है। अब इस राह आये मार्‍या जायगा। या कहिकैं छोड़्या दोष मिट्या तथा कोई रोगीकूं घृत मनैं था सो वानै लोभकरि घृत खाया तब रोग दीर्घ भया। तब वैद्यनै कही तैं घृत खाया तातैं रोग बढ्या। तेरे घृततें राग बहुत तातैं रोग मिटता नाहीं। तब रोगी ने आपकूं घृततैं महादुख होना जानिकैं जीवन लौं घृत का ही त्याग किया तब वैद्यनैं याकूं सुखी किया। तैसे केतेक दोष ऐसे हैं जो जिस वस्तु के मोहतैं दोष लागै, ता वस्तु का ही त्याग करै तब दोष मिटै है, यह विवेक-प्रायश्चित्त है।४। जहां मुनीश्वर अपनं चारित्रकौं दोष लागा जानैं, तौ ताके दूर करवेकौं कायोत्सर्ग करैं। तहां पंचपरमेष्ठी की स्तुति व अपनी आलोचनादि करैं, तब दोष मिटै। जैसे—लौकिक मैं कोऊ आप मैं दोष लागा होय, ताहि जानि पञ्चन मैं खड़ा होय हाथ जोड़ि कहै मोतै भूल भई, तुम बड़े हौ ऐसे पंचन की स्तुति अपनी दीनता करो। तब पंच याकौं सरल जानि चूक माफ करि शुद्ध करैं। तैसे केतेक दोष ऐसे हैं, जो कायोत्सर्ग करैं तथा आलोचना किए नाश जांय सो व्युत्सर्ग-प्रायश्चित्त कहिये। ५। जहां यति अनेक उपवास धुरन्धर तप करनहारा वीतरागी तप करतैं कोई प्रमादवशाय अपने तप कौं दोष लागा जानि याद करि आचार्यन पै कहै। तब गुरु याकौं कोई यथायोग्य प्रायश्चित्त देंय, सो यह मुनीश्वर का दिया प्रायश्चित्त ताहि महाविनय सहित लेय, तब दोष दूर होय। जैसे—लौकिकमैं काहूमैं कोई चूक परै तब थोरा-बहुत द्रव्य लगाय चेत कराय शुद्ध करैं। तातैं केतेक दोष ऐसे हैं, जिनमैं आचार्य प्रायश्चित्त तप बतावै हैं। ताही प्रमाण तप धारण करै तब शुद्ध होय। सो याका नाम तप-प्रायश्चित्त है।६। जहाँ कोई बहुत दिन के दीक्षित बड़े तपसी तिनकूं प्रमादवशाय कोई दोष लागै, तब याद करि आचार्यकूं कहैं। तब गुरु इनकी दीक्षा मैं केतेक दिन छेद नाशैं। दीक्षा के दिन घटाय शुद्ध करैं। जैसे—लौकिक मैं काहू मैं चूक पड़ै, तब पंच वाकै पासतैं केतेक दिन की कमाई का धन खर्चाय, वाके घरतैं धन घटाय निर्धन करैं। आगे तैं ऐसा काम फेरि नाहीं करै। तैसे ही केतेक दोष ऐसे हैं जिनके प्रायश्चित्त में दीक्षा दिन घटावैं। जैसे—पांच सौ वर्ष तप करया होय तौ दोय सौ पचास वर्ष यथायोग्य घटावैं, तब शुद्ध होय याका नाम छेद-प्रायश्चित्त है। ७। कोई मुनिकौं मान के योगतैं दोष लागा होय तथा कोई मुनि धर्मकूं तजि खोटा मार्ग

सेवन करचा होय इत्यादिक बड़ा पाप किया होय पीछे आप गुरुपै कहै तौ आचार्य याकी सर्व दीक्षा छेदैं। नये सिरेतैं दीक्षा देंय तब शुद्ध होय। जैसे—लौकिक मैं कोईकौं भारी दोष लागै तौ ताकौ सर्व घर-माल-धन लूटैं रङ्क समान करि डारैं तब शुद्ध होय अब नये सिरेतैं कमावो तब खावो-इकट्ठा करो। तैसे केतेक दोष ऐसे हैं जो आचार्य याका दीक्षा धन सर्व छेदैं गृहस्थ समान असंयमी कर नये सिरेतैं दीक्षा देंय तब निर्दोष शुद्ध होय। याका नाम मूल-प्रायश्चित्त है।८। और नवमाँ परिहार प्रायश्चित्त है। ताके दोय भेद हैं। एक तौ अनुपस्थापन एक पारंचिक। तहां अनुपस्थापन के भेद दो। एक निज गणस्थापन एक परगण-स्थापन। तहां शिष्यमैं प्रायश्चित्त भये आचार्य शिष्यकौं अपने ही संघमैं राखैं सो निजगणस्थापन प्रायश्चित्त है और शिष्य मैं चूक भए संघतैं काढ़ि देंय, पर संघ मैं राखैं। जैसे—लौकिक मैं भी काहू मैं कोऊ चूक भए राज-पंच अपनै नगरतैं निकासि देंय पराए देश मैं राखैं। शुद्ध भए बुलावैं। तैसे संघतैं काढ़ि परगण मैं राखि शुद्ध करैं। ऐसे केतेक दोष हैं आचार्य जिनमैं यह दण्ड देय शुद्ध करैं हैं सो परगणस्थापन प्रायश्चित्त है। इनमैं निजगणस्थापन उत्तम है और परगणस्थापन बहुत मानभङ्ग का कारण है। तातैं महासखत है। सो यह उत्कृष्ट दण्ड कौन-सा है और कौन गुनाह पै कौन मुनिकूं होय सो कहिए है। उक्तं च आचार सार ग्रन्थे—

श्लोक—द्वादशाब्देषु षण्मास, षण्मासानसनंमतम् जघन्ये पञ्च पञ्चोपवासं, मध्यात्तु मध्यमम् ॥ १ ॥

अर्थ—जहां कोई शिष्यपै उत्कृष्ट दण्ड देय, तो षट्-षट् मासके उपवास उससे बारह वर्ष पर्यन्त करवावैं और जघन्य दण्ड देय, तौ पंच-पंच उपवास बारह वर्ष लौं करावैं। मध्यम दण्ड देय तो उत्कृष्ट और जघन्य के मध्य मैं यथायोग्य उपवास करवावें और जिनकौं ऐसे भारी दण्ड होंय सो संघ मैं कैसे रहैं? सो कहिये है। ऐसा दण्ड होय तिस शिष्यकौं आचार्य की ऐसी आज्ञा होय जो संघतैं बत्तीस धनुष अन्तर तैं तौ रहौ। सर्व संघकौं नमस्कार करो। संघ के मुनि ताकौं पिछान नमस्कार नहीं करैं। ताका दोष जगत् मैं प्रगट करवेकौं ऐसी आज्ञा होय, जो पीछी उलटी राखौ। मौनतैं रहो, कोई मुनि-श्रावकतैं बोलै नाहीं। कदाचित् बोले हो, तौ संघनाथ-आचार्य—अपना गुरु तातैं बोलै, नहीं तो मोनि रहै। ऐसा दण्ड ऐसी चूक भए होय, जो काहू मुनिनै कोई मुनि का शिष्य फुसलाय हर ले गया होय तथा कोई मुनि की पीछी, कमण्डलु, पुस्तकादि हरचा होय तथा

कोई श्रावक का पुत्र रतन, स्त्री, सुवर्णादिक हरे होंय तथा कोई मुनि श्रावक का चेतन-अचेतन परिग्रह हर्‌या होय तथा याकौं आदि और अन्याय कार्य, मुनि-धर्म का भञ्जक-असंयम सेवन कर्‌या होय, तिस मुनिकौ ऊपरि कहे दण्ड होय हैं। ऐसे दण्ड कौन-सी शक्ति वारे कूं होंय, सो कहिये हैं। जे मुनि महाज्ञानी, दस पूर्व के पाठी होंय, हीन ज्ञानीन तैं दीर्घ दण्ड की सामर्थ्य नाहीं। जैसे—बहुत कटुक भेषज स्याने पुरुष ही पीवैं और बालक तैं अज्ञान तैं नहीं पाई जाय, यह कड़वी औषधि के गुण नाहीं जानैं। तैसे अज्ञानी शिष्य, गुरु के दिये दीर्घ दण्ड का मर्म नाहीं जानैं। तातैं महान् ज्ञानीकौं होय है। वज्र-वृषभ-नाराच-संहनन आदि तीन संहनन का धारी होय, हीन-शक्तिकौं नाहीं होय, दीर्घ शक्तिमानकौं होय। क्योंकि जो आचार्य महादयालु, जगत्-बल्लभ सर्व के मात-पिता, सर्व के हित वांच्छिक हैं। सो जैसे—शिष्य का भला होता जानैं, सो ही प्रायश्चित्त देंय। कोई शिष्यतैं द्वेष-भाव नाहीं। अपनी मान-बड़ाई नाहीं। जैसे— शिष्यन का पाप क्षय होय, निरतिचार संयम तैं स्वर्ग-मोक्ष होय, सो ही करैं हैं। जैसे—कोई परोपकारी वैद्य, अनेक रोगीनकौं कोई कारणतैं खान-पान मनै करै है, काहू कूं लंघन करावै है, काहू कूं कटुक भेषज देय है। सो रोगीन तैं द्वेष नाहीं, उनके सुख हेतु बतावै है। तैसे आचार्यन का दण्ड जानना। वह धर्मात्मा शिष्य गुरु का दिया दण्ड महाविनय तैं आदर करि लेय, सो निज-गण-स्थापन प्रायश्चित्त है। पर-गण-स्थापन ताकौं होय, जो आचार्य का दिया दण्ड महामद सहित अङ्गीकार करैं। ताकौं आचार्य संघ तैं काढ़ि देंय। जैसे—लौकिक मांहि जो कोई राजा की आज्ञा नहीं मानैं, तौ राजा ताकौं अपने देश-नगर तैं निकासै। तैसे आज्ञा प्रतिकूल शिष्य कूं संघतैं निकासि देंय तथा मानी शिष्यकूं और संघमैं खिदाय, शुद्ध करैं। जैसे—लौकिक मैं अपना पुत्र घर की दूकानपै सीखै नाहीं तौ ताकौं पर की दूकानपै राखि, गुणवान करि शुद्ध करैं। तैसे ही शिष्य का भला जैसे होता जानै, तैसे ही भला करैं। ए पर-गण-स्थापन प्रायश्चित्त कहिये तथा कोई शिष्य गुरुपै मद सहित प्रायश्चित्त याचै, तौ आचार्य शिष्यकौं मद सहित प्रायश्चित्त याचता देखि, ऐसा कहैं। तुम फलानै आचार्य पै जावो वह तुमकौं प्रायश्चित्त देंयगे। तब शिष्य गुरु की आज्ञा पाय और आचार्य के पास जाय प्रायश्चित्त याचै। तब वह आचार्य शिष्यकौं मद दोष सहित जानि ऐसी कहैं तुम अपने ही गुरु पै याचो। तब शिष्य अनादर जानि पीछा अपने गुरु पै आवै। प्रायश्चित्त याचै। तब गुरु और

आचार्य के पास फिरावैं। तब वह भी दराड नहीं देय फिर अपने ही गुरुपै आवै। ऐसे सात संघमैं सात आचार्यन के पास खिदावै। कोई भी यानी शिष्यकौं दराड नहीं देंय तब यो अपने गुरु पास आय मान तजि सरल होय कहै। मोकों प्रायश्चित्त देहु। तब गुरु याकौं विनय सहित देखि निःशल्य प्रायश्चित्त याचता देखि प्रायश्चित्त देय शुद्ध करैं। इत्यादिक ए अनुपस्थान के भेद जानना। आगे पारंचिक प्रायश्चित्त का स्वरूप कहिए है। जानै मुनि, अर्जिका, श्रावक, श्राविका—इन च्यारि संघ कूं उपद्रव किया होय तथा कोई पृथ्वी के राजातैं द्वेष-भाव किया होय तथा जाकूं काहू स्त्री तैं कुशील सेवनादि अन्याय मार्ग का दोष लागा होय। तिस मुनि कूं बड़े दराड होंय। जैसे—ऊपर उत्कृष्ट दराड कहै सो होंय। पीछें धर्म रहित क्षेत्रन मैं राखैं और सर्व लोकनकौं ऐसा जनावैं जो ए मुनि महापाप के करनहारे हैं। बड़े पापी हैं तातैं आचार्यनै संघतैं इनकों काढि दिये हैं। संघ बाहिर किया है। ऐसा दीर्घ दण्ड अपमान का कारण लोकनिन्द्य ता दण्ड कूं पायकैं यह धर्मात्मा शिष्य हर्ष सहित परिणति राखि गुरु की आज्ञा प्रमाण प्रवर्ते है। कैसा है शिष्य महावैराग्य करि सर्व अङ्ग भरचा है? बड़ी शक्ति का धारी ज्ञान का भण्डार गुरु के दिए प्रायश्चित्त कूं पाय बढ्या है बहु हर्ष जाकैं, सो ऐसा आचार्य का दिया दण्ड पाय ऐसा विचारै, जो आज का दिन धन्य है। जो आचार्य हमकौं प्रायश्चित्त देय, शुद्ध करैं हैं। हमारे पाप दूर करवे का इलाज बताया है। सो अब हम गुरु के प्रसाद तैं पापकूं मैटि, मोक्ष चलेंगे। ए गुरु धन्य हैं। ऐसा हर्ष सहित प्रायश्चित्त लेय। ऐसे शिष्यन कूं ऐसे दराड होय हैं। ऐसे पारंचिक प्रायश्चित्त जानना। जैसे—लौकिक मैं राजा दीर्घ दराडवारे कौं लोक के जनावैंकौं, सर्व नगर मैं फेरैं। सर्वकूं ऐसा कहैं जो यह राजा का गुनहगार है। यानैं ऐसा निन्द्य कार्य किया था, सो ऐसा दराड पाया है। तैसे ही केतेक पाप ऐसे हैं जो ऐसा दीर्घ दराड भए ही शुद्ध होय है, याका नाम परिहार प्रायश्चित्त है। कोई शिष्य ने जिन-आज्ञा लोप, मिथ्यामार्ग सेया होय, तौ गुरु ता शिष्य की सर्व दीक्षा छेद नवीन दीक्षा देंय, तब शुद्ध होय। जैसे—लौकिक मैं काहू नैं अपना कुल-कर्म तजि, कोई नीच-कर्म किया होय। तौ राज-पंच वाका घर लूटि लैंय। सो केतेक दोष ऐसे हैं, सो सर्व दीक्षा छेद, नवीन दीक्षा देय, छेदोपस्थापन करावैं तब शुद्ध होय। याका नाम उपस्थापन प्रायश्चित्त है। ऐसे प्रायश्चित्त के दश भेद कहे। अपना लाग्या दोष कूं याद करि प्रायश्चित्त लेय शुद्ध होय, सो प्रायश्चित्त-तप

है।७। और आपतैं गुणाधिक का विनय, सो विनय च्यारि भेद है। सो ही कहिए है। प्रथम नाम—ज्ञान-विनय, दर्शन-विनय, चारित्र-विनय और उपचार-विनय। इनका सामान्य अर्थ—तहां विनयतैं शास्त्र वांचना, विनयतैं शास्त्र का सुनना और पद, विनती, पाठ, स्तुति पढ़ना, सो विनय तैं तथा शास्त्र लिखना-लिखवाना, सो विनय तैं तथा शास्त्र के मनोज्ञ पूजा-वन्दना करि हर्ष मानना, इत्यादिक ज्ञान-विनय है।१। अपने दृढ़ श्रद्धानकूं भलीभांति पालना, ता सम्यक् कूं पच्चीस दोष नहीं लागवे देय। राजा पञ्च कुटुम्बादि व्यन्तरादि देवन की शङ्का छांड़ि निःशङ्क होय अपने जिन-भाषित-तत्वनि का श्रद्धान दृढ़ रखना, सो दर्शन-विनय है।२। जहां पंच महाव्रत, पंच समिति, तीन गुप्ति—इन तेरह प्रकार चारित्र कूं विनय सहित पालना तथा इन चारित्रों के धारक मुनीन का विनय सो चारित्र का विनय है तथा चारित्र की तथा चारित्र के धारक की बारम्बार प्रशंसा-स्तुति करना, सो चारित्र-विनय है।३। जहां यथायोग्य द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव देख सर्व का विनय करना, सो उपचार-विनय है। तहां उपचार-विनय के दोय भेद हैं। एक धर्म सम्बन्धी विनय, एक कर्म सम्बन्धी विनय। जहां देव, धर्म, गुरु, तीर्थ, चारित्र, तप और व्रत की पूजा-स्तुति-प्रशंसा करना, सो धर्म-उपचार-विनय है तथा पञ्चपरमेष्ठी सम्मेद-शिखरजी आदि सिद्ध क्षेत्र अष्टाह्निका आदि शुभकाल सर्व जीव के हितभाव धर्म-शुक्लभाव ए सर्व धर्म सम्बन्धी द्रव्य क्षेत्र-काल-भाव हैं। सो इनकी अष्ट द्रव्य से पूजा-स्तुति करनी सो धर्म सम्बन्धी विनय है। राज पंच माता-पिता व्यवहार गुरु जाते लाभ भया होय तथा उम्र करि बड़े तिनका यथायोग्य विनय सो उपचार-विनय है।८। मुनि, अर्जिका, श्रावक, श्राविका—इन च्यारि प्रकार संघ के धर्मात्मा जीवन कूं तनमैं खेद देख तिनके पांव दावना, यतन करना, शुश्रूषा करना, सो वैयावृत्य-तप है।९। स्वाध्याय जो शास्त्र वांचना, प्रश्न करना औरनकूं जिन-धर्म का उपदेश करना और बारम्बार तत्वन का विचार सुन्या जो गुरु मुखतें उपदेश ताका बारम्बार चिन्तन तथा जिन-आज्ञा प्रमाण श्रद्धानरूप भावन की प्रवृत्ति ए पञ्च भेद स्वाध्याय हैं। जहां आतमहित कूं निराकुल चिन्तन करवे कूं तत्वन का ज्ञान बढ़ावै कूं कषायन का बल तोरवे कूं शान्तिरस पीववे कूं भेद-ज्ञान विचारवे कूं स्व-स्वभाव विषैं मगन होवे कूं शास्त्राभ्यास करना, सो स्वाध्याय-तप है तथा तत्वन मैं कोई प्रकार सन्देह हो तो ताके मेटवे कूं प्रश्न करना तथा अनेक नय का ज्ञान बढ़ावे कौं अनेक युक्ति सहित तत्व

भेदन का प्रश्न विशेष ज्ञानीनतैं करना, सो स्वाध्याय है। जहां जिन भाषित तत्त्वन की प्रतीति करना कि जो जिनदेव ने कह्या है सो प्रमाण है। ताही जिन-आज्ञा-प्रमाण श्रद्धान का करना। ताही आगम प्रमाण आप रहना सो आम्नाय भेद स्वाध्याय है। जहां भव्य जीवनकूं मोक्षमार्ग होवे कूं परभव सुधारवे कूं संसार दुख मेटवे कूं तत्त्वज्ञान बढ़ावे कूं आत्मिक ज्ञान की प्राप्ति होवे कूं परोपकार परिणति करि और जीवन कूं धर्म का उपदेश देना, सो धर्मोपदेश स्वाध्याय है। अङ्गीकार किया उपदेश ताकौं चलते-बैठते-सोवते सदैव चिन्तन करि सांसारिक पदार्थन का यथावत् चिन्तन करना। संसार दशा कूं अथिर विचारना तथा इस जीव कूं मरण समय कोई शरण नाहीं। माता-पिता, मन्त्र-तन्त्र-जन्त्र, देव, इन्द्र, व्यन्तरादिक कोई याकों शरण नाहीं। याके शरण याके सहाय कोई नहीं हैं। ऐसे अनेक नयन करि वस्तु कूं अशरण जानि चिन्तन करना, सो अशरण चिन्तन है। संसार षट् द्रव्यन करि भरचा ता विषैं जीव पर-वस्तु कूं मोहभाव कर अपनी मानता ता विषैं रति भाव मानता, सो संसार भाव चिन्तन है। संसार मैं ए जीव अनादिकाल का च्यारि गति मैं भ्रमण करता सुख-दुख का भोगता होय है। सो एकला आतमा ही है। कोई नाहीं। जब जीव अपने शुभ भाव करि देव होय तब नाना सुख का भोगता एकला ही होय है। जब अपने पाप भाव करि जीव नरक जाय है। तब दुख भी एकला ही भोगवै है। तिर्यंच-मनुष्य विषैं भी प्रसिद्ध दीखै ही है। जब इस प्राणीकौं पाप उदयतैं तीव्र दुक्ख होय है। तौ सर्व कुटुम्ब-जन देखा ही करैं हैं। ये ही पड़या विलाप करैं है। कोऊ बटावता नाहीं। च्यारि गति के दुख-सुख एकला आतमा ही भोगवै है ऐसा चित्त मैं विचारै, सो एकत्व-भाव चिन्तन है। संसार में जेते पदार्थ हैं तेते कोई काहूतैं मिलता नाहीं। सर्व अपने-अपने स्वभाव करि अन्य-अन्य हैं। ऐसा विचार होय सो अन्यत्व-भाव-चिन्तन है। शरीर अशुचि पुद्गल पिण्डमयी अपावन सप्तधातु का मन्दिर ग्लानि का स्थान ता विषैं निर्मल आत्मा अमूर्तिक ज्ञानमयी कर्मवश तैं एक-मेक दीसे है; परन्तु अपने चैतन्य भावकूं नहीं तजै। यहां प्रश्न—जो शरीरकौं ऐसा ग्लानि का स्थान बताय कथन किया सो यामैं ज्ञान की कहा महत्वता भई? अरु शरीर कूं ऐसा ग्लानि रूप श्रद्धान करै तो श्रोतान कैं कषायन की क्या समानता भई? यामैं तौ एक दुरगंच्छा नाम कर्म और बन्ध्या। दुरगंच्छा प्रगट भये सम्यग्दर्शन कूं मलिनता आवेगी। तातैं शरीर तैं ग्लानि मैं तौ कुछ नफा नहीं भासै है? ताका

समाधान भो भव्य ! जैसे—कोई मनुष्य शीतांग में डूबि रहा होय ताकूं कोई ओषधि लगता नाहीं जानि भला वैद्य होय सो तिस रोगीकूं ज्वर की आताप बढ़ावे का उपाय करै। सो ऐसा विचारै जो या रोगी का आयु-कर्म है अरु रोग जानेवाला है तौ ज्वर बढ़ेगा। मरन होना है तो शीतांग मिटैगा नाहीं मेरी औषधि वृथा जायगी। तैसे यह संसारी जीव अनादि मिथ्यात शीतांग मैं डूबि रह्या है। सो कोई उपाय नाहीं। तातैं हमने दुरगंच्छारूपी ज्वर की आताप बढ़ावे कौं यह उपाय किया है। सो हे भव्य ! जो तेरे तनतैं अनादि एकता के मोह तें अपनपा मानि शरीर मैं मगनता भई ताके पोषवेकूं तूं अनेक मिथ्यात्त्व कार्य करै है। अरु जब तेरे शरीरतैं मोह बुद्धि टूटि या सप्तधातुमयी फासै तौ चेतन भाव तैं प्रीति आवै सम्यक् होय। तातैं हमनैं शरीरतैं दुरगंच्छा उपजावेकूं अशुचि भावना का कथन किया है। सो जब शरीर तैं दुरगंच्छा होय तौ हमारा उपाय सिद्ध होय। तनतें भिन्न जानतैं अनादि मिथ्यात्त्व शीतांग मिटै मोक्ष होवे की आशा बढ़े। तातैं ए कथन जानना। ऐसा तेरे प्रश्न का उत्तर है। तातैं अशुचि भावना का चिन्तन है और जीव राग-द्वेष भाव करि मिथ्यात्त्व अविरत योग कषाय इनके निमित्तकौं पाप-कर्म आस्रव करै है। सो ऐसे विचार का करना, सो आस्रवानुचिन्तन है। जहां आस्रव भाव रोकिए, सो सम्वर है। सो मिथ्यात्त्व आस्रव रोककैं तौ सम्यक् होय। अव्रत-भाव रोककें व्रत-भाव होय और योगिन की अशुभता मेटि शुभता होय कषाय मेटि वीतराग भाव होय। ऐसे करि मोह मन्द करि राग-द्वेष भाव निवारना आस्रव रोकि संवर करना, सो संवरानुचिन्तन है और विशुद्ध भावना करि सत्ता कर्मन कूं खेरि असत्त्व रूप करना, सो निर्जरा है। सो निर्जरा के दोय भेद हैं। एक सविपाक एक अविपाक। तहां अपनी पूरण तिथि करि कर्म का खिरना सो सविपाक निर्जरा है। जो तप संयम के योग तैं यथा परिणामन की विशुद्धतातैं कर्म का खिरना, सो अविपाक निर्जरा है। ऐसे विचार का नाम निर्जरानुचिन्तन है। जहां तीन लोक-संस्थान जो आकार ताका विचार भेद-भाव करना, सो लोकानुचिन्तन है। जीवाजीव आदि वस्तु अपने स्वभाव कूं न तजै स्वभाव रूप रहै परभावरूप नहीं होय सो ऐसे विचार का नाम धर्मानुचिन्तन कहिए। अपने स्वभाव में रहना सो तौ सुलभ है पर-स्वभावरूप होय सो दुर्लभ में। जैसे—जीव कूं चैतन्य भाव रहना ज्ञानमयी रहना, धर्म भावना होना इत्यादिक जीव के गुणमयी जीवकूं रहना सो सुलभ है। इन

मयी रहतैं कछु उपाय-खेद नाहीं करना परै है सहज ही है। जीवकूं जड़ होना मूर्तिक होना महादुर्लभ है। अनेक कष्ट खाए भी जड़त्व-मूर्तिक नहीं भया जाय है। इत्यादिक चिन्तन सो दुर्लभानुचिन्तन है। ऐसे अनेक प्रकार जिन भाषित तत्त्वनि का चिन्तन सो अनुप्रेक्षा नाम स्वाध्याय भेद है। ऐसे पञ्च भेद स्वाध्याय कह्या। तनतैं ममता भाव रहित होय एकासन खड़ा ध्यान करना सो कायोत्सर्ग तप है। जहां मन-वचन की एकता रूप धर्म्य ध्यानरूप भावना की थिरता और कषायन की मन्दता सहित आपा-पर के निर्धाररूप ध्यान करना सो ध्यान नाम तप है। ऐसे बारह प्रकार तप हैं। सो सु-तप उपादेय हैं। इति तप विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय कह्या। आगे व्रत विषैं ज्ञेय-हेय उपादेय कहिये हैं। जहां सु-व्रत व कु-व्रत का समुच्चय जानना सो तौ ज्ञेय है। ताही के दोय भेद हैं। एक सु-व्रत और एक कु-व्रत। जहां भोरे जीवन के प्ररूपे परमार्थ शून्य अपनी अज्ञान चेष्टा करि जो व्रत करै सो कु-व्रत है। केतेक तौ क्रोध पोखवे के व्रत हैं। केतेक मान पोखवे के हैं। केतेक माया पोखवे के व्रत हैं। केतेक लोभ पोखवे के व्रत हैं। ऐसे क्रोध, मान, माया, लोभ पोखवे कौं जो व्रत हैं सो सम्यग्दृष्टि मैं हेय हैं। जहां पर-जीवन के मारवेकौं शत्रु आदि के दुख देवेकौं इत्यादिक विचार सहित व्रत करना यथा—जो मेरा फलाना शत्रु है, सो क्षय होहु। ताके निमित्त एक बार खाना, बहुत धन दान देना, पूजा-उपवास करना, रस रहित खाना, भूमि सोवना, नांगे पांव फिरना, एक अन्न ही खाना, एक रस ही खाना इत्यादिक विधि सहित उपवास व्रत करना, सो क्रोध सहित व्रत कहिए। अपनी आज्ञा कोई नहीं मानता होय, वश नहीं होता होय। ताके वश करवे कूं अपने बल की समर्थता तौ नाहीं, अरु मान पोखा चाहै। ताके निमित्त कोई देव-व्यन्तर के साधनकूं व्रत करना, पराया मान खण्डन कूं व्रत करना, सो मान पोखि-व्रत है। जो व्रत आप छल सहित करै। परिणाम तौ दुराचार रूप और लौकन के दिखावेकूं, आप धर्मी बाजवे कूं व्रत का करना, सो माया पोखि-व्रत है। अन्य जीवन के धन हरवेकूं, हाथी-घोड़ा हरवेकूं, मन्दिर हरवेकूं, नाना युक्ति के व्रत करना। तहां ऐसा विचारना जो मोकौं राज मिलै, पुत्र मिलै, कुटुम्ब की वृद्धि होय या व्रत तैं धन मिले इत्यादि व्रत हैं। सो लोभ पोषित-व्रत हैं। तिन व्रतन की लौकिक मैं भोरे जीवन मैं ऐसी प्रवृत्ति है कि जो यह व्रत करै तौ शत्रु नाश होय। कोई व्रतन का फल ऐसा कह्या है जो याके किए वैरी वश

होय, आप ही आय नमैं। केई व्रतन का फल ऐसा प्ररूप्या है जो याके किये राज-सभा मैं आदर पावै, सभा वशि होय। केतेक व्रतन का फल ऐसा कह्या, जो इनकौं करै तौ लोकमान्य होय, जगत् मैं पूजा पावै। या व्रततैं धन होय और स्त्री करै तौ बहुत दिन लौं ताका सुहाग रहै, भर्तार मरै नाहीं, पुत्र होय, सास-श्वसुर सर्व ताकी आम्नाय मानैं, यश पावै, भर्तार वश होय। इत्यादिक व्रत हैं सो क्रोधी, मानी, मायावी, दगाबाज, लोभी, पाखण्डी जीवन के प्ररूपे हैं। जो भोरे जीवन को तनिक कौटिल्य ताका लोभ बताय, अपनी महन्तता-धर्मात्मापना बताय लोकन का धन हरि लेय जाते रहैं। ऐसे दुरात्मा जो ऊपरी तैं शान्ति मुद्रा भेषि बनाय, भोरे जीवनकूं विश्वास देय, ठग लेंय। ऐसे जीव धर्म भावना रहित, तिन मैं ए कु-व्रत प्ररूपे हैं। सो सम्यग्दृष्टि करि सहज ही हेय हैं और जे व्रत हिंसा करि सहित होंय, जिन व्रतन में अनगाले जलमैं नित्य सपरना कह्या होय तथा जिन व्रतन मैं नाना प्रकार अन्नादिक वनस्पति का उगावना कह्या होय, सो व्रत हेय हैं तथा जिन व्रतन मैं ऐसा कह्या हो, कि जो पशूनकों भोजन दिए अपने देवादि तृप्त होंय, सो व्रत हेय हैं और जिन व्रतनमैं दिन-भोजन छोड़ि, रात्रि-भोजन कह्या है। सो व्रत हेय हैं। जिन व्रतन मैं ऐसा कह्या, जो आज मोटा-बड़ा रोट खावना योग्य है, ऐसे व्रत हेय हैं। कोई व्रत ऐसा जिसमैं लड्डू खावना कह्या है, ऐसा व्रत हेय है। कई व्रतन मैं ऐसा कह्या है जो आजि सूत व रेशम के तागा बनाय ताकौं एती गांठि दीजिये पीछे भुज-बन्ध करना कह्या, सो व्रत हेय हैं तथा इस व्रत के दिन पशूनकौ पूजिए, घास पूजिये तथा पंचेन्द्रिय पशून का मल-मूत्र पूजिये तथा इस व्रतमैं तिल-तेल ही खाईए है तथा इस व्रत के दिन गुड़-भोजन शुभ कह्या इत्यादिक इन्द्रियन के पोषनेहारे कामी-लोभी जीवन के प्ररूपे तन पुष्ट कारी व्रत सो हेय हैं तथा इस व्रतमैं दूध-दही खाईए है तथा दूध ही डारिए है तथा इस व्रत मैं जीवनकौं मारिए इत्यादिक कु-व्रत भोरे जीवन के करवे योग्य हैं। इन्हें मानी ज्ञान-धन-हीन जीव ही करै हैं। ऐसे ही मोही जीवन के प्ररूपे हैं। सो ए व्रत मोक्ष-मार्ग के ज्ञाता सम्यग्दृष्टि के धारी जीवन कूं सहज ही हेय हैं। इति कु-व्रत। आगे सुव्रत कथन—भो भव्य! सुव्रत तिनका नाम है जिनके किए अपने अगले पापन का नाश होय। जिन व्रतन का नाम लिए पुण्य बन्ध होय। जिन व्रतन के आगे दाता का निशान प्रगट चलता होय सो दयासागर शुभ-व्रत हैं। जिनमैं पापारम्भ का त्याग होय शुभाचार सहित जिनमैं क्रिया कही होय। सप्त-व्यसनादिक पाप

तिनकी प्रवृत्ति नहीं होय। जहां व्रत दिन द्यूत खेलना मनै किया होय। व्रतमैं मांस भक्षण नहीं कह्या होय। जिन व्रतनमैं मदिरा पान नहीं होय। जिन व्रतनमैं वेश्यादिक कुट्टनी का सेवना नृत्यादि देखना नहीं होय, सो शुभ व्रत हैं जिन व्रतनमैं दीन जीवन की हिंसा तजि, दया कही होय तथा जिनमैं मनुष्य-घात, भैंसा-घात, बकरी-घातादिक खेटक क्रिया नहीं होय, सो शुभ व्रत हैं। जिन व्रतनमैं पराई वस्तु की चोरी नहीं कही होय। जिनमैं पर-स्त्रीन का सेवन, पर-स्त्रीनकौं रति दानादिक कुशील क्रिया जामैं नहीं होय, सो सुव्रत हैं। जिन वृतन मैं तन धोवना, सपरना अभक्ष्य खावना, कुशब्द बोलना, नहीं कह्या होय सो शुभ वृत हैं। जिन वृतनमैं शस्त्र चलावना नाहीं कह्या होय, सो शुभ वृत हैं। जिन वृतन में शस्त्र चलावना नाहीं कह्या होय तथा पाषाण चलावना मिट्टी राख-बगरावना नहीं होय सो सुवृत हैं पाखण्ड रहित होय क्रोध, मान, माया, लोभ इत्यादिक दोष रहित होय सो शुद्ध वृत हैं। जा वृत के किए परिणाम समता सहित रहैं सो सुवृत हैं। जिस वृतमैं एकेन्द्रिय आदि त्रस-स्थावर जीवन की दया रूप क्रिया होय सो शुभ वृत हैं और दान, पूजा, शील, संयम, तप इन सहित होंय सो सुवृत हैं। तिन वृतन के भेद बारह हैं। तिनके नाम पञ्च अणुवृत हैं। तहां अहिंसाणुवृत, सत्याणुवृत, अचौर्याणुवृत, ब्रह्म-चर्याणुवृत और परिग्रहत्यागाणुवृत। ए पञ्च अणुवृत हैं। जहां एकोदेश हिंसा का त्याग तहां त्रस हिंसा का तौ सर्व प्रकार त्याग होय और स्थावर हिंसा के आरम्भ मैं दया-भाव सहित प्रवर्तना सो अहिंसाणुवृत है।१। जहां झूठ बोले राजा दण्ड दे पञ्च भंडै ऐसी तीवृ झूठ का त्याग सो सत्याणुवृत है।२। जाके किए राज दण्डै पञ्चलोक भंडै ऐसी तीवृ झूठ का त्याग सो अचौर्याणुवृत है।३। बड़ी—पर-स्त्री माता सम बरोबर भग्नी सम लघु पुत्री सम चिन्तन करि तजै तिनमैं विकार भाव का त्याग घर की—परणी स्त्री के संभोग मैं तीवृ तृष्णा का त्याग सो ब्रह्मचर्याणुवृत है। ४। वर्तमान समय अपने पुण्य प्रमाण परिग्रह मैं तैं कछू घटायकैं ताका त्याग सो परिग्रह त्यागाणुवृत है।५। ऐसे पञ्च अणुवृत हैं। आगे च्यारि शिक्षावृत कहिए हैं। सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग परिमाण और अतिथिसंविभाग। आगे इनका अर्थ—इन वृतों की समानरूप क्रिया है, तातैं इनका नाम शिक्षा-वृत है। तहां तीन काल सामायिक की विधि की साधना सो सामायिक शिक्षावृत है। १। आठैं चौदश के दिन सोलह प्रहर का पापारम्भ का त्यागरूप एक स्थानमैं धर्म ध्यान सहित प्रतिज्ञा का साधन सो प्रोषधोपवास

शिक्षावृत है ।२। आगे अपने पुण्य प्रमाणमैं तैं घटाय भोग-उपभोग को राखना, सो भोगोपभोग परिमाण शिक्षावृत है । ३ । जहां अपने निमित्त किया भोजन तामैं तैं मुनि त्यागी श्रावकादिककूं दान का देना सो अतिथिकरण शिक्षावृत है । ४ । ए च्यारि शिक्षावृत । आगे तीन गुणवृत के नाम—दिग्वृत, देशवृत और अनर्थदण्ड का त्याग। अब इनका सामान्य अर्थ—जहां दशों दिशा विषैं पापारम्भ निमित्त गमनागमन का सो दिग्वृत है । १ । दिग्वृतमैं तैं घटाय रोज वृत नियम करना सो देशवृत है । २ । जहां बिना प्रयोजन पापारम्भ का त्याग सो अनर्थदण्ड का त्याग सो अनर्थदण्ड गुणवृत है । ३ । ऐसे पञ्चाणुवृत, च्यारि शिक्षावृत, तीन गुणवृत सर्व मिलि बारह वृत हैं सो ए वृत पाप नाशक पुण्य वृद्धि करनहारे सुवृत जानना। इन वृतन के किये तैं जग-यश होय पाप नाश होय। समता भाव होय बुद्धि उज्ज्वल होय दयामयी भाव होंय कु-बुद्धि का नाश होय, सु-बुद्धि का प्रकाश होय। ऐसे अनेक पाप-दुख मिटि अनेक गुण प्रगट होय हैं। जैसे—काहू पुरुषकूं तीव्र क्षुधा लागी तब वह बिना भोजन शिथिल होय नेत्रन आगे तमारे आवैं, चल्या नाहीं जाय। भागा नहीं जाय। बुद्धि मैं युक्ति नाहीं उपजै। पुरुषार्थ जाता रहै। दीन होय, पराधीन होय इत्यादिक अनेक रोग व दुख प्रगट होंय और जब पेट भर भोजन मिलै तब सर्व रोग-दुख एक समयमैं जाता रहै है। तैसे ही विवेकी कौं भला ज्ञान होतें सुवृत रूपी भोजन मिलतैं ही कु-भावरूपी अनेक दुख-खोटे वृतरूपी जो वेदना थी सो सर्व नाशकूं प्राप्त भई। तब अनेक शुभदायक भाव होय हैं अनेक युक्ति उपजने लगी ताकरि तत्वन का भेदाभेद विचारि अपना कल्याण करै है। ऐसा जानि विवेकीनकौं अनेक विधि विचारि करि सुख का लोभी धर्म का इच्छुक अनेक मतन का रहस्य देखि जहाँ शुभ दया भावनकूं लिये उज्ज्वल आचार सहित वृत होंय सो करना योग्य है। जा वृत के किए तैं पापनाश होय सो वृत उत्तम है और जिस वृत के किए पाप उपजै सो हेय करना योग्य है। विवेकी जीवनकूं अपने विवेक तैं भले-बुरे वृत की परीक्षा कर लेनी। कोई कहै हमारा वृत भला है। तो काहू के कहै तैं ही नहीं लेना। अपनी-अपनी सब ही भली कहैं हैं यह जगत् की रीति ही है। परन्तु विवेकी परीक्षा करि जो अङ्गीकार करै सो वृत पक्का है। जैसे—गुदरी मैं अनेक प्रकार रतनादि बिकैं हैं। तहां केई तौ सांचे रतन लिए खड़े हैं। केई झूठे रतन लिए खड़े हैं सो ग्राहककूं सर्व अपना-अपना रतन सांचा ही कहै हैं। सो बेचनेवाला तौ कहे ही कहै। परन्तु

लेनेवालों को अपनी चौकस कर लेना योग्य है। काहू के कहने पै नहीं जाय। तैसे ही धर्म दुकान अनेक हैं। अपने-अपने वृतकों सर्व उत्तम मानै हैं। परन्तु धर्मात्मा जीव अपनी बुद्धि के बल करि परीक्षा करै। जहां शुद्ध दया सहित वृत होय, सो करना। तिनका स्वरूप ऊपरि कहि आये हैं। अनेक शुभ वृत हैं व अनेक अशुभ वृत हैं। इनकी परीक्षा निमित्त अनेक वृतन का लक्षरा कह्या है। तातैं परखकैं करना। इनका विशेष आगे वृत प्रतिमा मैं कथन करेंगे तहां तैं जानना। इति वृत विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय कथन। आगे दान विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय कहिये है। तहां समुच्चय शुभाशुभ दान का जानना सो तौ ज्ञेय है। ताही ज्ञेय के दोय भेद हैं। एक सु-दान ज्ञेय तौ उपादेय है। दूसरा कु-दान ज्ञेय सो हेय है। सो प्रथम दान का लक्षरा कहिये है। सो जाके देते चित्त महाभक्तिरूप होय सो दान हैं तथा दान को देते चित्त दयामयी होय सो दान है और जाके देते मनमैं नहां तौ भक्ति-भाव होय नहीं दया-भाव होय सो दान देना ऐसा है। जैसा राजा कौं दराड देना। ए दान दराड समान है सो कु-दान जानना। जैसे काहू के तन पै पीड़ा आई होय तब लोभी पुरुष रोगी कूं भोला जानि या कहै। जो हाथी का दान देय तथा घोड़े का दान देय तीड़ागाथ-रथ का दान देय। इसी प्रकार विषय-सेवन के स्थान घर सो मन्दिर दान, सुवर्ण-चाँदी दान, विषय-सेवन कौं दासी-दास दान, स्त्री का दान, कन्या दान, धरती दान, तिल दान, उड़द दान, श्यामवस्त्र दान, तेल दान इत्यादिक दान जो हैं, सो लोभी जीवन के तौ प्ररूपे हैं। अरु भोले जीवन कौं अज्ञान जानि कहैं हैं। सो कु-दान हैं। सो विवेकीन कौं तजना योग्य है। इति कु-दान। आगे सु-दान—तहां सु-दान के च्यारि भेद हैं। भोजन दान, औषधि दान, शास्त्र दान और अभय दान। अब इनका अर्थ—तहां अपने निमित्त भोजन किया तामैं तैं पहले मुनिकौं तथा त्यागी-श्रावक कौं तथा अर्जिका कौं यथायोग्य महाहर्ष धारि विनय सहित दान देना, सो भोजन दान है तथा कोई यति श्रावकादिक का निमित्त नहीं होय तो दीन बूढ़ा, बालक, रङ्क, भूखा, अशक्त, अन्धा, लूला—इन आदिक कौं असहाय देखि इनके तन की रक्षाकौं करुरा भाव सहित अन्न दान देना, सो याका नाम भोजन दान है। याके फलतैं सदा सुखी होय अन्न-धन बहुत होय अन्न बहुतन कौं देय खानेवारा उदार चित्त का धारी होय। १। जहां मुनि, आर्जिका, श्रावक, त्यागी इनके तन पीड़ा देखि इन योग्य प्रासुक औषधि देना तथा कोई गरीब, रङ्क, भूखा, दुखिया, बालक, वृद्धादि

असहाई निर्धन होय ऐसे जीवन कौं रोग वेदना देखि धर्मात्मा पुरुष अपना चित्त करुणा रूप करि औषधि करना जतन करना सो औषधि दान है। याके फल तैं शरीर निरोग होय। २। जहां मुनि अर्जिका श्रावकादिक धर्मात्मा पुरुषन के पठन-पाठन कौं शास्त्र देना, सो शास्त्र दान है सो लिखाय देना तथा आप लिख देना तथा अन्य भव्य जीवन कौं धर्मोपदेश देय धर्म विषैं सन्मुख करना पढ़ावना भूलेकूं बतावना सो शास्त्र दान है। याके फलतैं अतिशय ज्ञान का धारी होय जहां अन्य जीवन का दुख मैटि सुखी करना कोई दुष्ट दीन-जीव पशु-मनुष्यादिक कौं मारता होय तौ अपनी शक्ति प्रमाण ज्ञान, धन, बल, हुक्मादिक करि मारते कूं बचावना। आप कोई जीवन कौं नहीं सतावना सर्व कूं सुखी करना। सर्व जीवन तैं मैत्री-भाव रखि सर्वकौं सुखी चाहना सो अभय-दान है। याके फल तैं आप अभय पद जो मोक्ष पद ताहि पावै तथा कोई भव धरना होय तौ देव इन्द्रादि पद पावै तथा मनुष्य होय तौ चक्री, त्रिखण्डी, भटादि महायोधा दीर्घ आयु का धारी होय। ऐसा फल अभय-दान का जानना। यह अभय-दान है। ४। ए च्यारि प्रकार दान हैं सो शुभ दान हैं। ए दान सम्यग्दृष्टिन करि उपादेय हैं। इति दान मैं ज्ञेय-हेय-उपादेय कथन। आगे पात्र विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय कहिए है। तहां समुच्चय सु-पात्र-कु-पात्र के भेद का जानना सो तौ ज्ञेय है। ताही ज्ञेय के दोय भेद हैं। एक सु-पात्र है एक अशुभ-पात्र है। तहां अशुभ के भेद दोय हैं। एक अ-पात्र एक कु-पात्र। तहां कु-पात्र के तीन भेद हैं। जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट। तहां वाह्य अट्ठाईस मूलगुण धारी होय और अन्तरङ्ग सम्यक् रहित होय सो उत्कृष्ट कु-पात्र है। बाह्य श्रावक व्रत का धारी ग्यारह प्रतिमा विषैं प्रवर्तता शुभाचारी, धर्मध्यानी, जिन-आज्ञा प्रमाण श्रावक क्रिया सहित किन्तु सम्यक् रहित सो मध्यम कु-पात्र है। व्यवहार सम्यक् देव-गुरु-धर्म की दृढ़ प्रतीति सहित होय, किन्तु भेद-ज्ञान रहित, अनन्तानुबन्धी की चार और दर्शनमोह की तीन ऐसी सब सात प्रकृति के क्षयोपशम रहित निश्चय सम्यक् जाकै नाहीं, सो जघन्य कु-पात्र है। यह आप षट्द्रव्य, नवपदार्थ, पञ्चास्तिकाय के नाम और कौं कहै। धर्म वांछा सहित, पाप क्रियातैं विमुख, निश्चय-भाव भेद-ज्ञान करि आपा-पर के गुण भेद तैं विमुख, सम्यक् रहित, अविरत गृहस्थ, सो जघन्य कु-पात्र है। ए तीन भेद कु-पात्र हैं। सो औरन कूं मोक्ष-राह बतावैं, किन्तु आप मोक्ष-राह नहीं लागै हैं। इन्हें मोक्ष-मार्ग का सुख नाहीं। जैसे—राजा का रसोइया अनेक प्रकार

सुन्दर व्यञ्जन रसोई करि, राजाकौं जिमावै, राजी करै। किन्तु आप वाके किए भोजन का स्वाद नहीं जानै तथा जैसे—अनेक व्यञ्जन भोजन महामिष्ट स्वाद रूप हैं तिनमें सर्व जगह हँडिया में धातु का चमचा फिरै, परन्तु व्यञ्जन भोजन के स्वाद कूं नहीं पावै। तैसे ही अनेक तत्वन का रहस्य मुखतैं बतावै, मोक्ष होने के उपाय बताय औरनकूं तत्त्व रस का स्वाद कराय, मोक्ष-मार्ग बताय, सुखी करै। परन्तु आप तत्त्वरस स्वाद नहीं पावै, सो कु-पात्र है। तातैं कु-पात्र तजवे योग्य हेय है। इति कु-पात्र भेद तीन। आगे अ-पात्र भेद तीन कहै हैं। जे जिन-आज्ञा रहित लिङ्ग के धारी, परिग्रह सहित, आपकूं यतिपद-गुरु संज्ञा मानै हैं। नाना प्रकार तप संयम ध्यान करै हैं। राग-द्वेष पीड़ित उसके धारी; क्रोध, मान, माया, लोभ करि मण्डित; मन्त्र, तन्त्र, जन्त्र, औषधि, रसायन, धातुमारणा, ज्योतिष, वैद्यक, नाड़ी इत्यादिक चेष्टा करि आजीविका करनेहारे होंय, अनेक भेष-स्वांग के धारी, सो उत्कृष्ट अपात्र हैं। सो औरन कूं तौ ए कु-मार्ग उपदेशैं हैं, अरु आप शुभ-मार्ग रहित हैं। जैसे—कोई ठग, राजा का भेष धरि, औरन पै अमल चलाव, अरु कहै जो मैं राजा हौं। जो मेरी सेवा करैगा, सो अनेक ऋद्धि पाय, सुखी होयगा। तब ऐसा जानि, भोरे-गरीब जीव ठगकौं राजा जानि, ताकी सेवा करैं हैं। सो ए भोले जीव ही ठगावै है। क्यों, जो ए ऊपरि तैं राजा भया है। अरु अन्तरङ्ग मैं भांड है। सो उल्टा कछु भीख मांगेगा, देवेकौं समर्थ नाहीं। यामैं राजा का एक भी चिह्न नाहीं। आप ही भूखा है। औरन कूं सुखी करवैकूं असमर्थ है। तैसे ही ए अ-पात्र, आप धर्म-वासना रहित है तथा और कूं धर्म-फल बतायवे कूं असमर्थ है। सो ऐ उत्कृष्ट अ-पात्र हैं। तातैं तजवे योग्य हेय हैं। जे गृहस्थ, कुटुम्बादि सहित, जिन-आज्ञा रहित, हिंसामयी तप-संयम के धारक, कन्दमूल के भक्षक कूं आचार्य, सत्य धर्म दयामयी तातैं रहित, कुधर्म-हिंसा मार्गी, आपकूं व्रती, तपी, जपी, संयमी, धर्मात्मा माननेहारे, सो मध्यम अ-पात्र हैं और जिन-आज्ञा रहित गृहस्थाचार के धारी, नाम-पूजा-दानादि-अङ्गी आपकौं जाननहारे, अभक्ष्य के खानेहारे, हिंसा-धर्म के लोभी, दया रहित गृहस्थी, आपकूं धर्मी जानें, सो जघन्य अ-पात्र हैं। ए अ-पात्र के तीन भेद हैं। इति अ-पात्र। आगे सु-पात्र नव भेद कहैं हैं। तहां सु-पात्र के प्रथम तीन भेद हैं। उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य। तहां उत्कृष्ट पात्र के तीन भेद हैं। उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य। तहां तीर्थङ्कर राज अवस्था तजि दिगम्बर भये, जबतैं केवलज्ञान नहीं

होंय, तब लौं छद्मस्थ दशा मैं हैं। तेते इनकौं आहार देना, सो ये उत्कृष्ट के उत्कृष्ट पात्र धारी यतीश्वर, सो उत्कृष्ट के मध्यम पात्र हैं। अष्टविंशति मूलगुण, तेरह प्रकार चारित्र का प्रतिपालक, वीतराग सम्यक्त्व सूर्य के धारी यतीश्वर, सो उत्कृष्ट पात्र के जघन्य पात्र हैं। ए तीन भेद उत्कृष्ट पात्र के कहै। इति उत्कृष्ट पात्र भेद तीन। आगे मध्यम पात्र के तीन भेद कहिए हैं। तहां ग्यारहवीं दशवीं प्रतिमा का धारी त्यागी श्रावक सो मध्यम सुपात्र का उत्कृष्ट भेद है। पञ्चमी, छठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी प्रतिमा के धारी श्रावक सो मध्यम सुपात्र के मध्यम पात्र हैं। प्रथम तैं लगाय चौथी प्रतिमा पर्यन्त सम्यग्दृष्टि श्रावक सो मध्यम सुपात्र के जघन्य पात्र जानना। ये मध्यम पात्र के तीन भेद कहे। इति मध्यम सुपात्र भेद तीन। आगे सुपात्र जघन्य पात्र के तीन भेद कहिए हैं। तहां क्षायिक सम्यक्त्व सहित अव्रत गृहस्थ सो जघन्य सुपात्र का उत्कृष्ट पात्र है। उपशम सम्यग्दृष्टि का धारी व्रत रहित असंयमी गृहस्थ सो जघन्य सुपात्र का मध्यम पात्र भेद है। क्षयोपशम सम्यक्त्व सहित अव्रती गृहस्थ सौ जघन्य सुपात्र का जघन्य भेद है। ए तीन भेद जघन्य सुपात्र के हैं। ऐसे नव भेद सुपात्र कहे। आगे कहे जो ऊपरि तीन भेद अपात्र के तिनकूं उत्कृष्ट पात्र जानि विनय-भक्ति करि गुरु जानि दान देना तो अपात्र दान है। याका फल ऐसा है। जैसे—जल के स्थान के मेवे के पेड़, गुलाब के पेड़ विषैं जल और डारिए तौ उस पेड़ का नाश फल व शोभा का नाश और जल डार्‌या सो वृथा गया; क्योंकि आगे धरती जलतैं पूर्ण थी ही तामैं और जल डार्‌या सो पेड़ गलि गया। सर्व करी मिहनत वृथा गई। ऐसा ही अपात्र-दान है। दिया धन नाश, फल नाश, सुख नाश। ताकै योगतैं निगोद नरकादिक दुख प्रगट फल होय है। तातैं अपात्र का दान हेय है। कुपात्रकूं गुरु जानि भक्ति सहित दान का फल कुभोग भूमि का मनुष्य होय। इहां प्रश्न—जो कुपात्र दान का फल हीन कह्या सो हलकौं सुपात्र का भेद कैसे मिलै ? देनेवाला तौ बाह्य चारित्र की तथा मूल गुणान की शुद्धता देखि दान दिया चाहै। लाखौं हजारौं मुनियों में सम्यक्त्व धारी यतिनाथ तौ थोरे अरु सम्यक्त्व रहित शुद्ध मूल गुण धारी गुरु बहुत सो देनेवारा शुद्ध मूलगुण देखि पीछे ऐसा विचारे जो ए कुपात्र हैं वा सुपात्र है ? तौ अविनय होय पाप लागै। तातैं केवली के जानने योग्य बात श्रावक कैसे जानैं ? सुपात्र-कुपात्र की बात तौ

२२३ तरंगिणी

केवलज्ञान गम्य है। सो या दान देनेवारे के नफा नहीं भासै है। कोई से दाताकैं भला फल होय तौ होय, नहीं यामैं तौ दान का अभाव होयगा यह सन्देह है। ताका समाधान—भो भव्य! यह बात तूने कही सो सत्य है; परन्तु हे भव्यातमा! जैसे—काहू राजा का राज्य वैरी ने छीन लिया है सो वह बाहरे जाय फौज बन्दी करि, युद्ध करै। राज का तखत ताके हाथ नाहीं, परन्तु राज्य-भ्रष्ट भी राजा ही बाजै है। युद्ध कर रह्या है। सो वैरीकौं जीत कभी राज पावैहीगा, तासूं राजा ही कहिए हैं। तैसे जे मुनि सम्यक्त्व सहित चारित्र के धारक थे सो कोई कर्म की जोरावरी तैं मोह की प्रबलता करि सम्यक्त्व राजपद छूटि गया होय, तौ भी वह यति अपनी चारित्र सैन्या जोड़ि कैं मोह राजा तैं युद्ध कर रहे हैं। सो कबहूं मोहकौं जीति सम्यक्त्व राज्य लेंयगे। तातैं ऐसे मुनि जिनकौं सम्यक्त्व कभूं होय कभूं जाय ऐसे निमित्त जिनकैं बनि रह्या होय तिन्हें कुपात्र ही जानना। कोई जीव कर्म योगतैं चारित्र मोह की मन्दता तैं चारित्र तौ धार्‍या होय। अरु कै तौ अभव्य होय तथा दूरानदूर भव्य होय, अभव्य राशि-सा होय। ऐसे मिथ्यादृष्टि के धारी मुनि सो कुपात्रन मैं जानना। सो ऐसे मुनि करोड़ों में भी एक-दोय नहीं होय हैं कठिन तैं होंय। सो ए कुपात्र हैं तथा जे मुनीश्वर चारित्र-मूलगुण धारैं हैं। परन्तु अन्तरङ्ग कषायन के योगतैं तिनके मूलगुण दूषित हैं। सो मुनि अपनी मायाचारी करि अपने दोष बाह्य प्रगट नहीं करैं हैं। बाह्य, शुद्ध मूल गुण से दीखैं हैं। अन्तरङ्ग-ज्ञानी के जाननै मैं दोष सहित हैं। ऐसे कषाय भार करि सहित मूलगुण के धारी सो मुनि कुपात्रन मैं हैं। सो ऐसे भी मायावी मुनीश्वर बहुत थोड़े ही हैं। कोई करोड़ों-अरबों में एक होय तौ होय। नाहीं होय तौ नाहीं। ए मुनि कुपात्र हैं। सो कोई दाता के अशुभ-कर्म तैं ऐसे मुनि के दान का निमित्त मिलै, तौ कुभोग भूमि का फल होय। नहीं मुनि-दान का फल भोले मिथ्यादृष्टि जीवन कैं तथा पशूनकैं, सुभोग भूमि का फल होय है और सम्यग्दृष्टि हैं, तिनकूं दान का फल स्वर्ग-मोक्ष ही जानना। ऐसा तेरे का प्रश्न उत्तर जानि। सुपात्रन के दान देने की बुद्धि सदैव राखना, अनु-मोदना करनी। ए सर्व उत्तम फल दाता जानना। कुपात्र का निमित्त कदाचित् अशुभ उदय तैं बनै तौ बनै, नहीं तो सदैव सुपात्रन का निमित्त जानना। जैसे—देशान्तर के फिरनहारे व्यापारी, द्वीपान्तर जाय अनेक कष्ट खाय बहुत धन कमाय ल्याय, सुखी होनेहारे ताका निमित्त तौ बहुत है। देशान्तर मैं लुट जानैहारे, जहाज

डूबनैंहारे ऐसा निमित्त कबहूं कुकर्म तैं होता है। कमा लानेवाले बहुत हैं। तैसे कुपात्रन का निमित्त अल्प है। सुपात्र के निमित्त की दीर्घता है। ऐसे राह लुटने की नांई कदाचित् कुपात्र-दान का निमित्त मिलै तौ कुभोग भूमि का फल जानना। तहां कुभोग भूमि में आकार शरीर का नीचे तौ मनुष्य का सा होय है और मुख तिनके पशुअन के आकार हैं। सो कोई का मुख सिंह कैसा है। किसी का हस्ती-सा मुख है। कोई का सूअर कैसा मुख है। कोई के मुख घोड़े कैसे हैं। केई का मुख मोर-सा है। केइन के कान लम्बे हैं। केइन के ऊँट समान मुख हैं। इत्यादिक आकार जानना। धरती रंधन जो बिल तिनमैं रहैं हैं। केई वृक्षन के स्थल—कोटरन मैं रहै हैं और तहां की भूमि की मिट्टी अमृत समान, तिसका भोजन है। एक पल्य की आयु अरु एक कोस का शरीर होय है। ऐसा कुपात्र-दान का फल है। सुपात्र-दान का फल स्वर्ग-मोक्ष है तथा तीन पल्य, दोय पल्य, एक पल्य, आयु के धारी, भोग भूमियां होय हैं। ऐसे कहे अपात्र-कुपात्र तौ विवेकीन कौं हेय। कहे नव प्रकार सुपात्र भेद, सो उपादेय हैं यथायोग्य पूजिवे-प्रशंसवे योग्य हैं। इति पात्र मैं ज्ञेय-हेय-उपादेय कथन। आगे पूजा विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय कहिए है। तहां सुपूजा-कुपूजा का समुच्चय जानना, सो तो ज्ञेय है। ताके दोय भेद हैं। एक सुज्ञेय है, एक कुज्ञेय है। तहां वीतराग होय, जाकैं अपने सेवकन तैं राग नाहां, कि जो यह मेरा भक्तिमन्त है, निश दिन-मोकौं आराधै है, सो यातें प्रसन्न होय, याकूं सुखी करौं। ऐसे विचार का नाम तौ राग-भाव है। जो आपकौ नहीं पूजै, अपना विनय नहीं करै निन्दा करै आपकी प्रशंसा नहीं करै तौ तातैं द्वेष-भाव करै ताके मारने कौं ताकौं रोग करै, इत्यादिक दुख देने का उपाय करै सो द्वेष-भाव जानना। ऐसे राग-द्वेष जाकैं नाहीं होय सो वीतराग समता सुख-समुद्र का वासी परम पवित्र देव, ताकी सेवा पूजा-वन्दना है, सो सुपूजा है। लोक-अलोक को जाननेहारा, इस तीन लोक में जेते जीव-अजीव पदार्थ समय-समय जैसे-जैसे परिणमैं हैं, आगे अनन्तकाल में जैसे परिणमेंगे अतीतकाल में ऐसे परिणमे आये ऐसे तीन-काल तीन-लोक के विषैं अनन्ते जीव जैसे भाव विकल्प रूप परिणमैं हैं। सबके घट-घट की जानैं। ऐसा अन्तर्यामी सर्वज्ञ भगवान् अनन्त गुण भण्डार ताकी पूजा है, सो सुपूजा है। ऐसे वीतराग सर्वज्ञ कौं बारम्बार नमस्कार होऊ। इति सुदेव पूजा। आगे सुधर्म-पूजा कहिए है। तहां सर्वज्ञ-वीतराग का वचन सोई शुभ

धर्म है। सर्वज्ञपने तैं कछु छिपा नाहीं। वीतराग भावन तैं जैसा भासै जैसा का तैसा कहै। और की और नाहीं कहै। सो ऐसे भगवान के वचन प्रमाण हैं। इनके भासै वचन ही का नाम शुद्ध मार्ग रूप भला धर्म है। सो ही धर्म यथार्थ सत्य है। या धर्म मैं कहे जो पदार्थ सो प्रमाण हैं। ये ही धर्म पूजने योग्य उपादेय है। इस ही धर्म प्रमाण जो दीक्षा के धरनहारे दिगम्बर वीतराग इन्द्रियन सुखनतैं विमुख आतमरस के स्वादी तपसी नगन तन धारी षट्काय के रक्षक बिन कारण जगत् बन्धु मोक्ष अभिलाषी और के हित वांछक सो ऐसे गुरु पूज्य हैं उपादेय हैं। ऐसे कहे जे देव-धर्म-गुरु इनकी पूजा है सो सुपूजा है। सम्यग्दृष्टिन करि उपादेय है। इति सुपूजा। आगे कुपूजा कहिये है। तहां ऊपरि कहि आये देव-धर्म-गुरु का स्वरूप तिसतैं विपरीत जो अपनी सेवा पूजा प्रशंसा करै जासूं सन्तुष्ट होय ताकूं कहे तोकूं धन दैं हौं। जो आपकी सेवा चाकरी शुश्रूषा नहीं करै तौ अपनी भक्ति तैं विमुख, आपका निन्दक जानैं ताकौं डरावै। कहे—याकौं रोगी करौं, याका धन-पुत्र हरौं, याकौं बहुत दुखी करूँगा। ऐसे किसी तैं राग, किसी तैं द्वेष करनैहारा देव, सो सरागी संसारी है, हेय है। इनकी पूजा सो कुपूजा है। देव तौ कहावै, अरु गई वस्तु कूं खोजता फिरै, नहीं मिलै तौ शोक करै, ऐसे अज्ञानी देव, मोही देवन की पूजा है, सो कुपूजा है तथा और के मारने निमित्त अवधि धारि, विकराल रूप बनाय, सुभट-सा दीखै। जाको छवि देखि, जीवन कौं भय होय। ऐते भयानक देव की पूजा है, सो कुपूजा है। जिन सरागी देवों की छवि देखै, भगत जगत् के जीव, तिनकूं कामचेष्टा होय, सरागता बढ़ै। स्त्री संगम आदि अनेक इन्द्रिय भोग याद आवैं। ऐसे विकारी देवन की पूजा है, सो कुपूजा है। इन्हीं कुदेव सरागीन के उपदेशे शास्त्र, चमत्कार रूप फाँसी कूं धरै, हिंसा आरम्भ के प्ररूपणहारे शास्त्र, तिनकूं सुनै इन्द्रिय भोग की अभिलाषा रूपी अग्नि प्रगट होय। श्रोतानि का चित्त स्त्रीन के भोग रूप होय, ऐसे विकार भाव का उपजावनहारा कथन जिन शास्त्रन में होय, तिन शास्त्रन की पूजा सो कुपूजा हैं। क्रोध, मान, माया, लोभ सहित परिग्रही, गृहस्थ समान पापारम्भ कुशील-असंयम के धारी अपनी महिमा बढ़ाई-सत्कार-पूजा के वांच्छक अनेक भेष धरनहारे, जन्त्र-तन्त्र का चमत्कार भोले जीवनकूं बताय अपना गुरुपद मनावतें होय तथा ज्योतिष-वैद्यकादि विद्याकरि राजानकूं रिझावे की अभिलाषाधारी, याचना व्रतकौं लिए विषयाभिलाषी, मोही घर तजै पीछै भी लौकिक गृहस्थन की

नाई नाता-सगाई की बुद्धि राखते होंय, इत्यादि कुआचार सहित जो होंय और आपकौं गुरु मनाय पुजावैं, सो ऐसे गुरु की पूजा करनी, सो कुपूजा है और एकेन्द्रिय घास-वृक्षन की पूजा करनी, सो कुपूजा है। भूमि-पूजा, अग्नि-पूजा, जल का पूजन, अन्न की पूजा—ए कुपूजा जानना। इहां प्रश्न—जो इनका पूजन क्यों निषेधा ? इनमैं तौ देवत्व-भाव प्रगटपनैं दीखै है। देखो अन्न अरु जल है, सो तो सर्व जगत्-जीवन की रक्षा का आधार है। इन बिना प्राण रहें नाहीं। तातैं सर्व का रक्षक देव जानि पूजना योग्य दीखै है और अग्नि है सो याका तेज प्रताप प्रत्यक्ष दीखै है। इस अग्नि करि अनेक कार्य की सिद्धि होय है। अन्नादिक का पचावना इसही तैं होय है और अनेक अलौकिक कार्य अग्नि तैं होते दीखैं हैं। तातैं यामैं भी देवत्व-भाव भासै है। वनस्पति है सो वृक्षादिक तौ सर्व जीवन की रक्षा सुखकौं छाया करैं हैं और धरती है सो प्रत्यक्ष धीरजता लिए सर्व जगत् का भार सहै है। कोई तौ धरती को खोदैं हैं। कोई यापै अग्नि प्रजालैं हैं। कोई यापै कूड़ा डारै हैं। केई मल-मूत्रादि डारैं हैं इत्यादिक जगत्-जीव उपद्रव करैं हैं। परन्तु धरती काहूतैं द्वेष नहीं करै है। ऐसी वीतराग दशा धरै है। तातैं प्रत्यक्ष देवता है। ऐसा जानि पूजिये है। ताका समाधान—भो भोले! सरल परिणामी सुनि। हे भव्य! चित्त देय कै धारन करना। जो पदार्थ जगत् मैं पूज्य है, बड़ा है, श्रेष्ठ है। ताका अविनय कोई करै भी, तो कदाचित् भी नहीं होय है। या लौकिक प्रवृत्ति अनादि-काल की तीन लोक मैं चली आवै है। जो पूज्य हैं ताका अविनय जो करै, सो ताकूं महापापी कहैं हैं। तातैं हे भाई! तूं देखि। अन्न अरु वनस्पति का तौ सर्व भक्षण करैं हैं और जलकौं पीवैं हैं, डालैं हैं, हाथ-पांवन तैं मर्दन करै हैं। कोई अन्न पीसै है। कोई वनस्पति छेदन करैं हैं। इत्यादिक क्रिया होतैं, विनय सधता नाहीं। तौ पूज्यपद कैसे सम्भवै ? अग्निकौं जलाइए, बुझाइए, पीटिए, दाबिए, हाथ-पांव के नीचे मसलिए, इत्यादिक अविनय होय है और सबतैं हीन मनुष्य होय, सो भी इनका अविनयरूप परिणामैं है। तातैं इनमैं देवत्व भाव नाहीं ये कर्म-योगतैं एकेन्द्रिय भये हैं। सो पूर्वला पाप का फल भोगवैं हैं। महाअविनय-अनादर के स्थान भए हैं। तातैं भव्य ऐसा जानि। अविनय का स्थान जो वस्तु होय सो पूज्य नाहीं। तातैं इनकी पूजा है, सो कुपूजा है। इत्यादिक ऊपर कहै जे स्थान सो सम्यक्त्व भाव मैं हेय कहे हैं। इति कुपूजा। ऐसे सुपूजा-कुपूजा मैं ज्ञेय-हेय-उपादेय कथन।

इति श्री सुदृष्टि तरंगिणी नाम के ग्रन्थ मध्य में व्रत, दान, पात्र, पूजा, धर्म-अंगन में ज्ञेय-हेय-उपादेय का वर्णन करनेवाला चतुर्दश पर्व सम्पूर्ण हुआ ॥ १४ ॥

आगे तीर्थ विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय कहिए है। तहां सुतीर्थ-कुतीर्थ का समुच्चय जानना सो तो ज्ञेय है। ताके दोय भेद हैं। एक सुतीर्थ है। तहां अढ़ाई द्वीप प्रमाण पैंतालीस लाख योजन क्षेत्र-लोक के शिखर, सिद्ध-लोक सो शुद्ध तीर्थ है तथा सिद्ध आतमा के असंख्यात प्रदेशन करि रोक्या हुआ सिद्ध क्षेत्र, सो पूजने योग्य है। सो ही शुद्ध तीर्थ है तथा जहां तैं यतीश्वर शुद्धोपयोग करि अष्टकर्म का क्षय करि सिद्ध पद पाया सो सुतीर्थ है। जैसे—सम्मेदशिखरजी, गिरनारजी आदि बीस तीर्थङ्करनकौं आदि अनेक मुनि जहांतें सिद्ध भये तातैं सम्मेद-शिखर सिद्धक्षेत्र तीर्थ है नेमिनाथजी तीर्थङ्कर आदि बहत्तरि कोड़ि सात सौ यति कर्मनाश जहां तैं सिद्ध भये तातैं गिरिनारजी सिद्धक्षेत्र तीर्थ है। शत्रुञ्जयजी तहां तैं तीन पांडव आदि आठ कोड़ि यतीश्वर मोक्ष गये, तातैं तीर्थ है। अष्टापद जो कैलाश पर्वत जहां तैं आदि-देव वृषभनाथ आदि लेयकैं अनेक ऋषिनाथ निर्वाण गये, तातैं कैलाश तीर्थ-स्थान है। चम्पापुरी तैं वासुपूज्य बारहवें तीर्थङ्कर आदि अनेक तपनाथ कर्म हनि मोक्ष गये, तातैं उत्तम तीर्थ है। पावापुरी तैं अन्तिम तीर्थङ्कर वर्द्धमान स्वामी आदि अनेक योगीश्वर मोक्ष गये, तातैं शुभ तीर्थ है और तारवरजी तैं साढ़े तीन कोड़ि यति बैकुण्ठकूं गये, तातें भला तीर्थ है तथा पावागिरि तैं रामचन्द्र के पुत्रादि पञ्च कोड़ि तपसी जनम-मरण तैं रहित भये, तातैं शुद्ध तीर्थ है। गजपंथाजी तैं बलभद्र आदि आठ कोड़ि गुरु ने अमूर्तिक पद पाया, तातैं गजपंथाजी उत्कृष्ट तीर्थ है। तुङ्गीगिरिजी तैं रामचन्द्र, हनुमान, सुग्रीव आदि निन्यानवै कोड़ि ऋषिराज भव समुद्र पार गये, तातैं तुङ्गीगिरि उत्तम तीर्थ है तथा श्री सोनागिरिजी तैं साढ़े पांच कोड़ि गुरु सिद्ध भये, तातैं पूज्य तीर्थ है और रेवा नदी के तटन तैं रावण के पुत्र आदि साढ़े पांच कोड़ि यति निर्वाण गये, तातैं जगत् पूज्य तीर्थ है तथा रेवा नन्दी के तट, सिद्धवरकूट नाम पर्वत है। ताकी पश्चिम दिशा तैं दोय चक्री, दश कामदेव आदि साढ़े तीन कोड़ि मुनि सिद्ध लोक गये, तातैं उज्ज्वल तीर्थ है और बड़वानी नगर की दक्षिण दिशा में चूलगिरि नाम पर्वत है। तहां तैं इन्द्रजीत रावण का पुत्र, कुम्भकर्ण रावण का भाई इन आदि अनेक ऋषीश्वर मोक्ष भये तातैं भला तीर्थ है और अचलापुर की ईशान दिशा विषैं मेढ़िगिरि

नाम पर्वत है। तहां तैं साढ़े तीन कोड़ि मुनि निरंजन भये, तातैं यह मांगलिक तीर्थ पूज्य है तथा कोटिशिला तैं पांच सौ कलिंग देश के राजा अरु दशरथजी के केतेक पुत्रनकौं आदि दे एक कोड़ि मुनि सिद्ध भए तातैं उत्तम तीर्थ है तथा पञ्चमेरु तैं अनेक चारण मुनि सिद्ध भये तातैं तीर्थ है तथा इस ही अढ़ाई द्वीप मैं अनेक अतिशय तीर्थ हैं तथा नन्दीश्वर द्वीप आदि अनेक तीन लोक क्षेत्र विषैं, अकृत्रिम जिन मन्दिर हैं, सो तीर्थ हैं तथा और तप-ज्ञान निर्वाण-कल्याणादि अनेक स्थान हैं। जो सर्व पूजने योग्य हैं, शुद्ध तीर्थ हैं ऐसे कहे जे सकल तीर्थ सो सम्यग्दृष्टिन करि पूजने योग्य तीर्थ हैं तथा राग-द्वेष क्रोधादि कषाय रहित शुद्ध पद दयामयी भाव, निर्मल भाव सो उत्कृष्ट निकट तीर्थ हैं। इन तीर्थन की वीतरागी मुनीश्वर भी वन्दना हेतु यात्रा करैं, तौ सरागी सम्यग्दृष्टि गृहस्थी हैं। सो उन्हें ऐसे तीर्थन की वन्दना करि अपने लाग्या जो अनादि पाप-मैल, ताकौं तीर्थ-जल करि धोय, शुद्ध-पवित्र होना, योग्य ही है। ए कहे तीर्थ जिनके किए पाप नाश होय, कषाय मन्द होय, सुबुद्धि प्रकाश होय। तातैं ए कहे तीर्थ सो यति-श्रावकन करि पूजने योग्य हैं। तातैं उपादेय हैं। इति सुतीर्थ। आगे कुतीर्थ का लक्षण कहिए हैं। तहां केतेक भोले-प्राणी जे पुण्य-उदय रहित हैं ते औरनकूं अनेक राज-भोग भोगते देख, लोभाचारी विषय पोखनेकूं वांच्छित सुखकूं उद्यम करता, काहू अज्ञान गुरु कौं पूछ्या। वानै याकूं मूर्ख जानि बहकाया। जो तू महादीर्घ जल के समूह मैं प्रवेश करि, जल पातन (मरन) करै, तौ यह बड़ा तीर्थ है। केतेक भोले प्राणी धन, राज, स्त्री, तन सम्बन्धी अनेक वांच्छित भोग के अभिलाषी होय। काहू कौतुकी पुरुषकूं पूछ्या, जो वांच्छित सुख ए कैसे मिलै ? तब तिस निर्दयीनै कौतुक हेतु, याकौं मूर्ख जानिकैं कहीं। जो जलती अग्निमैं निःशङ्क होय प्रवेश करै, अपना तन भस्म करै, तौ या उत्तम तीर्थ के फलतैं तोकूं वांच्छित भोग मिलैं। सो तू अग्नि-तीर्थ भला जानि। ऐसा जान, बाल बुद्धि, लोभी, अग्नि ही मैं प्रवेश करि, तीर्थ मानतै भये। सो हे सुबुद्धि ! अग्नि प्रवेश तीर्थ सुबुद्धीन के करने का नहीं है। सो कुतीर्थ हेय जानना और केई भोले जीव ज्ञान-धन रहित सुन्दर स्त्रीन के भोग की इच्छावाले ने काहू कूं पूछी। जो सुन्दर स्त्री-भोग कैसे मिले ? तब याकूं ज्ञान हीन जानि काहू निर्दयी ने कौतुक निमित्त करि बहका दिया। कही हे भाई ! जो शस्त्रधारा तीर्थ बड़ा है। सो तूं शस्त्र के मुख निशङ्क होय मरण करै तौ तोकूं

जोगरणी देवी है सो अपना भरतार करै। तहां देवांगना के भोग भोगना मनुष्यन की कहा बात है। तातैं तूं शस्त्र धारा तीर्थ तैं मरि। सो यह भोगार्थी भोला जीव ऐसी ही मानि धारा तीर्थ स्वीकार किया। सो हे भव्य ! यह धारा तीर्थ हास्य वचन तैं चल्या है तातैं हेय है। यह शस्त्र तैं आप मरै सो महासंक्लेश भाव होय और कं आप रणमैं मारै सो महारौद्र भाव होय। सो परघात करनेहारे पापभार सूं देव लोक कैसे होय? परन्तु जैसे—अज्ञान पतंग दीप कूं महासुन्दर जानि विषय-भोग के लोभ तैं दीपक मैं पड़ि भस्म होय है। क्योंकि ए पतंग ज्ञान रहित है। तातैं अपना पुण्य तौ नहीं समझै है। अरु बड़े भोग चाहै है। तातैं मरणकौं पाय हीन ही गतिमैं उपजै है। तैसे ही ए भोगाभिलाषी शस्त्र के मरणकूं तीर्थ की कल्पना करि शस्त्र धारारूपी दीपक मैं पतंग की नाईं भस्म होय हैं। सो रौद्र-भावन तैं मरि अशुभ गति जाय हैं। देव सुख तौ शील पालना तप, जप, संयम करना दान देना, प्रभु सेवा पूजा करना, दया-भाव राखना, समता पालनी इत्यादिक पुण्य भावनतैं होय। तातैं हे सुबुद्धि ए तीर्थ नाहीं। शस्त्रधारा कुतीर्थ है। तातैं विवेकतैं तजने योग्य है। हे भाई ! जो शस्त्रधारा का मरण तीर्थ होता। तौ जगत् जीव शस्त्र तैं डरते नाहीं सब ही शस्त्र तैं मरते। यह तौ महासुगम है। निकट ही है। कछु धन लागता नाहीं। परन्तु तूं विचार। जो लोग खेद खाय लाखौं धन खरचि, हजारों कोस तीर्थन कूं जाय हैं, अरु शस्त्र तैं डरै हैं। तातैं ए कुतीर्थ जानना और यहां कोई कुबुद्धि कहै जो यह धारा तीर्थ हर जगह के करने नाहीं। महासूरमा के करने का है। तौ भो भव्य ! सुनि। बड़े-बड़े महान वंश के उपजे सूरमा राजा, आगे राज सम्पदा छोड़ि युद्ध-शस्त्रघात छोड़ि समता धारि तप लेय वन मैं तिष्ठ समता भाव धर नाना प्रकार तप करते, शुभ मान्या। भली देवादि गति गए, सुखी भए। जो शस्त्र-धारा तैं भला होता तौ महासामन्त कुल के, तप काहे को लेते? तातैं धारा-तीर्थ तजने योग्य हेय है। अरु केई भोले जीव नदीन के जल तैं पाप उतरता मानैं हैं। जो उन नदी के जल मैं स्नान करै पाप-मल धुवै है। सो यह कहनेवाला भोला है। शिथिल श्रद्धानी है। धर्म-गांठ रहित है। इस ही बात पै दृढ़ खड़ा नहीं रहै है। याहीकौं कहिए हैं। जो इस शूद्र से मिट्टी का कलश लेय कैं इस नदी के जलमैं दश-पांच बार अच्छी रीति तैं धोय लेय। जिससे वे शूद्र का मिट्टी का कलश, पवित्र होय। ता पीछे इस कलश तैं जल पीया करौ। यातैं सपरो (स्नान) करौ। तो यह कहै, ये शूद्र का बर्तन मिट्टी का है हम

यातैं जल कैसे पीवैं? कैसे सपरैं? यह मलिन है। याही भ्रम-बुद्धि की ग्लानि नहीं जाय। तौ याकौं कहिए। हे विवेकी! तू देखि। यह मिट्टी का बासन हैं। ताकौं अग्नि मैं जाल्या है। ऐसे शुद्ध कलश ताकूं नदीमैं दश-पांच बेर धोय शुद्ध किया। ताकूं तूं पवित्र मानता नाहीं। तौ हे सुबुद्धि! देखि। ए शरीर महामलिन सात धातु रूप अपवित्र अरु पाप मैल तैं मलिन आतमा सो इस नदी के जल तैं सपरै (स्नान करै) तो कैसे पवित्र होय है? तू ही तौ इस जल तैं धोये पीछे वासन की घिन नहीं तजै है। तौ और कोई विवेकी परभव सुख का लोभी आतमा शुद्ध होता कैसे मानै? तातैं तेरे ही एकान्त बुद्धि का हठ है। भो भव्य! जिनकी हृदय कठिन दया-भाव रहित है ते अनगाले जल का समूह नदी का स्नान तीर्थ कहै हैं। नदी है सो तन का मैलि दूर करने योग्य है। अरु आत्माकैं पाप मैल लाग्या है ताके मेटने को समर्थ नाहीं। तातैं ऐसा जानना जो पाप मैल दूर करनेकूं दान पूजा भगवान का सुमरणादि धर्म अङ्ग ए उत्तम तीर्थ समता-भाव के कारण समर्थ हैं। नदी तीर्थ हेय है और ज्ञान चक्षु रहित प्राणी समुद्रकौं तीर्थ कहैं हैं। ऐसा उपदेश करैं हैं अरु आप श्रद्धैं हैं। जो जेती नदी तीर्थ रूप हैं सो सर्व यामैं आय मिली हैं अरु बहुत जल का समूह है। तातैं सबतैं बड़ा तीर्थ समुद्र है। या विषैं स्नान किए पाप कटते मानैं हैं। सो आचार्य कहैं हैं। हमकूं बड़ा आश्चर्य यह है। जो जाके जल तैं स्पर्श भए तन फाटै जाके योग तैं केतेक तौ जलमैं पैठते (घुसते) डरैं हैं। उसे केतेक भोले आतमाराम तीर्थ मानैं हैं। सो जाका जल तन के लगते खेद करैं तौ स्नान किए सुख कैसे होय? तातैं हेय है और केतेक सामान्य बुद्धि के पात्र ऐसा समझैं हैं तथा औरनकौं उपदेश करैं हैं कि धरती माता बड़ी धैर्य की धरनहारी है। याकौं जगत् के जीव अनेक प्रकार खोदैं फोड़ैं हैं। यापै कोई धूरा डारै हैं। तौ भी धरती खेद नाहीं मानैं है और इस धरतीतैं उपज्या अरु इसही धरतीमैं मिलना है। तातैं जीवत ही धरती मैं गड़ना शरीर सहित धरती मैं प्रवेश करना सो धरा तीर्थ है। या समान और तीर्थ नाहीं। ऐसा समझा जीवता ही धरती मैं गड़ि प्राण नाशै है और याकौं धारा-तीर्थ मानैं हैं और यो भोला जीव ऐसा नहीं समझै है जो धरती तीर्थ होती तौ यामैं मल-मूत्र कैसे करते? खोदन जालनादि अविनय भी नहीं करते? तातैं हे भव्य! ऐसा जानना जो सर्व धरती तीर्थ नाहीं। सिद्धक्षेत्र की धारा तौ तीर्थ है और अन्य धरती-तीर्थ हेय है।

इति श्री सुदृष्टि तरङ्गिणी नाम ग्रन्थ के मध्य में तीर्थ परीक्षा विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय का विचार करनेवाला पञ्च-दश पर्व सम्पूर्ण हुआ ॥ १५ ॥

आगे परस्पर काल गमावना रूप जो चर्चा तामें ज्ञेय-हेय-उपादेय कहिये है—

गाथा—पुण्णदा अघखय कारिय, चरचोपादेय परमफलदायी पावमयो शुभहारी, सा चरचा तु हेय जिण मग्गो ॥ ४१ ॥

अर्थ—जा चर्चा तैं पुण्य होय पाप का नाश होय, सो चर्चा तौ उपादेय है और जातें पाप-कर्म उपजैं और अगले किया पुण्य-कर्म ताका अभाव होय ऐसी चर्चा हेय है। ऐसा जिनदेव नैं कह्या है। भावार्थ—चर्चा नाम परस्पर वार्तालाप (बोलने) का है। सो बतलावना है सो विवेकी जीवनकौं ज्ञेय-हेय-उपादेय करि बतलावना योग्य है। सो ही कहिए है। शुभाशुभ चर्चा का समुच्चय भेद सो तो ज्ञेय है। ताके ही दोय भेद हैं। एक शुभ चर्चा है और एक अशुभ चर्चा है। सो जहां तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती, नारायण, बलभद्र, कामदेव, देव, इन्द्र इत्यादिक महान् पुरुषन की उत्पत्ति राज-सम्पदा भोग सुख इनका वैराग्य इनके स्वर्ग मोक्ष होने का कथन सो प्रथमानुयोग ताकी चर्चा परस्पर करना। सो पापकौ नाशै अरु पुण्यफल देय ऐसी चर्चा धर्मात्मा सम्यग्दृष्टिन कौं उपादेय है। तीन लोक की रचना जो अधोलोक सात राजू तहां भवनवासी ब्यन्तर देव पुण्य का फल भोगते सुख समुद्र मैं मगन भए काल गवांवैं हैं। ताके नीचे सात नरक हैं। तहां जीव बड़े पापन का फल भोगते, महादुख समुद्रमैं डूब रहे हैं। विलाप करते, काल व्यतीत करै हैं और मध्य-लोक विषैं असंख्याते द्वीपसमुद्र हैं। तिनमैं पैंतालीस लाख योजन तौ मनुष्य-लोक हैं। बाकी के सर्व द्वीपनमैं तिर्यक्-लोक है। अढ़ाई द्वीपमैं मेरु कुलाचलादिक की चर्चा सो उपादेय है और ऊर्ध्वलोक विषैं सोलह स्वर्ग हैं। अहमिन्द्र, सर्वार्थसिद्धि आदि के देव, पुण्य फल-सुख भोगते सुखी हैं। तिनके ऊपरि सिद्ध-लोक, तहां अनन्ते सिद्ध-भगवन्त विराजैं हैं। ऐसे इन तीन लोक की चर्चा परस्पर करनी, सो करणानुयोग चर्चा सम्यग्दृष्टिन करि उपादेय करने योग्य है और जहां मुनि-श्रावक के समिति, गुप्ति आदि ग्यारह प्रतिमादि आचार की चर्चा करना, सो चरणानुयोग की चर्चा उपादेय है। जहां जीव द्रव्य, पुद्गल द्रव्य, धर्म, अधर्म, काल, आकाश—ए षट् द्रव्य हैं। जीव-तत्त्व, अजीव-तत्त्व, आस्रव-तत्त्व, बन्ध-तत्त्व, संवर-तत्त्व, निर्जरा-तत्त्व और मोक्ष-तत्त्व। इनमैं पुण्य और पाप मिलाये नव पदार्थ। ऐसे षट् द्रव्य, सप्त

तत्त्व, नव पदार्थ आदि की चर्चा परस्पर करना सो उपादेय है। याका नाम द्रव्यानुयोग चर्चा है तथा जीव कर्म तैं कैसे बन्ध्या है ? कैसे छूटै ? इत्यादिक चर्चा उपादेय है तथा अनेक तीर्थों की चर्चा, दान-पूजा, शील, संयम, तप, व्रत, दया-भाव, जीवन की रक्षा इत्यादिक केवली भाषित चर्चा, सो उत्तम चर्चा है। तातैं पाप का नाश और पुण्य-कर्म का संचय होय है। तातैं उपादेय है। इति शुभ चर्चा। आगे कु-चर्चा-हेय का स्वरूप कहिए है। जहां परस्पर चर्चा तैं पाप का बन्ध होय, आगे का किया पुण्य सो क्षीण होय, ऐसी चर्चा होय हेय है। भावार्थ—कु-देव, कु-गुरु और कु-धर्म इनकी पूजा-भक्ति की चर्चा। इन कुदेवादिक के अतिशय-चमत्कार की चर्चा प्रशंसा रूप बात, सो हेय है। अपने-पराये राजान के युद्ध की बात, हारे-जीते की, निन्दा-प्रशंसा की चर्चा तथा खोर की चतुराई की चर्चा, मन्त्र, जन्त्र, तन्त्र, टोणा, चौमणा, ज्योतिष, वैद्यकादि के चमत्कार की चर्चा, मल्ल-युद्ध हस्ति-घोटकादि की लड़ाई की चर्चा, ए कु-चर्चा हेय हैं तथा स्त्रीन के रूपलावण्य की वार्ता करनी तथा स्त्रीन के अनेक शुभाशुभ चरित्र, कला, गीत, गान, गालि, नृत्य, भोग, चेष्टादि की चर्चा, सो हेय है तथा अनेक प्रकार भोजन, व्यञ्जन, रस-पान, भोगोपभोग मैं अच्छे-बुरे की चर्चा, सो हेय है और कूं पीड़ा उपजावने की, पराया धन नाश कराने की, पराए मान खण्डन की परस्पर चर्चा, सो हेय है। अनेक देशन मैं, किसी को भला किसी को बुरा कहने की चर्चा। परस्पर युद्ध होय, द्वेष बंधै ताकी चर्चा तथा स्वचक्र-परचक्रादि सप्त ईति-भीति की चर्चा, सो हेय है और तन रोगादिक उपजने की, क्षय होने की—इन आदि अनेक विकथा रूप चर्चा, अशुभ बन्ध को करनहारी, सो हेय हैं।

इति श्रीसुदृष्टितरंगिणी नाम ग्रन्थके मध्यमें चर्चा विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय का वर्णन करनेवाला सोलहवाँ पर्व सम्पूर्ण हुआ ॥१६॥

आगे अनुमोदना अधिकार में ज्ञेय-हेय-उपादेय कहिये है तहां शुभाशुभ कार्यन की अनुमोदना के समुच्चय भाव का जानना, सो तो ज्ञेय है। ताही ज्ञेय के दोय भेद हैं। एक शुभ अनुमोदना है, एक अशुभ अनुमोदना है। भावार्थ—जहां लौकिक कार्यन में, पुत्र-पुत्री के शादी-व्याह में, मन्दिर-महल के आरम्भ में, युद्ध विषैं, अपने मन की अनुमोदना हेय है तथा भले रूप में, भले भोजन में, कूप से पानी के काढ़िवे में, वापी-तालाब के खुदावै में इत्यादिक भूमि खोदने के आरम्भ में अनुमोदना, पाप-बन्ध करै है, तातैं हेय है तथा काहू नै काहू पै शस्त्र

चलाया, लकड़ी का प्रहार किया, यह देखि, अनुमोदना करनी हेय है तथा काहू का धन लुटता देखि-सुनि तथा तन पीड़ा देखि तथा काहू के हाथ-कान-नाकादि अङ्ग उपाङ्ग छेदते देखि, अनुमोदना करना हेय है तथा कोई के कु-तप व कु-ज्ञान की दीर्घता देख, अनुमोदना करनी हेय है और कोई कुदेव-गुरुन के बड़े आरम्भी बड़ा द्रव्य लागत के मन्दिर मठ स्थान देखि अनुमोदना करना, अशुभ फलदायक जानि, हेय है और तीर, गोली, नाली, तोप, बन्दूक, कमान, छुरी, कटारी, शमशेर, बरछी इत्यादि अनेक शस्त्र, जीवघात के कारण देखि इनकी अनुमोदना करनी हेय है और कोई भला बाणावणी (धनुर्धारी) अनेक शस्त्र कला मैं प्रवीण तीर गोला-गोली का चलावनेहारा पुरुष की अनुमोदना हेय है तथा नदी सरोवरन की पाली (बांध) फोड़िकैं तथा फूटी देखि कैं तथा नगर वन मैं अग्नि लगी देखि तथा नगर मुल्क को लुटता देखि सुनिकैं अनुमोदना अशुभ फल देनहारी है। तातैं हेय है और कु-तीर्थन के स्थान तथा तिनके कर्ता देखि तिनकी अनुमोदना करनी हेय हैं और कृष्यारम्भ पशु संग्रह खेटकादि जीवघात विषैं हर्ष करना हेय है और अनेक मिथ्यात्व कारणन में तथा बहु पापारम्भ परिग्रह के विकल्पन में हर्ष अनुमोदना ये जानि तजना सो गुणकारी है। इति पाप अनुमोदना हेय है। आगे शुभ अनुमोदना उपादेय कहिए है। जहां मुनीश्वर ध्यानाग्नि तैं कर्मनाशि निरञ्जन भए तिनकी वन्दना में हर्ष करना उपादेय है तथा कोई भव्य आतमा गुरु का उपदेश पाय संसार दशा तैं उदास होय तप करता होय ताकी अनुमोदना उपादेय है तथा कोई जिन-दीक्षा धारी मुनीश्वर शुक्ल-ध्यान करि च्यारि घातिया-कर्म नाश के केवलज्ञान पाया, तिनकी वन्दना में हर्ष-अनुमोदना उपादेय है और जिन कालन मैं निर्वाण केवलज्ञान, तपकल्याणक हुए तिन कालन की पूजा-वन्दना विषैं अनुमोदना उपादेय है और जहां कोई भव्यात्मा धर्मी जीवकौं सम्यक् प्रकार बारह प्रकार तप करता देखि तथा अनेक तीर्थ सिद्धक्षेत्रन की वन्दना करते देखि तथा अकृत्रिम अरु कृत्रिम जिन चैत्यालयों की वन्दना करता देखि, इन कार्यन मैं भव्यात्मा कूं प्रवर्ते देखि, तिनकी अनुमोदना करना उपादेय है तथा तीर्थङ्कर के पञ्च ही कल्याणकन के समय देखि-सुनि हर्ष भाव, उपादेय है तथा अष्टाह्निका के दिनों में इन्द्रादि देव नन्दीश्वर द्वीप विषैं जाय पूजा-उत्सव करैं, तिस काल मैं वन्दना करना हर्ष सहित-तामैं अनुमोदना उपादेय हैं और श्री दशलक्षण पर्व आदि मैं पूजा संयम तप जे भव्य करैं तिनकी अनुमोदना उपादेय है

तथा जिन-मन्दिर कराय तिनकी प्रतिष्ठा का उत्सव करि हर्ष मानना तथा और भव्य नै किया होय तो ताकी उत्तम भावना देखि हर्ष अनुमोदना करना उपादेय है और जहां निरन्तराय करि मुनि का दान आपकैं तथा परकैं भया जानि अनुमोदना करना उपादेय है तथा कोई भव्यात्माकूं जिनवाणी का अभ्यास करता देखि तथा सुनि हर्ष करना उपादेय है तथा कोई धर्मात्मा कूं दीन जीवनकूं दया-भाव सहित दान देता देखि हर्ष करना, उपादेय है तथा काहू भव्यात्मा पुरुष की करी जिन-मन्दिर की अनेक शोभा-रचना देखि, अनुमोदना करना उपादेय है तथा जिन-मन्दिर के उपकरण छत्र, चमर, सिंहासन, भामण्डल, घण्टा, चन्दोवा तथा पूजा के उपकरण थाल, रकेबी, झारी, प्यालादि देखि हर्ष करना उपादेय है तथा उत्कृष्ट अक्षर पत्र, बन्धना पूठा सहित शास्त्र देखि तथा काहू धर्मी नै शास्त्र लिख्या तथा लिखाया देखि अनुमोदना करनी उपादेय है तथा कोई भव्य का मिथ्यात्व नाश सम्यज्ञ-भाव भया जानि तथा कोई जीव-धर्म सन्मुख भया देखि इनकी हर्ष अनुमोदना करना उपादेय है और पञ्च परमेष्ठी की भक्ति सहित जीवकौं देखि तथा तीर्थङ्कर का समवशरण देखि तथा रचना सुनि तथा मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका च्यारि प्रकार संघकौं देखि हर्ष भाव करना और अपने से गुणाधिक धर्मात्मा जीवकूं देखि अनुमोदना करना, उपादेय है तथा किसी धर्मात्मा जीवकूं तीर्थ-यात्राकूं उत्सव सहित जाता देखि अनुमोदना करनी तथा कोई धर्मात्मा जीवनकौं साता देखि तथा धर्मी जीवन के समूह में साता सुनि अनुमोदना करनी उपादेय है। ऐसे कहे जो अनेक पुण्य उपजने के पूज्य स्थान तिन सर्व मैं सम्यग्दृष्टि जीवनकौं हर्ष अनुमोदना करना उपादेय है।

इति श्री सुदृष्टि तरङ्गिणी नाम ग्रन्थ के मध्य में अनुमोदना भेद की परीक्षा विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय का कथन करनेवाला सत्तरहवाँ पर्व सम्पूर्ण हुआ ॥ १७ ॥

आगे मोक्ष विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय कथन कहिए है—

गाथा—मोक्खे गे हे पादे, आवागमणोय मोक्ख हे भणियो। कम्म विमुक्को मोक्खो, पादेयो सुह दिट्ठीए ॥ ४२ ॥

अर्थ—मोक्ष विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय है। सो जो आवागमन सहित मोक्ष है सो तौ हेय है और कर्म रहित मोक्ष है सो सम्यग्दृष्टि जीवन करि उपादेय है। भावार्थ—समुच्चय मोक्ष का जानना सो तौ ज्ञेय है। ताही ज्ञेय

के दोय भेद हैं। तहां भोले जीवन का कल्पा जो लौकिक मोक्ष सो ता मोक्षकौं ऐसा मानैं हैं कि जो आत्मा मोक्ष जाय सो तहां महासुखी रहै। पीछे शुद्धात्मा की इच्छा होय तो संसार विषैं पीछे आवै। सो ऐसा मोक्ष संसार समान है। काहे तैं? जो जन्म-मरण तौ संसार का स्वभाव है। अरु मोक्ष विषैं जन्म-मरण नाहीं है। तातैं जे अल्पज्ञानी मोक्ष जीवनकौं जन्म लेना फेरि मानैं हैं। सो मोक्ष हेय है। शुद्ध जो मोक्ष है। तहां गया जीव फेरि अवतार लेता नाहीं। जैसे—पृथ्वी की खानि विषैं तैं अग्नि आदि के निमित्त पाय करि यतनपूर्वक काढ्या जो सुवर्ण, सो मिट्टी तैं भिन्न भये पीछे मिट्टी में मिलाइये तौ मिलता नाहीं। तैसे ही शुद्ध जीव, कर्म मल दूरि कर मोक्ष भए पीछे तन रूपी मिट्टी मैं मिलता नाहीं। तातैं मोक्ष भए पीछे जिस मोक्षतैं पीछा जन्म होय सो मोक्ष विवेकीन के तजने योग्य हेय है। अरु केतेक भोले पण्डित हैं ते मोक्ष जीवकौं राग-द्वेष सहित मानैं हैं ऐसा कहै हैं जो मोक्ष में भगवान्, सर्व संसारी जीवन पै लेखा लेय है। सो जाने अपनी भक्ति नहीं करी तिनकूं नरक-कुण्ड मैं डारै है और जाकूं अपना भक्त जानै है ताकौं अपने पास मोक्ष में राजी होय राखै है। सो भो भव्य! हो ऐसा राग-भाव अरु द्वेष-भाव मोक्ष में नाहीं। जहां राग-द्वेष होय सो संसार स्थान जानना। तातं राग-द्वेष सहित जो मोक्ष होय सो हेय है और केतेक संसारी चतुर नर ऐसा मानैं हैं। जो मोक्ष विषैं पंचेन्द्रिय महासुख है। या कहैं हैं जो मोक्ष विषैं भगवान्कूं इन्द्रियजनित बड़ा सुख है। ऐसा सुख और कहूँ नाहीं उत्कृष्ट भोजन अमृतमयी भोगने योग्य रस ताकूं भोगवै है और अनेक सुख नासिका इन्द्रिय कूं सुखदाई ताहि सूंघै है और नाना प्रकार के नृत्य-गीत-वादित्र भगवान् के मुख आगे मोक्ष में अनेक अप्सरा चरित्र सहित करं हैं। तिनकौं भगवान् देखि महासुख भोगवैं हैं। इन आदि अनेक अप्सरानकौं भोग सहित अनेक इन्द्रियजनित सुखकूं भोगवै है। सो हे धर्मात्मा जीव! तूं चित्त देय सुनि। अरु मन में विचारि। जहां इन्द्रिय सुख है। सो मोक्ष नाहीं संसार ही जानना और मोक्ष है तहां इन्द्रियजनित सुख नाहीं। मोक्ष सुख तौ इन्द्रियनतैं अतीत है। अतीन्द्रिय सुख का भोगता शुद्धात्मा है। इन्द्रिय सुख आकुलतारूप है और मोक्ष आकुलता रहित है। तातैं जिस मोक्ष मैं इन्द्रिय सुख होय सो मोक्ष हेय है और केतेक ज्ञान-चक्षु-हीन ऐसा कहै हैं। जो मोक्ष विषैं भगवान् सदैव बैठे पुस्तक के पत्र देखा करै हैं। तहां संसारी जीवन के आयुष का प्रमाण लिख्या है।

सो जाका आयुष्य के दिन पूरण होंय तब भगवान् के सेवक सदैव पास ही रह्या करैं हैं तिन यमन (सेवकन) कूं खिदाय (भेज) ताका जीव भगवान् अपने पास मंगाय लेंय। पीछे सुख-दुख देय हैं। या जीव का लेखा लेय हैं। जो तैं संसार मैं जायकैं कहा किया, सो वाकौ पूंछे हैं। सो वानै पाप किए होंय तो तहां भगवान् के लोक में नरक-कुण्ड है तहां नाखि दुखी करैं हैं और वानै पुण्य किए होंय तौ भगवान् के लोक मैं नाना प्रकार रतनमयी महल हैं सो ताकों धन-धान्य तें भरे महल-मन्दिर देय सुखी करैं हैं। जैसा जाका शुभाशुभ कर्तव्य होय तैसाही सुख-दुख भगवान् देय हैं। ऐसे रात्रि-दिन भगवान् निरन्तर लेखा-देखा करैं हैं। ऐसा विकल्प सदैव मोक्ष मैं भगवान् कौं बतावैं हैं केते पण्डित विवेकी भोले ऐसा कहै हैं। तिनकौं कहिए है। भो मोक्षाभिलाषी! हो मोक्ष विषैं ऐसा विकल्प नाहीं जहां विकल्प है ते संसारी स्थान जानना। मोक्ष तौ निर्विकल्प है, निराकुल है। तातैं जाके मोक्ष विषैं इतना विकल्प होय सो मोक्ष हेय है और केतेक जीव ऐसे ही शरीर सहित मोक्ष में हैं। ऐसी कहैं हैं कि जापै भगवान् कृपा करि राजी होंय। ता मनुष्य कूं अपना भक्त जान यह सप्त धातु के भरे शरीर सहित हो, अपने पास मोक्ष मैं बुलाय सुखी करै है। जो कोई नगर भर के लोक भगवान् की भक्ति करैं तौ भगवान् सन्तुष्ट होय सर्व नगर के लोकनकों ही अपने पास मोक्ष में बुलाय लेय हैं। केतेक जीव ऐसा मानै हैं तिनकौं कहिए है। भो सुज्ञानी जीव ! तूं समझि। यह अपवित्र शरीर महामलिन सप्तधातु व मल-मूत्र का भर्या, मूर्तिक जड़ शरीर, सो तौ मोक्ष में जाता नाहीं। अरु जहां इस मूर्तिक शरीर का आना-जाना होय सो संसार अवस्था ही है। मोक्ष विषैं मूर्तिक शरीर है नाहीं मोक्ष मैं अमूर्तिक शरीर है। तातैं जाकी मोक्ष में मूर्तिक शरीर जाना हो सो मोक्ष हेय है। अरु केतेक ज्ञान-दरिद्री मोक्ष मैं शून्य भाव मानै हैं। जीव ऐसा कहैं हैं। जो जेते सुख हैं। सो तो सर्व संसार मैं हैं। स्त्री सम्बन्धी भोग सुख, नाना प्रकार षट् रस मेवादि मोदकादि जिह्वा इन्द्रिय के सुख तथा नाना प्रकार सुगन्ध नासिका इन्द्रिय के सुख और नाना प्रकार रतन-कनक के आभूषण वस्त्र स्त्रीन के रूप नृत्य-शोभादि अनेक चक्षु इन्द्रिय के सुख और अनेक प्रकार मिष्ट-स्वर सहित अनेक सङ्गीतादि राग की वीणा, बांसुरी, पखावज, तन्दूरादि अनेक सचित्त-अचित्त मिश्र स्वरन के मनोज्ञ राग शब्द, सो कर्ण इन्द्रिय के सुख। ए पञ्च ही इन्द्रिय सम्बन्धी जेते सुख हैं सो संसार में ही हैं। ए सुख मोक्ष में नाहीं, वहां तौ

शून्य है। नहीं कछु सुख, नहीं कछु दुख। शून्य रूप है। नहीं बोलना, नहीं चालना, नहीं गावना, नहीं खावना, केवल एक शून्यता। ऐसा मोह केई जीव मानै हैं। ताको कहिए है। भो मोक्ष के वांछक ! सुनि। अरु विचार देखि। सुख रहित शून्यता तौ मूर्ख कैं होय तथा सौते के होय तथा वायु-सन्निपात रोगवाले कैं होय तथा सुख रहित शून्यता दीन-दरिद्री कैं होय तथा जाके इष्ट का वियोग होय, शोक करि भऱ्या होय, अज्ञान-मोह तैं जड़ समान होय गया होय तथा काष्ठ पाषाण की मूर्ति, चेतना भाव रहित कैं होय इत्यादिक स्थानकन मैं शून्यता होय और परमात्मा, शुद्ध निराकार चेतनमूर्ति ज्ञान भण्डार कैं मोक्ष में शून्यता नाहीं। महासुख सागर में मगन हैं। जेते सुख संसार में है तिनतैं अनन्तगुणे सुख मोक्ष में हैं। तातैं जाका मोक्ष में शून्यता भाव होय सो मोक्ष हेय है। इति हेय मोक्ष। आगे उपादेय मोक्ष कहिए है। भो सुख के अर्थी ! तूं चित्त लगाय सुनि। जो आत्मा जन्म-मरण के महादुखन तैं भय खाय, दिगम्बर पद धारि, नाना तप करि, कर्म बन्धन छेद, मोक्ष कौं प्राप्त भया, सो अब जन्म-मरण तैं रहित होय भव बन्धन तैं छूटा, मोक्ष के ध्रुव स्थान विषैं तिष्ठ्या, सो आवागमन का महादुख मिटाय सुखी भया और मोक्ष विषैं राग-द्वेष का अभाव होतें महासुख होय है। ए राग-द्वेष हैं सो ही महादुख हैं, सो मोक्ष में ए राग-द्वेष नाहीं। मोक्ष जीव अनन्त सुख का धारी है। जे संसारिक इन्द्रियजनित सुख हैं, सो सर्व विनाशिक हैं। क्षणभंगुर व पराधीन हैं। सो इन्द्र, चक्री, कामदेव, नारायण, बलभद्र और अहमिन्द्रादिक—ए सर्व देव मनुष्यन कैं अनन्तकाल का सुख है। तिस सुख तैं भी अनन्तगुणा अतीन्द्रिय सुख मोक्ष का सुख है। तातैं मोक्ष सुख इन्द्रिय रहित है। तातैं ही उपादेय है। अर मोक्ष जीव विकल्प रहित एकै काल सर्व जगत् के पदार्थन का स्वरूप जानै है और विकल्प है सो जो हीन ज्ञानी व हीन शक्ति होय तिनकैं होय है। तातैं अनन्तज्ञान शक्ति का धारी परमात्मा कैं विकल्प नाहीं और सर्व द्रव्य कर्म अरिन का नाशि करि तज्या है औदारिकादि पौद्गलिक स्कन्धमयी शरीर जानैं सो सिद्ध पद का धारी सिद्ध जीव सो अमूर्तिक है। निरञ्जन दशा धरै सुख का पिण्ड है और केवलज्ञान केवलदर्शन करि सर्व लोकालोक का वेत्ता है। ए सर्वज्ञ वीतराग घट-घट के अन्तर्यामी भवसागर के तारक हैं और चैतन्य सदैव आनन्द मूर्ति जड़त्व भाव जो शून्यता दशा तातैं रहित हैं। ऐसे जन्म-मरण रहित राग-द्वेष वर्जित अतीन्द्रिय सुख का भोगी विकल्प रहित निराकार

पौद्गलिक शरीरतैं रहित सर्वज्ञ पद धारी ज्ञान मूर्ति चेतन चमत्कार लिए ऐसे गुण का धारी मोक्ष जीव है, सो ऐसा मोक्ष उपादेय है। इस मोक्ष का नाम लिये, सुमरण किये, पूजा किये, श्रद्धान किये, आशा किये महापुण्य फल होय। तातैं परभव में उत्तम पद पाय परम्पराय मोक्ष का वासी होय। तातैं सम्यग्ज्ञान सम्पदा के धारक भव्यात्मा कौं ऐसा मोक्ष उपादेय है।

इति श्री सुदृष्टि तरङ्गिणी नाम ग्रन्थ के मध्य में मोक्ष तत्त्व विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय का वर्णन करनेवाला अठारहवाँ पर्व सम्पूर्ण हुआ ॥ १८ ॥

आगे ज्ञान विषैं ज्ञेय-हेय-उपादेय कहिए हैं—

गाथा—गेय हेयोदेओ, णाणच्चय वसु भेय जिणउत्तं। जाण कुणाणय हेयं, उवादेयं पण सुद्ध णाणन्तु ॥ ४३ ॥

अर्थ—ज्ञेय-हेय-उपादेय करि ज्ञान के आठ भेद हैं। तिनमैं तीन कु-ज्ञान तौ हेय हैं अरु पञ्च सु-ज्ञान उपादेय हैं ऐसा जिनदेव ने कह्या है। भावार्थ—सु-ज्ञान-कु-ज्ञान का समुच्चय जानना सो तो ज्ञेय है और ताही के दोय भेद हैं। एक ज्ञान हेय है, एक ज्ञान उपादेय है। तहाँ कु-मति-ज्ञान, कु-श्रुत-ज्ञान, कु-वधि-ज्ञान—ए हेय ज्ञान हैं, सो ही कहिए हैं। जहाँ हिंसा-ज्ञान की चतुराई होना। जहाँ जीव पकड़ने कूं जाल बनायवे का ज्ञान अरु ता ज्ञान तैं फन्दा करना फाँसी, पींजरा, छूरी, कटारी, बरछी, तलवार, बन्दूक—इन आदि अनेक हिंसा के कारण शस्त्र बनावना सो कु-ज्ञान है तथा चित्राम, शिल्प-कला, भण्ड-कला, युद्ध-कला, चौर-कला—इनकूं आदि पर के ठगने की अनेक चतुराई की युक्ति का उपजना सो कु-ज्ञान है तथा और जीवनकौं अनेक दुख देने की कला चोर व कुमारगी जीवनकौं दण्ड देने की कला—चतुराई जो इसकूं ऐसे मारिए तौ बहुत दुखी होय इत्यादि ए कुज्ञान है और कौतुक हाँसी अनेक भाव करि परकौं खुशी करिए तथा नाना प्रकार के स्वांग धारि लोकनकूं आश्चर्य का उपजावना। चोरी व परदारा सेवन में प्रीति भाव इत्यादि ज्ञान की चेष्टा लौकिक में प्रवर्तती है, सो कु-मति-ज्ञान है। इति कु-मति-ज्ञान। आगे कु-श्रुत-ज्ञानकूं कहिए है। तहां युद्ध शास्त्रन का ज्ञान, नाना प्रकार रसिक प्रिय श्रृङ्गार शास्त्र आदि कामोत्पत्ति के कारण रस-शास्त्र, सङ्गीत शास्त्रादिक कु-श्रुत-ज्ञान हैं और हिंसा के कारण जिनमैं पर-जीव घात का उपदेश सो कु-श्रुत है तथा

जिनमें कु-देव कु-गुरुन के पोषवेकूं अनेक द्रव्य चढ़ाने का कथन तथा ए देव ऐसा भक्ष लेय है, तब तृप्त होय है इत्यादिक कथन जिन शास्त्रन मैं होय सो कु-श्रुत है तथा कु-गुरु पोषनेकूं ऐसा भोजन ऐसे वस्त्र, धन, मन्दिर, देव, गुरु की सेवा कीजै तथा दासी-दास-स्त्री गुरुन की सेवाकौं दीजे, तौ अप्सरान का भोगी होय ऐसा फल प्रावै तथा गज, घोटक, रथ, पालकी गुरुनकूं दीजिए तौ देव-विमान का फल पावै इत्यादिक कथन जिन शास्त्रन में होय, सो कु-श्रुत है। इन कु-श्रुत शास्त्रन का जाकै ज्ञान होय, सो कु-श्रुत-ज्ञान है। सो सुदृष्टिन करि हेय है। इति कु-श्रुत-ज्ञान। आगे विभंग ज्ञान का कथन करिये है। तहां आत्म हितकूं कारण सम्यग्दर्शन सो ऐसे सम्यक्त्व बिना मिथ्या भाव सहित इस भव-पर-भव की वार्ता जानना तथा दूर-वर्ती पदार्थन कौं जाने, सो विभंग-ज्ञान है तथा याही का नाम कु-अवधि भी है। ऐसे कहे जो सामान्य अर्थ सहित कु-मति, कु-श्रुत और कु-अवधि—ए तीन कु-ज्ञान सो सम्यग्दृष्टिन तैं हेय हैं। ऐसे तीन कु-ज्ञान कहे। आगे पांच सुज्ञान कहिए हैं। प्रथम नाम—मति-ज्ञान, श्रुत-ज्ञान, अवधि-ज्ञान, मनःपर्यय-ज्ञान और केवल-ज्ञान। तहाँ मति-ज्ञान कहिए है—सो मति-ज्ञान के तीन सौ छत्तीस भेद हैं सो सुनो। प्रथम भेद चार—अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा। इनका अर्थ—जहां पदार्थ का दूरतैं सामान्यावलोकन होय जैसे—काहू नै दूर तैं एक स्तम्भ देखा, परन्तु भेदाभेद नाहीं किया सामान्य-सा भाव जो कछू है देखा। ऐसे भाव का जानना सो अवग्रह कहिए और उसही देखे स्तम्भ मैं भेदाभेद करना। जो यह स्तम्भ है या मनुष्य है? ऐसे विकल्प का नाम ईहा भेद है। पीछे वाही स्तम्भकौं जान्या। जो मनुष्य तौ नाहीं स्तम्भ है। ऐसे विचार का नाम अवाय कहिए और आगे बहुत दिन पहले स्तम्भ देखे थे। तिनका सुमरण किया। जो आगे स्तम्भ देख्या तैसा ही यह है, सो स्तम्भ है। निश्चयतें ऐसे दृढ़ भाव विचारना, सो धारणा है। ऐसे अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा—इन च्यारि भेदन करि पदार्थ जानिए, सो मति-ज्ञान भेद है। अरु ए ही च्यारि भेद पंचेन्द्रिय और मन इन षट् तें परस्पर लगाय गुणिए तौ चौबीस भेद होय हैं। जैसे—स्पर्श इन्द्रिय तैं कोई वस्तु—पदार्थ स्पर्श्या। तब सामान्य-भाव जान्या जो कछू है। विशेष भेद नहीं किया, सो स्पर्श इन्द्रिय तैं अवग्रह भया। फेरि विचारी जो ए पदार्थ पांव तैं स्पर्श्या सो कहा है? कठोर-कठोर है गोल है, सो कै तौ कोई रतन

है या कंकड़ है। इस विचार का नाम स्पर्श इन्द्रिय का ईहा भेद है। फेरि याही को विचारिये कि जो यह गोल है साफ हैं सो रतन है। इस विचार का नाम स्पर्शन इन्द्रिय का अवाय भेद है और तहाँ आगे कबहूं पांव नीचे रतन आया था ताकी यादि करि जानी जो आगे पांव नीचे रतन आया था तैसा ही ए भी है सो रतन ही है। ऐसा निश्चय करना सो स्पर्शन इन्द्रिय की धारणा है। ऐसे कहे स्पर्शन इन्द्रिय तैं च्यारि भेद। सो ऐसे ही रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र और मन—इन छहों तैं लगाय चौबीस भेद हैं और इन चौबीस मैं स्पर्शन, रसन, घ्राण और श्रोत्र—ए च्यारि भेद मिलाये अठाईस होंय। इन अठाईस भेदनकौं बहु बहुविध आदि बारह भेदनतैं गुणिए तौ तीन सौ छत्तीस भेद मति-ज्ञान के होंय। इन मति-ज्ञान के भेदन की पल्टन का एक विधान और तरह है। सो बतावैं हैं। अवग्रहादि च्यारि भेदन कूं पंचेन्द्रिय और मनतैं गुणें चौबीस भेद होंय। इन चौबीसकौं बहु आदि बारह भेदन तैं गुणें दोय सौ अट्ठासी होय है। सो ए तो अर्थावग्रह के हैं और स्पर्शन, रसन, घ्राण, श्रोत्र—इन च्यारि इन्द्रिय तैं बहु आदि बारह भेदन कौं गुणें अड़तालीस भेद भए, सो ए व्यञ्जनावग्रह के हैं। दोऊ मिल तीन सौ छत्तीस भेद रूप मति-ज्ञान होय हैं। इहां सामान्य भाव कह्या। विशेष श्रीगोम्मट-सारजी तैं जानना। इति मति-ज्ञान भेद। आगे श्रुत-ज्ञान का सामान्य भेद कहिये है—श्रुत-ज्ञान के अनेक भेद हैं। तहां मूल भेद दोय अङ्ग द्वादश अरु प्रकीर्णक भेद चौदह। तहां द्वादशांग के भेद दोय। ग्यारह अङ्ग अरु बारहवें अङ्ग के पञ्च भेद तहां चौदह पूर्व का कथन है। तिनही अङ्ग-पूर्वन मैं गर्भित योग च्यारि प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग—इन योगन मैं कथन जहां तीर्थङ्कर, चक्री, प्रतिचक्री, इन्द्र, देव इत्यादि महान पुरुषन की कथा जामैं होय सो प्रथमानुयोग है और तीन लोक की रचना का जामैं कथन होय सो करणानुयोग है और मुनि श्रावकन के आचार का जामैं कथन सो चरणानुयोग है और षट् द्रव्य, नव पदार्थ, सप्त तत्व, पञ्चास्तिकाय का कथन जहां होय सो द्रव्यानुयोग है। तहां षट् द्रव्य के गुण पर्याय का कथन सो तिन द्रव्यन करि संसार रचना च्यारि गति बनी है ऐसा कथन और द्रव्य में षट् गुण हानि वृद्धिरूप परिणमन सो तथा द्रव्य का अपने-अपने व्यय ध्रौव्य उत्पाद सहित तीन भेद रूप प्रवर्तना कथन सो ए सर्व श्रुत-ज्ञान के भेद हैं। तहां उत्पाद व्यय ध्रौव्य का सामान्य कथन कहिए है—जो वस्तु

विनाशै सो तो व्यय कहिए और नवीन वस्तु की पर्याय का उपजना सो उत्पाद है और वस्तु का सदैव शाश्वत रहना सो ध्रुव है। जैसे—कर का कनक का चूड़ा तुड़ाय कुण्डल करवाना। सो इसी ही मैं तीन भेद सधैं सो बताइए हैं। तहां द्रव्य भाव तौ सुवर्ण सो शाश्वत सो ध्रुव कहिये। चूड़ा की पर्याय टूटी सो ताकूं व्यय कहिए और कुण्डल बन्या सो ताकी पर्याय नूतन उत्पन्न भई ताकूं उत्पाद कहिए। ऐसे ए तीन भेद जानना। तैसे ही आत्मा तौ द्रव्य और मनुष्य पर्याय छोड़ि देव भया। सो मनुष्य पर्याय का तौ व्यय भया और देव पर्याय का उत्पाद भया। जीवत्व भाव दोऊ मैं शाश्वत है, सो ध्रुव है। ऐसे नय भेद तैं व्यय ध्रुव उत्पाद अनेक पदार्थन मैं साधना। ऐसे अनेक नय का स्वरूप श्रुत-ज्ञान तैं जानिए है। तातैं श्रुत-ज्ञान उपादेय है और श्रुत-ज्ञान तैं और भी ज्ञाता-ज्ञान व ज्ञेय का स्वरूप जानिये हैं। तातैं उपादेय है। तहां ज्ञाता तो आत्मा है। ज्ञाता का गुण ज्ञान है और ज्ञान के जानपने मैं आवे सो ज्ञेय है। ज्ञान सर्व ज्ञेय का जाननहारा है। ऐसा ज्ञाता-ज्ञान व ज्ञेय का स्वरूप श्रुतज्ञान तैं जानिए है। तातैं उपादेय है और भी श्रुत-ज्ञान के स्वरूप में ध्याता-ध्येय व ध्यान का स्वरूप कहिए है। तहां ध्याता तौ आत्मा है और जा वस्तु कूं ध्यावै सो ध्येय है और ध्यावते ध्याता के भाव का विकल्प सो ध्यान है। जैसे—धर्मी आत्मा तौ ध्याता है। पञ्चपरमेष्ठी ध्येय है ताकों ए ध्याता ध्यावै है और पञ्चपरमेष्ठी के गुणन का सुमरण सो ध्यान है तथा और दृष्टान्त करि कहिए है। जहां कोई पापी आत्मा तौ ध्याता है और पर-स्त्री भलेरूप सहित देखि ताके मिलाप की चाह ध्येय है और उस स्त्री के रूपादिक गुण ताका विचार सो आर्तध्यान है। ऐसे अनेक जगह ध्याता-ध्येय-ध्यान का स्वरूप सधै है। सो ऐसा भाव श्रुत-ज्ञान तैं जानिए है। तातैं उपादेय है और भी कर्ता कर्म क्रिया का स्वरूप श्रुत-ज्ञानतैं कहिए है। कर्ता तौ आत्मा है और जो वस्तु याने बनाय तैयार करी, सो कर्म है। अरु उस वस्तु के करतै, भई जो मन-वचन-काय की हल-चल, सो क्रिया है। जैसे—कोई धर्मातमा जीव अष्ट द्रव्य मिलाय भगवान का पूजन करै है, सो तो कर्त्ता है और ताके फलतैं देवगति, देवायु, सुभग, आदेय, सौभाग्य, सातावेदनीय आदि अनेक बन्ध किये जो शुभ-कर्म, सो इसका कर्म है और पूजा विषैं भले भाव का राखना, विनय तैं काय का राखना, विनयतैं वचन का बोलना, विधि सहित हाथ जोरै हर्ष तैं खड़ा रहना इत्यादिक भक्ति-भाव रूप प्रवृत्ति सो क्रिया है तथा और तरह कहिए

हैं। जैसे—कोई जड़िया तौ कर्ता है और नाना प्रकार रतन जड़ि करि, तयार किया जो मुकुट तथा हार, सो कर्म है और इनके करते भई जा मन-तन की प्रवृत्ति, सो क्रिया है। ऐसे अनेक पदार्थन पै लगावना। इस विधान सहित नय-प्रमाण कथन श्रुत-ज्ञान तैं पाईए है। तातैं उपादेय है और भी श्रुत-ज्ञान तैं पल्य-सागर का कथन कहिए है। तहां पल्य भेद तीन—जघन्य, मध्यम अरु उत्कृष्ट। तहां जघन्य का स्वरूप कहिये है—ए जघन्य पल्य ऐसे हैं। जैसे—मानी-मनेसा के प्रमाण बांधवे कूं रत्ती होंय हैं। रत्ती तैं मासा, मासा तैं रुपया, रुपैया तैं सेर, सेर तैं मनादिक। जैसे रत्ती तैं मनेसा का प्रमाण किया, तैसे जघन्य पल्यतैं सागर की उतपत्ति होय है। सो ही कहिए है—एक बड़ा योजन का प्रमाण सहित गोल गड्ढ़ा कीजिये तेता ही चौड़ा, तेता ही ऊँडा (गहरा)। तामैं भोग भूमि की बकरी का तुरन्त का भया बच्चा ताके रोम का अग्र भाग का बारीक खण्ड लीजिये। तिन रोम-खण्डन तैं वह कूप भरिए। दृढ़ करि कूटि-कूटि धरती बरोबर भरिये। ता पीछे सौ वर्ष जांय तब एक रोम काढ़िए फेरि सौ वर्ष गये एक रोम काढ़िए। ऐसे करते सर्व कूप खाली होय। ताकूं जेता काल लागै सो जघन्य व्यवहार पल्य कहिए है और जघन्य पल्य मैं जेता रोम आवे तितने कूप कूं उस ही कूप प्रमाण करि वैसे ही रोमों तैं भरिए-दृढ़ करिए। असंख्यात वर्ष जांय तब एक-एक रोम काढ़तैं एक कूप दोय कूप रितावतैं सर्व खाली होंय। सर्व कूपन के रोम खाली होंय। ताकौं जेता काल लागै सो मध्य पल्य कहिए और इस मध्य पल्य के जेते रोम भए तेते ही कूप उस ही विस्तार प्रमाण बनाए। वैसे ही रोमनतैं सबको दृढ़ भरिए। पीछें असंख्यात लाख कोटि वर्ष गए एक रोम काढ़िए। फेरि एता ही काल गए एक रोम काढ़िए। ऐसे करते-करते सर्व कूपन के रोम खाली होंय। ताकों जेता काल लागै सो उत्कृष्ट पल्य है। याही उत्कृष्ट पल्य तैं देव नारकी भोग-भूमिन की उत्कृष्ट आयु-कर्म है और मध्यम पल्य तैं द्वीप-समुद्रन की गिनती होय है। सो पच्चीस कोड़ाकोड़ी मध्यम पल्य प्रमाण हैं और दश कोड़ाकोड़ी पल्य का एक सागर होय है। मध्य पल्य दश कोड़ाकोड़ी का मध्य सागर होय है। उत्कृष्ट दश कोड़ाकोड़ी पल्य गये उत्कृष्ट सागर होय। ऐसे सामान्य करि पल्य का कथन किया। विशेष श्री त्रिलोकसारजी आदि ग्रन्थ तैं देखि लेना। ऐसे पल्य सागर का भाव श्रुत-ज्ञान तैं जानिए है। तातैं श्रुत-ज्ञान उपादेय है और भी श्रुत-ज्ञानतैं कृतघ्नी विश्वास-

घाती का स्वरूप जान्या जाय है। सो कहिए है—जो पराया किया उपकारकौं भूले सो कृतघ्नी है। सो कृतघ्नी के भेद तीन हैं—घर, पर और धर्म—इन तीन का उपकार अन्य जीव पै होय है। सो जैसे—माता-पिता ने बालक अवस्था में महा यतन किये। शीतकाल में तथा उष्णकाल में अनेक सहाय करि मोह के वशीभूत होय अनेक यतन करि पाल रक्षा करी। तरुण किया सो बड़ा भया तब माता-पिता का उपकार भूलि उनतैं द्वेष-भाव करि जुदा होना, अविनय करना, कटु वचन बोलना, दुख देना, माता-पिता तैं ईर्षा करनी, सो ए घर कृतघ्नी कहिए तथा और अन्य घर में बड़े थे। तिनने भी बालपने में अनेक तरह रक्षा करी। ऐसा विचार करैं जो ए बड़ा होय तब हमारी आज्ञा मानैगा, हमारी सेवा करेगा, हमको बड़ा मानैगा। ऐसी आशा करि कुटुम्ब के लोगन नैं प्रति पालना करी थी। सो बड़ा भए उल्टा कुटुम्बकौं दुखी करना, सो घर कृतघ्नी है। ऐसा जानना और कोई जो परजन बड़े मनुष्य वस्ती के और जाति के तिननैं कोई भूखा देखि अन्न दिया, नागा देखि वस्त्र दिया, बेरुजगार देखि रुजगार लगाय दिया, निर्धन देखि धन दिया, स्थान रहित देखि रहवेकौं मन्दिर स्थान दिया इत्यादिक दुखन मैं सहाय किया और रोगीकों पीड़ावान देखि अनेक ओषधि देय अच्छा किया। ऐसे अनेक दुःख मैं सहाय करि सुखी किया। अरु पीछे कर्म योग तैं आप शक्तिमान भया तब उन उपकारी का उपकार भूलि द्वेष करै। सो पर-कृतघ्नी कहिए और जाकूं महाअज्ञान में प्रवर्तता देखि पाप करता देखि पर-भव नरक पड़ता देखि कोई धर्मात्मा दया-भाव करि अज्ञानता छुड़ाय ज्ञान करावता भया और पाप-मार्ग तैं बचाय धर्म का पंथ बतावता भया नरकादि खोटी गति तैं बचाय शुभगति बतावता भया, लोकनिन्द्य-अनाचार छुड़ाय सुआचार बतावता भया। जानी यह जीव सुखी होय तो भला है, ताके निमित्त शुभ पंथ लगाया। अरु पीछे आपकैं कछु सामान्य भाव-ज्ञान भया, शास्त्र रहस्य पाया। तब उसके उपकारकौं भूलि, द्वेष-भाव करना, सो धर्म कृतघ्नी है। ऐसे तीन भेद कृतघ्नी के कहे हैं। सो महापाप के स्थान हैं। तातं हेय हैं। आगे विश्वासघाती का स्वरूप कहिये है। तहां परकौं विश्वास उपजावना। कहना जो मैं तेरी सहाय करूँगा। धन द्योंगा। तेरा दुख-दारिद्र हरूँगा। तू कछू उपाय मति करै। ऐसे अनेक मिष्ट वचन बोलि, विश्वास उपजाय पीछे काम पड़े नट जाय। दगा दे जाय। कहै मोतैं तौ अवार नहीं होय। ऐसे कहि ताके कार्य का घात करै। ऐसी कहै सो विश्वासघाती कहिए।

जैसे—यहां एक कल्पना करि लौकिक दृष्टान्त बनाय, विश्वासघात का लक्षण कहिए है। जैसे—एक किसान ने अषाढ़ महीना मैं नाना प्रकार खेद खाय, हल चलाय कै खेत शुद्ध कर राखे थे। सो जब भला मेघ वर्षे पीछे, सर्व खेती बार घरन तैं बीज की मोटि (गठरी) बांधि वनकौं चाले। तब एक किसानकों देखि एक दुष्ट-मनुष्य की खोपड़ी राह में पड़ी थी सो हँसती भई। तब किसान कूं आश्चर्य भया। जो ए निर्जीव-खोपड़ी हाड़ की क्यों हँसी? तब इस किसान नै कही—हे खोपड़ी! तूं क्यों हँसै है? तब खोपड़ी ने कही—तोकों देखि हँसौ हौं। मैं देवता हौं सो तेरे पै राजी भई, सो अब खेत मैं बीज बोवे मति जाय। मैं तेरे खेत में बिना बोया ही बहुत अन्न करूँगी। तब या किसाननै जानी यह देवी है। सो या मौपै राजी भई। तब किसान याके वचन का विश्वास करि घरि गया और अन्य किसान अपने खेतन में बीज बोय घर आये। पीछे दस बीस दिन गए। अपने-अपने खेत देखनेकौं सब किसान चाले। अन्न उगा देखि, राजी भए। तब यानै भी विचारी जो मेरे खेत में भी अन्न भया होय। सो ए भी देखवेकौं चल्या। सो राह मैं खोपड़ी फिर हँसी। तब किसान ने कही, क्यों हँसै है? तब कही, तोकौं देखि हँसै हूं। तू कहां जाय है? तब किसान नै कही। औरन के खेत हरे-भरे शोभा देय हैं। सो मैं अपने खेत की शोभा देखनेकौं जाऊँ हों। तब खोपड़ी कहै है। रे भाई! मैं तेरे पै तुष्टी हौं। औरन तैं बहुत अन्न तेरे खेत मैं करूँगो, सन्तोष राखि। तब किसान, खोपड़ी के वचन का विश्वास करि घरि गया। जब महीना एक-डेढ़ भया, तब सर्व किसान अपने-अपने खेतनतैं फल ले-ले अपने-अपने पुत्रन के निमित्त घर आये। तब किसान के बालक औरन पै अनेक फल देखि, रुदन करते भए। अरु फल मांगते भये। तब किसान नैं विचारी, जो औरन के फल आये, सो मेरे खेत में भी फल आये हों हैं। ऐसी जानि वनकूं खेत के फल लेने को चाला। तब राह मैं खोपड़ी हँसी। तब किसान ने कही, तू कहा हँसै है? औरन के खेतन में फल भए और सर्व के बालक खाएँ हैं और मेरे बालक फल बिना रुदन करै हैं। तब किसान के वचन सुन कर खोपड़ी हँसकैं कहती भई। भो सुबुद्धि! धीरज राखि। सोचि मति करै। मेरे वचन का कछू तो विश्वास राखि। तेरे खेत में एते फल-अन्न होयगा। जो तेरे बूतो गाड़ानितैं ढोवा भी नहीं जायगा। परन्तु विश्वास राखि, सोचि मति करै। ऐसे कही, तब फिर पीछा घर आया। जानो देव के वचन हैं, सो अन्यथा नहीं हो हैं। ऐसा विश्वास धरि

घर तिष्ठ्या। पीछे महीना दोय-एक भये और लोक अन्न कूट उड़ाय, गाड़े भरि-भरि अपने घर लाये। तब या किसान नैं विचारी, जो मेरा खेत देखौं तौ सही। तब और ही राह होय कैं, किसान खेत पै गया। सो देखै तो घास ऊँगा है। कोरे मिट्टी के ढोमा पड़े हैं। ऐसा खेत देखि किसान की छाती टूट गई। महादुखी भया। रुदन करता भया। जो वर्ष दिन की रोटी गई। अब कहा करै? तब खोपड़ी याकौं रोवता देख हँसी। तब किसान नै कही, कहा हँसै है? मैं तेरे वचन का विश्वास करि खेत मैं बीज नहीं डार्या। अब और तौ बहुत अन्न लाये, अरु मेरे खेत मैं कछू नहीं। तैंने मुझे विश्वास देय, बुरा किया। तब यह दुष्ट की खोपड़ी महाहास्य करि कहतो भई। भो भाई किसान! तू सुनि। हमनैं जीवतैं बहुतन का विश्वास देय बुरा किया था और मुए पीछे तो एक तेरा ही बुरा किया है। सा जे दुष्ट, खोपड़ी समान विश्वासघाती महापाप मूर्ति जीव सो विश्वास-घाती हैं। ए कहे जो कृतघ्नी व विश्वासघाती ते बड़े पापी हैं। इनका स्वरूप श्रुत-ज्ञान तैं पाईए है। सो श्रुत-ज्ञान उपादेय है। च्यारि गति के जीवन की आगति-जागति श्रुत-ज्ञानतैं जानिए है। सो कहिए है। तहां जिन स्थान तजि, जा स्थान मैं उपजै, सो जागति कहिये और अन्य स्थान तजि निज स्थान मैं आवै सो आगति कहिये। तहां प्रथम देवगति मैं आगति कहिये है। सो एती जायगा के देव गति मैं आय उपजैं सो कहिये है। मिथ्यादृष्टि भोगभूमियां—मनुष्य तिर्यञ्च कर्म भूमियां—मनुष्य, तिर्यञ्च, सैनी तथा असैनी ए तो सब भवनत्रिक मैं शुभ-भाव फलतैं उपजैं हैं और सम्यग्दृष्टि भोगभूमियां मनुष्य, तिर्यञ्च ए सर्व पहले, दूजे स्वर्ग पर्यन्त उपजै हैं और कर्म-भूमि के मनुष्य, स्त्री, तिर्यञ्च सोलह स्वर्ग पर्यन्त उपजैं हैं और सम्यग्दृष्टि तथा मिथ्यादृष्टि, मुनि लिङ्ग धारि ग्रैवेयक लौं जाय हैं और नव अनुत्तर अरु पञ्चपञ्चोत्तर इन चौदह विमानन मैं सम्यग्दृष्टि मुनि ही जाय हैं। इति देवगति मैं आगति। आगे देव की जागति कहिए है—च्यारि प्रकार के देव मरि कहां जाय उपजै हैं, सो जागति है। तहां भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी देव, पहले-दूजे स्वर्गवासी देव ए मरि करिपृथ्वी कायिक, अप्कायिक, वनस्पति सैनी-पंचेन्द्रिय, तिर्यञ्च और मनुष्य—इन पञ्च जगत्मैं जाय उपजैं हैं और तीसरे स्वर्ग तैं लगाय स्वर्ग पर्यन्त के देव चयकैं, मनुष्य तिर्यञ्च सैनी पंचेन्द्रिय मैं उपजैं हैं और तेरह स्वर्ग तैं लगाय नव-ग्रैवेयक पर्यन्त के देव चय करि सम्यग्दृष्टि तथा मिथ्यादृष्टि मनुष्य ही उपजैं हैं और नवग्रैवेयक तैं ऊपरले देव

चयकैं सम्यग्दृष्टि मनुष्य ही उपजैं हैं। इति देव जागति। आगे नरक की आगति-जागति कहिए है—तहां नारकी जाव मरि ऐती जगह मैं उपजैं सो कहिए है—प्रथम तैं लगाय छठे नरक पर्यन्त के जीव निकस, मनुष्य तिर्यंच कर्म-भूमि के ही होंय और सातवें नरक का निकस्या पंचेन्द्रिय-सैनी-तिर्यंच ही होय है और विशेष यह है जो पहले-दूजे-तीजे नरक का निकस्या कोई जीव सम्यग्दृष्टि तीर्थङ्कर भी होय है। चौथे नरक का निकस्या तीर्थङ्कर नहीं होय है, चरम शरीरी होय तौ होय और पञ्चम नरक का निकस्या, चरम शरीरी नहीं होय महाव्रत धरै तौ धरै और छठे नरक का निकस्या, संयमी नहीं होय हैं और विशेष एती जो नारकी, असैनी मैं नहीं उपजै हैं। इति नारकी जागति। आगे नरक मैं आगति कहिये है—नरक मैं एती जगह के जाय हैं, सो कहिये हैं—प्रथम नरक मैं तौ सम्यग्दृष्टि-मिथ्यादृष्टि मनुष्य तिर्यंच-पंचेन्द्रिय सैनी ए जाय हैं और मनुष्य, पंचेन्द्रिय-सैनी तिर्यंच अरु जल का उपज्या सर्प ए दूसरे नरक पर्यन्त जाय हैं। मनुष्य, तिर्यंच, अजगर तथा काला फणधारी सर्प ए चौथे नरक पर्यन्त उपजै हैं और मनुष्य, तिर्यंच, नाहर ए पञ्चम नरक पर्यन्त उपजै हैं और मनुष्य, तिर्यंच, स्त्री छठे नरक पर्यन्त उपजै हैं। मनुष्य अरु तिर्यंच सातवें नरक पर्यन्त उपजैं हैं। ऐसे नरक मैं आगति जानना। इति नरक में आगति। आगे मनुष्य गति मैं आगति कहिये है। मनुष्य गति मैं एती जगह के आवैं सो कहिये है। तहां सातवें नरक के निकसे और अग्निकाय, वायुकाय, भोग-भूमि के मनुष्य, तिर्यञ्च इन बिना सर्व जगह के जीव आय मनुष्य गति मैं उपजै हैं। इति मनुष्य मैं आगति। आगे मनुष्य की जागति कहिये है। तहां मनुष्य कहां-कहां जाय उपजैं, सो कहिये हैं। सो मनुष्य भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष सोलह ही स्वर्ग मैं व सर्व अहमिन्द्र देवन मैं उपजैं। सातों ही नरकों में उपजैं और पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, वनस्पति, बेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, सैनी, असैनी, तिर्यंच—इन सर्व स्थानन में मनुष्य उपजैं हैं और भोग-भूमियां मनुष्य, तिर्यंच कर्म-भूमियां मनुष्य और मोक्ष आदि सर्व स्थानक मैं मनुष्य उपजैं हैं। ऐसा तीन लोक मैं अरु च्यारि गति मैं कोई स्थान शुभ-अशुभ रह्या नाहीं जहां मनुष्य नाहीं जाय। सो मनुष्य कूं सर्व स्थान आगार (घर) है। इति मनुष्य जागति। आगे तिर्यंच की जागति कहिये है। तहाँ एकेन्द्रिय पंचस्थावर विकलत्रय ये मर कर देव, नारकी भोग-भूमिया—मनुष्य, तिर्यंच इन विषैं नाहीं उपजैं हैं। इन बिना कर्म-भूमि के मनुष्य,

तिर्यंच सम्बन्धी सर्व स्थानकन मैं उपजैं हैं। विशेष एता जो पंच स्थावरन मैं के अग्निकाय-वायुकाय के जीव मनुष्य मैं नहीं होंय। पंचेन्द्रिय असैनी तिर्यंच मर करि मन विकल्प बिना शुभ-भावन तैं भवनत्रिक मैं उपजैं हैं। विकल्प बिना अशुभ-भाव तैं मरि, प्रथम नरक पर्यन्त उपजैं हैं। भोग-भूमि बिना, कर्म-भूमि के मनुष्य-तिर्यंचन में सब स्थानकन में उपजैं हैं। सैनी पंचेन्द्रिय तिर्यंच, भवनत्रिक तैं लगाय सोलहवें स्वर्ग पर्यन्त तो देवमैं उपजैं हैं। सातों ही नरकों विषैं उपजैं हैं। कर्म-भूमि के मनुष्य, तिर्यंच, एकेन्द्रियादि पंच स्थावरन मैं विकलत्रय, सैनी, असैनी विषैं उपजैं हैं तथा भोग-भूमि के मनुष्य-तिर्यंच विषैं उपजैं हैं। ऐसी तिर्यंच की जागति कही। इति तिर्यंच की जागति। आगे तिर्यंच गति में आगति कहिये है। तहां पंच स्थावर विकलत्रय इनमें सर्व देव व सात ही नरक के और भोग-भूमियां बिना कर्म-भूमि सम्बन्धी सर्व मनुष्य-तिर्यंच उपजैं हैं। विशेष एता जो अग्नि-वायु बिना तीन स्थावरन मैं भवनत्रिक के तथा पहले-दूजे स्वर्ग के देव आय उपजैं हैं। सैनी पंचेन्द्रिय तिर्यंच में, भवनत्रिकतें लगाय बारहवें स्वर्ग पर्यन्त के देव और भोग-भूमि बिना, सात ही नरक के जीव आय उपजैं हैं और कर्म-भूमि के एकेन्द्रिय आदि विकलत्रय पंचेन्द्रिय पर्यन्त सर्व जीव एकेन्द्रिय आदि पंचेन्द्रिय तिर्यंच विषैं आय उपजैं हैं। इति च्यारि गति सम्बन्धी आगति-जागति कथन। ऐसे च्यारि गति दण्डकन का कथन श्रुत-ज्ञान तैं जानिये है। तातैं श्रुत-ज्ञान उपादेय है और इस ही श्रुत-ज्ञानतैं निमित्त-उपादान का स्वरूप जानिये है। सो ही कहिये है। प्रथम नाम—निमित्त और उपादान। अब इनका विशेष कहिये है। जो द्रव्य की शक्ति, द्रव्य ही तैं उपजै, सो तो उपादान कहिये। पदार्थ के मिलाप तैं शक्ति प्रगटै, सो निमित्त कहिये। जैसे जीव विषैं, शुभाशुभ रूप होय राग-द्वेष परिणमन की शक्ति, सो तौ जीव का "उपादान" है। जिन पदार्थन के निमित्त पाय राग-द्वेष रूप भया, सो वह पर-पदार्थ "निमित्त" है। सो इस निमित्त-उपादान तैं ही शुभाशुभ कर्म-बन्ध आत्मा कैं होय हैं। सो ही कहिये है। जैसे—जीव का उपादान भी भला होय। पूजा, दान, शील, संयम, तप, जिन-शास्त्रन का स्वाध्याय तथा सुनना तथा मुनि श्रावकादि धर्मी जीवन का संग इत्यादिक शुभ ही निमित्त होंय, तौ दीर्घ स्थिति लिये शुभ-भाव-कर्म उपजैं। ताके फल, आतमा भव-भव सुखी होय। जहां आतमा का उपादान खोटा होय। क्रोध, मान, माया, लोभ, चोरी, जुआ, पर-स्त्री, हाँसी, कौतुक, दुराचारी, सुरापायी

जीवन का सम्बन्ध आदि पापकारी निमित्त होंय, तौ आत्मा कैं दीर्घ पाप भाव-कर्म, बड़ी स्थिति लिये उपजै। ताकरि भव-भव मैं दुखी होय। कहीं उपादान तौ आत्मा का शुभ है। अरु निमित्त अशुभ होय, तौ पाप-बन्ध नहीं होय। शुभ उपादान तैं पुण्य का ही बन्ध होय है। जैसे—कोई मुनि तथा श्रावक महाधर्मात्मा, धर्म-ध्यान सहित वनादिक स्थानकन मैं तिष्ठै। तहां आय, कोई पापी उपसर्ग करै। पाण्डवन की तथा वारिषेणजी की नाईं निमित्त खोटा होय तथा सेठ सुदर्शन की नाईं निमित्त खोटा होय। तौ फल भला ही उपजै है और जहां उपादान तो खोटा, अशुभ, दगाबाजी रूप होय, क्रोध-मानादिक कषाय रूप होय! अरु निमित्त भला होय। पूजा, दान, शास्त्र सुनना-पढ़ना, तप, संयमादिक अनेक भले निमित्त होंय, तौ भी उपादान अशुभ के योग तैं पाप-बन्ध ही होय है। जैसे—कोई चोर पराया धन हरने कूं धर्मात्मा का स्वांग बनाय अनेक धर्म सेवन पूजा-पाठ, तपादिक करै है। परन्तु अशुभ उपादान के योग तैं पाप ही का बन्ध करै है। तैसे ही इस जीव के अनेक भावन की प्रवृत्ति होय है। जैसे—कहीं तौ जैसा निमित्त, तैसा ही उपादान भाव होय है। तहां तौ उत्कृष्ट शुभ-अशुभ का बन्ध और कहीं निमित्त तौ और ही और उपादान और ही, तहां फल उपादान प्रमाण होय है। तातैं विवेकी हैं। तिनकौं पर-भव सुख के निमित्त तौ भले निमित्त मिलावने। उपादान सदैव भला ही राखना योग्य है। भले निमित्त तैं शुभ उपादानवाले जीवन कैं बड़ा शुभ फल उपजै है और भले निमित्त तैं परम्पराय उपादान भी शुभ हो जाय है और खोटे निमित्त तैं उपादान भी खोटा ही होय है। सो जगत् मैं प्रसिद्ध देखिये है। भले कुल के जीव खोटे निमित्तन तैं चोर, जुआरी, कुआचारादि कुलक्षण सहित खोटे होते देखिये है और हीन कुल के उपजै जीव भली संगति तैं ऊँचे होय सुखी देखिये है। तातैं विवेकी जीवकूं निमित्त भले राखने का उपाय सदैव राखना योग्य है। निमित्त तैं उपादान की शुद्धता होय है। जैसे—अग्नि के निमित्त सुवर्ण के उपादान की शुद्धता होय है। ताम्बा आदि कुधातन के निमित्त तैं, सुवर्ण के उपादान की मलिनता होय है। ऐसे जानि, निमित्त भला ही मिलावना योग्य है। जहां-तहां निमित्त की मुख्यता है। सोही दिखाईये है। देखो आदिनाथ स्वामी, उत्कृष्ट भले उपादान के धारक, तिनके अशुभ निमित्त तैं, तियासी लाख पूर्व, कषायन मैं जाते भए। दीक्षा रूप भाव नहीं भये। तब इन्द्र महाराज ने अवधि तैं विचारी, जो तीर्थङ्कर भगवान् का सर्व आयु-कर्म पंचेन्द्रिय भोगन मैं व्यतीत भया।

श्री सुदृष्टि

अरु भगवान् कैं विरक्ति नहीं भई। सो कोई निमित्त विचारिये तब इन्द्र नै एक नीलाञ्जना नाम अप्सरा का आयु-कर्म बहुत ही अल्प जानि, इसकों आज्ञा करी। सो ये देवी ने इन्द्र की आज्ञा लेय, भगवान् के आगे अद्भुत नृत्य-गान आरम्भ्या। सो याके नृत्य कौं देखि, सर्व सभा के देव-मनुष्य आश्चर्य कूं पावते भये। जो ऐसा नृत्य इन्द्रकौं भी दुर्लभ है। ऐसे नृत्य करते समय उसका आयु पूरण भया। जिससे आत्मा तौ पर-गति गया। अरु शरीर, दर्पण की छाया के प्रतिबिम्बवत् अदृश्य होय गया। सो नृत्य का उत्सव भंग नहीं होने कूं, इन्द्र नै तत्क्षण वैसी ही देवांगना रचि दई, सो नृत्य की ताल-राग चाल भंग नहीं होने पायी। यह चरित्र सर्व सभा के जीव-मनुष्यादि थे, तिन काहूनैं नहीं जान्या। सब नै जान्या वही देवी नचै है। अरु इस चरित्र कौं भगवान् ने अवधि तैं जान्या, जो वह देवी नृत्य करती, काय तजि अन्य लोक गई। यह इन्द्रनै नई रचि दई है। अहो, संसार चपल व विनाशिक है। इत्यादिक प्रकार वैराग्य उपाय, दीक्षा धरि, ध्यानाग्नितैं कर्मनाश, सिद्ध भये। सो यहां भी देखो, निमित्त ही की महन्तता आई। तातैं सत्पुरुषन कूं अपने कल्याण कूं, कुसङ्ग हेय करि, शुभ निमित्त करना सुखकारी है। जैसे बनै तैसे ही भला निमित्त गुणकारी है। ऐसे एतौ जीव कूं जीव का निमित्त कह्या। अब पुद्गल का पुद्गल तैं निमित्त उपादान कहिये है। तहां हल्दी तौ स्वभाव तैं ही पीत है। याकौ घसिकैं जल मैं घोलिए, तौ भी पीत ही जल होय। सो ऐसे पीत जल मैं साजी डारिए, तौ साजी के निमित्त तैं सर्व जल, लाल होय है। सो लाल होयने की उपादात शक्ति तौ हल्दी की ही है। परन्तु निमित्त साजी का मिलै लाल होय है और स्फटिक मणि निर्मल है सो ताके नीचे जैसा डांक दीजिये, तैसाही मणि भासै। लाल डाक दिये, मणि लाल भासै। पीत डांक दिये, मणि पीत होय। श्याम डांक दिये, मणि श्याम होय। सो मणि, स्वभावतैं तौ महानिर्मल-श्वेत है। परन्तु जैसे डांक का निमित्त मिलै है, तैसा ही भासै है। सो लाल, पीत, श्याम होने की उपादान शक्ति तौ उस स्फटिक मणि की है। अरु निमित्त नीचले डांक का है। सो यहां भी निमित्त की प्रधानता आई और जैसे—लोहा धातु, नीच धातु है। परन्तु जब ऊँच जो पारस पाषाण का निमित्त मिलै, तब कञ्चन होय है। सो सुवर्ण होने की उपादान शक्ति तौ लोहा ही में है और धातन में नाहीं। परन्तु जब पारस का निमित्त मिलै तौ सुवर्ण होय है। सो हे भव्य! जीवतैं, जीवकूं

तरंगिणी

पुद्गल तैं पुद्गल कूं, जहां-तहां निमित्त ही की महन्तता है। तातैं विवेकीन कूं भला निमित्त मिलावना ही योग्य है। विशेष एता है जो अपने परिणामन की विशुद्धता तैं अधिक विशुद्धता का निमित्त होय तो अपना उपादान, निमित्त प्रमाण करना और अपने भावन की विशुद्धता तैं निमित्त सामान्य है, तौ अपना उपादान, निमित्त प्रमाण नहीं करना। इत्यादिक विचार है सो सम्यग्दृष्टिन कूं अपनी बुद्धि करि विचारना योग्य है। ऐसा श्रुत-ज्ञान तैं निमित्त-उपादान का स्वरूप जानिये है। तातैं श्रुत-ज्ञान उपादेय है। इति निमित्त-उपादान। आगे श्रत-ज्ञान तैं और भी सुवाणिज्य-कुवाणिज्य का स्वरूप जानिये है। सो ही कहिये है—

गाथा—हिंसावाणिज्ज हेयं, तिल धातु आदि भूमिजलखण्डो। अप्पारम्भो सुह कज्जो, विणहिंसा णित्त मादेओ ॥ ४४ ॥

अर्थ—हिंसाकारी वाणिज्य तजने योग्य है। तिल, लोह कूं आदि धातु का व्यापार, तजवे योग्य है और जामैं अल्प आरम्भ होय सो शुभ वाणिज्य करना। जामैं हिंसा नाहीं, ऐसा वाणिज्य उपादेय है। भावार्थ—जे सम्यग्दृष्टि धर्मातमा हैं। सो वाणिज्य करने मैं ऐसे ज्ञेय-हेय-उपादेय विचारैं हैं। सो दिखाईए है। तहां शुभ-अशुभ वाणिज्य का समुच्चय जानना, सो तो ज्ञेय है। ताके दोय भेद हैं। एक शुभ वाणिज्य है, एक अशुभ वाणिज्य है। तहां जो हिंसा, झूठ, चोरी दोष रहित होय, सो शुभ वाणिज्य है। हीरा, मोती इत्यादिक जवाहिरात सीधा लेना और सीधा ही देना। संचय करि बहु दिन नहीं राखना, यह निर्दोष वाणिज्य, उपादेय है। चाँदी, सुवर्ण टके, रुपये, असर्फी लेना, तैसे ही देना तथा जरकस, तास, गोटा मुकेशाद सीधे लेना तैसे ही देना, ए निर्दोष वाणिज्य, उपादेय है तथा पराया गहना राखि व्याज का वाणिज्य, सो शुभ वाणिज्य है। ए कहे जो व्यापार सो अग्नि-जल के आरम्भ रहित तौ शुभ वाणिज्य हैं और जिनमैं जल का तथा अग्नि का आरम्भ होय, तो ये आरम्भी हिंसा सहित वाणिज्य हेय हैं और सूजी आजीविका, वचन आजीविका, दृष्टि आजीविका और कष्टी आजीविका। ये च्यारि आजीविका के भेद हैं। तहां चिकन काढ़ना, कसीदा करना, वस्त्र सीवनादि, दरजी का काम जे सूजी तैं कमावैं सो सूजी आजीविका है। सो निर्दोष है, उपादेय है और लेने-देनेवाले के बीचि विषैं दूत होय व्यापार करा देना, अपने वचन ज्ञान के बल करि आजीविका पैदा करै। जैसे—लौकिक में दलाली करनेहारे, सो हिंसादि दोष रहित, शुभ वाणिज्य है, सो उपादेय है।

याका नाम वचन आजीविका है और जे अनेक रतन, अशर्फी, रुपैया परख देना। परखाई लेने की आजीविका करनी सो दृष्टि आजीविका है और अपने तनतें कष्ट करि, पराया कार्य कर देना। जैसे—लौकिक में हम्माली आदि शीश गांठि भरि धरि आजीविका करैं, सो कष्टी आजीविका है। ए कही जो च्यारि प्रकार आजीविका सो सामान्य पुण्य लगाय विशेष पुण्य पर्यन्त अरु नीच कुली तैं लगाय ऊँच कुली पर्यन्त, सामान्य ज्ञानी तैं लगाय विशेष ज्ञानी पर्यन्त जे धर्मात्मा जीव चोरी, झूठ, हिंसा आरम्भतैं भयभीति ते सन्तोषी गृहस्थ—इन च्यारि प्रकार शुभ वाणिज्य करि आजीविका करैं, सो उपादेय है। इत्यादिक किसब (व्यापार) जल, अग्नि आदिक बड़े आरम्भ रहित हैं। चोरी, झूठ, हिंसा रहित हैं। तातैं निर्दोष हैं और एही झूठ, चोरी आदि सहित होंय, तो ए ही पाप करता होंय, सो हेय होंय। जैसे—हीरा, मोती, रतन का व्यापार करनहारा, द्रव्य लगाय, लोभ निमित्त धरती खुदाय कढावै। तौ पाप-बन्ध करता, आरम्भी व्यापार होय। चाँदी सुवर्ण का वाणिज्य करनहारा, बहु आरम्भ-अग्नि तपावना, जलाना, फूंकना, धोंकनादि आरम्भ सहित होय, तौ अयोग्य है, हेय है तथा सूजीवाला पराया वस्त्रादि चोरै, तो सूजी आजीविका भी सदोष होय दलालीवाला बहुत झूठ बोलि लैने-देनेवाले का बहुत माल-धन ठिगावै, तौ वचन आजीविका मैं भी दोष लागै, पाप होय। दृष्टि आजीविकावाला अपने लोभ कूं भला-बुरा परखै, तौ चोरी के दोष सहित होय और कष्टी आजीविकावारा भी लोभाचारी होय पराये गठिया का माल लेय तौ चोर के दोष सहित होय। तातैं दोष सहित तौ सर्व ही हेय हैं। परन्तु दीर्घ तृष्णा रहित, पाप तैं डरनेहारे भव्यन कूं, रतन-सुवर्णादिक, सूजी आजीविका, दृष्टी आजीविका वचन आजीविका, कष्टी आजीविका—ए कहे जो किसब सो सुखकारी हैं। आप-परकौं हितकारी हैं। तातैं धर्मात्मा जीवन करि उपादेय हैं। यह लौकिक व्यापार कहे। अब निश्चय शुभाशुभ व्यापार कहिये है। तहां राग-द्वेष क्रोध, मान, माया, लोभादि कषाय-भाव, मिथ्यात्व-भाव निशदिन आर्तरौद्र परणति का रहना, शोक चिन्ता-भाव आदि भावन का व्यापार, सो हेय है और सम्यक् सहित आत्मिक-भाव, पर-वस्तु के त्याग का भाव, तप-संयमादि भावन की सदैव परणति, सो ए शुभ व्यापार है, निश्चय उपादेय है। ऐसे विवेकी जीवन कूं अनेक नयन करि, व्यापार भेद जानना योग्य है। इति शुभ वाणिज्य। आगे अशुभ वाणिज्य कहिये है। जहां अग्नि-जल का बहुत आरम्भ

होय। बहुत अग्नि जलावनी-बुझावनी होय, बहुत जल मथन करना होय, नाखना होय, गाले अनगाले का विचार रहित होय। जहां झूठ, चोरी, दीर्घ माया करना इत्यादिक खोटी वृत्ति का वाणिज्य होय, सो हेय है और बहुत जीवन की उत्पत्ति-मृत्यु का आरम्भ जो कि सब मैं होय, सो अशुभ-हेय है। जहां बहुत अन्न का संग्रह भण्डसाल करि बहुत दिन राखना तथा सन, चाम, केश, हाड़ादि—इन विषैं जीवन की उत्पत्ति बहुत होय है। तहां सर्दी का निमित्त पाय हिंसा बधै निर्दयी-भाव होय। तातैं हेय है और शहद, विष, फांसी का रस्सा, छुरी-कटारादि, शस्त्र, कुसी, कुदाली, फावड़ा इत्यादिक वाणिज्य हिंसा के कारण हैं। तातैं अशुभ हैं। जहां लोहा, ताम्बा, जस्ता, सोना, चाँदी, हीरादिक की खानि खुदावना तथा धरती खोदना-खुदावना के किसब, सो अशुभ हैं। खेती जोतना-जुतावना, सो हिंसा सहित तजने योग्य हैं। साजी, फिटकरी, नील, आल, फूल, कन्द, मूल इत्यादिक ए हिंसा के कारण हैं। तातैं अयोग्य हैं और भी इनकौं आदि जे पापकारी वाणिज्य होंय, सो हेय हैं। जे धर्मात्मा जीव हैं, सो दया के निमित्त ये वाणिज्य नहीं करै है। अपना धर्म निर्दोष राखनेकों सर्व दोष तजैं हैं। एते किसब वारन तैं वाणिज्य नहीं करैं तब दया-धर्म निर्दोष है, सो ही कहिए। तहां चाण्डाल कसाई चमार राह के मारनहारे भीलादिक चोर इनकौं कर्ज नहीं देय। अरु देय तौ इनके स्पर्श तैं तथा इनके विश्वास तैं अल्पकाल मैं क्षय होय। तन धनादि विनाश पावैं। पर-भवकौं पाप-बन्ध होय। तातैं इनका वाणिज्य हेय है और धोबी, लुहार, छीपी, कुम्हार, तीर, तुपकादि (बन्दूक) शस्त्रन के करनहारे इत्यादिक हिंसा के अनुमोदनहारे हैं, सो इनका वाणिज्य हेय कह्या है। ऐसे कहे जे किसब तिन सबकूं सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा दया-धर्म पालक जिनाज्ञा प्रतिपालक करुणानिधान उज्ज्वल-धर्म का दास इन किसबन मैं चौगुणे होते होंहि तौ भी नहीं करै। आप धर्मात्मा पर-भव सुख का लोभी इन लोक निन्दाकों बचाय यश का इच्छुक लोभ के वशीभूत होय कैं कुवाणिज्यन का विश्वास अपने घर मैं नहीं आवने देय है। ऐसा वाणिज्य भेद श्रुत-ज्ञान तैं जान्या। तातैं श्रुत-ज्ञान उपादेय है। इति कु-वाणिज्य। ऐसे वाणिज्य में ज्ञेय-हेय-उपादेय कही। आगे इसही श्रुत-ज्ञान का जघन्य मध्यम उत्कृष्ट करि तीन प्रकार स्वरूप कहिये है। तहां सर्व ज्ञान तैं छोटा सो तौ जघन्य जानना और सर्व द्वादशांग प्रकीर्णादि श्रुत-ज्ञान सो

२५३ तरंगिणी

उत्कृष्ट जानना और मध्य के अनेक भेद जानना। ऐसे तीन भेद रूप है, सो याका स्वरूप आगे कहेंगे। मूल श्रुत-ज्ञान है ताके दोय भेद हैं। एक तो अक्षरात्मक एक अनक्षरात्मक। तहां अक्षर छन्द पद काव्य गाथा फांकी आदि शब्द तैं उत्पन्न भया सो अक्षरात्मक श्रुत-ज्ञान है और भाव ही तैं उपजै अक्षर रूप नाहीं, सो अनक्षर श्रुत-ज्ञान है। सो एकेन्द्रियादिक पंचेन्द्रिय पर्यन्त सर्व ही जीवन कै होय। परन्तु इस अनक्षरात्मक ज्ञान तैं कछु व्यवहार प्रवृत्ति नाहीं। जीव के भाव विचार की सो ही जीव जानै तथा केवली जानैं। तातैं इसकी मुख्यता नहीं लई और दूसरा अक्षरात्मक-ज्ञान है। तातैं कर्म-धर्म कार्यन की प्रवृत्ति होय है। जातैं लौकिक मैं लेने-देने रूप खाता रोजनामचादि सर्व व्यवहार कार्य होय हैं और धर्म-शास्त्र का पठन-पाठन प्रवृत्ति सो भी अक्षरात्मक-ज्ञान तैं होय है। ताकै बीस भेद हैं—सो ही कहिए है। उक्तञ्च श्रीगोम्मटसारजी सिद्धान्त—

गाथा—पज्जायक्खर पदसंघादं पडिवत्ति आणिजोगं च। दुगवार पाहुडंच य पाहुडयं वत्थु पुव्वं च ॥ ४५ ॥

अर्थ—पर्याय-ज्ञान, अक्षर-ज्ञान, पद-ज्ञान, संघात-ज्ञान, प्रतिपत्तिक-ज्ञान, अनुयोग-ज्ञान, प्राभृतक-प्राभृतक-ज्ञान प्राभृतक-ज्ञान, वस्तु-ज्ञान और पूर्व-ज्ञान—ए दश भेद भये। सो इन दशन के संग समास लगाय लेना जैसे—पर्याय पर्यायसमास ऐसे सर्व जगह लगाय बीस भेद होय हैं। सो ए बीस भेद अक्षरात्मक श्रुत-ज्ञान के जानना। अब श्रुत-ज्ञान काहे कौं कहिये है। ताका स्वरूप कहैं है। सो अक्षर विषैं जो अर्थ होय ताकूं जानने रूप जो भाव सो श्रुत-ज्ञान कहिये। ता श्रुत-ज्ञान के ए बीस भेद हैं। तातैं इस ज्ञान की घातनहारी वरणी सो भी बीस भेद रूप परिणमि बीस ही भेदरूप श्रुत-ज्ञान कूं घातैं हैं। तातैं श्रुत-ज्ञानावरणी के भी बीस भेद जानना। अब इन बीसन का सामान्य अर्थ कहिए है। प्रथम पर्याय-ज्ञान जघन्य भेद है। सो अक्षर के अनन्तवें भाग ज्ञान है। इस ज्ञान का आवरण इस ज्ञानकूं घात सकता नाहीं, ऐसा ही अनादि स्वभाव, केवलज्ञान में भास्या है। जो कदाचित् इस ज्ञानकौं भी आवरण घातै, तौ ज्ञान का अभाव होय और ज्ञान-गुण के अभाव तैं, गुणी ए आतमा का अभाव होय और आतमा का अभाव भए संसार च्यारि गति का अभाव होय। सो संसार का अभाव तौ कबहूँ होता नाहीं। तातैं आत्मा के सद्भावतें ज्ञान का सद्भाव है। सो सर्व श्रुत-ज्ञान केवलज्ञानादि सर्व ज्ञान कौं आवरण घातै। परन्तु इस अक्षर के अनन्तवें भाग ज्ञान कौं नहीं घातै है। तातैं यह ज्ञान निरावरण सदैव

रहै है। सो यह जघन्य-ज्ञान कौन समय होय है ? सो कहिए है। सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक के उपजने के पहले समय पर्याय नाम जघन्य-ज्ञान होय है। सो सूक्ष्म निगोदिया अपने योग्य एक अन्तर्मुहूर्त के बटवारे में छः हजार बारह क्षुद्र-भव तिनमैं जन्मता-मरता अत्यन्त संक्लेशिता रूप भ्रमण करता अन्य के क्षुद्र-भव विषैं वक्रता लिए जो विग्रह गति करि जन्म धरया होय ता वक्र गति के पहले समय में जघन्य-ज्ञान होय है। तिसही जीवकैं ता समय स्पर्शन इन्द्रिय का जघन्य मतिज्ञान है। तिसही जीवकैं ता समय जघन्य अचक्षु दर्शन होय है। इहां बहुत क्षुद्र-भव के धरते-धरते बधी जो संक्लेशता तिन दुखरूप परिणामनतैं निमत्तपाय तीव्र अनुभाग लिए ज्ञानावरणादि कर्मन का उदय होते महादुखरूप क्षुद्र-भवों का अन्त क्षुद्र-भव का प्रथम समय विषैं पर्याय-ज्ञान के अनन्तवें भाग जघन्य-ज्ञान कह्या है। यह ज्ञान अविनाशी है। याका कबहूं नाश नाहीं। ऐसा नियम जानना। पीछे द्वितीयादि समयन में ज्ञान बधता होय है। सो इस जघन्य-ज्ञान विषैं अनन्त भाग वृद्धि, असंख्यात भाग वृद्धि, संख्यात भाग वृद्धि, संख्यात गुण वृद्धि, असंख्यात गुण वृद्धि, अनन्त गुण वृद्धि, यह षट् स्थानरूप महान वृद्धि सम्भवें अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद लिए अंश हैं। इहां प्रश्न—जो जघन्य-ज्ञान में अनन्त भाग कैसे सम्भवैं ? ताका समाधान जो अनन्त के अनन्त ही भेद है। तहां चौदहा-धारा के कथन में द्विरूपवर्गधारा विषैं कथन किया है जो अनन्तानन्त वर्गस्थान गए पीछे सर्व जीव राशि का प्रमाण होय है और जीवराशि तैं अनन्तगुणी राशि पुद्गल है और पुद्गल राशि तैं अनन्त गुणी राशि, तीन काल के समय हैं और सर्व काल समय राशितैं सर्व आकाश प्रदेश राशि अनन्त गुणी है और सर्व आकाश प्रदेश राशि तैं अनन्तानन्त वर्ग राशि गए सूक्ष्म निगोदिया जीव के जघन्य-ज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदन का प्रमाण होय है। ऐसा आगम में कह्या है। तातैं यामैं अनन्तभाग वृद्धि सम्भवै है ऐसा यह पर्याय-ज्ञान प्रथम भेद जानना।१। अब यातैं अनन्तानन्त अविभाग प्रतिच्छेद बधैं तब पर्याय समास का प्रथम भेद होय। तातैं अनन्तानन्त अविभाग प्रतिच्छेद बधैं तब पर्याय समास का दूसरा भेद होय। ऐसे ही अनन्तानन्त अविभाग प्रतिच्छेद बधैं। एक-एक स्थान बधैं सो तीन स्थान पांच आदि असंख्यात लोक प्रमाण षट् स्थान पतित वृद्धि होय तब तांई पर्याय समास के भेद होय हैं। सो वृद्धि का अनुक्रम ऐसा है जो अनन्त का प्रमाण में तो जीवराशि जानना।

असंख्यात के प्रमाण में असंख्यात लोक प्रमाण जानना और संख्यात वृद्धि में उत्कृष्ट संख्यात है। ऐसी अधिकता-हीनता करि षट् गुण हानि-वृद्धि जानना। ऐसे षट् स्थान पतितन की हानि-वृद्धि होते असंख्यात लोक की अन्त की हानि-वृद्धि पूरी होते एक भेद घाट पर्यन्त सर्व ए पर्याय समास ज्ञान के भेद जानना। २। आगे अक्षर-ज्ञान कहिये है। सो वय पर्याय समास के अन्त भेद मैं एक भेद और मिलाईये तब अक्षर-ज्ञान है। सो यह अर्थाक्षर नाम ज्ञान है। सो सर्व श्रुत-ज्ञान के संख्यातवें भाग यह अक्षर-ज्ञान है।३। और याके आगे एक-एक अक्षर-ज्ञान की बधवारी होतैं एक अक्षर घाटि पद अक्षर पर्यन्त ज्ञान बधै, वहां लौं अक्षर-समास-ज्ञान कहिये। ४। आगे या अक्षर-समास-ज्ञान के अन्त भेद में एक अक्षर और मिलाये पद-ज्ञान होय है। ५। आगे पद-ज्ञान का प्रमाण कहिये है। सो यह तीन प्रकार है—अर्थ-पद, प्रमाण-पद और मध्यम-पद—ये तीन भेद हैं। तहां ऐसा कहना जो "अग्निमानय"। याके पद हैं, दोय अग्निम और आनय। याका अर्थ ऐसा जो अग्नि आनि देओ। इत्यादिक अर्थ जिन अक्षरनतैं निपज, सो अर्थ पद कहिये और कहिये जो "नमः श्रीवर्द्धमानाय"। याका अर्थ यह जो श्रीवर्द्धमान स्वामी को नमस्कार होहु। यह आठ अक्षरन का पद भया। सो याका नाम प्रमाण पद है और सोलासौ चौंतीस कोड़ि तियासी लाख सात हजार आठसौ अठ्यासी अपुनरुक्त अक्षरन का एक पद होय। सो यह मध्यम पद है। ५। इस पद के ऊपर एक-एक अक्षर ज्ञान बधता-बधता एक पद जितने अक्षर बधैं तब पद ज्ञान दूना होय है। यातें एक-एक अक्षर और बढ़्या सो बधते-बधते एक पद अक्षर बधैं, तब ज्ञान तीन गुणा होय। ऐसे ही अनुक्रमकौं लिये एक-एक अक्षर बढ़ते पद होंय तब चौगुणा पद ज्ञान, पंचगुणा, षट् गुणा ऐसे ही संख्यात हजार पद ज्ञान जितने अक्षर में एक अक्षर ज्ञान घटाय तहां तांई पद समास के भेद जानना। ६। या राशि विषैं एक अक्षर और मिलाये संघात-ज्ञान होय है। ७। सो इस ज्ञानतैं च्यार गति में तैं एक गति निरूपण सम्पूर्ण करैं, सो संघात नाम श्रुत-ज्ञान है। बहुरि इस संघात-ज्ञान के ऊपर एक-एक अक्षर का अनुक्रम लिये बढ़ते-बढ़ते पद होंय। अनेक पदन का समूह संघात, याही अनुक्रम करि एक संघात, दोय संघात, तीन, च्यारि आदि संघात, हजार संघात होंय। तहां अन्त का संघात विषैं एक अक्षर घाटि पर्यन्त, संघात समास के भेद हैं। ऐसे संघात समास जानना।८। अब इस उत्कृष्ट संघात समास विषैं एक अक्षर ज्ञान और बढ़ाइए तब प्रतिपत्तिक

नाम श्रुत-ज्ञान हो है। या प्रतिपत्तिक श्रुत-ज्ञान का धारी च्यारि गति का स्वरूप यथावत् व्याख्यान करै, सो प्रतिपत्तिक श्रुत-ज्ञान कहिये। ९। इस प्रतिपत्तिक श्रुत-ज्ञानतैं एक-एक अक्षर बधता पद होय है। पदतैं बधतैं-बधतैं संख्यात हजार पद बधे संघात होय, संख्यात हजार संघात बधते एक प्रतिपत्तिक श्रुत-ज्ञान होय और संख्यात हजार प्रतिपत्तिक श्रुत-ज्ञान के अन्त भेद मैं एक अक्षर घटि होय तहां तांई प्रतिपत्तिक समास नाम श्रुत-ज्ञान हो है।१०। आगे इस प्रतिपत्तिक समास के अन्त भेद में एक अक्षर और मिलाइये तब अनुयोग नाम श्रुत-ज्ञान होय है। सो इस तैं चौदह मार्गणा का स्वरूप भले प्रकार कह्या जाय है। यह अनुयोग नाम श्रुत-ज्ञान है।११। आगे इस अनुयोग के एक-एक अक्षर ज्ञान बधतैं पूर्ववत् अनुक्रमतैं पद ज्ञान पदतैं संघात प्रतिपत्तिक अनुयोग सो च्यारि आदि अनुयोग विषैं अन्त भेद में एक अक्षर घाटि तांई अनुयोग समान श्रुत-ज्ञान होय है। १२। ऐसे अनुयोग समास के अन्त भेद विषैं एक अक्षर और मिलाये प्राभृतक-प्राभृतक-ज्ञान होय है। १३। इस प्राभृतक-प्राभृतक के ऊपरि एक-एक अक्षर बधतैं-बधतैं पूर्ववत् अनुक्रमतैं पद संघात, प्रतिपत्तिक अनुयोग प्राभृतक-प्राभृतक ऐसे अनुक्रमतैं चौईस प्राभृतक-प्राभृतक होंय। तहां अन्त भेद में एक अक्षर घटता रहै यहां तांई प्राभृतक-प्राभृतक समास ज्ञान होय है। १४। आगे इस प्राभृतक-प्राभृतक समास विषैं एक अक्षर और मिलाइये तब प्राभृतक-ज्ञान होय है।१५। भावार्थ—एक प्राभृतक के चौईस प्राभृतक-प्राभृतक अधिकार होय हैं और इस प्राभृतक ऊपरि एक-एक अक्षर की बधवारी लिये, पद संघातादि अनुक्रमतें बधवारी लिये चौवीस प्राभृतक होंय। तहां अन्त के भेद में एक अक्षर घटता रहै तहां तांई प्राभृतक समास के भेद जानना।१६। आगे इस प्राभृतक समास मैं एक अक्षर ज्ञान और मिलाये वस्तु नाम श्रुत-ज्ञान होय है।१७। आगे इस वस्तु ज्ञान पै एक अक्षर बधतैं-बधतैं पद संघातादि सर्व अनुक्रम पूर्ववत् करि वृद्धि होते, दश आदि वृद्धि होते अन्त भेद में एक अक्षर घटै, तब तांई वस्तु समास श्रुत-ज्ञान है।१८। आगे इस वस्तु समास में एक अक्षर और बधाइए तब पूर्व नाम श्रुत-ज्ञान होय है।१९। इस ही पूर्व में चौदह भेद है तिनका स्वरूप आगे कहि आये हैं। तातैं यहां नहीं कह्या है और पूर्व ज्ञान के ऊपर एक-एक अक्षर ज्ञान बधतैं-बधतैं पूर्व अनुक्रमतैं पद संघातादि अनुक्रमतैं एक अक्षर घाटि श्रुत-ज्ञान पर्यन्त, पूर्व समास है।२०। ऐसे बीस भेद श्रुत-ज्ञान के कहे।

विशेष इनका श्री गोम्मटसारजी के श्रुत-ज्ञानाधिकारतैं जानना। ऐसे यह श्रुत-ज्ञान कह्या। सो यह श्रुत-ज्ञान, केवलज्ञान की-सी महिमाकौं धरै है। केवलज्ञान तौ प्रत्यक्ष है। अरु श्रुत-ज्ञान परोक्ष है। परन्तु केवलज्ञान समान, लोकालोक तीन काल सम्बन्धी सकल-तत्त्व-प्रकाशी है। यहां प्रश्न—जो केवलज्ञान तौ अनन्त है। सो अनन्त पदार्थन में अनन्त अर्थ रूप होय प्रवर्तै है और श्रुत-ज्ञान संख्यात अक्षरमयी है। सो केवलज्ञान की बरोबर कैसे सम्भवै ? ताका समाधान—जो हे भाई ! तेरी बात प्रमाण है। परन्तु तू चित्त देय सुनि। या प्रश्न का उत्तर धारण किये सम्यक्त्व हो है। हे भव्य ! केवलज्ञानतैं कछू छिपा नाहीं। मूर्ति-अमूर्ति पदार्थ सर्व प्रकाशै। ऐसा केवलज्ञान लोकालोक तीन काल का प्रकाशनहारा है। सो जे-जे पदार्थ केवलज्ञान में भास्या, सो सर्व रहस्य केवली के मुखतैं खिरच्या, सो ही गणधर देव नैं प्रगट करि उपदेश दिया। सो मूर्ति-अमूर्ति द्रव्यन का स्वरूप, तीन लोक तीन काल सम्बन्धी रचना, श्रुत-ज्ञान के द्वारा सर्व कही। ताकौं भव्य सुनि-सुनि रहस्य पाय, मोक्ष-मार्ग पावते भये। तातैं श्रुत-ज्ञान कूं केवलज्ञान समान कह्या और भी देखो, हे भव्य ! हो सुनो। जो केवलज्ञान जाकैं होय, सो केवली कहावै है। जाकैं सर्व श्रुत-ज्ञान हो, तो यतीनाथ श्रुत-केवली कहावैं हैं। तातैं भी केवलज्ञान समान कह्या। ऐसा जानना।

इति श्री सुदृष्टि तरङ्गिणी नाम ग्रन्थ के मध्य में सामान्य श्रुतज्ञान वर्णन करनेवाला उगणीसवाँ पर्व सम्पूर्ण भया ॥ १९ ॥

आगे अवधिज्ञान का स्वरूप कहिये है—

गाथा—देसा पम्म सव्वा तिय भेयावधिणाण जिण भणियं। जाणय मुत्ती दव्वं तीताणागत वत्तमाणाय ॥ ४६ ॥

अर्थ—देशावधि, परमावधि और सर्वावधि—ए तीन भेद अवधिज्ञान, जिनदेव नैं कह्या है। सो यह ज्ञान अतीत, अनागत और वर्तमान, तीन काल सम्बन्धी मूर्तिक द्रव्यकौं जानैं है। भावार्थ—अवधिज्ञान मूर्तिक पदार्थों को जानै है। सो अतीतकाल मैं मूर्तिक पदार्थ जैसे-जैसे परिणमैं। स्पर्श के विषय रूप, रसना के विषय रूप, नासिका के विषय रूप, नेत्र के विषय रूप, कर्ण के विषय रूप, स्थूल सूक्ष्म रूप, जे-जे पुद्गल स्कन्ध परिणमैं। सो-सो अपने-अपने विषय प्रमाण सर्व कूं अवधिज्ञान जानै है और आगामी काल में मूर्तिक पदार्थ जैसे परिणमैंगे, सो तिन सबकूं अवधिज्ञान जानै है और वर्तमान काल सम्बन्धी जो पदार्थ, तीन लोकमैं जैसे-जैसे

परिणमते हैं। तिन सबकूं अपने विषय प्रमाण क्षेत्र काल की अवधिज्ञानी जानें हैं। ऐसे अतीत अनागत वर्तमान काल सम्बन्धी द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपने विषय योग्य दूरवर्ती तथा नजदीकवर्ती सर्व पदार्थनकूं, अवधिज्ञानी जानैं। सो अवधिज्ञान तीन प्रकार है। सो ही कहिये है—देशावधि, परमावधि और सर्वावधि। तहां देशावधि के षट् भेद हैं। तिनकूं कहिये है। अनुगामी, अननुगामी, वर्धमान, हीयमान, अवस्थित अरु अनवस्थित—ए षट् भेद हैं। अब इनका सामान्य लक्षण कहिये है। जो अवधिज्ञान जिस पर्याय में भया, तामैं आयु पर्यन्त रहै, अर्थ—वा ए जीव परगति जाय, तब भी याकी संग पर-गति मैं जाय, सो अनुगामी कहिये। १। जो अवधिज्ञान भले निमित्त पाय, जा पर्याय व जा स्थान में भया, सो ताही पर्याय व ता स्थान पर्यन्त रहै। परन्तु अन्य गति व अन्य स्थान में संग नहीं जाय, सो अननुगामी कहिये। २। और जा अवधिज्ञान तैं जबतैं शुभ निमित्त भया, तबतैं पर्याय पर्यन्त अपनी स्थिति प्रमाण काल तांई समय-समय विशुद्धता सहित, ज्ञान के अंश वृद्धि ही भया करैं, सो वर्द्धमान अवधिज्ञान जानना। ३। जो अवधिज्ञान, महाविशुद्धता के प्रभावतैं भला निमित्त पाय जिस जीवकैं जा समय भया, तबही तैं अवधिज्ञान के अंश घटते जांय सो पर्याय पर्यन्त घट्या ही करैं। अपने काल स्थिति की मर्यादा में घट चुकैं, सो हीयमान अवधिज्ञान जानना। ४। और जो अवधिज्ञान जबतैं भया तबतैं जैसा का तैसा रहैं। अपने काल-प्रमाण जेती स्थिति या ज्ञान की रहै, तेते अंश घटैं-बढ़ैं नाहीं। जा समय उपजा था, तेते ही अंश रहैं, सो अवस्थित अवधिज्ञान कहिये।५। और जो अवधिज्ञान जबतैं भया, तबतैं कबहूँ तौ घटै, कबहूं बढ़ै, ऐसे चपल रह्या करै, सो अनवस्थित अवधिज्ञान कहिये। ६। ऐसे इस देशावधि के षट् भेद हैं। तहां अनुगामी के तीन भेद हैं। एक स्व-स्थान अनुगामी, एक पर-स्थान अनुगामी, एक उभय अनुगामी। तहां जो अपने क्षेत्र में ही यावज्जीवन अपने साथ जावे अथवा भवान्तर में जावे, उसे स्व-क्षेत्र अनुगामी कहै हैं। जो पर-क्षेत्र में यावज्जीवन अथवा भवान्तर में अपने साथ जावे, उसे पर-क्षेत्रानुगामी कहते हैं तथा जो स्व-क्षेत्र व पर-क्षेत्र में यावज्जीवन व भवान्तर में साथ जावे उसे उभयानुगामी कहते हैं। अननुगामी भी तीन प्रकार है—स्व-क्षेत्राननुगामी, पर-क्षेत्राननुगामी और उभयाननुगामी। तहां जो स्व-क्षेत्र में भी आयु पर्यन्त अथवा भवान्तर में साथ न जावे, उसे स्व-क्षेत्राननुगामी कहते हैं। जो पर-क्षेत्र में और भवान्तर में साथ न जावे उसे पर-क्षेत्राननुगामी कहते हैं तथा

जो स्व-क्षेत्र में आयु पर्यन्त अथवा भवान्तर में और पर-क्षेत्र में साथ न जावे, उसे उभयाननुगामी कहते हैं। ए तीन भेद अननुगामी के कहै। अब आगे क्षेत्र-काल अपेक्षा अवधिज्ञान की अधिकता तथा हीनता रूप कथन करै हैं, सो सुनो। जो जीव अवधि तैं क्षेत्र-अपेक्षा जितने क्षेत्र की जानै है, सो काल-अपेक्षा थोरे काल की जानै है। ऐसे और भेद कहिये हैं—तहां जघन्य अवधि का धारी, जो जीव क्षेत्र अपेक्षा अंगुल के असंख्यातवें भाग क्षेत्र की जानैं, सो ही जीव काल अपेक्षा, आवलि के असंख्यातवें भाग काल की जानैं, सो भी असंख्यात समय जानना और जो जीव अंगुल के संख्यातवें भाग क्षेत्र की जानैं, सो ही जीव काल अपेक्षा, आवलि के संख्यातवें भाग काल की जानैं। ए प्रथम भेद है। १। और दूसरे भेद में जो जीव अंगुल मात्र क्षेत्र की जानै, सो ही जीव काल अपेक्षा, किञ्चत् न्यून आवलि मात्र काल की जानैं। २। और तीसरे भेद में क्षेत्र अपेक्षा, जो जीव सात आठ अंगुल के क्षेत्र की जानै, सो ही जीव काल अपेक्षा, सात आठ आवली काल की जानै।३। और चौथे भेद में क्षेत्र अपेक्षा, जो जीव एक हाथ क्षेत्र की जानै, सो ही जीव काल अपेक्षा, अन्तर्मुहूर्त काल की जानै है। ४। और पञ्चम भेद में क्षेत्र अपेक्षा जो जीव एक कोस क्षेत्र की जानै, सो ही जीव काल अपेक्षा, अन्तर्मुहूर्त काल की जानै। ५। और छठे भेद में क्षेत्र अपेक्षा जो जीव एक योजन क्षेत्र की जानै, सो ही जीव काल अपेक्षा, किञ्चित् न्यून अन्तर्मुहूर्त काल की जानै। ६। और सातवें भेद में क्षेत्र अपेक्षा, जो जीव पच्चीस योजन की जानै, सो ही जीव काल अपेक्षा, किंचित् न्यून एक दिन-काल की जानै। ७। और आठवें भेद में क्षेत्र अपेक्षा, जो जीव भरत क्षेत्र प्रमाण क्षेत्र की जानैं, सो ही जीव काल अपेक्षा पंच दिन काल की अगला-पिछली जानै है। ८। और जे जीव क्षेत्र अपेक्षा, जो जीव जम्बूद्वीप प्रमाण क्षेत्र की जानै, सो ही काल अपेक्षा, किंचित् न्यून एक मास की जानै है।९। और दशवें भेद में क्षेत्र अपेक्षा, जो जीव अढ़ाई द्वीप क्षेत्र की जानैं, सो ही जीव काल अपेक्षा, एक वर्ष काल की जानै है।१०। और ग्यारहवें भेद में क्षेत्र अपेक्षा, जो जीव कुण्डलगिरि ग्यारहवें द्वीप पर्यन्त क्षेत्र की जानैं, सो ही जीव काल-अपेक्षा, कछू घाटि आठ सात वर्ष की जानै।११। और बारहवें भेद में क्षेत्र अपेक्षा, जो जीव संख्यात द्वीप समुद्र क्षेत्र की जानैं, सो ही जीव संख्यात वर्ष काल की जानै है। १२। और तेरहवें भेद में जो जीव क्षेत्र अपेक्षा, असंख्यात योजन की जानैं, सो ही जीव काल अपेक्षा, असंख्यात वर्ष-काल की अगली-पिछली जानै।१३।

और चौदहवें भेद में जो जीव तेरहवें ते असंख्यात गुणी क्षेत्र की जानं, सो ही जीव काल अपेक्षा, तेरहवें ते असंख्यात गुणे काल की अगली-पिछली जानै है।२४। ऐसे चौदहवें तैं पन्द्रहवां।२५। पन्द्रहवें तैं सोलहवां।२६। सोलहवें तैं सत्तरहवां।२७। सत्तरहवें तैं अठारहवां।२८। अठारहवें तैं उगणीसवां।२९। ए परस्पर क्षेत्र-काल अपेक्षा असंख्यात-असंख्यात गुणे बधते जानना। ऐसे करतै अन्त के भेद में देशावधि का उत्कृष्ट क्षेत्र लोक प्रमाण है और काल-अपेक्षा एक समय घाटि एक पल्य काल की अगली-पिछली जानै है। ऐसे त्रिकाल सम्बन्धी क्षेत्र काल का विषय प्रमाण जघन्यतैं लगाय उत्कृष्ट पर्यन्त देशावधि का विषय कह्या है। सो अपने विषय योग्य क्षेत्र काल में प्रवर्त्तते पुद्गल स्कन्धन की संसारी जीवन की पर्याय पलटणि रूप क्रिया कूं जानै है। इस तीन सौ तेतालीस राजू लोक क्षेत्र में जीव-अजीव पर्याय जैसे-जैसे भई आगे होयगी और हैं। सो तीन काल सम्बन्धी अपने विषय प्रमाण क्षेत्र-काल की जानै, सो देशावधि कहिए। इति देशावधि। आगे परमावधि का संक्षेप कहिये है। परमावधिवाला यति देशावधितैं असंख्यात गुणी क्षेत्र काल की जानै है सो क्षेत्र-अपेक्षा तौ ऐसे-ऐसे असंख्याते लोक क्षेत्र की जानैं है और काल की अपेक्षा सागर की अगली-पिछली जानै है। इति परमावधि। आगे सर्वावधि का संक्षेप कथन कहिये है। सो परमावधितैं असंख्यात गुणा क्षेत्र काल की सर्वावधिधारक यति जानैं। इति सर्वावधि। ऐसे अवधिज्ञान के तीन भेद कहे, सो यह अवधि दोय प्रकार है—एक भव-प्रत्यय और एक गुण प्रत्यय। तहां गति स्वभावतैं जन्म धरते अवधि होय, सो भव-प्रत्यय कहिये। सो देव, नारकीकैं तथा तीर्थङ्करकैं होय, सो भव-प्रत्यय है और जहां-तहां तप संयमतैं तथा भगवान के दर्शनतैं स्तुतितैं परिणामन की विशुद्धतातैं अवधिज्ञान होय, सो गुण-प्रत्यय है। ऐसे सामान्य अवधिज्ञान का स्वरूप जानना। इति अवधिज्ञान संक्षेप सम्पूर्ण। आगे मन:पर्यय-ज्ञान का सामान्य भाव कहिये है—

गाथा—मण पज्जयणाणावण्णी, खयोपसमज्जस्स होइ सो जीवो। मण पज्जयक्खु पावई, दो भेयो होइ उज्जु विउलमयी॥४७॥

अर्थ—मन:पर्यय-ज्ञानावरणीय ताका क्षयोपशम जा जीव कैं होय, सो मन:पर्यय-ज्ञान पावै। सो ज्ञान ऋजुमति, विपुलमति भेद करि दोय प्रकार है। भावार्थ—जिस जीवकै मन:पर्यय ज्ञानावरणी का क्षयोपशम होय है। ताके दोय प्रकार—ऋजुमति और विपुलमति मन:पर्यय ज्ञान होय है। सो इनका विषय कहिये है। तहां

कुटिलता रहित सरल मन, सरल वचन और सरल काय करि किये जो कार्य नाना प्रकार विकल्प तीन काल सम्बन्धी तिनकूं जानै। सो ऋजुमति मनःपर्यय ज्ञान है। इति ऋजुमति मनःपर्यय। आगे विपुलमति मनःपर्यय का संक्षेप कहिये है। तहां सैनी के मन सरल, वचन सरल, काय सरल किये जो विकल्प तिन सबकौं जानै और मन कुटिल, वचन कुटिल अरु काय कुटिलता करि किये जो विकल्प रूप कार्य, तिन सबकूं जानैं, सो विपुलमति मनःपर्यय-ज्ञान हैं। इति विपुलमति। तहां ऋजुमति तौ प्रतिपत्ति है, सो होय भी अरु जाता भी रहै। भये पीछेतैं जाता रहै, सो प्रतिपत्ति कहिये। भावार्थ—जिस यतीश्वरकै ऋजुमति ज्ञान होय। अरु वह मुनीश्वर पर्याय छोड़ि देवलोक में असंमयी उपजै तौ यह ज्ञान पर पर्याय में नाहीं जाय। उस मुनि की पर्याय ही मैं रह्या। देव भये जाता रहै नाहीं। तातैं ऋजुमति प्रतिपत्ति है और जा यतीश्वरकैं वि ुलमति-ज्ञान होय, सो जाता नाहीं। इस ज्ञान सहित केवलज्ञान होय, सो ता केवलज्ञान मैं मिलि जाय है। तातैं यह विपुलमति-ज्ञान विशुद्ध है। चरम-शरीरिन कैं होय। ए ज्ञान भये संसार भ्रमण नाहीं होय है। ऐसा जानना। यहां मनःपर्यय-ज्ञानी का विषय काल अपेक्षा उत्कृष्ट असंख्यात काल समय की जानैं और क्षेत्र अपेक्षा पैंतालीस लाख योजन अढ़ाई द्वीप क्षेत्र की जानैं विशेष एता जो मनुष्य लोक तौ गोल है। अरु मनःपर्यय ज्ञान का विषय चौकोर है। तातैं मनुष्य लोकवारे च्यारूँ कोण्यां मैं तिष्ठते देव तथा तिर्यंच तिनके मन विकल्प को भी जानैं। ऐसे उत्कृष्ट मनःपर्यय-ज्ञान का विषय कह्या। इति मनःपर्यय-ज्ञान का संक्षेप वर्णन। आगे केवलज्ञान संक्षेप वर्णन—

गाथा—तिक्काले तियलोये, खट दव्वं जहा य पण्णत्ती। जाणय केवलणाणय, जुगपद्देकंकालम्हि बिण खेदो ॥ ४८ ॥

अर्थ—तीनकाल और तीन लोक बिषैं द्रव्य जैसे-जैसे परिणमैं, तिनकौं केवलज्ञानी निरखेद एके काल सबकूं युगपत् जानैं है। भावार्थ—सर्व ज्ञानावरण कर्मके क्षयसे उत्पन्न भया जो केवलज्ञान, सो क्षायिक ज्ञान है। सो याके होतें अनन्त अलोकाकाश ताके मध्यभाग तिष्ठता असंख्यात प्रदेशरूप लोककाश ता विषैं तीन लोक रचना षट् द्रव्य करि बनी है। ता विषैं त्रस नाड़ी है। ता विषैं देवादि च्यारि गति अनन्तकाल की ध्रुव बनी हैं। तिन मैं संसारी जीव, अथिर पर्याय धारी उपजै हैं और यह लोक, षट् द्रव्यन करि भऱ्या है। सो ए षट् द्रव्य जैसे-जैसे परिणमै, तिन सर्वकूं केवलज्ञानी जानैं हैं। सो कहिये है। जीव द्रव्य अनन्त हैं। सो अनन्ते

जीव, समय-समय जसे-जैसे राग-द्वेष भाव क्रोध मान-माया लोभ भाव, हास्य-भय शोकादि कषायनके अंश सहित ज्यौं-ज्यौं परिणाम्या ताकूं केवलज्ञानी युगपत् जानै हैं। एक-एक जीवने अनन्तकाल संसार-भ्रमण करतैं, एक-एक पर्याय च्यारि गति सम्बन्धी अनन्त-अनन्त धरी हैं, सो केवलज्ञानी जानैं है। इस जीवने देव पर्यायि अनन्त बार पाई, सो देवगति मैं नाना भोग भोगते भया जो शुभाशुभ भावनका परिणामन ताकूं केवली जानै हैं। अनन्तबार इस जीवनैं पाप भावनतैं नरक पर्यायके दुख देखे तिनमैं भये जो संक्लेश भाव तिनकूं केवलज्ञान जानै है। पशु पर्याय एकेन्द्रियादि पंचेन्द्रिय पर्यन्त अनन्तबार पाई। तिनमैं भये जो राग-द्वेष भाव तिनकूं केवलज्ञान जानै है। संसार भ्रमतैं अनन्तबार भया जो मनुष्य तिन पर्यायनमैं भये जो शुभाशुभ भाव, तिन सबकौं केवलज्ञानी जानै हैं और च्यारि गतिमैं भ्रमतैं परिणाम्या जो पुद्गलस्कंध पर्यायन रूप, अनेक रूप, तिन सबकौं केवलज्ञान जानै है और अवार वर्तमान कालमैं च्यारि प्रकार देव सर्व मनुष्य पशु और नारकी च्यारि गतिके जीव सुख-दुख रूप प्रर्वतैं हैं। तिन सबकूं केवली जानै हैं और पुद्गल स्कंध जे-जे स्पर्श रस गंध वर्ण होय परिणाम्या ते-ते केवली जानैं हैं और आगामी अनन्तकाल विषै एक-एक जीव अनन्त देव पर्यायि और धारेगा। ऐसे अनन्ते जीवन सम्बन्धी अनागत अनन्त पर्यायन मैं समय-समय क्रोध, मानादि, कषाय, राग-द्वेष भाव रूप अनन्त जीव ज्यौं-ज्यौं परिणामैगें ते केवलज्ञान सर्व पहले ही जाने हैं। अनागत अनन्त पर्यायन मैं अनन्त कालकी देवनकी पर्यायरूप पुद्गल स्कंध, सो केवलज्ञान पहले ही जानैं है। ऐसे अतीत, अनागत और वर्तमान इन काल सम्बन्धी देवनके भाव विकल्प सो अरु इन देव पर्याय रूप परिणाम्या जो समय-समय अनन्त पुद्गल परमाणु सर्व कूं केवलज्ञानी युगपत् एक समय जानैं हैं और ऐसे ही एक-एक जीव अतीत अनागत काल विषैं अनन्तानन्त मनुष्य पर्याय नीच-ऊँच कुल तहां नीच कुल भीलादिक का और अनन्ती पर्याय ऊँच कुल क्षत्रिय वैश्यादिक का तिन में भये जो समय-समय इष्ट-वियोग, अनिष्ट-संयोग पीड़ा—चिन्तन निदानबन्धादि आर्त-भाव तथा च्यारि भेद रौद्र-भाव। इनके निमित्त पाय जो क्रोध-मानादिक राग-द्वेष भावन रूप परिणामन, तिन सर्व कूं केवलज्ञानो जानैं हैं और इन अनन्त मनुष्य पर्यायन में परिणाम्या जो जा-जा रूप स्पर्श रस गन्धादिक पुद्गल पर्याय स्कन्ध रूप परमाणु का परिणामन तिन सबकों केवलो जानैं हैं और वर्तमान में जो सर्व संख्याते

मनुष्य ऊँच-नीच कुल तिनमें जैसे-जैसे समय-समय क्रोधादिक कषाय राग-द्वेष भाव का पलटन तिन सबकूं केवलज्ञानी जानैं हैं और वर्तमान इनही मनुष्य पर्याय रूप परिणम्या जो पुद्गल स्कन्ध तिन सबकूं केवलज्ञानी जानै है और अनन्त अनागत काल विषैं अनन्ती-अनन्ती मनुष्य पर्याय एक-एक और धारैगा तिनमैं होयंगे जो-जो रागादि भाव विकल्प ते-ते सर्व केवलज्ञानी जानैं हैं और अनागत काल में होयगी जो मनुष्य पर्याय तिन रूप परिणमैंगे जो पुद्गल स्कन्ध तिन सबकूं केवलज्ञानी जानै हैं। ऐसे कहे जो अतीत अनागत वर्तमान काल सम्बन्धी मनुष्य पर्यायन में अनेक भावन के परिणमन तिन सबकौं केवलज्ञानी युगपत् जानै है और ऐसे ही एक-एक जीव अनन्त-अनन्त पर्याय नारकी धरि आया। अबार धरै है आगामी और धारैगा। ऐसे तीन काल सम्बन्धी नारक पर्यायन में भये जो भाव विकल्प तिस सर्वकौं केवलज्ञानी जानैं और ऐसे अतीत अनागत वर्तमान काल विषैं एक-एक जीव अनन्त तिर्यंच पर्याय जो एकेन्द्रिय, बेन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, वनस्पति, इतर-निगोद, नित्य-निगोद—इनके सूक्ष्म बादर रूप पर्याय प्रत्येक वनस्पति सप्रतिष्ठित, अप्रतिष्ठित इत्यादिक तथा अनेक भेदमयी पशु पर्याय और श्वास के अठारहवें भाग आयु के धारी अलब्ध्य-पर्याप्त जीव, सैनी-असैनी एक अन्तर्मुहूर्त में छ्यासठि हजार तीन सौ छत्तीस जन्म-मरण रूप पर्याय तिन सर्व पर्यायनकौं एक-एक जीव अनन्त-अनन्त बार धरि आया तिनमैं भये जो भाव विकल्प तिन सर्वकौं केवलज्ञानी जानैं हैं और इन पर्याय रूप परिणम्या जो अनन्तकाल तांई पुद्गल स्कन्ध तिनकौं केवलज्ञानी जानैं हैं। ऐसे च्यारि गति के जीवन के परिणाम और ज्ञानावरणादिक-कर्म रूप भये जो अनन्ते जीवन के भावन का निमित्त पाय पुद्गल-कर्म तिनकौं केवलज्ञानी जानैं हैं और पुद्गल अनेक रूप भए हीरा, माणिक, मोती, पन्ना, पारस, मिट्टी, खाक, पाषाण, सप्त, धात्वादिक अनेक रूप परिणमैं जो पुद्गल स्कन्ध तिन सबकूं केवलज्ञान जानैं हैं और तीन काल सम्बन्धी धर्म-द्रव्य, अधर्म-द्रव्य, काल-द्रव्य, आकाश-द्रव्य—इन अमूर्तिक द्रव्यन का षट् गुणी हानि वृद्धिकौं लिये परिणमन तिन परिणमन अंशनकूं केवलज्ञानी जानैं हैं। ऐसे अलोक में तिष्ठता लोक ता लोक में तिष्ठते षट् द्रव्य के परिणमन तीन काल सम्बन्धी तिन सर्व कूं केवलज्ञान जानैं हैं। इस केवलज्ञान के होते ही अनन्त चतुष्टय संग ही प्रगट होय हैं। अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख अरु अनन्तवीर्य। तहां ज्ञानावरणीय-कर्म के

क्षय तैं अनन्त केवलज्ञान होय। सर्व दर्शनावरण का नाश भये केवलदर्शन होय। मोह-कर्म के क्षय होतें क्षायिक सम्यक्त्व तथा यथाख्यात चारित्र रूप निराकुल भाव रूप अनन्त सुख होय। अन्तराय-कर्म के सर्व अभावतैं अनन्तवीर्य होय। तिनमैं केवलज्ञान, केवलदर्शन होते तीन लोक व तीन काल सम्बन्धी पदार्थन का जानपना होय और अनन्तवीर्य होतैं अनन्त पदार्थ देखने की अनन्तशक्ति प्रगट होय है। जो अनन्तशक्ति नहीं होती तौ अनन्त पदार्थ के देखनें तैं खेद होता और मोह-कर्म का क्षय होता नाहीं पर पदार्थ में राग-द्वेष होता, यथावत् सुखी नहीं होता। तातैं केवलज्ञान दर्शनतैं तो मूर्ति अमूर्ति पदार्थ जानै और अनन्तवीर्य तैं सर्व पदार्थ के देखते खेद नहीं भया। ऐसे अनन्त चतुष्टय सहित केवलज्ञान का धारी सयोग केवली अतीन्द्रिय सुख भोगता तिष्ठै है। ऐसा सुख संसार दशा में जो तीन काल सम्बन्धी अनन्ते अहमिन्द्र देव इन्द्र सामानिक च्यारि प्रकार देव अनन्ते चक्री षट्खण्डी कामदेव अनन्ते नारायण प्रतिनारायण बलभद्र अनन्ते ही मण्डलेश्वर राजादिक अनेक और अतिशय सहित पुण्य के धारी पुरुष विद्याधरादिक इन सबन का इन्द्रिय सुख तीन काल सम्बन्धी इकट्ठा कीजै तौहू केवलज्ञान के अनन्तवें भाग नहीं होय ऐसा सुख केवलज्ञान भये हो है। संसारी सुख तौ ऐसा है। जैसे—कोई पुर का राजा काहूं वैरी की बन्दी पड़्या है। सो राज, धन, सम्पदा बहुत है। सो रुका है तौ भी खान-पान, वस्त्र, आभूषण तौ वांच्छित पहिरै है और भोजन रस मय करै है। सो इन्द्रिय सुख मैं कमी नाहीं। परन्तु बन्दी मैं पड़ा है। सो महादुखी ही रहै है। सो और जो रुके नाहीं स्वेच्छा सुख सूं राज करै हैं, ते महासुखी हैं। तैसे ही देवादिक संसारी जीव मोह राजा की बन्दी मैं हैं। सो शुभ कर्म उदय तैं इन्द्रियजनित सुख तौ है। परन्तु निर्बंधन सुख नाहीं और केवलज्ञानी का सुख स्वेच्छाचारी राजा की नांई निर्बंध सुख है। तातैं केवली का सुख अपार है। ऐसे केवलज्ञान सहित भगवान कौं हमारा नमस्कार होऊ। इति केवलज्ञान का कथन।

इति श्रीसुदृष्टितरङ्गिणी नाम ग्रन्थके मध्यमें अवधि मनः पर्यय केवलज्ञानका वर्णन करनेवाला वीसवाँ पर्व सम्पूर्ण हुआ ॥२०॥

आगे कहै हैं जो इस मनुष्य आयु के दिन सोई भई मोतिन की माला ताकौं भोला जीव वृथा खावै है। ताहि दृष्टान्त देय दिखावै हैं—

गाथा—मुत्तादामं तग कज्जय, भंजय मूढ़ा णाण रहिया जे। इम अखफल सुह लुहदो, भंजय णरो आपु दिण मुत्त फलं ॥४१॥

अर्थ—मोतीन की माला धागा के निमित्त कोई मूढ़ अज्ञानी मनुष्य तोड़ि डारै। तैसे ही इन्द्रिय सुख का लोभी मनुष्य आयुरूपी मोतीन की माल तजै है। भावार्थ—जैसे कोई मूर्ख जीर्ण गल्या वस्त्र फाटा देखि ताके सीवनेकौं तागा ढूंढै था। सो नहीं मिल्या तब मनोहर मोतीन की माला थी। सो ताहि देखि विचारी जो इस वस्त्र सीवनेकौं तागा मेरी मोती की माल मैं है। तब तागा निमित्त मूर्ख ने मोती की माला तोड़ि कैं तागा लेय जीर्ण वस्त्र सीया। सो मोती तागा बिना विखर गये। सो इसकी मूर्खता तो देखो कि जीर्ण वस्त्र के निमित्त मोती की माला वृथा करी। सो यह महामूर्ख जानना। तैसे ही भोले संसारी जीव इन्द्रियन के विनाशिक आकुलता सहित सुख रूपी पुराणा वस्त्र तामैं भी जारि-जारि फाटि रह्या गल्या जाके राखै लज्जा आवैं। नाख (फैंक) देने योग्य मलिन ताकौं बहुत दिन थिरीभूत राखवे कूं अरु तिसतैं अपनी शोभा जानिकैं आप ज्ञान की मूढ़ता तैं ऐसे ग्लानि-कारी इन्द्रिय सुख रूप कपड़ा ताके सीवनेकौं अपने मनुष्य आयुरूपी मोतिन का हार तोड़ि ताके दिन-घड़ी रूप तागा काटि विषय सुख कषाय रूप वस्त्र कौं शाश्वता राखवेकौं सीवता भया। अरु मनुष्यायु रूपी मोतीन का हार शोभा में नहीं समझा। सो आयुष के समय तेई भये मोती तिनकौं वृथा खोवता भया। सो इस भूल की कहा कहिये। अब मनुष्य आयु बार-बार कहां है। विषय भोग तौ गति-गति मैं आवै हैं। आगे बहु भोगे हैं। तातैं जो मनुष्य आयुरूपी मोतीन का हार तोड़ि तिसके दिन रूपी तागा लेय कैं विषय कषाय रूपी वस्त्र सींव राखि सुख मानैं। ताके ज्ञान की कहां तांई हीनता कहिये। जैसे—कोई ज्ञान दरिद्री भोला जीव सुख के निमित्त भ्रमण करते मनुष्य पर्याय रूपी चिन्तामणि मन वांच्छित सुख का देनेहारा रतन पाया। तोकौं अल्पज्ञानी-भोला जीव विषय कषायरूपी कोरे चने के लिये बेंचै तथा कोई जीव सुख के निमित्त अनेक देशान्तर भ्रमता-भ्रमता कल्पवृक्ष पावै। ताके पास बाल-बुद्धि हलाहल जहर जांचै। तैसे मनुष्य पर्याय शिव सुख की दाता ताकूं पाय हीन ज्ञानी विषय भोग कालकूट हालाहल जहर जांच हर्ष मानै। ऐसे ही मनुष्य आयुरूपी हार तोड़ि-तोड़ि ताका डोरा लेय विषय कषायमयी वस्त्र का सींवना जानना। आगे अपनी भूल करि आप बन्ध्या है, सो ही दृष्टान्त द्वारा बतावैं हैं—

गाथा—सुक शालणी कप मुट्ठई, मुकरम्हि भमं एत्ति जह साणो। इम चेदण भमभूलइ, अप्पं वंधइ रायदोसादो ॥ ५० ॥

श्री सुदृष्टि

अर्थ—जैसे नलनी का सूवा (तोता), कपि की मूठी, कांच के महलमैं दूसरा स्वान नाहीं। तैसे ही आतमा भ्रम भूला, राग-द्वेष तैं आप ही बन्ध्या है। भावार्थ—नलनी का सूवा (तोता), नलनी पै बैठिकैं आपही उलट्या है। सो पञ्जन तैं नलनीकौ दृढ़ि पकड़े है। सो ऊर्ध्व पांव, अधोकूं शरीर होय भूलै। काहू नैं पकर‍्या नाहीं वान्ध्या नाहीं। आपही ऐसा समझै है जो मैं इस नलनीकौं तजौंगा, तौ मेरे लगेगी तथा उसे भ्रम भया, जो मोकौं काहू नै पकड़ि उलटा बांधि दिया है। ऐसे भ्रमतैं आप महादुखी भया बन्ध्या। भ्रम जाय, तौ काहू नै पकर‍्या नाहीं, सहज ही नलनी तजै नभ में उड़ जाय और सुखी होय। तैसे आप अपनी भूलतैं पर-वस्तु मैं राग-द्वेष करि, कौऊकौ भला मानै है, काहूकौं बुरा मानै है, ए मेरी है, ए मेरी नाहीं। ऐसे भ्रम करि आपही बन्ध्या है। भ्रम गये, सहज ही सुखी होय है और सुनो, जैसे—बन्दरकौं पकरनेवाले ने एक तुच्छ मुख का कलश वन में धर‍्या, ताके भीतर चने धरे। सो छोटे मुख के कलश मैं तैं चने लेनेकौ बन्दर ने लोभ के मारे दोऊ हाथ डारै। सो दोऊ मूठि भर काढ़े था। दोऊ मुट्ठी छोटे मुख तैं निकसती नाहीं। तब बन्दर ने जानी, जो हाथ काहू नै पकरै हैं। ऐसे भ्रम होतें आप वन मैं उस घट मैं बन्ध्या पड़ा है। आपकौ बन्ध्या मानै है। सो याकौ काहू ने पकड़्या नहीं, एही भ्रम बुद्धि के प्रसादतैं चने का लोभी होय, आपही बंधि रह्या है। आप कदाचित मुट्ठी-चने का ममत्व तजिकैं, चने नाखै। तौ सहज ही स्वच्छन्द होय, वन मैं विहार करै, सुखी होय। तैसे ही आतमा, पर-द्रव्यन तैं राग-द्वेष भाव करि, मोह के वशि, विषयभोग रूपी चने के लोभतैं, संसार-वन में पड़ा, कर्म-बन्ध का करता होय, महादुख पावै है। विषयभोगरूपी चने तैं ममत्व भाव तजै, तौ सहज ही सुख-सन्तोष के प्रसाद तैं सुखी होय और जैसे—कांच के महल-मन्दिर मैं श्वान जाय पड़ा, सो चारों तरफ श्वान ही श्वान देखि ऐसा भ्रम करता भया। जो ए बहुत श्वान मेरे मारवेकौं आए हैं। ऐसा जानि आप उन तैं युद्ध करने कूं गया। सो यह जैसे बोले तैसे ही कांच के श्वान बोलैं। ए युद्ध करै, तैसे ही कांच के श्वान युद्ध करैं। सो ए श्वान महा-भयवन्त भया। जो मैं तौ एकला, अरु यहां श्वान बहुत हैं सो मोहि मारंगे। ऐसे भ्रमतैं बड़ा दुखी है। सो कांच के मन्दिर मैं कोई दूसरा श्वान नाहीं। ए ही श्वान अपना प्रतिबिम्ब कांच मैं देखि, भ्रमतैं दुखी होय है। तैसे ही ये आतमा भी भ्रम-भाव करि, पर-वस्तुकौं देखि राग-द्वेष भाव करि, कर्म-बन्ध का करता होय, दुख उपजावे

तरंगिणी

है। ऐसे ये मूढ़ जीव, नलनी का तोता, घटमैं मूठी तैं बन्ध्या चने का लोभी बन्दर और कांच के मन्दिर मैं धस्या श्वान, अपनी भूलि तैं दुखी होय हैं। काहूकों दोष नाहीं। तैसे ही इनकी नांई मोही-मिथ्या रस भींजत जीव, पर-वस्तुकूं अपनाय रागी-द्वेषी होय, संसार दुख का भोगी होय है और जे सम्यग्दृष्टि-सांची दृष्टिवाले हैं, तिनकैं भ्रम नाहीं। ए तत्वज्ञानी सांची दृढ़ सरधा का धारक है। याके श्रद्धान मैं पर-वस्तु मैं ममत्व नाहीं। तातैं अपने पदस्थ योग्य कर्म-बन्ध नाहीं करै है और मिथ्यारस भींजे ते कर्म-बन्ध करि जन्म-मरण बेलि बधावैं हैं। अनेक तन धरि-धरि तजि अशुद्ध भावी जीव दुखी होय हैं और शुद्धोपयोगी भ्रम रहित हैं, ते कर्म-बन्ध रहित हैं, ऐसा जानना। आगे कहै हैं। जो शुद्धात्मा कैं एते दोष नाहीं—

गाथा—तसकर पय णिप वहणी, दुभखो लोय पाव गद पंचो। दुठणरपसु यम णिंदो, ए तीयदहभय रहय सुद्धादा ॥ ५१ ॥

अर्थ—तसकर कहिये चोर, पय कहिये जल, णिप कहिये राजा, वहणी कहिए अग्नि, दुभखो कहिये दुभिक्ष, लोय कहिये लोक, पाव कहिये पाप, गद कहिये रोग, पञ्चो कहिये पञ्च, दुठणर-पशु कहिये दुष्ट नर-पशु, यम कहिये काल, णिन्दो कहिये निन्दा, एतीयदहभयरहयसुद्धादा कहिये—इन तेरह भय करि रहित शुद्धात्मा होय है। भावार्थ—शुद्धात्मा कौं चोर का भय नाहीं। सो चोर के अनेक भेद हैं। एक धर्म-चोर एक कर्म चोर, सो ही कहिये है जो धर्म स्थान जो देहरे (देवालय), तिन देहरेन की वस्तु चोरना, भगवान के छत्र, चमर, प्रतिबिम्ब, सिंहासन, भामण्डल, थारी, रकेवी, झारी, झालरि, मजीरा, घण्टा, जाजम, चाँदनी, परदादि उपकरण वस्तुनकौं चौरे, सो धर्म-चोर कहिये तथा शास्त्र-चोर, सो शास्त्रजी के बन्धन, पूठा का चोरना, सो धर्म-चोर है तथा कपटाई करि छल तैं धर्म सेवन करै, सो धर्म-चोर है। धर्म स्थान तैं कोऊ गृहस्थ की वस्तु चोरना, सो धर्म-चोर है तथा कषाय के वशीभूत प्रमादी होय धर्म-वासना रहित अपना हिरदै करकै, पीछे रुचि रहित किंचित् कोई धर्म अङ्ग का साधन लोक के देखनेकौं करै है। सो धर्म-चोर है तथा धर्म की सेवा करि धर्म का सेवक बाजि (कहलाकर) पुजाया लोकमान्य भया। पीछे कोई पाप-कर्म के योगतैं धर्म रहित होय उलटा धर्म का द्वेषी होय। सो धर्म-चोर है। एतो धर्म-चोर के भेद कहे और कर्म-चोर हैं सो इनके भी अनेक भेद हैं। मुख्य ये हैं—एक तन-चोर, एक धन-चोर और

वचन-चोर। तहां जे कोई पराए बेटा-बेटी, पर-स्त्री की चोरी कर, पर-स्थान में जाय बेचना तथा हस्ती, घोटक, गाय, महिषादिक पशून की चोरी का करना। सो तो तन-चोर कहिये और पराये घर विषैं ओड़ादेय (फोड़कर) चुराना। मन्दिरन पै छल-बल करि चढ़ि चोरना। पराये धरे धनकौं आप जानि ले आवना, सो ए सर्व भेद धन-चोर के हैं। पराया दिया-धरामाल राखि लेना। जानता ही भोले राखना। इन आदिक अपने छल करि पराया धन चोरै, सो धन-चोर कहिये और पर के छिपे गुप्त वचन होय, ताकी कोई रहसि जानि, ताकौं प्रगट करना, सो वचन-चोर है तथा मुखतैं असत्य का बोलना, सो वचन-चोर है। इत्यादिक ए कर्म-चोर हैं। ऐसे जे धर्म-चोर और कर्म-चोर, सो कर्म-चोरतैं अनन्तगुणा पाप धर्म-चोर का है। ऐसे कहे जो अनेक भेद चोर सो ऐसे चोरन का भय, संसारी परिग्रहीनकूं है और अनन्त गुणों का धारी, अतीन्द्रिय सुख धन के धारी परमात्माकूं, चोर का भय नहीं। १। और थोरी दीर्घ मेघ की वर्षा का भय तथा नदी, सरोवर, समुद्र, कूप, वापी आदि जल का भय, संसारिक तन धारी जीवनकूं होय है और शुद्धात्मा, अमूर्तिक अनन्त सुख के धनीकौं, जल का भय भी नाहीं। २। और राज भय सो राज का भय चोरनकूं, पर-स्त्री लम्पटन कूं होय और अन्याय-मार्गीनकूं, असत्य वचनीकूं इन आदिक पाखण्डीनकूं राज का भय होय है और निर्जरा, कर्म रहित, परमेश्वर, शुद्धात्माकूं, राज भय नाहीं। ३। और अग्नि का भय है सो काष्ठ, वस्त्र, तृण, सुवर्ण, चाँदी, रतनादि मनुष्य पशुन के पौद्गलिक शरीर इन आदिक धन-धान्यादिक सर्व वस्तु पुद्गल स्कन्ध है। तिनकूं अग्नि का भय है तथा इन पुद्गल स्कन्धन में जिस जीव का ममत्व भाव होय, तिस रागी कूं अग्नि का भय है और अमूर्तिक, ज्ञानपिण्ड, शुद्धात्माकौं अग्नि का भय नाहीं। ४। और अन्न ही है सहकारी जाका, ऐसा जो पुद्गल शरीर का धारी, परिग्रही, बहु कुटुम्बा, मोही, संसारी जीव, दुर्भिक्ष होते कुटुम्ब रक्षा तथा अपने तन की रक्षा करनहारा, ताकूं काल का भय होय है। क्यों? यह मोही परिग्रही तन धारी, सो याकौं दुर्भिक्ष का भय होय है और पुद्गल शरीर रहित और कुटुम्बादि जन रहित, वीतराग, मोह रहित, शुद्धात्माकौं दुर्भिक्ष का भय नाहीं।५। और लौकिक का भय है। सो जे तस्कर होय, द्यूत के रमणहारे होंय, पल (मांस) भक्षी होय, मदिरा पायी होय, वेश्या घर गमनी होय, पर-जीवन

का घाती होय तथा पर-स्त्री भोगनहारेकौं इन सप्तव्यसन सहित, पापाचारी, अयोग्य पन्थ के चलनहारे जीवनकौं लौकिक का भय होय तथा क्रोधी, मानी, दगाबाज, महालोभाचारी, पाखण्डी, ठग, अनाचारी, विश्वासघाती, स्वामी-द्रोही, मित्र-द्रोही—इन आदि अनेक कुमार्गीनकूं, लोक का भय होय है और जगत् पूज्य, सर्व बल्लभकौं, लोकालोक ज्ञाता सर्वज्ञकौं, वीतराग, अमूर्तिक देवकौं, लोक का भय नाहीं । ६ । और सरागी, बहु कुटुम्बी, बहु आरम्भी, संसारी, राग-द्वेष सहित, पापाचारीकूं पाप का भय है तिनकूं पाप दुखी करै है और वीतरागी, जगत् का पीर हर, पाप-पुण्य संसार मार्ग तातैं रहित कर्म कालिमा वर्जित शुद्धात्मा कूं पाप का भय नाहीं । इनकूं पाप भय नाहीं उपजावै है ।७। रोग भय ताकौं होय जो शरीर आसरे रहन-हारे संसारी जीव मोही तन स्थिति सदैव चाहनैहारा पुद्गल धनधारी जीव तिनकौं रोग का भय होय। पौद्गलिक काय रहित अमूर्ति शुद्ध जीवकौं रोग भय नाहीं ।८। पक्ष भय है सो अन्याय पंथधारी पक्ष मर्यादा लोपनहारेकौं पक्षन का भय होय है और जगत्नाथ लोक पूज्य पदधारी कूं जगत् मर्यादा का बतावनहारा तथा लोक मर्यादा का चलावनहारा भगवान् कूं पक्ष भय नाहीं ।९। और दुष्ट मनुष्य का भय है। सो पर-जीवनतैं कोई जीव द्वेष राखै ताका दुष्ट जीव का भय होय और जगत्नाथ निर्दोष, वीतराग, जगत्पूज्य, शुद्धात्मा कौं, दुष्ट मनुष्यन का भय नाहीं। १०। दुष्ट पशून का भय है, सो इन दुष्ट जीव पशु, हस्ती, सिंह, चीता, सुअर, श्वान, मार्जार, बन्दर, सर्प, बिच्छू आदिक दुष्ट जीव हैं, सो हस्ती आदि तौ दन्ती हैं। सिंहादिक नखी, विषी जो सर्पादिक, ए दन्ती, नखी विषी इन सर्व दुष्ट पशुन का भय संसारी, सरागी, पुद्गल तन के धारी जीवनकौं पाप उदय तैं होय है और संसारी दुख रहित, षट् काय का पीर हर अमूर्ति भगवान् कूं दुष्ट पशून का भय नाहीं। इस भगवान् के नाम लेते ही सुमरण करते हो, दुष्ट-पशु आदि के अनेक विघ्न नाश होंय। ऐसा जानना। ११। और यम भय है। सो देव, मनुष्य, नारक, पशु, पुद्गल तन के धारी, संसारी, कर्म-बन्ध सहित, तिन जीवन कौं यम का भय है और अष्ट-कर्म-शरीर रहित, अमूर्ति, जन्म-मरण रहित, शुद्धात्मा कूं यम का भय नाहीं। १२। निन्दा भय है सो कुमार्गी, निर्लज्ज, अनेक दोष भरे, अमार्गी जीव, तिनकौं जगत् निन्दा का दुख होय और जगत्-पूज्य, स्तुति योग्य, जाके गुण गाये कल्याण होय, निर्दोष, शुद्ध परमात्माकूं, निन्दा भय नाहीं ।१३। ऐसे कहे जो

स्वार्थ के बन्धन तैं बन्धे हैं।

गाथा—जणक पितामह जणणी, तिय सुत मित्तादि बन्ध पुत्तीए। सामी भिक्खिक दासी, ए सहु णिज्ज काज बंध बंधाणी ॥५४॥

 अर्थ—जणक कहिये, पिता। पितामह कहिये, पिता का पिता। जणणी कहिये, माता। तिय कहिये, स्त्री।
सुत कहिये, पुत्र। मित्तादि कहिये, मित्र। बन्धु कहिये, भाई। पुत्तीए कहिये, पुत्री। स्वामी कहिये, सरदार। भिक्खिक कहिये, मँगता। दासो कहिये, चाकर। ए सहु कहिये, ये सर्व ही। णिज्ज काज बन्ध बन्धाणी कहिये अपने-अपने कार्यरूपी बन्धन करि बंधे हैं। भावार्थ—जातैं आप उपज्या, सो अपना पिता है। सो पिता पुत्र की वालापने में सेवा करै है। नाना प्रकार खान-पान शीत-उष्णतैं रक्षा करै है। सो ऐसा विचारै है जो ए मेरा पुत्र है। यातैं मेरा नाम चलेगा। मेरी वृद्धपने में सेवा करेगा। इत्यादि स्वार्थ के बन्धन में बन्ध्या मोह वश होय, नेह उपजाय पुत्र की रक्षा करै है और पीछे पुत्र कुपूत होय, अविनयवान् होय तौ तातैं स्वार्थ नहीं सधता जानि मोह तजै। घरतैं निकास देय, मारि डालै जुदा करै। बटाऊ (साझीदार) हूतैं बुरा लागै और पिता का पिता पोतेतैं मोह करै है। सो यह जान कर कि ए हमारे पुत्र का पुत्र है। सो मेरा नाती है। यह बड़ा होयगा तब मेरी वृद्ध अवस्था में सेवा करेगा। ऐसा स्वार्थ के बन्धन में बन्ध्या, नाती जानि बाबा रक्षा करै और माता ने नव मास उदर में रक्षा करी जनम भये पीछे मोह के वश ये पुत्र की रक्षा करै है। सो भरी राति में शीतकाल समय मल-मूत्र करै तव आप तौ शीत आगे (गीले) में रहे अरु पुत्र को सूखे में राखै है। सो ऐसा विचारै है जो बड़ा होय कमाय मोकूं खुवाय सुखी करेगा। मेरी आज्ञा मानेगा। ऐसे स्वार्थ के बन्धन तैं बंधी माता पुत्र की रक्षा करै है और पति नाना कष्ट पाय द्रव्य पैदा करै, सो लायकै स्त्री कूं देय। नाना प्रकार पंचेन्द्रिय जनित भोग सामग्री मिलाय स्त्रीकूं सुखी करै है। तातैं स्त्री ऐसा जानै है। सो मेरे मन वांच्छित भोग का देनेहारा एक भर्तार है। ऐसे स्वार्थ तैं बंधी स्त्री भर्तार की सेवा करै है और कदाचित् भर्तार मन्द कुमाऊ होय हीन भागी होय दरिद्री होय अपने सुख का कारण नाहीं होय तो अपने स्वार्थ रहित भर्तारकौं तजै है और पुत्र अपने योग्य खान-पान असवारी वस्त्र के दाता माता-पिताकूं जानिकै, पुत्र माता-पिता की सेवा करै है और ऐसा जाने है। ये माता-पिता हमारा जतन करें हैं। ऐसे स्वार्थ तैं बन्ध्या पुत्र माता-पिता की सेवा करै है, आज्ञा मानै है।

देव, इन्द्र—इन सर्व के सुख अथिर हैं। भावार्थ—जाके घर में कोटि ग्राम होय, सो राजा है। सो इस राजा के वांच्छित भोग।१। और जाकी ऐसे-ऐसे पांच सौ राजा सेवा करैं—चाकर होंय, सो अधिराज कहिये। ताके सुख देखते ही विनशै हैं।२। और एक हजार राजा जाकी चाकरी करैं, सो महाराजा है। ताकी विभूति।३। अरु दोय हजार राजा जाकी आज्ञा मानै, सो अर्ध-मण्डलेश्वर कहिये। तिनकी सम्पदा।४। और चार हजार राजा जाके चरण-कमल की सेवा करें, सो मण्डलेश्वरनाथ कहिये। इनके भोग।५। आठ हजार राजा जाकी आज्ञा मानैं, सो महामण्डलेश्वर कहिये। ताकी सम्पदा।६। और जाकी सोलह हजार आर्यखण्ड के राजा सेवा करें सो तीन खण्ड का अधिपति कहिये। ताके भोग।७। और बत्तीस हजार देश आर्यखण्ड के, तिनके बत्तीस हजार राजा जिसकी सेवा करें, सो चक्रवर्ती-षट्खण्डनाथ है। ताके पुण्य का माहात्म्य कछु कहने में नहीं आवै। छयानवे हजार तौ देवांगना समानि, महासुन्दर, विनयवती रानी हैं। नवनिधि व चौदह रतन, इनके दिये अनेक वांच्छित भोग। जाकी हजारों देव आज्ञा मानै। चौरासी लाख हाथी, चौरासी लाख रथ इत्यादिक नाथ, मनुष्यन का इन्द्र। ताकी ए ऋद्धि।८। और महामान शिखर पै चढ़्या, महाअतिशय सहित पुण्य का धारी इत्यादिक पदस्थ का धारी पुरुष, अपनी सम्पदा कूं स्थिरी भूत जानि, सदैव सुखसागर में मगन रह्या चाहै था, सो इनकी सम्पदा देखतैं-देखतैं नाश कूं प्राप्त होय गई। जैसे—बिजली अल्प उद्योग करि नाशकूं प्राप्त होय है, तैसे ही महा-चपल सम्पदा विनश गई तथा और विद्याधर महाअतिशयवान् पुण्य के धारी, देवन समानि निवासी वांच्छित भोगन के निवासी और च्यारि प्रकार के देव, अद्भुत रस के भोगी महापराक्रमी तथा देवन का नाथ जो इन्द्र, जाकी मन अगोचर लक्ष्मी। असंख्यात देवीनि की सराग चेष्टा करि मोहित होय रह्या है चित्त जाका। अनेक मन, वचन, काय के चाहे इन्द्रिय भोग तिनका भोगी देवेन्द्र। ऐसे कहे जो देव मनुष्यन की सर्वोत्कृष्ट सुख सम्पदा सो सर्व विनाशिक स्वप्नसम भ्रम उपजावनहारी जानना। भो भव्य हो! देखो। ऐसी महान् सुख सम्पदा तौ थिर रही नाहीं, तो तेरी तुच्छ पुण्य करि उपार्जी, अल्प सम्पदा पराधीन सो ए कैसे स्थिर रहेगी? तातैं ऐसी जानि के तुच्छ स्थिति धारी चपला-विनाशिक सम्पदा तैं ममत्व छोड़ि कर मोक्ष के सुख अविनाशिक तिनके निमित्त धर्म का सेवन करना योग्य है। इति। आगे ऐसा बतावैं हैं। जो माता-पितादि सर्व जन अपने-अपने

याका अर्थ—स्वांरा पुच्छ कहिये, कुत्ते की पूंछ। अहि गराो कहिये, सांप की चाल। दुठ चित्तो कहिये, दुष्ट जीव का चित्त। सहल वक कहिये, सहज ही वांक का है। राहपायो कहिये, इनके मिटावे का उपाय नाहीं। पीपल दल कहिये, पीपल का पात (पत्ता)। करि कराराो कहिये, हाथी का कान। सठ मरा कहिये, मूर्ख का मन। अख सुह कहिये, इन्द्रियों के सुख। राह ध्रुव भावो कहिये, ए ध्रुव भाव नाहीं। भावार्थ—कुत्ते की पूंछ, सहज ही बांकी होय। ताके सीधी करवेकौं, कोऊ उपाय नाहीं। याका सहज ही स्वभाव वैसा है और सर्प की चाल स्वभाव ही तैं बांकी है। या भी कोऊ उपाय तैं सीधी होती नाहीं। तैसे ही दुष्ट-जीव पापाचारीन का चित्त भी, सहज ही बांका-कुटिल है। दगाबाजी कर भर्‍या है। याका भी सहज-स्वभाव है। या दुष्ट की बहुत सेवा करौ तथा याका विनय करौ, याते नमो तथा याकौं बहुत धन देऊ, इत्यादिक अनेक उपाय करौ, परन्तु कोई भी उपाय तैं इस अनाचारी का चित्त सीधा नाहीं होय। यातें भो भव्य! तू सर्व जगह प्रमाद रूप रहियो। परन्तु दुष्ट-जीव के संग होतैं, गाफिल-प्रमादरूप मत होईयो। भो भव्य! काले सर्प तैं क्रीड़ा करते प्रमादरूप रहै, तो मरण पावै। सो एक ही भव दुखी होय। परन्तु तूं या दुष्ट के स्नेह-संग पाय, गाफिल रहेगा, प्रमाद के वशीभूत होयगा, तो तेरा भव-भव बिगड़ जायगा। महादुर्गति में पड़ेगा। यहां प्रश्न—जो तुमने कह्या, दुष्ट के स्नेह तैं भव-भव दुख उपजै, सो संग किये ही दुष्ट कैसे भव बिगाड़ेगा? ताका समाधान—जो हे भव्य! तू सुनि। याका उत्तर समझैं-श्रद्धान कीजे, तेरा बहुत भला होयगा और ज्ञान बधवारी होयगी। भले-बुरे जीवन की परीक्षा का ज्ञान प्रगटैगा। तातैं भो धर्मी! चित्त लगाय के सुनना। आप काहू तैं द्वेष करै, तो दूसरा भी आपतैं द्वेष करै। सो यह सब संसारी जीवन की रीति हैं। परन्तु भो भ्रात! दुष्ट ताका नाम है, जो बिना-दोष परतैं द्वेष करै। याही परीक्षा करि तू दुष्ट कूं जान लेना। आपतौ कोई प्रकार तैं द्वेष-भाव नाहीं करै और जे दुष्ट हैं ते पराया धन, हुकुम, वस्त्र, आभूषरा, हस्ती, घोटक, रथ, पालकी आदि असवारी देख, बिना प्रयोजन सहज ही द्वेष-भाव करैं। लोक में काहू का बड़ा यश, गुणी जीवन के मुख तैं सुनि, यह पापी वृथा ही द्वेष करै तथा कोई को सुमार्ग लगता देखि, धर्म सेवन करता देखि, द्वेष करै। कहै, ए बड़ा धर्मात्मा भया। हमारे आगे याके बड़े अनेक पाप करते देखे थे। इत्यादिक परकौं सुखी देख, आप निरन्तर दुख करे। परकौं रोग, शोक, चोट लागी देख,

कदाचित् अपना स्वार्थ सधता न जानै तो माता-पिताकूं तजै है और मित्र है। सो स्नेह करै है और ऐसा विचार करै है। जो ये धनवान् है। हुकुमवान् है। राज पञ्चन में इसका बड़ा चलन है। तातैं यातैं द्रव्य का सहाय काम पड़ै होय है तथा खान-पान भली वस्तु वस्त्रादि मिलै है तथा प्रयोजन पड़े कष्ट में सहाय करै है। ऐसे स्वार्थ के बन्धनतैं बन्ध्या मित्र स्नेह करै है कदाचित् अपना पुराय घटै, हुक्म मिटै, धन घटै तौ मित्र अपना प्रयोजन सधता न जानि मित्रता तजै है। तातैं मित्र भी स्वार्थ के बन्धनतैं बन्ध्या स्नेह करै है और बन्धु जो भाई हैं, सो अपना मनोरथ सधै तबलौं सनेह रूप रहैं। प्रयोजन सधता नहीं जानि जुदा होंय। पुत्री है सो अपना प्रयोजन सधै तबलूं माता-पितान की सेवा करै, उपकार मानै और स्वामी की आज्ञा प्रमाण सेवक चलै। जबलौं अनेक कारज घर के सुधरे, तबलूं स्वामी कहै मेरा भला सेवक है और जब आज्ञा न मानै, तौ दूर करै चाकरी से छुड़ाय देय। तातैं स्वामी भी अपने स्वार्थ के बन्धनतैं बन्ध्या सेवा करावै है और भिक्षुक जो जाचक मँगता, ताकी याचना भंग न होय जबलौं अन्न, वस्त्र, धन पावै तबलौं यश गावै। याचना भंग भये यश न गावै निन्दा करै। तातैं याचक भी स्वार्थ के बन्धनतैं बन्ध्या है और सेवक है सो स्वामी के घरतैं अनेक अन्न, धन, ग्राम, हस्ती, घोटकादि सुख सामग्री पावै है। तेते काल सेवक भलीभांति स्वामी की सेवा करै है और अपना प्रयोजन जब नहीं सधै तब सेवा चाकरी तजै तातैं सेवक भी अपने स्वार्थ के बन्धन तैं बन्ध्या है। इत्यादि कहे जे नाते ते सब अपने-अपने स्वार्थ के जानना। बिना स्वार्थ संसार प्रयोजनवाले, जीव तैं स्नेह करते नाहीं। ऐसा ही अनादि स्वभाव जगत् का जानना और धर्म-रस के पीवनहारे त्यागी ज्ञानी जग तैं उदासीन समता भावी दया-भराडार परमार्थ-मार्ग के वेत्ता धर्म-स्नेही ये जीव जातैं स्नेह करैं, जाकी रक्षा करैं सो स्वार्थ रहित। तातैं धर्मी पुरुषनकौं कोई इन्द्रिय जनित स्वार्थ न चाहिये। इनका स्वार्थ परमार्थ निमित्त है। ऐसा संसार का स्वभाव ही स्वार्थमयी जानि, विवेकी हैं तिनकौं अपने स्वार्थ साधवै कौं परमार्थ-मार्ग चलना योग्य है जातैं परम्पराय मोक्ष होय है। आगे जिन-जिन पदार्थन का चपलता रूप सहज ही स्वभाव है, सो मिटता नाहीं ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—स्वांण पुच्छ अहि गमणो दुठ चित्तो सहल वक णहपायो। पीपल दल करि कण्णो सठ मण अख सुह णाह ध्रुव भावो।

स्थिरी-भूत रहता नाहीं। यह अज्ञान, धर्म के स्वरूप में समझता नाहीं। इस दुरातमा का उपयोग, विकथा लड़ाई, राज-कथा, धन-कथा, पर की निन्दा करना इत्यादि पाप स्थानकन मैं तो निःप्रमाद होय भले प्रकार मन-वचन-काय की एकता सहित या कुबुद्धि का चित्त लागै है और धर्म-पन्थ-विसरे जीव कौं धर्मोपदेश दीजिये। तव ये धर्म-दरिद्री और विकल्प विचारै धर्मोपदेश नाहीं धारै तथा धर्म सुनतैं निद्रा आवै सो शयन करै-ऊँघै और कदाचित् जागै तो दूसरे मनुष्यनतें जो पासि तिष्ट्या होय तातैं वार्ता करने लगै। सो आप तो पापी है ही। परन्तु समीप तिष्ट्या जो जीव ताकौं बातों लगाय वाका धर्म घाति करि वाका परभव बिगाड़ै। तो ऐसे जीव-धर्म सन्मुख कैसे होंय? तातैं कुटिलचित्त धारी मायाचारी दुष्ट-जीवन कूं धर्मोपदेश लागता नाहीं। तातैं जे जीव विवेकी हैं तिनकों धर्मोपदेश में प्रमाद करि चित्त चञ्चल राखना योग्य नाहीं। आगे जिन-आज्ञा रहित जे अतत्त्व-श्रद्धानी महापण्डित भी होंय तो ताकै मुख का उपदेश सुनना योग्य नाहीं। ऐसा कहै हैं—

गाथा—अहिसिरणग उक्कट्ठो, गह्ये पाणान्त होय णेमाये। इव मिछि मुह उवदेसो, सधा कुगय देय भवमयणं ॥ ५६ ॥

याका अर्थ—'अहिसिरणग' कहिये, सर्प के शीसपै मणि रत्न है सो। 'उक्कट्ठो' कहिये, उत्कृष्ट है। 'गहये पाणान्तहोय' कहिये, ता रतन कों ग्रहे प्राणन का नाश होय है। 'णेमाए' कहिये, निश्चय तैं। 'इवमिछिमुह उवदेशो' कहिये, तैसे ही मिथ्यादृष्टि जीवन के मुख का उपदेश जानना। 'सधा कुगय देय भवमयणं' कहिये, इनका श्रद्धान किए कुगति के अनेक जनम-मरण देय है। भावार्थ—नाग के मस्तक पर मणि है, सो महाउत्कृष्ट है। अनेक गुण सहित है। सो ताका लोभ किये, कोई उस रतन को लीया चाहै। तो लोभ भी नहीं सधै, अरु मरण को पावै। क्यों, जो रतन तो अच्छा है; परन्तु महाविष-हलाहल भरचा, चपल-बुद्धि, महाक्रोध कषाय का धारी भुजङ्ग, कालरूप, ताके पासि है। सो विष का भरचा सर्प ताकै शिर तैं मणि-रतन का लेना, सो ही मरण का कारण जान। सो हे भव्य! तैसे कुदेव, कुगुरु, कुधर्म ताका सेवनहारा, जिन-भाषित-धर्म तैं विमुख, महाक्रोध-मानादि कषायरूपी जहर तैं भरचा मिथ्यादृष्टि, सो ही भया सर्प, ताके पास भली-विद्या रतन है। परन्तु कदाचित् याके मुख तैं उपदेशरूपी रतन को ग्रह्या चाहै तथा भला जानि श्रद्धान करै तो कुगति जे नरक-पशु गति, सो तिनके जनम-मरण के तीव्र दुख कूं प्राप्त होय है। यहां प्रश्न जो तुमने कह्या सो सत्य, इसकी मिथ्यादृष्टि तो

परकूं दुखी दरिद्री देखि, आप राजी होय। सो दुष्ट जानना। सो या दुष्ट, जगत् निन्द्य के संगतैं भला जीव निन्द्य होय, अपयश पावै, अनादर होय। ता अनादर तैं, आत्मा दुखी होय है। तातैं दुष्ट का संग मनै किया है और जो तू कही पर-भव में दुष्ट दुखदायी कैसे होय? सो भी तू चित्त देय सुनि। जब दुष्ट जनतैं प्रीति होय। तब वह पापाचारी, पाप कार्यन में रञायमान करावै है। यह बिना कारण सहज स्वभाव, धर्म तैं द्वेष-भाव करनहारा दुराचारी, धर्म भावना रहित, अनेक अभक्ष्यादि भोजन करनहारा, याकौ कोई धर्म नाम भला लगता नाहीं। सो पुण्य तैं छुटाय, पाप पंथ का प्रेरक होय है। जैसे बनै तैसे, अनेक जुगति देय कैं हाँसि कौतुकनमैं, इन्द्रिय नित भोगन मैं लगाय, धर्म तैं भृष्ट करि, पाप कार्यन में तन, मन, धन, वचन तैं अनेक प्रकार सहायक होय है। पाप करावै स्नेही कूं दुर्बुद्धि करि पाप-बन्ध कराय, पर-भव बिगाड़ै। तातैं अनेक दुख ए जीव पावै। ऐसा जानना। तातैं भो भव्य! तूं याका संग स्नेह, नरक पशून के दुख का दाता ही जानना। तातैं या दुष्ट जीव का निमित्त सब प्रकार दुखदायी जानि, तजना सुखदायी है और कदाचित् भो धर्मात्मा! तूं सरल बुद्धि है सो दया-भाव करि कभी ऐसा विचारैगा, जो मैं कोई नय दृष्टान्त करि, याकों धर्म विषैं लगाय, याका भला करूँगा। सो परोपकारी भव्य! तूं ऐसा भ्रम तज देय। याका सुलटना महाअसाध्य नहीं होने जैसी वार्ता जानि। जो कुत्ते की पूंछ की कुटिलाई मिटै सूधी होय, तो इस दुष्ट की दुष्टता छूटि धर्म रूप होय तथा सर्प की चाल वक्रता तजि, सरल होय, तो इस कुबुद्धि कौं धर्म रुचि होय। तातैं जैसे—नाग की चाल अरु श्वान की पूंछ, इनकी वक्रता अनादि की, कोई उपाय तैं नहीं मिटै। तैसे हीं दुष्ट स्वभाव, सहज ही अनाचार रूप होय है। याके धर्म कदाचित् भी नहीं होय। तातैं ऐसा जानि, दुष्ट का संग स्नेह तजना योग्य है और तन धनादि सामग्री विनाशिक है। सो इनतैं ममत्व भाव तजना योग्य है। जैसे पीपल का पत्ता, चञ्चल है तथा गज कर्ण, चपल है तथा मूर्ख का मन चपल है। तैसे ही हे भव्य! तूं ये जगत् के इन्द्रियजनित सुख चञ्चल जानना। ए पीपल पात गज कर्ण मूर्ख का मन सहज ही चपल है। तैसे हो इन्द्रियजनित सुखन कूं सहज ही विनाशिक जानि इन तैं ममत्व भाव तजि धर्म विषैं लगना योग्य है। तूं विवेकी धर्मार्थी है तातैं तोकूं धर्म का उपदेश कहैं हैं। सो तूं सुनि। जो धर्मार्थी हैं तिनका चित्त तो धर्म के उपदेश सुनिनें में लगै है और मूर्ख धर्म वासना रहित प्राणी है, तिनका चित्त धर्मोपदेश तैं चञ्चल होय

का भला भोजन तजि अपने जाति भाई की करी कच्ची-पक्की रूखी-सूखी अङ्गीकार करि अपना धर्म राख्या और जे अज्ञानी आचार रहित होंय भूख मेटवे कूं स्वाद लम्पटी होंय ते भठियारी की रोटी खाय हैं। परन्तु आगे कूं जाति में गये याका अनाचार सुन्या जायगा, तब जाति से निकास्या जायगा। पर-भव दुर्गति में पड़ैगा। तैसे ही भठियारी के भोजन सदृश मिथ्यात्वी का उपदेश जानि सम्यग्दृष्टि दृढ़ श्रद्धानीकूं तजना योग्य है और कोई भोले ऐसा कहैं—जो शास्त्र तो जिन आम्नाय के हैं। सो कोई ही होऊ, बचवाय के अर्थ समझ लेयंगे। ते भोले श्रद्धान रहित शिथिल परिणामी, अवार भठियारी की-सी रोटी खाय, सुखी हुए हैं। परन्तु पर-भव में तौ जिन-आज्ञा प्रमाण दृढ़ श्रद्धान का फल होय है। सो याकूं पर-भव में तो कुगति दुख होंयगे। तातैं हे भव्य! तूं धर्म-फल का लोभी है अरु मोक्ष-मार्ग का अभिलाषी है तो मिथ्यादृष्टि के मुख का उपदेश तोकूं श्रोत्र द्वारे भला सुर व भला कण्ठ के जोगतैं अच्छा भी लगता होय तो भी सर्प की मणिवत् भठियारी के भोजनवत् तजना योग्य है। ऐसा जानना और केतेक भोले संसारी चतुर जीव ऐसा श्रद्धान करैं हैं, जो मिथ्यात्वी है तो वह है, अपनेकूं कहा? अपनेकूं तो बचवाय लेना और एक दोय वचन कोई मिथ्यात्व रूप खोटे कह गया होय, तो वह जाने। वह बलवान् है। सो जिन भाषित अनेक वचनों में कोई दोय वचन अतत्त्वरूप सरधे गये तो कहा होय है? ताका समाधान—जो हे भव्य! ऐसा विचार तौ महादुखदांयी जानना। जैसे—भला षट्रस सहित पुष्टि करणहारा भोजन बनाया और कदाचित् ऐसे उत्कृष्ट भोजन में थोड़ा-सा हलाहल विष डाल दिया होय तो उस ही भोजनकों खाए मरण होय। तैसे ही जिन वचन स्वर्ग मोक्ष फल के दाता हैं। तिनके सुनैं जीव का कल्याण होय समभाव बँधै। ऐसे वचनकों उपदेश में कोई पापी आतमा, कषायरूपी हलाहल-जहर नाखिकैं कथन करै। तो श्रोतानकों दुखदाता होय। ऐसा जानि मिथ्यात्वी बहुत ज्ञानी होय और आप भोला होय तो अपने मुखतैं पञ्च परमेष्ठी के नाम का जाप करना, परन्तु मिथ्यात्वी के मुखतैं उपदेश नहीं धारना। आगे सर्प हू तैं दुष्ट जीवनकों विशेष बतावैं हैं—

गाथा—खल अहि कूर मुहावो, तिणमहि खल अति कूरता होई। अहिमन्तर उवचारो, दुठ उवचारोयलोयतिय दुलहो ॥५७॥

याका अर्थ—खल कहिये, दुष्ट। अहि कहिये, सर्प। कूरसुहावो कहिये, इनका क्रूर स्वभाव है। तिणमहि खल अति कूरता होई कहिये, तिनमें खल की क्रूरता बड़ी है। अहिमन्तर उववारो कहिये, सर्प का उपचार तो

हम भी जानैं हैं। परन्तु हमकूं शास्त्र वांचने का ज्ञान नाही। अरु जिनवाणी सुनवे की बड़ी अभिलाषा है। तातैं यद्यपि इस मिथ्यादृष्टिकूं शास्त्र का विशेष ज्ञान नाहीं है। परन्तु अनेक संस्कृत, प्राकृत, छन्द, गाथा की वाचन-कला में प्रवीण है। वाचन-कला भली है, अच्छे स्वर तैं कहै है। अर्थ भी सर्व खोल देय है। कण्ठ अच्छा है। सो हम याके पास जिन आम्नाय के शास्त्र वचाय, ताकैं अर्थ का ग्रहण करि, धर्म-ध्यान में काल गमाय पुण्य का संचय करेंगे। यामैं कहा दोष है ? ताका समाधान—जो हे धर्मानुरागी ! तू भी सुनि। ए मिथ्यात्व मूर्ति, क्रोध, मान, माया, लोभ का पोषणहारा, दश वचन जिन वचन अनुसारि कहेगा तो तिनमैं भी दोय वचन मिथ्यात्व पोषक कह जायगा। सो तुमकूं विशेष ज्ञान तो है नाहीं। जो ताका निर्धार करोगे। सो सामान्यैं ज्ञान के जोगतैं तुम मिथ्या कूं भला जानि श्रद्धान करोगे। अरु मिथ्या वचन श्रद्धान भये तुम्हारा धर्म रतन शुद्ध श्रद्धान ताका अभाव होयगा। संसार भ्रमण होयगा। च्यारि गति के दुख जनम-मरण के भोगवोगे। तातैं मिथ्यात्वी के मुख का उपदेश योग्य नाहीं और जो जिन-भाषित तत्त्वन का वेत्ता होय। सुदेव-वीतराग गुरु-नगन वीतराग धर्म-दयामयी ऐसे देव-गुरु-धर्म का दृढ़ श्रद्धान होय। अरु जाकों वाचन-कला अल्प होय तथा ज्ञान जाकैं सामान्य भी होय तो ताकै मुख का धर्मोपदेश तो सुखदाई है। परन्तु मिथ्यादृष्टि अतत्व-श्रद्धानी का धर्मोपदेश भला नाहीं। जैसे कोई दोय पुरुष परदेश-ग्रामान्तर गये। सो तिनमैं एक तो शुभाचारी है व एक कुआचारी-भोला है। सो दोऊ ही रसोई नहीं बना जानैं। जब भोजन की भूख लागी। तब परस्पर बतलावते भये। जो हे भाई ! भूख लागी कहा कीजिये ? पैसे तो बहुत हैं पर रसोई करना नाहीं आवे। तब वह भोला-जीव जो आचार में नहीं समझै था। सो बोल्या—हे भाई ! भूख लागी है तो इस भठियारी के घर तुरन्त का किया मनवांछित स्वाद का देनेहारा भोजन ताजा है। सो या माँगे दाम देय भोजन करौ। तब दूसरे आचारी ने कह्या। भो भाई ! भठियारी के घर का भोजन भला है अनेक रसमय स्वाद सहित है तो कहा भया। परन्तु आचार रहित है। तातैं अयोग्य है और जाति के सुनैं तो जाति तैं निषेधैं। पांति तैं उठाय देंय। अभक्ष्य के योगतैं पर-भव में नरकादि दुख होंय। तातैं हम तो अपने हाथ तैं अथवा अपना जाति भाई होयगा ताके हाथ की कच्ची-पक्की नीरस खाय चारि दिन परदेश के काटि नाखैंगे और मरण कबूल है; परन्तु भठियारी का रोटी नहीं खांयगे। ऐसा भठियारी

करता तैं द्वेष-भाव ही करै है। यह अपने स्वभाव ताकों न तज। जसे—माखी आप मर कर, परकौं खेद उपजावै। ऐसे ही दुष्ट-जन आप मर कर, औरकौं दुख उपजावैं। सो ही कहिये है—जैसे कोऊ दुष्ट-अज्ञानी, काहू तैं कषाय-भाव करि विचारता भया, जो याके घर में धन बहुत है। सो मैं याके शिर कूप-बावड़ी-नदी विषैं, डूबि मरौं तथा विष-खाय मरौं तथा छूरी-कटारा खाय मरौं, तौ राज्य याका सर्व-धन खोंसि लेय लूटि लेय। पञ्च याकौं, जाति तैं निकासैं। तब याका जगत् में मानभंग होय महादुखी होय। सो देखो, माखी-समान दुष्ट का ज्ञान, जो आप मर करके परकौं दुखी किया चाहै। सो दुष्ट तो माखी समान जानि और कोई दुष्ट जौंक के समानि चित्त के धारी होय हैं। जैसे—जौंक, गुण जो दुग्ध ताहि तजि, औगुण जो लोहू, ताकूं ग्रहै है। तैसे कोई दुष्टन पै चाहै जेता उपकार करौ। वह सर्व कूं भूलि, पीछे औगुण ही ग्रहण करि, उल्टा द्वेष-भाव ही स्वीकार करै है। जैसे—श्वान कूं कोई चाहै जैसा उपकार करो। भोजन देय, अनेक आभूषण पहिरावो तथा पालकी में वैठावो। चाहै-जैसा लाड़ करौ। परन्तु यह अज्ञानी श्वान जब हाथ तैं छूटेगा तब घूरे में ही जाय और कुत्तेन में जाय तिष्ठैगा और भले आभूषण, पालकी के गुण नाहीं विचारै है। तैसे दुष्ट भी कभी किए उपकार रूपी आभूषण, तिन सबको भूलि आप सरीखे दुष्ट-नीच पुरुषन का संग करि, दुख ही उपजावैगा तथा सर्प कूं बहुत काल तांई दूध प्याय, पुष्ट करि, अनेक प्रकार प्रतिपालना करौ। परन्तु इस सर्प की रक्षा करनहारा कदाचित् प्रमाद सहित होय, सर्प कूं अपना पाल्या जानि, वातैं गाफिल रहेगा, तो यह पापी विष का भऱ्या सर्प, याकौं खायगा। पालनहारे का मारनहारा होयगा। याकैं ऐसा विचार नाहीं जों याने तौ मोहि दुग्ध प्याय पाल्या है। यह पापी अपना स्वभाव नाहीं तजै। तैसे ही दुष्ट जीव पर अनेक उपकार करौ। परन्तु जाका नाम दुष्ट है, सो अपना स्वभाव नाहीं तजैगा। यह उपकारी का द्वेषी ही होयगा। ऐसे कहे जो माखी, जौंक, सर्प, दुष्ट-जन—ये चारों सब कूं दुखदाई जानना और सांठे (गन्ने) कूं जेता पेलोगे, ज्यों-ज्यों चिमिटोगे, तो भी त्यों-त्यों मिष्टता ही देयगा और कनक कूं जेता अग्नि तपाओगे-जारोगे तेता ही नरम होय, निर्मल-निर्दोष होयगा। तैसे भला शिष्य-विद्यार्थी लौकिक गुरु जो विद्या पढायवेवाला ताकी मार खाय उपकार मानै। ऐसा विचारै जो यह शिक्षा-दायक गुरु मो पै ऐसा उपकार करै है। जो अपने परिणाम संक्लेश करि मोकों उत्तम धन जो विद्या देय है।

मन्त्र है। दुठ उवचारोयलोयतियदुलहो कहिये, दुष्ट का उपचार तीन-लोक में दुर्लभ है। भावार्थ—जो दुष्ट हैं सो पर कौं धर्म-कर्म कार्यन में निराकुल-सुखी देख बिना प्रयोजन दुखी होय हैं। ऐसा जो दुष्ट सो पर कौं दुखी देखि आप हर्ष मानता होय। सो एक तौ यह और दूसरा सर्प—ए दोऊ महाक्रूर स्वभावी हैं। परन्तु इनमें दुष्ट-जन की क्रूरता विशेष जानना। काहे तैं सो कहिये हैं—जो महाविष का भऱ्या काल-रूप सर्प ताके खाये नाहीं बचै। कर्म जोग तैं बचै नाहीं तो मरै ही है। ऐसे भयानक सर्प की पूंछ तैं पाँव लागै तो यह सर्प काटै। सो याका विष दूर करने का अनेक मन्त्रादिक इलाज है। परन्तु बिना ही कारण द्वेष रूपी विष का भऱ्या दुष्टात्मा याकी क्रूरता मैटै कौं कोई तीन लोक विषैं उपाय दीखता नाहीं। तातैं भो भव्य! सर्प की क्रूरता तैं इस दुष्ट की क्रूरता अधिक जानना। तातैं अपने विवेकबल तैं ऐसे दुष्टन को परखकैं इनके संगतैं बचना बहुत सुखकारी है। जो कुसंगति तैं बचि सत्संग मिलाय अपना भला करना है सो मनुष्य पर्याय के विवेक का ये ही उत्तम फल है। आगे सज्जन-दुर्जन का स्वभाव बताइये है—

गाथा—मक्षक जौंक पणंगा, दुठादि चतुक होय दुखदायो। ईख दण्ड कणक सुअगरा सयणादि चतुक होव सुहगेयो ॥ ५८ ॥

याका अर्थ—मक्षक कहिये, माख। जौंक कहिये, जल-जोंक। पणंगा कहिये, सर्प। दुठादि चतुक होय दुख दायो कहिये, दुष्टजन को आदि लेय च्यारौं दुखदाई हैं। ईख दण्ड कहिये, सांटा (गन्ना)। कणक कहिये, सोना। सुअगरा कहिये, शुभ अगर-चन्दन। सयणादि चतुक होय सुहगेयो कहिये, सज्जन पुरुष को आदि च्यारों सुखदाई जानना। भावार्थ—माखी, जोंक, सर्प अरु दुष्ट-नर—ए च्यारि पर-जीवनकौं दुखदाई कहे सो ही कहिये हैं—जो माखी, पराये भोजन-जल में पतन होय मरण करि पीछे अन्न-जल लेनेवाले कूं दुखी करै। सो देखो, इस माखी की दुष्टता। जो पहिले तो आप मरि, पीछे और कूं दुखी करै और जल की जौंक का ऐसा ही सहज स्वभाव है। जो दूध का भरा आँचल पर लगावैं तो दूध कूं तजि, लोहू कूं अङ्गीकार करै है। सर्प का ऐसा स्वभाव है जो ताकौं दुग्ध पिवाइये, तो जहर होय। सो प्यावनेवाला बहुत दिन पर्यन्त सर्प को दुग्ध प्याय पुष्ट करै। परन्तु कदाचित् प्यावनेहारा गाफिल रहेगा, तो ताही कूं खायगा और ऐसे ही दुष्ट-प्राणी पै अनेक उपकार करि, ताकी रक्षा करि, पालि पुष्ट करौ। परन्तु यह दुष्ट-जन, सर्व उपकार भूलि कैं उलटा उपकार-

(नपुंसक) कौं स्त्री का संग वृथा है। पति रहित स्त्रीकूं, श्रृङ्गार कार्यकारी नाहीं। तैसे ही मूर्खनकूं धर्म की कथा कार्यकारी नहीं। भावार्थ—अन्धे पै पञ्चवरन रतन के प्रकाश कार्यकारी नाहीं तथा अनेक रङ्ग-विरङ्ग स्वर्ण व रतनन के चित्राम शुभाकार अन्धे पै वृथा हैं तथा अनेक दीपकन की माला जो दीप माला सो भी प्रकाश अन्धे पै वृथा है। तैसे ही अज्ञानी मूर्ख पै धर्मोपदेश धर्म कथा वृथा है और बहरे पै अनेक सुस्वर कण्ठ सहित मधुर स्वर को लिए अनेक राग का गावना। सुन्दर बीणा, बांसुरी, बाजादि अनेक वादित्रन के सुर। ये सब गाना बजावना बहरे पै वृथा है। तैसे ही मूर्ख के पासि धर्म कथा वृथा है और नपुंसक के पास सुन्दर स्त्री का मिलाप वृथा है। तैसे मूर्ख पै धर्म-कथा करना वृथा है और पति बिना जो विधवा स्त्री सो श्रृङ्गार करि कौन कौं दिखावे ? भर्तार तौ है नाहीं और पर-पुरुष कौ अपना श्रृङ्गार दिखावे तौ कुशील का दोष लागै। तातं स्त्री का श्रृङ्गार भर्तार के आश्रय ही, उसे शोभायमान करै है। भर्तार बिना विधवा स्त्री का अनेक श्रृङ्गार वृथा है। तैसे ही मूर्ख पासि धर्म-कथा वृथा है। कैसा है मूर्ख ? जो ज्ञान नेत्र रहित अन्ध समान है। ये जिन वचन पर-भव सुख देनेहारे, तिनके सुननेकूं वधरे समानि, कु-कथा का अभिलाषी, क्रोधाग्नि करि भस्म भया है हृदय जाका, अरु तूने प्रश्न किया, सो प्रमाण है। जो उपदेश है सो भोलेकूं ही है। परन्तु मूर्ख भोले दोय प्रकार हैं—एक स्वभाव ही तैं उपज्या तब तैं कछू समझता नाहीं। ऐसा भोला, पुण्य-पाप में समझता नाहीं। काहू के धर्म भावतैं द्वेष नाहीं। आगे कबहूं धर्म का उपदेश मिल्या नाहीं। ऐसे भोले जीवन कूं तौ क्रोध-मानादि कषाय भी दीर्घ अंश सहित नाहीं। अनादि सहज (स्वभाव) की मूर्खता लिए है। ऐसे भोले जीव सरल भाव सहित कौं तो जिन-आज्ञा में धर्मोपदेश कह्या है। ऐसा भोला उपदेश योग्य है और ये जीव धर्मोपदेश स्वीकार करि अपना अपना भला भी करैं हैं। तातैं ये उपदेश-योग्य हैं और एक मूर्ख जानता-पूछता ही क्रोध, मान, माया, लोभ के वशीभूत होय; धर्म का भला उपदेश नाहीं अङ्गीकार करै है। ऐसे कूं धर्मोपदेश नाहीं। काहे तैं सो कहिये है। जो कोई धर्मी जीवतैं प्रथम तो स्नेह था। सो वाके निमित्त पाय धर्म का सेवन विषैं लगा रह्या-धर्म सेवन किया और जब उस धर्मात्मा तैं कोई कारण पाय स्नेह टूटि गया तब यानैं उस धर्मात्मातैं द्वेष-भाव के योगतैं, व्यसनासक्त होय धर्म सेवन तजि दिया और मूर्ख का संग पाय, कुमार्गी भया। अब याकूं धर्मोपदेश कठिन होय गया।

तातैं यह धन्य है। ऐसा जानि लौकिक गुरु तैं भला-शिष्य प्रसन्न ही होय है। सो ये शिष्य कनक समानि जानना और अगर-चन्दन ताकौं जेता छेदो तेती ही सुगन्ध देय है। जेता घिसो, तोड़ो, जालो पर चन्दन उत्तम है, सो त्यों-त्यों भली सुगन्धित देय है। तैसे ही सज्जन पुरुषनकौं भी कोई पापी दुर्वचनादि से उपद्रव करै दुख देय तो धर्मात्मा-पुरुष द्वेष नाहीं करैं। जैसे—राजा श्रेणिक का पुत्र-वारिषेण महाधर्मात्मा सज्जन-स्वभावी सो ए राज पुत्र पर्व के दिन उपवास करि रात्रि-समय मसान-भूमि मैं सर्व जीवनतैं क्षमा-भाव किए कायोत्सर्ग-मेरु की नांई धीर-चित्त किए धर्मध्यान रूप तिष्ठै था। सो चोर नै भयतैं चोरी का हार इनके पासि डारि गया। सो चोर तो भाग गया। अरु पीछै कुतवाल आया। सो हार देख्या व राज-पुत्र देख्या। सो याने जानी ये ही चोर है। सो बिना समझै, कुतवाल ने राजा तैं कही। हे नाथ! वारिषेष ने चोरी करी। तब राजा श्रेणिक भी न्याय-मार्ग के वश, कछु न विचारता भया। राजा नै मारने की आज्ञा दई। तब कुतवाल मसान में जाय वारिषेण पै मारिवे कूं खड़ग चलाया। तब कुमार के पुण्य प्रभाव तैं शस्त्र था, सो फूल माला भई। देवों ने आय सहाय किया। जब ये अतिशय ऐसा हुआ। तब सुनिकैं राजा श्रेणिक, पुत्र पै गया। क्षमा कराय कही पुत्र घर चालो। तब वारिषेण ने कही—हमारा सबतैं क्षमा-भाव है। हमारे प्रतिज्ञा थी कि उपद्रव मिटै दीक्षा का शरण है। सो अब उपसर्ग गया तब दीक्षा लई। कोई राजा तैं व कुतवाल तैं सुबुद्धि कुमार ने द्वेष-भाव नाहीं किया। सो सज्जन पुरुषन का सहज ही ऐसा स्वभाव है जो पर की अज्ञान चेष्टा नहीं देखैं अपने सज्जन-भाव ही की रक्षा करैं। तातैं ईख-दण्ड, कनक, अगर-चन्दन और सज्जन-पुरुष—ये च्यार पदार्थ सब जीवन कूं सुखदाई हैं। ऐसा जानना। तातैं जे विवेकी हैं तिनकूं क्रूरता तजि, सज्जनता अङ्गीकार करना योग्य है।

इति श्री सुदृष्टि तरङ्गिणी नाम ग्रन्थ के मध्य में ज्ञेय-हेय-उपादेय स्वरूप वर्णन करनेवाला इकईसवाँ पर्व सम्पूर्ण भया ॥२१॥

आगे ऐसा कहैं हैं जो मूर्ख को धर्मोपदेश कार्यकारी नाहीं—

गाथा—अन्धपैदीपणकज्जो, वधरोरागस्स हीजतियसंगो। पतिगतनारिसिंगारो, जोसठयासेयधम्म विणकज्जो ॥ ५९ ॥

अर्थ—अन्धे पै दीपक है, सो कार्यकारी नाहीं। बहरे पर राग (गाना) कार्य-कारी नाहीं। अरु हीजरे

श्री सुदृष्टि

नाहीं है। वाही की काल-स्थिति पकि जाय, संसार निकट रहि जाय, तब सहज ही कषाय मन्द होय जाय। सत्संग में आय, अपनी भूलि मानि, अपनी अज्ञानता को निन्द्य, प्रायश्चित्त लेय, शुद्ध होय, धर्म सेवन करै तौ करै। बाकी ऐसा मूर्ख, उपदेश तैं नाहीं सुलटै है। तातैं ऐसे क्रोधी कौं धर्मोपदेश मनै किया है और आप मानी है, सो धर्म स्थान है जाय कैं देव-गुरु-धर्म कौं नमस्कार करता, चित्त मैं लज्जा उपजावै और कोऊ धर्मात्मा, समता भाव सहित, ताकौं देखि, ताकूं सामान्य जानि, विनय-भाव नाहीं करै। तौ आप कौं विशेष पुण्यात्मा जानि, धर्मात्मा जीवन के अविनय रूप प्रवर्त्तै। ऐसे दीर्घ मानी-मूर्खा कूं, धर्मोपदेश नहीं होय तथा आप कैं तो काहू तैं मान-भाव नाहीं। आप तौ सुजीव है। परन्तु कोई महापापी मान का निमित्त पाय कैं सुधर्म तैं तथा धर्मी-जीवन तैं, द्वेष-भाव करै। पर के कहैं, धर्म का तथा धर्मी-जीवन का अविनय करै। ऐसे भोले-मूर्खन कूं धर्मोपदेश नाहीं। कोई मायावी-दगाबाजी, जीव, जो जानते ही भोले जीवन कौं बहकावे कौं तथा ठगवै कौं, देव-धर्म-गुरु का स्वरूप और ही रूप कहै है। नय-जुगति देय कैं, कुदेव-कुगुरु-कुधर्म का अतिशय प्रगटावता, लोगन को ठगै। ऐसे मायावी तथा अनेक उपाय करि अपना महन्तपना दिखाय, तिन भोले जीवन कूं अपने पांयन नमावै। कोई जुगति तैं, उनका धर्म लिया चाहे। ऐसे दगाबाज प्राणी को धर्मोपदेश नाहीं और केई महालोभी, मायाचारी, मनोवांच्छित इन्द्रिय-जनित सुख की इच्छा कै धारनेहारे, गज-घोटक-पालकी-रथादि की असवारी के वांच्छनहारे, जिनका पुण्य तौ कम-हीन पुण्यी, कमावे-पैदा करवे की तो जिन्हैं शक्ति नाहीं और भोगोपभोग की दीर्घ तृष्णा सो अपने ज्ञान के बल तैं भोले जीवन कूं अपने वढ़त्व-भाव का चमत्कार बताय, अपना त्यागी-निष्पृहपना बताय, पराए घोटक-रथादि असवारी का लोभी। पराये धन का इच्छुक-लोभी, इन कौं सुधर्म का उपदेश नाहीं। क्योंकि ऐसे भोगी, पाखण्डी, माया के जोग तैं इन्द्रिय-भोग के भोगनहारे इनकों धर्म रुचै नाहीं और सुधर्म रुचै, तो याके भोग-भाव, लोभादि सर्व ही अवश्य ही छूटि जांय। सो यो महाकषायी, भोगी, मानी, इन्द्रिय सुख भोग्या चाहे। सो ऐसे जानते-पूछते धर्म-रहित मूर्खा कौं धर्मोपदेश मनै है और भोले सरल मूर्खनकौं धर्मोपदेश लागै। ऐसा जानना ये तेरे प्रश्न का उत्तर है। या भांति मूर्खा दोय भेद कहे। जैसे—रोगी जीव दोय प्रकार है। सो

तरंगिणी

अब याके कठोर हृदय विषैं कोमल वचन परै नाहीं। तब और कोई पापी जन कोई धर्मात्मा का द्वेषी था, सो यापै जाय अनेक सेवा चाकरी खुसामद करि ताकौं मित्र समानि करि पीछे वातैं कही। जो ये धर्मात्मा है सो हमारा द्वेषी है। तातैं तुम हमारे हितू हो, कृपा करौ हो सो या धर्मी तैं स्नेह-सत्कार तजौ। हम तो आपके सेवक हैं। मान-कषाय के योगतैं औरकूं नाहीं देखे है और कदाचित् देखे तो तुच्छ देखे है। जैसे—महाअन्ध तौ कोई पदार्थ देखता नाहीं और अल्प अन्ध होय है सो पर के बड़े पदार्थन कौं छोटे देखै। तैसे मूर्ख जानना तथा महा-मायावी, बांस की जड़ की लाठी समानि है गांठ-गठीला कुल हृदय जाका तथा हिरण समानि चञ्चल वकचित्त का धारी तथा नाग-गमन समानि हृदय का धारी, दुराचारी, मूर्खता सहित ऐसा मायावी, दगाबाज होय तथा महालोभी मार्जार (बिल्ली) समानि आमिष (मांस) भक्षी तथा विषभरे (छिपकली) समानि आमिष लोभ धारक तथा मधुमाखी समानि लोभ का धारी ऐसे क्रोधी-मानी-मायावी व लोभी, शान्ति रस भाव जो समता भाव ताकरि रहित सप्तव्यसनी और अनेक दोषन सहित ताका निवास इत्यादि औगुणन का धारी, भले गुण रहित सत् पुरुषन की निन्दा करनहारा सत्संगीन की सभा मैं अनादर योग्य ऐसा महामूर्ख, ताके पासि धर्म-कथा करना वृथा है। तातैं महापण्डित विवेकी जन जो सम्यग्दृष्टि के धारी हैं सो मूर्खन कूं धर्म का उपदेश नाहीं देय हैं। यहां प्रश्न—जो तुमने यहां कह्या कि मूर्खन कूं उपदेश देना योग्य नाहीं। सो संसार में पण्डित तो थोड़े दीखें हैं और भोले मूर्ख जीव बहुत देखिए है। सो उपदेश बिना मूर्ख का भला कैसे होय ? और समझे को कहा उपदेश है ? वह तौ सब जानै। अरु उपदेश तो असमझ-मूर्ख-भोले ही कूं है। सो योग्य है। यहां भोले कूं उपदेश मनै कैसे किया ? ताका समाधान—भो भव्य ! जो इत्यादिक कपट वचन कहे। तब वा मूर्ख नैं मूर्ख के कहे तैं, शुद्ध-धर्मातमा तैं द्वेष-भाव करि, आप भी हठी भया। अरु कुमार्ग सेवन करता भया। जब उस धर्मात्मा कौं देखे, तब ही द्वेष-भाव रूप भाव हो जांय। सो इनका सत्संग छूटि गया तथा जो संग भया ताकरि हृदय कठोर भया। अनाचार भला लागनै लागा। तातैं यह भी जानता-पूंछता पापी-मूर्ख के कहै तैं, शुद्ध-धर्म छोड़ कुमार्ग में लागा। उलटा धर्म तैं तथा धर्मी-जीवन तैं द्वेष-भाव करि, पापरूप प्रवर्त्या। ऐसी कहने लगा, जो हमारा होना है सो होय है। ऐसी जाति का भोला-मूर्ख होय सो अपने हिताहित में तो नाहीं समझै और कषाय तीव्र होंय ऐसेकूं धर्मोपदेश

नाहीं है। वाही की काल-स्थिति पकि जाय, संसार निकट रहि जाय, तब सहज ही कषाय मन्द होय जाय। सत्संग में आय, अपनी भूलि मानि, अपनी अज्ञानता को निन्द्य, प्रायश्चित्त लेय, शुद्ध होय, धर्म सेवन करै तौ करै। बाकी ऐसा मूर्ख, उपदेश तैं नाहीं सुलटै है। तातैं ऐसे क्रोधी कौं धर्मोपदेश मनै किया है और आप मानी है, सो धर्म स्थान है जाय कैं देव-गुरु-धर्म कौं नमस्कार करता, चित्त मैं लज्ञा उपजावै और कोऊ धर्मात्मा, समता भाव सहित, ताकौं देखि, ताकूं सामान्य जानि, विनय-भाव नाहीं करै। तौ आप कौं विशेष पुण्यात्मा जानि, धर्मात्मा जीवन के अविनय रूप प्रवर्त्तै। ऐसे दीर्घ मानी-मूर्ख कूं, धर्मोपदेश नहीं होय तथा आप कैं तो काहू तैं मान-भाव नाहीं। आप तौ सुजीव है। परन्तु कोई महापापी मान का निमित्त पाय कैं सुधर्म तैं तथा धर्मी-जीवन तैं, द्वेष-भाव करै। पर के कहैं, धर्म का तथा धर्मी-जीवन का अविनय करै। ऐसे भोले-मूर्खन कुं धर्मोपदेश नाहीं। कोई मायावी-दगाबाजी, जीव, जो जानते ही भोले जीवन कौं बहकावे कौं तथा ठगवै कौं, देव-धर्म-गुरु का स्वरूप और ही रूप कहै है। नय-जुगति देय कैं, कुदेव-कुगुरु-कुधर्म का अतिशय प्रगटावता, लोगन को ठगै। ऐसे मायावी तथा अनेक उपाय करि अपना महन्तपना दिखाय, तिन भोले जीवन कूं अपने पांयन नमावै। कोई जुगति तैं, उनका धर्म लिया चाहे। ऐसे दगाबाज प्राणी को धर्मोपदेश नाहीं और केई महालोभी, मायाचारी, मनोवांच्छित इन्द्रिय-जनित सुख की इच्छा कै धारनेहारे, गज-घोटक-पालकी-रथादि की असवारी के वांच्छनहारे, जिनका पुण्य तौ कम-हीन पुरायी, कमावे-पैदा करवे की तो जिन्हैं शक्ति नाहीं और भोगोपभोग की दीर्घ तृष्णा सो अपने ज्ञान के बल तैं भोले जीवन कूं अपने बढ़त्व-भाव का चमत्कार बताय, अपना त्यागी-निष्पृहपना बताय, पराए घोटक-रथादि असवारी का लोभी। पराये धन का इच्छुक-लोभी, इन कौं सुधर्म का उपदेश नाहीं। क्योंकि ऐसे भोगी, पाखण्डी, माया के जोग तैं इन्द्रिय-भोग के भोगनहारे इनकों धर्म रुचै नाहीं और सुधर्म रुचै, तो याके भोग-भाव, लोभादि सर्व ही अवश्य ही छूटि जांय। सो यो महाकषायी, भोगी, मानी, इन्द्रिय सुख भोग्या चाहे। सो ऐसे जानते-पूछते धर्म-रहित मूर्खा कौं धर्मोपदेश मनै है और भोले सरल मूर्खनकौं धर्मोपदेश लागै। ऐसा जानना ये तेरे प्रश्न का उत्तर है। या भांति मूर्खा दोय भेद कहे। जैसे—रोगी जीव दोय प्रकार है। सो

महारोगी और असाध्य वेदना के धारी। एक देशान्तरी वैद्य आया सो वानै दोऊ रोगी देखे। सो उनकी नाड़ी-परीक्षा करि, सब शुभाशुभ जानि कही—ये रोगी तो इलाज योग्य है। अरु ये रोगी असाध्य है, याका इलाज नाहीं। तब काहू ने कह्या, जो याका इलाज काहे तैं नाहीं ? तब वैद्य ने कही—एक रोगी का आयु-कर्म बड़ा है और एक का आयु-कर्म अल्प है, सो मरेगा। याका जतन नाहीं। याके ऊपर जितने जतन करौ, सब वृथा जांय, जतन लागै नाहीं। तैसे ही जाका पर-भव भला होय, ऐसे सहज का भोला-मूर्ख तो उपदेश के योग्य है। याकौं धर्मोपदेश लागै भी है और जिसकी पर-भव में बुरी-गति होय, वह जानता भी कषाय-योग्य तैं, सुधर्म तैं विमुख होय। ऐसे जीवन कूं धर्म का उपदेश, सुहावता नाहीं। तातैं धर्मोपदेश लागता नाहीं। यहां बहुरि प्रश्न—जो तुमनै कह्या कि धर्म का उपदेश कोई कौं तो है, कोई कूं नाहीं। सो भगवान का उपदेश तौ सर्व कूं चाहिये और कोऊ कूं होय, कोऊ कूं नाहीं, तो इसमैं वीतरागता कहां रही ? सरागता आवेगी। ताका समाधान—जो हे भव्य ! तूनै कही सो सत्य है। परन्तु अब तूं चित्त देय सुनि। जैसे—जगत् विषैं वैद्य दोय प्रकार होय हैं। एक तौ भोला अरु मानी वैद्य होय है। एक परमार्थी, सरल परिणामी अरु विशेष ज्ञानी। ये दोय जाति के वैद्य हैं। सो कोई भोला-वैद्य शास्त्र-ज्ञानतैं रहित, नाड़ी-परीक्षा, दृष्टि-परीक्षा, मूत्र-परीक्षा, पसेव-परीक्षा, शकुन-परीक्षा—इन आदिक जे वैद्य के गुण, तिन रहित मूर्ख वैद्य होय। सो तो लोभ के वशि तथा मान-बड़ाई के अर्थ अपनी महन्तता भोले जीवन को बतायवे कौं, अजान वैद्य ओषधि देय जतन करै। सो केतेक रोगी, दीर्घायु के धारी, सो तो कोई अपने पुण्य तैं बचै है। रोग कुछ दिन दुख देय, आखिर जाता रहै। सो वह भोले-रोगी ने जानो, या वैद्य ने मोहि भला किया है। सो इस वैद्य का यश किया, धन दिया और जो अल्प आयु का धारी रोगी था, सो जतन करते ओषधि देय तैं ही मर गया। सो इस रोगी के घरवाले इस वैद्य की बहुत निन्दा करैं। जगह-जगह में वैद्य की निन्दा करते भये। सो जीवना-मरना तो कर्म के आधीन है। वैद्य का कछू सहारा नाहीं। परन्तु या वैद्य की इतनी अज्ञानता है। जो बिना-विचार परीक्षा-रहित इलाज करै है। तातैं वृथा जगत् में निन्दा करावे। सो तो ये मूर्ख-वैद्य कहावैं हैं और जे विवेकी वैद्य हैं। सो अनेक वैद्यक शास्त्रों के ज्ञान सहित नाड़ी-परीक्षा, मूत्र-परीक्षा, दृष्टि-परीक्षा, पसेव-परीक्षा, शकुन-परीक्षा के ज्ञान सहित

होंय। सो नाड़ी-परीक्षा तो हस्त की, पांव की, शीश की, छाती की नसें देख शुभाशुभ रोग का कहना सो नाड़ी-परीक्षा और मूत्र की वर्ण, स्पर्श, गन्ध, छींटादि लक्षण देख शरीर के रोगन का शुभाशुभ जानना सो मूत्र-परीक्षा है और रोगी के नेत्र व शरीर की दशा देखि दृष्टि ही तैं रोगी का शुभाशुभ जानना सो दृष्टि-परीक्षा कहिए और रोगी के शरीर के पसीना की गन्ध सूंघि करि रोग कूं जाने सो पसेव परीक्षा है और कोई रोगी के समाचार लेय वैद्य पै आवै ताके मुख सूं समाचार सुनि तथा वाके मुख की सूरत देखि, रोगी का शुभाशुभ जाने, सो शकुन-परीक्षा कहिये तथा दूत-परीक्षा कहिये। ऐसे वैद्य के गुण सहित, भला वैद्य होय। सो इतने गुण तैं, रोगी के शुभाशुभ जानै सो सुवैद्य, जब रोगी का जीवना जानैं, ताका आयु-कर्म बड़ा जानैं, तो जतन करैं और भला होता न जानें आयु अल्प जानैं। तो इलाज करै नाहीं। मान-बड़ाई की इच्छा है नाहीं, कोऊ तैं धन लेय नाहीं। परमार्थ कौं, जतन बताय रोग खोवे, ताका यश ही होय। सर्व लोक पूजै-प्रशंशैं। ऐसे गुण का धारी सबका उपकार करै। अरु काहू तैं कछू चाहै नाहीं। सो यह वैद्य धन्य है। ऐसा निस्पृह गुणी होय, तो पूजा पावै है। तैसे ही भोला, तुच्छ-ज्ञानी, ज्ञानरहित, सरागी, हस्ती-घोटक आदि असवारी के इच्छुक, अपनी महन्तता प्रगट करने की इच्छा जिनकैं, ऐसे रागी-द्वेषी देव तौ सर्व कूं खोटा-अतत्त्व उपदेश देय, अपना पूज्यपद तौ कराय दें। पीछे सुननेहारा नरक जावो, चाहे स्वर्ग जावो। चाहे वह जीव उपदेश योग्य होऊ, चाहे मति होऊ। सर्वकूं एक-सा उपदेश देंय। शिष्य का बुरा-भला नाहीं विचारैं। सो तो भोला देव-गुरु कहिए और अन्तर्यामी, सर्व-लोक की जाननहारा, केवल-ज्ञानधारी प्रभु शुद्ध-देव वीतराग का उपदेश ताहीकौं है, जाकौं उपदेश लागै अरु जाकौं न लागैं ताकूं उपदेश मनै है। वृथा उपदेश देते नाहीं। देने योग्य कूं देय हैं। जैसे—पारस पाषाण है, सो कुधातु जो लोहा ताकौं अपने स्पर्श तैं कञ्चन करै है। कांसा, पीतल, तांबादि अनेक धातु हैं। ते धातु पारस लगाय कञ्चन न होंय हैं। जे होने योग्य होय, सो होंय हैं। तैसै ही सर्वज्ञ-भगवान का उपदेश, भव्य होय, निकट संसारी होय, तिनकौं तो होय है। ऐसे भव्य निकट संसारी, भोले-मूर्ख कूं, धर्म रुचै भी है। ताका लाभ भी होय है। तातैं ऐसे भोले कूं उपदेश है और जे अभव्य तथा अभव्य समान जे दूरानदूर भव्य जीव तिनकूं कभी भी सुधर्म का लाभ नहीं

होय। तिनकूं केवली का उपदेश नाहीं। ऐसे तेरे प्रश्न का उत्तर जानना। तातैं जे भव्य जीव विवेकी हैं। सो जो वस्तु शुद्ध होती जानैं, तौ ताका इलाज भी करैं हैं और जो वस्तु शुद्ध नहीं होती होय, ताका इलाज वृथा है। तातैं जे हठग्राही क्रोधाधि कषाय मैल करि लिप्त, जानते पूछते ही धर्म तैं विमुख प्रवर्तैं तिनकौं उपदेश नाहीं कह्या। जब इनका होतव्य भला होयगा तब स्वमेव ही धर्म सन्मुख होंयगे। ऐसा जानना आगे कहैं हैं जो ये सर्व किसब (व्यापार) दया रहित हैं—

गाथा—पसु रक्खो किख खेटय णिप वैदो छीय रजक रथवाहो। वणरक्खो पल भक्खो, एसहु किप्पाय वज्जयो आदा ॥ ६० ॥

अर्थ—पसु रक्खो कहिये, तिर्यञ्च का पालनहारा। किख कहिये, खेती करनेहारा। खेटय कहिये, शिकारी। णिप कहिये, राजा। वैदो कहिये, वैद्य। छीय कहिये, छीपा। रजक कहिये, धोबी। रथवाहो कहिये, रथगाड़ी हांकनेहारा। वणरक्खो कहिये, माली। पलभक्खो कहिये, मांस खानेहारा—ए सहु किप्पाय वज्जयो आदा कहिये। ये सब दया रहित आत्मा जानना। भावार्थ—नाहर, सुअर, रोज, सांभर, चीता, रीछ, सीगोस, खरगोश, श्वान, मार्जार, मगर, चिड़ूल, तीतर, बाज, बुलबुल, विसम्भरादिक तथा गैया, भैंसा, भैंसी, बकरी, भेड़, बैल, हस्ती, घोटकादि—इन पशूनकों पालनहारे जीवन का हृदय दयारहित सहज ही कठोर होय है तथा सर्प, न्यौला, गोहरा, चूहे, तोतादिक जीवन के रक्षक कठोर होय हैं। इनकों पर जीवन पै लाठी, पथरा, लात, मूंकी मारते तथा जीव रहित कार्य करते दया नाहीं होय। ये पशुपालक सहज ही दया भाव रहित हैं। तातैं जैनी दया-भाव का धारी षट् काय जीवन का रक्षक पशून का संग्रह नाहीं करै। यहां प्रश्न—जो तुमने कह्या कि पशूनकौं नाहीं पालिये सो जगह-जगह जैनी धर्मात्मा है सो अनेक पशु-जीवन की रक्षा करते देखिये है। कोई तौ धन खर्च घास अन्न लेय पशून कूं खुवावते देखिये हैं। बन्दी मैं पड़े जे पशु ते महादुखी देखि केई धर्मात्मा धन देय छुड़ाय कैं सुखी करैं। कोई श्वानकों भूखे देखि रोटी डारते देखिये है। इत्यादिक विधितैं पशून की रक्षा करैं हैं। जा पशु तैं चाल्या नाहीं जाय, ताकूं ठाम ही पै तृण-जल देय पौसै हैं। कोई पशु का पांव टूटि गया होय सो ताकौं तृण-जल करि पोखि ताकी रक्षा करिये है। सो क्या उनकौं योग्य नाहीं ? ताका समाधान—जीव पालन दोय प्रकार है। एक तो शिकारादिक-पाप निमित्त पालिए। सो तो धर्मात्मा कूं योग्य नाहीं। यातैं पाप उपजै है और एक

पालन दया सहित है। सो लूला पशु, अन्धा बूढ़ा, दुर्बल रोगी इत्यादिक पशून कूं निष्प्रयोजन करुणा हेतु तिनकी रक्षा कौं यथायोग्य उन माफिक प्रासुक घास रोटी गाल्या जल देय निर्बन्ध राखि सब जीवन पर दया-भाव करि सबही की रक्षा करना योग्य है और जे कसाई हैं सो अपने प्रयोजन पोखने कूं असवारीकूं केऊ दूध पीवे कूं, केऊ भार लादवे कूं, केई लड़ाई देखवे कूं इत्यादिक अपना विषय पोषने निमित्त स्वार्थकौं पशु पाल रक्षा करैं। बन्धन मैं राखें। सो ऐसा पालना तो पापकारी है योग्य नाहीं है जिनकूं निर्बन्ध राखि स्वच्छन्द उनकी इच्छा प्रमाण दया भावन करि राखै तिनकूं दीन असहाय दुखी जानि रक्षा करै। सो या बात धर्मात्मा को योग्य ही है। भले प्रकार दया-धर्म अङ्ग का पालक तो एक जैनी ही है। औरन कूं दया उपजती नाहीं। तातैं दया निमित्त यथायोग्य सर्व पशून की रक्षा में पुण्य हो है, दोष नाहीं। ऐसा जानना तथा खेती के करते धरती फाड़ते प्रत्यक्ष पंचेन्द्रिय आदि जीवन की हिंसा होती अपने नेत्रन तैं देखिये है। परन्तु खेती वारी पांवतैं दाबि चल्या जाय ताकौं करुणा भाव नाहीं होय। तातैं जैनी दयावान्कूं खेती करना योग्य नाहीं। खेती में दया नाहीं और खेटक करनहारा शिकारी जीव सो प्रत्यक्ष निर्दयी है। जे दीन पशु महाभयवान् है सदैव हृदय जिनका वन के विषैं कोई के पांवन का तनिक भी खटका सुनै हैं तो चौंकि उठैं हैं। महाभयवन्त होय इत-उत देखने लागैं हैं और कोई जीव आवता देखैं तो भयवान् होय वन में भागि जांय हैं। मारे भय के बस्ती में कबहूँ नाहीं आवैं हैं। सदैव उद्यान में ही रहैं हैं। सूखे तृण खाय, अपने तन की तथा अपने कुटुम्ब की रक्षा करैं हैं। भय के मारे काहू के खेत में नाहीं घुसैं हैं। दूर तैं वस्त्रादिक का खेत में विजुकादि देखि, नर बैठा जानि, भागि जांय, ऐसे अज्ञानी हैं। भोले हैं। वन-तृण का भोग करि, नदी-तालावन का जल पीवैं हैं। महाभय तैं, महाकठिन तैं जीवैं है। तिनका काहू तैं द्वेष नाहीं। काहू का बिगाड़ करैं नाहीं। ऐसे बिचारे असहाय-दीन पशु, तिनकूं जे प्राणी हतैं हैं। ऐसे पाप करते जिनका हृदय नाहीं कंपै है। ते प्राणी पापाचारी, महाकठोर, वज्र समान चित्त के धारी हैं। ऐसे दया रहित जीव, कैसे दुख सागर में जाय मगन होंयगे, सो हम नहीं जानैं, सर्वज्ञ-भगवान् जानैं। ये खेटक-किसव दया रहित है, सो दयावान् जीव के तजवे योग्य है तथा जे राजा हैं तिनका चित्त भी बहुत कठिन होय है। राज्य के निमित्त तैं अनेक युद्ध करना। नर हनन, ग्रामादि दाह के पाप करतें; उन्हें दया नाहीं होय है।

तातैं राजा पै भी दया नहीं पलै और वैद्य हैं सो ओषधि के निमित्त अनेक वनस्पति कटावैं। अनेक की छाल उपड़ावैं। अनेक वनस्पति की जड़ खुदवावैं। अनेक कन्दमूल-साधारण वनस्पति का रस कढ़ावना, पिसवाना इत्यादिक बड़ी हिंसा करते भी ताका चित्त दया-भाव रूप नहीं होय है तथा आली (गीली) वनस्पति की लकड़ी जलाय, बहुत दिन अग्नि का आरम्भ करते भी, चित्त में दया-भाव नाही होय है। तातैं वैद्य का किसब, दयावान् नाहीं करैं और छीपा ताकें अनगाले जल से धोवना, बिलोवना, उकालना, बड़ी अग्नि का आरम्भ करना इत्यादिक आरम्भ मैं याके भाव, दया रूप नाहीं होंय। तातं छीपा पैं भी दया नाहीं पलै। धोबी के किसब में भी अनेक अनगाले जल का मथन, सर्व दिन अनगाले जल का बिलोवना, अनेक हिंसा का समूह, छीपा की नाईं आरम्भ का किसब है सो दया रहित है। तातैं यह भी किसब, दयावान् नाहीं करैं और रथवाहक जो गाड़ी-रथ के हांकनेहारे कूं, बैल कूं मारते, दया नहीं आवे। तातैं यह किसब में दया नाहीं वन रक्षक जो माली, बाग की रक्षा का करनहारा, सदैव खेतीहारे की नाईं हिंसा-आरम्भ रूप है तातैं माली के किसबवारे पै भी दया नाहीं पलै और मांस-भक्षी जो आमिष का खानेहारा, महाग्लानि उपजावनहारा, ऐसे मांसाहारी पै दया नाहीं पलै। ऐसे कहे जे सर्व किसब के करनेहारे, इन पै करुणा नाहीं पलै। इनसे, सहज ही ऐसा कठोर स्वभावी जीव होय है। तातैं दयावान् हैं तिनकौं कहे जो दया रहित किसब तिनमैं फँसना योग्य नाहीं। तिन किसबवारे में भी वाणिज्य के निमित्त, लोभ करि फँसना योग्य नाहीं, ऐसा जानना। आगे ऐसा कहैं हैं कि कृपणादिक का धन ये कृपण नहीं भोगवैं हैं—

गाथा—सञ्चय पिपील धाणो, माखिक सञ्चय मधुमुखलक्ष्यो। किप्पण सञ्चय लच्छी, एण भुञ्जय अएणभुञ्जयती ॥ ६१ ॥

अर्थ—संचय पिपील धाणो कहिये, चींटी का धान्य संचयना। माखिक संचय मधु मुख लक्ष्यो कहिये, माखी अपनी लार जो शहद ताकूं संचै है। किप्पण संचय लच्छी कहिये, सूम का जोड़ या धन। एण भुजय, अएण भुजयती कहिये ताकौं ये नाहीं भोगवैं हैं और ही भोगैं हैं। भावार्थ—वन की रहनेहारी चींटी का समूह है। सो तिननै बड़ा खेद खाय-खाय एक-एक अन्न का मुख में वन तैं ल्याय-ल्याय इकट्ठा कर या। सो आपकौं तो भोगने की शक्ति नाहीं सो भोग सको नाहीं अरु वृथा मोह के मारे, लोभ करि, अन्न का संग्रह कर या। सो बहुत दिन इकट्ठा

करते पाँच-च्यारि सेर इकट्ठा भया। तब कोई पापी, अन्यायी निर्दयी अन्न के भूखे, लोभी, निर्धन, भीलादिक ने आय चींटीन का घर जानि, तिननैं बिल की धरा खोदि, अन्न लिया। सो हे भव्य! हो देखो। इन चींटीन का लोभ-स्वभाव जगत् में प्रगट, सब जानैं थे। जो चींटी अन्न जोड़ि इकट्ठा करैं हैं। ता संचय के निमित्त तैं कोई दुष्ट प्राणी, पराये माल के खानेहारे ने, घरकों फोड़्या। सो घर का नाश भया और घर के क्षय तैं, चींटीन के तन का नाश भया, अन्न गया। सो ये प्रगट देखो। एते दुख, अन्न संचयतैं भये। जो आप खाय लेती, तो दुख नाहीं होता। तातैं जे विवेकी हैं तिनकौं अपने कमाये धन कौं, अपने हाथ तैं भोग लेना योग्य है और माखीन का समूह वनस्पति का रस अपने मुख में ल्याय उदर में खाया पीछे अज्ञानता करि, मोह के मारे, लोभ धार मुख की राह होय उदर का खाया रस हुलक करि पीछे काढ़्या आप भूखी रह उसे संचय किया। सो चोरन के भय तैं आकाश विषैं जाय, एकान्त जगह छत्ता बान्धा। अपने ज्ञान प्रमाण, बहु यत्न तैं बड़ा विषम स्थान देखि, छत्ता करि तामैं जुदा घर बनाय, सर्व माखीन नैं अपना-अपना रस, मेला किया। जब बहुत दिनन में सर्व के घर, रस तं भरि गये। इकट्ठा बहुत भया। तब कोई पापीजन-लोभी के नजर छत्ता आया। याने जानीं, यामैं बहुत मधु है। सो लेने का उपाय किया। सो जायगा महाविषम, उत्तुंग देखि, दाव नहीं देख्या। तब लोभी ने नीचे आग जलाई। बहुत धूम करी। सो धूम के निमित्त पाय, दुखी होय, सब माखी उड़ गईं। तब वाने छत्ता बांस से तोड़ि लिया। माखी थान भ्रष्ट भईं। दुखी होय, दशों दिशा में भ्रमती भईं। सो देखो, इननैं लोभ करि भूखी ही रह कैं, पेट का उगला काढ़ि इकट्ठा करि जोड़्या था, ताके योग तैं दुखी भयी। जोड़्या रस गया। जो खाय लेतीं, तो खेद नहीं होता। सो देखो, माखी ने तो लोभ किया जो उलाक को संच्या। परन्तु जग में ऐसे-ऐसे लोभी-दरिद्री पड़े हैं! सो माखी का उलाक भी नहीं देखि सकें। सर्व लिया। तो ऐसा लोभी, मनुष्यन का उलाक कैसे छोड़े? ऐसे लोभी-बुद्धिकों धिक्कार होऊ। तातैं जो लोभी धन पायकें धर्म में लगाय, नाहीं भोगवेगा, सो माखीन की नांई दुख पावैगा जो सूम जन हैं सो भी चींटी नांई माल जोड़ि-जोड़ि खेद खाय तो इकट्ठा किया। सो मूर्खनै नाहीं तो आप खाया, नाहीं और कूं दिया, नाहीं धर्म में लगाया, नाहीं कुटुम्बकूं खुवाया। आप भूखा रह, तुच्छ खाय मोटा वस्त्र पहिर दीन वृत्ति धारि माल जोड़्या। बहुत भय भये धरती में धर्‍या। जब आप मुवा

तो धरती का धरती में रह्या तथा जीवित रह्या तो याकौं धनवान जानि राजा ने कोई दोष लगाय लूटि लिया या लोभी ने पूर्व पुण्य तैं पाया था। सो यानैं धर्म का फल कछू नाहीं पाया। तातैं भो भव्य हो! पापी का धन धर्म में नाहीं लागै वृथा ही जाय। सो ये चींटी माखी सूम इनका पैदा किया धन ए नाहीं भोगवैं हैं और ही भोगवैं हैं। तातैं विवेकी हैं तिनकौं पाया धन तैं धर्म उपार्जना योग्य है। अब एते जीव दया-रहित हैं सो ही कहिये हैं—

गाथा—सवर खटी चियालो, मदवेचा मदपाणकर द्यूतो। तस सठ कुलहीणो, दुठचित्तो यरहय करणाये ॥ ६२ ॥

अर्थ—सवर कहिये, भील। चियालो कहिये, चाण्डाल। खटी कहिये, खटीक। मदवेचा कहिये, कलाल। मदपाणकर कहिये, मद पीनेवाला। द्यूतो कहिये जुवारी। तसयर कहिये, चोर। सठ कहिये, अज्ञान। कुलहीणो कहिये, कुलहीन। दुठचित्तोय कहिये, दुष्ट परिणामी। रहय करणाये कहिये, ये सर्व दया करि रहित हैं। भावार्थ—वनचर-वन का रहनेहारा पशु, ता समानि अज्ञान, नाहर समानि हिंसक, ऐसा जो भील का हृदय, सो सहज ही दयारहित-कठोर होय है। यातैं दया नहीं बनै तथा मृत पशून का चरम उतारै, घर ल्यावै, धोवै पकावै, रंगै, बेचै सो खटीक। याका भी चित्त महा अनाचार रूप, वज्र परिणामी, यातैं दया नाहीं पलै और जाकैं सदैव जीवन की हिंसा करि, जीवन का मांस बेचवे का किसब है, सो चाण्डाल है। सो ये भी महानिर्दयी है। यातैं भी दया-भाव नहीं पलै और मद बेचा कहिये कलाल, दारू का बेचनहारा। अनेक जीवन की घाति करि, मद करै। अनेक कृमि, पानी में बिलबिला उठैं। उनकौं उछलती देखै, तब उस जल कूं यन्त्र में डालि, दारू करते, ताकौं दया नहीं होय। तातैं ये भी दया नहीं पालै और मद का पीवनहारा, बेसुध-दया रहित है और चोर, जे पर धन का हरनहारा, महानिर्दयी, तातैं भी दया नाहीं बनै और शुभाशुभ विचार रहित, जन्म का अज्ञानी, खाद्य-अखाद्य के ज्ञान रहित, पुण्य-पाप भावना रहित, भोले जीव, यातैं भी दया नहीं पलै। काहे तैं जो दया तो, पुण्य-पाप में समझै, ज्ञानवान् होय, तातैं सधै है। सो ये ज्ञान रहित है, यातैं दया नाहीं बनै और कुल-हीन होय, तातैं भी दया नाहीं बनै। जो ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय—इन तीन कुल के उपजे, ऊँच-कुली हैं, इनतैं दया बनै है और आगे कह आए भील, चाण्डालादिक नीच-कुल के जीव, तिनतैं दया-भाव नहीं बनै और जाका

चित्त नरम होय, सज्जन-स्वभावी होय, सर्व के भले का वांछक होय इत्यादि उत्तम गुण जाकैं होंय। तातैं दया-भाव पलैं है और जे दुष्ट परिणामी, बहुत का बुरा वांछनेहारे जीवन तैं दया नहीं पलैं। तातैं ऊपर के कहे किसब तिन सबतैं दया-भाव नहीं बनै। ते मनुष्य दया रहित हैं। सो विवेकीन कौं, इनका संग करना योग्य नाहीं तथा दया रहित हैं, तिनके साथ लेन-देन, विश्वास भी योग्य नाहीं। इनके संग तैं, वणिज तैं, विश्वास तैं, कुबुद्धि होय। अपने परिणाम निर्दयी होंय। हिंसा कै-सा दोष लागै। वातैं नरकादिक दुख होय। यहां प्रश्न—जो तुमनैं कही कि ऊँच-कुलीन तैं दया होय, नीच-कुलीन तैं नहीं सधै। सो संसार में तो देखिये है जो घने ऊँच-कुलीन हिंसक, जीव घातक, अनाचार रूप भावादि सहित, निर्दयी हैं और केई नीच-कुली, अपने योग्य ज्ञान-प्रमाण सुमार्गी—दयावान् दीखैं हैं। यहां नियम तो नाहीं भया। ताका समाधान—हे भव्य! तैंने कही सो प्रमाण है। परन्तु जैसे—कोई रतन की खानि है। तामैं रतन निकसैं हैं। ताके संग अनेक अन्य पाषाण भी निकसैं हैं। परन्तु खानि रतन की ही कहिये और कोई हीन पुण्य तैं पाषाणादि निकसै, तो निकसौ। नियम नाहीं है। तैसे ही ऊँच-कुलीन में दयावान् ही उपजैं हैं और कोई पूर्व जाका बिगड़ना होय, ऐसे पापाचारी जीव ऊँच-कुल में हीन-पुण्यी निर्दयी होय, तो नियम नाहीं। रतन खानि में पाषाणवत् जानना और जैसे—पाषाण की खानि में खोदते, कोई रतन निकसै तो निकसौ; परन्तु बहुलता करि खान, पाषाण की है। तैसे नीच-कुलीन में पूर्व-पुण्य के जोग तैं कोई धर्मात्मा-दयावान् होय, तो नियम नाहीं। जैसे—पाषाण खानितैं रतन उपजना जानना। किन्तु बहुलता, हीन-कुलन में दया रहित की ही है, ऐसा जानना। तातैं नीच-कुलन में दयावान् भी होय हैं और ऊँच-कुल में निर्दयी भी होय हैं। यामैं नियम नाहीं। संसार की अनेक दशा हैं। तातैं विवेकीन कूं, दया-रहित जीवन का निमित्त छोड़ि, दया-भाव रहना योग्य है। आगे कहैं हैं जो सन्तोषी आत्मा, अपने निर्धनपने तथा दरिद्र आए में, ऐसी भावना भावै है। सो कहिये है—

गाथा—दालय तवयपसायो, मम सिद्धो भव्वय अमुत्त सहु लोय। मम सहु लोय पसन्ती, लोए आदाय णाहि मम जोई ॥६३॥

अर्थ—दालय तवय पसायो कहिये, दारिद्र्य तेरे प्रसाद तैं। मम सिद्धो भवय अमुत्त सहु लोय कहिये, मैं सिद्ध समानि सर्व लोक में अमूर्ति समाया। मम सहु लोय पसन्ती कहिये, मैं तो सर्व लोक कूं देखूं हूं। लोए

आदाय णाहि मम जोई कहिये, लोक के आतमा मोकौं कोई भी नहीं देखैं हैं। भावार्थ—जे धर्मात्मा समता-रस के पीवनेहारे सो दारिद्र्य के उदयतैं ऐसा विचार करि खेद मिटाय सुखी होय हैं। भो दारिद्र्य! तूने बड़ा उपकार किया। जो तेरे प्रसादतैं मैं सिद्ध समानि अमूर्ति भया संसार में रहों हों। सो मैं तो सर्व जगत्-जीवन को शुभाशुभ चरित्र करते निरखेद देखूं हौं। मोकौं जगत् के जाव कोऊ नहीं देखैं हैं। जैसे—अमूर्ति सिद्ध तो सर्व लोक जीवनकौं देखैं हैं और लोक के जीव सिद्धन कूं कोऊ ही नहीं देखैं। सो ऐसी दशा सिद्ध समानि हमारी भी भई। सो ये तेरा उपकार है। अब मैं सन्तोष के सहाय तैं, निराकुल-सुखी भया तिष्ठू हूँ। ऐसे दारिद्र्य को आशीष वचन कहैं हैं, सो जानना। ६३।

आगे ऐसा कहैं हैं जो धर्म सेवतैं जीवन की अभिलाषा च्यार प्रकार है—

गाथा—धम्मो चतुपयारो चातुरता लोय रञ्ज लोभाये। पम्मथ्थो सिव मग्गो सेसा संसार सायणो मगणो ॥ ६४ ॥

अर्थ—धम्मो चतुपयारो कहिये, धर्म सेवन च्यार प्रकार का है। चातुरता कहिये, चतुरताई कूं। लोय रञ्ज कहिये, लोक के राजी करवे कौं। लोभाए कहिये, लोभकूं। पम्मथ्थो सिवमग्गो कहिये, परन्तु परमार्थिक धर्म मोक्ष मार्ग है। सेसा संसार सायणो मगणो कहिये, बाकी जो धर्म हैं सो संसार सागर में डुबोनेवाले हैं। भावार्थ—धर्म सेवन जगत् जीव करैं हैं तिनके अभिप्राय च्यारि प्रकार जुदे-जुदे हैं। कोई जीव तौ चतुराई के अभिलाषी हैं। जो लोक हमको ऐसा कहैं कि ये काव्य छन्द गाथा पाठ पद विनती जानैं हैं। भला चतुर है। यह जैसी सभा में जाय तैसी ही बात कर जानै है। धर्म की भी भली-भली बात, कथा, चर्चा, पद, विनती, पाठ जानै है। हमकूं लोक धर्मी कहैं, चतुर विवेकी कहैं ऐसी अभिलाषा सहित धर्म का साधन करना। सो चतुरता के हेतु धर्म का सेवन करै है। इनकौं मोक्ष वांच्छा नाहीं और केतेक जीव पर के रञ्जायवे कौं धर्मात्मा कहायवे कूं धर्म का साधन करैं हैं। जैसैं और जीव राजी होय तैसें करैं। सो पर के रञ्जायवेकौं भले स्वर तैं मधुर कण्ठ तैं काव्य, गाथा, कवित्त, पद, विनति, महाराग धरि तालबन्ध गाय औरकों खुसी करवेकौं नाना गान पाठादि करैं। जो ये सर्व सभाजन राजी होंय हमकौं भले कहैं। ऐसा जीव लोक रञ्जायवे का अभिलाषी है। सो ऐसा जीव जेते तप, संयम, ध्यान, पठन करै है सो सर्व लोकन के रञ्जायवेकूं करै है। केतेक जीवन का ऐसा अभिप्राय

है और आत्मा के कल्याण का स्थान जो मोक्ष सो ये मोक्ष भावना रहित हैं। केतेक संसार में धर्म क्रिया करनेहारे मनुष्य ऐसे भी जानना और कोई लोभ अभिलाषी धर्म का साधन लोभकूं करैं हैं। पंचेन्द्रिय सुख की सामग्री धर्म सेवन के जोगतैं मिलती जानि धर्म सेवन करैं हैं सो लोभी वारीक वस्त्र तथा दुशाला रेशमी रोमी आदि अनेक भारी वस्त्र के स्पर्श की है इच्छा जिसकैं सो स्पर्शन इन्द्रिय पोषवेकूं धर्म का सेवन करि भोले जीवनकूं अपना धर्मीपना बताय उनका धन खरचाय बड़े भारी मोल के वस्त्र अपने तन पै राखै। दश दिन पहिर करि पीछे अपना जश करावने कूं याचकन कूं दे डारै। अपना यश अपने आगे कान तैं सुनि राजी होय। ऐसा भोरा प्राणी जो पराया धन खरचाय अपना जश गावैं। अपने चतुराई के जोगतैं लोकन का भारी धन खरचाय भारी वस्त्र पहिर लेना सो स्पर्शन इन्द्रिय पोषने के निमित्त धर्म का साधन करै है और केतेक रसना इन्द्रिय पोषनेकूं धर्म सेवन करैं जानै हम भला तप करेंगे तो भक्तजन भला भोजन देंयगे। सो औरनकूं अपना धर्मात्मापना बतायवै कौं धर्म का अंग जप, तप आदिक प्रगट करि नाना प्रकार षट् रस भोजन के लोभ कौं धर्म का सेवन करैं हैं। सो केतेक जीव ऐसे रसना इन्द्रिय पोषने कूं धर्म सेवनेहारे हैं और केतेक नाना सुगन्ध की इच्छा के लोभी केशन में तेल, फुलेल, इतरादि सुगन्ध मंगाय लगावना। तन पै व वस्त्र में लगाय खुशी रहना। सो सुगन्ध (घ्राण) इन्द्रिय के पोषने कौं धर्म सेवन करैं हैं। केई प्राणी ऐसे ही हैं और चक्षु इन्द्रिय के लोभी चक्षु के विषय पोषने कौं नृत्य करैं हैं तथा औरन पै नृत्य कराय देखने के इच्छुक भले रूपवान् पुरुष स्त्रीन का रूप देखवै कौं धर्म का सेवन करैं हैं तथा अन्य भोले जीवनकूं ठगि तिनका धन लगाय अनेक चित्रामादि रचना। कांच के मन्दिर करवाय तिनमैं रह के देखि-देखि हर्ष-सहित तिष्ठवे की है अभिलाषा जिनकौं सो केई ऐसे चक्षु इन्द्रिय के भोग कूं धर्म का सेवन करैं हैं और केईक श्रोत्र इन्द्रिय के भोगी; अनेक राग आप करि जानैं है तथा और के मुखतैं अनेक राग वादित्र सुनवे की है इच्छा जिनकैं इत्यादिक कान इन्द्रिय पोषनेकूं धर्म का सेवन करैं हैं। ऐसे स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र—इन पांच इन्द्रिय पोषनेकौं धर्म सेवन करैं हैं और केतेक धन इकट्ठा करवेकूं धन के लोभी धर्म-सेवन करैं हैं; बनै जैसे धन पैदा करना। सो आप तो अनेक उपवास करैं। तपस्वी का

रूप धरि औरन पै द्रव्य की आज्ञा करि तिनका धन लेय आप सञ्चय करैं। नाना प्रकार बड़े विधानादि पूजा करनी। करनेहारे पै धन लेना। ऐसा ही उपदेश देना जातैं भोले जीवन के घर का धन अपने घर में आवै और लोभ के पोषवे कौं धनवान का आदर करना। अरु निर्धन धर्मात्मा पुरुष का निरादर। इत्यादिक लोभ के अनेक भेद हैं। सो केतेक जीव ऐसे हैं जो लोभ के निमित्त धर्म का सेवन करै हैं और केतेक धर्मात्मा सम्यग्दृष्टि जगत् उदासी परमार्थ जो मोक्ष सो ऐसे परम अर्थ के निमित्त धर्म सेवन करैं हैं। सो अनेक नय विचार समता वधावना धर्मात्मा जीवनतैं स्नेह करना वांच्छा रहित तप करना इत्यादि कार्य करैं हैं। यहां प्रश्न—जो यहां कह्या कि वांच्छारहित तप करैं। सो वांच्छारहित तप कैसे होय ? तप करैं हैं सो सुख की वांच्छाकूं करैं हैं। वांच्छा बिना तो फलरहित तप भया। याकी महिमा कहा भयी ? ताका समाधान—जो धर्मात्मा दृढ़ सम्यक्त्व के धारी हैं ते इन्द्रियजनित सुख के निमित्त तप नाहीं करैं हैं। मोक्षाभिलाषीनकैं तप है सो मोक्ष निमित्त हैं सो स्वर्गादिक इन्द्रियजनित सुख तौ सहज ही होय है। जो तप मोक्ष करै तातैं स्वर्ग तो बिना वांछा के होय। जैसे—खेती का करनहारा धरती में अन्न बोवे है सो वाका अभिप्राय ऐसा नाहीं जो मेरे खेत में घास होऊ। वाका मन तो अन्न वांच्छै है। परन्तु जानै अन्न बोया ताके घास तो बिना वांच्छा के होय तातैं जाने तपरूपी अन्न का बीज धर्म-धरा में बोया है। सो मोक्ष की अभिलाषा के निमित्त है। सो स्वर्गादि घास की नांई सहज ही होय। यहां फेरि प्रश्न—जो मोक्ष की वांच्छा तैं तप किया सो भी वांछा भई। निर्वांच्छापना तो नहीं रह्या। यामैं भी वांच्छा भई। ताका समाधान—जसे कोई पुरुष धन कुमावै। सो एक पुरुष तो ऐसा विचार करै। जो धन बहुत कुमाइये तो व्याह कीजै घर बढ़ै बेटा-बेटी होय गृहस्थपना भला लागै। बिना स्त्री घर बढ़ता नाहीं। ऐसा जानि धन कुमावे है अरु कोई पुरुष धन कुमावे है सो ऐसा विचारै है। जो बहुत-सा धन होय तो वेश्याकूं देय वांच्छित भोग भोगिये। जो व्याह कर्‌या चाहै है तो गृहस्थपने का घर बांधि सुखी भया चाहै है। सो यो विचार तो दोष रहित है। क्यों ? जो गृहस्थी ताका ही नाम है। जो घर बांधि स्त्री परणि बेटी-बेटा आदि कुटुम्ब तैं सदैव सुखी होय और दूसरा वेश्यावारे का विचार अज्ञानता सहित है। जो धन का धन खोवना, अरु वेश्या के किंचित् सुख भोग पाप कमावना। सो ए जीव भोला है। तैसे जो जीव तप करि मोक्ष चाहै है। सो तो ध्रुव (नित्य) सुख का

अभिलाषी मोक्ष-स्त्री परणि सिद्ध पद में घर बांधि अनन्तकाल सुखी भया चाहै है। सो ऐसे तो योग्य ही है। याकौं वांच्छा नहीं कहिये। ये घर बांधि ध्रुव रहना है और जे तपरूपी धनतैं वेश्या समानि चञ्चल देवादिक के सुख चाहैं ते विवेकी नाहीं ऐसा जानना। तामैं भी ये विशेष कि जो पर-भव के इन्द्रियजनित वांछित सुख के निमित्त धर्म सेवें सो धर्मी और इसी भव सम्बन्धी धन, पुत्र, स्त्री, रोग, नाशादिक कूं धर्म सेवैं सो पापी हैं। ऐसा जानना। तातैं सम्यग्दृष्टि का तप इन्द्रिय सुख अपेक्षा निर्वांछित हैं और जिन-आज्ञा प्रमाण देव-धर्म का सेवना मोक्ष-मार्ग के निमित्त धर्म का सेवना दयापूर्वक यत्नतैं तप, संयम, पूजा, दानादिक धर्म के अङ्गन का सेवना सो पारमार्थिक धर्म-सेवन है। ऐसे च्यारि ही प्रकार भिन्न-भिन्न धर्म सेवनेवाले जीवन का अभिप्राय जानना। तिनमें पारमार्थिक धर्म-सेवन है सो तो मोक्ष-मार्ग है और बाकी के धर्म-सेवन के भाव है सो अल्प सुख देयकै संसार समुद्र में नाखैं (डालैं) हैं। तातैं ऐसे भले-बुरे धर्म की परीक्षा करि धर्म-सेवन करना सो कषाय सहित इन्द्रिय-सुख कीं वांच्छा करनेहारे ऐसे कुगतिदायी कुधर्म-भाव तजि पारमार्थिक धर्म-सेवन करना योग्य है। आगे शास्त्र, छन्द, काव्य, गीत के जोड़नेहारे कवीश्वरन का जो अभिप्राय है सो ही कहिये है—

गाथा—धम्मी धम्म फल हेतव, जाचिक उदराय अधम्म लोभादी। परजणाय भण्डय, णलजय हासि, जोड बकताए ॥ ६५ ॥

अर्थ—धर्मी तो धर्म-फल हेतु, जाचक उदर भरने के हेतु, अधर्मी लोभ के हेतु, भांड़ पर के रंजायवे के हेतु, निर्लज्ज हांसी-कौतुक के हेतु, जोड़ के वक्ता होय है। भावार्थ—जोड़-कला का ज्ञान अनेक जीवन कै होय। श्रुतज्ञानावरणीय के क्षयोपशम करि अनेक भले-भले पण्डित होय हैं सो अनेक शास्त्र जोड़ैं हैं। कोई अनेक छन्द, काव्य, गाथा जोड़ैं हैं। कोई पद-विनती जोड़ैं हैं। केई गीत, किस्सा, कहानी जोड़ैं हैं। इत्यादिक अनेक जोड़-कला के ज्ञान सहित प्राणी पाइये हैं। परन्तु इन जोड़-कला करने में परिणति-अभिलाषा जुदी-जुदी हैं। अरु जुदी-जुदी अभिलाषा होंते तिन जोड़-कला के ज्ञान का फल भी जुदा-जुदा पावैं हैं। जोड़-कला करते अन्तरङ्ग जैसी अभिलाषा होय है तैसा ही फल होय है। सोही कहिये है। कोई धर्मातमा जीवनकौं तो श्रुतज्ञान की अभिलाषा है। सो तो शास्त्र के छन्द, गाथा, काव्य, पद विनती जोड़ैं हैं। सो धर्म के फ़ल की इच्छाकूं लिये पर-भव स्वर्ग-मोक्षादि सुख की वांच्छा सहित हैं। अन्तरङ्ग के श्रद्धानकौं

लिये जोड़-कला करैं हैं। सो इस ज्ञान का फल धर्म मोंकूं ही उपजौ ऐसी वांछा लिये शास्त्रादि जोड़ैं हैं। कोई तो ऐसे हैं सो इन्हें धर्मात्मा जानना और केई जाचक-जीवन कैं श्रुतज्ञान की विशेष बढ़ती है। सो ए जाचक छन्द, काव्य, गीत इनकी जोड़-कला करैं। सो इनका अन्तरङ्ग उदर भरने का है। जो हम कोई राजादि बड़े पुरुष का यश करैं तो ग्राम, गज, घोटिक धन मिलै। ताकरि सर्व कुटुम्ब की प्रतिपालना होय। फलाना राजा यश का लोभी यश चाहै है। अरु चित्त का उदार है। ऐसे पुरुष का यश करै तो बहुत दिन की आजीविका मिलै। सो जाचक उस राजा के राजी करने कौं अनेक छन्द, गीत, कवित्त, काव्य, श्लोक बनावै। सो अपनी बुद्धि के जोगतैं जोड़-कला करै। तामैं दीरघ छन्द महासरल अक्षर, महाललित व्यञ्जनों का सुन्दर मिलाप इत्यादिक अन्तरङ्ग अभिप्राय सहित ज्ञान तैं जोड़-कला करै। सो जाचक जानना। अर केई जीव भला ज्ञान पाय, बुद्धि का प्रकाश पाय, जोड़-कवित्त करैं। छन्द व गीत बनावैं। सो जोड़-कला करतैं उनकै ऐसे अन्तरङ्ग का अभिप्राय होय। जो हममें बड़ा ज्ञान है सो कोई ग्रन्थादि काव्य, छन्द बनाइये तो जग में पण्डित-पना प्रगट होय यश होय। ऐसा जानि केई तो यश के लोभकौं जोड़-कला करैं। केई अज्ञानी इन्द्रिय-सुख भोगनेकौं जोड़-कला करैं हैं ते पापी जानना और केई भांड़न में तीक्ष्ण श्रुतज्ञान होय है। सो भांड़ भी जोड़-कला करै हैं। सो ऐसी अनोखी नकलैं जोड़ैं। ऐसी बात बनाय ठाढ़ी करैं। कि ताकी जोड़-कला देखी अनेक मनुष्य राजी होंय हंसैं प्रसन्न होंय। भांड़ की तारीफ करैं। ऐसी नकलें अपनी बुद्धितैं ज्ञान के जोगतैं जोड़ि के औरनकौं प्रसन्न करैं। सो पर के रञ्जायवे कौं गीत, काव्य, गाथा, छन्द, कथादिक जोड़ैं सो भांड़ कहिये। भांड़ का अभिप्राय जोड़-कला करते पर के रञ्जायवे रूप होय है और केई निर्लज्जी जीवनकौं भी ज्ञान की बढ़वारी होय है। सो ए निर्लज्ज पुरुष जोड़-कला करैं। सो याकी जोड़-कला हांसी-कौतुक के निमित्त है। जैसे— काहु जीवन तैं होरी के भंडउवा जोड़े तथा काहू निर्लज्ज स्त्री ने बड़ा ज्ञान पाय पापनी नैं गावे के निमित्त गाली-गीत बनाये, ताका गावना। सो श्रोता ताकी जोड़ि-कला सुनि कैं, विकारी-जीव लज्जा रहित हाँसि-कौतुक रूप प्रवृत्तैं। ऐसी जोड़-कला के ज्ञान-धारी जीव होंय, सो निर्लज्ज कहिए। ऐसे पञ्च प्रकार जोड़-कला करने के मुखिया हैं। तिनमें जे सुबुद्ध पुरुष हैं सो बुद्धि पाय, धर्म-फल के इच्छुक होय, धर्ममयी, दया सहित, पुण्यदायक जोड़-कला

करैं हैं। सो तो धर्म-मूर्ती सत्-पुरुषन के प्रशंसने योग्य हैं और बाकी के च्यारि जाति के कवीश्वर हैं सो पाप-बन्ध करनहारे हैं। ऐसे श्रुत-ज्ञान सहित खोटे कवीश्वर होंय हैं सो तजिवे योग्य हैं। आचार्य कहैं हैं कि संसार भ्रमतैं अनन्ते-भव अज्ञानता के होय हैं। तब एक भव विशेष श्रुत-ज्ञान सहित विवेक चतुराई सहित ज्ञान का मिलै है। सो ऐसा उत्तम ज्ञान कों पायकें यह जीव कुकाव्य करि वृथा खोवैं हैं। ये सर्व जाति जोड़-कला है। सो तो हीन ज्ञानीन तैं नहीं होय है। जे जीव विशेष ज्ञानी होंय, महाचतुर होंय, अनेक नय-विवेक के ज्ञाता होंय, तीक्ष्ण ज्ञानधारी होंय, तिनतैं जोड़ि-कला होय। सो ऐसे तीक्ष्ण ज्ञान का धारी उत्तम बुद्धि भूले तौ यह बड़ा आश्चर्य है। अहो भव्य! तुच्छ-सा इन्द्रिय सुख अरु अज्ञानी-जीवन के मुख की प्रशंसा के निमित्त, ऐसा उत्कृष्ट ज्ञान, वृथा करै है। सो हम कहा उलाहिना देहिं? तैंने वैसी करी, जैसे—कोई बन्दरकूं रतन-कञ्चन के आभूषण पहराय, मोती की माला ताके उर में डारि, मस्तक पै रतन-जड़ित मुकुट धारि, अनेक वस्त्र पहराहि, शोभायमान किया और अनेक मेवा ल्याय, ताके आगे खायवे कूं धरै। ऐसे में कोई वन का बन्दर ने, नीम की निवोरी दिखाई। कही—ये वन का भोजन लेऊ। अरु सैन तैं, कहता भया। जो हे मित्र, आप बन्दी में कहां बैठे हो? ऐसे यह बन्दर, अज्ञानी बन्दर के स्नेहतैं अरु निवोरी के लोभ तैं, अपने शिरका रतन-मुकुट फैंकि, मोतीन की माला व वस्त्र डारि, उत्तम भोजन-मेवा तजि कैं, वन में जाय। सो इस बन्दर की भूल कहां ताईं कहिये? तैसे, बन्दर की नाईं भूले जो पण्डित, ताकों कहां कहिये। ये विनाशिक-भोग के अर्थि तथा लोक-प्रशंसा कूं अपना भला ज्ञान, मलिन करैं हैं। ये जोड़ि-कला करने का उत्तम ज्ञान पाय, ताके भेद को नहीं जानता, पाप को उपावै। सो इस बात का बड़ा आश्चर्य है। इस भूल की कहा कहिये? जैसे—एक कटईया, लकड़ी काटवै कौं वन में गया। वानै एक चिन्तामणि रतन पाया। ताकूं याने उठाय लिया। ताकों देखि विचारा, कि कोंऊ रङ्गदार पाषाण की गोली है। अच्छी दीखै है। याकूं घर ले चलूं। यातैं लड़का खेला करेगा। ऐसी जानि या मूरख नैं परख्या विना, चिन्तामणि रत्न को लेय कैं, अपनी लँगोटी ताकी गांठि बांध्या। फेरि वन में लकड़ी काटने लगा। सो काठ के भार को बाँधि, अपने शीश पै धरि, वन कौं तजि, घर को आवैं है। सिर पै भार है। सो धिक्कार इस अज्ञानता कौं। जो चिन्तामणि तो पूंछली तैं बन्ध्या है, सो तो पासि है और शीश पै काठ-भार है। ऐसे ही

सर्व भार तैं राह दुखी भया, घर आया। शाम को गुदरी में काठ-भार बेंचने गया। सो भूखा हो, दरिद्री भया खड़ा है। चिन्तामणि पास है, परन्तु भेद पाये बिना, दुखी होय रह्या है। पीछे दोई पैसा कों भार दैंच, घर आया। तब पैसा स्त्री के हाथ दये। कही—इनका अन्न ल्याव। आठ कौड़ी का तेल ल्याव। ताके उद्योत में रोटी करि देना। सो पहर भर रात्रि गई तक, सब घर के मनुष्य भूखे मरे, अरु चिन्तामणि पासि है। परन्तु बिना भेद पाये, सुख नाहीं। भूखा काठ बेचनहारा कही—सिताब (शीघ्र) रोटी करि पीछे तूंछली तैं चिन्तामणि खोलि, स्त्रा कूं दिया। अरु कही—ये गोली अच्छी है। आज वन में पाई। सो लड़केकों खेलने कौं दीज्यौ। ऐसे कह कैं पूंछली तैं चिन्तामणि खोलि, स्त्री के हाथि दिया। सो खोल तैं ही अन्धेरे घर में प्रकाश होय गया। ता प्रकाशि कों देखि, अभागे-अज्ञान ने कही—भो स्त्री! यह पथरा भला। याके प्रकाश तैं रोटी किया करि। आठ कौड़ी के तेल की किफायत भई। सो एक आले में चिन्तामणि धरि दिया। अब याके उद्योत् तैं, रोजि के रोजि रोटी किया करै। सो देखो, कर्म चरित्र। जो चिन्तामणि तो घर में है, अरु दुख-दरिद्र नहीं गया! ताका भेद नहीं पाया। याका भेद पाये बिना, बहुत दिन लूं काठ का भार बह्या, दुख पाया। अरु ऐसा सुख मानै, जो इस पथरा की गोली तैं आठ कौड़ी का रोजि तेल आवै था, सो बच्या। याके प्रकाश आगे, तेल नहीं चाहिये। तैसे ही ये कुकवि, चिन्तामणि रतन समानि उत्तम जोड़ि-कला का श्रुत-ज्ञान, ताकूं कठेरे के आठ कौड़ी के तेलि समानि, विषय-सुख के निमित्त वृथा कठेरे के रतन की नांई खोवैं हैं। तातैं इन कु-कवियों का ज्ञानरूपी चिन्तामणि रतन है सो इसका भेद पाये बिना, पथरा की गोली समानि जानना। इन कु-कवीन नैं इस ज्ञान का भेद नहीं पाया। कैसा है यह ज्ञान? मनोवांछित सुख का देनेहारा है। ताकौं पायकैं, ज्ञान की मन्दता तैं, इन्द्रियजनित सुख, चञ्चल, विनाशिक, तिनके निमित्त और अज्ञान जीवन का किया तुच्छ लौकिक यश ताकै वास्ते भला-ज्ञान खोवैं। सो ये कु-कवीश्वरन का स्वरूप जानना। तातैं तिस ज्ञान कूं पाय धर्मातमा तो धर्म सम्बन्धी जोड़-कला करि पुण्य-बन्ध करैं। अरु मूर्ख कवि हैं सो ज्ञान पाय खोटी जोड़ि-कला करि पाप-बन्ध करैं हैं। ऐसा जुदा-जुदा सर्व जोड़-कलावारे जीवन का भाव जानना। अब उस कठेरे ने रतन पाया था, तो ताके घर में है। ताकी कथा

कहिये है—सो ऐसे काठ बेचतें कठेरे कौं बहुत दिन भये, सो एक दिन रात्रि समय उस ही राह एक जौंहरी आय निकस्या। सो इस कठ्या के घर में सूर्य समानि प्रकाश देख्या। तब जौंहरी ने विचारी जो दीपक का प्रकाश तो ऐसा होता नाहीं। तब जौंहरी इस कठेरे के घर में देखता भया। सो देखै तो चिन्तामणि रतन है। तब उस जौंहरी ने कठेरे कूं बुलाय चिन्तामणि का भेद बताय कही—रे मूर्ख! तेरे घर में मनोवांच्छित सुख का देनेहारा चिन्तामणि है। अरु तूं अज्ञानता तैं काठ का भार बहै है, अरु दरिद्री होय रह्या है। अब यापै जांचि। तूं जांचैगा, सो ही मिलैगा। तब कठेरा ने जांची। भो चिन्तामणि रत्न! मोकूं खीर भोजन देहु, तबही खीर मिली। तब कही मोकूं धोती देय, तब धोती मिली। तब या कठेरे ने घर, धन, आभूषण, वस्त्र; जो-जो जांचे, सो सर्व मिले। तब कठेरा आप सेठ के पांव पड़्या उपकार मान्या। तब सेठ यातैं राजी भया। सेठ उपकार करि अपने घर गया पीछे कठेरा अपनी अज्ञानता जानि पछताया। जो देखो मेरे घर में वांच्छित सुख का दाता रतन अरु मैं दरिद्री रह्या। सो ये सेठ धन्य है जो इस चिन्तामणि का भेद बताया। अब मैं सुखी भया दरिद्र-दुख गया। पीछे रात्रि व्यतीत भई। प्रभाति, राजा कैसी विभूति प्रगट करि लोक-पूज्य होता भया। चिन्तामणि के प्रभावतैं काठ ढोना गया। परम सुखी भया। तैसे ही इस आत्मा का ज्ञान यापै ही है। परन्तु भेद पाये बिना अज्ञानी भया फिरै है कठेरे की नाईं दरिद्री होय रह्या है। जब गुरु प्रसाद तैं ज्ञान चिन्तामणि का भेद पावैं, तो जगत्-दुख जाय सुखी होय पूज्य पद पावै उपकारी की सेवा करै। तातैं विवेकी हैं ते भला ज्ञान पाय धर्म में लगाय धर्म-सेवन पूजा-भक्ति, जीवाजीव तत्व विचारादि करि भली जोड़ि-कला करहू।

इति श्रीसुदृष्टितरङ्गिणी नाम ग्रन्थ के मध्य में काव्य-परीक्षा का वर्णन करनेवाला बाईसवाँ अधिकार सम्पूर्ण भया ॥ २२ ॥

आगे पञ्चम काल की महिमा कहिये है—

गाथा—जहि थति अरि हितदूरउ तीथथाणेय रजय विणखेदो। रज्जय तहां न सुसंगो ए कलुबल गेयतज्ञ समभावो ॥ ६६ ॥

अर्थ—जहि थति अरि कहिये, जहां रहिये है तहां बैरी पाईये है। हित दूरउ कहिये, हितू हैं सो दूर हैं। तीथथाणेय कहिये, तीर्थ-स्थान। रजय विणखेदो कहिये, रअय बिना खेद है। रअय तहां न सुसंगो कहिये, रअत हैं तहां सुसंग नाहीं है। ए कलुबल कहिये, ए कलयुग का बल है। गेयतज्ञ समभावो कहिये, पण्डित हैं

ते यह देख समता-भाव राखैं हैं। भावार्थ—जे तत्वज्ञानी धर्मातमा हैं सो जगत् की बिडम्बना देखि ऐसा विचारैं हैं। जो देखो पञ्चमकाल की महिमा। कि जहां सदैव रहिये, जा क्षेत्र में बहुत दिन का वास ऐसे क्षेत्र में तो अदेखा-बैरी जन बहुत हैं। सो कोई धर्म कर्म खान-पान देख सकता नाहीं और अपने स्नेही हैं सर्व प्रकार सुख के कारण हैं, तिन तैं बड़ा अन्तर है। वह सज्जन हैं सो दूर ही देश में बसैं हैं और जो तीरथ समान उत्तम स्थान हैं जहा रहैं सदैव पुण्य का बन्ध कीजे। सत्संगी जीव पूजा, शास्त्र, ध्यान, चरचा का सदैव निमित्त सो जहां रहने कूं सदा मन चाहै। ऐसे उज्ज्वल स्थान पै रुजगार की ठीकता नाहीं। सो खान-पान की थिरता बिना रह्या जाता नाहीं और जहां भला रुजगार है। खान-पान की चिन्ता नाहीं। ऐसे क्षेत्र में सत्संग नाहीं। जहाँ अपना पर-भव सुधारिये सो पुण्य के निमित्त ध्यानाध्ययन पूजादिक निमित्त नाहीं। ये पञ्चमकाल की जोरा-वरी है। ऐसे खोटे काल में भली वस्तु का मिलाप थोरा है। पापकारी, कुआचारी अशुभ वस्तुन का निमित्त बहुत है सो इसका यह सहज स्वभाव है। शुभ निमित्त अल्प अशुभ का निमित्त बहुत ऐसी इस काल की सहज प्रवृत्ति है। ताके मेटवे कूं कोई उपाय नाहीं होनहार कोई मेटता नाही। जा-जा समय सुख-दुख होवना है सो हो है। ऐसा जानि धर्मातमा विवेकी तिनकौं समता-भाव राखि धर्म-ध्यान का आश्रय लेना योग्य है। ६६।

आगे कहैं हैं कि शुभ-भावना बिना करनी का फल शुभ नाहीं। ताकौं दृष्टान्त देय बतावैं हैं—

गाथा—सुक पठती बक झाणो, खर भसमी पसु णगण तरु कट्ठो। उरण सिरकच मुड़ई, भावो सुधी बिणा ण सीझन्ती॥६७॥

अर्थ—सुक पठती कहिये, तोते का पढ़ना। बक झाणो कहिये, बक का ध्यान। खर भसमी कहिये गधे का राख लगावना। पशु णगण कहिये, पशु का नगन रहना। तरु कट्ठो कहिये, वृक्षन का कष्ट सहना। उरण सिर कच मुड़ई कहिये, भेड़ के बाल का मूड़ना। भावो सुधी विणा ण सीझन्ती कहिये, ए सब शुभ-भाव बिना मोक्ष न होय। भावार्थ—जीव का भला तथा बुरा, इस ही के परिणामन तैं होय है। तातैं शुद्ध-भाव बिना, जीव चाहै जैसा कष्ट करो, भला होता नाहीं। जैसे—तोता रात्रि-दिन राम-राम किया करै है। परन्तु याकें राम-नाम तैं कछु प्रीति नाहीं। ऐसा बिचार नाहीं, जो राम-नाम ल्यौं हों त्यों मेरा कल्याण होयगा तथा ये राम-नाम उत्कृष्ट है। याका नाम जो लेय सो सुखी होय है। ऐसा भेद-भाव नहीं। जैसे—पढ़ावनेहारा पढ़ावै है, उसी ही प्रकार

पढ़ै है। यातैं याके भावन की शुद्धता नाहीं। अरु शुद्धता बिना, सूवे का पढ़ना-पढ़ावना वृथा ही जानना, फल-दाता नहीं। बगुला, पानी विषैं एक-चित्त करि, काय की ध्यानाकार ऐसी मुद्रा बनावै है। जैसे—भला तपस्वी ध्यान करै। ऐसी ही नासा दृष्टि करि, बगुला भी ध्यान करै है। परन्तु परिणाम तो भले नाहीं। मच्छीन के घात-रूप हैं। सो भाव प्रमाण खोटा ही फल मिलेगा। ध्यान के आकार, भलो-मुद्रा सहित, काया करी है सो भाव शुद्ध बिना भला-फल होता नाहीं। तातैं शुद्ध भाव बिना, बगुले का ध्यान वृथा है। अर विभूति जो राख लगाये भला होय तो गर्दभ सदैव ही विभूति विषै, लोट्या ही करै। परन्तु गर्दभ के ऐसा विचार नाहीं। जो राख लगाये, मेरा भला होयगा। यह सहज ही, ज्ञान रहित है। तातैं राख तनके लिपेटे पुण्य होता नाहीं। अपने भोलेपन तैं, तन की शोभा मिटाना है। बाकी शुद्ध-भाव बिना, राख लगाए मोक्ष होती नाहीं। जो भाव-शुद्ध बिना मोक्ष होय, तो गर्दभ कौं भी होय। नगन-तन तैं मोक्ष होय, तो सर्व पशु नगन ही रहैं हैं तातैं शुद्ध-भाव बिना नगन रहना, पशु के कष्ट समान है। बड़ा कष्ट पाये मोक्ष होय, तो वृक्षनकों होय। वृक्ष, शीत-काल में तो च्यारि महीना, शीत सहैं हैं। उष्ण-काल मैं, च्यारि महीना, सूर्य की आताप सहैं हैं। अर चारि महीना वर्षा-काल में, सर्व पानी तनपैं सहैं हैं। ऐसे तीनों ऋतु के बड़े कष्ट, शुद्ध-भाव बिना तरु सहैं हैं। परन्तु कष्ट के खाये शुद्ध-भाव बिना भला होय, तो इन वृक्षन का होता, ऐसा जानना। शुद्ध-भाव बिना, मूड़ मुड़ाये भला होय, तो भेड़ का होय। भेड़ कूं बरस-दिन में कई बार मूँड़िए। सो भाव-शुद्ध बिना, मूड़-मुड़ावना कहिये। केश-लोंचन करना, भेड़ के मूडने समानि है, ऐसा जानना। सो भावन की शुद्धता बिना, शास्त्रादि का पढ़ना सूवे समानि है। शुद्ध-भाव विना ध्यान, बगुले समानि है। शुद्ध-भाव बिना विभूति लगावना, गर्दभ समानि है। शुद्ध-भाव बिना नगन रहना, पशू समानि है। शुद्ध-भाव बिना तीनों ऋतु के तन पै कष्ट सहना, वृक्ष समानि है। शुद्ध-भाव बिना शीश मुड़ावना, भेड़ समानि है। तातैं हे भव्य! मोक्ष का कारण एक शुद्ध-भाव है। सो जे विवेकी हैं, ते राग-द्वेष मिटाय अपने हितकौं, पर-भव सुधारने कौं, भावन की शुद्धता करौं। यहां प्रश्न—जो तुमने कह्या कि शुद्ध-भाव बिना, तप, संयम, पठन-पाठनादि धर्म का फल अल्प होय है तथा नहीं होय है। शुद्ध-भाव बिना जो स्वाध्याय-शास्त्रोपदेश करना, शास्त्र सुनना, ध्यान करना, सामायिक करना इत्यादिक धर्म के अङ्ग के सेवनेहारे हैं। सो धर्म-सेवन

करते, शुद्ध-भाव सहित तो कोई दीखता नाहीं। आर्त, रौद्र-ध्यान बहुत के होय है। शुभ-भाववाले, अल्प हैं और जेते जीव, अवार-धर्म अङ्ग सेवन करैं हैं। तिनकैं शुभ-भाव अल्प भासै है। सो इनको धर्म-सेवन का फल शुभ होयगा वा नहीं होयगा? ता समाधान—भो भव्य! तूं ने प्रश्न महामनोज्ञ किया। सत्पुरुषन कूं सुख पहुँचावन-हारा, अनेक जीवन का संशय मेटनेहारा, ऐसे भाव सहित तेरा प्रश्न है सो अब चित्त देय के उत्तर सुन। इस उत्तर का धारण किये धर्म के अङ्गन तैं विशेष प्रीति उपजैगी। धर्म के सेवनेहारे जीवन के अभिप्राय के दोय भेद हैं। एक तौ धर्म फल के हेतु सेवैं हैं। एक लोभी, कषाय के पोषनैं कूं, धर्म सेवन करैं हैं। सो जे भव्यात्मा, धर्म कूं बड़ा जान, धर्म फल का लोभी भया; दान, पूजा, तप, ध्यान, शीलादिक करैं हैं। सो पर-भव के कल्याण कूं शुभ-भाव लिए करैं हैं। पीछे कर्म के जोग तैं कारण पाय, भाव-चञ्चल भी होंय, अरति उपजावैं, तौ याका शुभ-फल जाता नाहीं। जैसे—कोऊ भव्यात्मा, सामायिक करने कूं पद्मासन या कायोत्सर्ग काय का आसन करि, चित्त भला करि, सामायिक करै है। सो सामायिक कौं बैठा, तब अभिप्राय तो अच्छा था। अरु मन-वचन-काय की प्रवृत्ति भी अच्छी थी। पीछे कोई कर्म-जोगतैं राग-भावन की प्रबलता करि, परिणाम और ही विकल्प-कषाय रूप होने लगे। मन चञ्चल होय रह्या। परन्तु काय, सामायिक रूप है। परिणति, कर्म की जोरावरी तैं याकै हाथ नाहीं। अभिप्राय याका ये ही है जो मैं सामायिक करौं हों। सो ऐसे धर्मात्मा का सामायिक का फल जाता नहीं। जैसे—कोई सामायिक करनेहारा भव्य जीव, सामायिक समय, घर के अनेक कार्य तजि कैं, धर्म-बुद्धि का प्रेर्या, घर तैं धर्म स्थान में जाय, तन की शुद्धता करि, अल्प परिग्रह राखि, कायोत्सर्ग तथा पद्मासन ध्यान धरि, पञ्चपरमेष्ठी के गुणन का विचार करि, अपने किये पाप याद करि; तिनकी आलोचना बार-बार करि, अपनी निन्दा करि, सर्व जीवन तैं समता-भाव करि, ऐसा विचार करता भया। जो धन्य हैं वे मुनीश्वर तथा उत्तम प्रतिमाधारी श्रावक जो सर्व आरम्भ-पाप तैं निवृत्त होय, सुख भोगवैं हैं। ऐसी दशा मोरी कब होवेगी? ऐसे तप की भावना भावता, सामायिक करै। एते ही में एक चिन्ताकारी बात यादि होती भई। कि जो एक हजार दीनार की थैली वा दुकानवाले कूं भूलि आया। सो याके याद होते मन तो चञ्चल होय, आरति के जाल मैं पड्या। सामायिक में चित्त नाहीं लागै। तब यह धर्मात्मा विचारै, जो मेरे दोय-घरी की मर्यादा है। सामायिक

कौं बैठा हौं। सो अब कैसे उठ्या जाय ? मेरे भाग्य की है तो मिलेगी ही, कहां जायगी ? अरु मेरे भाग्य में नहीं होय, तौ अब ताईं, प्रगट-चौंड़ी जगह में से, कैसे बची होयगी ? और अब मैं कदाचित् लोभ के जोग तैं उठौं हौं तौ प्रतिज्ञा मेरी भंग होय। प्रतिज्ञा के भंग होते, मेरा पर-भव बिगड़े है। काया-धर्म, नाश होय है। तातैं जो होन-हार है, सो होयगी। मैं दोय घड़ी तो नाहीं उठौं हौं। प्रतिज्ञा पूरण भये जो होनहार है सो हो जा है। ऐसा विचार तनकौं स्थिरीभूत किए, तिष्ठ्या है। जो-जो सामायिक की क्रिया वन्दना, आलोचना सामायिक इत्यादिक पाठ पढै है। परन्तु मन-चञ्चल भया, सो सामायिक मैं नहीं लागै है। तो भी ये धर्मातमा का धर्म-फल जाता नाहीं और कदाचित् दीनारों के लोभ तैं सामायिक छोड़ि उठ खड़ा होता तौ पाप-बन्ध होता। धर्म-क्रिया का अभाव होता। तातैं ये धर्मात्मा अपनी प्रतिज्ञा तजि, उठै नाहीं। तौ परिणति चञ्चल भले ही होऊ। या धर्मात्मा का अभिप्राय भला है। अभिप्राय शुभ थिरीभूत नहीं होता तो सामायिक तजि करि जाता। तातैं अभिप्राय शुद्ध रहते तत्व-श्रद्धान दृढ़ता कौं लिये हैं। सो ऐसा धर्मात्मा उत्तम धर्मी ही है। ऐसे ही श्रद्धान की दृढ़ता अरु परिणति का आरति-भाव सर्व धर्म अङ्गन में लगाय लेना। सो ऐसे धर्मी का तौ विकल्प होतें भी धर्म जाता नाहीं। ऐसा जानना और एक लोभ के निमित्त धर्म स्वांग धरि तप, संयम, ध्यान, जिनवानी का पाठ इत्यादिक धर्म अङ्ग करै और अभि-प्राय चोरी का है। जैसे—रुद्रदत्त चोर था, सो लोभकौं देहरे (जिन-मन्दिर) जी का माल चोरनेकौं धर्मात्मा ब्रह्मचारी का भेष धरि नाना तप, संयम, भले पाठ करता सेठ के घर आय, धर्मात्मा होय, जिन-मन्दिर में रह्या। सो जिन-मन्दिर के चंवर, छत्र, कलशादि चोरे। खोटे अभिप्राय तैं धर्म-सेवन करै था, सो तिनका फल तो नहीं लगा। अरु खोटे अभिप्राय के जोगतैं मरि नरक गया। तातैं ऐसे धर्म-सेवन मैं तोकौं दोय भेद कहे—सो जानना। जाका धर्म-सेवन में अभिप्राय धर्म रूप है ताकैं तो पुण्य फल होय है। जिसके धर्म-सेवन में अभिप्राय खोटा होय। ताकैं पाप-बन्ध होय है। तातैं शुद्ध-भावन के अभिप्राय बिना जो धर्म-सेवन है। सो ऊपर कहे तोता, बगुलादिक तिन समानि जानना। शुद्ध-भावन बिना धर्म साधन लौकिक के दिखानेकूं करैं हैं। ते जीव धर्म के अभिलाषी नाहीं। इनका धर्म-सेवन का कष्ट वृथा ही जानना। जैसे—कोई सेठ का मन्दिर बनै है। तहां अनेक मजूर लगे हैं तिनकूं मजूरी करते देख के एक अज्ञानी पागल पुरुष आया सो आप भी बिना कहे

अपनी इच्छा तैं ही, मजूरी करता भया। सो औरन तैं यह पागल बहुत भार उठावैं। मजूर उठावैं पाँच सेर का पाषाण तो ये पागल उठावै दश पंसेरी का पत्थर। मजूर ल्यावैं एक पत्थर तौ ये पागल ल्यावै दश-पत्थर। सो याकी मजूरी देख कैं अजान पुरुष ऐसा विचारै जो यह मजूरी बहुत करै है। सो याका रोज भी बहुत होयगा। ऐसे सब दिन मजूरी करी। सांझ को मजूर छूटे। तब जिनके नाम मड़े थे, तिन सब मजूरन को दिन मिल्या। सो अपने घर जाय सुखी भये। जब इस पागल ने भी मजूरी मांगी। तब दरोगा ने कागद में याका नाम देख्या, सो नाहीं निकस्या। तब याकूं, पूंछै तू कब लागा था? तब यानैं कही—मेरी मन आई तब ही लागा। तब याकौं पूंछी तोकौं कोऊ ने लगाया था? तब या पागल ने कही—हमकौं कौन लगावै, हम ही अपने मन तं लगे थे। तब सबनै जानी, ये मजूर नाहीं, कोई पागल है। तब धक्के दिवाय कढ़ा दिया। मजूरी नहीं मिली, धक्के मिले। सबनै जानी, दीवाना है। मिहनत वृथा गई, क्यों गइ? सो कहिये है। ये दिवाना काहू का चाकर तो भया नाहीं। अपनी इच्छा रूप रह्या। बन्ध रूप नाहीं। इस दिवाने कैं एता विचार नाहीं। जो मैं फलाने का चाकर हौं यापै कहि कर काम करों। जो धनी की आज्ञा मानता नाहीं अपनी इच्छा रूप है तातैं मंजूरी नहीं मिली। खेद वृथा गया। तैसे ही यह जीव एक शुद्ध धर्म की परीक्षा करि जाकौं कल्याणकारी जानैं, ताकी आज्ञा प्रमाण धर्म का सेवन करै तथा धर्म के अङ्ग-दान, पूजा, तपादिक करै तो धर्म का फल भी लागै और धर्म-स्वांग तो बहुत धारै; परन्तु कोई आज्ञा रूप नाहीं स्वेच्छा स्वच्छन्द होय धर्म अङ्ग का सेवन करै। अनेक कष्ट करै, सो वृथा जाय। जैसे—पागल की मजूरी वृथा भई, तैसे जानना। ऐसे धर्म-अङ्ग सेवनहारे जीवन के दोय भेद कहे। सो हे भव्य! तू जानि। जो धर्म की आज्ञा सहित धर्म अङ्गन का सेवन करैं हैं और निमित्त के दोष तैं उनके परिणाम चञ्चल भी होंय तो उनका धर्म-फल जाता नाहीं और कोई जीव सर्वज्ञदेव की आज्ञा रहित भया; क्रोध, मान, माया, लोभ के जोग तैं छल-बलकूं लिये पाखण्ड सहित धर्म-सेवन लोक दिखावन कौं करै तिनका फल भी वृथा होय। ऐसे जानना। यह तेरे प्रश्न का उत्तर है। तातैं भावन की शुद्धता सहित धर्म-सेवन ही मोक्ष-मार्ग जानि। शुद्ध-भाव बिना खेद ही है, सो भी वृथा जानना। आगे और कहैं हैं जो शुद्ध-भाव बिना धर्म-अङ्ग वृथा है—

गाथा—मखि पतङ्ग दहकाया तसयर चित्तोय णमण तण होई। सुरतरु देवहु दाणो, भावो सुधी बिना ण सीझन्ती ॥ ६८ ॥

अर्थ—मखि पतङ्ग दहकाया कहिये, माखी व पतङ्ग काया दहै हैं। तसयर कहिये, चोर। चित्तोय कहिये, चीता। णमण तण होई कहिये, इनके तन मैं बहुत नमन है। सुरतरु देवहु दाणो कहिये, कल्पवृक्ष मनवांच्छित दान देय। भावो सुधी बिना ण सीझन्ती कहिये, परन्तु भाव की शुद्धता बिना मोक्ष-मार्ग नाहीं। भावार्थ—भावन की शुद्धता बिना मोक्ष नाहीं होय है। नाना तप, संयमादि के खेद, सर्व वृथा जानना। सो भाव शुद्ध बिना केतेक तौ भोले जीव मोक्ष के निमित्त अपना भला तन अग्नि मैं भस्म करैं हैं। सो ऐसे अग्नि मैं जलने के कष्ट तैं मोक्ष होती तो शुद्ध-भाव बिना माखी व पतङ्ग कौं होय। माखी व पतङ्ग दीपक में निशङ्क होय, तन को दाहैं हैं। सो अज्ञान संक्लेश भावनतैं मरि खोटी गति ही विषैं उपजैं हैं। तातैं शुद्ध-भाव बिना काय का जलावना वृथा है और काय तैं अत्यन्त नमैं विनय किये शुद्ध-भाव बिना मोक्ष होती तो चोर पराए-घर में चोरीकूं जाय तब अपना तन शीश नवावता जाय है। सो यह मायावी, दगादार महाखोटे अन्तरङ्ग का धारी ये चोर तथा चीता पशु है सो अन्य जीवनकौं मारै है तब पहले अपनी कायकूं बहुत नमाय करि पीछे चोट करै। सो काय नमाए—विनय किये शुद्ध-भाव बिना मोक्ष होय तो चोर तथा चीते कौं होय। तातैं धर्म अभिलाषी पुरुषनकौं भाव ही शुद्ध करना स्वर्ग मोक्षकारी है और शुद्ध-भाव बिना दान किए मोक्ष होय तो कल्पवृक्ष कौं होय जो वांच्छित फल देय है। तातैं तस्कर चीता माखी पतङ्ग कल्पवृक्ष ज्ञान रहित हैं। खोटे-भाव सहित हैं। इनकूं पर-भव सुख नाहीं। तातैं ऐसा निश्चय करना, कि पर-भव के हित का कारण-भाव की शुद्धता है। तातैं धर्मार्थी जीवनकूं भाव की शुद्धता करना योग्य है। आगे सुसंग-कुसंग के वांच्छक जीवनकूं बतावैं हैं—

गाथा—वायसस्सांण अणाणी, हीण सङ्गोय रञ्जई मूढ़ो। हंस चतुर णर णाणी, ऊँच सङ्गोय वंछिका गेयं ॥ ६९ ॥

अर्थ—वायस कहिये, कौवा। स्सांण कहिये, कुत्ता। अणाणी कहिये, अज्ञानी। हीण सङ्गोय कहिये, नीच सङ्ग विषैं। रञ्जय मूढ़ो कहिये, मूरख राचैं हैं। हंस चतुर णर-णाणी, ऊँच सङ्गोय वाञ्छिका गेयं कहिये, हंस चतुर मनुष्य व ज्ञानी पुरुषन कौं ऊँच-सङ्ग ही सुहावै। भावार्थ—काक कौं चाहै जेते ही रतनमयी आभूषण पहराय कैं श्रृङ्गारो। चाहे जैसा भोजन देय पोखौ। चाहै जैसा खेद खाय, पढ़ावो। कनक के पिंजरे में राखो।

इत्यादिक याका लाड़ चाहै जैसा करो। परन्तु जब या काक हाथ-पिंजरे तैं छूटै, तब ही ये अज्ञानी, नीच जहां स्थान होयगा तहां ही जायगा तथा आप समानि काक बैठे होंयगे, तहां जाय तिष्ठैगा और कुत्तेकूं, चाहे जैसा भला-भोजन करावौ। अनेक भले आभूषण याके तन में पहरावो। पालकी व रथ की असवारी में धरो। नाना बिछौना, गादी, जाजमै पै राखो। इत्यादिक अनेक भले निमित्त मिलाय कैं राखौ। परन्तु जब यह डोर तैं छूटेगा, तब ग्राम-श्वानन विषैं जाय रमनै लगेगा तथा घूरा पै जाय तिष्ठैगा। ऐसा ही याका सहज-स्वभाव है और अज्ञानी कौं चाहे जेता समझावो-पढ़ावो, परन्तु याकी अज्ञानता नाहीं जाय। याका सहज-स्वभाव ऐसा ही जानना। सो अज्ञान, ताके अनेक भेद हैं। तहां एक अज्ञान तौ ऐसा है। जो और कला धर्म-कर्म की सब जानै है। अनेक भेद-भाव समझै है। परन्तु शास्त्र-वांचने के ज्ञान से रहित है। कोई पूर्व-कर्म जोगतैं श्रुतज्ञानावरण के उदय तैं संस्कृत, प्राकृत, देश-भाषादिक शास्त्रन के वांचने का ज्ञान नाहीं। तातैं याकौं अज्ञान कहिये और एक अज्ञान ऐसा है जो ताकौं शास्त्र-वांचने का ज्ञान तौ है। परन्तु योग्य-अयोग्य, भली-बुरी, पुण्य-पाप, हित-अहित इत्यादिक शुभाशुभ विचारतैं, हृदय जाका रहित होय। जैसे—तोता कौं पढ़ाय पण्डित किया। सो तोता कौं जैसे—काव्य-छन्द पढ़ावो सो पढ़ै। ताका पढ़ना देखि और जन राजी होंय। ऐसा पढ़ाय तैयार किया। परन्तु याके मुख आगे अँगुली करो, तो काट खाय तथा पिंजरे तैं खोल देव, तो मूरख उड़ जाय। कछू विचारै नाहीं। जो मैं इस रतन-पींजरे में, भले भोजन-जल खावता सुखी हौं। मोकौं इननै पढ़ाया है। सो ये अज्ञान, सर्व भूलि, पींजरा छोड़ जाता रहै। सो कोई ऐसा ही मूरख, अनेक शास्त्र, संस्कृत, प्राकृतादि तो वाँचि जानै, परन्तु कषाय-सहित, महामानी, पाप का भय नाहीं, पुण्य-फल की चाह नाहीं, ऐसा हित-अहित रूप भाव नहीं समझै। काम, क्रोध, लोभ बहुत होय जाकैं। सो पढ़्या-अज्ञान कहिये। एक शुभाशुभ विचार रहित होय, अरु अक्षर-ज्ञान तैं भी रहित होय, ताकौं भी अज्ञान कहिये और एक बालक अज्ञान होय। सो सुख-दुःख के स्थान-भेद नहीं समझै। ज्यों बालक कौं, वाके माता-पिता कहैं हैं। पुत्र ! भोजन खायकैं, पालने झूलो-सोवो। अरु घाम में मति जाओ, यहां शीतल जल पीवो। लड़कों में मति जाओ, वह मारेंगे। ऐसी हितकारी-सुखदायक शिक्षा, अपने बालक कौं कहैं हैं। ताके भेद नहीं समझा

जो बालक-अज्ञान, सो माता-पिता के वचन उलङ्घकैं, छिपक, बड़ी घाम में ही भागकैं, बालकन में खेलने जाय है। तहां शीश में रज भरै। घाम तनपै सहै। प्यास लागी, सो सहै है। भूख लागी है। औरन के मुख की गारी सहै है। कोई शिर में मारे, सो भी सहै है। इत्यादि खेद के स्थानन में तो जाय। अरु सुख-स्थान अपना घर, तहां नहीं रहै। ऐसा अज्ञान ये बालक है और एक अज्ञान ग्वाल है। जो सदैव ढोर चरावै। वन ही में रहै, या मैं भी शुभाशुभ का ज्ञान नाहीं। इस गोपाल को शाल का जोड़ा दीजिये। तो ये अज्ञानी नितम्ब-वल्लभ, शाल के मोल-गुण कूं नहीं जानता-सन्ता, बैठे है तहां शालकूं, पद नीचे देय बैठे। इसको विशेष-विवेक नहीं होय। सदैव पशून की संगति मैं रहै। सो तैसी ही बुद्धि धारै हैं। इस गंवार कूं वन में प्यास लागै, तब नदी में जाय, पशु की नाईं मुख ही तैं जल पीवै, हाथ तैं नहीं पीवै। खड़ा ही नीतादिक बाधा करै। याकैं शुभाशुभ की खबरि नाहीं। तातैं ग्वाल भी अज्ञान है। इत्यादिक कहे मूरखन के भेद, सो इन सर्व कूं नीच-संग ही भला लागै है और ऊँच-संग में जातैं-बैठतैं-बोलतैं, लज्जा उपजै है। जैसे—कोई भले-आदमी का पुत्र, होरी के दिन में, अपना मुख श्याम बनाय, नीच-संग के मनुष्यन में खुशी भया, रमै था—स्वछन्द खेले था। सो तहां कोई भला-आदमी आय निकसै, तो लज्जा खाय छिपि जाय है। उस काले-मुख सहित, भले-संग में लज्जा उपजै। तैसे इस अज्ञान कौं सुसंग में लज्जा उपजै है और अपने समानि, अज्ञान के धरनहारे जीव होंय, तिनमें ये अज्ञानी प्रसन्न रहै है। तातैं ये काक, श्वान, अज्ञान इनकूं नीच-स्थान ही प्रिय है। सो इनका ये सहज-स्वभाव जानना। एतेन कूं ऊँच-संग भला लागै है। सो ही कहिये है। एक तो हंस, महासमुद्र का रहनेहारा, मोती चुगनेहारा, उज्ज्वल-बुद्धि, निर्मल नीर का पीवनहारा, ऐसे भले-स्थान का रहनेहारा, सुबुद्धि, महासुन्दर तन का धारी, हंस कूं ऊँच-स्थान ही अच्छा लागै है। जहां बड़ा दरयाव होय, बड़े जल का विस्तार घणा-जल होय, हंस तहां सुखी होय। जे चतुर नर हैं सो भी तहां राजी होय हैं, जहां अनेक-कलाके धारी, विवेकी, चतुर, राजकुमारादि, उज्ज्वल-बुद्धि, आप समानि धर्म-कर्म-कला में समझते होंय। अनेक शुभ-विवेक वार्ता होती होय। नाना नय-जुगतिन की रहसि सहित प्रश्न-उत्तर होते होय। अनेक धर्म-कथा चरचा, शास्त्राभ्यास कौं लिये होती होय। जहां की चतुराई में तिनकूं भला लागै कुसंगतैं अरति होय सो चतुर कहिए और जे धर्मातमा हैं। तिनकूं धर्म-स्थान सोही ऊँच-स्थान

प्यारा लागै है। सो जहाँ प्रथमानुयोग, करणानुयोग, द्रव्यानुयोग की कथा पाप हरनी, पुण्य करनी बात होती होय सो स्थान धर्मात्माकूं भला लागै तथा जहां अनेक मतान्तर की रहसिकूं लिये तत्त्व भेदन का निर्धार होता होय जिनतैं मोक्ष-मार्ग जान्या जाय संसार भ्रमण छूटे परभव सुख होय लागे पाप नाश होंय इत्यादिक ऊँच-स्थानकमैं रञ्जायमान होय सो ज्ञानी कहिए। ऐसे कहे जे सुसंग हंस चतुर नर ज्ञानी पुरुष इनकौं ऊँच संग प्रिय लागै है। इनका थे ही सहज स्वभाव है। सो हे भव्य हो! जे नीच हैं तिनकौं नीच संग प्रिय है। ऊँचनकौं ऊँच संग प्रिय है। ऐसी परीक्षा करि नीच-ऊँच की पहिचान करना। जिसमैं तेरे चले की होय तिस संगति मैं रञ्जना मगन होना योग्य है। ६९। आगे हितून के परखिनेकूं नव स्थान दृष्टान्तपूर्वक बतावैं हैं—

गाथा—णिपभय खेद दरिदये, भोयण सतयार अज्जपण्णामो जराशक्ति अखभ्रहीयो इथल हित हेम पाख कसटीये ॥ ७० ॥

अर्थ—णिपभय कहिये, राजा का भय। खेद कहिये, रोग। दरिदये कहिये, दारिद्र्य। भोयण कहिये, भोजन। सतयार कहिये, सत्कार। अज्जपण्णामो कहिये, आरजी परिणाम। जरा कहिये, वृद्धपना। आसक्ति कहिये, हीन शक्ति। अखभ्रहीयो कहिये, इन्द्रियन के बल घटैं। इथल हित हेम पाख कसटीये कहिये, ए स्थान हित रूपी कनक के परखवे कौं कसौटी हैं। भावार्थ—संसार में अपने हितकारी जीव तेई भए स्वर्ण तिनके परखवेकौं ए कहे स्थान सो कसौटी समानि हैं। सोई बताइए हैं। जहां एक तो भूप भय होवै। तब राजा का कोप अपने ऊपरि होय तब अपनी सहायकूं अपनी चाकरी करै। सो भला चाकर जानना। जे ऐसे समयमैं पासि रहै, विनय करै, सेवा करै, सो सांचा चाकर है। अरु कुटुम्बादि, मन्त्री, जे भूप के कोप मैं सहाय करें सो सांचा हितू जानना। १। नाना प्रकार तन विषैं कुष्टादि रोग की वेदना भई होय। ता समय मल-मूत्रादि को समेटणा करै सो ही भला सेवक सो ही कुटुम्ब सो ही मित्रादि जानना। २। जब पाप उदय तैं दरिद्र आवे धन की हीनता होय। ता समय मैं भूख-प्यास सहकैं जो सेवा करै सो भला सेवक कहिए। जो इस दरिद्र दशा मैं संग रहै विनय तैं पूर्ववत् रहै सो ही कुटुम्ब सो ही मित्रादिक जानना। ३। भोजन देते यथायोग्य आदरतैं विनय सहित अन्तरंग के स्नेहतैं भोजन देय सो सांचा हितू सोही कुटुम्ब सोही मित्र सांचा है। सोही सेवक भला है।४। आवते, जावते, बोलते यथायोग्य अन्तरंग मोह सहित सत्कार करै। आव आदरैं सोई सांचा मित्रादिक सज्जन

जानना। ५। सरल भाव तैं कुटिलाई तजिकैं विनय तैं सेवा कर सो भला सेवक है। सोही मित्र कुटुम्बादि जानना। ६। और शरीर में कमाने की शक्ति घटै। कुटुम्बादिक सर्व रक्षा करने की शक्ति घटै। तन अति ही पराधीन होय। वचन बोलतैं मुखतैं नीर चलै। अंग उपांग कम्पन लागैं। इत्यादिक अवस्था जरा आए होय तरुणापना जाय तब कोई विनय सहित सेवा करै सो तो सेवक और या दशा में आदर सहित सेवा चाकरी करै आज्ञा मानै सोही भला पुत्र, भाई, स्त्री आदिक कुटुम्बी मित्र जानना।७। उदय तैं उठतैं बैठतैं मल-मूत्र खेपनेतैं शरीर की शक्ति घट गई होय, ता समय अशक्त भए पीछे सेवा चाकरी करै सोही मित्र, कुटुम्बादि जानना।८। जा समय पंचेन्द्रियाँ शिथिल होंय तथा एक दोय इन्द्रिय की प्रवृति जाती रहै। नेत्रनतैं नाहीं सूझै नहीं दीखै तथा काननतैं नहीं सुनै। इस समय में जो कोई, विनय सहित आज्ञा प्रमाण सेवा करै, सोही मित्र, सोही सेवक, सोही स्त्री-पुत्रादि, सांचे जानना।९। ऐसे कहे जे सेवक, मित्र, पुत्र, स्त्री, भाई, माता-पितादि, स्नेही सोही भये कञ्चन, तिन सबके परखिने कों ये नव स्थान कसौटी समानि हैं। जैसे—कसौटीपै घिसे, भले-बुरे कञ्चन की परीक्षा होय, तैसे ही इन नव स्थानकन में मित्र, सज्जन, कुटुम्बादिक की परीक्षा होय है। बाकी भले विषैं तो अनेक चाकरी करैं हैं। कुटुम्ब, पुत्र, स्त्री आदि आज्ञा मानैं ही मानैं। क्योंकि ये तौ सर्व का रक्षक है। परन्तु उक्त नव स्थानकन का अवसर आय पड़ै, तब चाकरी करै, सोही सांचा नाता जानना।७०। आगे ऊपर कहे जे कसौटी समानि सर्व स्थान, इनपै कौन-कौन कौं परखिये, सो कहैं हैं—

गाथा—ए णव ठाण कसोटी, पीय तीय मित्तादि पुत्त सजणाणी। सज्जय तव धम्म कणका, घसि पखणाय पमाण सुदिट्ठी ॥७१॥

अर्थ—ये उक्त नव स्थान, कसौटी समानि हैं। अरु पिया, स्त्री, मित्रादि, पुत्र और अनेक सज्जन और सञ्जय कहिये संयम, तव कहिये तप, धम्म कहिये धर्म, ए सब कहिये सर्व ही, स्वर्ण समानि हैं। घसि पखणाय पमाण सुदिट्ठी कहिये, नय-प्रमाण इनकूं घसि कैं शुद्ध दृष्टि होय, सो परखै। भावार्थ—ऊपरि गाथा में कहे नव भय-राज भय, रोग भय, दरिद्र भय, भोजन नहीं भये, असत्कार भये, सरल भाव भये, वृद्ध भये, तन अशक्त भये, इन्द्रिय बलहीन भये, ए नव स्थान कसौटी समानि जानना। सो इन कारण पड़ैं तब धर्म-कर्म सम्बन्धी जो पदार्थ तेई भये कनक, तिनकौं परखिये। स्त्री तो भरतार कूं, इन कारणन में परखै और

भरतार, स्त्री कौं इन कारणन में परखै। मित्र, मित्र कूं इन कारणन में परखै और भाई, भाई कौं इन कारणन में परखै। पुत्र, पिता कौं इन कारणन में परखै और पिता, पुत्र कौं इन कारणन में परखै। सेवक स्वामी कूं और स्वामी, सेवक कूं इन कारणन में परखै और चित्त की धीरजता, धर्म कार्यन में, तप करतैं, संयम की रक्षा करतैं, इन कारणा पै परखिये। इत्यादिक कहे जे धर्म-कर्म सम्बन्धी कार्य सर्व-अंग, इन नव अवसरन में दृढ़ रहै। सो साँचा धर्म-कर्म अंग जानना। बाकी पुण्य-उदय में अपने-अपने स्वार्थ पूरने में तौ, सब ही सहाय करैं व धर्म-सेवन करैं। परन्तु ऊपर कहे अंगन में-असहाय में दृढ़ रहै, सो धन्य कहिये।७१। आगे एक दुःख कौं अपनी-अपनी कल्पना करि, अनेक उपचार बतावैं, सो कहिये हैं—

गाथा—वैद्यो कथयत रोगो, भूतो चयटक गहण मन्तीए। पूव्वो पाज्जय णांणय, एक गद जथा दिट्ठि भासन्ती ॥ ७२ ॥

अर्थ—इस जीव कौं कोई पाप उदय करि, एक रोग होय। ताकौं जगत् के चतुर जीव, अपनी दृष्टि माफिक उस दुख का कथन करैं। सो कोई वैद्य कौं पूछिए, जो हमैं खेद काहे तैं है, सौ कहो। तो कोऊ ज्वर, वाय, खांसी, स्वांसादि रोग बतावै और कोऊ मन्त्रवादी-चेटकीकूं पूछिये। जो हम दुखी हैं, सो क्यों हैं? तब कहै, तुमकौं ऊपरला फेर है। जोरावरी भूत-प्रेत की झपट में आये हौ। सो हम मन्त्र, जन्त्र, तन्त्र गंडा कर देंयगे, सो सब रफे होय साता होय जायगी और निमित्तज्ञानीकूं पूछिये, जो हमकूं खेद क्यों है? तब कहै, तुमकौं शनीचर-मंगलादि ग्रहों की क्रूरता है। सो इनका किया खेद है। तातैं इनकी पूजा करौ। दान देऊ। फलाने नक्षत्र में साता होयगी और कोऊ धर्मात्मा, संसार-भ्रमण का जाननहारा, पुण्य-पाप का समझनेहारा, तत्वज्ञानी, सम्यग्दृष्टि कूं पूछिये, जो हमकौं खेद है सो क्यों? तब समता-रस-रंगीला कहै। भो भव्य! कोऊ पूरव उपार्जित पाप का अशुभ-फल प्रगट भया है। इस भव में ताने दुख किया है। तातैं तुम विवेकी हौ, पाप का फल ऐसा दुखदायक जानि, पाप मति करौ। तातैं पर-भव में फेरि दुख नहीं होयवे कूं, धर्म-सेवन करौ, पर-भव सुख पावोगे। धर्मात्मा ऐसी कहै। ऐसे एक दुख होय, ताके दूर करने के अर्थि, जो कोई कूं पूछिये, सो अपनी-अपनी जैसी-जाकी दृष्टि होय, जा वस्तु के अतिशय में जाका चित्त रञ्जायमान होय, सो ही इस जीव कूं सहायकारी भासै है सो जैसा जाका ज्ञान था तैसा ही इन्होंने इलाज

बताया। सो विवेकी ...

बताया। सो विवेकी इन सर्व के वचन सुनि, धर्मात्मा का वचन सत्य जानि, श्रद्धान करि, पाप का फल दुख जानि पाप तजि, धर्म के सेवन में जतन करैं।७२। आगे ऐसा कहैं हैं जो पहलैं घर कौं तजि, कुटुम्ब कौं तजि भेष धरि, फेरि घर मित्र चाहै ताकों कहा कहिए। सो बतावैं हैं—

गाथा—मिन्दयतजि कुटइछये, दाणो तजि देण मूठ जाचन्ती। बन्धू तजि इछमित्तो, तव गय को होय सांगधर आदा ॥७३॥

अर्थ—मिन्दय तजि कुटइछये कहिये, मन्दिर छांड़ि टपरिया (झौंपड़ी) चाहै। दाणो तजि देण मूठ जाचन्ती कहिये, दान का देना तजि उलटा भीख मांगै। बन्धू तजि इछमित्तो कहिये, कुटुम्ब तजि फेरि मित्र चाहै। तब गयको होय सांगधर आदा कहिये, तेरी कौन गति होयगी? हे स्वांग धरनहारे आत्मा। भावार्थ—केतेक भोले शुभ विचार रहित इन्द्रिय सुख के लोभी प्रमादी तिननैं गृह की अनेक क्लेशता देखि उदास होय, घरकूं तजि भेष धारचा पीछे भेष का निर्वाह करना विषम जानि जांचने लागे। फिर इन्हैं टपरिया छप्पर मन्दिर बनाते देखि औरतें स्नेह करते देखि इत्यादिक विपरीत भेष देखि कैं गुरु हैं, सो दया करि शिक्षा सहित हितोपदेश करते भये। भो भव्य! तेरे पुण्य-प्रमाण मन्दिर में रहै थां तिसको तजि जोग धारचा। सो तू अब मन्दिर बनावाया चाहै तथा घास की कुटी व छप्पर बनवाने के निमित्त आश्रय देखता फिरै है। सो हे भाई! तू पहिले क्यों भूल्या? हे भव्य! अपने घर में तब तौ तूं औरनकूं स्थान देय सहाय करै था। अब घर तजि टपरिया बनवानेकूं, दीन भया फिरै है। तातैं घर तजना योग्य नाहीं था और अब तज्या ही है। तौ वन-विहार करना योग्य है। गुफा, मसान (मरघट) वृक्ष की कोटर में तिष्ठना योग्य है। अरु ऐसी शक्ति तेरी नहीं थी तो घर तजना योग्य नहीं था और देखि हे भव्य! घर विषैं था तो अपनी शक्ति प्रमाण दीन-दुखीकों दान देय दया-भाव करि पोखे था। अब तूं घर विषैं दान देना तजि उलटा घरि-घरि दीन भया भीख जांचता फिरै है। सो भी तोकूं योग्य नाहीं। तोकूं अजाचीक रहना योग्य है और सुनि हे भाई! घर के पिता, माता, पुत्र, स्त्री, भाई, सज्जन मित्रादि स्नेही मोह के करनहारे तिनकूं तजि, अब भेषि धरि अन्य गृहस्थनकौं सम्बोधन देय खुशामदि करि विनय करि तिनतैं नेह बधाय मोह के वन्धन में फेरि बन्ध्या चाहै है। अर वह तो तूं तैं मोह करते नाहीं। तातैं मोह बधावना था, तौ तौकौं घर तजना योग्य नाहीं था। अरु अव घर तज्या है तो निर्मोही रहना योग्य है। तातैं हे अजान! भोले तैं घर तजि मन्दिर

बनाये। तुम दान देना तजि उल्टे याचना कूं आये तथा तुम घर के कुटुम्बी मोही तजि औरनतैं स्नेह करते फिरौ हौ। सो हे भोले! ऐसे तेरे भांड़-बहुरूपिया कैसे नाना स्वांग देख हमकौं बड़ा आश्चर्य आवै है? सो तेरी कौन-सी गति होयगी सो हम नहीं जानैं अन्तर्यामी जानैं। ऐसी शिक्षा उत्तम जीवनकौं गुरु देते भए। सो विवेकी हैं तिनकौं तजे पीछे ग्रहण करना योग्य नाहीं। अरु कभूं तजै कभूं अंगीकार करै, सो ताका तप लैना बालक का-सा चरित्र है तथा नट के समानि स्वांग धरना जानना। ऐसा जानि विवेकी जो धर्म कार्य करैं सो प्रथम ही विचार कैं करना योग्य है। ७३। आगे ऐसा कहैं हैं जो कौन वस्तु तजि किस वस्तु कों तजि किस वस्तु कौं राखिये, सो ही बतावैं हैं—

गाथा—पुरतज्जे धण कज्जय सहधणतज्जेय काजकुलरक्खो। कुल तज्जय तणकज्जय पुरधणकुलकाय तज्यधम्मकज्जाय ॥ ७४ ॥

अर्थ—पुरतज्जे धण कज्जय कहिये, पुर तौ धन के निमित्त छांड़िए है। सहधण तज्जेय काल कुल रक्खो कहिये, सो धन कुल की रक्षा के निमित्त तजिए है। कुलतज्जय तण कज्जय कहिये, कुल को ताके वास्ते तजिए है। पुरधण कुलकाय तज्यधम्मकज्जाय कहिये, पुर धन कुल काय ए सब धर्म के निमित्त तजिए है। भावार्थ—जगत् जीव कुटुम्ब मोह तैं तथा मानादि कषाय पोषने कौं तथा परम्पराय आपकौं सुख होयवे कौं इत्यादिक कर्म कार्यन के निमित्त सहायकारी सुखकारी धन जानि ताके पैदा करनेकौं यह विवेकी अपनी बुद्धि के बलतैं अरु पुण्य के सहाय तैं घर तजिकैं दीपान्तर समुद्र वन इन आदिक विषम स्थान कानन (वन) में प्रवेश करि बहुत कष्ट खाय क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण अनेक कष्ट सह के धन पैदा करै है। तब धन के निमित्त घर तजिये। ए बात प्रसिद्ध है। जो देशान्तर जाय धन कमाय लावै है—तब धन होय है और ऐसे कष्ट करि कमाया धन सो कुटुम्ब की रक्षाकौं खरचिए खुवाइये है। कोई ऐसा कार्य बन जाय जो धन गए कुटुम्ब बचै तो कुटुम्बकौं राखिए धन दीजिए सो कुल कुटुम्ब की रक्षा के निमित्त धन तजिए और कोई काम समय ऐसा आवै है। जो अपने तन की रक्षा के निमित्त कुल कुटुम्ब कौं तजिए है और कदाचित् अपने धर्मकूं प्रयोजन आय पड़ै, तो कुल पुर, धन सर्व ही धर्म की रक्षाकौं तजिए। तनादिक तजै धर्म रहै तौ तनादिक सर्वकौं तजिकैं अपने धर्म की रक्षा कीजिए। यहां प्रश्न? जो तुमने कह्या। काय तजिकैं भी धर्म राखिए सो काय गई तब धर्म कहां रह्या? अभी

लौकिक में भी ऐसा कहैं हैं कि काया राखै धर्म रहै है तौ काय गए धर्म रहौ कैसे कहौ हौ ? ताका समाधान—हे भव्यात्मा ! तैंने कही सो सत्य है। तेरा प्रश्न हमारे उपदेशतैं मिलता ही है और लौकिक में कहैं हैं, सो भी प्रमाण है ये भी सत्य है। परन्तु याका भोले जीव भेद नाहीं जानैं हैं लौकिक में काया राखै धर्म कहैं हैं, सो सत्य है। याका स्वरूप आगे कहैंगे। अरु लौकिक में भोले या कहैं जो अपनी काया राखैं धर्म है, सो ऐसा नाहीं। काया राखै धर्म कैसे रहै ? सो ही कहिये है। सो हे भव्य ! तू चित्त देय सुनि। तूने प्रश्न भला किया। घने जीव का संशय मेटनेहारा तथा तेरा संशय मेटनेहारा प्रश्न है। सो तू उत्तर कूं चित्त देय सावधानी तैं सुनि। तोकूं हम पूछैं है जो एक शूरमा है। ताकौं कोई बड़े योद्धा नैं आय ललकारया। कही—वह शूरमा कहां जाका मैं नाम सुन्या करौं हौं। वह महायोद्धा होय शूरमा होय तो मोतैं आय युद्ध करै। वाके हस्त में बड़ा शस्त्र है। देख्या सो ही मारया। सो अब इस शूरमा कौं कहा योग्य है ? इसका धर्म कैसे रहै ? इस वैरी के सन्मुख आय युद्ध में अपनी काय शस्त्रन तैं खण्ड-खण्ड करि मरै तो धर्म रहै ? तथा भागकैं अपना तन राखै तौ धर्म रहै ? सो कहौ। तब वाने कही—भागि जाय तो निन्दा होय। शूरमा तो मरै तबही धर्म रहै। तब तोकूं कहिये है। हे भव्य ! यहां काया अपनी राखै धर्म रहै। ऐसा कहना झूठा भया। अपनी काया राखै धर्म रहै। तो शूरमा मरता नाहीं। तातैं जे विवेकी हैं सो धर्म राखवै कौं काय भी तजि धर्म राखैं हैं। ऐसा जानना। ऐसे धर्मकूं पुर धन कुल काय सबही तजैं हैं और धर्म राखै हैं। अब सुनि तैंने कही जो काया राखै धर्म है। सो श्रेष्ठ धर्म है। यो भी जिनेन्द्रदेव का उपदेश है। जो काया राखै धर्म है। परन्तु ज्ञान-अन्ध प्राणी इसके भेदकूं पावैं नाहीं हैं। धर्म तो काया राखे ही है सो तुम सुनौ। अब यामैं भेद-भाव है। सो अन्तर भेद कहिये है। काय भेद षट् है। सो इन षटकाय की रक्षा सो ही धर्म। सो कहैं हैं। पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय—ये षट् काय हैं इनकौं राखै सो धर्म है। पृथ्वी जो भूमि ताहि बिना प्रयोजन खौदै नाहीं, जालै नाहीं, पीटै नाहीं इत्यादिक पृथ्वीकाय की रक्षा करि दया-भाव करि हिंसा नाहीं करै। सो पृथ्वीकाय की रक्षा है। अप्काय जो जल सो जलकूं बिना प्रयोजन जारै नाहीं, नाखै नाहीं तथा प्रयोजन होय तहां जतनतैं घी तेल की नांई जलकूं वर्ते। बिना प्रयोजन डारै नाहीं ऐसे जलकाय की रक्षा करै और अग्निकाय तैं विना प्रयोजन तो आरम्भ नहीं करिए।

मुजाईए नाहीं, जालिए नाहीं जहां अग्नि का प्रयोजन भी होय तो घटाय कैं कीजिये। ऐसे अग्निकाय कौं राखै बिना प्रयोजन पंखादि वस्त्र हिलावना झटकनादि क्रिया करि पवनकायकौं नहीं सताइये। सो पवनकाय की रक्षा है। वनस्पति के प्रत्येक साधारण दूभ, घास, पत्ता, बेलि छोटे वृक्ष, बड़े वृक्ष गुल्म, कन्द, मूल इत्यादिक हरी-नीली कूं बिना प्रयोजन खेद नाहीं करै। काटै नाहीं, छेदे नाहीं, छीलै नाहीं, पैलै नाहीं, हाथ-पांव तैं मर्दन नाहीं करें इत्यादि विधि से वनस्पतिकाय की रक्षा करै और बेइन्द्रिय जौंक, इली नारू आदिक केंचुवा ए बेइन्द्रिय हैं। इनकी काया राखै और तेइन्द्रिय खटमल, चींटी, तिरूला, कुन्थुवादि जीव तेन्द्रिय हैं। इनकी काया राखै और चौइन्द्रिय माखी, मच्छर, टीड़ी, भ्रमर, डांस इत्यादिक चौइन्द्रिय जीव इनकै तन की रक्षा करै इनकौ घातैं नाहीं। पंचेन्द्रिय हस्ती, घोटक, कुत्ता, बिल्ली, मनुष्य, देव, नारकी—ए पंचेन्द्रिय हैं इन पै समता-भाव राखि इनके रक्षा रूप भाव राखि दया करै। ऐसे त्रस जीव च्यारि प्रकार हैं। तिनकौं पीड़ै सतावें नाहीं सो त्रसकाय की रक्षा है। ऐसे पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, वनस्पति, त्रस—ये षट्काय हैं। इनकी काया की रक्षा करै सतावै नाहीं मारै नाहीं। मन-वचन-काय करि इन षट् भेद काया हैं। तिनकी रक्षा सो ही धर्म है। सो श्रावक तो एक देश रक्षा करैं। मुनि सर्व प्रकार रक्षा करैं। इन षट्कौ राखैं हैं। सो ही मोक्ष-मार्ग-धर्म है। ऐसे इन षट् काया कौं राखैं धर्म कह्या। सो काया राखै धर्म जानना। आगे ऐसा कहिये है, जो जहां ऐती वस्तु नहीं होय तो तिस देश नगरकूं तजिए—

गाथा—जहि पुर णह सतकारो, णह-बन्धव णह-मित्त जिणगेहो। विद्या धम्म ण सुसंगो, सह पुर देसोय हेय वुध आदा ॥७५॥

अर्थ—जहि पुर णह सतकारो कहिये, जिस पुर में सत्कार नहीं होय। णह-बन्धव णह-मित्त जिण गेहो कहिये, जहां बांधव नहीं होंय, मित्र नहीं होंय, जिन-मन्दिर नहीं होंय। विद्या धम्मण सुसङ्गो कहिये, विद्यावान् नहीं होंय, धर्म नहीं होय, सत्संग नहीं होय। सह पुर देसोय हेय बुध आदा कहिये, सो पुर-देश बुद्धिमान् आत्मा के तजने योग्य है। भावार्थ—जे विवेकी हैं ते ऐसे अशुभ देशादि होंय, तहां नहीं रहैं। सो ही कहिये है। जहां जिस पुर-स्थान में अपना आदर-सत्कार नहीं होय, तहां विवेकी नहीं रहैं। रहैं, तो अनादर पावैं हैं और अनादर तैं, परिणाति संक्लेश रूप होय है, पाप बन्ध होय है। तातैं रहना ही भला नाहीं और जहां अपने

भाई-बन्धु-कुटुम्बी-सहकारी सज्जन नहीं होंय, तहां नहीं रहना और जहां जिन-मन्दिर नहीं होंय, धर्म-प्रवृत्ति नहीं होय, तो ऐसे धर्म-रहित क्षेत्र विषैं, धर्म का लोभी धर्मात्मा सुजीव नहीं रहै और जा देश-पुर में विद्यावान्-पण्डित नहीं होंय, तिस क्षेत्र में नहीं रहिये। अगर रहै, तो अपना ज्ञान नष्ट होय। अज्ञानी जीवन के संगतैं, आप अज्ञानी होय। जैसे—गोपाल, पशून के सदैव सङ्ग तैं, आप भी पशु समानि, अज्ञानी रहै है और जीव का भला करनहारे शुद्ध-धर्म की प्रवृत्ति-क्रिया जहां नाहीं होय, ता क्षेत्र में नाहीं रहै। कुधर्मीन में रहै, तौ सुधर्म का अभाव होय। तातैं धर्म-रहित क्षेत्र में नहीं रहिये और जहां खोटे-संग के मनुष्य सप्तव्यसनी होंय। चोर, ज्वारी, अनाचारी जीव होंय। अरु सत्संगति के सुआचारी नहीं होंय, तहां नहीं रहिये और ऊपर कहे कारण जहां होंय, तहां बुद्धि-बल का धारी धर्मात्मा, ऊँच-संग का वांच्छक, ऐसे स्थान में नहीं रहै और जो रहै, तो अपने भले गुण-धर्म का अभाव होय। ऐसा जानना। आगे इन स्थान में लज्जा करिये नाहीं, ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—हार विहारे जूझे, णित गीतेय द्यूत वादाए। भोगो वाजय पठती, यह दह थलेय लज्ज नहि बुद्धा ॥ ७६ ॥

अर्थ—भोजन में, व्यवहार में, युद्ध में, नृत्य करने में, गीत गाने में, जुआ खेलने में, वाद-विवाद (शास्त्रार्थ) करने में, पंचेन्द्रिय भोगन में, वादित्र बजावने में, पढ़ने में, इन दश स्थानन में, विवेकीन कौं लज्जा करना योग्य नाहीं है। भावार्थ—जहां भोजन जीमतैं लज्जा करै, तो भूखा रहै, खेद पावै, लोक-हाँसि होय, भोलापना प्रगट होय। जैसे—धर्म-परीक्षा में मूरखन की कथा कही। तहां एक मूरख ससुरार जाय, भोजन में लज्जा करि, रात्रिकौं कोरे चांवल खाय, मुख फड़ाया। लोक-हाँसि भई, अज्ञानता प्रकट भई। तातैं भोजन में लज्जा करै, तो इस मूरख ज्यों खेद-हाँसी पावै। तातैं यहां लज्जा नहीं करना। १। और व्यवहार विषैं लज्जा करै, तो व्यापार नहीं बनै। तातैं व्यापार में लज्जा नहीं करनो।२। और वैरी तैं युद्ध करतैं लज्जा करै, तौ युद्ध हारै मारचा जाय।३। और नृत्य में लज्जा करै, तो नृत्य-कला यथावत् नाहीं बनै समय वृथा जाय। तातैं नृत्य-समय में लज्जा नहीं बनै।४। ज्वारीकौं द्यूत-रमते लज्जा नहीं होय। तहां लज्जा करै, तो धन हारे। तातैं द्यूत में लज्जा नहीं करनी।५। और वाद समय, परवादी (प्रतिवादी) सूं धर्म-कर्म का वाद करतैं लज्जा करै, तो वाद हारै। तातैं वाद-समय लज्जा नहीं करनी। ६। और पंचेन्द्रिय-भोगन समय में

लज्जा करै, तो इन्द्रिय-सुख नाहीं होय। तातैं पंचेन्द्रिय-भोग समय लज्जा नहीं करनी। ७। और वादित्रों के बजावे में लज्जा करैं, तौ वादित्र-कला सम्पूर्ण नहीं बनै। तातैं वादित्र-समय लज्जा नहीं करनी। ८। गावने में लज्जा करै, तो गावना नहीं बनै। तातैं गावने मैं लज्जा नहीं करना। ९। शुभ-ज्ञान के बढ़ाने कौं, परभव-सुख पावने कौं, शास्त्राभ्यास करने-पढ़ने विषैं, लज्जा नहीं करनी। पढ़ने में लज्जा करै, तो ज्ञान की वृद्धि नहीं होय। यातैं शास्त्राभ्यास-पढ़ने में लज्जा नहीं करनी। चरचान में, प्रश्न करिवे में, तत्व विचार में, उपदेश करतैं, इत्यादिक विद्याभ्यास के ध्यान में स्वाध्याय में लज्जा करै, तो आप ही अज्ञानी रहै। अपना बिगाड़ होय। तातैं विद्या के स्वाध्याय करवै में, लज्जा नहीं करनी। १०। ऐसे भोजन, व्यापार, युद्ध, नृत्य, गीत, द्यूत, वाद, भोग, वादित्र, पठन—इन कहे दश भेदन विषैं, चतुरन को लज्जा योग्य नाहीं।

इति श्रीसुदृष्टितरङ्गिणी नाम ग्रन्थके मध्यमें अनेक नय सूचक, उपदेश-कथन वर्णन करनेवाला तेईसवाँ पर्व सम्पूर्ण भया ॥२३॥

आगे ऐसा बतावैं हैं कि जो पक्ष, सबल होय तो निर्वल का भी कार्य सिद्ध होय—

गाथा—गिरि-सिर तरु-फल पकऊ, काको भक्षन्ति पक्षबल दीणो। णभूतव्यं सिंहो, पक्षीणो जय गज-घटा सूरो ॥ ७७ ॥

अर्थ—गिरि-सिर तरु फल पकऊ कहिये, पर्वत के शिखर पर एक वृक्ष के फल पके हैं। काको भक्षन्ति पक्षबल दीणो कहिये, ताकौं काक तो पंखन के बलतैं दीन है तौ भी खाय है। पक्षीणो कहिये, परन्तु पंखा नहीं। तातैं णभूतव्यं सिंहो कहिये, ताकूं सिंह नहीं भोग सकै है। जय गज घटा सूरो कहिये यद्यपि ये गजन के समूहकूं जीतनेकूं शूर हैं। भावार्थ—पक्षन का बल होय तौ सामान्य बल धारी का भी कार्य सिद्ध होय और पक्षन का बल नहीं होय तो बड़े बलवान् का भी कार्य सिद्ध नाहीं होय है। सो ही बतावैं हैं। जैसे—कोई एक पर्वत के उत्तुंग शिखर पर एक वृक्ष है। ताकै भले फल मिष्ट लागैं हैं सो ताकूं खाववे कूं कोऊ समर्थ नाहीं। ऊँचा बहुत है। सो ता फलकों काक तौ अपने पंखन के बल तैं भोग सकै और तिस फल के भोगवेकौं सिंह की सामर्थ्य नाहीं। क्यों? जो सिंह के पांखन का बल नाहीं। बड़े-बड़े हाथिन का समूहकौं तो सिंह जीतै, ऐसा बलवान् है। परन्तु उत्तुङ्ग पर्वत के शीश पर वृक्षन के फल खायवेकौं समर्थ नाहीं। काहे तैं, कि पांख नाहीं। सो देखो, पांखन के बल तो काक भी बड़ा फल खावै। अरु पंख बिना सिंह के हाथ भला-फल नहीं आवै। तातैं सर्व तैं बड़ा बल

पंखन का जानना। तातैं विवेकी हैं ते पक्षबल नहीं तोड़े हैं। जैसे—कोई बड़ा राजा है। ताके धन खजाना बड़ा है। आप महाबलवान् होय। बड़ा गढ़ होय। ऐसा होय। परन्तु अपनी पक्ष के योद्धान का अपमान करि तिन बड़े सामन्तन का सहाय पक्ष तोड़ै तो आप राज्य भ्रष्ट होय और योद्धान का पक्ष होय हजारों राजा जाकी पक्ष होंय तो जीत पावै सुखी होय। तातैं विवेकी होय तिनकौं तन तैं धन तैं राज तैं विनय तैं जैसे बने तैसे पक्ष बल राखना योग्य हैं तिनमें उत्कृष्ट पक्ष धर्म का है। ताका ही सहाय राखना योग्य है। आगे हित है सो बड़ा बल है। ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—णेह बल रघु-हरि दोऊ दहमुह जय सीय लेय लंकाए। दहसिर बन्धु विरोधय तण कुल खय राय खोय अपसाओ ॥७८॥

अर्थ—णेह बल रघु हरि दोऊ कहिये, परस्पर स्नेह के बल तैं राम-लक्ष्मण दोऊ। दह मुह जय कहिये, दशमुख कौं जीत कैं। सीय लेय लङ्काए कहिये, सीता कौं लेय लङ्का से आये। दहसिर बन्धु विरोधय कहिये, दशशीश ने बन्धु के विरोध तैं। तण कुल खय राय खोय अपसायो कहिये, तन कुल अरु राज्य का क्षय करि अपयश पाया। भावार्थ—परस्पर बन्धुन के स्नेह होय सोही बड़ी सैन्य है। स्नेह ही बड़ा बल है। सो ही बड़ा खजाना है। सो ही बड़ा पुण्य का उदय है। सो ही बड़ा यश है और परस्पर बन्धुन में विरोध का होना सो ही बड़े पाप का उदय है। सो हो अपयश है। सो ही हार है। जैसे—राम-लक्ष्मण दोऊ भाइन ने परस्पर स्नेह रूपी सैन्या तैं अपने बन्धु स्नेह के बलतैं रावण तीन खण्ड का स्वामी महामानी बड़ा जोधा च्यारि हजार अक्षौ-हणी दल का ईश तिसकौं युद्ध विषैं जीत्या। ताकों मार अपनी स्त्री महासती ताहि लई। पीछे इन्द्र की विभूति समानि सम्पदा सौं भरी देवलोक की शोभा सहित ऐसी लङ्का-पुरी ताका राज्य पाय इन्द्र की नांईं लङ्का में प्रवेश करते भये। सीता सहित लङ्का का राज पाय सुखी भये सो यह दोऊ भाईन के परस्पर स्नेह रूपी सैन्य बल का माहात्म्य जानना और परस्पर बन्धु विरोध तैं रावण का क्षय भया। रावण ने भोलापनें तैं भाई विभीषणसे द्वेष-भाव करि देश तैं काढ्या। सो भाई विरोध तैं विभीषण रामचन्द्र पै गए। सो राम महासज्जन, आए के रक्षक विभीषणकूं स्नेह देय राखा। विभीषण के जातैं रावण निष्पक्षी भया। युद्ध मैं मारा गया। सो तन नाश भया कुल नाश भया। अरु राज्य भ्रष्ट होय अपयश पाय कुगति गए। सो ए बन्धु विरोध के अन्याय का फल है।

तातैं विवेकी हैं तिनकूं यशकूं व सुखकूं बन्धून विषैं स्नेह-भाव राखने का उपाय राखना योग्य है और जिन जीवन कैं रावण की नाईं तीव्र कषाय उदय आवैं तब बन्धु विरोध होय ऐसा. जानना। आगे न्याय-मार्ग की महन्तता बताइए है और अन्याय का फल कहिए है—

गाथा—जुगभट रघु हरि न्यायो दहसिर जय सैण सहित जस पायो। दहमुख ठाण अणायो कुलबलतण णास अयस दुगताई ॥७९॥

अर्थ—रघु-हरि दोऊ ही भटों ने न्याय के प्रसाद तैं दसशीशकूं सैन्या सहित जीत यश पाया। अरु दसमुख अन्याय करि कुल फौज निज तन इनका नाश करि अपयश पाय दुर्गति गए। भावार्थ—राम-लक्ष्मण ए दोऊ महासुभट सर्व राजनीति के वेत्ता आप दोऊ भाई रावण के जीतनेकौं लङ्का चालनेकों उद्यम भए। तब सुग्रीवादि बन्दर वंशीन के राजा सर्व आय कहते भए। हे स्वामी! वह महायोद्धा है। तीन खंड के सामन्तन के जीतने का उस एकले में बल है। ऐसा रावण महापराक्रमी चक्र का धारक तीन खण्ड का नाथ ताके संग अनेक विद्या के नाथ बड़े राजा अनेक देव जाके आज्ञाकारी और हजारों देव जाके तन की रक्षा करैं हैं। ऐसा जो रावण ताके जीतनेकौं इन्द्र भी सामर्थ्यवान् नाहीं है। ऐसे त्रिखण्डी नाथ के जीतने कौं उद्यमी भये हो सो तुह्मारा उद्यम कैसे पूर्ण होयगा? और कदाचित् ये बातैं रावण ने सुनी तो तुह्मारा तन सहज ही सङ्कट में पड़ेगा सो तुम विवेकी हो विचार देखो। तुम तौ दो भाई हो अरु रावण पृथ्वीनाथ है। कैसे जीत पावोगे। तातैं विचार कैं उद्यम करना योग्य है। इत्यादिक रावण के पराक्रम की बात सर्व विद्याधरों ने कही। तब इन विद्याधरों के वचन सुनि कैं दोऊ भाई निशङ्क होय कहते भये। भो विद्याधीश हो! तुमने रावण के बल पराक्रम पुण्य की महिमा हमारे आगे कही तुमकों रावण ऐसा ही भासै है। जैसे—अनेक बिना सींग के भेड़न का समूह तामैं एक श्रृङ्ग का धारी मीढ़ा होय है। सो सर्व भेड़नकौं बली ही दीखै है। वह अज्ञान भेड़न का समूह ऐसा नाहीं जानै है, जो यह फलानी भेड़ का बच्चा है। सो जेते हम हैं तैंसा ही ये है। हमसे ही याके माता-पिता हैं। परन्तु याके श्रृङ्ग देखि सर्व भेड़ उस मीढ़ा तैं भय खाय डरैं हैं। सो मीढ़ा सर्व भेड़न के समूह कौं बली भासै है। सो सर्व भेड़-बकरी उस मीढ़ा के दास होय उसकी आज्ञा मानैं हैं और वह मीढ़ा उन सब बकरी-भेड़न का नाथ होय अनेक भेड़ अपनी आज्ञा रूप देख तिन सहित वह मीढ़ा महामानी भया स्वच्छन्द होय वन विषैं बांका-बांका फिरै

है। सो जब तांईं नाहर का शब्द वन में नहीं भया तब ताँईं वह मीढ़ा फूल्या-फूल्या वन में फिरै है और जब सिंह की गर्जना का शब्द भया तब ताकूं सुनि कैं मीढ़ादि सर्व भेड़-बकरी भय कर कम्पायमान होय खान-पान की सुधि भूलि जांय हैं। जीवन का सन्देह करैं। ऐसे ही तुम जानों। जब तांईं रामबली के धनुष की टङ्कार नहीं भई तब तांईं रावण रूपी मीढ़ा नभचर रूपी भेड़न में मानी भया है। जब हमारा सिंह समानि शब्द भया तब रावण मीढ़ा कूं सैन्या रूपी भेड़न सहित जीवना कठिन जानौ। अहो खगाधीश हो! चोर का पराक्रम कहा? रावण चोर है। अन्याय पथ का धारी है। जो राजा होय अन्याय करै। तो ताका पराक्रम नष्ट होय। तुम मति डरो तुम्हारा चित्त भयरूप भया होय। तो तुम जाय अपने घर कुटुम्ब में तिष्ठौ। हम तो न्याय पै युद्ध करैं है। सो सांचे होंयगे तो दोऊ भाई जीतेंगे। ऐसी कहि रावण तैं युद्ध किया। सो अपनी न्याय रूपी सैन्या के बल कर दोऊ भाई रावण कूं मारि सर्व सैन्या सहित जीत्या। ताकरि पृथ्वी मण्डल में यश प्रगट होय पवन की नांईं भ्रमता भया। सो यौं तो सत्य-मार्ग की महिमा जानौ और रावण अर्द्ध चक्रवर्ती महाबलवान् बड़ी सैन्या का धारी था। सो भी अन्याय के जोगतैं युद्ध हारा। अन्याय के योग तैं, दोय पुरुषन तैं भंग पाय मारया परया। सो ए अन्याय का फल है सो न्याय का फल रामचन्द्र कूं अरु अन्याय का फल रावणकूं मिल्या। ऐसा जानि अन्याय-मार्ग तजि न्याय-मार्ग रूप परिणामन करना योग्य है। ७९। आगे अनेक सङ्कटन विषैं पूर्व-पुण्य जीवकूं सहाय है। ऐसा कहैं हैं—

गाथा—रण वण अरि जल ज्वाला, सायर सखरेय सैण पम्मत्ते। मग गज हय असवारो, एको संणाय पुव्व पुण्णाए॥ ८०॥

अर्थ—रण कहिये, युद्ध में। वण कहिये, वन में। अरि कहिये, वैरीतैं। जल कहिये, नीरतैं। ज्वाला कहिये, अगनि तैं। सायर कहिये, समुद्र तैं। सखरेय कहिये, पर्वत तैं। सैण कहिये, सौवने में। पम्मत्ते कहिये, प्रमाद समय। मग कहिये, मार्ग जाते। गज हय असवारो कहिये, हाथी-घोड़ा की असवारी समय। एको संणाय पुव्व पुण्णाए कहिये, इन कहे ऊपरले स्थानकनमें एक पूरव भव का किया पुण्यही सहाय जानना। भावार्थ— जब प्राणी युद्धकों जाय है। तब शरीर पै रक्षाकूं बखतर टोप पाखर झिलमिल (वस्त्र विशेष) पेटी ढ़ाल अनेक वस्तु अपने तन की रक्षा कूं राखै है और ऐसा विचारता जाय है। जो पराये तीर गोली आवेगी तौ बखतर

टोपादिक तैं रत्ना होयगी और मेरे पास सुभट सैन्या बहुत है सो मैं जीतूंगा। ऐसा विचार करै है सो सब वृथा है। रणतैं जीवित आवना जीति आवना सो सर्व फल एक पूर्वले पुण्य का है। पूर्व पुण्य नाहीं होय तो मरण ही होय है ऐसा जानना और कोई दीर्घ अटवी (वन) में भूलकर आ गया होय तो तहां अनेक सिंह, सुअरादि दुष्ट जीवनतैं बचना तथा चोरादि के भय तैं बचि सुख तैं घर आवना। सो भी पूर्व-पुण्य का ही सहाय जानना और कोई दीर्घ वैरी के दाव में आ जाय, तहां भी पूर्व-पुण्य सहाय है। कोई नदी सरोवर के दीर्घ जल में जाय पड़े तो वहां भी पूर्व-पुण्य सहाय जानना। दीर्घ अग्नि बीच में पड़ जाय, तहां भी पूर्व-पुण्य सहाय है। कदाचित् समुद्र में जाते तामैं जाय पड़ै। तो वहां भी पूर्व-पुण्य सहाय है और अनेक भय के स्थान ऐसे भारी पर्वतन के समूह में जाय पड़ै। तहां पुण्य ही सहायक होय है। सो कैसे हैं पर्वत उत्तुङ्ग शिखरकों धरैं बड़ी-बड़ी गुफान करि पोले अत्यन्त भय के उपजावनहारे सिंहादि क्रूर-जीवन करि भरे, ऐसे पर्वतन में बचावनहारा एक पुण्य ही है। जब जीव, निद्रा के उदयतें निद्रा के वशि होय, तब मृत्यु की नांई आशंका उपजै है। बेसुध होय पराक्रम रहित होय है। ऐसी अवस्था में वैरी चोर अग्नि सर्पादिक जीवनतैं बचावनहारा पुण्य ही है। प्रमाद दशा में अनेक कार्य करै है सो अनेक स्थानन में प्रमाद तैं चलै है। प्रमाद तैं बोलतैं, प्रमाद तैं खावतैं, प्रमाद तैं भागतैं इत्यादिक प्रमाद दशान में पुण्य सहाय करै है। अनेक सङ्कटन में, अनेक रोग के सङ्कटन में, वैरी के सङ्कटन में, सिंहादिक जीवन के सङ्कटन में, अग्नि-जलादि अनेक सङ्कटन में पुण्य सहाय करै है। जब जीव, हस्ती की असवारी करि भ्रमै है तब तथा घोटक-असवारी करि भ्रमैं तब, इनकी असवारी का निमित्त, काल समान भयदाई है। सो इन गज-घोटक की असवारी में, पुण्य ही सहाय है। ऐसे ऊपर कहे जे सर्व स्थान, तिनमैं काल का प्रवेश है। ये सब स्थान, दुख के कारण हैं। सो इनमैं निर्विघ्न राखनहारा, पुण्य ही जानना। तातैं विवेकी जीव हैं, तिनकौं भव-भव सुख के निमित्त, पुण्य-उपार्जन करना योग्य है। हे भव्यात्मा ! तूं महासङ्कट पाय के, धन भी उपाया चाहै है। सो सङ्कट-खेद किये तौ धन का उपार्जना दुर्लभ है। तूं सङ्कट सेवन कर के, धर्म का सेवन करै। तो धर्म के प्रसाद तैं, धन होना सुगम है। देखि, कष्ट तैं धन होय, तौ नीच-कुली हिम्मालादि, शीश-भारादिक ढ़ोवन कार्य बहुत करैं हैं। सो तिनका उदर भी कठिनता तैं भरै है। तातैं तू धन का अर्थी है, तौ तुझे धर्म का ही सेवन

करना योग्य है । ८० । आगे ऐती वस्तु काहू के कार्यकारी नहीं, ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—सर-जल-गत तरु-छाया, सुत-गुण-गत धण-दाण पुस्स-गंधाऊ। कण्णा तव गत साधउ, इव धम्म-गत-णर णेण-गय काया ।८१।

अर्थ—सर जल गत कहिये, सरोवर तौ नीर रहित । तरु छाया गत कहिये, वृक्ष छाया रहित । सुत गुण गत कहिये, पुत्र गुण रहित । धन दाण-गत कहिये, धन दान रहित । पुस्स गंधाऊ कहिये, फूल सुवास रहित । करुणा तब गत साधऊ कहिये, दया-भाव रहित साधु । इव धम्म गत णर कहिये, ऐसा ही धर्म-रहित मनुष्य । णेण गय काया कहिये, जैसे—नेत्र रहित शरीर । भावार्थ—सरोवर की शोभा जल है । सरोवर का विस्तार तौ बड़ा होय । पक्की-सुन्दर पारि होय । ऐसे सरोवर में जल नहीं होय । तौ जल रहित सरोवर वृथा है और वृक्ष की शोभा, छाया तैं है । वृक्ष बड़ा होय । दूर तैं दीखै, ऐसा है । अरु छाया रहित है । तो वृथा है । पुत्र की शोभा सुपूत है । सुपूत-पुत्र सबकूं सुखकारी है और पुत्र तौ है । परन्तु अनेक दोष सहित होय, अविनयी होय, व्यसनी होय, ऐसे अपयशकारी, अवगुण करि सहित होय, गुण-रहित पुत्र होय, तौ वह पुत्र वृथा है । धन है, सो दान तैं सफल होय है । धन तौ बहुत है, किन्तु दान रहित है, तौ धन वृथा है और फूल है सो सुगन्ध तैं भला लागै है । फूल दीखने का तो भला है, परन्तु सुगन्ध रहित है । तौ वह फूल वृथा है । साधु है सो दया-भाव सहित, महातपस्वी होय, सौ पूज्य है और साधु है अरु दयाभाव रहित है । तप भावना रहित, दीन होय । तौ ऐसा साधु वृथा है । शरीर है, सो नेत्रन तैं सफल है । जो शरीर तौ है, किन्तु नेत्र रहित है । सो काया वृथा है । तैसे ही मनुष्य पर्याय, धर्म तैं सफल है और जैसे—ऊपर कहे-सर, जल बिना वृथा है । तरु, छाया रहित वृथा है । इत्यादिक कहे ए वृथा-स्थान तैसे ही धर्म बिना, मनुष्य-पर्याय वृथा जानना । तातैं विवेकी हैं, तिनकौं पाई पर्याय कौं, धर्म विषैं लगाय, सफल करना योग्य है । आगे ये वस्तु पर-उपकार कौं बनी हैं, सो बताईये है—

गाथा—सरता-पय पुख-गंधउ, तरु-साया-फल ईख-मधुराई । सज्जण तणधन वाचउ, इपर-उवकार कारणं सव्वे ॥ ८२ ॥

अर्थ—सरता पय कहिये, नदी का नीर । पुख-गंधउ कहिये, फूल की सुवास । तरु साया फल कहिये, वृक्ष की छाया व फल । ईख मधुराई कहिये, ईख जो सांठे का मिष्टपना । सज्जण तण धण वाचऊ कहिये,

सज्जन का तन-शरीर धन, वचन। इ पर-उपकार कारणं सव्वे कहिये, ये कही जो वस्तु सो सब पर-उपकार के निमित्त बनी हैं। भावार्थ—नदी का जल, नदी नहीं पीवे। परोपकार निमित्त, अन्य जीवन के पोषने कौं, सुखी करने कौं, जल का प्रवाह सहज ही बह्या करै है। फूल की खुशबू, फूल नहीं सूंघै है। परन्तु और जीवन के सुखी करने कूं, फूल खुसबू कौं धारैं हैं और वृक्षन की सघन-शीतल छाया में, वृक्ष नहीं बैठैं हैं। जीवन के सुखी करने के अर्थ, परोपकार कूं, सघन-छाया कूं वृक्ष धारैं हैं और वृक्ष के मनोहर-मिष्ट फल, वृक्ष नहीं खांय हैं। परन्तु पर के उपकार के निमित्त, अन्य जीवन कौं पोषने कूं, सुखी करने कूं, वृक्ष फल धारण करैं हैं। ये औरन के पतथर भी खाय, मिष्ट-फल देंय, ऐसे उपकारी हैं। सांठे हैं सो आपनौ मिष्ट रस, आप नहीं भोगैं हैं। परन्तु पर के उपकार कूं, पर के पोखने कूं, सुखी करने कूं, रस को धारण करैं हैं। ऊपर कही वस्तुन के गुण, सो सब पर-उपकार के कारण हैं। तैसे ही सज्जन-धर्मातमा-दयावान् पुरुष हैं, तिनका शरीर-पुरुषार्थ,, पर-जीवन की रक्षा कौं पर-उपकार के निमित्त बन्या है और जीवन कूं सज्जन नाहीं सतावैं हैं और सज्जन पुरुषन का वचन भी पर-उपकार के निमित्त है। जैसे—पर-जीव का भला होय पर-जीव सुखी होंय ऐसा वचन बोलै हैं और सज्जन का धन पाप-हिंसा में नहीं लागै। जहां अनेक जीवन कूं पुण्य उपजै धर्मात्मा जीवनकूं अनुमोदना करि पुण्य उपजावै तथा अनेक जीवन की जहां रक्षा होय इत्यादिक धर्म स्थानकन में सज्जन का धन लागै। ऐसे ऊपर कहे जे-जे स्थान सो सर्व पर-उपकार कौं बने हैं, ऐसा जानना। ८२।

आगे इन षट् स्थानन में लज्जा नहीं करनी, ऐसा कहिये है—

गाथा—जिण पूजा मुणि दांणउ पत्ताखाणाय झांण आलोय। गुरुय णिज अघ जंपय इह षड थाणेय लज्ज नहिं बुद्धा ॥ ८३ ॥

अर्थ—जिण-पूजा मुणि दांणउ कहिये, जिन-पूजा अरु मुनि दान में। पत्ताखाणाय झाण आलोय कहिये, त्याग में, ध्यान में, आलोचना में। गुरुय णिज अघ जंपय कहिये, गुरु के समीप अपने दोष कहने में। इह षड् थाणेय लज्ज नहिं बुद्धा कहिये, इन षट् स्थानकन में लज्जा नहीं करनी। भावार्थ—जिन-पूजा में लज्जा करै तो पूजा का फल नाहीं पावै। तातैं अन्तर्यामी सर्वज्ञ वीतराग भगवान की पूजा निशङ्क होय अष्ट-द्रव्य तैं करनी।

जगत् गुरु, दया-भण्डार नगन तन धारी वीतरागी, समता समुद्र के वासी गुरुनकूं दान दीजिये; तब निःशंक होय दीजिये। तब उत्कृष्ट पुण्य फल होय। ऐसे मुनीश्वर कौं कोई मिथ्यादृष्टि भक्ति-भाव तैं दान देय तो ये उत्कृष्ट भोग भूमि में तीन पल्य की आयु सहित तीन कोस के तन सहित उत्तम मनुष्य होय और जो सम्यग्दृष्टि ऐसे गुरुकों दान देय तौ कल्पवासी-देव होय। तातैं मुनि के दान में लज्जा नहीं करनी।२। और प्रत्याख्यान जो कोई वस्तु का त्याग करना तथा कोई नियम-आखड़ी करनी होय तौ निःशंक होय करिये। सर्व में प्रगट कर दीजै यामैं लज्जा नहीं करिये। लज्जा करै तो त्याग का अभाव होय तथा कारण पाय नियम भङ्ग होय। तातैं निःशंक होय त्याग प्रगट करने में लज्जा नाहीं करिये।३। और लज्जा सहित ध्यान करै, तौ चित्त स्थिरीभूत नहीं रहै। फल हीन होय तातैं निःशंक होय ध्यान करै तौ उत्कृष्ट फल होय। यातैं ध्यान में लज्जा नहीं करिये।४। और अपने किये पापन कौं यादि करि; आलोचना करतैं लज्जा नहीं करिये। कदाचित् ऐसा विचारै, जो मैं ऐसा बड़ा आदमी होय अपनी निन्दा कैसे करौं? तौ पाप कटै नाहीं। तातैं निःशंक होय अपनी अज्ञानता प्रमाद बुद्धि की बारम्बार आलोचना किये पाप का नाश होय। ऐसा जानि आलोचना करते लज्जा नहीं करनी।५। और गुरु के पासि जाय अपने दोश प्रकाशिये—कहिये, तो दोष जाय और गुरु पै अपने दोष प्रकाश तैं लज्जा करै तो दोष नाहीं जाय। जैसे—सद्वैद्य के पास रोगी अपना रोग प्रकाशतैं लज्जा करै भय करै तो रोग नहीं जाय आप दुखी रहै। वैद्य पै रोग प्रगट करै, तो वैद्य औषध देय सुखी करै। तातैं निःशंक होय गुरु पै अपना दोष कहिये, लज्जा नहीं करिये, तौ दोष जाय।६। ऐसे कहे ऊपर षट् स्थान, तिनमें लज्जा नाहीं करिये। ऐसा जानना। आगे साहस तैं सर्व संकट मिटै है, ऐसा कहैं हैं—

गाथा—रोगे रण संणासे सङ्कट मरणेय भ्फांण तव धम्मे। दालदयेजल गहणं साहसे सफलं होय सहु धारा ॥ ८४ ॥

अर्थ—रोग में, रण में, सन्यास समय में, अनेक संकटन में, मरण समय-ध्यान समय तप में, धर्म-सेवन में, दारिद्रय में, दीर्घ जल के तिरने में—इन सर्व जगह में, साहस तैं सब कार्य सफल हो हैं। भावार्थ—पाप-कर्म के उदय करि आए नाना प्रकार वात, पित्त, ज्वर, कफ, खांसी, स्वासादिक अनेक रोग तिनकरि वधी जो वेदना सो काहू तैं मिटती नाहीं। रोये-चिन्ता किए, धर्म खोवना है। सुखदाता नाहीं। तातैं विवेकी है ते ऐसा

विचारैं जो मैंने पूर्व पाप-कर्म उपार्ज्या है, सो अब विलाप किए कहा होय ? कैसे जाय है ? तातैं राजी होय मोकौं भोगना है। ऐसा साहस विचारै तब सर्व रोग सहज ही जाय। वेदना मन्द होय जाय है। तातैं रोग-दुःख में साहस चाहिये और युद्ध विषैं अरि कौं प्रबल जानि संग्राम विषम देखि, करि कायर-भाव करै। कम्पायमान होय, धीरजता तजि भागै। तौ लज्जा आवै। युद्ध हारि जाय। कुलकूं दाग लागै। तातैं रण में साहस चाहिये जाकरि जय होय और काहू धर्मात्मा ने अपना आयु-कर्म निकट जानि कैं इस धर्मी जीव नैं पर-भव सुधारने कौं अनशन का धारण किया होय। खान-पान तजि कुटुम्ब व शरीरतैं मोह तजि आप तुच्छ परिग्रह कूं राखि धर्म-ध्यानरूप तिष्ट्या है। किन्तु काय तैं आत्मा छूटतैं ढील होय है। सो ज्यों-ज्यों दिन घड़ी निकसैं हैं, त्यों-त्यों यह सन्यास धारनहारा ऐसा विचारै। जो अब आत्मा तन तैं शीघ्र छूटै तौ भला है। अब मेरा साहस रहता नाहीं। इत्यादिक अस्थिरता-भाव विचारै तौ व्रत तैं डिगना परै। तातैं व्रत की रक्षा के निमित्त ऐसा विचारै, कि मैंने इस काय का ममत्व त्यागा। धर्म-ध्यानमयी निराकुल होय तिष्ठू हूं। अब यह तन जब जाय तब जावो मेरे कछु खेद नाहीं। ऐसा साहस सन्यास में भले फल का दाता है। तातैं सन्यास में साहस चाहिये और मरण समय महावेदना में मोह के वशि करि आकुलता करै। तो मरण तौ टलता नाहीं; परन्तु कायरता तैं मरण बिगड़ जाय, कुगति होय तातैं मरण-समय धीरजता सहित मोह रहित परिणाम करि मरण करै। तो पर-भव सुधरै तातैं मरण-समय साहस चाहिये और कर्म के उदय तैं जीव पै अनेक प्रकार संकट आय पड़ैं हैं। तिनमें धीरजता होय तो बड़ा संकट सुगम भासै। धीरजता बिना दुःख में बड़ा खेद होय। तातैं दुःख संकट में साहस चाहिये और ध्यान करते चित्त की एकाग्रता सहित धर्म-ध्यान का विचार करता पुण्य का संचय करै है। ता समय कोई पापी जन आय धर्म-ध्यान तैं डिगाया चाहै। ताके निमित्त अनेक कुचेष्टा करै। सो वाके उपसर्ग तैं चञ्चल-भाव होय तौ धर्म का फल हीन होय। धीरजता राखै तौ पूजा पावै। जैसे—वह सेठ चौदश की रात्रि स्मशान-भूमि में प्रोषध सहित ध्यान धरि तिष्ठै था। पीछे दोय देव, धर्म की परीक्षाकौं आये तब सम्यग्दृष्टि देव ने कही—ये सेठ गृहस्थ है। हमारा धर्मी है सो आज चौदशकूं उपासा ध्यान रूप है। ताहि डिगावौ तौ जानै। तब इस ज्योतिषी मिथ्यादृष्टि देव ने सर्व रात्रि अनेक उपसर्ग किये सो नाहीं डिग्या तब धीरजता देखि देव ने सेठ की पूजा करी। तातैं ध्यान

में साहस चाहिये। अनेक तप करते कबहूँ तन तैं मोह उपज आवै। विषय कषाय की इच्छा होय आवै। तब तप तैं दीर्घ खेद जानि विमुख चित्त करै। तौ तप का फल नष्ट होय। तातैं तप में खेद होयतैं तप का लोभी साहस राखै तौ तप का उत्कृष्ट फल होय और अपने सुधर्म का घात करनहारे अनेक पापी जन आपकौं धर्म तैं चलाया चाहैं। तौ पापी जन के उपद्रव किये में अपना धर्म रतन राखने कूं साहस राखना योग्य है। पुण्य के उदय में तो सब कोई धर्म में धीरज राखैं हैं। परन्तु जब पाप का उदय प्रकट होय है। तब दरिद्रता में धीरज परिणाम राखना, ये महाविवेकी का बल है। तातैं दरिद्रता में धीरज साहस योग्य है और जब कोई कर्म के जोग तैं कोई दीर्घ जल में जाय पड़ना होय अरु कोई उपाय नाहीं दीखै। तब एक साहस ही सहाय जानना। ऐसे कहे जे ऊपर अनेक अशुभ कारण हैं, तिनमें साहस ही योग्य है ऐसा जानना।८४। आगे ये तीन स्थान विवेकी जीव के हाँसि के कारण हैं ऐसा दिखावैं हैं—

गाथा—अगय पठत आयाणो, विविधा सिङ्गार काय विधवायो। जग निन्दो खुसचित्तो, ए तीए थाणेय हाँसि मग गेयो ॥८५॥

अर्थ—अगय पठत आयाणो कहिये, अजान होय कैं आगे बोलै। विविधा सिंगार काय विधवायो कहिये, विधवा-स्त्री नाना-श्रृङ्गार शरीर पै करै। जग निन्दो खुसचित्तो कहिये, जगत् निन्दा होय कैं, सदा खुशी रहै। ए तीए थाणेय हाँसि मग गेयो कहिये, ए तीनों स्थान हाँसि के कारण जानना। भावार्थ—आपकौं जो पाठ आवता नाहीं, सो और कोई पढ़ता होय, ताके आगे-आगे आप बोलै-पढ़ै, सो भोला-अज्ञानी जीव, विवेकीन करि निन्दा पावै। सो जीव, हाँसि का स्थान है। यहां प्रश्न—जो अज्ञान-जीवन का भोलापना देखि विवेकी जीव कों बता देना योग्य है। परन्तु हाँसि का करना जोग नाहीं। ताका समाधान—जो अज्ञानी दोय प्रकार के हैं। एक तो भोला, अजान; सरल-परिणामी अज्ञान। सो आपकौं ऐसा मानैं; जो मैं कछु समझता नाहीं। मोकौं कोई धर्म का मार्ग बताय, मेरा पर-भव सुधारै, तौ वा पुरुष का उपकार भव-भव में नहीं भूलूं। ऐसा धर्मार्थी होय, सो तो भली सीख मानैं। रुचि तैं अङ्गीकार करै। ऐसे भोले-अज्ञानी जीव की हाँसि तौ विवेकी नाहीं करैं। ऐसे कूं तो भूले पै बताय, ताकौं सुमार्ग लगाय, ताका भला करैं और एक अज्ञानी-हठी-मानी होय है। सो आपकूं पण्डित मानता-सन्ता; अपना महन्तपना औरन कों बतावता-सन्ता, ऐसा अज्ञानी मान-बुद्धि तैं काहू कूं पूछता

नाहीं। आपकों आवता नाहीं। पठन कर, तब औरन के आगे-आगे बोले। सो ऐसा मानी-अज्ञानी आप अपने कौं पण्डित मानैं। ते जीव हाँसि कूं प्राप्त होय हैं और जिस स्त्री का पति मर गया होय। ऐसी विधवा स्त्री; शरीर में नाना-प्रकार श्रृङ्गार करै। ताम्बूल खावना, दर्पण में मुख की शोभा देखनी, शरीरकौं वस्त्र पहराय निरखना, अञ्जन-सुरमा नेत्र में अञ्जन करना ऐसी स्त्री निन्दा पावै। स्त्री की शोभा, पति के पीछे थी। सो पति मुए पीछे, श्रृङ्गार करि अपने तन की शोभा और कूं दिखाया चाहै। सो कुशील दोष-मण्डित-स्त्री, विवेकीन के हाँसि का मार्ग है और जे जीव जगत्-करि निन्द्य होंय। सर्व जगत-जन कौं अप्रिय होंय। जग निन्द्य क्रिया-आचार के धारी होंय। जहां जांय, तहां अनादर पावैं। ऐसा जीव, अपयश की मूर्ति जाकौं लोक-निन्दा का भय नाहीं, महानिर्लज्ज होय सदैव हर्ष तैं फिरै, सुखी रहै। ऐसा पाप-निशान मूर्ख जग में हाँसि का मार्ग है। ऊपर कहे ये तीन जाति के जीव, सो हाँसि के मार्ग जानना। तातैं विवेकी-जन हैं तिनकूं जगत्-निन्द्य कार्य तजना योग्य है। तातैं जे अल्प पढ़्या होय, ताकौं तौ विशेष-ज्ञानी के पीछे पढ़ना योग्य है और विधवा स्त्री को श्रृङ्गार करना योग्य नाहीं। जगत्-निन्द्य जीव कौं देश-नगर तजि देना तथा लज्जा सहित रहना, ये बात सुखकारी है सो ही करना भला है। ८५। आगे ऐसा कहैं हैं जो अनादर तो तिनका गुण है और किनका आदर भी दुख है, सो बताईये है—

गाथा—वर सतसंग अपमाणो, हेयो कुसंग जंतु सतकारो। जिम जुर जुत पय हेयो, लंघण, पादेय कटुक भेषजये ॥ ८६ ॥

अर्थ—वर सतसंग अपमाणो कहिये, सत्संग में अपमान होय तो गुणकारी है। हेयो कुसंग जन्तु सत्कारो कहिये, कुसंगी जीवन में गये अपना सत्कार भी होय तो भी तजने योग्य है। जिम जुर जुत पय हेयो कहिये, जैसे—ज्वर वारे कूं दुग्ध तजना योग्य है। लंघण पादेय कटुक भेषजये कहिये तथा लंघण अरु कटुक औषधि उपादेय है। भावार्थ—सत्संग में सप्तव्यसन के धारी जीव अपमान पावैं हैं। काहे तैं, सो कहिये हैं। जो सत्संग है सो जगत्-गुण करि भर्या है। यहां जगत्-निन्द्य औगुण, तिनके धारी औगुणी जीव, तिनका सत्संग में प्रवेश पावता नाहीं। सत्संग में औगुणी-जीव अनादर पावै और कोई सत्संग में आदर चाहै, तौ कुसंग के दोष तजो। गुण कौं धारौ, ज्यों सत्संग में आदर पावो और जे औगुणी हैं तिनका आदर, सत्संग में होता नाहीं। ये सत्संग

धन्य है जो औगुण का प्रवेश नहीं होने देय है। हे भव्य हो! यो सत्संग जो अनादर करै, सो पर के दोष मिटायवे कूं करै है। तातैं सत्संग का अनादर ही भला। सत्संगीन कौं काहूतैं द्वेष नाहीं। जो कुसंगी जीव अपना औगुण छांड़ि देय, तौ वाही का आदर करैं। तातैं हे सुबुद्धि! जो तू अपना भला किया चाहे, तो सत्संग में रह। सत्संग का अपमान तेरे दोष छुड़ाने कूं है। तातैं सतसंगी तेरा अपमान करैं हैं। सो तेरे उत्कृष्ट-सुख का कारण है। सत्संग के अपमान तैं कदाचित् मान के योग तैं बुरा मान्या तौ तेरा पर-भव बिगड़ जायगा। तेरा औगुण नहीं जायगा। तातैं अपना विवेक प्रगट करि यश चाहै है। तौ सत्संग के पुरुष जो तेरा अपमान करैं हैं सो परमार्थ के अर्थ जानना। हे भव्यात्मा! जबलौं तोकूं कुसंग का आदर प्रिय लागै है। तबलौं तेरा दोष मिटता नाहीं अरु सत्संग का अपमान भला लागता नाहीं। तातैं तोकूं कुसंग का सत्कार स्नेह-भाव तजना योग्य है। जैसे—ज्वर सहित रोगी कूं दुग्ध अच्छा भी लागै है। परन्तु ज्वर के जोगतैं तजना योग्य है और कटुक-कड़वी औषधि तथा लंघन उपादेय गुणकारी है। तैसे ही सत्संग के पुरुष तो में औगुण जानि तोसूं स्नेह नहीं करै हैं। वर्तमान काल में तोकूं मान बुद्धि के जोग तैं बुरा भी लागै। परन्तु तूं विवेकी है। सो कड़वी औषधि की नाईं तथा लंघन की नाईं सुखकारी जानना और सुनि। हे भव्य! कुसंग का सत्कार ज्वर के मांहि दुग्ध समानि है। सो किञ्चित् सुख देय पीछे दीर्घ दुःख कूं करै है। तैसे ही कुसंग के अज्ञानी व्यसनी अपराधी जीव तेरा सत्कार करैं हैं। ताका सुख किञ्चित् कौतुक परिणति की खुशी प्रमाण है। पीछे तिनका फल विषम दुखकारी है। जहां कोई सहायी नाहीं, ऐसे नरक के दुख ताहि भोगनैं पड़ै हैं। ऐसा कुसंग का फल पीछे पर-भव में लागै है। तातैं जैसे—स्याना रोगी दूध तजै तैसे कुसंग तजना योग्य है। ८६। आगे षट् भेद म्लेच्छता के बतावै हैं—

गाथा—मण तण घर पुर देसा खण्डादि खण्डमलेच्छ भेयाए। नहि सुआचरण धम्मो सो अणाज्जथल भासियो सुत्त ॥ ८७ ॥

अर्थ—मण कहिये, मन। तण कहिये, शरीर। घर कहिये, मन्दिर। पुर कहिये, नगर। देसा कहिये, देश। खंडादि खंड मलेच्छ भेयाए कहिये, खंड को आदि लेय म्लेच्छताई के षट् भेद जानना। नहिं सु आचरण धम्मो कहिये, तहां पर शुभ आचरण नाहीं, शुभ धर्म्म नाहीं, सो अणाज्ञथल भासियो सुत्त कहिये, सो अनार्य क्षेत्र सूत्र विषैं कह्या है। भावार्थ—भो भव्य म्लेच्छपने के षट् भेद हैं। सो ही कहिए हैं। सो जहां शुभ आचरण नाहीं

सुधर्म की प्रवृत्ति जहाँ न होय। तिस स्थान कौं म्लेच्छ कहिए। सो ता स्थान के षट् भेद हैं। मन म्लेच्छ, तन म्लेच्छ, घर म्लेच्छ, पुर म्लेच्छ, देश म्लेच्छ और खंड म्लेच्छ—ए छः भेद हैं। सो ही अर्थ सहित बताइए है, जहां जाके मन में शुभ आचार नहीं होय। सुधर्म की जाके मन में प्रवृत्ति नहीं होय। सो मन म्लेच्छ समानि है याकूं मन म्लेच्छ कहिए और जा शरीर तैं सुआचार अरु धर्म सेवन नहीं बनैं। सो तन म्लेच्छ समानि है। याका नाम तन म्लेच्छ है और जाके घर में सुआचार सहित धर्म नाहीं। सो घर म्लेच्छ समानि है। याका नाम, घर म्लेच्छ है और जा पुर विषैं सुआचार अरु धर्म प्रवृत्ति नहीं होय। सो वह पुर म्लेच्छ के पुर समानि है। याका नाम, पुर म्लेच्छ है और जा देश में शुभ आचार सहित धर्म-प्रवृत्ति नहीं। सो देश म्लेच्छन के देश समान है। याका नाम देश म्लेच्छ है और जा खंड में शुभाचार सहित धर्म नहीं। सो खंड-म्लेच्छ है। ऐसे म्लेच्छपने के षट् भेद कहे। सो इनमें जहां-जहां धर्म-प्रवृत्ति नाहीं, सो म्लेच्छ जानना। इनकों सुधर्म का उपदेश शुभ लागता नाहीं। धर्म में रुचि होती नाहीं। ए कुआचारी, अभक्ष्य-भक्षणाहारे हैं। सो कुगतिगामी जानना।

आगे मूढ़ता के सात भेद बतावैं हैं—

गाथा—जाय लोय धम्म मूढ़य मूढ़ो मण काय वयण बिवहारो। जथारीय विपरीयो मिच्छाइट्टीय होय सय जीवो ॥ ८८ ॥

अर्थ—जाय कहिये, जाति मूढ़। लोय कहिये, लोक मूढ़। धम्म मूढ़य कहिये, धर्म मूढ़। मूढ़ो मण कहिये, मन मूढ़। काय कहिये, तन मूढ़। वयण कहिये, वचन मूढ़। विवहारो कहिये, व्यवहार मूढ़। जथारीय विपरीयो कहिये, इन आदि यथायोग्य विपरीत क्रिया के धारी। मिच्छाइट्टीय होय सय जीवो कहिये, ए सब जीव मिथ्यादृष्टि जानना। भावार्थ—मूढ़ता नाम मूरखता का है। जो भली-बुरी के भेद को नहीं जाने। योग्य-अयोग्य खाद्य-अखाद्य के भेद रहित हठग्राही होय ताकों मूढ़ कहिए। तहां कोई पाप क्रिया पर-भव दुखकरणहारी कोई जीव करै था। ताकौं देख काहू धर्मातमा ने दया-भाव करि मनै किया। कही हे भव्य! ए कार्य पर-भव दुख देनेहारा है। तूं मति कर दुखी होयगा। ऐसी कही। ताकौं सुनि वह मूढ़ अज्ञानी कहता भया। हे भाई! ए क्रिया तो हमारी जाति में करनी कही है। निन्द्य नाहीं। जो बुरी होती तौ हमारे बड़े जाति में काहे कौं करते? तातैं जो अपने बड़े आगे सूं करते आये जाति में सब करैं ताकौं कैसे तजैं? ऐसा हठी महाढीठ कठोर परिणामी पाप

क्रिया को नहीं छोड़ै। सो जाति-मूढ़ कहिए। १। लोक मूढ़ ताकौं कहिए जो लौकिक अनेक खोटी पद्धति अज्ञानता रूप पाप रूप क्रोध-मान-माया लोभ रूप चोरी, जुवा, पर-स्त्री गमनादिक अनेक पाप रूप क्रिया कोई अज्ञानी जीव करै है। सो ऐसी अयोग्य क्रिया करता देखि कोऊ धर्मातमा ने प्रार्थना करि मनै किया जो हे भाई! ए कुकारज महादुखदायक लोक-निन्द्य मति करै। तोकूं दोऊ भव दुःख करेंगे। ऐसे हित-वचन कहे। तब वह अज्ञान दरिद्री मूर्ख बोलता भया। हे भाई! हम ही इस कारजकौं नहीं करैं। ऐसी क्रिया के करता तौ लोक में बहुत हैं। तुम किस-किसकूं मनै करोगे? संसार में सर्व लोग करै हैं। इस भांति जो अज्ञान लोकन की देखा-देखी खोटा कार्य करै आप ज्ञान अन्ध कछु विचारे नाहीं, हठग्राही पाप क्रिया करै है। सो लोक-मूढ़ कहिए। २। और धर्म-मूढ़ ताकूं कहिए है। जो तहां आगे कोई कुल विषैं तथा लोक विषैं अज्ञानता करि तथा बिना विचारै तथा बिना परखै खोटा धर्म हिंसा सहित सेवते आए। ता विषैं प्रत्यक्ष जीव हिंसा है। ऐसे मार्ग के उपदेशदाताकौं महाक्रोध-मान-माया-लोभ की तीव्रता है। पंचेन्द्रिय भोगन के पोखनहारे तप संयम रहित देव होंय तिनकूं मानैं। ते जीव भोले धर्म-मूढ़ता लेय हैं। कैसा है वह देव जाकी छवि देखै महाभय उपजै? ऐसी विकराल मुद्रा का धारी होय। निर्दयी मांसाहारी होय। ऐसे देव कूं प्रभु मान पूजैं देव मानैं हैं, बड़े क्रोध का धारी अनेक शस्त्रन के धारनहारे बहु परिग्रही भयानक आकार धारैं, क्रूर वचन के धारी जाका विनय नहीं करैं तो मारै महामानी और भोले जीवनसूं अपनी सेवा करावनहारा और नय-जुगति देय पराया धन खावनहारा मायावी लोभी अभक्ष्य भोजन के करता तिनकौं गुरु मानै। हिंसा किए धर्म का उत्तम फल होय भोग-भोगवे तैं पुण्य होय ऐसा कथन जहां पाइये ऐसे शास्त्र तैं धर्म मानैं। ऐसे कुदेव, कुधर्म, कुगुरु के सेवनहारे भोले जीव धर्मार्थी धर्म जानि कुमार्ग हिंसा रूप कुआचार रूप प्रवृत्तते भये। ते जीव मोक्ष-मार्ग जानिते सन्ते धर्म-फल के लोभी लोकारूढ़ धर्म सेवते भये। तिनकौं कोई साँची दृष्टिवाला धर्मात्मा देखि दया करि कहता भया। भो धमार्थी हो! तुम धर्म के अर्थ पाप का सेवन मति करो। यह जीव-घातक मांसाहारी देव नाहीं है। भगवान् का ए चिह्न नाहीं है। परिग्रह धारी शस्त्रधारी कषायी गुरु नाहीं। हिंसामयी धर्म नाहीं। हे भव्य! तूं विचारिकैं देखि कैं देव धर्म गुरु का सेवन करना ज्यों तेरा भला होय। ऐसे धर्मात्मा के वचन सुनि, यह अज्ञानी ज्ञान

दरिद्री शुभाशुभ विचार रहित बिना समझै ही हठग्राही ऐसा कहता भया। हमारे बड़े बूढ़े आगे तैं एही धर्म सेवते आये हैं और हमारे धर्म में ऐसे ही देव धर्म-गुरु होय हैं। आगे तैं हमारे कुल में ऐसा ही धर्म सेवते आये हैं, सो हम भी सेवन करैं हैं। ऐसा कहि कैं हठग्राही कुल धर्म-पाप पंथ नहीं तजै, सो धर्म-मूढ़ता कहिए।३। मन-मूढ़ता ताकों कहिए, जाका मन सदा ही चञ्चल रहै। थिरी नाहीं होय। महालोभ करि मोहित होय। जाका मन सदैव ऐसा विचार करै जो मोकों घना धन कैसे मिलै? कोई देवता की सेवा करौं तो मोकों मांगै सो देवे सो अवार के समय तौ शीतला प्रत्यक्ष देखिए है। ताकौं पूजैं तौ धन मिलैं। सो ऐसा विचार कर धन का लोभी अनेक देवन की पूजा करै तथा ऐसा विचारै जो हमैं पड्या, गिरया माल मिल जाय तौ भला है ताके निमित्त धरती के गड़े पाखान उपाड़ि-उपाड़ि धन देखता फिरै। ऐसी अवस्था सहित ए अज्ञानी धर्म-पन्थ का भूल्या प्राणी सदैव मन की मूर्खता नहीं तजै। ऐसे भरम बुद्धि कूं कहिए जो तू मन की थिरता राख। कुदेवादिक मति पूजो इससे पाप होयगा। धन मिलैगा नाहीं। तो ताकौं सुनि अज्ञानी कहता भया। जो पाप कैसे हो है? यह देव है, राजी भये धन देना इनकैं सुगम है। अनेकन कौं वांच्छित देय है। ऐसा जानि अपने मन विषैं कुदेव, कुधर्म, कुगुरु इनके पूजिवे की मूर्खता नाहीं छोड़ै। सदैव मनकूं आर्त्त-रौद्र रूप राखै, सो मन-मूढ़ता कहिए।४। जाकी काय तैं शुद्ध देव, धर्म, गुरु की सेवा नाहीं बनै। विनय भक्ति तिनकी नहीं बनें कुदेवादिक की नमनता याने बहुत करी होय और वाहो तैं जाका शरीर महाभयानक होय। नेत्र क्रूरता लिए लाल होंय। तन पै भस्मी, शिर पै सिन्दूर की बिन्दी होय और कराठ शीश भुजा में अनेक ताबीज होंय। अरु हस्त में अनेक लोह ताके चूड़ा होंय। ऐसे धर्म ध्यान रहित शान्ति मुद्रा सौम्य भाव रहित होय। महाभयानक विपरीत तन का धारी तामैं धर्म मानता होय। ताकौं कोई कहै, तोकों धर्म का फल चाहिए है तौ शान्ति मुद्रा राखौ। भयानक आकार रहना तजौ। तौ ताकूं सुनि मूढ़-आतमा ऐसी कही। जो हम अन्तरङ्ग में तो शान्त हो हैं। बाह्य लोक दिखावैं कूं अपना-आप छिपाय रहवेकूं बाह्य भयानक-स्वांग राखैं। ऐसी नय-जुगति देय। परन्तु काय की क्रूरता नहीं तजै। सो तन-मूढ़ता कहिए तथा शरीर की चाल मदोन्मत्त ईर्या समिति रहित होय और जीव ताकौं देखि भय खाय दुखी होते होंय। बिना प्रयोजन अपने हाथ पांवनतैं जीवनकौं दुख देता होय। ऐसा विकट काय का धारी दया रहित

मुद्रा का धारी शरीरकौं उद्धत् राखता होय। सो काय-मूढ़ता कहिए।५। जहां जिन-आज्ञा रहित पापकारी पर-जीवनकूं भयकारी, शोककारी वचन बोलना। अपनी इच्छा प्रमाण स्वेच्छाचारी वचन पापकारी बोलना। सो वचन-मूढ़ता है। याकौं कोई कहे तुम ऐसे कषाय वचन मत कहौ तथा देवकूं गाली, गुरुकूं गाली तथा गृहस्थनकौं गाली, कठिन ऐसे अयोग्य वचन मति कहो। तो वह मूर्ख कहै, हम इसी तरह देव की स्तुति करैं हैं। गृहस्थीन कौं ऐसे ही दबाय देय हैं। ऐसे कहै; परन्तु क्रोधादि-कषाय पोषवे के पापकारी-वचन नहीं तजै। सो वचन-मूढ़ता है। जा वचन तैं पराया तन क्षय होय। धन क्षयकारी, मान क्षयकारी ऐसे बिना विचारे वचन का बोलना जाकै सुनैं सर्व सभा-जन दुख पावैं सो वचन-मूढ़ता है तथा जा वचनकौं सुनि सब कुटुम्ब दुख पावै सो कुटुम्ब-विरुद्ध कहिए। ऐसे वचन तथा राज्य-सभा विरुद्ध वचन जाकै सुनै राज-सभा दुख पावै। इत्यादि वचन का बोलना, सो वचन-मूढ़ता है।६। व्यवहार-मूढ़ ताकौं कहिये। जहां अयोग्य-हिंसाकारी व्यापारकूं ऐसा मानना, जो ये किसब हमारे आगे तैं चल्या आया है। हमारे बड़े, पीढ़ियों तैं यही किसब करते आये हैं। सो बुरा है तो भला है। अरु भला है तो भला है! कुल का किसब कैसे छोड़ैं? ऐसा जानि, महाहठग्राही, पापकारी-हिंसामयी किसब नहीं तजैं। सो व्यवहार-मूढ़ता है।७। ऐसी कही जे सात जाति की मूढ़ता, ताकौं अपनी-अपनी हठ बुद्धिकरि, यथायोग्य विपरीत भावना सहित धारि, अङ्गीकार करना। ऐसे श्रद्धान का धारण जिनकैं होय, सो मिथ्यादृष्टि जानना।

इति श्री सुदृष्टि तरङ्गिणी नाम ग्रन्थ के मध्य में जाति-व्यवहारादि का कथन करनेवाला चौबीसवाँ पर्व सम्पूर्ण हुआ ॥२४॥

आगे हितोपदेश दिखाइये है। तहां मिथ्याज्ञान अरु सम्यग्ज्ञान के प्रकाशकौं दृष्टान्त करि दिखाइये है—

गाथा—उपल वहणि मिछिणांणो, कय उदोय फुणस्याम उर जायो। हाटक सम सम्यणांणो, तव वहणी जुइ विमल तण होई ॥८१॥

अर्थ—उपल वहणि मिछिणांणो कहिये, काष्ठ-छाणौंकी अग्नि समान मिथ्याज्ञान है सो। कय उदोय फुण-स्याम उर जायो कहिये, उद्योत करि फेरि श्याम शरीर को धरै है। हाटक सम सम्यणांणो कहिये, सम्यग्ज्ञान स्वर्ण समानि है। तव वहणी जुइ विमल तण होई कहिये, तप रूपी अग्नितैं विशेष प्रभा धरै है। भावार्थ—आतम स्वभाव अरु पर-जड़भाव इनके जुदे-जुदे जानवैकौं, अनुभवन करवैकौं अतएव श्रद्धानी मिथ्यादृष्टि का ज्ञान

असमर्थ है। इस मिथ्याज्ञान का प्रथम तौ किंचित् प्रकाश होय। ताके फलतैं एक भव देवादि के सुख पावै। पीछे उस देवादि-भव में भोगाभिलाषी चित्त होय, आर्त्त-रौद्र परिणति करि, संक्लेशता के फल तैं, एकेन्द्रिय आदि होय, संसार-भ्रमण करै तथा मिथ्यात्व-कर्म के योग तैं कदाचित् मनुष्य में उपजै, तौ नीच-कुल में धनवान्-हुकुमवान् होय। राज्य-सम्पदा का धारी, तीव्र क्रोध-मान-माया-लोभ का धारी, संक्लेशी होय। इत्यादिक सामान्य सुख का धारी होय। पीछे अनेक पाप करि, अनेक हिंसा-दोष उपाय, नरकादि-दुख कौं प्राप्त होय। ऐसा होय तब मिथ्याज्ञान का प्रकाश, मन्द होय। बहुत-काल मिथ्यात्व का फल रहता नाहीं। जैसे—छाणे की अग्नि, प्रथम तौ तेज-प्रकाश करै है। पीछे प्रभा-रहित होय, श्यामता धारि, भस्मी होय। तैसेही मिथ्याज्ञान जानना। ये मिथ्याज्ञान है सो अन्धे के ज्ञान समानि है। जैसे—अन्धा चलै, तब अनुमान तैं चलै। परन्तु यथावत्, मार्ग का शुभाशुभ नहीं भासै। तैसे ही मिथ्याज्ञान तैं शुद्ध यथार्थ-मार्ग नहीं भासै। यहां प्रश्न—जो मिथ्याज्ञानी धर्मात्मा हैं। तिनकूं यथावत् पुण्य-पाप का मार्ग नाहीं भासै, तौ नौ-ग्रैवेयादिक कैसे जांय? देवादि गति में भी जांय हैं सो शुभाशुभ-मार्ग जानै बिना पाप का तजन व पुण्य का ग्रहण, तप-संयम-चारित्र का सेवन कैसे संभवै? ताकौं पुण्य-पाप का मार्ग तौ भासै है। भले प्रकार मिथ्याज्ञानकूं अन्धे के ज्ञान समानि कैसे कह्या? ताका समाधान—जो पुण्य-पाप तौ संसार-वन के मार्ग हैं, यथार्थ शुद्ध मोक्ष का मार्ग नाहीं। मिथ्याज्ञान तैं मोक्ष-मार्ग नहीं सूझै है। तातैं मोक्ष पन्थ के जानवे कूं अन्ध समानि जानना और सम्यग्ज्ञान है। सो स्वर्ण समानि है। जैसे—स्वर्ण कूं ज्यों-ज्यों अग्नि पै तपाइए, त्यों-त्यों ताकी प्रभा, बढ़वारीकौं प्राप्त होय है और कञ्चन शुद्ध होता जाय है। तैसे ही सम्यग्ज्ञान रूप स्वर्ण है सो ताकौं ज्यौं-ज्यौं तप रूपी अग्नि कर तपाया जाय, त्यों-त्यों परम विशुद्धता कौं प्राप्त होय है। सो यह सम्यग्ज्ञान, ज्यों-ज्यों निर्मल होय, त्यों-त्यों बढ़ै। सो बढ़ता-बढ़ता केवलज्ञान पर्यन्त, सम्यग्ज्ञाना-वधि पूर्ण होय है। सो केवलज्ञान भये, ज्ञान की मर्यादा पूर्ण होय है। सदा रहै है। ये सम्यग्ज्ञान, भये पीछे मिथ्याज्ञान की नाईं, जाता नाहीं। सदैव अनन्तकाल ताईं रहै है। ये ज्ञान मोक्ष ही करै है। तातैं मिथ्याज्ञानी, अङ्ग-पूर्वन का पाठी भी होय, तौ संसार का ही कारण है और सम्यग्ज्ञान का अंश भी प्रकट होय, तौ बढ़वारी कौं प्राप्त होय, केवलज्ञान ही करै है। तातैं मिथ्याज्ञान, हेय कह्या है और सम्यग्ज्ञान, उपादेय कह्या है। तातैं

विवेकी पुरुष हैं तिनकूं, मिथ्याज्ञान तजि कैं, मोक्ष का करनहारा; सिद्ध पद का देनेहारा; कर्म्मन का नाश करनहारा, ऐसा सम्यग्ज्ञान जैसे बनै तैसे प्राप्त करना योग्य है। ८९। आगे इन्द्रिय सुख तैं आतमा तृप्त नहीं भया, सो ही दिखाइये है—

गाथा—हरि हल सुर खग चक्री, पुण फल सुह भुंजेय ण धपे। तब लव सुह णर आदा, धपो किं धम्मसेय सिब कज्जे ॥९०॥

अर्थ—हरि कहिये, नारायण। हल कहिये, बलभद्र। सुर कहिये, देव। खग कहिये, विद्याधर। चक्री कहिये, षट्खण्डी चक्री। पुण फल सुह भुंजेय ण धपे कहिये, पुण्य का फल सुख भोग्या; तौ भी नहीं तृप्त हुआ। तब लव सुह णर आदा कहिये, तो हे आतमा ! मनुष्यन के अल्प सुख तैं। धपो किं कहिये, कैसे तृप्त होयगा ? धम्मसेय सिव कज्जे कहिये, तातैं धर्म का सेवन मोक्ष के निमित्त करौ। भावार्थ—ये जीव खण्ड का स्वामी सोलह हजार स्त्रीन के सङ्ग भोग-भोगनहारा भया। तहां भोगन तैं तृप्त नहीं भया तथा हरि कहिए जो देवनाथ इन्द्र सो तानैं अनेक देवाङ्गना सहित अनेक वांच्छित भोग भोगे, तौ भी तृप्त नहीं भया तथा अनेक देवीन सहित सुख भोगनहारे देवपद के अनेक सुख भोगे; परन्तु तृप्त नहीं भया। अनेक गीत, नृत्य, वादित्रादि के अद्भुत लक्ष्मी सहित कौतूहल करि अनुपम भोग में रम्या तहां भी ये आतमा तृप्त नहीं भया तथा और भी देव समानि सम्पदा के धारी ऐसे विद्याधर तिनके सुख भोगनहारे अनेक प्रकार अढ़ाई द्वीप में स्वेच्छा फिरि क्रीड़ा करते दीर्घ सुख भोगे तौ भी आतमा विद्याधरन के सुख तैं भी तृप्त नहीं भया और षट् खण्ड का पति छ्यानवैं हजार देवाङ्गना समानि रूप गुण की धरनहारी स्त्री तिन सहित मनवांच्छित देवेन्द्र की नाईं सुख समूह दीर्घ-काल ताईं नये-नये भोगे तौ भी आतमा तृप्त नहीं भया और भी अनेक मनोज्ञ वांच्छित अद्भुत सुख भोगे। संसार में कोई ऐसा सुख नाहीं वच्या जो आतमा ने अनेक बार पुण्य के उदय तैं न भोग्या सर्व भोग्या। चिरकाल तांई भोगन में ही रञ्जायमान रह्या। सो हे भव्यात्मा ! तुच्छ पुण्य तुच्छ पुरुषार्थ अल्प स्थिति सहित महाचपल मनुष्य के सुख तिन मैं तू कैसे तृप्त होयगा ? तातैं हे निकट संसारी ! समता भाव धरि भोगन तैं उदास होऊ या मनुष्य पर्याय की अल्प स्थिति और रही है। ता मैं अब तोकूं मोक्ष होवेकूं धर्म का ही साधन करना योग्य है। फेरि ऐसा अवसर कठिन है और हे सुबुद्धि ! इन्द्रियन के सुख तौ तैंने

अनेक बार भोगे। तिनकूं फेरि भोगने में कहा प्रीति करै है ? और जो नवीन सुख जो कबहूँ नाहीं भोगे होंय; ऐसे सुखकूं भोगवै तो नवीन सुख होय। तातैं मोक्ष का सुख तैंने कबहूँ नहीं भोग्या है। सो याके भोगवेकूं धर्म का साधन करना योग्य है। ये ही विवेक का फल है। ऐसा जानना। आगे दीर्घ दुःख नरक-पशून के तिनतैं नहीं डरचा, तौ तप के तुच्छ दुःखतैं कहा डरै है ? ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—असुहं फल णक तिरियो भुंजे, दुह अणेय मूढ आदाए। तो तव लव दुह आदा, कम्पय किं सेय धम्म सिब कज्जे ॥९१॥

अर्थ—असुहं फल णक तिरियो कहिये, अशुभ के फल नरक-तिर्यञ्च गति के। भुंजे दुह अणेय मूढ़ आदाए कहिये, भोले आतमा ने अनेक दुख भोगै। तो तब लव दुह आदा कहिये, तो तप के अल्प दुखन तैं आत्मा। कम्पय किं कहिये, कहा कम्पै क्यों है ? सेय धम्म सिव कज्जे कहिये, मोक्ष होवे कूं धर्म का सेवन करि। भावार्थ—भो आत्माराम ! तू ने अशुभ के फल करि नरक में छेदन-भेदन आदि पञ्च प्रकार दुःख अनेक बार सहे सो कर्म के वश पराधीन होय महादुःखनकूं सहज ही भोग लिए और तिर्यञ्चन के दुःख अनेक प्रकार। भूख, तृषा, शीत, उष्ण, दंश-मसकादि बहुत वेदना पराधीन पशु काय की भोगी। सो भी सहज भोग ली। सो तहां तू डरचा नाहीं। तौ हे भोले प्राणी ! तप विषैं नरक-पशु तैं अधिक दुःख नाहीं। बहुत ही अल्प दुःख है। तातैं हे भव्यात्मा ! तू तप-दुःख तैं मति डर। तप विषैं तो स्वाधीन खेद है। सो सुख समान है और पराधीन दुःख के भोग तैं विकल्प होय तिन करि तो पाप-बन्ध होय है। तातैं परम्पराय आगामी काल में भी दुःख फल ही होय है। स्वाधीन तप का खेद सहते परिणामन में सन्तोषी धर्मात्मा कैं विकल्प नाहीं होय है, तातैं पुण्य का बन्ध होय। ताकरि आगामी काल में भी सुख फल होय। तातैं नरक-पशून के दुःख तैंने पराधीन होय सहे, तहां तो डरचा नाहीं। तौ तिनतैं बहुत थोरे तप के खेद तैं, तू मति डरै। समता सहित तप का खेद सह। अङ्गीकार कर। ज्यों तेरे समभावना सूं किए नाना प्रकार तप तिन करि कर्म का नाश होय मोक्ष होय। तातैं ताकूं धर्म-साधन ही सुखकारी है। ऐसा जानि बारम्बार जिन भाषित धर्म का समता करि सेवना योग्य है। आगे माया कषाय का फल और कषाय तैं अधिक बतावैं हैं—

गाथा—मायागभ असुहो, णिगोयदा अणि, कसाय णकदायो। माया जुत सयल कसायो इक वे ते चवाक्ष तण देई ॥ ९२ ॥

अर्थ—मायागभ असुहो कहिये, माया गर्भित जे पाप हैं। णिगोयदा कहिये, वे निगोद के दाता हैं। अणि कसाय णक दायो कहिये और कषाय नरक की दाता हैं। मायाजुत सयल कषायो कहिये, माया सहित सकल जो सर्व कषाय। इक बे ते चवात्त तण देई कहिये, एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय इनके तन देंय। भावार्थ—सर्व कषायन में माया का फल बहुत ही पापकौं उपजावै है। जे जीव निगोद में उपजि महादुःखी होंय सो माया कषाय का फल है और अन्य जो क्रोध, मान, लोभ—इन कषायन तैं नर्क होय है, निगोद नहीं होय और इन तीन ही कषायन में जो माया कषाय आन मिलै, तो माया के जोग तैं क्रोध, मान, लोभ—इन तीन में एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय होय ऐसे फल कौं उपजावै। तातैं सर्व कषायन में माया कषाय दीरघ निखध्य व पापकारी है। तातैं विवेकी पुरुषनकूं पर-भव सुख के निमित्त माया शीघ्र ही तजना योग्य है। यहां प्रश्न—जो क्रोध, मान, लोभ—इनका फल नरक कह्या और माया का फल विकलत्रय आदि निगोद कह्या। सो इनमें अन्तर कहा ? अरु माया कूं निखध्य कह्या। सो दुःख तो नरक में बड़ा दीखै, निगोदिया का दुःख तौ भासता नाहीं। तातैं जाका फल बहुत दुखकारी होय ताकौं निखध्य कहिये तौ दुख तो निगोद मैं अल्प भासै है। अरु नरक में बहुत भासै है। अरु यहां माया कषाय कौं निखध्य विशेष किया सो काहे कौं ? ताका समाधान—भो भव्यात्मा ! तू नै प्रश्न भला किया। अब याका उत्तर तूं चित्त देय सुनि। नरक दुःख तौ वाह्य, विशेष-विकराल भासै है। परन्तु पाँचों इन्द्रिय सबूत-पूर्ण हैं। अरु इन्द्रिय-ज्ञान सबका खुलासा है। तातैं दुःख थोड़ा है। आपकौं कोई नारकी मारै तब तौ दुःख होय है। पीछे आप कोई नारकीकौं मारै तब आप खुशी होय। आप पै दुःख आए ताकौं मेटवे का उपाय करै है। बैरी कूं तथा स्नेही कूं जानै है। अवधि आदि मति-श्रुत-ज्ञान की प्रबलता पाईये हैं। तातैं इस नरक में सुख का निमित्त है। पाँचों इन्द्रियन का क्षयोपशम है। पर के मारवे कूं तन का पराक्रम होय है। बड़ा आयु कर्म है। तातैं यहां नरक विषैं जीव अल्प दुःखी है और एकेन्द्रिय के चारि इन्द्रिय नाहीं। कर्म के उदय आया दुःख ताकूं मेटवे की शक्ति नाहीं। महादीन अल्प समय मैं मरण पावै और अल्प शीत के दुखतैं मरण पावै। महाअशक्त ज्ञान रहित तातैं एकेन्द्रिय महादुख का स्थान है तथा जैसे—कोई चोर कौं पांव बांधि

उलटा टांगि दिया। पीछे च्यारों तरफ तैं अनेक बांसन, कोड़ा की मार दीजिये, सो महादुःखी है। सो ऐसा दुःख तो नारकीन कौं है और एक चोर का मुख विषैं वस्त्र भरि ऊपरि तैं सूजीकर मुख सीं दीजिये। मल-मूत्र के द्वार सब बन्द कर दीजिये सो महादुःखी भया। पीछे कान मैं वस्त्र भरि सूजी तैं सीं दिया। कान में वस्त्र भरि कान सीं दिया। नेत्र सीं दिये। पीछे सब तन कौं बांधि गठिया-सी बनाय कैं एक खाल की मसक में डारि मसक ऊपर तैं सीं दई, सो गोला-सा बनायकैं ऊपर दस-बीस मन की एक शिला धर दई। सो अब इसके दुःख का केवली जानैं और कों तो बाह्य दुःख दीखै। परन्तु याके गूढ़ दुःख की औरनकौं तो ठीक नाहीं। सो ऐसा दुःख निगोद एकेन्द्रिय के जानना। तातैं नारकीन के दुःख तैं असंख्यात गुणा निगोद एकेन्द्रिय के दुःख जानना। ऐसे ही बेन्द्रिय के भी तीन इन्द्रियाँ नाहीं। तातैं ताकूं भी तथा तेइन्द्रिय के दो इन्द्रियाँ नाहीं। सो भी महादुःखी। चौइन्द्रिय के एकेन्द्रिय नाहीं। सो भी महादुःखी। ऐसे विकलत्रय के महादुःख सो भी नारकीनतैं असंख्यात गुणा दुःखी है तातैं इन विकलत्रय जीवन मैं महापाप के उदय तैं आवै है ताकरि महादुःखी जानना। सो ये जीव माया कषाय के जोग तैं इस भवसागर में पड़े हैं। तातैं माया ही में दीरघपना जानना। हे भाई! और तीन कषायन के रस तौ जानि लीजिए है। परन्तु माया नाहीं जानी जाय। जो जानिये, ताका उपचार भी कीजिये। जानने में नहीं आवै ताका इलाज कहा बनै? सो क्रोधादि तौ जानिए है और कोई क्रोध करै तो ताका उपचार यह किं जो कोई क्रोधी मारता आवै ताके पास दीनता पकरि रहै तौ मारै नाहीं और कोई पापी-मानी आपकौं मारने आव तो ताके पासि अपना मान तजि, वाका विनय करै। वाकी स्तुति करै तो मानी मारै नाहीं और कोई लोभी आपकौं मारै तौ वाकौं बहुत धन देय तौ लोभी मारै नाहीं। ऐसे क्रोध-मान-लोभ—इन तीन कषायन का तौ उपचार है। याका उपचार किए शान्त हो जाय। परन्तु यह दगाबाज ऊपर तैं नमन करै। मुख देखे दीन वचन बोलै। सेवक होय, पुत्र सम होय। पीछे दाव लगै दगा करै। याका उपचार विवेकीन तैं भी नहीं बनै। तातैं महामूढ़ है। इस कषाय का फल दीरघ पापकारी है। ता पाप के फल तैं जीव, नरकन के दुःख तैं बड़ा दुःख निगोद आदि का पावै है। ऐसा जानि माया कषाय कूं तजना तथा इन पापचारी-मायावी जीवन कौं अपने बलतैं पहिचान, तिनका संग तजना भला है। ऐसा जानना। आगे धर्म का फल इन्द्रिय-जनित इन्द्रिय-सुख है। यातैं

नरकादि खोटी गति नहां होय है। नरक दाता और ही कार्य हैं। सो बतावैं हैं—

गाथा—धम्म तरु फल अख सुहयो, सो फल दुगय देय णह कवऊ। धम्म कालय अघ करऊ, कुगय फल देय सोय कीयाय ॥९३॥

अर्थ—धम्म तरु फल कहिये, धर्म वृक्ष का फल। अख सुहयो कहिये, इन्द्रियन के सुख सो फल दुगय देय णह कबऊ कहिये, सो फल दुर्गति कबहूँ नहीं देय। धम्म कालय अघ करऊ कहिये, धर्म काल में पाप करै तो। कुगय फल देय सोय कीयाय कहिये, सो क्रिया कुगति का फल देय है। भावार्थ—यहां कोई ऐसा जानैं कि जो इन्द्रियन का सुख है सो धर्म-घात करके जीवनकौं दुर्गति करै है। सो हे भाई! तूं चित्त देय सुनि। इन्द्रियन के सुख हैं सो तौ पुण्य का फल है। सो पुण्य फलतैं देव, इन्द्र, चक्री, काम, देवादिक का सुख है सो हजारों स्त्रीन के संग नाना प्रकार पंचेन्द्रिय मनवांच्छित सुख-भोग भोगवैं हैं। अनेक रथ, हाथी, घोटक, पैदल आदि अधिक सैन्या सहित, निरखेद भये, अपनी शुभ परिणति का फल ताहि भोगवैं हैं। सो ये पुण्य का फल है। सो पुण्य का फल इन्द्रिय सुख है। सो ही पुण्य का घात कैसे करं? जे फल हैं सो अपने वृक्ष का नाश नहीं करैं। तातैं इन्द्रिय सुख धर्म घात करते नाहीं। इन्द्रिय सुखन तैं दुर्गति होती नाहीं; ऐसा जानना। यहां प्रश्न—जो जगह-जगह शास्त्रन में ऐसा सुनिये है कि जो फलाना राजादि पुरुष, इन्द्रिय-सुख में मगन होय, नरकादिक गये। तहां जे महान्-बुद्धि चक्रधर राजा थे, सो जगत् भोगन तैं उदास होय, इन्द्रिय-जनित सुख दुर्गतिदाई जानि, सर्व राज्य-भोग सम्पदा तजि, दीक्षा धरते भये।। तातैं इन्द्रिय-जनित सुख पापकारी नहीं होता, तौ काहे कूं तजते? और यहां ऐसा कह्या जो इन्द्रिय-सुख धर्म का घात नहीं करै है। इन्द्रिय-सुख तैं नरकादि खोटी गति भी नहीं होय है। सो ये बात कैसे बनै? ताका समाधान—जो हे भव्यात्मा! तेरा प्रश्न प्रमाण है। परन्तु अब चित्त देय सुनि। जो वस्तु जातैं उपजै है सो ताका नाश नहीं करै। सो देखि, इन्द्रादिक-पद, चक्री-पद है, सो वांच्छित इन्द्रिय-भोग के सुख का सागर है। जो इन्द्रिय-जनित सुख तैं दुर्गति होती, तौ इन्द्रन कौं होय तथा देवन कूं तथा भोग-भूमियान कूं पर-भव दुर्गति होय। तातैं ऐसा जानना। जो खोटी गति होय है सो इन्द्रिय सुख का फल नाहीं। जातैं इस जीव कूं खोटी गति होय है, सो तोकौं बताइये है। जे जीव धर्म-काल विषैं, धर्म कूं भूलि करि, विषय-कषाय में रञ्जायमान होय कैं, धर्म का घात करैं। तिस धर्म-घात के पापतैं नरकादि खोटी गति

होय है। तातैं नरकादि दुःख, धर्म-घात का फल जानना। तातैं विवेकी हैं तिनकूं धर्म सेवन के काल में धर्म-घाति करि, पाप-विकल्प में काल गमावना, योग्य नाहीं। तातैं धर्मात्मा गृहस्थ हैं सो तिन्हें प्रथम प्रभात धर्म-काल विषैं, भले प्रकार निर्मल भावना सहित धर्म-कार्य करि, पुण्य का संचय करना योग्य है। पीछे अपने पूर्व-पुण्य का फल इन्द्रियजनित सुख; ताहि भोग्या करौ। ऐसे सदैव धर्म-काल में धर्म का सेवन करना और अन्य-काल में कर्म-कार्य करना। ऐसे करि पुण्य का संग्रह करै। ताके फल, फेरि भी पर-भव में देवादिक के इन्द्रिय-जनित सुख-भोग पावै है और जे जीव-धर्म कों भूलि करि, धर्म-काल विषैं इन्द्रियजनित भोगन में रक्त होय, सुख मानैं, सो मानौ। परन्तु पूर्वले पुण्य का फल भोगि चुकैगा, तो पीछे धर्म-फल बिना, नरकादि गति होयगी, ताके दुःख कूं भोगवेगा। जैसे—कोई एक भला व्यापारी, अनेक व्यापार करि, अपनी बुद्धि के बल करि, बहुत धन कमाया। सो दूसरे दिन सुख तैं भोगवै है। अरु जब दुकान पै कमाई का समय आया, तब अनेक सुख भोगे थे तिनकूं तजि, दुकान पै जाय अनेक व्यापार-कला करि धन कमावै। तो दूसरे दिन, सुख तैं भोग्या करै। ऐसे भोग के काल में भोग-सुख करै; परन्तु अपनी कमाई का समय आवै तब अनेक काम छांड़ि, जाय कमावै। कमाई का काल नहीं चूकै। सो तो सदैव कमावै-खावै, सुखी रहै और जे जीव एक बार व्यापार करि धन कमाया। सो धन लेय, नाना प्रकार सुख करता भया। अरु फेरि कमाई का काल आया, तब भी नाच-नृत्य, खान-पान, भोग-ही में रत भया धन उड़ाया कर्‌या, कमाई कूं नहीं गया। कमाई का काल वृथा गमां दिया और आगे कमाया था, सो धन खाय लिया। सो जीव कमाई बिना रङ्क होय, भीख मांगेगा, दुःखी होयगा, ऐसा जानना तथा कोऊ एक पुरुष कैं एक बाग है। तामें नाना प्रकार के मेवा होय हैं। अरु महा-सुन्दर सघन-छाया महाशोभायमान तामैं पांच सौ रुपया साल का मेवा होय, ताहि बेंचि, तामैं कुटुम्ब कौं पालै। ऐसे साल की साल, पांच सौ रुपया का मेवा बेंचि, सुखी रहै। अनेक मेवा आप भोगवै। बाग की भली रक्षा किया करै। ऐसे बहुत दिन बीत गये। बाग की रक्षा करै दुष्ट पशून तैं बचावै। वन कौं निर्विघ्न राखै। ताके फलन करि अपने कुटुम्ब का पालन करै। आप आनन्द सूं रह्या करै। ऐसे बाग तैं, जाकौं देखतैं सुख होय। सो एक बार काष्ठ काटनहारे आये, इस बाग बारे कौं कही। तेरा बाग मोल दे। तब यानै पांच सौ रुपया में

बाग बेच्या। सो वह बाग काट कैं लकड़हारे ले जांय हैं। सो देखो याकी मूर्खता, जो साल की साल पांच सौ रुपया देनेहारे बाग कूं काष्ठ काटनहारे कूं देय है। सो ये रुपैया एक बार के होय जांय हैं। पीछे आप दुःखी होय है। बाग की शोभा जाय है। मिष्ट फल जांय हैं। बाग का नाम जाय है और आप कुटुम्बी सहित दुःखी होय है। ये रुपया बरस-एक में खा लेवे है तथा उस वन की रत्ता छाड़ि, कोई विषय-कषाय नृत्य-गीतादि में लागि जाय है। सो बाग के बिगड़नै तैं बड़ा दुःखी होय है। एक बार ही नृत्य-गीत के सुख हो हैं। परन्तु जिस बाग के पीछे, सर्व कूं रोटी थी। सोच नहीं रहै था, सर्व गीत-नाच अच्छे लागैं थे। सो उजाड़्या। तो सर्व कुटुम्बी सहित दुःखी भया। जैसे—बाग रहै सुखी रहेगा, तैसे ही धर्म रूपी बाग के फलन करि सदैव सुखी रहै है। ऐसे धर्म-बाग की रक्षा कूं भूलि, विषय-कषाय में मगन होय रहैगा, तौ धर्म रूपी बाग के विनाश तैं आप दुःखी होयगा। एक बार का ही विषय-सुख होयगा और पहले सदैव बाग की रक्षा करि, पीछे विषय-सुख भोगेगा। तो ताके फल तैं सुखी रहैगा। तातैं हे भव्य ! तू ऐसा जानि। जो आत्मा कूं नरकादि खोटी गति होय है। सो ये धर्म-घात का फल जानना। जे जीव धर्म-काल में धर्म-घाति करि, पाप का सेवन करि, विषय-भोगन में रत होवेगा। सो नरकादि कुगति के दुःख भोगवेगा और जो धर्म-काल में धर्म का सेवन सहित, धर्म की रक्षा करेगा। पीछे अपने विषय-भोग भोग्या करैगा। अपने पुण्य-प्रमाण मिले जो भोग, सो सन्तोष करि भोगैगा, तो खोटी गति न होयगी। ऐसा जानना और तैंने कही—आगे बड़े-बड़े राजा इन्द्रियजनित सुखनकूं पापरूप जानि, तिनकूं तजि, उदास होय, दिगम्बर होय, दीक्षा धारी। सो हे भाई ! सुनि। इन राजाननैं दीक्षा धरी। अरु इन्द्रियजनित भोग तजे। सो नरकादिक के भय, दीक्षा नहीं धारी है। नरकादिक के दुःखन का अभाव तौ गृहस्थ अवस्था के धर्म-सेवन करि होय। घर ही विषैं अपने कुटुम्ब में तिष्ठतें, धर्म का सेवन करि, सुखतैं पर्याय छांड़िते, तौ देवादि शुभ गति पावते। परन्तु हे भाई ! घर विषैं, कर्म का नाश करि मोक्षस्थान चाहै। सो घर में मोक्ष नाहीं होय। तातैं भव्यातमा, जे निकट संसारी हैं तिनने मोक्ष होवे कूं, सर्व कर्म-नाश करि शुद्ध भाव होवे कूं, राग-द्वेष तजवे कूं, केवलज्ञान प्रगट करवे कूं, जनम-मरण के दुःख दूरि करवे कूं, सिद्ध पद के ध्रुव सुख पायवे कूं, दीक्षा धारी है। ऐसा भाव जानना। जिन्हें नरकादिक खोटी गति होय है

सो धर्म को छांड़ि धर्म-काल में पाप का सेवन करै हैं। ते दुःखी ही होय हैं और धर्मातमा गृहस्थन कौं इन्द्रिय-सुख भोगतैं पाप होता नाहीं और मोक्ष सुख, अविनाशी-अतीन्द्रिय-भोग सुख, मोक्ष बिना होता नहीं। तातैं जे मोक्ष-सुख के वांच्छक होंय, ते तौ दीक्षा ही धारें हैं और जिन भव्यन कूं मोक्ष वांच्छा तौ है, पर दीक्षा धरवे कूं समर्थ नाहीं। ऐसे धर्मात्मा गृहस्थ हैं, सो घर ही विषैं मुनि का दान, जिन देव की पूजा, शास्त्रन का श्रवण-पठन, संयम, शक्ति प्रमाण तप इत्यादिक धर्म का सेवन कर ताके फल देव-पद, भोग भूमि फल, चक्री-पद इत्यादिक पावैं। सो इन देवादिक पदन में निशदिन अद्भुत इन्द्रियजनित सुख-भोग, आयु पर्यन्त भोगवैं हैं। तातैं हे भव्यात्मा! इन्द्रियजनित सुख तैं पाप होता, दुर्गति होती तौ गृहस्थ-धर्मातमा का पर-भव कैसे सुधरता? अरु धर्मी-श्रावक धर्म-रस के स्वादी, घर के सुख कैसे भोगते? तातैं अनेक नयन करि विचारिये है तौ पाप एक धर्म-घात का नाम है। भोगन में पाप नाहीं। तातैं विवेकी धर्मातमा हैं तिनकौं एक धर्म-काल में धर्म-सेवन ही योग्य है। आगे मुनीश्वरों के मोक्ष कौं कारण, श्रावक का घर है। ऐसा कहैं हैं—

गाथा—जीय सुहचय मोक्खो, मोक्खोत्तयण रयण मुण साहो। मुणणर तण आहारो, भोयण सावय गेह कर होई॥ ९४॥

अर्थ—जीय सुह चय मोक्खो कहिये, जीव सुखकौं चाहै सो सुख मोक्ष विषैं है। मोक्खोत्तयण रयण मुण साहो कहिये, सो मोक्ष रत्नत्रय से होय है अरु रत्नत्रय मुनि-पद तैं होय है। मुणणरतण आहारो कहिये, मुनि-पद मनुष्य शरीर तैं होय है अरु शरीर भोजन तैं रहै है। भोयण सावय गेहकर होई कहिये, सो भोजन श्रावक के घर करि होय है। भावार्थ—ये सर्व च्यारि गति संसारी जीवन की आशा, एक सुख है। सो सुख सर्व चाहैं हैं। अरु आया सुख का वियोग भये, जीव दुःखी होय है। तातैं ऐसा जानिये है। कि विनाश रहित अविनाशी सुख कौं जीव चाहैं हैं। सुखतैं एक छिनक भी अन्तर नहीं चाहैं हैं, ऐसा सर्व जीवन का अभिप्राय है। सो हे भव्य जीव हो! संसार में देव-मनुष्यन के सुख हैं। सो तो विनाशिक हैं। कोई पुण्य जोग तैं होय हैं। पीछे अपनी स्थिति-मरजाद पूर्ण भये पर्यन्त रहैं हैं। पूर्ण भए पीछे सुख नाश होय है। सुख नाश भये, बड़ा दुःखी होय है। जैसे विद्युत पात, अल्प उद्योत का चमत्कार करि, पीछे अन्धकार करै है। तैसे ही इन्द्रिय-सुख तौ तुच्छ-सा चमत्कार, सुख की वासना-सी बताय, पीछे दुःख ही उपजावै है। तातैं ऐसा विनाशिक सुख होने तैं न होना भला

है। यह जीव तौ निरन्तर अविनाशी सुख कूं चाहै है। तातं हे सुख के अर्थी जीव हो! तुम्हारी वांच्छा प्रमाण सुख का स्थान सिद्ध पद है। तहां ध्रुव-अविनाशी सुख है। सो सुख, सर्व कर्म के नाश तैं पाईये है। तातैं तुम कौं सदैव अविनाशी सुख की अभिलाषा है तौ जैसे बनै तैसे सर्व कर्मन का नाश करौ, ज्यों मोक्ष होय। सर्व सुख का स्थान मोक्ष है। सो सुख का आश्रय जो मोक्ष है, सो रत्नत्रय के आधीन है। सो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र—ये तीन रत्नत्रय, मोक्ष का आश्रय हैं। रत्नत्रय बिना, मोक्ष नाहीं और रत्नत्रय हैं सो मुनि-पद के आश्रय हैं। मुनि-पद बिना, रत्नत्रय के होता नाहीं। मुनि-पद है सो नर तन बिना होता नाहीं। तातैं मुनि-पद का आश्रय, नर का शरीर है। मनुष्य शरीर की स्थिरता, भोजन बिना रहती नाहीं। तातैं मनुष्य के तन का आश्रय भोजन है और मुनीश्वर का भोजन, धर्मी श्रावक सुआचारी बिना होता नाहीं। तातैं जे उत्तम श्रावक के मन्दिर हैं सो ही मुनि के तन का आश्रय जानना। तातैं ऐसा जानना। कि जो मोक्ष-मार्ग है, सो श्रावक के घर तिनकै आधीन है। मुनि-पद बिना, मोक्ष नाहीं और श्रावक धर्मात्मा के घर बिना, मुनि के शरीर का सहकारी भोजन होता नाहीं। तातैं जो शुभ श्रावकन का घर भोजन देने कौं नहीं होय। तो मुनि का धर्म नाहीं होय। अरु मुनि-धर्म नहीं होय, तौ मोक्ष-मार्ग भी नहीं सधै। तातैं ऐसा जानना, मोक्ष-मार्ग का आश्रय श्रावक का घर ही है। ऐसा जान धर्मात्मा श्रावकन कूं शुभ आचार रूप प्रवर्तना योग्य है। आगे बुद्धि, धन व तन पाये का फल कहै हैं—

गाथा—बुधिफल तत्व विचारइ, तण फल तव तीथ झाण चारत्तो। धण फल पूजा दाणउ, वच फल परपीय जन्तु रख सत्तो ॥९५॥

अर्थ—बुधिफल तत्व विचारइ कहिये, बुद्धि का फल-तत्त्वन का विचारना है। तण फल तव तीथ झाण चारत्तो कहिये, तन का फल-तप, तीर्थ, ध्यान और चारित्र है। धण फल पूजा दाणउ कहिये, धन का फल-दान पूजा है। वच फल परपीय जन्तु रख सत्तो कहिये, वचन का फल-परकौं प्रिय दयामयी सत्य बोलना है। भावार्थ—जे सुबुद्धि कूं पाय, धर्म-मार्ग भूलि कैं विषयन में प्रवृत्ति करि, पाप करि, शीश अशुभ भार लिया। सो तो बुद्धि भई ही निष्फल भई और जिन भव्य जीवन नैं बुद्धि पाय करि, तत्वन का विचार करि, पाप-कर्म का क्षय व पुण्य का सञ्चय करि, मोक्ष होने का उपाय विचार किया। सो ही बुद्धि पाये का उत्कृष्ट फल है। मनुष्य शरीर पायकें अनेक पापकारी स्थानन में प्रवृत्ता, पर पीड़ा करी, पर-धन हरचा,

पर-स्त्री रम्या, पाप स्थानन में तीर्थ जानि भ्रमण किया। इत्यादि कार्य पापाचार करि अशुभ कर्म का बन्ध किया, सो तो तन पाया जैसा नहीं पाया। शरीर वृथा गया। जो शरीर पाय निर्हिसक, आरम्भ रहित, दया-भाव सहित, अन्तरङ्ग तप षट्, बाह्य तप षट्, ऐसे बारह तप कूं करै, सो तन-फल है तथा जहां तैं कर्म नाश कर जतीश्वर मोक्ष गये, सो स्थान शुद्ध तीर्थ है। सो जा शरीर तैं तिस स्थान की वन्दना-पूजा करनी, सो शरीर सफल है। जिस शरीर तैं विकराल भेष धरि, पाप-पाखण्ड धरि, औरन कूं भय उपजाया। सो शरीर वृथा है और जा शरीरतैं कायोत्सर्ग-मुद्रा तथा पद्मासन-मुद्रा धरि, समता भाव धरि और जीवन कूं विश्वास उपजाय सुखी किये। धर्म-ध्यान, शुक्ल-ध्यान रूप भाव सहित ध्यान किया, सो काय सफल है और पञ्च महाव्रत, पञ्च समिति, तीन गुप्ति—ये तेरह प्रकार चारित्र तथा बारह व्रत जा शरीर तैं बन्या होय, सो तन पाया सफल है। जा धन करि पापारम्भ क्रिया करि, पर-भव कूं दुःख उपजाया होय, सो धन वृथा है तथा जा धन तैं अन्य जीवन कूं मोल लेय मारे होंय, जा धन तैं पर-जीव बन्दी में किये होंय, पर-स्त्री सेवन किया होय तथा वेश्या-गमन में दिया होय, नाच कराय, गान कराय इत्यादिक विकार भावन में धन दिया होय सो धन वृथा है तथा द्यूत रमने में धन दिया तथा द्यूत रमने के कारण चौपड़ि, गंजफा, शतरञ्ज इन आदि द्यूत कार्य के उपकरन तिनकौं बहुत मोल देय लेना बहुत धन देय चाँदी-स्वर्णादि के बनवावना महाअनुरागी सहित धन लगाय द्यूत की शोभा करनो, सो धन वृथा है। जा धन तैं मुनि वीतरागकूं दान दिया होय, जिन भगवान की पूजा की होय, सो धन पाया सफल है और मुख पाय, वचनतैं अनेक जीवन के मान खण्डन किये होंय। पर-जीवनकूं कटु वचन कहि दुःख उपजाया होय तथा वृथा—बे प्रयोजन वचन अनर्थ दण्ड के उपजावनहारे ऐसे वचन इत्यादिक पाप-बन्ध करनहारा वचन बोलना, सो वचन पाया जैसा नाहीं पाया वृथा वचन है। जिन वचनों कूं अन्य जीव सुनि साता पावैं। जिन वचनों की प्रतीत करि और जीवनकौं स्थिरता होय सुख पावैं। ते वचन दया सहित, हिंसा पाप रहित सत्य इत्यादिक जिन देव की आज्ञा-प्रमाण हित मित वचन का बोलना, सो वचन पाया सफल है। ऐसा जानिकैं विवेकी हैं तिनकौं बुद्धि पाय कैं तो जीवाजीवादिक तत्त्वन का विचार करि बुद्धि सफल करना योग्य है और तन पाय तप तीर्थ ध्यान करि तन सफल करना भला है। धन पाय दान-पूजादि करि पुण्य

उपजावना अच्छा है। वचन पाय हित मित सत्य बोलना और भी इन आदि सुकार्यन में विषैं शुभ रूप रह कैं, भव सफल करना योग्य है। ऐसा जानना! आगे ऐते निमित्त, काल-मृत्यु समान जानि तिनमें सावधान रहना। ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—दुठणारी सठ मित्तऊ, गूढ जाणन्त मन्त जे भत्तो। अहथित घर विसपाणो, एसहु णमत्ताय द्वार जम्म गेयो ॥ ९६ ॥

अर्थ—दुठणारी कहिये, दुष्ट स्त्री। सठ मित्तऊ कहिये, मूर्ख मित्र। मूढ़ जाणन्त मन्त जे भत्तो कहिये, गूढ़ बातकौं जो सेवक जानता होय। अहथित घर कहिये, घर में सर्प का वास। विषपाणो कहिये, विष का भोजन। ए सहु णमत्ताय कहिये, ए सब निमित्त। द्वार जम्म गेयो कहिये, काल समानि जानना। भावार्थ—इस जीव के जब पाप-कर्म का उदय आवै तब ऐसा निमित्त मिलै। जो घर विषैं महादुष्ट स्वभाववाली कलहकारिणी, विनय लज्जारहित तीक्ष्ण-कटुक वचन भाषणी क्रोधादि कषायन सहित, कामाग्नि जिसकैं तीव्र होय। इनकूं आदि लेकर अनेक अनाचार औगुण करि भरी स्त्री मिलै। सो मरण समान दुःख सदैव जानना तथा आप तो महाविवेकी होय नाना नय-जुगति का जाननेहारा होय। चतुर, अनेक कला का धारी धर्म-कर्म कार्य में प्रवीण होय और जिनमें सदैव रहना ऐसे मित्र जो आपके पास निरन्तर रहैं, सो मूर्ख होंय। तौ आप तौ विचारै कछु भला-कार्य अरु मूर्ख मित्र ज्ञान हीन वह विचारै निन्द्य-कार्य। अरु समझते नाहीं, कहिये कछू अरु वह मन्दज्ञानी करै कछू। सो ऐसे मूर्ख के निमित्त तैं विवेकी कौं मरण समान निमित्त है और कोई अपनी गूढ़ वार्ता है जो काहूकौं कहने की नाहीं। उस वातकूं कोई जानै, तौ आपकूं दुःख होय और राज-पक्ष कदाचित् सुनि पावैं तौ दण्ड देय। ऐसी वार्ता गूढ़ थी सो पहिले कोई चाकर कूं अपना मित्र जानि कही होय। तो वह चाकर मित्र काल पाय जिनका प्रयोजन नहीं सधै, द्वेष रूप होंय। तब ए ही मित्र काल समानि हैं तातैं विवेकी होंय सो स्नेह के वश सेवककौं तथा मित्रकौं अपने घर की छिपी गूढ़ वार्ता नहीं जनावैं हैं। जनावैं तो कबहूं काल समानि दुःखदाता जानना। जा घर विषैं सर्प होय ताही घर विषैं निशदिन रहना होय। तौ कभू न कभू मरण होय। तातैं विवेकी जा घर में सर्प होय तहां नहीं रहै और हलाहल विष का खावना। सो मरण का कारण है। इत्यादिक कहे जे खोटे निमित्त, सो कवहूं न कबहूं मरण करैं। तातं विवेकीन का इतनी जगह सावधानी ही जीतव्य जानना। आगे एती

जगह मुनीश्वर नहीं रहैं। अरु रहें तो अपना संयम नष्ट होय, ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—जहिं मुणि थति णह भूपो, णीरो तण धाण अलप तंह होई। णह धम्मी जण धम्मो, स पुर देसोय तज्जये जोई ॥९७॥

अर्थ—जहिं मुणि थति णह भूपो कहिये, वहां मुनि की स्थिति नाहीं जहां राजा नहीं होय। नीरो तण धाण अलप तंह होई कहिये, जल-घास-अन्न जहाँ थोरा होय। णह धम्मी जण धम्मो कहिये, धर्मी जन अरु धर्म जहां नहीं होय। सो पुर देसोय तज्जए जोई कहिये, सो पुर-देश योगीश्वर तजैं हैं। भावार्थ—इतनी जगह मुनीश्वर नहीं रहैं। एक तो जा देश मैं तथा पुर में आगे मुनि का वास नहीं होय। जा देश-पुर के वन में मुनि रहते होंय, तहां रहैं तथा मुनि स्थिति करने योग्य जो स्थान नहीं होंय, तो ता क्षेत्र में योगीश्वर नहीं रहैं। रहैं तो संयम जाय और जा देश-नगर का कोई राजा नहीं होय, तौ ता क्षेत्र में मुनीश्वर नाहीं रहैं। क्योंकि राजा रहित क्षेत्रन में प्रजा दुःखी होय है। जीवन की दशा अन्यायी होय, जीव तहां अनाचारी होंय, निर्दयी होंय इत्यादिक अनेक विपरीतता होंय। सो यति का धर्म तहां सधै नाहीं। न्याय राज्य बिना दुष्ट प्राणी, दीर्घ शक्ति के धारी होंय, सो दीन जीवन कूं पीड़ा देंय। सो दीन जीवनकूं दुःख होता देखि, दया-भण्डार का हृदय कोमल, सो अशक्तिमानों का दुःख देखा जाता नाहीं। राजा होय तौ हीन-शक्ति के धारी जीवनकूं, बड़ी शक्ति का धारी पीड़ित नहीं करि सकै और कदाचित् दीनकौं शक्तिमान् सतावैं-दुःख देंय तौ राजा दण्ड देय और राजा नहीं होय तो प्रजा दुःखी होय। सो प्रजा का खेद दया-सागर देखि, दुःखी-चित्त होंय। तातैं राज्य रहित क्षेत्र विषैं यतीश्वर नाहीं रहैं और जिस देश में नदी, सरोवर, कूप, बावड़ीन का नीर कठिनता तं मिलता होय। तहां यतीश्वर का धर्म पलै नाहीं। ऐसे क्षेत्र में नाहीं रहैं और जहां तिर्यञ्चन के तन का आधार जो तिण, सो घास की बाहुल्यता होय तो पशू साता पावैं, सुखी रहैं और जहां घास की उत्पत्ति अल्प होय ताकरि घास के खानेहारे तिर्यञ्च पीड़ा पावैं। ऐसे क्षेत्रन में करुणासागर नहीं रहैं और जिस क्षेत्र में अन्न की उत्पत्ति थोरी होय, तहां के जीव सदैव अन्न की चिन्ता सहित रहते होंय। तो ऐसे क्षेत्र में मुनीश्वर का धर्म, निराबाधा नहीं सधै। तातैं ऐसे क्षेत्र में दया-भण्डार जगत्-गुरु यतीश्वर नहीं रहैं। जिस देश-पुर विषैं सुआचारी धर्मात्मा जीव नहीं रहते होंय, तो यति के भोजन का अभाव होय। पापाचारी, अभक्ष्य के खानेहारे

दया रहित जीवन करि भऱ्या ऐसा कुक्षेत्र तहां यति का धर्म नहीं सधै। तातैं ऐसे धर्मी जीवन रहित क्षेत्र में नहीं रहैं और जहां जिन-धर्म की प्रवृत्ति नहीं होय। जहां जिन चैत्यालय में जैन शास्त्राभ्यास नहीं होय। तो ऐसे कुक्षेत्र में मुनीश्वर नहीं रहैं। इत्यादिक कहे जे आकुलता के कारण खोटे स्थान, तहां जगत् पीर-हर नहीं रहैं। कदाचित् रहैं तो संयम तैं नष्ट होंय। ऐसा जानना। आगे इन जीवन का विश्वास नहीं करिये, सो बताईये है—

गाथा—णख संगा पसु णदियो, विसदंती सस्त्रणग तीय मदपायो। कितघण स्वामी दोहो, गभ खल चित्तोय णाहि विसयासो ॥९८॥

अर्थ—णख संगा पसु कहिये, नख सींग के पशु। णदियो कहिये, नदी। विस कहिये, जहर। तथा दन्ती कहिये, दन्तवाले तिर्यञ्च। सस्त्रणग कहिये, जाके हाथ में नग्न शस्त्र होय। तीय कहिये, घर की स्त्री। मदपायो कहिये, दारु का मतवाला। कितघण कहिये, कृतघ्नी। स्वामी दोहो कहिये, स्वामी द्रोही। गभ खल चित्तोय णाहि विसयासो कहिये, गूढ़ मन का धारी दुष्ट परिणामी इन सबका विश्वास नाहीं करिये। भावार्थ—जे जीव नखतैं पर-जीवन का घात करनहारे ऐसे रीछ, सिंह, श्वान, मार्जार इत्यादिक दुष्ट तिर्यञ्च, ऐसे नखी जीवन का विश्वास करना योग्य नाहीं और जे जीव सींगन तैं पर-जीवनकूं मारैं ऐसे भैंसा वृषभ मीढ़ा, मृगादिक, ये तीक्ष्ण सींग के धारी तिर्यञ्चों का विश्वास करना योग्य नाहीं और आप बहुत ही बलवान् जल का तैरनेहारा होय तौ भी सावन-भादवा की वर्षान करि चढ्या जो बे-मरजाद जल ऐसी भयानक नदी बहती होय, ताका विश्वास करना योग्य नाहीं और महाहलाहल जाके खाये मरण होय देखे ही प्राण जांय ऐसे विष का, कौतुक मात्र भी विश्वास करि खावना योग्य नाहीं तथा विष के धरनहारे क्रूर सर्प-विच्छू आदिक विषवाले जीव तिन विषीन का विश्वास नहीं करिये और जे जीव दाँतन तैं पर-जीवन का घात करैं काटैं-मारैं ऐसे मगर चीता, ल्याली, स्यार और ये सिंह, श्वान दाँत-दाढ़ तैं भी मारैं। तातैं सिंह, श्वान, सूस, गेंड़ा, हाथी इत्यादि जे दन्ती हैं। सो इन दन्ती तिर्यञ्चन का विश्वास करना योग्य नाहीं और जाके हस्त में नगन शस्त्र होय। ताका विश्वास नहीं करिये और स्त्री का ज्ञान महाशिथिल होय है। ताका चित्त महाचञ्चल होय। ताके उर विषैं कोई बात ठहरे नाहीं विषयन की अभिलाखनी कार्य-अकार्य में नाहीं समझै। इत्यादिक अज्ञान चेष्टा की धरनहारी जो स्त्री पर्याय, महालोभ की धरनहारी, ऐसी स्त्री अपने घर की भी होय तौ भी ताका विश्वास नाहीं कीजिये। अरु मदिरा-पायी

मद के अमल मैं बेसुध भया। ताकों भले-बुरे का भेद कछु नाहीं। जाका ज्ञान सर्व भ्रममयी होय गया है। जाकैं अपनी परिणति अपने वश नाहीं। पराधीन अज्ञान चेष्टा का धारणहारा ऐसा मदोन्मत्त स्वप्न समानि बेसुध ताका विश्वास नाहीं करिये और जे जीव पराए किए उपकार कौं भूलें सो कृतघ्नी कहिए। काहू ने भूखे कूं भोजन दिया, नंगे कूं वस्त्र दिया। रोग विषै मरते कौं अनेक यतन-ओषधि करि बचाया। तुच्छ पदस्थ तैं बड़े पदस्थ का धारी किया, आदर रहित कूं आदर सहित किया। निर्धन कूं धनवान् किया। इत्यादिक उपकार जापै किये होंय तौ भी तिन सबकूं भूलि जो दुर्बुद्धि उल्टा द्वेष करै। अरु ऐसा कहै, तुमने कहा किया? हमारे भाग्य तैं भया तथा हमारी बुद्धि के योगतैं हम सुखी भए व हमने पाया है। ऐसे कहनहारा पराए किए उपकारन का उगलनहारा कहिए तजनेहारा-भूलनेहारा ऐसे कृतघ्नी-पापाचारी का विश्वास नहीं करिये। क्योंकि जानैं अनेक उपकार किए तिसका ही नहीं भया। तो ऐसा कुबुद्धि जीव और के अल्प उपकार कौं कहा मानेगा? ऐसा जानि यातैं डरि कर इस कृतघ्नी का विश्वास नहीं करिए और एक स्वामी द्रोही, सो जिस स्वामी के प्रसाद अनेक सुख पाए धन पाया छोटे तैं बड़े होय गए समय पाय उसही स्वामी का द्वेषी होय बुरा चाहे ताकूं दुखदाई होय। ऐसे स्वामी द्रोही अपजस की मूर्ति अमृत समानि महालोभी ताका विश्वास नहीं करना भला है और जो अपने चित्त की वार्ता औरन कौं नहीं जनावै महामूढ़ हृदय का धारी। मन में और वचन में और काय में और ऐसी कुटिल परिणति का धारी। तीव्र माया कषाय के उदय का भोगनहारा, दगाबाज ताका विश्वास नहीं करना। ए स्वामी द्रोही है। काहू का मित्र नहीं है। तातैं इस स्वामी द्रोही का विश्वास नहीं करना और एक दुष्ट है, सो पराया सुखकूं देखि आप दुःखी होय। पर-जीवनकूं दुःखी देख आप सुखी होनेहारा, रौद्र परिणामी दुष्ट है। सो ऐसे दुष्ट का विश्वास नहीं करना। यातैं नखी सींगी नदी विषी दन्ती नगन शस्त्र धारी मदोन्मत्त कृतघ्नी स्वामी द्रोही दुष्ट स्वभावी इन दश जाति के जीवन का विश्वास न करना सुखकारी है।

इति श्रीसुदृष्टितरंगिणी नाम ग्रन्थ के मध्य में अनेक जुगति उपदेश वर्णन करनेवाला पचीसवाँ पर्व सम्पूर्ण भया ॥ २५ ॥

आगे मुख में मीठा, पीठ तैं द्वेष करनहारा ऐसा मित्र, तजवे योग्य है। सो दृष्टान्त सहित बतावैं हैं—

गाथा—पूठय काजय हन्ता, पतखो पीय वयण सिरणावो। सय सठ मायापिंडऊ, जय विसकुम्भोय वदन पय जेहो ॥ ९९ ॥

अर्थ—पूठय काजय हन्ता कहिये, जो पीछे तौ कार्य का घात करै। पतखों पीय वयरा सिरणावो कहिये, प्रत्यक्ष मीठा बोलै, मस्तक नवावै। सय सठ माया पिंडऊ कहिये, सो मूरख दगाबाजी का पिण्ड जानना। जय विस कुंभोय वदन पय जेहो कहिये, जैसे—मुख पै दूध लग्या विष तैं भरया कलश होवै। भावार्थ—जो कोई ऐसा दुर्बुद्धि-कुटिल अपना मित्र होय, तो ताकौं पहिचान कैं तजना भला है। कैसा है वह मित्र? पीठ पीछे तौ अपनी निन्दा करै, हाँसि करै। सदैव ऐसा छल देखा करै जाकरि मान खण्ड करै तथा धन नाश करावै। मारने कूं, दुःखी करवे कूं छल देखा करै। इत्यादिक दुष्टता राखै। अरु प्रत्यक्ष मिलै तब मुंह पै हाथ जोड़ि, बारम्बार बहुत शीश नवाय, विनय करै, मिष्ट वचन बोलै, मुख-प्रसन्न करि बातैं करै, स्नेह जनावै, सेवक होय रहै। धरती तैं हस्त लगाय सलाम करै। पुत्र-सा होय रहै। किन्तु अन्तरङ्ग की दुष्टता नहीं तजै। ऐसे दुष्ट चित्त का धारी पाखण्डी, मायावी मित्रकूं तजना ही सुखकारी है। कैसा है यह मित्र? जैसे—विष का भरया कलश होय, ताके ऊपर थोरा दूध भरया होय। सर्व अनजान जीवन कूं, सर्व कलश दूध का भरया भासै। सो कोई याकौं दूध का भरया जानि, ऊपर के दूध कूं खायगा तौ प्राण तजैगा। तातैं वह दूध भी जहर समानि है। तातैं या सर्व ही विष का भरया जानि, तजना भला है। तैसे ही अन्तरङ्ग दोष करि भरया, मुख मीठा, ऐसा मित्र, विष के कलश समानि जानि तजना योग्य है। आगे एती सभा विषैं विरोध वचन न बोलै। ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—धम्मसभा णिप पंचय, जाय लोयाय बन्धुवगणाणी। इणविरुद्ध वच करई, सचर सठ लोयणिद दुहलेहो ॥ १०० ॥

अर्थ—धम्म सभा कहिये, धर्म सभा। णिप कहिये, राज्य सभा। पंचम कहिये, पंच सभा। जाय कहिये, जाति सभा। लोयोय कहिये, लोक सभा। बन्धु वगणाणी कहिये, बन्धुवर्गो मैं। इणविरुद्ध वच करई कहिये, इन विरुद्ध वचन का बोलना। सचर सठ कहिये, सो जीव मूरख। लोयनिन्द दूह लेहो कहिये, लोक निन्द। अरु दुःख पावै। भावार्थ—विवेकी हांय सो एती जायगा मैं सभा विरुद्ध वचन नहीं बोलैं और ऐती सभान मैं सभा विरोधी वोवै, ताकूं मूर्ख कहिये। सो ही बताईए है। एक तो मोक्ष-मार्ग सूचक धर्म तथा धर्म के कारण जिन-धर्म कों सेवनहारे धर्मात्मा जीव। तिन धर्मात्मा जीवन की सभा विषैं सर्व धर्मात्मा जीव धर्म को वढ़ावे कौं, प्रभावना होवे कौं, पुण्य वढ़ावे कूं नाना चरचा करते होवें। तिस अवसर में सर्व सभा के धर्मात्मा पुरुषों ने ऐसा

कह्या, जो यहां कछु द्रव्य लगावना तथा तन तैं यहां कछु खेद खावना ज्यों पुण्य होय। ऐसा प्रबन्ध विचारऱ्या। सो सब कौं परस्पर बूझ चले कि जो धर्म-वृद्धि कूं यह उपाय विचारऱ्या है, सो इस प्रबन्ध में सर्व प्राणीन कूं रहना योग्य है, सो ऐसा सुनि कैं कोई कहै, जो हम काहू के प्रबन्ध में नहीं, अपनी इच्छा होय तैसे धर्म साधन करेंगे जाकौं प्रबन्ध में रहना हो सो रहो, हम नहीं हैं। ऐसी धर्मात्मा-सभा के खण्डवे कों मद सहित वचन बोलै, सो महामूर्ख कहिये। ये धर्म-सभा विरोधी वचन महापाप-फल का दाता, धर्म-घातक वचन है। सो धर्मात्मा विवेकी ऐसा नहीं बोलै। धर्मात्मा होय, सो धर्म प्रबन्ध रूप वचन सुनि कैं, हर्ष सहित सर्व कूं ऐसा कहै, जो तुम धन्य हो। भली विचारी। हम आज्ञा प्रमाण सर्व के वचन प्रबन्ध में शामिल हैं। सर्व ने करी, सो हमकूं प्रमाण है। ऐसा वचन सभा में बोलना, उत्तम धर्म फल का दाता, धर्म-सभा सुहावता होय है। सो ऐसा बोलनेहारा प्ररुष प्रसंशा योग्य है और जो पापात्मा होय, सो धर्म-सभा विरोधी वचन बोलै है, सो ये पाप-बन्ध का कारण है। तातैं पाप तैं भय खाय, धर्मात्मा धर्म-सभा विरोधी वचन नहीं बोलैं हैं। १। और राजन की सभा विषैं वचन बोलिये सो सत्य व विनय सहित, अपने-पराए पदस्थ प्रमाण, राजा आदि सर्व सभा कूं सुहावता वचन बोलना, सो विवेकी का धर्म है और कदाचित् राजा के अविनय सहित तथा सभा कूं अप्रिय, सभा विरुद्ध वचन बोलै, तो मरणादि दुःख कूं प्राप्त होय। तातैं राज्य-सभा विरुद्ध वचन नहीं बोलिये। २। और पंचन में जहां सर्व पंच भले-मनुष्य न्याति के तथा पर-न्याति के मिल, मनसूबा तथा न्याय करैं हैं तथा कोई प्रबन्ध करते होंय। तहां कोई परस्पर पूछैं हैं। भाई हो! सर्व पंचन का यह प्रबन्ध है। सो इस मनसूबे में कायम हो अक नाहीं? फलाना जी, पंच तुम पै ऐसा दोष लगावैं हैं। सो ऐसा डण्ड विचारैं हैं। सो तुमको कबूल हैं कि नहीं? तब विवेकी पुरुष तौ ऐसा कहै। कि भाई! हम बड़े हैं तथा धनवान हैं तथा राज-पंचन में बड़ा हमारा पदस्थ है तो कहा भया? ये हम कूं दोष है। सो सर्व पंच मिल ठहरावें, सो हमको प्रमाण है। पंचन की आज्ञा हमारे शिर पर है। इत्यादिक पंचन की बड़ाई व अपनी लघुता रूप वचन बलै, सो विवेकी है। सो वचन बोलना, पंचन में प्रशंसा योग्य है। यशदायक है और कोई भोरा, मन्द ज्ञान करि, अपयश कर्म के उदय, ऐसा कहै। कि जो हमको दोष लगावैं हैं। ऐसे-ऐसे दोषवाले तो हम पंचन में घने बतावेंगे। हमारे ऊपर कोई दोष लगावैगा तौ

हम भी पञ्चन तथा कहनेवाले कूं राजी करौंगा। सर्व पञ्चन में लाय ऐसी विपत्ति डारोंगा, सो सर्व घर-धन से जायगा। एक-दोय की आवरू ले मरूँगा। मोकों दोष लगावनहारा तथा दण्ड देनेहारा कौन है ? घनी करोगे तो पञ्च अपनी पञ्चायती लेवेंगे। मेरे कछु पञ्चन तैं अटका नाहीं। इत्यादिक पञ्चन में सभा-विरोध वचन बोलै, सो जीव अपयश की मूर्ति, पञ्चन करि निन्दा पावै है। ताकौं महामूर्ख कहिये। तातैं पंचन में सभा-विरोध वचन नहीं वोलिये। ३। जहां अपनी जाति इकट्ठी होय, कोई जाति का प्रबन्ध बांध्या होय। तहां कोई जाति में प्रवृत्ति नाहीं है तथा कोई जाति का खान-पान मनै है तथा कोई अभक्ष्य खान-पान मनै है तथा कोई रीति का वस्त्र-आभूषण राखना मना है तथा कोई व्यापार-वणिज, बांकी पाग बांधना, फैंटा का बांधना, शस्त्र का बांधना इत्यादिक मलिन-क्रिया खोटा-चलन मनै है। सो काहू तैं कोई एक बात अयोग्य बन गई। ताकौं जाति के सब पंचों ने बुलाय कैं कही। हे भाई ! तुमने अज्ञानता करि यह जाति-विरोधी कार्य किया है। सो सर्व जाति तेरे पै दण्ड मांगै है। तैंने पंचन की मर्यादा उल्लङ्घन करी है। तातैं ये दण्ड देहु। तब जे विवेकी, जाति मर्यादा का जाननेहारा होय। सो तो जाति के वचन सुनि कैं, आप हस्त जोरि विनति करै। जो अयोग्य आचार मोतैं बन्या तो सही है। अव जो सर्व जाति की आज्ञा होय, सो ही मोकों प्रमाण है। अब आगै तैं ऐसा आचार-क्रिया नहीं करूँगा। ऐसा वचन सर्व जाति कौं सुखदायी बोलना, सो तो यश पावने का कार्य है। कोई मूर्ख होय सो ऐसे कहै, जो हम काहू की चोरी थोड़ी ही करी है। जाति दण्ड देय सो जाति कोई राजा थोरी ही है। ऐसी सीख और कोऊकौं देय तो देय। हम तौ जैसी हमारी इच्छा होयगी तैसा खान-पान, आभूषण-वस्त्र करेंगे। किसका मुंह है सो हमकौं मनैं करेगा ? इत्यादिक जाति-विरोधी बचन बोलना सो मूर्खता है। निन्दा पावै है। तातैं जाति सभा में सभा-विरोधी वचन नहीं बोलना। ४। लौकिक विषै भला कार्य प्रगट होय ताकौं निन्दिये नाहीं और लौकिक विषै जो कार्य निन्दनीय होय, ताकूं अङ्गीकार नहीं करिये सो ताकौ विवेकी कहिये। जैसे—चोरी, जुआ, पर-स्त्री, व्यभिचार, वेश्यागमन, पर-जीव-घात, मदमांसादि खाना इत्यादिक सप्तव्यसन कारज ये लौकिक कर निन्द्य है। सो इनकौं करैं अरु ऐसा कहै कि जो हमारी इच्छा होयगो सो करेंगे। हमारा कोई कहा करेगा ? ऐसा वचन कहै ताकूं मूर्ख कहिये। निन्दा पावै है। तातैं लोक-निन्द्य कारज नहीं करिये। ५। अपने

कुटुम्ब, माता-पिता, पुत्र, भाई, स्त्री इत्यादिक सज्जन स्नेही बन्धुओं के समूहकौं सुख उपजावै ऐसा वचन बोलै सो तो विवेकी है और बन्धु-विरोध बोलना जो थे सर्व कुटुम्ब मोकों हन्या चाहै है। मैं जानूं हूँ मोहि देखि नाहीं सकै हैं। मेरे सर्व द्वेषी हैं। सो मेरो दाव लगैगा तौ मैं भी सर्व का घात करूँगा तथा मेरे इनपै कहा अटक्या? मेरे पास धन होयगा तौ आप ही आय मेरे पांयन परैंगे। इत्यादिक जिनकूं सुनि सर्व कुटुम्बकूं दुःख होय। जिन करि सर्व कुटुम्ब का मान खराडन होय ऐसे कुटुम्ब दुःखदायक वचन बोलना, सो मूर्खता है। तातैं कुटुम्ब-विरोधी वचन नहीं कहिए। ऐसे धर्म-सभा, राज-सभा, पंच-सभा, जाति-सभा, लौकिक-सभा, बन्धु-सभा इतने स्थान कहे तिनकौं दुःखदाई सभा विरोध वचन बोलै तौ इस सभा विषैं पंच निन्द्य होय, लोक निन्द्य होय, बन्धु वर्ग करि निन्द्य होय, ये तीन निन्दा लेय पीछे जीवना वृथा है। ऐसा पुरुष जीवता ही सर्वकूं मृतक समान भासै है। ताकरि तो यह भव बिगड़ जाय है और राज-सभा विरुद्ध तैं तन का घात, धन का घात होय आँगोपांग छैदन होय इत्यादिक होय और धर्म-सभा विरोध तैं पाप-बन्ध होय ताकरि नरकादि दुर्गति के दुःख पावै तातैं धर्मातमा विवेकी दोऊ भव के सुख यश का अभिलाषी होय तिनकौं ऐसा वचन हित-मित सर्वकूं हितकारी बोलना। ऐसा जानि विरुद्ध वचन का त्याग करना योग्य है। आगे शास्त्राभ्यास करिकैं एते गुण नहीं भये तो वह शास्त्र के अभ्यास का शब्द काक के समान है। ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—सुत सुणि पथण णयोगां णधम्मो णय सांतरसपाणो। तऊपथण किंहकाजउ वायसइव धुणि थांणि उयलायो ॥१०१॥

अर्थ—सुत सुणि कहिये, शास्त्र सुनि। पथण कहिये, पठन करि णयोगा कहिये, नहीं वैराग्य। णधम्मो कहिये, नहीं धर्म। णयसांतरसपाणो कहिये, नहीं शान्ति रस का पान। तऊ पथण किंह काजउ कहिये, सो पठना किह काज है? वायस इव कहिये, काक की नाईं। धुणिथांणि कहिये, धुनि करि। उयलायो कहिये, उकलाया। भावार्थ—यह जिनेन्द्र देव करि कह्या जो दयामयी धर्म सहित शास्त्रन का कथन तिनका रहस्य पाय अनेक धर्म धारी जीवन ने अपना कल्याण किया। सो ऐसे शास्त्रन का अभ्यास करके तथा सुनि कैं भी जाका हृदय वैराग्यकूं नहीं प्राप्त भया। तो ऐसे शास्त्र के पढ़ने तैं तथा सुनिवे तैं कहा कार्य सिद्ध भया? और जिन जीवननैं दयामयी रस कर भरे ऐसे शास्त्र तिनका अभ्यास करके भी पाप-कार्यन तैं भय खाय धर्म रूप

नहीं आचरण किया परिणति विषैं धर्म की अभिलाषा रूप नहीं भया। तो ऐसे आगम के अभ्यास का खेद वृथा ही गया और आप समान सर्व षट्कायक जीव हैं ऐसे भेद का बतावनहारा शास्त्र तिनका अभ्यास करि सुनिकैं भी सर्व आकुलता रहित शान्त रस करि भर्‌या समता समुद्र ताका अर्थ रूपी अमृतकूं पीय सन्तोषकूं नहीं पाया। तौ ऐसे शास्त्रन के अभ्यास करि भया जो खेद सो वृथा ही गया और कर्म नाश मोक्ष विषैं धरनहारा पर-वस्तु तैं खेद-छुड़ाय निर्बन्ध करनहारा ऐसे शास्त्र तिनके अभ्यास करके भी आत्मिक रस पाय निराकुल दशा नहीं करी तो शास्त्रन के अभ्यास का खेद करि किछू सिद्ध नहीं भया। भो भव्य! शास्त्रन का अभ्यास करि नाना प्रकार पठन-पाठन करि अनेक शास्त्र गुरुन के मुख तैं सुनि तिन करि अक्षर-ज्ञान तो वहुत किया, वांचना भले प्रकार सीखा, अनेक छन्द, काव्य, गाथा, संस्कृत, प्राकृत करि देश भाषा करि उपदेश देना भी सीखा इत्यादिक चतुराई तो तैंने सीखी। किन्तु वैराग्य भाव न बढ़ाया। पाप तज धर्म दयामयी नहीं सुहाया और क्रोध-मानादि कषाय बुझाय शान्ति सुधा रस नहीं पिया तौ शास्त्र का पठन-पाठन वृथा ही गया। सम्यग्दृष्टि के मूल अनुभव का फल स्वभाव-पर-भाव का निर्धार ए सर्व ऊपर कहे जो गुण सो सर्व आत्म-कल्याण के कारण हैं। सो शास्त्राभ्यास तैं होय हैं। शास्त्रन का अभ्यास करि अनेक जीव मोक्ष-मार्ग जानि समता भाव धरि मोक्षकूं पहुँचैं हैं। ऐसे शास्त्रन का अभ्यास करि अनेक खेद पाय पठन करि ऊपर कहे गुण ताकूं प्राप्त नाहीं भया तो सर्व खेद वृथा ही गया। जो शास्त्राभ्यास तैं वैराग्य नहीं भया धर्म अच्छा नहीं लाग्या नहीं शान्त भाव भये तो तेरा शास्त्राभ्यास का शब्द ऐसा भया जैसा दीरघ शब्द करि काक उकलावैं है। तैसे इन गुण बिना शास्त्र के वांचने का शोर काक शब्दवत् जानना। आगे मरण हू तैं अधिक निद्रा को बतावैं हैं—

गाथा—णिंदा मीच समाणो, मीचोय गभवान्त होई इकवारऊ णिंदो छिण-छिण घादय णाण आदाए देयगय असुहो ॥१०२॥

अर्थ—णिंदा मीच समाणो कहिये, निद्रा तौ मौति समानि है। मीचोय गभवान्त होइ इकवारऊ कहिये, मौत एक भव में एक वार होय। णिन्दो छिण-छिण घादय कहिये, निद्रा छिन-छिन घात करै है। णाण आदाय कहिये, इस प्रकार आत्मा के ज्ञानकूं घात कर। देय गय असुहो कहिये, अशुभ-गति देय है।

भावार्थ—यह संसारी जीव तौ मोह के वशीभूत भये निद्रा-कर्म के उदय भया जो आत्मा के ज्ञान-दर्शन का घात ताके निमित्त पाय आत्मा जड़ समानि होय ता निद्रा को प्राप्त भए जीव साता आनन्द भया मानैं हैं। सो हे भव्य ! ए निद्रा मृतक समानि चेष्टा लिए जाननी तथा इसे मृतक हूँ तैं अधिक दुःखदायक जानना। सो ही बताईये है। जो मृत्यु है सो तो एक शरीर के उदय विषैं एक बार आयु के अन्त उदय होय आत्मा के दर्शन-ज्ञानकूं घातै है और निद्रा है सो आत्मा का मुख्य गुण ज्ञान-दर्शन ताकौं छिन-छिन में घातै है और ए निद्रा भले गुण का घाति करि, अशुभ-कर्म का बन्ध करि खोटी गति देय है। तातैं निद्राकूं मृत्यु तैं हू दीरघ दुःख-दाता जानना। ताही तैं योगीश्वर निद्रा का प्रवेश अपने स्वभाव में नहीं होने देंय हैं। ऐसा जानना। आगे दुष्ट जीवन का स्वभाव दृष्टान्त देकर बतावैं हैं—

गाथा—दुज्जण जोंक समभावो इगओयण इग रुधर गह लेई। सथण लगो वा पोसउ णिजणिजपकत्य णाहिको जहई ॥१०३॥

अर्थ—दुज्जण कहिये, दुर्जन। जौंक कहिये, जौंक। सम भावो कहिये, ए एक से हैं। इग ओयण कहिये, एक तौ औगुण। इग रुधर गह लेई कहिये, एक रुधिर गहलेय। सथण लगो कहिये, थन तैं लागै। वा पोषऊ कहिये, भावैं पोषै। णिज-णिज पकत्य कहिये, निज-निज प्रकृति। णाहिको जहई कहिये, कोई तजता नाहीं। भावार्थ—संसारी जीवन के अनेक स्वभाव होंय हैं तिनमें केतेक ऐसे हैं। जो परकौं दुःखदायी दुष्ट स्वभावी पर दुःख सुखिया पर सुख दुःखिया अन्य जीवनकूं दुःखी, दरिद्री, रोगी, शोकी, भयवान्, मान-भङ्गी इत्यादिक असाता सहित देख महासुखी होंय कोई सुखिया को अच्छी तरह खावता, पहिरता, अच्छे भोग भोगता, नाचता, गावता, हँसता, रोग रहित धनवान् इत्यादिक प्रकार सुखी देखै तौ दुःखी होय। ऐसे पापाचारी दुष्ट अङ्गी रौद्र परिणामी दुर्जन स्वभावी जानना। सो ए दुर्जन स्वभावी अनेक दोषन तैं भरया है। याका सहज स्वभाव ही दुराचार है। याकौं शुभ करवे का कोई उपाय नहीं। याकौं शुभ भी करो तो दोष ही अङ्गीकार करै। इस दुष्ट का स्वभाव जोंक समान है। जौंक अरु दुर्जन इन दोऊन का एक स्वभाव है। दुर्जन अवगुण का ही ग्रहण करै है। यह याका सहज स्वभाव ही है। जौंक है सो लोहू का ही ग्रहण करै। इस जौंक का भी यही स्वभाव है। देखो इस जौंक को दूध के भरे आँचल तैं लगावो, तौ दूध तज कैं स्तन का लोहू पीवै और इस दुर्जनकौं

चाहे जेता पोषौ, ताके ऊपर चाहे जेता उपकार करौ; परन्तु इसका जब प्रयोजन नाहीं साध्या तबही सर्व गुण भूलि करि औगुण ही अङ्गीकार करै। यह अवगुणग्राही इसका अनादि स्वभाव ही जानना। ऐसे जौंक अरु दुर्जन इनकी प्रकृति स्वभाव है। सो अपने स्वभावकूं कोई तजता नाहीं। कोई जतनतैं स्वभाव काहू का पलटता नहीं। सो ऐसा जानि इस दुष्ट जन का संग हेय करना भला है। आगे अपने भावन की उपारजनातैं ही रोग की दीरघता होय है, ताही कौं बतावैं हैं—

गाथा—कच कच गद विण संखो जे पुव्वो पाय जन्तु तण होई। उदय काल अणठो भोगे ण ठयण और को पायो ॥ १०४॥

अर्थ—कच-कच कहिये, रोम-रोम। गद विण संखो कहिये, अगणित रोग हैं। पुव्वो पाजेय जन्तुतण होई कहिये, अगले भव के उपारजे, जीव के शरीर में होंय हैं। उदय काल अणठो कहिये, उदय आये अनिष्ट हैं। भोगे ण ठयण और को पायो कहिये, भोगे ही जांय और कोई उपाय नाहीं। भावार्थ—इन संसारी जीवन के तन विषैं देखिये, तौ एक-एक बाल के ऊपर अनेक-अनेक रोगन की उत्पत्ति है! रोम-रोम, रोगन तैं भरया है। सो इस जीव ने पूरव भव में जैसे उपारजे हैं तैसे ही शरीर में रोग हैं। सो तिष्ठैं हैं, सत्ता में बैठे हैं। सो वर्तमान काल तौ कोई ही रोग दुखदायी नाहीं। परन्तु जब आबाधा काल पूरण होय उदय आवैंगे, तब महाभयानीक दुःख कूं करेंगे। तब अनिष्ट लागैगा। दीरघ वेदना प्रगट होयगी। तिनके आगे, आतमा दुःख भोगता-भोगता शिथिल होयगा। अनेक कष्ट उपजेंगे। तिनके दूर करवे कूं कोई की सामर्थ्य नाहीं। मन्त्र, तन्त्र, जन्त्र, देव साधन, ज्योतिष, वैद्यक इत्यादिक सर्व उपाय वृथा होय हैं। तातैं पूरव पाप-परिणामन का बन्ध, ताकौं भोगे ही जाय है और कोई मेटने का उपाय नाहीं। ऐसा जानि विवेकी धर्मातमा पुरुषन कूं उदय आई असाता मैं समता सहित दृढ़ रहना योग्य है! आगे और दुःख मेटने का तथा रोग के मेटने का तौ उपाय है, परन्तु काल का उपाय नाहीं। ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—खुधा अण तिपणीरो, आमय कुठादि होउ उवचारो। अन्तकणह उवचारो, हरिसुर कम्पय दीण लख होई ॥१०५॥

अर्थ—खुधा अण कहिये, क्षुधाकूं अन्न। तिपणीरो कहिये, तृषाकूं नीर। आमय कुठादि होऊ उपचारो कहिये, कोढ़ कौं आदि लेय सब रोगों का भी उपचार है। अन्तक णह उपचारो कहिये, परन्तु काल का

उपचार नाहीं। हरिसुर कम्पय दीरा लख होई कहिये, इन्द्रदेव भी उसे देख, दीन होय कम्पायमान होंय। भावार्थ—इस संसार में अनेक वेदना-दुःख का इलाज है। परन्तु काल का यतन नाहीं। सो ही बताइये है। बड़ा रोग भूख है, ताका इलाज तो अन्न का भोजन है। ताकरि क्षुधा रोग उपशान्त हो जाय है और तृषा रोग की ओषषि जल है। सो तृषा, जल तैं उपशान्त हो जाय है और कुष्ट रोग, वायु, पित्त, ज्वर, क्षय, खांसी, स्वांस इत्यादिक रोगन के जतन कूं अनेक ओषधि कही हैं। तिन करि रोग उपशान्त होय है। परन्तु एक काल रोग का उपचार नाहीं। ए काल कोई भी जतन तैं मिटता नाहीं। इन्द्र, देवादि ऐसे भी, काल का आगमन देखि, कम्पायमान होंय हैं। ताका नाम सुनतैं, बड़े-बड़े योधा दीनता कूं धारैं हैं। तातैं हे भव्य! इस काल तैं बड़े-बड़े नहीं बचे, तीन लोक में कोई ऐसा स्थान नाहीं, जहां काल तैं बचे। सर्व स्थानकन में जहां जाय, तहां मारै। तातं हे धरमी! तू काल तैं बच्या चाहै है तो मोक्ष के पहुँचने का उपाय करि। तातैं तन का धरना-मरना सहज ही मिटै। मोक्ष में काल नाहीं और मोक्ष बिना सर्व लोक स्थान में, सर्व संसारी तनधारी जीव, काल का भोजन है। आगे इष्ट-वियोग कहां है, कहां नाहीं है। ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—इठ व्योगा णठ जोगा, इठजोगा णठ वयोग कव होई। ये भवचर ववहारऊ, सिद्धो विवरीय रहइ इण संगो ॥१०६॥

अर्थ—इठ व्योगा णठ जोगा कहिये, इष्ट-वियोग, अनिष्ट-संयोग। इठ जोगा णठ वयोग कव होई कहिये, कबहुं इष्ट का संयोग, अनिष्ट का वियोग। ए भवचर ववहारऊ कहिये, ए संसारी जीवन का व्यवहार ही है। सिद्धो विवरीय रहई इण संगो कहिये, सिद्ध इन सर्व तैं विपरीत-रहित हैं। भावार्थ—जे संसारी तनधारी जीव हैं। तिनकौं कबहुं इष्ट का वियोग, कबहुं अनिष्ट का संयोग होय है। तिन करि आत्मा दुःखी होय, विकल्प-आरति करि पाप का ही बन्ध करै है। कबहूँ इष्ट का संयोग होय है, अनिष्ट का वियोग होय है। तब जीव पुण्य के उदय में हर्ष मानै है। सो ऐसा दुःख-सुख संसारी जीवों का व्यवहार ही जानना और ए कहे इष्ट-वियोग, अनिष्ट-संयोगादिक दुःख-सुख सो सिद्धन में नाहीं। सिद्धन कों इष्ट-वियोग, अनिष्ट-संयोगादिक के कारण नाहीं। तातैं कारण के अभाव तैं संसारी सुख-दुःख भी नाहीं। तातैं सिद्ध भगवान् सदा सुखी जानना। आगे काल आगे कोऊ शरण नाहीं, एक धर्म शरण है। ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—जम्मण मण जग लगऊ, सुर णर णारय तिरीय किंह भाजय। सहु अंतक मुह कवलय, एको संणाय धम्म अणिणाहो ॥१०७॥

अर्थ—जम्मण मण जग लगऊ कहिये, जन्म-मरण जग कौं लागा है। सुर कहिये, देव। णर कहिये, मनुष्य। णारय कहिये, नारकी। तिरीय कहिये, तिर्यंच। किंह भाजय कहिये, कहां भागैं। सहु कहिये, सर्व ही। अन्तक मुह कवलय कहिये, ए सब अन्त में काल के मुख का ग्रास हैं। एको संणाय धम्म कहिये, एक धर्म का शरण है। अणिणाहो कहिये, और नाहीं। भावार्थ—शरीर-इन्द्रिय नाम-कर्म के उदय तैं नवीन पर्याय का उपजना, सो तो जन्म कहिये और उत्पत्ति भई थी जो पर्याय सो अपनी थी, मर्याद पर्यन्त रही। पीछे आयु के पूरण होते पर्याय तैं छूट कैं अन्य गति जाना, सो मरण कहिये। इसकी आयु-स्थिति का प्रमाण है। सो समयतैं लगाय घड़ी, पहर, दिन, वर्ष, पल्य, सागर सो ही बताये है। तहां जघन्य युगता असंख्यात समय जाय, तब एक आँवली कहिये और असंख्यात आँवली काल व्यतीत भये, तब एक श्वासोच्छ्वास काल होय है। ऐसे श्वासोच्छ्वासन तैं संसारी जीवन की स्थिति है। सो ए संसारी जीव इस शरीर में इतने श्वासोच्छ्वास रहेगा। सो काय का आयु-कर्म जानना। सो यह पर्यायधारी संसारी जीव, जब अपनी स्थिति प्रमाण श्वासोच्छ्वास भोग चुके हैं, तव मरजाद पूर्ण होतैं, आत्मा पुद्गलीक शरीर के संग कूं तजै है। ताका नाम व्यवहार नय करि लौकिक में मरना कहैं हैं। ऐसे ए जन्म-मरण, इन जगवासी तनधारनहारे जीवन कूं सदैव लगा है। नाना प्रकार भोगन के भोगनहारे, अनेक ऋद्धि के धारी, सागरों पर्यन्त जीवनहारे, ऐसे जो देव हैं तथा नाना प्रकार दुःख-सुख करि मिश्रित जीवनहारे, जो मनुष्य पर्यायधारी। अनेक मन-अगोचर दीरघ-दुःखन का सागर ऐसी नरक गति है। अल्प-सुख, दीरघ-दुःख का स्थान तिर्यञ्च गति है। ऐसे चारि गति के जीव समुच्चय अनन्त हैं। सो ए जन्म-मरण के दुःख से भाग कर कहां जांय? सर्व जायगा काल मारै है। तातैं ए सर्व च्यारि गति वासी जीवन के तन आकार हैं, सो सर्व काल के ग्रास हैं। भावार्थ—कोई जीव कूं अब, कोई कूं चारि दिन पीछे, काल सर्व कूं खायगा। वचवे का कोई उपाय नाहीं। केवल एक धर्म शरण है और नाहीं। तातैं विवेकी जन जन्म-मरण के दुःखन तैं डरचा होय ते भव्यातमा, धर्म का सेवन करि, सिद्ध में चालो। ए पुद्गलीक तन छोड़ि, अमूर्तिक पद धारो। तहां सदैव सुखी रहोगे। वहां काल का आगमन नाहीं। यहां के शुद्ध अमूर्तिक आतमा,

काल के भय करि रहित हैं। तातैं जे च्यारि गति के मरण तैं भागि, काल तैं बच्या चाहो, तो धर्म का शरण लेहु और शरण नाहीं। आगे अग्नि-भेद तीन प्रकार हैं। सो ए अग्नि काहे-काहे कूं जालै? ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—सोगोणल जे दझ्य, दझ्य जे आतिझाण वहणीए। उपला अयणी दझ्य, इव त्रय ज्वालाय काय मण दाहू ॥ १०८ ॥

अर्थ—सोगोणल जे दझ्य कहिये, जे शोक अगनि तैं जलै। दझ्य जे आतिझाण वहणीए कहिये, जे आर्त्त-ध्यान रूप अग्नि तैं जल्या। उपला अयणी दझ्य कहिये, जे काष्ठ-छांणौं (कंडा-उपला) के अग्नि तैं जला। इव त्रय ज्वालाय काय मण दाहू कहिये, इन तीन अग्नि कर काय-मन जालै है। भावार्थ—शोक अगनि के बहुत भेद हैं। तहां असाता-कर्म के उदय तैं इष्ट वस्तु का वियोग भया। ताके निमित्त पाय, कर्म के उदय करि भई जो मन की भस्म करनहारी शोक रूपी अग्नि, सो ताकर दग्धायमान जो जीव, सो सदैव चिन्तावान भया, अशुभ-कर्म का बन्ध करता, दुःखी होय। तन दुर्बल होय। तातैं इस शोक को अग्नि कहिए। जैसे—अग्नि का दग्ध्या पुरुषकूं दुःख के आगे अन्न नहीं भावै, निद्रा नहीं आवै। सुख के निमित्त नृत्यादि मिलै तो भी दाह के दुःख तैं सुखी नहीं होय। तैसे ही शोक- अग्नि करि जाका हृदय जल्या होय, ताकौं शोक तैं अन्न नहीं भावै, निद्रा नहीं आवै। अनेक गीत, नृत्य, वादित्रन के सुखतैं अरुचि होय, सुख न होय। इस शोक के तीव्र उदय में बुद्धि नष्ट होय। उक्ति-जुक्ति नहीं उपजै है। भला ज्ञान का अभाव होय। पढ़्या ज्ञानादिक यादि नहीं आवै। अनेक रोगन की उत्पत्ति होय। इत्यादिक दुःख, शोक अगनि करि जल्या, ताकैं प्रगटैं हैं। जाके शोक अग्नि उर में होय, ताके वाह्य चिह्न एते होंय, सो कहिए हैं। चित्त तो ताका विभ्रम रूप, भ्रमता होय। गाल पै हस्त देय कैं बैठना। अश्रुपात होना। दीर्घ श्वासोच्छ्वास लेना। रुदन करना। ए सबही कारण दुःख के बढ़ावनहारे हैं। ताही तैं विवेकी समता दृष्टि के धारी धर्मात्मा, इष्ट-वियोग में शोक नहीं करैं। ए तो शोक-अग्नि है।१। अब आर्त्त-ध्यान रूप अग्नि है। सो याकौं, कारण रूपी पवन जब मिलै है। तब प्रज्वलित होय, दाह उपजावै है। सो ही कहिए है। जो भली वस्तु गई, ताके विचार तैं आर्त्त-अग्नि बढ़ै है तथा खोटी वस्तु के मिलाप की चिन्ता, ताके निमित्त तैं आर्त्त-अग्नि बढ़ै तथा रोग पीड़ा काहू की देख ऐसा विचार उपज्या, जो मेरे रोग न होय तो भला है तथा मेरो रोग कैसे जाय? ताकी आर्त्त-अग्नि प्रज्वलै है और कार्य किए पहिले, आगामी फल की आरति। इत्यादिक अनेक प्रकार

आरति सो ही भई अगनि; सो इस अगनि करि जल्या पुरुष कूं, बड़ा दुःख होय। सो इस आरति कौं कैसे जानिए ? सो कहिए है। एकान्त वैठना, आरतिवाले कूं मनुष्यन की भीड़ अच्छी नाहीं लागै है। तातैं इकला, एकान्त स्थान में वैठे और की बात नहीं सुहावै। शोर होय-बहुत जन बतलावते होंय, सो नहीं सुहावै। चित्त उदास रहै। खान-पान की अभिलाषा नहीं होय। भोगन में रक्त-भाव नहीं होय। पुरुषारथ की अति मन्दता होय। आलस भाव शरीर में प्रमाद होय। इत्यादिक ए आर्त्त-भाव हैं। सो सर्व पाप-बन्ध के कारण हैं। तातैं इसे आरति अग्नि का दुःख विशेष है। यह दूसरी आरति-अग्नि है। २। तीसरी छैंणा-लकड़ी की अग्नि है। सो इस अग्नि कूं सर्व संसारी जानें और याके जालनैं तैं सर्व जीव दुख खाय हैं। ३। ऐसे ए तीन अग्नि हैं। तिनमें शोक-अग्नि अरु आर्त्त-अग्नि, इन दोय अग्नि को मोही जीव, ज्ञान की मन्दता तैं नहीं जानैं हैं और ए दो अग्नि जो दाह-दुःखा करैं हैं। ताकौं भी अज्ञानता की विशेषता से नहीं जानें हैं और जे जिन देव की आज्ञा प्रमाण चलनेहारे, तत्व-श्रद्धानी, शुभाशुभ भाव विकल्प के रहस्य जाननेहारे, समदृष्टि जानी है, आत्म-काया न्यारी-न्यारी जिनने। तिन मिथ्या परिणतिजारी, सदैव अनुप्रेक्षा के चिन्तनहारे, जगत् दशा तैं उदासी, अल्पकाल में जे जीव शिव जासी जे अनुभव रस के भोगी हैं, ते इन दोऊ अग्नि के भेद-भाव जानैं हैं। सो काष्ठ-लकड़ी की जो उपजी अग्नि है। सो तो ऊपर तैं तन कौं जारै है और ए दोऊ शोक व आर्त्त-अग्नि हैं। सो अन्तरङ्ग में आत्मा के प्रदेश में दाह उपजाय, मन कौं सदैव दाह करैं और काष्ठ आदि की अग्नि का जल्या तो एक भव में दुःख पावै। परन्तु शोक व आर्त्त-अग्नि का जल्या, भव-भव विषैं दुख पावै। तातैं जे विवेकी हैं तिन्हें समतारूपी शीतल-जल लेय करि, शोकादि-अग्नि कौं बुझावना योग्य है। इन दोऊ अग्नि के जले भवान्तर में दुःख पावैं। ऐसा जानि शोक आरति तजना सुखकारी जानना। आगे विद्यादिक अनेक भले गुण है, तिनकौं इन्द्रिय-सुख रूपी ठग हैं, सो ठगैं। सो वतावैं हैं—

गाथा—वोधय तव चारत्तो, संजम झांणोय साम्य पणो। ए सहु गुण जग पूज्यो, अख सुह वंचय तसयरा वुवे ॥ १०९ ॥

अर्थ—वोधय कहिये, ज्ञान। तव कहिये, तप। चारत्तो कहिये, चारित्र। संजम कहिये, संयम। झांणोय कहिये, ध्यान। साम्म पणो कहिये, शान्त परिणाम। एसहु गुण कहिये, ए सव गुण। जग पूज्यो कहिये,

जगत् पूज्य हैं। अख सुह बंचय तसयरा बुधे कहिये, इन्द्रिय सुख है सो इनके ठगने को चोर समानि जानि, पण्डितजन चेतो। भावार्थ—नाना प्रकार शास्त्रन का अभ्यास सो ही भया वांछित सुख का दाता मोक्ष-मार्ग दिखावे कूं दीपक समान चिन्तामणि रतन। सो सहज ही स्वर्गादिक सुख का देनेहारा ऐसा जो विद्याभ्यास, जगत् पूज्य गुण ताके ठगवेकौं इन्द्रियजनित सुख की अभिलाषा चोर समानि है। भावार्थ—ऐसे ज्ञान गुण के धारी ज्ञानी भी कदाचित् इन्द्रिय सुखन की आरति में आ पड़ैं। तो वह आरति धर्म-शास्त्रन का ज्ञान ठग लेय, लूटि लेय है। तातैं जिनदेव भाषित विद्या का भाषी शुभाशुभ पन्थ का वेत्ता इन्द्रियजनित सुखन में धर्म छाड़ि नहीं जाय है और अनेक प्रकार दुर्धर तप के धारी तपस्वी अनेक ऋद्धि संयुक्त औरनकूं पुण्य-सम्पदा के दाता, जगत् पूज्य गुण भण्डार ऐसे तपस्वी भी कदाचित् इन्द्रिय-सुखन की लालच करि भोगन की अभिलाषा करैं तो तपादिक अनेक गुण सो इन्द्रिय चोर लूटि लेंय हैं। तातैं जो सांचे तपस्वी वीतराग दशा के धारी हैं, सो इन्द्रियजनित भोग तैं राग-भाव नहीं करैं। अपने तप धन की रक्षा करैं। चारित्र जो पञ्च महाव्रत, पञ्च समिति, तीन गुप्ति—ए तेरह जाति चारित्र मोक्षरूपी द्वीपकूं पहुँचावनेकूं जहाज समानि, त्रिभुवन के जीवन करि वन्दनीय। ऐसे चारित्र रतन के ठिगवेकूं जो इन्द्रिय-सुखन की भावना है सो लुटेरे समानि है। जो ऐसे चारित्र का धारी यतीश्वर भी कदाचित् अपने धर्म तैं बिछुड़कैं भोगन विषैं आवै तो ताका चारित्र रतन चुराया जाय है। तातैं जेते चारित्रधारी तपोधनी हैं। ते इन्द्रिय-भोगन तैं राग-भाव तजैं हैं। पंचेन्द्रिय तथा मन का जीतनहारा षट् काय जीवन का रक्षक संयमी इन्द्रिय संयमी प्राण संयम का धारी जोगी जगत् वन्दनीय भी भोग विषैं अभिलाषा करैं, तो अपना संयम रतन ठिगावै। तातैं जे संयम के लोभी हैं ते अपने गुण की रक्षा के हेतु भोगन की इच्छा नहीं करैं और स्वर्गादिक का दाता धर्म्य-ध्यान और शुक्ल-ध्यान करि मोक्ष का अविनाशी सुख पावैं। सो ऐसे धर्म्य-शुक्ल-ध्यान के धारक यतीश्वर भी कबहूँ इन्द्रियजनित सुख के प्रेम में पड़ि जांय तौं अपना ध्यान धन गमावैं। सो ध्यानी समता रस का भोगी इन्द्रिय सुख की चाह नहीं करै और सहज सुधारस का स्वादी अनेक तत्त्व विचार के जोर करि कषायन का मद तोड़ करि मोह को निर्बल पाड़ि आप समता सागर में प्रवेश करि निराकुल तिष्ठनेहारा ऐसा यतीश्वर कदाचित् इन्द्रिय सुख के द्वार सराग चित्त करि निकसै तौ इन्द्रिय चोर ताका समता

धन छिनाय लेय कैं भिखारी-सा करि डाले। तातैं जे समता रस के स्वादी निराकुल भोग के वांच्छक हैं। ते इन्द्रिय-भोगन के मारग भी चित्त कूं नहीं चलावैं। ऐसे कहे जे ज्ञान, तप, चारित्र, संयम, शुभ-ध्यान, सम-भाव ए सर्व गुण जगत् पूज्य हैं। सो इन गुण रतन ठगवेकूं इन्द्रिय-सुख चोर रूप हैं। तातैं जो अपने धर्म गुण को बचायवे की चाहि होय तौ इन्द्रिय-भोगकूं धर्म के काल में नहीं सेवना योग्य है। आगे इष्ट-वियोग के दोय भेद हैं, सो बतावैं हैं—

गाथा—जुगभे यंठ वियोगो, इकासो इग होय णय आसो। थिति खय विणासउ, आसय जे भिण गमण उ अण ठांणय॥११०॥

अर्थ—जुगभे यंठ वियोगो कहिये, इष्ट-वियोग के दोय भेद हैं। इकासो कहिये, एक आशा सहित। इग होय णाय आसो कहिये, एक बिन आशा थिति खय कहिये, स्थिति के क्षय भए। विणासउ कहिये, सो बिन आशा। आसय जे कहिये, आस सहित जो। भिणगमण उ अण ठांणाय कहिये, और स्थान जानेकूं भिन्न होय गमन करै। भावार्थ—संसार विषैं इष्ट वस्तु चेतन-अचेतन इनका वियोग होय है। ताके दोय भेद हैं। सो ही कहिए हैं। चेतन इष्ट जे माता-पिता, भाई, पुत्र, स्त्री, हाथी, घोटकादिक चेतन पदार्थ। इनके वियोग के दोय भेद हैं। एक तौ आशा सहित वियोग है और एक आशा रहित वियोग है। तहां जिस चेतन पदार्थ की आयु-स्थिति पूरण होय करि जो आत्म पर्याय छोड़ि परलोक कों गया सो अब यातैं वियोग भया सो अब फेरि मिलने की आशा नाहीं। ए तो आशा रहित वियोग है और कोई अपना इष्ट एक स्थान तैं भिन्न होय बिदा मांगि परदेशकूं गमन किया सो ए आशा सहित वियोग है। यातैं मिलने की आशा है। ऐसे वियोग के दोय भेद हैं। सो मोह सहित जीवन कैं आशा सहित वियोग में तो अल्प दुःख होय है और आशा रहित वियोग में बड़ा दुःख होय है और अचेतन पदार्थ, रतन आभूषण, वस्त्र मन्दिरादिक काहू कौं मांगे दिए होंय तथा कर्ज के निमित्त काहू कों धन दिया होय। इत्यादिक वातन करि धन का वियोग होय सो आशा सहित वियोग है। या धन के आवे की अभिलाषा है ताकी अल्प चिन्ता है और जो धन अचेतन वस्तु चोरी गई होय, अग्नि में जली होय। काहू गिरासियादि जोरावर ने खोसि लई होय इत्यादिक स्थान में गई ताके आवे की आशा नाहीं। सो निराशा वियोग है। याका विशेष दुःख होय है। ऐसी जगत् जीवन की रीति है और जे विवेकी सम्यग्दृष्टि पुण्य-पाप

दशा के जाननहारे हैं। तिनकैं दोऊ ही दशा के वियोग में दुःख नाहीं है। सदैव समता-रस का भोगनहारा धर्मात्मा, सो भले प्रकार जानै है कि जो इष्ट अरु अनिष्ट दोऊ ही वस्तु विनाशिक हैं, कर्म के आधीन हैं। अपनी स्थिति के प्रमाण रहैं हैं। जो भली वस्तु अपने पुण्य के उदय मिलै सो भी अपनी स्थिति प्रमाण रस देय विनश जाय है। स्थिति पूरी भए देव इन्द्र की राखी भी नहीं रहै और अनिष्ट वस्तु का मिलाप पाप के उदय तैं होय। सो ए काहू की घेरी जाती नाहीं अपनी स्थिति पूरण किए जाय। सो जे भोले मोही पर-वस्तु कों अपनी करि दृढ़ राखनेहारा जीव तौ इष्ट के वियोग में महादुःखी होय है और सांची दृष्टि के धारी परकौं पर जाननहारे तिनकौं खेद-भाव नाहीं होय। आगे जैसी परिणति विषय कषाय में सांची होय लागै है, तैसे ही धर्म विषय लागै तौ कहा फल होय? सो बतावैं हैं—

गाथा—जे मण विसय कसायो, जेहो लगाय धम्म कज्जाए। तउ लव काल णरंजण, इंदो अहमिन्द सयल मगलाहो ॥१११॥

अर्थ—जे मण विसय कसायो कहिये, जे मन विषय-कषाय में लगै। जेहो लगाय धम्मकज्जाए कहिये, तैसे धरम कारज में लगावै। तउ लव काल णरञ्जण कहिये, तौ थोरे ही काल में निरञ्जन होय। इन्दो अहमिन्द सयल मगलाहो कहिये, इन्द्र अरु अहमिन्द्र सम्पूर्ण के सुख सहज ही राह में प्राप्त होंय। भावार्थ—जीवन की संसार विषैं अनेक परिणति है। सो अनादि काल का भूल्या ये जीव, धर्म के स्वाद कूं नहीं जानै। अनन्तकाल का विषय-कषाय मोहित जीव, गति-गति में भ्रमणनेहारा प्राणी, इन्द्रिय-सुख कूं बहुत चाहै है। परन्तु जगवासी जीव का चित्त, जैसे—विषय-कषाय में रञ्जायमान होय, एकाग्र लागै है। तैसा ही यदि धर्म विषैं एकचित्त होय लागै, तौ अल्पकाल में ही सिद्ध-निरञ्जन-पद पावै। तहां अनन्तकाल सुखी रहै और इन्द्र-पद, अहमिन्द्र-पद जो नव-ग्रैवेयक, नव-अनुत्तर, पञ्च-पञ्चोत्तर—इन कल्पातीत देवन के सुख तौ सहज ही राह में आय, प्राप्त होंय हैं। तातैं विवेकी जीवन कों विषय-कषाय तजि धर्म विषैं लागना योग्य है। आगे ऐसा कहैं हैं जो कृपण अपने तन कों ठगै है—

गाथा—किप्पण णिज तण वंचय, वंचय सुयपणण जणकतीए मित्तोय। तण दे तण णह दाणो, धम्म रहीयो मित्य काय सम जीवो। ११२

अर्थ—किप्पण णिज तण वञ्चय कहिये, सूम अपने शरीर कों ठगै है। वंचय सुयपणाण कहिये, अपनी

जननी कौं ठगै। जराक कहिये, पिता। तीए कहिये, स्त्री। मित्तो कहिये, मित्र। इनकौं ठगै है। तणदे तणाणह दाणो कहिये, तन देय परन्तु तृण का दान नहीं देय। धम्म रहीयो मित्य काय सम जीवो कहिये, धर्म करि रहित जीव मृतक के शरीर समानि है। भावार्थ—जे जीव महाकृपण मन के धारी सूम हैं। सो अपने तन कौं आदि लेय सर्व कुटुम्ब कौं ठगैं हैं। सो ही बताइये है। अपने तन निमित्त अल्प-भोजन रस-रहित खाय, पेट में भूखा रहै। लोभी उदर-भर भोजन नहीं करै, भूख सहै। शीत-काल में तनपै मोटा वस्त्र सो भी अल्प, साता तैं सम्पूर्ण तन नहीं ढकै, शीत की वेदना सहै। घास लकड़ी जला कर तातैं तन तपाय, शीत-काल पूर्ण करै, बहुत कष्ट सहकैं दिन बितावै। दाम-दाम जोड़ि साता मानै। ऐसे तन कूं कष्ट देय। जा तन तैं भार बहि-बहि, मजूरी कराय धन कमाया, ताही तन कौं नहीं पोषै। पेट भर भोजन नहीं देय। ऐसा लोभी अपने तन कूं ठगनेहारा कहिये और पुत्र है सो भूख का मरचा रुदन करै। और के बालक अच्छा खाय-पहरैं; तिनकौं देखि याकै पुत्र यापै अच्छा खान-पान माँगैं-तरसैं, परन्तु ए लोभी दया रहित भोजन नहीं देय, तब पट-भूषण कहां से पावैं। ऐसे ए सूम, पुत्र कूं ठगनेहारा कहिए और या सूम की माता ने, नव मास पेट में राखा था। ऐसी माता, पुत्र पै भला भोजन-वस्त्र माँगै। कहै हे पुत्र! अपने घर में धन अटूट है। अरु तूं हम कौं पेट भर अन्न भी नहीं देय। सो हे पुत्र! हम ऐसा किसकूं कहैं? हमकौं भूख रहै है, शीत वेदना रहै है, अग्नि तैं ताप, दिन-रात काटैं, सो तोहि दया नाहीं आवै है? ऐसे वचन माता के सुनि कैं सूम अगल-बगल हो जाय। सुनि-अनसुनी करै। परन्तु दाम एक भी नहीं देय। सो माता का ठगनहारा कहिए और इस सूम का पिता, सो ताने बड़े-बड़े कष्ट सहकैं, द्वीप-सागरन उद्यान-नगर-देशन में गमन करि-करि अनेक भूख-प्यास सहकैं, पापारम्भ ठानि अनेक द्रव्य उपार्ज्या। जब जानी कि मेरो पुत्र नाहीं, सो धन घर सोहता नाहीं। तब पुत्र बिना, धन-सम्पदा वृथा जानता भया। तब पुत्र के निमित्त अनेक कुदेव-कुभेष पूजे। अनेक मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र, करि-करि पापारम्भ बांध्या। और-और व्याह किये। अनेक स्त्री परन्या। तब कोई कर्म जोग तैं एक पुत्र भया। तब पिता बहुत सुख किया। याचकिन कूं मन-वांच्छित दान दिये। पुत्र जन्म का बड़ा उतसव किया। पीछे अनेक भले-भोजन लाय पुत्र कूं दिया। अनेक पट-भूषण देय, लाड़िला राखा। ऐसे जतन करि बढ़ाया, तरुण किया। आप

केतेक दिन में वृद्ध भया। तन की शक्ति घटी। पुत्र बालक था सो तरुण भया। तब पुत्र का व्याह करि घर का धनी कर्‍या। सर्व घर का धन धान्य पुत्र ने पाया। अब पिता का तन, दीन भया। इन्द्रिय बल घट्या। तब पुत्र पै भला भोजन माँगै, सो नहीं देय। वस्त्र मांगै, नहीं देय। देय तो तुच्छ देय या बहकाय देय। सो अपयश की मूर्ति, लोभी पुत्र, पिता का ठगनेहारा कहिये और अपनी स्त्री, भला भोजन-वस्त्र-आभूषण मांगै। कहै हे पति! औरन के घर की स्त्री देखो, भला खाय-पहरैं हैं। अरु तुम्हारे घर में बड़ा धन है अरु हमारा यह हवाल है। जो अन्न, तन कौं तो देय। ऐसे दीन वचन स्त्री कहै। परन्तु यह लोभी स्त्री कूं भी न देय। सो स्त्री का ठगनेहारा कहिये और अपने मित्रन की मजलिस में जाय, सो उनका धन तो आप खाय आवै। अरु अपना धन मित्रन कूं नहीं खुवावै। सो मित्रन का ठगनेहारा कहिये। ऐसा कृपण, अशुभ परिणति का धारी, दया-भाव रहित है। ए कठिन उर का धारी सूम, सो मरै, अपना तन का घात करै, परन्तु दान के निमित्त घास का तिनका नहीं देय। ऐसा सूम, निर्लज्ज, दुर्भागी, निन्दा का पात्र, धर्म भावना रहित, जीवित ही मृतक समानि जानना। भावार्थ—ऐसे इस जीव का जीवना वृथा है। ए सूम जैसा जीया तैसा न जीया। आगे भिक्षुक है सो मांगने के मिस करि, मानू घर-घर उपदेश ही देय है। ऐसा बताइये है—

गाथा—भिक्षक घय-घय वोधय, भो सत पुंसाह देह धण दाणं। विण दीए मम जोवो, लहुवण वार-वार जाचंती ॥११३॥

अर्थ—भिक्षक घय-घय वोधय कहिये, मँगता घर-घर उपदेश देय है। सो सतपुंसाह कहिये, भो सत्पुरुष हो! देय धन दाणं कहिये, धन कौं दान में देओ। विण दीए मम जोवो कहिये, बिना दिये मोकों देखो। लहुवण कहिये, मैं तनक-सा होय। वार-वार कहिये, घड़ी-घड़ी। जाचन्ती कहिये, मांगों है। भावार्थ—ए रङ्क जो भिक्षा मांगनहारे-मंगता, घर-घर विषैं भूख के मारे याचते फिरैं हैं। सो आचार्य कहैं हैं। ए रङ्क आप जाँचैं नाहीं हैं। मानू कृपण, कठोर चित्त के धारी, दया रहित जीवन कूं अपनी दशा दिखाय, उपदेश ही देय हैं। तिनके निमित्त ए भिक्षा मांगनेहारे घर-घर में ऐसा कहते फिरैं हैं। हे धर्मात्मा पुरुष हो! तुम्हारे पास धन है सो ताकौं दान में लगाओ; दान कूं करौ। नहीं तौ पीछे हमारी-सी नाईं पछतावोगे।

बिना दान दिये, हमको देखो। हमने पूर्व भव में धन पाया, परन्तु दान नहीं दिया। सो अब या भव में पेटभर भोजन नाहीं। तन पै ढाँकने कूं वस्त्र नाहीं। महाअपमानित भये, दारिद्र्य के जोग करि दीन होय, रङ्क भये घर-घर अन्न के दाना याचैं हैं, तौ भी उदर नाहीं भरै है। सो हे सत्पुरुष हो ! हमने या बात सत्य मानी। जो लौकिक में ऐसी कहैं हैं कि जो दिया सो पावै, बिना दिये हाथ नहीं आवै। सो अब हमने निश्चय जानी प्रतीति, आई कि जो हमने पूर्व-भव में नहीं दिया, तातैं लाचार-असहाय होय बारम्बार कहिये, घड़ी-घड़ी याचैं हैं तथा वार-वार कहिये, घर-घर के वारने नगर में माँगते फिरैं हैं तथा बार-बार कहिये, हमारा बाल-बाल अशीष देय भिक्षा मांगैं है तथा बार-वार कहिये, अपने घर तैं बाहिर याचैं हैं तथा बार-बार कहिये, बायर-बायर करि पुकारैं, शोर करि याचैं हैं। तौ भी उदर नहीं भरै है तथा वार-वार कहिये, नीर-नीर प्यावो, मारे प्यास के प्राण जांय हैं। सो पानी पियावो, पानी पियावो। ऐसे दीन भये तृषा के दुःख तैं पुकारैं हैं सो पाप के उदय, कोई जल भी नहीं देय। ऐसे हम बिना दिये, कहां तैं पावैं ? महादुःखी भये फिरैं हैं। तातैं हे भव्य हो ! बिना दान दिये, हमारो-सी नाईं दुःख पावोगे। अरु हमारी नाईं, पीछे पछताओगे। तातैं अब कछु दान देने की शक्ति होय, तो दान करतैं मति चूको। ऐसे ए रङ्क हैं सो भिखारी का भेष करि, मानो उपदेश ही देंय हैं। या भांति भिखारी का दृष्टान्त देय, दान का मार्ग बताया। तातैं जो विवेकी हैं सो अवसर पाय, तिनकूं दान देना योग्य है। ११३। आगे सर्वज्ञ-केवली तैं लगाय सम्यग्दृष्टि के अरु मिथ्यादृष्टि के वचन-उपदेश विषैं, अन्तर बतावैं हैं—

गाथा—जिण गण मुण वच सावय,अतसय जुय वयण होय समदिट्ठी। मिच्छो वच विण अतसय,इम णिप्प रंकेय वयण भेयाय।११४

अर्थ—जिण कहिये, केवली। गण कहिये, गणधर। मुण कहिये, मुनीश्वर। सावय कहिये, श्रावक। वच कहिये, इनके वचन। अतसय जुय वयण कहिये, अतिशय सहित वचन। होय समदिट्ठी कहिये, ए सम्यग्दृष्टि हैं। मिच्छो वच कहिये, परन्तु मिथ्यादृष्टि के वचन। विण अतसय कहिये, बिना अतिशय हैं। इमि कहिये, जैसे। णिप्प कहिये, राजा। रंकेय कहिये, रंक के। वयण भेयाय कहिये, वचन का भेद है। भावार्थ—जे वचन अतिशय सहित होंय, सो वचन तो सत्यपणे कूं लिए हैं। तातैं तिन वचन का धारण किये तो तत्त्वज्ञानी होय है और जे वचन अतिशय रहित होंय, तिन वचनों तैं तत्त्वज्ञानी नहीं होय। सो ही कहिए है। जो केवलज्ञानी सर्वज्ञ

बुरा करवे का सहज स्वभाव होय। महादुष्ट परिणामी होय। स्वामी-द्रोही होय। माता-पितादि गुरुजन की आज्ञा तैं विमुख होय। अविनयी होय और देव, गुरु, धर्म की आज्ञा तैं प्रतिकूल होय। राज विरोध क्रिया का करनहारा होय। जुआ, आमिष (मांस), मदिरा, वेश्या घर गमनी, जीव घाती, चोर, पर-स्त्री लम्पटी इत्यादिक सप्तव्यसन कर रञायमान पापाचारी अनेक दोषन की मूर्ति ऐसे अशुभ-भाव जाके होंय। सो इन लक्षण सहित जे जीव भाव सो कृष्ण लेश्या है तथा स्वेच्छाचारी स्वच्छन्द होय तथा धर्म क्रिया विषैं प्रमादी होय। मन्द बुद्धि, आलसी शिथिल शब्दी होय पर के किये गुण का लोपनहारा कृतघ्नी होय विशेष ज्ञान कला चतुराई करि रहित होय। पंचेन्द्रिय विषय का लोलुपी होय। महामानी होय। अत्यन्त गूढ़ चित्त का धारी होय मायावी होय जाके चित्त की ओर नहीं पावै। इत्यादिक चिह्न कृष्ण लेश्या के जानना। इति कृष्ण लेश्या। १। आगे नील लेश्या बहुरि जाकैं बहुत निद्रा होय पर के ठगवे की कला चतुराई में प्रवीण होय तथा और सीखवे की वांच्छा होय और अत्यन्त लोभ के उदय सहित धन-धान्यादिक इकट्ठे करिवे कों अनेक आरम्भ करता होय और काम चेष्टा करि बहुत ही विकल होय इत्यादिक लक्षण जाके होंय सो नील लेश्या है। इति नील लेश्या। २। आगे कापोत तहां औरनकौं दोष लगावै का सहज स्वभाव होय। अनेक नय जुगति देय पर की निन्दा करनहारा होय। जो हँसि-हँसि पराया बुरा करै। पराई निन्दा करै चुगली करै। ऊपर तैं विनयवान् होय अन्तरङ्ग में पराया बुरा चाहै। बुरा करवे का उपायी होय। परकौं भला खाता-पीता पहरता देखि आप खेद पावै। परकों सुखी देख नहीं सुहावै। पर के दुःख करवेकौं अनेक उपाय करता होय। सदैव जाका चित्त शोक रूप रहता होय। जाके निरन्तर भय रहता होय और पर का अपमान करि सुख मानता होय। अपने मुखतैं अपनी बहुत प्रशंसा करता होय। आप जैसा पापी चोर असत् मारगी और कौं जानि कोई का विश्वास नहीं करै। आपकी बड़ाई करै खुशामद करै ताकौं राजी होय धन देवै। अपने पराये हेतु कौं नहीं समझै। युद्ध विषैं मरण की जाकी इच्छा होय इत्यादिक चिह्न जाके होंय सो कापोत लेश्या जानना। इति कापोत लेश्या। ३। आगे पीत लेश्या तहां कार्य-अकार्यकौं समझै। खाद्य-अखाद्य कौं भी जानैं। भोगवे व नहीं भोगवे योग्य वस्तुकौं जानैं। षट् द्रव्य गुण पर्याय का जाननहारा होय। सर्व पदार्थन में समता होय। पूजा, जप, तप, दान विषैं प्रीतिमान् होय। दया-धर्म चलावे का

अधिकारी होय। मन-वचन-काय करि कोमल होय। इत्यादिक लक्षण सहित होय सो पीत लेश्यी जीव है। इति पीत लेश्या ।४। आगे पद्म लेश्या तहां भद्र परिणामी होय। त्यागी होय। भले कार्य रूप भाव होंय। महाव्रत-अणुव्रत का वांच्छक होय। सिद्ध क्षेत्र तीर्थ वन्दना का अभिलाषी होय। पञ्च-परमेष्ठी की पूजा विषैं उत्सववन्त होय। कष्ट उपद्रव भये धीर बुद्धि होय। देव-गुरु आदि का भक्त होय। इत्यादिक शुभ चेष्टा सहित जाके लक्षण होंय सो पद्म लेश्यी है। इति पद्म लेश्या। ५। आगे शुक्ल लेश्या—तहां पक्षपात करि काहूँ कूं बुरा नहीं कहै। सर्व जीवन पै दया करि मैत्री-भाव राखै और इष्ट-अनिष्ट में बहुत राग-द्वेष नाहीं करै और कुटुम्बादिक तैं अल्प राग करै। धर्मी जीवन विषैं प्रीतिमान् होय। इत्यादिक लक्षण सहित होय सो शुक्ल लेश्यी है। इति शुक्ल लेश्या ।६। आगे लेश्यान के भाव का स्वरूप कहैं है। तहां लेश्या द्रव्य और भाव करि दोय भेद रूप हैं तहां जैसा शरीर का वर्ण होय सो तो द्रव्य लेश्या है। जीव के जैसे भाव होंय सो भाव लेश्या है। सो तिन भाव लेश्या का दृष्टान्त दिखाय भावन की लेश्या प्रगट करैं हैं। तहां एक वन में लकड़ी काटनहारे षट् पुरुष आये। सो तिन सबन के पास कुठार हैं। सो एक आम के वृक्ष के नीचे घनी छाया देख बैठ गये। तब एक पुरुष बोल्या कि भाई, भूख लागी है। तब तिनमैं एक कृष्ण लेश्यी जीव बोला कि भाई जो अपने पै कुठार हैं। सो इस आम पै जो फल लगे हैं। सो लग जावो। मारे कुठारन के आमकूं पीरा तैं काटो सो सर्व के पेट भरैं। ए तौं कृष्ण लेश्यी है। १। दूसरा बोल्या जो पीड़ा तैं काहेकूं काटो वृथा वृक्ष का खोज मिट जायगा। तातैं आधा एक तरफ तैं बड़ी साखा काटो सो सब खांयगे। अपन लायक बहुत हैं। ए नील लेश्यी है। २। पीछे तीसरा बोल्या जो आधा गिराये सूं वृथा वृक्ष की शोभा जायगी तातैं एक छोटी शाखा काट लेऊ। सो अपनकौं बहुत हैं। ऐसा कापोत लेश्यी है ।३। तब एक बोल्या, जो शाखा काहे कौं काटो। झूमके-झूमके तोड़ो सो खाय लेय हैं। ए पीत लेश्यी है। ४। तब पञ्चम पुरुष बोल्यो जो झूमकेन में कच्चे-पक्के सब ही हैं। तातैं पके आम तोड़ लेउ और अपनी क्षुधा मैटो। ए पद्म लेश्यी जानना। ५। तब षष्ठ पुरुष बोल्या। हे भाई हो! इस वृक्षकूं काहे कौं सतावो हो भूमि विषैं अपने खाने योग्य तो बहुत पड़े हैं। सो पके-पके खाय अपनी भूख मिटावो। ए शुक्ल लेश्यी है। ६। ऐसे षट् प्रकार भाव भेद जानना। इन परिणामन करि अपने तथा पर के परिणामन की परीक्षा करि लेश्या के अन्तरङ्ग भाव

जानना। सो अशुभ भावन के वेग कूं पहिचान, तजना योग्य है। ऐसे भेद ज्ञानी जड़-भाव तजि चैतन्य के विकल्प जानि अशुभता तजि, शुभभाव रूप रहना विचारैं हैं। इति षट् लेश्या। आगे नव भेद योनि कथन—

गाथा—संवत्त सीत सचितो, मिस्सो सेताण जोणि णव भेयो। संखय कुम्मो वंसय, तीए गम्भो समुच्छ उववादो ॥ ११६ ॥

अर्थ—संवत्त कहिये, संवृत। सीत कहिये, शीत। सचितो कहिये, सचित्त। मिस्सो कहिये, मिश्र। सेताण कहिये, इन तीनन की प्रतिपक्षी। जोणि णव भेवो कहिये, इस प्रकार योनि के नव भेद हैं। संखय कहिये, शंखा योनि। कुम्भो कहिये, कूर्म योनि। वंशय कहिये, वंशा योनि। तीए गम्भो कहिये, ए तीन भेद गरभज के हैं। समुच्छ कहिये और सम्मूर्छन योनि। उववादो कहिये तथा उपपाद योनि। ऐसे योनि भेद कहे। सो प्रथम गर्भज के तीन भेद कहिए हैं शंखा योनि, वंशा योनि, कूर्म योनि—ए तीन गर्भज के और नव भेद ऊपर कहे और सम्मूर्च्छन उपपाद सो इन सबका स्वरूप सामान्य-सा कहिए है तहां तीन भेद गरभज के हैं। सो तिन योनि में कौन-कौन उपजैं? सो कहिए है। तहां जा स्त्री की शंखावर्त नाम शंख के आकार योनि होय तामैं पुरुष का वीर्य नहीं ठहरै। सो स्त्री जग में बन्ध्या कहावै। १। वंशपत्र योनि जा स्त्री की होय तामैं सामान्य पुरुष उपजैं। पदवी धारक तीर्थङ्करादि महान पुरुष नहीं उपजैं। २। कूर्मोन्नत योनि जो कछुवा के आकार जा स्त्री की योनि होय तामें तीर्थङ्करादि महान् पुरुष उपजें हैं। सामान्य पुरुष इस योनि में नाहीं उपजैं। ३। ए तीन भेद गर्भज के हैं। तहाँ माता का श्रोणित व पिता का वीर्य ए दोऊ मिल गर्भसूं उपजै, सो गर्भज कहिए। माता-पिता के निमित्त बिना जाकी उत्पत्ति होय सो सम्मूर्च्छन कहिए सो बादर सम्मूर्च्छन जीवन की उत्पत्ति तो पृथ्वी आदि के आश्रय तैं होय और सूक्ष्म जीवन की उत्पत्ति बिना सहाय आकाश में होय। सो ए सूक्ष्म सम्मूर्च्छन जन्म जानना। देवन की उपपाद-शय्या रतनमयी कोमल सुगन्धित शय्या तामें देवन का जन्म होय। नारकीन के उपजने के स्थान महादुर्गन्धित, घिनावने अनिष्ट ऊँट के मुखाकार नरक-क्षिति के लुमते घटाकारवत् स्पर्श कूं धरै, सो नारकी के उपजने का स्थान है। ऐसे देव नारकी का उपपाद जन्म है। ए तीन भेद जन्म गर्भज सम्मूर्च्छन उपपाद के कहे। अब नव भेद योनि का भाव कहिए है। तहां अन्य जीव करि ग्रहै जे योनि स्थान जैसे—पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च मनुष्य उपजने की योनि सो सचित्त योनि है। १। अन्य जीवन करि नहीं ग्रहै ऐसे पुद्गल स्कन्ध की योनि जैसे—देव

नारकीन की सो अचित्त योनि है। २। केईक योनि स्थान सचित्त-अचित्त मिले स्कन्ध की हैं, सो मिश्र योनि स्थान है। ३। उपजने के पुद्गल स्कन्ध शीत होंय जैसे—सातें व छठें नरक के नारकी की शीत योनि है। ४। उपजने के योनि स्थान के पुद्गल स्कन्ध उष्ण होंय। जैसे—तीजे वा चौथे नरक पर्यन्त नारकीन के उपजने के उष्ण योनि स्थान हैं।५। अरु उपजने के स्थान शीत, उष्ण दोऊ स्कन्ध रूप होंय सो मिश्र योनि स्थान हैं।६। जीव उपजने का योनि स्थान प्रगट नहीं दीखै सो संवृत योनि स्थान है। ७। उपजने के योनि स्थान प्रगट दीखें सो विवृत योनि स्थान है। ८। जीव उपजने के योनि स्थान के पुद्गल स्कन्ध कछु प्रगट होंय कछु अप्रगट होंय सो मिश्र योनि स्थान है। ९। ऐसे सामान्य भेद नव कहे, विशेष चौरासी लाख हैं। इति योनि स्थान। आगे इन योनिन तैं उपजे जीव तिनके कौन-कौन के शरीर में निगोद नाहीं सो कहिए हैं—

गाथा—केवलकायमहारो, सुरणारय तण भोमि जल तेऊ। वाय वसु इव ठांणय, रहि नहि णिगोय जिण भणियं ॥ ११७ ॥

अर्थ—केवली के शरीर में, आहारक शरीर में, देवन के शरीर में, नारकीन के शरीर में, पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजकाय और वायुकाय—इन आठ स्थानन में निगोद नाहीं। ऐसा जानना। आगे इन आठ जाति के जीवनतैं शौच नहीं पलै, ऐसा बतावैं हैं—

गाथा—रोगी लोलु दलद्दो, वुधहीणो कुसंग होय मद पाणो। परवस आलस सहितो, एवसु आदाय सोच णह पालय ॥११८॥

अर्थ—रोगी, इन्द्रियन का लोलुपी, दरिद्री, बुद्धि हीन, कुसंगी, मद पायी, पराधीन और आलसी—इन आठ जाति के जीवन तैं शौच नाहीं पलै। भावार्थ—रोगी तो अति वेदना के आगे खाद्य-अखाद्य, योग्य-अयोग्य नाहीं विचारै। अपवित्र-पवित्र नहीं विचारै। मारे वेदना के जो मिलै सो ही खाय। मूढ़ वैद्य जैसा भक्ष्य-अभक्ष्य कहै, सो खाय। तातैं शौच नाहीं बनै। १। जो इन्द्रियन का लोलुपी होय। सो खाद्य-अखाद्य, योग्य-अयोग्य नहीं विचारै। जैसे बनै तैसे अपने विषय का पोषण करै। अपने कुल योग्य खान-पान का विचार नाहीं। तातैं तिन लोलुपी तैं शौच नाहीं पलै। २। जे पूर्व पाप के उदय करि भये जो दरिद्री, सो मारे दरिद्री के केवल उदर पूरण ही करचा चाहैं। सो योग्य-अयोग्य नाहीं विचारैं जैसे बनैं तैसे उदय भरचा चाहैं। ताके तृष्णा अधिक सो तृष्णा तो पुण्य तैं पूरी जाय अरु पुण्य, आगे उपार्ज्या नाहीं। तातैं पुण्य रहित जीव जैसे-तैसे पेट भरै सो इस दरिद्री

से शौच नाहीं पलै। ३। बुद्धि रहित होय ताकैं योग्य-अयोग्य के विचार का विवेक नाहीं। ज्ञान की मन्दता के योग करि पशू समानि खान-पानादि करै रात्रि दिवस का भेद नाहीं, भक्ष्य-अभक्ष्य का ज्ञान नाहीं तातैं बुद्धिरूपी सम्पदा करि रहित हीन-बुद्धि जीव तैं, शौच नाहीं पलै। ४। और कुसंग के धारनहारे, सप्तव्यसनी जीवन के स्नेही, तिनकी संगति तैं, स्नेह के बन्धान करि तिनमें तिन जैसा ही खान-पान करैं। हीन कुली, हीन ज्ञानी, सप्तव्यसनी, जैसा अनाचार रूप खान-पान करें। तैसा ही तिनकी संगति में आपकौं करना पड़ै। तातैं कुसंगीन तैं शौच नाहीं पलै। ५। मदिरापायी कूं सुध-बुद्धि नाहीं। खान-पान के योग्य-अयोग्य खाद्य-अखाद्य का ज्ञान नाहीं। जैसे—खपत-बेसुध होय, तैसे ही मदिरापायी बेसुध है। तातैं मदिरापायी तैं शौच नाहीं पलै। ६। और पराधीन होय, सो पराई मर्जी सौं चाल्या चाहै। आप दयावान संयमी होय, अरु संयमी का सेवक होय। तौ आपके तौ संयम पालवे का काल है। यदि स्वामी संयमी न होय, तो जा समय सरदार ने कही, यह आरम्भ करो। सो नहीं करै तौ आज्ञा भङ्ग भये, चाकरी बनै नाहीं। तातैं असंयम रूप आरम्भ ही कार्य, संयम के काल में करना पड़ै। इत्यादिक पराधीनता तैं शौच नाहीं पलै। ७। और जे आलसी-प्रमादी होंय, सो जैसा मिलै तैसा भक्षण करैं। प्रमाद के वशीभूत खाद्याखाद्य याग्यायोग्य नहीं विचारैं। तातैं जे आलसी-प्रमादी होंय, तिनसौं शौच नाहीं पलै।८। ऐसे और ग्रन्थ के अनुसार कह्या है। जो इन आठ जाति के जीवनतैं शौच नाहीं सधै। तातैं इनकौं धर्म-लाभ नहीं होय और शुभाचार इनके हृदय में तिष्टता नाहीं। ऐसा जानि विवेकी जीवनकौं, इन आठ जातिकै निमित्तन तैं रहित होय, सुआचार रूप रहना योग्य है। आगे निमित्त ज्ञान के आठ भेद हैं सो कहिये हैं—

गाथा—अंग भोम अंतरखऊ, विजण सुर छिन्य लक्खणो सुपणऊ। इव वसु भेयव भणियं, णिमित्त णाणाय देव सर्वज्ञो ॥११९॥

अर्थ—अङ्ग कहिये, शरीर। भोम कहिये, पृथ्वी। अन्तरखऊ कहिये, अन्तरीक्ष। विजण कहिये, व्यंजन निमित्त। सुर कहिये, शब्द। छिण्य कहिये, छिन। लक्खणो कहिये, लक्षण। सुपणऊ कहिये, स्वप्न। इव वसु भेयव कहिये, ए आठ भेद। भणियं कहिये, कहे हैं। णिमित्त णाणाय कहिये, निमित्त ज्ञान के। देव सर्वज्ञो कहिये, सर्वज्ञ देव नै। भावार्थ—निमित्त ज्ञान के आठ भेद हैं सो ही कहिए हैं। मनुष्य-पशु के तन के अङ्गोपाङ्ग देख, ताके शुभ-अशुभ बताय देना। जो याके एक नेत्र नाहीं, तो ऐसा फल। दोऊ नेत्र नाहीं, ताका ऐसा फल।

मूके, लूले, टूटे, कूवरे, वावने का फल कहै। जाके तन का रस खट्टा तथा मिष्ट व कड़ुवा होय इत्यादिक जैसा तन का रस होय, सो फल कहै तथा तन का रुद्र, श्याम व लाल वर्ण होय, ताका फल कहै इत्यादिक शरीर के लक्षण देखि शुभ-अशुभ का फल सुख-दुःख कहै। सो अङ्ग-निमित्त ज्ञान है। १। और भूमि विषैं जहां-जहां जो वस्तु होय, सो जानै। जो इस जगह रतन-खानि है। यहां कञ्चन-खानि है। यहां विभूति है। यहां एते खोदो, अस्त्र समूह है, ताकौं जानैं तथा इहां जल है। इहां पाखान है। इहां धन है। इत्यादिक भूमि में जहां-जहां शुभ-अशुभ चिह्न होंय, तिनकौं जानें, सो भूमि निमित्त ज्ञानी कहिये। २। और आकाश के विषैं बादर पटल, घन, गाज, बिजली चमकना, चन्द्रमा, सूरज, नक्षत्रादिक इत्यादिक तैं आकाश का शुभाशुभ चिह्न देखि, सुख-दुःख बतावै। सो अन्तरिक्ष-निमित्त-ज्ञानी है। ३। और जहां मनुष्य का शब्द सुनि शुभ-अशुभ कहैं। तहां चाण्डाल, कृषक, वैश्य, ब्राह्मण, क्षत्रिय इत्यादिक मनुष्यन के शब्द सुनि, सुख-दुःख कहैं तथा पशून के शब्द तीतुर, मोर, काक, सारस, श्वान, गृद्ध, स्यार, मार्जार, व्याघ्री इत्यादिक पशून के शब्द सुनि, शुभ-अशुभ फल बतावैं। सो सुर-निमित्त ज्ञानी है। ४। और व्यंजन जो शरीर में तिल मसा देखि, सुख-दुःख कहैं। मुख पै तिल, कर में तथा उर में मसा। पीठ में नासिका, कान, गाल, अंगुरी इत्यादि हाथ-पांव अङ्ग में तिल-मसा देखि, शुभ-अशुभ कहैं। सो व्यंजन-निमित्त ज्ञानी है। ५। और लक्षण जो शुभ चिह्न श्रीवृष, स्वस्तिक, भृङ्गार, कलश, वज्र, मछली इत्यादि शुभ तथा कोई अशुभ चिह्न इत्यादिक शुभ-अशुभ चिह्न शरीर में देखि, सुख-दुःख कहैं। सो लक्षण निमित्त ज्ञानी है। ६। और छिन्न निमित्त ज्ञान—सो कोई वस्त्रादि वस्तु कूं मूसादि जीवन कर काटी देखि, ताकरि शुभाशुभ फल कहै। सो छिन्न निमित्त ज्ञानी कहिये।७। और स्वप्न—जो शुभाशुभ स्वप्नकौं जानि, ताका सुख-दुःख कहै। सो स्वप्न निमित्त ज्ञानी है।८। ऐसे निमित्त ज्ञान आठ प्रकार कह्या। इहां सामान्य कह्या। विशेष अन्य ग्रन्थनतैं जानना। आगे ज्ञान के आठ अङ्ग वताईये है—

गाथा—विंजन अर्थ समग्गह, सद्दार्थोभय कालवेणोय। उपधाण विणय, समवय, बहुमाण गुवादि वसु अंगय॥ १२०॥

अर्थ—विंजन कहिये, व्यंजनोर्जित। १। अर्थ समग्गह कहिये, अर्थ समग्रह। २। सद्दार्थोभय कहिये,

शब्दार्थ उभय पूर्ण । ३ । काल धेणोय कहिये, यथा काल अध्ययन करना । ४ । उपभ्राण कहिये, उपध्यान समंधित । ५ । विणय समधय कहिये, विनय समर्धित । ६ । वहुमाण कहिये, बहु मान समर्धित अङ्ग । ७ । गुवादि कहिये, गुरुवादि निह्नव अङ्ग । ८ । वसु अङ्गय कहिये, ए ज्ञान के आठ अङ्ग हैं । भावार्थ—जो बिना अर्थ विचारै ही पाठ का पढ़ना । तहां गाथा, काव्य, छन्द, श्लोक, पद, विनति, सामायिकादि पाठ का पढ़ना । सो याका नाम व्यंजनोर्जित अङ्ग है । १ । और जो शास्त्र तो नाहीं, परन्तु अपने उर विषैं, एकान्त बैठा, शास्त्रन का अर्थ विचार करै सो ए भी ज्ञान का अङ्ग है । याका नाम अर्थ समग्रह अङ्ग है ।२। और जहां शास्त्र, काव्य, गाथा, छन्द अर्थ सहित पढ़ै । पाठ भी पढ़ै, अरु अर्थ का भी विचार करै । सो ए भी ज्ञानी का अङ्ग है । याका नाम शब्दार्थो-भय पूरण अङ्ग है ।३। और जहां जिस काल में जैसा शास्त्र चाहिए, तैसा ही काव्य बखान करै । जैसे—प्रभात कालकौ कौन शास्त्र वांचिए ? मध्याह्न में कौन शास्त्र वांचिए । शाम कौं कौन का अभ्यास कीजिए ? रात्रि कौं कौन का अभ्यास कीजिए ? तथा बाल्य अवस्था में कौन शास्त्र का अभ्यास कीजिए ? तरुणावस्था में कौन शास्त्र का अभ्यास करैं ? वृद्धावस्था में कौन शास्त्र का अभ्यास करं ? इन आदि काल में जैसा शास्त्र चाहिए, तैसा ही विचार कैं काल-योग्य शास्त्र का अभ्यास करैं । तैसा ही उपदेश देय । सो ए भी ज्ञान का अङ्ग है । याका नाम कालाध्ययन ध्रुव प्रभाव नाम अङ्ग है ।४। और शास्त्राभ्यास निरप्रमाद होने के निमित्त उपवास-एकाशन करना, रस तजना, अल्प भोजन करना । ऐसा विचारना जो मेरे शास्त्राभ्यास में प्रमाद नहीं होय, ताके निमित्त तप करना । सो ए भी ज्ञान का अङ्ग है । याका नाम उपध्यान समंधित अङ्ग है । ५ । और जहां शास्त्र का विनय करना । वाचना, सो विशेष उत्तम विनय से वाचना । सुनना सो भी एकचित्त करि विनय तैं सुनना । उपदेश देना, सो पर-जीवन के कल्याणहेतु विनय तैं देना । शास्त्र धरना-उठावना, सो भी विनय तैं । इत्यादिक शास्त्र का विनय करना, सो ए भी ज्ञान का अङ्ग है । याका नाम विनय समर्धित अङ्ग है । ६ । और जाके पास आपने ज्ञानाभ्यास किया होय, जातैं आपको ज्ञान की प्राप्ति भई होय, ताकी बहुत सेवा-चाकरी करना । ताकी बारम्बार प्रशंसा करना, बारम्बार ताका उपकार स्मरण करना । तांका उपकार जन्मान्तर नहीं भूलना । सदैव धर्म-पिता

जानना। इत्यादिक ज्ञान-दान देनेवारे का विनय करना, सो भी ज्ञान का अङ्ग है। याका नाम बहुमान समर्थित अङ्ग है। ७। और अपने जा गुरु के पासि शास्त्राभ्यास किया होय, ता गुरु को नहीं छिपाईये। भावार्थ—जा गुरु के पास तैं आपने ज्ञान-धन पाया होय, ऐसा जो गुरु। सो कर्म योग तैं-पीछे आपकौं विशुद्धता के योग तैं तथा तप-ध्यान करि अनेक ऋद्धि आप कौं प्रगट भई होंय। मति, श्रुत, अवधि, मनः पर्यय, ज्ञानादिक अनेक ऋद्धि प्रगटी होंय और अपना गुरु ज्ञानदाता, तिनकैं अवधि-मनः पर्यय नाहों। अरु गुरु का नाम प्रसिद्ध नाहीं। आपकौं ज्ञान वड़ा, आपका नाम जगत् में प्रसिद्ध होय, तौ भी अपने ज्ञानदाता गुरु को नहीं छिपाईये। ए भी ज्ञान का अङ्ग है। याका नाम गुरुवादि निह्नव अङ्ग है तथा आप भला सम्यक्ज्ञान मोक्ष-मार्ग के पन्थ का बतावनेहारा, पर-जीव का उपकारी, शुद्ध तत्त्व आपकूं भले रूप आवता होय, तो ताकौं नहीं छिपाइये। जो ज्ञान दया-भण्डार, दया का मारग प्रगट करनहारा, अनेक संशय नाशनेहारा, उत्तम ज्ञान, जाकौं आप जानता होय, तौ ताकौं नहीं छिपाइये। ए भी ज्ञान का अङ्ग है तथा परम कल्याणकारी, तत्व प्रकाशी कथन सहित शास्त्र, अपने पास है। सो कोई धर्मातमा पुरुष अपने में तत्त्वज्ञान होने अभिलाषी आय कहै। फलानी पुस्तक आप पै होय तौ हमको स्वाध्याय कौं हमारे मस्तक पै विराजमान करो, तौ हम पुण्य उपारजैं। तौ अपने मस्तक जे शास्त्र होंय, ताकौं नहीं छिपाइये। यह भी ज्ञान का अङ्ग है। याका नाम भी गुरुवादि निह्नव अङ्ग है। ८। ऐसे ज्ञान के आठ अंग हैं। सो धर्मातमा जीवन करि धारवे योग्य हैं। ए आठ अंग ज्ञान के जे भव्यातमा विनय सहित पालैं, सो तत्त्वज्ञान सम्पदा के धारी होंय। ऐसा जानि निकट भव्यन कौं, ज्ञान के अंगन की रक्षा करना योग्य है। आगे मुनिजनकौं ध्यान करवे के कारण दश स्थान वतावैं हैं। इतनी जायगा परिणामन की विशुद्धता विशेष बढ़ै, ध्यान की एकाग्रता विशेप होय, सो ही वताइये है। ध्यान कौं कदाचित् एकान्त क्षेत्र नहीं होय, बहुत जीवन के शब्द का कोलाहल होय, अनेक जीवन का आवना-जाना होय, तो ऐसे स्थान में परिणति चञ्चल होय। तातैं ध्यान कौं एकान्त स्थान चाहिये। एकान्त विना ध्यान की सिद्धी नाहीं होय। १। अशुद्ध क्षेत्र होय तो ध्यान लागै नाहीं, तातैं रमणीक-निर्मल क्षेत्र चाहिये, तव ध्यान की शुद्धता होय। २। और जहां काष्ठ की व चित्राम की पुतरी नहीं होंय। रंगमहल, रमणीक विछौने इत्यादिक सराग क्षेत्र नहीं होय। महाउदास, वैराग्य वढ़ने का कारण, राग

रहित क्षेत्र चाहिये, तातैं ध्यान की सिद्धि होय। ३। तथा महा पर्वतन की गुफा होय। ४। तथा उत्तुंग मनोहर, उदार पर्वतन के शिखर होंय। ५। तथा निर्मल जल करि सहित बड़े सरोवर तथा बहती गहन बड़ी नदी, तिनके तट ध्यान योग्य हैं। ६। तथा जीर्ण उद्यान, अरु महाभयानीक, मोही जीवनकूं उपजावनहारी, विकट, वृक्ष रहित अटवी, ध्यान योग्य क्षेत्र है। ७। तथा दीरघ सघन वृक्षन करि भरचा वन होय, सो ध्यान योग्य क्षेत्र है।८। और जहां अति शीत नहीं होय, ते क्षेत्र ध्यान योग्य हैं। ९। तथा जहां बहु उष्ण नहीं होय, सो क्षेत्र ध्यान योग्य है। १०। ऐसे दश क्षेत्रन में ज्ञान-वैराग्य के बढ़ाने रूप भाव होंय। धीरजता होय, क्षमा भाव होय। इत्यादिक भाव सहित ध्यान सिद्धि के क्षेत्र जानना। आगे परिणामों की विशुद्धता कूं कारण, आलोचना भाव है। सो आलोचना के अतिचार दश हैं। तहां प्रथम नाम कहिये—आकम्पन, अनमापित, दिष्ट, बादर, सूक्ष्म, शब्दाकुल छिनि बहु अविक्त तत् सेवत ऐसे ए दस अतिचार हैं। तिनका सामान्य स्वरूप कहिये है—जहां कोई मुनीश्वर कौं अपने संयम में दोष लाग्या दीखै। तब वह यतीश्वर पाप का भय खाय गुरुन पै पाप दूर करने कूं दण्ड-प्रायश्चित्त जांचता भया। सो दण्ड जांचता कबहूँ ऐसा विचार करैं जो आचार्य दीर्घ दण्ड नाहीं बतावैं तो भला है। ऐसा भय करना सो आकम्पन दोष है। १। और कोई यति कौं दोष लाग्या होय तौ अपने गुरु पै जाय अपने प्रमाद की निन्दा करै। आलोचना सहित अपना लाग्या दोष प्रगट करि गुरुपै दण्ड जांचता ऐसा विचार करै जो मेरा तन निर्बल व रोग पीड़ित है सो दीरघ दण्ड सहवे की मोरी शक्ति नाहीं। तातैं आचार्य मोकौं अल्प दण्ड बतावैं तौ भला है। ऐसे विचार का नाम अनमापित दोष है। २। और यति आपकौं कोई दोष लाग्या जानैं तौ विचारैं। जो मेरा दोष फलाने नैं देखा है तौ अपना दोष गुरु पै कहैं अपनी निन्दा-आलोचना करैं और जो अपना दोष काहू ने नहीं देखा होय तौ गुरु पै नाहीं कहैं। ताका नाम दिष्ट दोष है।३। यतीश्वर कौं कोई सूक्ष्म दोष लागा होय तौ गुरुपै नाहां कहैं। कोई बादर-बड़ा दोष लागा होय तौ मान के निमित्त और के दिखावने कौं आचार्य पै कहैं आलोचना करैं सो बादर दोष है।४। जहां मुनीश्वर कौं कोई बादर दोष लाग्या होय तौ आचार्य के पासि नहीं कहैं और सूक्ष्म दोष लगा होय तौ मान-बड़ाई लोक-प्रशंसाकौं गुरुपै जाय प्रकाशैं। अपनी आलोचना करैं। सो सूक्ष्म दोष कहिये। ५। और कोई मुनि कौं दोष लागा होय

तौ गुरुपै कहैं तौ सही; परन्तु मान-वड़ाई के अर्थ दोष छिपाय कैं कहैं। सो अपना नाम तौ नहीं लेंय। अरु गुरुपै कहैं। भो गुरो ऐसा दोष काहू मुनि पै लागा होय तौ ताका कहा दण्ड? सो कहो। ऐसे आलोचना सहित पूछना। अरु निन्दा के भय तैं अपना नाम प्रगट नहीं करना याका नाम छिनि दोष है। ६। और कोई मुनि कौं दोष लागा होय सो गुरु पै एकान्त तौ नहीं कहैं। अरु जब आचार्य बहुत मुनि श्रावकन सहित तिष्ठे होंय तब मान का लोभी अपनी प्रशंसा करावने का अभिलाषी गुरु कौं कहै तथा अनेक स्वाध्याय का शब्द होय रह्या होय तथा आचार्य उपदेश करते होंय तथा और शिष्यन का प्रश्न होय रह्या होय इत्यादिक समय देखि भरी सभा में प्रश्न-उत्तर के शोर में अपना दोष गुरुपै कहै आलोचना करै। सो गुरु ने कछु सुन्या कछु नाहीं। ऐसा अवसर देखि कहना सो याका नाम शब्दाकुल दोष है। ७। और कोई मुनि कौं दोष लाग्या होय सो गुरुपै जाय अपना दोष कहै। आलोचना करै। तब गुरु याके पाप नाशने कूं प्रायश्चित्त देंय। सो गुरु का दिया प्रायश्चित्त सुनि विचारी जो गुरु ने प्रायश्चित्त भारी वताया। तब ऐसी जानि और ही आचार्य पै जाय आलोचना सहित अपना दोष कहै। तव उनने भी दण्ड दिया ताकौं भी भारी दण्ड जानि और आचार्य के संघ में जाय आलोचना करि अपना दोष कहै। ऐसे ही जब तांई कोई आचार्य अल्प दण्ड नहीं वतावैं तव लूं अनेक आचार्यन पै जाय आलोचना करि अपना दोष कहै याका नाम बहु दोष है। ८। कोई मुनि कौं दोष लागै सो पाप के भयतैं अपना दोष प्रकाशैं तौ सही। परन्तु मान-वड़ाई लज्जा के योग तैं आचार्य कूं नाहीं कहैं। मेरा अपयश-निन्दा होयगी ताके भय तैं गुरुपै नहीं कहैं। अरु कोई आप तैं छोटे पदस्थधारी तथा आपके समानि होंय तिस मुनि कौं कहैं। ताके पास अपना दोष आलोचना सहित प्रगट करैं। सो याका नाम अविक्त दोष है। ६। और कोई मुनि कौं दोष लगा होय सो मान-वड़ाई अपयश-निन्दा के भय तैं गुरु पै नाहीं कहैं और जव कोई आप-जैसा दोष और मुनि कौं लागै, सो आचार्य कों वाकौं प्रायश्चित्त देते देखि, आचार्य कौं आप कहै। भो नाथ! इन मुनीश्वर-सा दोष मोकौं भी लागा है। सो जैसा दण्ड या मुनि कौं दिया, तैसा ही मोकौं देव। ऐसी आलोचना सहित कहना, सो याका नाम तत्सेवत दोष है। १०। ऐसे आलोचना के दश दोष हैं। सो जो अन्तरंग के धर्मातमा हैं तिनकौं अपने धर्म कौं सुधार राखना उत्कृष्ट है। इति आलोचना के दश दोष। अब आचार्य कोई शिष्य के कल्याण होने कूं

दीक्षा देंय, तो ए दश काल टालि दीक्षा देय हैं। इन कालन में दीक्षा नाहीं देंय। सो बताइये है। तहां प्रथम नाम ग्रहोपराग कहिये, जाकौं कोई अशुभ ग्रह होय, तो दीक्षा नहीं देंय। १। सूर्य ग्रहण होय। २। चन्द्र का ग्रहण होय। ३। इन्द्र धनुष चढ़या होय। ४। जाकौं उल्टा ग्रह आया होय।५। तथा आकाश बादलन करि आच्छादित होय रह्या होय। ६। तथा जिस जीव कौं महिना खोटा होय।७। तथा अधिक मास होय। ८। तथा संक्राति दिन होय। ९। क्षय तिथि होय। १०। इन दश अवसरन में भला ज्ञाता, निमित्त ज्ञान के वेत्ता आचार्य, शिष्य कौं दीक्षा नहीं देंय और कदाचित् कोई ज्ञान की मन्दता के जोग तैं इन दश कालन में दीक्षा देंय, तौ आचार्यन की परम्परा का लोप होय, निन्दा पावैं। जिन-आज्ञा का उल्लंघन करनहारा जानि, सर्व आचार्यन के संघ तैं बाहरे होंय, संघ तैं निकसैं, अपमान पावैं। तातैं ए दश काल टालैं हैं और जिन दिनों में दीक्षा होय सो बताइये है। शुभ दिन, शुभ नक्षत्र, शुभ योग, शुभ मुहूर्त, शुभ ग्रह इत्यादिक शुभ काल में दीक्षा होय है और दीक्षा कौन-कौन गुण सहित कौं होय है। सो ही बताइये है। बुद्धिमान् होय विशुद्ध कुल होय। गोत्र शुद्ध होय। शरीर के अंगोपांग शुद्ध होंय। तहां कांणा, अन्धा, लूला, ठूंठा, बांवना, कूबड़ा, रोगी, बधिर इत्यादिक दोष रहित होय, सुन्दर मूरत होय। मन्द कषायी होय। जाकैं पंचेन्द्रिय-भोगन तैं अरुचि होय। मोक्षाभिलाषी होय। शुभ चेष्टा सहित प्रकृति होय। शुभाचारी होय। हाँसि-कौतूहल रहित, नेत्रन करि चमत्कारक होय। महावैराग्य दशा करि पूरित होय। इत्यादिक गुण सहित जो शिष्य होय, तिनकौं दीक्षा होय। ऐसे मुख्य गुण हैं सो कहे। बाकी इनमें सामान्य-विशेष योग्य-अयोग्य सम्हालकैं-विचारकैं आचार्य करैं हैं। ऐसा जानना।

इति श्री सुदृष्टि तरङ्गिणी नाम ग्रन्थ मध्ये, षट् लेश्या, योनि भेद, निगोद रहित स्थान, निमित्त ज्ञानादिक कथन वर्णनो नाम, सत्ताईसवाँ पर्व सम्पूर्ण भया ॥ २७ ॥

आगे दशकरण का निमित्त पाय, कर्मन की अवस्था कहिये है। प्रथम नाम-बन्ध, उदय, सत्ता, उत्कर्षण, अपकर्षण, संक्रमण, उपशान्त, निधत्ति, निकांचित और उदीरणा—ए दश हैं। अब इनका अर्थ—तहां प्रथम बन्ध करण कहिये है। सो जीव अपने शुभाशुभ परिणामन तैं कर्मन का बन्ध करै है। सो बन्ध च्यारि प्रकार है। प्रकृति बन्ध, प्रदेश बन्ध, स्थिति बन्ध और अनुभाग बन्ध—तहां प्रथम प्रकृति बन्ध का स्वरूप कहिये है।

सो नाना जीव नाना काल अपेक्षा एक सौ बीस प्रकृति बन्ध योग्य हैं। सो ही कहिये है। ज्ञानावरणी ५, दर्शनावरणीय ६, वेदनीय २, मोहनीय २६, आयु ४, गोत्र २, अन्तराय ५—ए सात कर्म की प्रकृति ५३ भई। अब नाम-कर्म की वर्ण चतुष्क ४, संस्थान ६, संहनन ६, गति ४, गत्यानुपूर्वी ४, शरीर ५, जाति ५, अंगोपांग ३, चाल २, अगुरु लघु अष्टक ८, दश दुक की २० ऐसे नाम-कर्म की सड़सठ। सर्व मिलि अष्ट-कर्म की एक सौ बीस प्रकृति बन्ध योग्य हैं। सो मनुष्य गति में तौ सर्व का बन्ध है। तातैं मनुष्य विषैं एकसौ बीस बन्ध योग्य हैं। तिर्यञ्च गति में पंचेन्द्रिय के बन्ध योग्य एकसौ सत्तरा है। आहारक दुक की दोय और तीर्थङ्कर एक—इन तीन बिना जानना। बेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चौइन्द्रिय—इन विकलत्रय में बन्ध योग्य प्रकृति एक सौ नौ हैं। वैक्रियिक अष्टक की आठ, आहारक दुक की दोय और तीर्थङ्कर एक—इन ग्यारह बिना विकलत्रय में १०९ का बन्ध है। पञ्च स्थावर में बन्ध योग्य विकलत्रयवत् एक सौ नव प्रकृति हैं। विशेष एता जो अग्नि व वायुकायिक—इन दोय स्थावरनकैं ऊँच गोत्र व मनुष्यायु—इन दोय बिना एक सौ सात प्रकृति का बन्ध है देवन के वैक्रियिक अष्टक की आठ, विकलत्रय की तीन, आहारक दुक की दोय, सूक्ष्म, साधारण और अपर्याप्त—इन षोडश बिना समुच्चय १०४ का बन्ध है। तहां विशेष एता जो दूजे तैं ऊपरि तीसरे स्वर्ग तैं लगाय बारहवें स्वर्ग पर्यन्त के देवनकैं एकेन्द्रिय जाति थावर, नाम और आतप—इन तीन बिना १०१ का बन्ध है। बारहवें स्वर्ग तैं ऊपरि के देवनकैं विकलत्रय की तीन और उद्योत—इन च्यारि बिना सत्यानवे का बन्ध है। ऐसे देव का बन्ध कह्या। नारकीन के एक सौ बीस में वैक्रियिक अष्टक की आठ, विकलत्रय तीन, स्थावर, एकेन्द्रिय, साधारण, अपर्याप्त, सूक्ष्म, आहारक दुक की दोय, आतप—इन उन्नीस बिना समुच्चय १०१ का बन्ध है। विशेष एता जो तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध तीसरे नरक तांई है आगे नाहीं। तातैं तीजी पृथ्वी तैं नीचे एक सौ प्रकृति का बन्ध है। सातवें नरक में मनुष्यायु बिना निन्यानवै का बन्ध है। ऐसे च्यारि गति विषैं यथायोग्य सामान्य बन्ध कह्या। विशेष एता जो एक जीव कैं एकै काल अपेक्षा तीन गति में तौ गुणसठ प्रकृतिन का बन्ध है। तिर्यञ्च गति विषैं एकै काल तीर्थङ्कर प्रकृति बिना अट्ठावन प्रकृतिन का बन्ध है। इहां प्रश्न—जो तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध तौ मनुष्य में ही कह्या। परन्तु यहां देव, नारकी में भी कह्या सो कैसे बनै? ताका समाधान—जो हे भव्य! प्रश्न तुम्हारा

प्रमाण है। प्रथम तौ तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध मनुष्य ही कै होय है। या बात प्रमाण है। परन्तु मनुष्य गति का किया बन्ध देव, नारकी में जाय है। तातैं तहां बन्ध और गतितैं जानना। यहां फेरि प्रश्न—जो तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध करनहारा सम्यग्दृष्टि देव गति में जाय। सो देव में तौ तीर्थङ्कर का बन्ध करै है, सो सम्भवै। परन्तु तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध करनहारा जीव नरक में कैसे जाय? ताका समाधान—कोऊ जीव नैं मिथ्या-दशा में प्रथम नरकायु का बन्ध किया था पीछे उस निकट भव्यात्मा संसारी जीवकैं सम्यक्त्व भया सो तीर्थङ्कर व केवली के निकट निमित्त पाय षोडश भावना भाय तथा इनमैं तैं एक दोय आदि कोई भावना भाय परिणामन की विशुद्धता तैं तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध कर पीछे आयु बन्ध के योगतैं जीव नरक जाय। तहां तीर्थङ्कर बन्ध लिये जाय। ताकी अपेक्षा बन्ध कह्या है। सो प्रथम नरक में जानेहारा जीव तौ सम्यक्त्व सहित भी जाय है और दूजे व तीजे का जानेहारा जीव सम्यक्त्व कूं तजकैं जाय है। सो अन्तर्मुहूर्त मिथ्यात रहै। कार्मण तैं जाय पर्याप्ति पूर्ण करै। जहाँ तांई पर्याप्ति पूरन नाहीं करै तहां तांई तौ मिथ्यात्व है। पर्याप्ति पूर्ण किये तीर्थङ्कर बन्धवारे कैं सम्यक्त्व होय है। तब तैं तीर्थङ्कर बन्ध जानना। ऐसे च्यारि गति में बन्ध कह्या। सो ए तो प्रकृति बन्ध है और इन एक-एक प्रकृति की साथि अनन्त परमाणु स्कन्ध रूप होंय। सो समय प्रबद्ध की गैलि केती परमाणु बन्धी तिनकी संख्या सो प्रदेश बन्ध है। बन्धी जो कर्म प्रकृति तिनमैं मोह-कर्म की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण हैं। नाम व गोत्र की बीस कोड़ाकोड़ी सागर स्थिति है। आयु-कर्म की तेतीस सागर स्थिति है। ज्ञाना-वरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, अन्तराय—इन च्यारि कर्मन की तीस-तीस कोड़ाकोड़ी सागर की स्थिति है वेदनीय की जघन्य स्थिति द्वादश मुहूर्त की है। नाम व गोत्र इन दोय कर्मन की जघन्य स्थिति आठ-आठ मुहूर्त की है। बाकी औरन की जघन्य स्थिति एक अन्तर्मुहूर्त की है। ऐसे यथायोग्य स्थिति का बन्ध होना सो स्थिति बन्ध है। बन्ध कर्म विषैं उदय भये जैसा रस देबे की शक्ति जो ए कर्म उदय भये एता रस प्रगट करेगा। सो अनुभाग बन्ध है। ऐसे कहे जो च्यारि प्रकार बन्ध सो बन्ध है। सो प्रकृति व प्रदेश बन्ध तो योगनतैं होय है। स्थिति व अनुभाग बन्ध कषायन तैं होय है। ऐसे तौ ए बन्ध करण जानना। इति बन्ध करण।१। आगे उदय-करण कहिये है। तहां उदय भी च्यारि प्रकार है। प्रकृति उदय, प्रदेश उदय, स्थिति उदय और अनुभाग उदय।

तहां प्रथम ही प्रकृति उदय कहिये है। सो नाना जीव नाना काल अपेक्षा उदय योग्य प्रकृति एकसौ बाईस हैं। तहां ज्ञानावरण की ५, दर्शनावरण की ९, वेदनीय की २, मोहनीय की २८, आयु-कर्म की ४, गोत्र की २, अन्तराय-कर्म की ५, ऐसे सात की ५५ नाम-कर्म की वर्ण चतुष्क की ४, संहनन ६, संस्थान ६, गति ४, गत्यानुपूर्वी ४, शरीर ५, जाति ५, अंगोपांग ३, चाल २, अगुरु अष्टक की ८ और दश दुक की २०, ऐसे नाम-कर्म को ६७। सर्व मिलि १२२ उदय योग्य प्रकृति जानना। तामैं तिर्यंच सम्बन्धी १२ तिर्यंच गति, तिर्यंच गत्यानुपूर्वी, तिर्यंचायु, जाति च्यारि, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, आतप और उद्योत—ए प्रकृति तिर्यंच द्वादश हैं और वैक्रियिक अष्टक इन बीस बिना मनुष्य योग्य एक सौ दोय हैं। अब देव योग्य उदय की प्रकृति कहिये हैं। ज्ञानावरण की ५, दर्शनावरण की ६, वेदनीय की २, मोहनीय की नपुंसक बिना २७, आयु गोत्र ऊँच अन्तराय की ५, ऐसे सात कर्म की ४७ वर्ण चतुष्क की ४ (संहनन नाहीं) संस्थान एक, समचतुरस्र गति, गत्यानुपूर्वी, शरीर की तीन, अंगोपांग, चाल, जाति, अगुरुलघु, उच्छ्वास, उपघात, परघात, निर्माण, दश दुक की बारह सर्व मिलि नाम-कर्म की तीस ऐसे देव योग्य उदय प्रकृति सतत्तरि हैं। सो नाना जीव नाना काल अपेक्षा समुच्चय कथन जानना। नारकी कैं उदय योग्य प्रकृति छिहत्तरि हैं। सो देव के उदय की प्रकृतिन में तौ दोय वेद घटाय दीजे। अरु नपुंसक वेद मिलाइये। यथायोग्य प्रकृति पलट देनी। शुभ की जायगा अशुभ प्रकृति करनी ऐसे नरक में उदय योग्य प्रकृति छिहत्तरि हैं; तिर्यंच के उदय योग्य प्रकृति एक सौ सात हैं। एक सौ बाईस में तैं वैक्रियिक अष्टक की आठ, मनुष्य गति आदि तीन, आहारक दुक की दोय, तीर्थङ्कर ऊँच-गोत्र इन पन्द्रह बिना एक सौ सात प्रकृति का तिर्यंचन के उदय है। विशेष तहां एता जो पंचेन्द्रिय तिर्यंच के उदय योग्य प्रकृति निन्यानवैं हैं। तिनके नाम ज्ञानावरणीय की पांच, दर्शनावरणीय नव, वेदनीय की दो, मोहनीय की अट्ठाईस, आयु, गोत्र, नीच, अन्तराय पांच ए सात कर्म की इक्यावन। वर्ण की च्यारि, संहनन षट्, संस्थान षट्, गति, गत्यानुपूर्वी, शरीर तीन, जाति, अंगोपांग, चाल दोय और तीर्थङ्कर व आतप इन दोय बिना अगुरु अष्टक की छः और दश दुक की मैं तैं सूक्ष्म, साधारण, स्थावर इन तीन बिना सत्तरा ऐसे नाम की अड़तालीस सर्व मिलि निन्यानवै हैं। अब एकेन्द्रिय के उदय योग्य प्रकृति अस्सी हैं। ताकी विधि—ज्ञानावरण की पांच

दर्शनावरण नव, वेदनीय दोय, मोहनीय चौबीस, आयु, नीच, गोत्र, अन्तराय पांच ए सात कर्म की सैंतालीस। आगे नाम की—तहां वर्ण की च्यारि, संस्थान, गति, गत्यानुपूर्वी, शरीर तीन, एकेन्द्रिय जाति, तीर्थङ्कर बिना अगुरु अष्टक की सात, दश दुक की पन्द्रह ऐसे नाम-कर्म तैंतीस सर्व मिलि एकेन्द्रिय के उदय योग्य प्रकृति अस्सी। अब विकलत्रय के उदय योग्य प्रकृति कहिये हैं। सो एकेन्द्रिय के उदय योग्य में तैं सूक्ष्म, साधारण स्थावर, आतप ए च्यारि तौ काढ़िए। अरु संहनन, अंगोपांग, चाल, स्वर, त्रस ए पांच मिलाइये तब विकलत्रय के उदय योग्य प्रकृति इक्यासी। ऐसे कहे जो सामान्य भाव च्यारि गति सम्बन्धी उदय सो प्रकृति उदय कहिये और समय-समय ये प्रकृति उदय आवैं तब तिन प्रकृतिन के संग जेती-जेती प्रमाण कर्म उदय आय खिरैं सो प्रदेश उदय है। सो ही संक्षेप दिखाइये है। तहां एकलो अणु का नाम तौ वर्ग है। अनन्त वर्ग का समूह सो वर्गणा है और असंख्यात लोक प्रमाण वर्गणा स्कन्ध मिलाइये तब एक स्पर्धक होय। ऐसे असंख्यात लोक प्रमाण स्पर्धक मिलाइये तब एक गुण हानि होय। ऐसे असंख्यात लोक प्रमाण गुण हानि कौं मिलाइये तब एक नाना-गुण हानि होय। ऐसे असंख्यात लोक प्रमाण नाना-गुण हानि को मिलाइये तब एक अन्योन्याभ्यस्त राशि होय। ऐसी असंख्यात लोक प्रमाण अन्योन्यभ्यस्त राशि स्कन्ध मिलाइये तब एक प्रकृति होय। ऐसे उदय योग्य प्रकृति तिनके साथ जेते प्रदेश उदय आय खिरैं सो प्रदेश उदय है और जिस प्रकृति की जेती जघन्य-उत्कृष्ट स्थिति थी तिनमैं तैं जो समय घाटि उदय आवैं सो स्थिति उदय है और जिस प्रकृति के उदय होते जो शुभाशुभ रस का प्रगट होना सो अनुभाग उदय कहिये। ऐसे सामान्य करि च्यारि प्रकार उदय कह्या।२। अब सत्त्वकरण कहिये है। तहां ऊपरि कहि आए जो बन्ध सो कर्म बन्धे पीछे जेते काल उदय होय नहीं खिरैं। आत्मा के तैं एक क्षेत्र कर्म रहैं। सो सत्त्वकरण है। सो सत्त्वकरण भी चारि प्रकार है। प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग। तहां प्रथम ही प्रकृति सत्त्व कहिये है। सो सत्त्व योग्य प्रकृति एक सौ अड़तालीस हैं। सो नाना जीव नाना काल अपेक्षा हैं और एक जीवकैं एकै काल तीन आयु बिना भुज्यमान आयु सहित एकसौ पैंतालीस का सत्त्व है और भुज्यमानवारे के तीर्थङ्कर बिना एकसौ चवालीस का सत्त्व है और कोई के तीन आयु, आहारक चतुष्क व तीर्थङ्कर बिना एक सौ ४० का सत्त्व है। किसी के आहारक चतुष्क, तीर्थङ्कर और वध्यमान आयु सहित

एक सौ छयालीस का सत्त्व है। एक सौ अड़तालीस मैं तैं बद्धयमानवारे के तीर्थङ्कर और दोय आयु इन तीन बिना, एक सौ पैंतालीस का सत्त्व है। किसीकै आहारक चतुष्क, तीन आयु इन सात बिना एक सौ इकतालीस का सत्त्व है और आहारक चतुष्क व दोय आयु इन षट् बिना कोई बद्धयमान आयुवारे कैं एकसौ ब्यालीस का सत्त्व है। ऐसे अनेक प्रकार नाना जीवकैं सत्त्व पाइये। ताका सामान्य कथन कह्या। सो याका नाम सत्त्वकरण है।३। और जैसे—कच्चे आमों कौं पाल-पत्ता देय, सिताब (जल्दी) पकाइये। तैसे ही जिस कर्म की स्थिति बहुत होय, ताकौं बलात्कार तप-संयमादि करि, ताकी स्थिति घटाय उदय काल में लावना, सो उदीरणा में। भावार्थ—जो कर्म की बहुत स्थिति कूं घटाय, थोड़ी करि, खेरना सो उदीरणाकरण है। ४। जिन कर्मन की बहुत स्थिति थी सो तिनके निषेक, नीचले थोरीसी स्थितिवारेन में मिलाय, उदय में ल्यावना, सो अपकर्षण है। ५। जिन कर्मन की स्थिति थोरी थी, तिनके निषेक नीचले तैं लेय, ऊपरले बड़ी स्थिति के निषेकन में मिलावना, सो उत्कर्षण है। भावार्थ—जा कर्म की स्थिति थोरी थी ताकी बड़ी करना, सो उत्कर्षण है। ६। आगे शुभ भावन तैं पुण्य प्रकृति बांधी थीं ताके निषेक पाप परिणामन तैं पाप प्रकृति रूप करना तथा आगे अशुभ भावन तै पाप प्रकृति बांधी ताकौं शुभ भावना के फल तैं पल्टाय पुण्य प्रकृति रूप करना, सो संक्रमण है। ७। कर्म उदयावली वांझि है। सो उदयावली में कर्म कोई उपाय तैं नहीं आवैं, सो उपशान्तकरण कहिये। ८। जिन कर्मन के परमाणु संक्रमण नहीं होंय तथा उदयावली में नहीं आवैं। सो याका नाम निधत्तिकरण है। ९। जा कर्म के परमाणु उत्कर्षण जो कर्म स्थिति का बढ़ावना, अपकर्षण जो कर्म स्थिति का घटावना, संक्रमण जो कर्म कौ और रूप करना, सो जामें तीनों ही नहीं होय उदयावली में नहीं आवै। जिस अंशन करि बन्ध्या है, तिन ही अंशन करि उदय आवै। सो निकाचित नामकरण है। १०। ये दश करण हैं। इनकौ जानैं कर्म की अवस्था भले प्रकार जानी जाय है। ऐसा जानना। इति दशकरण। विशेष इनका श्रीगोम्मटसारजी तैं जानना। ऐसा करण का स्वरूप, मिथ्यात्व गये जानिये है। सो मिथ्यात्व का स्वरूप कहिये है। मिथ्यात्व के दोय भेद हैं। सादि मिथ्यात्व और अनादि मिथ्यात्व। सो जीव कैं अनादिकाल संसार भ्रमण करतैं, कबहूं भी सम्यक्त्व का

लाभ नहीं भया होय, सो तो अनादि मिथ्यादृष्टि है। १। और जे जीव सम्यक्त्व कूं पाय, पीछे पाप भाव-अतत्त्व की वांछा तैं मिथ्यात्व में आया होय, सो सादि मिथ्यात्वी कहिये। २। इनके होतैं कर्म का स्वरूप नहीं पावै। इति मिथ्यात्व। आगे भाव भेद तीन बताइये है। शुद्ध भाव, शुभ भाव, और अशुभ भाव। इनका अर्थ—तहां राग-द्वेष का अभाव, शत्रु-मित्र, कञ्चन-तृण, रतन-पाषान इनमें राग-द्वेष नहीं होय, सो शुद्ध भाव कहिये। १। दान, पूजा, शील-जप, तप, संयम, ध्यान, शास्त्राभ्यास इत्यादिक क्रिया रूप शुभ भावन की प्रवृत्ति, सो शुभ भाव हैं। २। और जीव हिंसा भाव असत्य भाषण भाव पर-द्रव्य हरण भाव पर-स्त्री लम्पट भाव पुण्य उपरान्त परिग्रह के इकट्ठे करवे रूप भाव, सप्तव्यसन भाव, पाखण्ड भाव, हाँसि-कौतुकादि भण्ड भाव, रुद्र भाव, आरत भाव, क्रोध-मान-माया-लोभ भाव इत्यादिक पाप-बन्ध के कारण सो अशुभ भाव हैं। ३। ये तीन भाव के भेद हैं। तिनमैं शुद्ध भाव तौ भव्य ही कैं होय हैं। शुभ अशुभ ये दोय भाव, भव्य तथा अभव्य दोऊन के होय हैं। तहां भव्य के भी तीन भेद हैं। निकट भव्य, दूर भव्य और दूरानदूर भव्य। तहां जे जीव थोड़े काल विषैं मोक्ष जांय, सो निकट भव्य हैं। १। जे जीव बहुत काल में मोक्ष होंय तथा कबहूँ न कबहूँ अनन्त काल में होंयगे, ऐसी केवलज्ञान में भासी है। सो दूर भव्य हैं। मोक्ष होवे योग्य हैं, तातैं इनको दूर भव्य जानना। २। जे जीव भव्य हैं, केवलज्ञान में भासे हैं। सो भव्य राशि हैं। परन्तु मोक्ष होने की सामग्री जो सम्यग्दर्शनादि जिनके कबहूं प्रगट नाहीं होय। सदैव संसारवासी, अभव्य समानि, कबहूं मोक्ष नहीं जांय, सो दूरानदूर भव्य हैं। ३। यहां प्रश्न—जो भव्य कह्या अरु मोक्ष कबहूँ नहीं होय, सो कैसे बनै? ताका समाधान—हे भव्य! तू चित्त देय सुनि। अभव्य राशि तौ बहुत ही अल्प है। सो देखि। सर्व जीव राशि तैं अनन्तवें भाग तो सिद्ध राशि का प्रमाण है। सिद्ध राशितैं अनन्तवें भाग, अभव्य राशि है। सो भी जघन्य जुगता अनन्त है। सो ये अभव्य तौ जब कहिये तुच्छ राशि जानना और भव्य राशि बहुत है। सो सुनि, ज्यों तेरा भ्रम जाय। एक महा छोटा खस-खस दाने प्रमाण निगोद स्कन्ध में, असंख्यात लोक प्रमाण निगोद शरीर हैं। तहां एक-एक शरीर में अक्षय अनन्त जीव हैं। इनका अन्त नाहीं। इस शरीर में तैं निकसि-निकसि अनन्तकाल तांई, अनन्त जीव मोक्ष होवे करैं, तौ भी केवली कूं पूछिये, तब ही उस शरीर तैं निकसे तिनतैं अनन्त गुणे जीव, भव्य राशि और कहैं। ऐसे ही इस

संसार तैं अनन्त काल तांई जीव मोक्ष होवो करैं, तौ भी सिद्ध राशि तैं अनन्त भव्य जोव जब पूछौ, तबही केवली बतावैं। तातैं सदैव मोक्ष जातैं भी, जब केवली कूं पूछिये तबही अभव्यन तैं अनन्त गुणे भव्य, एक शरीर में जानना और कदाचित् मोक्ष जाते-जाते, भव्य राशि मोक्ष जा चुकै, तो मोक्ष का पीछे अभाव होय। मोक्ष बन्द होय। सो मोक्ष-मार्ग कबहूँ बन्द होता नाहीं, शाश्वत् है। छः महीना आठ समय में, छः सौ आठ जीव, निरन्तर मोक्ष जांय। सो ये अनुक्रम कबहूं बन्द होता नाहीं। सो ऐसा जानना कि जो अनन्ते जीव, भव्य-राशि में ऐसे हैं, सो कबहूँ मोक्ष होते नाहीं। जब केवली सूं पूछौ, तबही अभव्य राशि तैं अनन्त गुणै भव्य बतावैं। तामैं दूरानदूर भव्य राशि भी, अभव्यन तैं अनन्त गुणी जानना। सो ये दूरानदूर भव्य, अभव्य समानि हैं। इति। आगे तीन भेद अंगुल के कहिये हैं। सो प्रथम ही नाम—उच्छेद अंगुल १, आत्म अंगुल २, प्रमाण अंगुल ३, इनका अर्थ—तहां प्रथम ही उच्छेद अंगुल कौं बतावैं हैं। ताके निमित्त, उगणीस भेद गिणती कहिये। अवसनासन, सनासन, तटरेणु, त्रसरेणु, रथरेणु, उत्तम भोग-भूमि के बाल का अग्रभाग, मध्य भोग-भूमि के बाल का अग्रभाग, जघन्य भोग-भूमि के बाल का अग्रभाग, कर्म-भूमि के बाल का अग्रभाग, लीख, सरसौं, जव नाम अन्न, अंगुल, ये तेरह स्थान हैं। सो अवसनासन स्कन्ध तैं लगाय, अंगुल पर्यंत तेरह स्थान, आठ-आठ गुणा अधिक जानना। भावार्थ—जैसे—अवसनासन स्कन्ध है सो अनन्त पुद्गल परमाणून का स्कन्ध होय है। आठ अवसनासन का, एक सनासन स्कन्ध होय है। आठ सनासन मिलाये, तब एक तटरेणु होय है। आठ तटरेणु मिलाये, तब एक त्रसरेणु होय हैं। ऐसे आठ-आठ गुणा अंगुल पर्यंत जानना। इस आठ जव प्रमाण उच्छेद अंगुल तैं पांच सौ गुणा प्रमाण-अंगुल है २४ चौबीस अंगुल का एक हाथ होय है २५ च्यारि हाथ का एक धनुष होय है २६ दो हजार धनुष का एक कोस होय है २७ च्यारि कोस का एक योजन होय है २८ असंख्यात योजन का एक राजू होय है २९ उगणीस भेदन में से तेरहमा भेद, आठ जव प्रमाण उच्छेद अंगुल है जिस काल में जैसा शरीर होय तैसा ही अंगुल, सो आत्म अंगुल जानना। अवसर्पिणी का प्रथम चक्रवर्ती, पांच सौ धनुष के शरीरवाला, ताका अंगुल सो ये प्रमाणांगुल है। सो ये उच्छेद अंगुल तैं पांच सौ गुणा मोटा, प्रमाण-अंगुल जानना। इति। आगे अक्षर के तीन भेद हैं, सो कहिये हैं। प्रथम नाम—निवृत्ति अक्षर, लब्धि अक्षर, स्थापना अक्षर, अब इनका अर्थ—तहां ओंठ ताल्वादि

स्थान तैं उत्पत्ति होय जो शब्द रूप अक्षर, सो निवृत्ति अक्षर है। १। ज्ञानावरणीय-कर्म के क्षयोपशम तैं भई जो पदार्थ जानने की भावेन्द्रिय द्वारा अक्षर शक्ति, सो लब्धि अक्षर है। २। जो अपने-अपने देश भाषा रूप अक्षरन का आकार बनाय के, तिन तैं कर्म-धर्म का कार्य करना, शास्त्र पढ़ना-समझना। इत्यादिक सो स्थापना अक्षर है। ३। ऐसे तीन भेद अक्षर जानना। इति। आगे पर्याप्ति के तीन भेद-पर्याप्ति। १। अपर्याप्ति तिसका ही नाम निर्वृ त्य पर्याप्ति। २। लब्धि अपर्याप्ति। ३। इनका अर्थ—जहां पर्याप्ति नाम-कर्म के उदय सहित जीव पर्याप्ति पूर्ण करै, सो पर्याप्ति है। १। पर्याप्ति प्रकृति के उदय सहित जीव जेते काल शरीर पर्याप्ति पूर्ण नहीं किया होय, सो निर्वृ त्य पर्याप्ति जीव है। २। अपर्याप्ति के उदय सहित जीव शरीर पूर्ण करतैं पहले मरण करै है, सो लब्धि अपर्याप्ति है। ३। ऐसे तीन भेद पर्याप्ति के जानना। इति। आगे चक्षु-दर्शन के दोय भेद हैं। एक शक्ति-चक्षु-दर्शन। एक व्यक्त-चक्षु-दर्शन।२। इनका सामान्य अर्थ—अपर्याप्ति प्रकृति के उदय सहित ऐसे लब्धि अपर्याप्त, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय के शक्ति-चक्षु-दर्शन है। इनके चक्षु-दर्शन का क्षयोपशम तो है, परन्तु अपर्याप्ति-कर्म उदयतैं, अपर्याप्त दशा में ही मरैं हैं। तातैं प्रगट नहीं होने पावै। तातैं शक्ति-चक्षु-दर्शन कहिये। १। पर्याप्त चौइन्द्रिय सो ये व्यक्त-चक्षु-दर्शनी हैं।२। इति। आगे उपशम सम्यक्त्व के दोय भेद बताइये हैं—प्रथमोपशम सम्यक्त्व।१। द्वितीयोपशम सम्यक्त्व।२। इनका सामान्य अर्थ—तहां अनादि काल संसार भ्रमण करते कबहूँ मिथ्यात्व छूटि सम्यक्त्व होय। आगे कबहूँ नहीं भया था, अब ही अनन्तकाल में सम्यक्त्व भाव जिस जीवकैं होय, सो प्रथमोपशम सम्यक्त्व है। १। श्रेणी चढ़ते अप्रमत्त गुणस्थान विषैं क्षयोपशम सम्यक्त्व तैं उपशम सम्यक्त्व होय, सो द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कहिये। २। इति। आगे योग स्थान के तीन भेद बतावैं हैं—प्रथम उत्पाद योग स्थान। १। एकान्त वृद्धि योग स्थान। २। परिणाम योग स्थान। ३। इनका सामान्य अर्थ—तहां जो उपजने के प्रथम समय में ही जो योग स्थान होय, सो उत्पाद योग स्थान है। याका जघन्य व उत्कृष्ट काल एक ही समय है। १। उपजने के द्वितीय समय तैं लगाय, पर्याप्ति पूर्ण होने के एक समय घाटि पर्यंत एक-एक समय बढ़ाइये। तातैं एकान्त वृद्धि योग स्थान हो है। याका भी जघन्य व उत्कृष्ट काल एक समय है। २। पर्याप्ति पूर्ण हो चुकी तब तैं लगाय आयु पर्यन्त होय सो परिणाम योग स्थान है।३। यहां प्रश्न—जो परिणाम योग स्थान

तौ पर्याप्त जीव कैं सम्भवै है और अपर्याप्ति कर्म के उदयवाले कैं कैसे सम्भवै ? ताका समाधान—जो इस लब्धि अपर्याप्त जीव का आयु, श्वास के अठारहवें भाग है। ताके तीन भाग कीजिये, सो दोय भाग बिना एक भाग अन्त का है। सो याका परिणाम योग स्थान जानना। ये तीन योग स्थान कहे। इनका विशेष श्रीगोम्मटसारजी के जीव काण्ड तैं जानना। इति।

आगे धर्म में अरुचि होवे के तीन कारण बताइये हैं। एक तौ जो जीव जन्म का ही अज्ञान है। ताकों अज्ञानता के योग करि धर्म्म तैं अरुचि रहै है। १। कोई जीवकैं कषाय के दोष तैं धर्म तैं अरुचि होय है। २। कोऊ के धर्म-सेवन करते ही, पाप के उदय तैं अरुचि होय। ३। अब इनके दृष्टान्त दिखाइये है। तहां जैसे—कोई जीव जन्म-रोगी तथा जन्म-दरिद्री इन दोऊ ही नैं कबहूं घृत-मिश्री का भोजन नहीं किया। इनके स्वादकूं कबहूँ नहीं पाया। तैसे ही कोई पापात्मा अनादि ज्ञान-दरिद्री मिथ्या रोग पूरित सहज ही अज्ञानता करि पाप-पुण्य के भेदकूं नहीं जानै। तातैं धर्म तैं अरुचि होय है। १। दूसरा जो कोई जीव कषाय करि तथा जाकैं कोई खोटी आयु का बन्ध होय गया होय ताकरि कोई तैं लड़-पड़ा। सो वाके ऊपरि अपघात करवेकूं कूप, नदी, बावड़ी में कूदि मरै तथा कोई पै जहर खाय व छुरी-कटारी करि, मरै। तैंसे ही पाप-कर्म के उदय करि धर्म सेवन करता भी काहू तैं द्वेष-भाव करि धर्म तैं अरुचि करै है। २। कोई अच्छी तरह खाता-पीता जीव कैं पाप-कर्म के उदय तैं पेट में रस बढ़ चल्या। ताके योग तैं खान-पान तं अरुचि होय चली। ज्यों-ज्यों पेट में रस बढ़ने लगा त्यों-त्यों रोग बढ्या। त्यों-त्यों अन्न तैं अरुचि होय चली तैसे ही अच्छा भला धर्म-सेवन करता ही जीव पाप उदय तैं तथा कोई खोटी गति के बन्ध तैं तथा आयु के बन्ध योग तैं शनैः-शनैः धर्म तैं अरुचि करै है। दीरघ आरति के योग तैं भोगासक्त भया ताके दोष करि धर्म तैं अरुचि करै है। ३। ये तीन भेद-भाव तैं धर्म में अरुचि करि पाप-बन्ध करि आतमा अपना पर-भव बिगाड़ै है। ऐसा जानना। इति।

आगे तीन शल्य के भेद कहिये हैं—माया शल्य। १। मिथ्या शल्य। २। अग्र सोच (निदान) शल्य। ३। इनका अर्थ—तहां माया की परिणति आप तज्या चाहै है। धर्म-सेवन करै। परन्तु अपने हृदयतैं माया नाहीं जाय। कबहूँ न कबहूँ माया की वासना प्रगट हो ही जाय सो माया शल्य कहिये। १। जहां धर्म-सेवन करतैं

मिथ्यात्व आप तज्या चाहै कुदेवादिक की सेवा का भी त्याग करै, परन्तु कारण पाय कबहूँ न कबहूँ अतत्त्व-भाव उपजै है। मिथ्या-भाव तैं अतत्त्व उपजै तथा जिन भाषित में संशय होय, सो मिथ्या शल्य है। २। जहां धर्म-सेवन निरवाँच्छित होय कैं सेवतैं ही चित्त में कबहूँ न कबहूँ धर्म-सेवनतैं पहिले ही सेवन के फल की वांच्छा होय कि धर्म का मोकौं क्या फल होयगा? तथा नहीं होयगा तथा ऐसा फल उपजियो इत्यादिक भाव विकल्प, सो अग्रसोच (निदान) शल्य है। ३। इति।

आगे निक्षेप च्यारि का स्वरूप कहिये है। प्रथम नाम—नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव अब इनका अर्थ—तहां कोई वस्तु का कछू नाम कहना, सो नाम निक्षेप है।१। कोई वस्तु का आकार करना, सो स्थापना निक्षेप है।२। और कोई वस्तु-पदार्थ होवे कौं कोई वस्तु होय सो, द्रव्य निक्षेप है। ३। वस्तु प्रत्यक्ष होय, सो भाव निक्षेप कहिये है। ४। यहां इनका दृष्टान्त करि कहिये हैं। जैसे—वृषभ आदि तीर्थङ्करों के नाम लेय सुमरन करि पुण्य का बन्ध करना, सो नाम निक्षेप है। १।

चौबीस तीर्थङ्करों के शरीर के आकार वर्ण लक्षण रूप सहित कायोत्सर्ग तथा पद्मासन प्रतिमा रतन की स्वर्ण की चाँदी की धातु की मनोज्ञ उत्तम पाषाण की स्थापना करि, पूजा-स्तुति करि, पुण्य उपार्जन करना, सो स्थापना निक्षेप है। २।

तीर्थङ्कर का जीव पर-गति में ही है। अरु षट् मास पहिले नगर की रतनमयी रचना पञ्चाश्चर्य करि उपजावना तथा जो तीर्थङ्कर भये हैं। तिनके गर्भकल्याणादि अतिशय का उछाह करि, स्तुति करि, पुण्य का बांधना सो द्रव्य निक्षेप है। तीर्थङ्कर भये नहीं हैं; परन्तु वह गर्भ में तिष्ठती आत्मा तीर्थङ्कर होने योग्य है। काल पाय तीर्थङ्कर-पद पावेंगे। सो द्रव्य तीर्थंकर कहिये। सो इनकी सेवा पूजा किये पुण्य-बन्ध होय है सो द्रव्य निक्षेप है।३।

जहाँ समोशरण सहित गन्ध कुटी विषैं सिंहासन युक्त कमल तिसतैं अन्तरिक्ष चार अंगुल विराजमान भगवान् घातिया-कर्म नाश करि अनन्त चतुष्टय सहित विराजमान दिव्य-ध्वनि करि उपदेश देते तिष्ठैं सो भाव निक्षेप है। इनकी पूजा-स्तुतिकूं करि पुण्य उपजावना, सो भाव निक्षेप है। ४।

ऐसे च्यार निक्षेप तीर्थंकर के हैं। यहां एक दृष्टान्त और भी कहिये है। काहू का नाम सिंह कहना, सो

नाम सिंह है। काष्ठ पाषाण चित्राम का नाहर का आकार बनाया, सो स्थापना सिंह है। नाहर की पर्याय में उपजवे कूं सन्मुख भया जो जीव सो तौ अन्तराल में है, सो द्रव्य नाहर है। साक्षात् कूदता, फांदता, बोलता सिंह सो भाव सिंह है। इत्यादिक भेद सब जगह चेतन-अचेतन पदार्थन पै लगावना। इन च्यारों के मारै पाप होय व इन पै दया-भाव किये पुण्य होय। मिट्टी के स्थापना-नाहर के फोड़े मारै का दोष लागै हैं। यहां निक्षेपन का स्वरूप सामान्य कह्या। विशेष विवेकी सम्यग्दृष्टि अपने ज्ञान के माहात्म्य करि सब स्थान पै यथायोग्य लगाय लेना। इति।

आगे अलौकिक मान के च्यारि भेद हैं। सो बताइये है। प्रथम नाम—द्रव्य मान, क्षेत्र मान, काल मान और भाव मान अब इनका अर्थ—सो इन च्यारों मान विषैं जघन्य मध्यम उत्कृष्ट ये तीन-तीन भेद हैं। तहां मान नाम प्रमाण का है। सो जो एक पुद्गल परमाणु है सो जघन्य द्रव्य मान है। यातैं छोटा द्रव्य और नाहीं। महास्कन्ध तीन लोक के प्रमाण, सो उत्कृष्ट द्रव्य मान जानना। या महास्कन्ध तैं बड़ा और पुद्गल स्कन्ध नाहीं। तातैं महास्कन्ध उत्कृष्ट द्रव्य मान जानना। पुद्गल परमाणु से ऊपर, महास्कन्ध से एक पुद्गल परमाणु कम जो बीच के भेद हैं सो मध्यम द्रव्य मान है।१। और एक प्रदेश आकाश का क्षेत्र, सो जघन्य क्षेत्र मान है। यातै छोटा क्षेत्र नहीं और तीन लोक क्षेत्र प्रमाण क्षेत्र सो लोकाकाश की अपेक्षा उत्कृष्ट क्षेत्र मान है और अनन्त अलोकाकाश क्षेत्र है सो उत्कृष्ट क्षेत्र मान है। या अलोकाकाश तैं उत्कृष्ट क्षेत्र नाहीं और एक प्रदेश के ऊपर तैं एक-एक प्रदेश बढ़ता उत्कृष्ट पर्यन्त मध्य के भेद हैं। ये क्षेत्रमान के तीन भेद हैं।२। और एक समय तैं छोटा काल-भेद नाहीं। तातैं एक समय तौ जघन्य काल मान है और अतीत, अनागत, वर्तमान—ए तीन काल के जेते समयन का प्रमाण सो उत्कृष्ट काल मान है और दूसरे समय तैं एक-एक समय काल बढ़ता सो उत्कृष्ट तैं एक समय घाटि पर्यन्त मध्य के भेद हैं। ऐसे काल-मान के तीन भेद कहे।३। और सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्तक जीव एक अन्तर्मुहूर्त में छ्यासठ हजार तीन सौ छत्तीस जन्म-मरण करै। सो तिनमें छः हजार ग्यारह जन्म-मरण निगोदिया सम्बन्धी करि चुक्या होय। अरु बारहवें जन्म धर तैं, प्रथम समय में अक्षर के अनन्तवें भाग ज्ञान रहै है। सो जघन्य ज्ञान है। सो ही जघन्य

भाव-मान जानना। यातैं अल्प भाव-मान नाहीं और इस जघन्य भाव तैं एक-एक ज्ञान अंश बढ़ते एक अंश घाटि केवलज्ञान पर्यन्त मध्य भाव-मान के भेद हैं और सर्व तीन काल की जाननहारा अन्तरजामी सर्वज्ञ के केवलज्ञान है, सो उत्कृष्ट भावमान है। ये तीन भेद भाव-मान के जानना।४। ऐसे सामान्य च्यारि भेद मान के जानना। इति।

आगे अर्जिकाजी के च्यारि गुण कहिये हैं। प्रथम नाम—लज्जा।१। विनय।२। वैराग्य।३। शुभाचार।४। इनका अर्थ—प्रथम अर्जिकाजी का रहने का स्थान बतावैं हैं। सो जहां अर्जिकाजी के रहने का स्थान होय सो नगर तैं अति दूर नहीं होय। बहुत नजदीक भी नहीं होय। ऐसा यथायोग्य कोई मध्य स्थान होय तहाँ तिष्ठै और जब आहार कौं नगर में जाय तौ अकेली नहीं जाय, कोई बड़ी अर्जिकाजी के साथ जाय। सो भी मौन सहित, विनय तैं, अङ्ग संकोचती, नीची दृष्टि किए, ईर्य्या समिति सहित, नगर में भोजन कों जाय। तन को छिपाए रहे, अङ्गोपाङ्ग प्रगट नहीं दिखावै। एक पट तैं सर्व तन कौं आच्छादित राखती, लज्जा सहित प्रवृत्ते, सो लज्जा गुण कहिये।१। और अर्जिका जी आचार्य के दर्शन कौं जांय, तौ पांच हाथ अन्तरतैं विनय सहित नमस्कार करैं हैं। उपाध्याय जी के दर्शन कौं जांय, तब षट् हाथ तैं नमस्कार करैं हैं। साधुजी के दर्शन कौं अर्जिका जी जांय, तब सात हाथ के अन्तर तैं नमस्कार करैं। सो अर्जिका जी इन गुरौं को नमस्कार करैं, तब पंचाँग नमस्कार करैं। अर्जिका जी कों गुरुन पै कोई प्रश्न करना होय, तौ अकेली जाय, नहीं करैं। एक बड़ी अर्जिका कूं अपना प्रश्न कहै, जो इस प्रश्न का उत्तर गुरु के मुख तैं सुन्या चाहौं हौं ऐसा कहि, बड़ी अर्जिका जी कौं अगवानी करि, प्रश्न करावै और भी इनकौं आदि देव, गुरु, धर्म, विषैं योग्य विनय सहित रहै, सो विनय गुण है।२। और निरन्तर वैराग्य बढ़ावने के अर्थ, अनेक तप करना। यत्न तैं संयम-ध्यान करना। निरन्तर संसार की अनित्यता का विचार करना। भोगन को भुजङ्ग समानि जानना। तनकौं सप्त धातुमयी जान, ताके धारण तैं चित्त की उदासीनता, इत्यादिक भावन सहित विरक्त भाव रहना, सो वैराग्य गुण है।३। और परम्पराय जिन-आज्ञा प्रमाण कही है जो अर्जिका के आचार की प्रवृत्ति, ताही प्रमाण क्रिया करनी, सो शुभ आचार गुण है।४। इन च्यारि गुण सहित होय, सो सतीन में परम शिरोमणि, धर्म मूर्ति अर्जिका जानना। इति अर्जिका गुण।

आगे दत्ति भेद च्यारि कहिये है। तहां नाम—पात्रदत्ति । १ । समदत्ति ।२। करुणादत्ति ।३। सर्वदत्ति । ४ । अब इनका अर्थ—तहां मुनिराज कों नवधा भक्ति करि दान देना तथा आर्यिका जी कूं भोजन-वस्त्र भक्ति सहित दान देना तथा त्यागी, अवलि खलिक, प्रतिमाधारी, तिन कौं भोजन-वस्त्र देना तथा संघ में मुनि-श्रावकन कौं कमण्डलु-पीछी देना। इत्यादिक चारि प्रकार संघ में महाविनय सहित भक्ति-भाव करि दान देना, सो पात्रदत्ति है। १। और आप समानि धर्म श्रद्धा का धारक गृहस्थ, धर्मातमा, ज्ञानी, वैराग्यवान, सन्तोषी, सम्यग्दृष्टि, शुद्ध देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा को समझनेहारा, उत्तम शुभ कर्मी, ताकौं यथायोग्य भक्ति-अनुराग करि, विनयपूर्वक भोजन-वस्त्रादि देना। तिन की स्थिरता करनी, साता करनी, सो समदत्ति है। प्रयोजन पाय इनकौं दान दीजिये तथा उनका आप लीजिये। तातैं इनका लेना-देना सो समदत्ति है। २। जहां दीन, दरिद्री, अन्धा, भूखा बालक, वृद्ध, अशक्त, रोगी, असहाय इत्यादिक कौं देखि अनुकम्पा करि, दया-भाव सहित दान का देना, सो करुणादत्ति है। ३। जहाँ सर्व परिग्रह-आरम्भ का त्याग करि मुनीश्वर का पद धरना, सो सर्वदत्ति है। अब कछु देनै का नाम नहीं, जो देना था सो सर्व दिया। सर्व संसार में तिष्ठते जो-जो त्रस-स्थावर जीव, तिन सबमें समता-भाव करि, सबकौं अभय-दान देना, सो ये सर्वदत्ति जानना। ४। ऐसे दत्ति चारि। इति दत्ति।

आगे कुलकर तैं लगाय भरत चक्रवर्ती पर्यन्त जीवन में, चूक भये दण्ड होय। ताके भेद च्यारि हैं। सो बताइये हैं—तहां तीजे काल के व्यतीत भये, पल्य का अष्टम भाग काल, बाकी रह्या। तब ज्ञान का सामान्य-विशेष भया। कोई जीव विशेष ज्ञानी, कोई जीव सामान्य ज्ञानी। ताके योग तैं कुलकर भये। सो और जीवन में ज्ञान अल्प और कुलकरन में ज्ञान विशेष भया। सो प्रथम कुलकर तैं लगाय पञ्चम कुलकर पर्यन्त कोई चूक भये, जीव कौं ऐसा दण्ड होय जो "हा"। याका अर्थ यो, जो "हाय-हाय! (यह कार्य मति करौ)" ।१। ऐसे ही पञ्चम तैं लगाय दशवें पर्यन्त ऐसा दण्ड जो "हा मा"। याका अर्थ यह, जो "हाय-हाय! यह कार्य मति करो" ।२। और वृषभ देव पर्यन्त पञ्चम कुलकरों के वारे ऐसा दण्ड भया, जो "हा मा धिक्। याका अर्थ—"हाय-हाय! यह कार्य मति करौ तौ कों धिक्कार है" ।३। पीछे काल-दोष तैं जीवन के कषाय बढ़ी। तब राज-दण्ड भी दीरघ भया। सो चूक भये भरत चक्रवर्ती के समय वारे जीव, वक्र-कषाई भये। अपराध बड़े करने लगे। सामान्य दण्ड

का उल्लङ्घन करने लगे। तब छेदन-भेदन, वध-बन्धनादि दण्ड भये। ४। ऐसे दण्ड भेद च्यारि कहै। सो जीवन की जैसी-जैसी कषाय भई, तैसा-तैसा दण्ड विधान चल्या। सो अब देखिये है। जो दीरघ चूक तैं, दीर्घ दण्ड पावैं। अल्प चूक तैं थोरा दण्ड पावै और चूक रहित व गुण सहित जीवन की, पूजा होती देखिए है। तातैं ऐसा जान, विवेकी पुरुषन कूं चूक (भूल) भाव छांड़ि, गण करना योग्य है। इति दण्ड भेद।

इति श्रीसुदृष्टि तरंगिणी नाम ग्रन्थ के मध्य में दश करणादि के भेदों का वर्णन करनेवाला अट्ठाईसवाँ पर्व सम्पूर्ण भया ॥२८॥

आगे श्रावक की क्रिया पच्चीस हैं। इन-इन भावन तैं जीव, कर्म का आस्रव करै है, सो ही बताइये है। प्रथम सम्यक्त्व की क्रिया कहिये है—तहां अठारह दोष रहित शुद्ध देव की पूजा, शुद्ध गुरु की पूजा, शुद्ध धर्म की पूजा, जिन बिम्ब की पूजा, सिद्धक्षेत्र पूजा। धर्मात्मा पुरुषन के गुणन में अनुराग भाव, वात्सल्य भाव। दीन, दुःखित, रोगी, दुःखी-दरिद्री इत्यादिक क्लेशवान् जीवनकौं देख, दया-भाव करैं। समता-भाव बढ़ावैं। इत्यादिक समभावना सहित जीव, शुभ-कर्म का आस्रव करै है। याका नाम सम्यक्त्व क्रिया है। ये तौ शुभ आस्रव है।१। आगे मिथ्यात्व प्रवर्द्धिनी क्रिया कहिये है—तहां कुदेव पूजा, कुगुरु पूजा, कुतीर्थ पूजा, हिंसा सहित कुतप तिनके करवे की भावना, औरन के हिंसा तप की प्रशंसा, कुदान करवे की अभिलाषा, कुव्रतन में काय की प्रवृत्ति, सर्व में विनय, सुदेव-सुगुरु, कुदेव-कुगुरु, इनकौं एक से जानना इत्यादिक भावन तैं अशुभ-कर्म का आस्रव होय है। याका नाम मिथ्यात्व प्रवर्द्धिनी क्रिया है। ये शुभ-कर्म कौं उपजावै है। २। और असंयम प्रवर्द्धिनी क्रिया कहिये है—तहां मन में अनेक विकल्प धन-धान्य की चाह करना। भोग-उपभोग में अभिलाषा रूप रहना, इन्द्रियन के पोखवे की वांच्छा इत्यादि असंयम के विकल्प रूप मन का वेग, सो मन असंयम है। पंचेन्द्रिय अपने विषय कौं चाहती। सो रसना इन्द्रिय, षट् रस के भोग में लुब्ध। स्पर्शन इन्द्रिय, अपने अष्ट विषयन में लुब्ध। घ्राणेन्द्रिय, सुगन्ध इच्छुक। नेत्र इन्द्रिय, पञ्च वर्ण विषैं लुब्ध। श्रोत्र इन्द्रिय, सुस्वर शब्द-वादित्रन में लुब्ध। इत्यादिक इन्द्रिय असंयम रूप। ऐसे मन व इन्द्रिय आतमा के वश नहीं रहैं और त्रस-स्थावर के षट् कायन की दया नहीं पालै। ऐसे बारह असंयम रूप भावन के विकल्प तैं, अशुभ-कर्म का आस्रव जीव करै है। याका नाम असंयम प्रवर्द्धिनी क्रिया है। ३। आगे प्रमादनी चौथी क्रिया कहिये है—तहां जो जीव प्रथम तौ आप

संयम, व्रत आखड़ी कौं धारतैं तप के फल का वांच्छक होय। तपस्वी नाम बाजै। पीछे काल पाय तप कष्ट तैं भय खाय जल की इच्छा, अन्न की इच्छा, स्त्री की इच्छा। शीत-उष्ण नहीं सह्या जाय सो और असंयमी जीवकौं खावते-पीवते, स्त्री संग करते, शीत-उष्ण में अनेक तन के जतन करते सुखी देखि, विचारी। जो मैं तो संयम तैं दुःखी होय रह्या हौं और ये असंयमी सुखी है, अच्छा खाय है-पीवै है। ऐसे भाव करि आप संयमी होय कर, पीछे प्रमाद योग तैं पाप उदय करि, असंयम कूं भला जान, संयम तैं विचल्या चाहै। सो प्रमादिनी नाम की क्रिया है। ऐसे भाव तैं अशुभ-कर्म का आस्रव होय है। ४। आगे ईर्यापथ क्रिया कहिये है। सो याकरि दोय भेद आस्रव होय है। जो जीव अन्तरङ्ग में सर्व जीव पै दया-भाव करि, गमन करतैं नीची दृष्टि करि देखता चालै। धीरा चालै। छोटा-बड़ा जीव नजर में आवे, सो राह में बचाय लेय, ऐसे दया-भाव सहित जतन तैं भूमि शोधता गमन करै, तौ चलता जीव कैं ही पुण्य का आस्रव होय और गमन करते, ईर्या तजि, प्रमाद तैं उतावला चालै। राह में आप समान आतमा अनेक, छोटी कायधारी, पशु चींटा-चींटी हैं तिनकी रक्षा रहित, प्रमादतैं गमन करता आतमा, अशुभ-कर्म का आस्रव करै। याका नाम पञ्चम भेद ईर्य्यापथ क्रिया है। ५। आगे प्रादोषि की क्रिया कहिये है—जहां ये जीव धर्म भाव तजि क्रोध के वशीभूत होय, अनेक पाप करै। जाकौं क्रोध का उदय होय तब जीव घात करै; दया तजै। क्रोधी जीव देव, गुरु, माता आदि गुरुजन का अविनय करै। शस्त्र घात तैं, आप तन हतैं। क्रोधी अग्नि तैं ग्राम, वन, घर जालै। क्रोधी नर, पुत्र, स्त्री, भाई आदि का घात करै। इत्यादिक पाप, क्रोध भाव तैं करै। तहां क्रोधी भी अशुभ-कर्मन का आस्रव करै है। याका नाम प्रादोषि की क्रिया है। ६। अब कायिक क्रिया कहिये है—तहां जानैं शरीर पाय, चोरी करी। जीव घात किया। पर-स्त्री सेवन किया। मद्य-मांस भक्षण किया। अपने कुल निन्द्य, अपने धर्म निन्द्य, खान-पान निन्द्य क्रिया करि। द्यूत रम्या। युद्ध किया। पर-जीवन कूं भय उपजाये। इत्यादिक ता शरीर तैं बहुत अपराध किये। ताके फल तैं शरीर की नाक छेदन कराई, पांव छेदन कराये इत्यादिक अङ्ग-उपाङ्ग छेदन सहित रहै। तौ भी पर-घात का तौ उद्यम किया करै। ऐसे बहुत पाप-अकार्य करि, भाव बिगाड़ि, अशुभ-कर्म का आस्रव किया और शुभ-कर्म तौ शरीर कौं धारि, कबहूं नहीं करया, अपराध किये। सो सातमी कायिक क्रिया है। ७। आगे

अघकरणी क्रिया कहिये है—तहां जाकौं हिंसा के उपकरण, बहुत बल्लभ (प्यारे) लागैं। तीर, तलवार, तुपक, तोप, सैल, बरछी, कटारी, छुरी इत्यादिक अचेतन, हिंसा के उपकरण हैं। सो ये जा कूं बहुत अनुराग उपजावैं। तिनके निमित्त श्रृङ्गारवे कौं अनेक द्रव्य लगाय आभूषण करावै तथा चीता, बाज, श्वान, सिंह, सुअर, मार्जार, चोर, ऐंठा देनेहारे, घर फोड़नेहारे, ठग, फांसी करनहारे इत्यादिक ये चेतन, हिंसा के उपकरण जाकौं प्यारे लागैं इनकौं भला भोजन देय। बड़े भारी वस्त्र देय इत्यादिक चेतन-अचेतन हिंसा के पाप के सहाई उपकरण तिनकौं देखि हरष भाव करना, सो अशुभ आस्रव के करनहारे भाव जानना। याका नाम आठवीं अघकरणी क्रिया है। ८। आगे परितापि की क्रिया कहिये है। तहां अपनी इच्छा करि जान-बूझ पूछ करि ऐसी क्रिया करै जाकरि पर-जीवन कूं पीड़ा होय। जैसे—काहू ने कौतुक हेतु हस्ती का युद्ध कराया। मीढेन का युद्ध कराया। क्रूर जीव नाहर का युद्ध किया सर्प नेवले की युद्ध किया घोटक युद्ध, महिष युद्ध, ऊँट युद्ध, नर युद्ध इत्यादिक युद्ध क्रिया अन्य जीवन की करावनी। तिन तैं कोई के शिर फूटैं। केई के पद भङ्ग भये इत्यादि अन्य जीवनकूं बलात्कार दुःखी करि आप हर्ष पावना। सो परितापि की क्रिया, अशुभ आस्रव की करनहारी है तथा नदी, कूप, बावड़ी, सरोवर विषैं, कौतुक हर्ष के हेतु कूदना ताकरि दीन जीव जलचर, तिनका घात करना, दुःखी करना। जान-बूझ-पूंछ काहू के लात, मूकी, लाठी, शस्त्र मार दुःखी किए इत्यादि क्रिया करि अशुभ-कर्मन का आस्रव करना, याका नाम नववीं पारितापि की क्रिया है। ९। आगे प्राणतिपाति की क्रिया कहिये है। तहां जो जीव अपने तनतैं पर-जीवन के तन का नाश करै। जैसे—खेटक करनेवाले की क्रिया तथा चाण्डालादिक दया रहित, पर-जीवन का घात करनहारे तिनकी क्रिया तथा चोर व फँसियारा अपने हाथ तैं पर-जीवन का घात करैं, सो क्रिया इत्यादिक पर-जीव घातवे की क्रिया हैं। सो सर्व पाप का आस्रव करैं हैं। याका नाम प्राणतिपाति की दशवीं क्रिया है। १०। आगे दर्शन क्रिया कहिये है—जहां पराया भला रूप देखवे की इच्छा, कोई स्त्री-पुरुष का अच्छा रूप सुनै, तौ ताके देखवे की अभिलाषा होने की क्रिया। पुरुषकौं अनेक पट-आभूषण पहराय, स्त्री का रूप आकार बनाय, देखवे के परिणाम। कोई देव, देवी, मनुष्यनी के रूप का बखान सुनि कैं, तैसे रूप देखवे कूं चित्त का विह्वल होना तथा अनेक प्रकार षट्रस भोगवे की अभिलाषा।

रसना के रञ्जावनेहारे भोजन तैं सुखी, रसना कूं अरति उपजावनेहारे भोजन-रस मिलै दुःखी, ऐसे भावन तैं जीव अशुभ-कर्म का आस्रव करै। याका नाम ग्यारहवीं दर्शन क्रिया है। ११। आगे स्पर्शन क्रिया कहिये है। तहां जो जीव अपने काय के स्पर्शने कूं कोमल शय्या के निमित्त, सचित्त फूल-बौंड़ी तिनकी शय्या रचना करै। तामें शयन करि-लोट, आनन्द मनावै। पाप का भय नाहीं, दया का विचार नाहीं, हिंसा का तरस नाहीं, अपनी इन्द्रिय पोषी जाय सो करना तथा योग्य-अयोग्य कुल नहीं विचारै। भावै स्पर्शवे योग्य होऊ, भावै नीच अस्पर्शवे योग्य होऊ, जाका तन सुन्दर होय कोमल होय, सो स्पर्शन इन्द्रिय का भोगनेहारा ताकौं स्पर्शै है। नीच-ऊँच नहीं विचारै। सो बारहवीं स्पर्शन क्रिया है। १२। आगे प्रात्ययिनी क्रिया कहिये है। जहां पाप करने के कारण नाना प्रकार शस्त्र, तीर, गोली, छुरी, कटारी, तरवार जाल, पींजरा, फाँसि, फन्दा, चेप, कुप इत्यादिक हिंसा के कारण शस्त्र तिनकी अत्यन्त चतुराई बनावने की जानौं होय। सो ऐसे अद्भुत् शस्त्र बनावै, तैसे और कोई तैं नहीं बनैं। ऐसे अपूरव दुःख के कारण शस्त्रादि करने की कला-चतुराई, सो महाअशुभ-कर्म का आस्रव करै। याका नाम प्रात्ययिनो क्रिया है।१३। आगे समन्तानुपातनी क्रिया कहिये है। जो गृहस्थ के मन्दिर प्रसूत के स्थान हैं। ये भोगी जीवन के स्पर्श करने के हैं। जहां सराग क्रीड़ा सदैव होय। सो ऐसे स्थान त्यागीन के रहवे के नाहीं। ये सराग स्थान त्यागीन कौं योग्य नाहीं, अयोग्य हैं, भय के कारण हैं। तातैं जो यति आदि संयमी, इन गृहस्थन के घर में आवै, तौ महासावधान, प्रमाद रहित, वीतराग दशा सहित, भोजन निमित्त आवैं। सो जेते काल सराग नहीं होंय, दोष टालि भोजन लेंय। सो जातैं तथा आवतैं, संयमी अपने तन के श्लेषमादि मल-मूत्र, प्रमाद के योग तैं कदाचित् गृहस्थी के घर विषैं नाखैं। तौ ऐसे प्रमाद-भावन तैं अशुभ आस्रव करैं। याका नाम समन्तानुपातनी क्रिया है। १४। आगे अनाभोग क्रिया कहिये है। जहां बिना देखे वस्तु कौं धरती पै धरना, बिना देखे धरती तैं उठाना। सो यति तौ कमण्डलु, पीछे, तन इत्यादिक धरैं सो बिना शोधे धरती, बिना पीछी तैं पूछैं, धरै तो अशुभ आस्रव करैं हैं और श्रावक भी अनेक वस्तु धरना-उठावना बिना देखे, प्रमाद सहित करैं, तौ अशुभ आस्रव करैं। याका नाम अनाभोग क्रिया है। १५। आगे स्वहस्त क्रिया कहिये है। तहां जे दुराचारी, दुष्ट स्वभाव का धरनहारा, महापापी, अपने हाथ ऐसे पाप का कार्य करै। जो ऐसा निषिद्ध खोटा कार्य और

तैं नहीं बनै। ऐसी काय का धारी महापाप का आस्रव करै। यह ऐसा पापी है कि यदि याके कहै कोऊ पाप कार्य न करै तथा कोई करता पाप कार्य तैं डरै। तो यह निर्दयी ऐसा प्रेरक होय कहै। जो हे भाई! यो पाप हमारे शिर है। तू मत डरै। ये पाप का कार्य निःशङ्क होय करि। ऐसे भाव का धारी बड़े पाप का आस्रव करै। याका नाम स्वहस्त क्रिया है। २६। आगे निसर्ग क्रिया कहिये है। तहां जो दुरात्मा कौं भला कार्य तौ सिखाये ही नहां आवै। शुभ कार्यन विषैं मूढ़ता, भली बात बोलना न आवै और अनेक कुकार्य, बिना सिखाये ही अपनी बुद्धि तैं उपावै। अनेक युक्ति, पाप-कार्य करने की उपजै। आप करै, औरन कूं कुकार्य उपदेशै। ऐसे जीव अपने भाव तैं पाप-कर्म का आस्रव करैं। याका नाम निसर्ग क्रिया है। २७। आगे विदारण क्रिया कहिये है। तहां जो जीव अपना अवगुण लोकन में आप प्रगट कहै। जो मैं बड़ा चोर हूं। मो-सा और नाहीं। अनेक संकट में, महागूढ़ स्थान मैं, धन धरचा होय, तहां तैं ल्याऊँ तथा कहै, जो मो-सा ज्वारी और नाहीं तथा कहै, हम पर-स्त्री सेवनहारे हैं तथा कहै, मैं बड़ा पाखण्डी हूँ मो-सा पाखण्डी और नाहीं। बड़ा झूठा हों तथा मैं बड़ा दगाबाज हों इत्यादिक अपने अवगुण की प्रशंसा, अपने मुख तैं करै। ऐसा जीव अपने भावन की वक्रता करि, अशुभ-कर्म का आस्रव करै। सो याका नाम, विदारण क्रिया है। २८। आगे जिन-आज्ञा उल्लंघन क्रिया कहिये है। जो विषय-कषायन मैं उद्यमी, पंचेन्द्रिय पोषवे कूं अनेक उद्यम करै। कदाचित् तन की शक्ति नहीं भई होय, तो बुद्धि बल करि मन तैं बड़ा उपाय करै। परन्तु जैसे बनै तैसे, विषय पोषण करि, सुख मानै। जिनके सेवनतैं पुत्र वध, न होता जानै, ऐसे कुदेव तथा जिनतैं रसायन होती जानै तथा वैद्यादिक कला के धारी, जन्त्र-मन्त्रादि चमत्कार बतावनहारे-गुरु, इनकी सेवा में सावधान। तिनकी आज्ञा प्रमाण तौ करै। जिन भाषित धर्म-सेवन में शिथिल, स्वर्ग-मोक्षदाता तप, व्रत, पूजा करने मैं प्रमादी। कायर ऐसा कहै, जो मेरे तन में शक्ति नाहीं। अशक्ति जानि, आलस सहित, शुद्ध धर्म की क्रिया करै। सो भी अपनी इच्छा रूप करै जिन-आज्ञा प्रमाण नाहीं करै। ऐसे भावन का धारी अशुभ आस्रव करै। याका नाम जिन-आज्ञा उल्लंघन क्रिया है। २९। आगे बीसवीं अनादर क्रिया कहिये है। जो जीव शास्त्रोक्त तप, संयम, पूजा, दान, चारित्र, ध्यान पाठादि धर्म क्रिया करै सो सर्व अनादर सहित करै। यह अभागी धर्म-भावना रहित पापाचारी

आर्त्त-रौद्र के विकल्पन करि भरया है हृदय जाका। ताकैं चोर-ज्वारीन का तौ आदर आप जैसे पापी, पाखण्डी, सप्तव्यसनी, चोरन के सहाई, तिनका आदर करै और महालोभी पर-स्त्री इच्छुक धन के लोभ कौं व पर-स्त्री वश करने कौं अनेक मन्त्र-तन्त्रन का साधन करै, तप करै, जप करै, सो महाआदर सूं करै। अरु कल्याणकारी धर्म क्रिया आदर बिना करै। ऐसी परिणति का धारी, अशुभ-कर्म का आस्रव करै। याका नाम अनादर क्रिया है।२०। आगे आरम्भ क्रिया कहिये है। तहां अपनी शक्ति तौ आरम्भ करने की नाहीं। तब और के किये पापारम्भ तिनकौं देख हर्ष करना। जैसे—किसी के किये मन्दिर, गढ़, कोट, कूप, बावड़ी, सरोवर बनते देखि-महाआरम्भ देख आप अनुमोदना करनी तथा पर के व्याह में बड़ा आरम्भ देखि प्रशंसा करनी इत्यादिक भावनतैं अशुभ-कर्म का आस्रव करै है। याका नाम आरम्भ क्रिया है।२१। आगे परग्राहणी क्रिया कहिये है। तहां जे जीव लोभ के भरे योग्य-अयोग्य नहीं गिनैं। ये लेने योग्य है, ये नहीं लेने योग्य है। ऐसा भेद तीव्र लोभ के उदय नहीं विचारै। पर-वस्तु अपने हाथ आवै सो सब लेय। देव-धर्म का माल जो धर्म निमित्त का और भगनी, पुत्री का, भानजे का इत्यादिक ये लौकिक निन्द्य पर द्रव्य है। सो जो महालोभ सहित जीव होय है सो लोभी धर्म-अर्थ का भी द्रव्य विषय में लगावै। बहिन-भानजे का धन लेय इत्यादिक लोभी के हाथ आवै सो तजै नाहीं। ऐसे पर माल ग्रहण रूप भावन का धारी अशुभ-कर्म का आस्रव करै। याका नाम पर-ग्राहणी क्रिया है।२२। आगे माया नाम क्रिया कहिये है। तहां जे जीव पर-जीवनकौं ठगनेकौं महाचतुर अनेक युक्ति देय अनेक विद्याकर पराया धन हरैं। अनेक कलान करि अपने विषय-कषाय पोषण करैं इत्यादि पाप-कार्यन में तौ प्रवीण होय हैं और जे जिन भाषित शुद्ध-धर्म की क्रिया तिनमैं मूरख समानि भोला जिन-पूजा नहीं जानै जो कैसे करैं व कैसे पढ़ैं हैं। भगवान् की स्तुति नहीं करि जानैं। प्रभु का दर्शन नहीं करि जानैं। जिनकी दया महापुण्यकारी होय ऐसे षट्-जीव तिनके नाम-भेद नहीं जानैं। संसार भ्रमण के जो स्थान च्यारि गति ताका स्वरूप नहीं जानैं। आप जीव है सो आपकूं जीवत्व भाव नहीं जानैं। इत्यादिक कल्याणकारी धर्म सम्बन्धी बात क्रिया तौ नहीं जानैं। ऐसे भाव का धारी जो पाप में चतुर धर्म में मूढ़ सो पाप आस्रव करि पर-भव बिगाड़ै है। याका नाम तेईसवीं माया क्रिया है।२३। आगे मिथ्यादर्शन क्रिया कहिये है। जो जीव आप मिथ्यात्व रूप क्रिया करै। औरनकूं उपदेश देय।

जैसे—आप तौ धन का लोभी तथा मान-बड़ाई के अर्थ मिथ्या देव-गुरु की सेवा करै। जो मोकूं धन देय मोकूं पुत्र, हाथी, घोटक देय इत्यादिक वस्तु के लोभकौं मिथ्या-मार्ग सेवन करै तथा और भोले अज्ञानी जीवनकूं उपदेश देय कुदेवादिक के अतिशयकौं कहै कि ये देव प्रत्यक्ष वांछित देय है। हमने इनकी सेवा करी सो हमें ऐसी वांछित वस्तु देय हमारी वांछा पूरी करी इत्यादिक अतिशय जानि देवादिककूं आप सेवना औरनकूं उपदेशना। सो ऐसे भावन तैं जीव संसार दुःख देनहारे पाप-कर्म ताका आस्रव करैं हैं। याका नाम चौबीसवीं मिथ्यादर्शन क्रिया है। २४। आगे अप्रत्याख्यान क्रिया कहिए है। सो जे जीव अज्ञानता के योग तैं तथा परिणामन की क्रूरता तैं सर्व ही पाप-कार्य करैं कोई पाप का त्याग नाहीं। ते मूर्ख केई तो ऐसा कहैं जो हम तौ भोले हैं। हमकौं पाप नहीं लागै जो समझै हैं, ताकौं पाप भी लागै है। सो हम तौ कछु समझते नाहीं जो पाप कहा होय है अरु पुण्य कहा होय है? और केई जीव कहैं हैं कि जो हे भाई! पाप-पुण्य तो है ही नाहीं। तातैं भय काहे का? निःशङ्क होय भोग सुख करना। केई प्राणी कहैं हैं। अरे देख लेहैं जब मरेंगे तब। हाल तौ अपनी इच्छा होय सो करौ। मरती बार धर्म लेय लेहैं। केई कहैं हैं कि जो तुम चाहौ सो करौ पाप होय तौ याका फल हमकूं लागै। इन क्रियान तैं नरक होय तौ हमें होऊ। हे भाई! यहां ही वांछित नहीं मिलै तौ नरक है और यहां ही सुख मिलै तो स्वर्ग है। तातैं सुख तैं रहौ। हाल ही छते सुख काहे कौं तजौ हौ? इत्यादि स्वेच्छाचारी होय सर्व पाप करैं। योग्य-अयोग्य का कछू विचार नाहीं। कोई पाप का त्याग नाहीं करैं। ऐसे भावन के धारी अशुभ आस्रव करैं। याका नाम पच्चीसवीं अप्रत्याख्यान क्रिया है। २५। इति। पच्चीस क्रिया आस्रव की कहीं।

आगे राजा श्रेणिक ने श्री गौतम स्वामी तैं प्रश्न किये थे तथा तीर्थङ्कर की माता तैं देवाङ्गना ने प्रश्न किये थे तथा और अनेक शास्त्रन में धर्मी-जीवन के प्रश्न प्रमाण यहां पुण्य-पाप का फल प्रगट जानवेकूं शिष्यन की प्रश्नमाला लिखिये है। तहां शिष्य गुरु के पास विनय सहित होय पुण्य-पाप के फल प्रगट जाननेकूं प्रश्नमाला की जो पङ्क्ति सो पूछैं है। हे गुरु-देवजी! यह जीव अन्धा कौन पाप तैं होय। तब गुरु कही—जिन जीवन ने अन्य भव विषय अन्ध जीवन के नेत्र दुःखाये होंय, पर के नेत्र फोड़े होंय। पर की आँख दुःखती देख सुखी भया होय।

परकौं अन्धा भया जानि अनुमोदना करी होय। अन्धे जीवन की हाँसि करि बहकाया होय। अन्धेन का धन, वस्त्र छल-बल करि हरचा होय इत्यादिक पापन तैं जीव अन्धे होंय तथा नेत्र रहित तेइन्द्रिय आदि अन्धे जीव उपजैं हैं। १। बहुरि शिष्य पूछै है। भो प्रभो! जीव बधरे कौन पाप तैं होंय? सो दया करि कहौ। तब मुनि कही—जे जीव अपने काननतैं विकथा सुनि हर्ष पाया होय। सत्य वचन सुनि ताकूं असत्य कहा होय। झूठा वचन सुनि जानि ताहि सत्य करि मान्या होय तथा अपराधी चुगलन के मुख तैं असत्य पापकारी वचन सुनिकैं पर-जीवन पर दोष लगाय घर लूट्या होय। दण्ड कर दिया होय। घर, स्त्री, गज, घोटकादि खोंस लिये होंय। औरन के कान द्वेष-भाव करि छेदन किये होंय तथा औरन कूं बधरे जानि कुवचन बोले होंय तथा परकूं बधिरे जानि ताकी हाँसि कौतुक करि हर्ष मान्या होय। पराये दीनता के वचन न्याय रूप सुनिकैं अनसुने किये हांय तथा दीन आय-आय याचना रूप वचन कहैं तिनकूं सुनि मान के जोर तैं जबाब नहीं दिया होय तथा अन्य जीवन नैं आपकूं भला मनुष्य जानि विनय-वचन कहे नमस्कारादि किया तिनकौं मानो होय पीछे प्रति उत्तर नमस्कारादि नाहीं करचा होय। सुन्या-अनसुन्या किया होय इत्यादिक पापन तैं बधिरा होय है तथा कान रहित चौइन्द्रिय होय है।२। पीछे और प्रश्न शिष्य करता भया। हे यतिनाथ! लूला कौन पाप तैं होय? तब यति कही—हे वत्स! जाने पर-भव में अपने हाथ तैं पर के पाँव तोड़े होंय तथा दीन पशूनकूं लाठी-लाठी मारि दया रहित चित्त करि तिनके पांव तोड़े होंय तथा शस्त्र तैं दीन पशून के पांव तोड़े होंथ। पर कौं लूला-पग रहित जान ताका वस्त्र वासनादि ले भागा होय तथा पर के पाँव छेद तैं आप खुशी भया होय तथा इस कौतुक कूं देख हर्षाया होय तथा पर कौं लंगड़े जानि बहकाये होंय, ताकी हँसी करी होय इत्यादिक पाप तैं लंगड़ा होय तथा पाँव रहित, हलन-चलन रहित एकेन्द्रिय होय।३। बहुरि शिष्य पूछी हे नाथ! मुख रहित तथा मुख सहित मूंका, कौन पाप तैं होय? तब गुरु कही—हे वत्स सुबुद्धि! चित्त देय सुनि। जिन जीवन नैं पर के मुख मूंदि, तिन्हें शस्त्र मारे होंय तथा मुख में शस्त्र घालि, वचन बन्द करि, दुःखी किया होय तथा पर कौं भले वचन बोलते देखि, ताकौं मनै किया होय तथा मुख पाय कैं असत्य बोलिकैं, अन्य जीवन का बुरा किया होय तथा रसना इन्द्रिय का लोलुपी बहुत रह्या, ताके निमित्त अनेक जीवन की हिंसा करी होय तथा

अभक्ष्य वस्तु तो रसना तैं बहुत भली लागी होय तथा मुख करि अन्य जीवनकौं कोप करि श्वानादिक की नाईं काटे होंय तथा और कूं मूंका देखि, तिनकी हाँसि करि, बहकाये होंय तथा अन्य जीवनकूं प्रच्छन्न वचन, जामें वह नहीं समझै ऐसे वचन बोलि, दुर्वचन कहि कैं हर्ष मान्या होय इत्यादिक पापनतैं मूंका होय है।४। तब फेरि शिष्य प्रश्न करता भया। हे नाथ! यह जीव निर्धन कौन पाप तैं होय? तब गुरु कही—भो वत्स! जिननैं पर-भव में अन्य जीवन का धन चोर करि, उन्हें निर्धन किया होय तथा पर कौं झूठा दोष लगाय, आपने जबरी तैं ताका धन लूट, अन्य कौं निर्धन किया होय तथा पर कौं भय देय, दुःख देय ताका धन छीन लिया होय तथा धन जोड़ने कौं अनेक स्वाङ्ग धरि, पराया धन ठगा होय। ऐसे अपराधी जीव, निर्धन होय हैं तथा परकौं धनवान् न देख सक्या होय। पर के घर में धन देखि, आप दुःखी भया होय तथा परकौं धनवान् देखि ताके धन खोवने कूं अनेक चुगली राज-पञ्चन में करि, ताका धन नाश कराय, निर्धन किया होय तथा अन्यकूं धन की पैदायश कोई कार्य में जानी, ताके कार्य का घात किया होय इत्यादिक पाप-भावन तैं प्राणी, भवान्तर में निर्धन होय तथा निर्धन होने के अनेक भेद है। जिननैं पराया-धन अग्नि में जलता देखि, हर्ष पाया होय तथा अपने पराये-धन कौं अग्नि लगाय, निर्धन किया होय तौ तिस पाप तैं अपना धन अग्नि में जल आप निर्धन होय तथा पर-धन जल में डूबता देखि-सुनि हर्ष पाया होय तथा अपनी दगाबाजी तैं नदी-सरोवर में पराया धन डुबोय परकौं निर्धन किया होय। तिस पाप तैं भवान्तर में आपका धन नदी-सरोवर में जहाज डूबैं, नाव डूबै। ऐसे आप निर्धन होय तथा औरन के घर-नगर लुटे सुनि-देखि, आप सुखी भया होय। तौ आप भी ताकै फल तैं फौजनिसूं लुटि, निर्धन होय तथा पर का धन, आपने जबरन लूटया होय तथा पर का धन चोरन तैं लुटता देखि तथा सुनि, आप हर्ष मान्या होय। ताकै पाप तैं भवान्तर में आपका धन चोरन तैं लुटि, आप निर्धन होय इत्यादिक निर्धन होने के अनेक भेद हैं। जा-जा परिणामन तैं परकौं निर्धन वांछया होय तथा जा-जा प्रकार पर कूं निर्धन भये देखि, आप खुशी भया होय। तिस ही निमित्त पाय, आप निर्धन होय।५। बहुरि शिष्य प्रश्न किया। भो गुरुनाथ! यह जीव धनवान् कौन पुण्य तैं होय? तब गणधर नै कही—हे भव्यात्मा! जिन जीवन नैं निर्धन पुरुष की दया करि, तिनकौं दान देय, धनवान् करि, सुखी किये होंय तथा निर्धन जीव देखि, तिनकी दया करि धनवान् होना वांछया

होय तथा पर-जीवन कूं धन प्राप्ति भई सुनि, आप सुखी भया होय इत्यादिक शुभ भावना तैं, आप धनवान् होय। ६। पीछे फेरि शिष्य प्रश्न किया। भो गुरुदेव! यह जीव, पुत्र रहित कौन पाप तैं होय? तब गुरु कही—जो जीव पर-भव में पर के पुत्र नहीं देख सक्या होय। पर-जीवन कूं पुत्र की प्राप्ति भई सुनि, आपनै दुःख पाया होय। पर के पुत्र का मरण सुनि, आप सुखी भया होय तथा पर-पुत्र देखि, हर्या चाह्या होय इत्यादिक पापन तैं जीव, पुत्र रहित होय। ७। पीछे फेरि शिष्य प्रश्न किया। नाथ! यह जीव कौन पुण्य तैं पुत्र सहित होय है? तब गुरु कही—हे वत्स! जिन जीवन नैं भवान्तर में पर-जीवन कों, पुत्र सहित देखि सुख मान्या होय तथा परकौं पुत्र की प्राप्ति सुनि, हर्ष पाया होय तथा परकौं पुत्र रहित आर्त्त-ध्यानी-दुःखी पुत्र का अभिलाषी देखि, ताकी दया-भाव करि ताकौं पुत्र होना वांच्छा होय इत्यादिक पुण्यतैं पुत्र सहित होय। ८। पीछे फेरि शिष्य प्रश्न किया—हे नाथ! यह जीव कूं कुपूत पुत्र का संयोग, कौन पापतैं होय? तब गुरु कही—हे वत्स! जिननैं पर-पुत्रकूं बहकायवे में सहायता दी होय, उसे पाप-कार्यन में लगाय, अनेक कुबुद्धि सिखाय, माता-पिता का अविनय किया होय। ताकौं अनेक कुमार्ग लगाय, माता-पितातैं युद्ध कराया होय। पुत्र के पास माता-पिता की निन्दा करी होय तथा पर का सुपूत पुत्र देखि, ताकौं नहीं सुहाये होंय तथा पर के पुत्र चोर, ज्वारी, कुशील आदि विशेष व्यसनी देख, आप हर्षवन्त भये होंय। पर कूं अनाचारी देखि, सुख पाया होय इत्यादिक अशुभ भावन तैं, कुपूत पुत्र का संयोग होय है।९। पीछे फेरि शिष्य प्रश्न करता भया। हे जगत्पति! सुपूत पुत्र का लाभ कौन पुण्यतैं होय? तब गणधर ने कही—जिन जीवन ने पराये कुपूत-कुमार्गी पुत्रन कौं अनेक शिक्षा देय, सुमार्ग लगाये होंय। अनेक नय-युक्ति करि, तिनकूं सुबुद्धि उपजाय, माता-पितान की आज्ञा में किये होंय। पर के सुपूत पुत्र देख, आपकूं सुख उपज्या होय। पर के सुपूत पुत्रन के शुभ लक्षण देखि, तिनकी प्रशंसा करी होय। पुत्रकूं माता-पिता सूं विनयवान् देखि, आप हर्ष पाया होय इत्यादिक शुभ भावना तैं, सुपूत पुत्र का लाभ होय है। १०। पीछे फेरि शिष्य प्रश्न करता भया। हे नाथ! खोटी स्त्री, कौन पाप तैं पावै, सो कहौ। तब गुरु कही—हे वत्स! जे जीव पर के घर में खोटी स्त्री-कलहकारिणी देखि, सुखी भये होंय तथा पर-स्त्री भर्तार में माया करि, कलह

कराया होय। परस्पर द्वेष-पाड़ि, आप हर्षाया होय। पर के घर में सती, विनयवती भली स्त्री देखि, आप कौं नहीं सुहाई होय। पर की भली स्त्रीन कौं देखि, तिनकी निन्दा करी होय इत्यादिक पापन तैं पर-भव में खोटी स्त्री पावै।२१। फेरि शिष्य प्रश्न किया। हे नाथ! भली स्त्री कौन पुण्यतैं पावै? तब गुरु कही—हे भव्यात्मा! जानै पर-स्त्रीन के अवगुण छुड़ाय, उन्हें गुणवती करी होय तथा पर-स्त्रीन के शीलादिक गुण, भरतार के विनय रूप देखि, जाकौं सुख भया होय तथा पर-स्त्रीन के शील-गुण की रक्षा करी होय तथा शीलवान् सती स्त्रीन की प्रशंसा करी होय इत्यादिक शुभ भावन तैं शुभ-स्त्री पावै। २२। तब फेरि शिष्य प्रश्न पूछी। हे नाथ! ये जीव संसार में अपमानी कौन पाप तैं होय? तब गुरु कही—हे भव्य! जिनने पर-भव में अनेक जीवन का मान खण्ड्या होय तथा माता-पिता, गुरुजन का मान नहीं राखा होय तथा देव-गुरु-धर्म का अविनय किया होय तथा पर-जीवन कूं अल्प पुण्यी जानि तिनका अनादर करि, पर-जीवनकूं दुःख उपजाया होय तथा अपनो महिमा अपने मुख तैं करि, पर कौं निन्दे होंय तथा आप कूं महन्त जानि, दीन जीवन कूं पीड़ा उपजाई होय इत्यादिक पाप भावन तैं, पर-भवमैं अपमानी होय। २३। बहुरि शिष्य प्रश्न करता भया। हे गुरुदेव जी! जीव जग में कीर्तिमान् कौन पुण्य तैं होय? तब गुरु कही—जिन जीवन ने अपने मुख तैं पर-भव में तीर्थङ्कर, चक्री, कामदेवादिक महापुरुषन के गुण की कीर्त्ति करी होय। पर की कीर्त्ति सुनि आप सुख पाया होय। पराये दोष देख आपने दाबे होय तथा देव-गुरु-धर्म की महिमा अपने मुखतैं करी होय तथा माता-पितादि गुरुजन की विनय सहित सेवा-चाकरी करी होय इत्यादिक पुण्य भावनतैं कीर्त्ति-मान होय है। २४। तब फेरि शिष्य मस्तक नमाय पूछता भया। भो त्रयज्ञानी! इस जीव का सर्व कुटुम्ब दुःख-दायक कौन पाप तैं होय? तब गुरु कही—हे शिष्य जिननैं पर के कुटुम्ब में परस्पर साता देखि आपने दुःख मान्या होय। पर के कुटुम्ब में कलह देखि सुख पाया होय तथा पर के घर में परस्पर भ्रातृ-स्नेह देखि अपनी दगाबाजी तैं झूठे वचन बनाय इतके उत-उत के इत कहि परस्पर द्वेष कराय हर्ष मान्या होय इत्यादिक पाप चेष्टा तैं सर्व कुटुम्बी-जन दुःखदायक होय हैं। २५। तब फेरि शिष्य पूछी—हे जगत्पूज्य! सर्व कुटुम्ब सुख-दायक कौन पुण्य तैं होय है? तब गुरु कही—हे वत्स! हे आर्य! जाने और के कुटुम्ब में परस्पर द्वेष देखि,

अपनी बुद्धि के बल करि, तिनका परस्पर स्नेह कराय, सुखी किये होंय। पर के कुटुम्ब विषैं परस्पर स्नेह देखि, सबकूं साता देखि, आपनैं हित पाया होय, आप सुखी भया होय। पर के कुटुम्ब सुखी करने कूं, बहुत धन दिया होय। तन का कष्ट तथा बुद्धि के प्रकाश करि, पर के कुटुम्ब में साता करी होय इत्यादिक शुभ भावनातैं, सर्व कुटुम्ब सुखदायक पावै। २६। बहुरि शिष्य पूछी। हे संघनाथ! शरीर विषैं रोग का समूह कौन तैं होय? तब गुरु कही—जाने पर-भव में कोऊ कौं ओषधि दान देते मनै किया होय। पर के शरीर में रोग देखि, सुखी भया होय। पर शरीर रोग रहित देखि, आप दुःख पाया होय तथा पर-जीवन कूं, रोग वांच्छा होय। औरन के शरीर में रोग देखि, बहुत ग्लानि करी होय तथा रोगी जीव देखि, तिन पै दया-भाव नहीं किया होय तथा अन्य जीवन के तन विषैं रोग बढ़वे कौं, दगाबाजी तैं, अनेक वस्तु खुवा दई होय तथा कबहूं, औषधि दान नहीं दिया होय तथा पराये तन में रोग देखि, तिनकी हाँसि करि उन्हें बहकाये होंय, तिनकी निन्दा करी होय इत्यादिक पाप भावन तैं रोगी-तन होय। २७। आगे शिष्य फेरि प्रश्न किया। भो प्रभो! ये जीव, निरोग शरीर कौन पुण्यतै होय? तब गुरु कही—हे वत्स! जिन जीवन ने पूरव भव में सुपात्रन के तन में रोग की बाधा देखि, भोजन समय प्रासुक ओषधि देय, साता उपजाई होय तथा दीन-दुखियन के तन में रोग देखि, करुणा भाव करि रोग नाशने कूं औषध-दान दिये होंय तथा पर के शरीर में रोग देख अनुकम्पा करी होय तथा पर का निरोग शरीर देखि सुखी भया होय तथा पराये शरीर में रोग देख, ग्लानि नहीं की होय। तिनकी दया करि साता वांच्छी होय इत्यादिक शुभ भावन तैं रोग रहित शरीर होय है। २८। फेरि शिष्य पूछी। हे गुरुनाथ! क्रूर परिणामी दुर्जन-स्वभाव जीवन में कौन कर्म के उदयतैं होय? तब गुरु कही—हे भव्यात्मा! जे जीव दुराचारी नरकन के निवास तैं बहुत काल दुःख भोगि निकसै होंय। सो नरक का आया प्राणी पूर्व पापतैं महाक्रोधी दुराचारी क्रूर परिणामी होय तथा पूर्व भव में मनुष्यायु का बन्ध करि पीछे कुसंग का निमित्त पाय महाक्रूर हिंसामयी वर्त्या होय। सो जीव पूर्वली वासना सहित दुराचारी होय क्रोधी होय तथा जाका पर-भव बुरा होय। हे गुरो! सज्जन भाव सहित जीव कौन पुण्य तैं होय है? तब गुरु कही—हे वत्स! जो जीव देव गति आदि शुभ गति तैं आया होय। सो जो पूर्व भव की भली चेष्टा थी सो ताही कूं लिये दया-भाव के फल तैं महान् पुरुषन की संगति पाय तामें भले उपदेश

सुनि सज्जन स्वभावी होय तथा पर-जीवन की सज्जनता देखि हर्ष पाया होय। बड़े गुरुजन की सेवा, चाकरी, शुश्रूषा करी होय। इत्यादि पुण्य तैं सज्जन स्वभावी होय। २०। तब फेरि शिष्य पूछी। हे गुरो! ये जीव समता भावी कौन पुण्य तैं होय है? तब गुरु कही—हे धर्मार्थी सुनि। जे भव्य जीव पर-भव में मुनि श्रावकन की शान्त मुद्रा देखि हर्षे होंय तथा जिनेन्द्रदेव की शान्त मुद्रा देखि पद्मासन कायोत्सर्ग मुद्रा देखि जिन ने अनुमोदना करी होय तथा पर-जीवन के क्रूर वचन सुनिकैं समता धर तिन पर क्रोध-भाव नहीं किये होंय। औरन की क्रूरता देखि आपने तिन पै दया करी होय तथा संसार की विडम्बना देखि संसार तैं उदास भये होंय तथा धन-तनादि सम्पदा सामग्री चञ्चल देखि राग-द्वेषादि भाव दुःखदाता जानि क्रोध मानादि तजि मन्द कषाय रह्या होय इत्यादिक शुभ भावन तैं समता-भाव प्रगट होय है। २१। तब फेरि शिष्य प्रश्न करता भया। हे जगत्गुरु! यह जीव धर्मात्मा कौन पुण्य तैं होय? तब दयालु-भाव सहित गुरु ने कही—हे भव्यात्मा! हे भद्र परिणामी! जिन जीवन नैं पर-भव में महासमता-भाव राखे होंय। धर्मात्मा जीवनकौं धर्म-सेवन करते देख अनुमोदना करि पुण्य उपाया होय तथा अनेक जीवन पै दया-भाव किये होंय तथा धर्म उत्सव देखि हर्ष पाया होय तथा धर्म के अनेक भेद हैं। सो जिस जाति के धर्म अङ्ग देखि आपकों अनुमोदना उपजी होय। तिस ही जाति के धर्म अङ्ग का लाभ पर-भव में जीवकौं होय है। सो ही कहिये है—जिस जीव ने पर-भव विषैं और धर्मात्मा जीवनकौं तप करते देखि हर्ष किया होय। तपस्वी पुरुषन की सेवा-चाकरी करी होय। तप कौं उत्कृष्ट सुखदाता जानि ताके करवे की अभिलाषा करी होय इत्यादिक तप अङ्ग की अनुमोदना के फल तैं भवान्तर में तप धर्म का लाभ पावै। बहुरि जिन ने औरनकौं भगवान् की पूजा व स्तुति करते देखि अनुमोदना करी होय तथा भगवान् के भक्त जन देखि तिनमें प्रीति भाव करि तिनकी सेवा-चाकरी करि होय। आपकौं भगवान् की पूजा करवे का अभिलाष बहुत रह्या होय इत्यादिक पूजा की अनुमोदना चाहि रूप भव पटल तैं भवान्तर में प्रभु की पूजा के भाव होंय। पूजा धर्म अङ्ग पावै और जिन जीवननें पर-भव में अन्य जीवन कूं नियम आखड़ी करते देख तथा घृत-दुग्धादि रसन कों त्याग करते देख तथा ताम्बूल वस्त्रादि परिग्रह के प्रमाण करते देखि तथा दया-भाव सहित प्रवृत्ति देख तिनकी प्रशंसा करी होय तथा अन्यकूं संयमी देखि संयम की अभिलाषा की होय इत्यादिक संयम की अनुमोदना

के फल तैं भवान्तर में संयम-सम्पदा पावै और जिननं पर-भव में और जीवन कौं सिद्धक्षेत्र-यात्रा कूं गमन करते देख तथा सिद्धक्षेत्र वन्दना के निमित्त संघ जाते देखि ताकी अनुमोदना करी होय तथा सिद्धक्षेत्र-यात्रा करने की अभिलाषा रही होय तथा सिद्धक्षेत्र-यात्रा करनेवालों की सहायता करि साता उपजाय सुखी किये होंय इत्यादिक पुण्य भावन तैं भवान्तर में सिद्धक्षेत्र-यात्रा का बहुत लाभ होय। पर-भव में आचार्यन कौं उपदेश देता देख तिन धर्मी पुरुषन का उपदेश सुनि तिनके ज्ञान की शान्ति-भावना को प्रशंसा की होय। धर्म के उपदेश दाता की भक्ति करि आनन्द मान्या होय इत्यादिक भावन तैं धर्मोपदेश देने का उत्तम ज्ञान पाय अपना तथा पर-जीवन का कल्याण करै है। ऐसे धर्म-अङ्गन के अनेक भेद हैं। सो जा-जा धर्म-अङ्ग का सहाय किया होय अनुमोदना करी होय ताही धर्म-अङ्ग का लाभ होय। धर्म का फल उपजावै। २२। बहुरि शिष्य प्रश्न करता भया। हे नाथ! यह जीव बलवान् कौन पुण्य तैं होय? तब गुरु कही—हे भव्य! जिन जीवन नैं पर-भव विषैं दीन-जीवन की दया करि रक्षा करी होय तथा अशक्त-जीवनकौं देखि तिन पै दया-भाव करि तिनके दुःख मैट सुखी करवेकौं अनेक उपाय करि रक्षा करी होय। निर्बल जीवनकौं भलै भोजन पान देय दया-भाव करि सुखी किये होंय। नंगेन कूं वस्त्र, रोगीनकौं औषधि देय पुष्ट किये होंय। औरनकौं अनेक साता उपजाय रक्षा करी होय इत्यादिक शुभ भावनतैं जीव भवान्तर विषैं बलवान् होय। २३। बहुरि शिष्य प्रश्न किया। हे नाथ! हे यति पति! यह जीव निर्बल कौन पाप तैं होय? तब गुरु कही—हे वत्स! जिन जीवन ने पर-जीवन का खान-पान बन्द करि निर्बल करि डारे होंय तथा दीन जीव बल रहित देख तिनकी हाँसि करि तिनकौं लज्जावान् किये होंय तथा बल रहित जीवनकौं मारे होंय, बांधे होंय, लटकाए होंय। आपकौं बलवान् जानि अपने बल-मद आगे औरनकौं बल रहित जानि अनेक भय उपजाय दुःखी किये होंय तथा अपने बल मद के आगे सिंह-हस्ती की नाईं मदोन्मत्त वर्त्या होय। अन्य जीवन का बल देख आपने द्वेष-भाव किया होय इत्यादिक पाप भावनतैं बल रहित होय है। २४। फेरि शिष्य पूछी। हे नाथ! यह जीव भयवान् कायर चित्त का धारी कौन पाप तैं होंय? तब गुरु कही—हे भव्यातमा! सुनि, जिन जीवननैं पर-जीवनकौं अनेक भय उपजाये होंय। प्राण नाश का भय देय कम्पायमान करे होंय। धन नाश का भय दिया होय। घर लुटने का भय दिया होय तथा ताकी आबरू-खंडवे का भय दिया

ोय तथा घर के मनुष्य पकड़ने का भय दिया होय तथा राज-पंच का भय बताय, भयवन्त किये होंय तथा चोर, सिंह, हस्ती इन आदि पशून का भय देय दुःखी किये होंय तथा रण तैं भागते भयवन्त दीन जीव, तिनकी हाँसि करी होय तथा औरनकौं भयवन्त कायर देख आप हर्षवन्त भया होय इत्यादिक दया रहित भावन तैं कायर होय है। २५। बहुरि शिष्य प्रश्न करता भया। हे गुरो! यह जीव शूरवीर निर्भय कौन पुण्य तैं होय? तब गुरु कही—हे वत्स! जिन जीवन नैं पर-भव में दीन जीवनकौं अभयदान दिया हाय। करुणा करि पर-जीवन की रक्षा करी होय तथा किसी जीव ने काहू दीन-दुःखी जीवकौं भय बताय दुःखी किया होय। ताकौं देख आप दया-भाव करि, अपने भुजबलतं दीनकौं दुष्ट तैं बचाय, सुखी करि, भय रहित किया होय तथा त्रस-स्थावर जीवन पै दया-भाव राखे होंय तथा अनेक जीवनकूं राज, पंच, दुष्ट, सिंहादि जीव तिनके उपद्रव तैं बचाय निर्भय किये होंय तथा भयवन्त जीवन के दया-भाव करि स्थिर भाव किये होंय तथा भय रहित सुखी जीवन कूं देख आपकूं सुख भया होय इत्यादिक शुभ भावन के फल तैं निःशङ्क चित्त का धारी शूरवीर होय हैं। २६। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुजी! यह जीव उदारचित्त सहित दातार कौन पुण्य तैं होय? तब गुरु कही—हे भव्यात्मा! जिन जीवन नैं पर-जीवनकौं सुपात्र दान देते देख, अनुमोदना करी होय तथा दीन दुःखित-भुखित देख तिन जीवन की तानैं दया करी होय तथा दान देने की बहुत अभिलाषा करी होय तथा धर्म निमित्त धन देते सुख पाया होय इत्यादिक शुभ भावतैं उदार चित्त सहित दाता होय है।२७। बहुरि फेरि शिष्य कही—हे यति पति! यह जीव सूंम किस कर्म के उदय करि होय सो कहो। तब गुरु कही—जिन जीवन नैं पर-भव में कोई जीवकूं दान देते मनैं किया होय। औरनकौं धन खर्चते देख आपने दुःख मान्या होय। पर-भव में नाना कष्ट पाय धन जोड़ि कर आप नहीं खाया नहीं औरनकूं खुवाया अरु और धन जोड़ने की अभिलाषा रही होय। अत्यन्त तीव्र तृष्णा के भावन में मरण किया होय तथा औरन के दान की निन्दा करी होय इत्यादिक पाप-भावनतैं सूमता सहित लोभी होय।२८। फेरि शिष्य पूछी। यह जीव पण्डित कौन कर्म तैं होय? तब गुरु कही—हे वत्स! जिन जीवन नैं पर-भव में विद्या का दान दिया होय। औरनकूं पण्डित-विद्यावान् जीव देख तिनकी सेवा-चाकरी करी होय। अज्ञानी जीवन की संगति तैं जिनके अरुचि रही होय। जो धर्म शास्त्रन के वेत्ता हैं

तिनकी स्तुति करी होय तथा धर्म-शास्त्रन कौं आप लिखे तथा घर-धन खरच के लिखाय धर्मात्मा-जीवन के पठन-पाठनकौं दिये होंय । तिन शास्त्रन के उपकरण जो पूठा-बंधना उत्तम कराये होंय तथा शास्त्राभ्यास करने की बहुत अभिलाषा रही होय तथा अन्य विद्या अभिलाषी भव्य जीवन कौं धर्म-शास्त्र का ज्ञान कराया होय इत्यादिक पुण्य-भावन तैं पण्डित होय ।२९। और फिर शिष्य पूछी । हे नाथ ! हे तपोधन ! यह जीव मूरख कौन पाप तैं उपजै है ? तब गुरु कही—जिन जीवन नै पण्डितन की हाँसि करी होय तथा धर्म-शास्त्र के सुनवे में अरुचि भाव किये होंय तथा धर्म-शास्त्र चुराये होंय तथा तिनके बन्धन-पूठे चुराये होंय तथा धर्मार्थी पण्डित तैं द्वेष-भाव किये होंय इत्यादिक पापन तैं मूरख होय ।३०। बहुरि शिष्य पूछी । हे गुरो ! यह जीव पराधीन कौन पापों तैं होय । तब गुरु कही— हे भव्य ! जिन जीवन नै पर-भव में पर-जीवनकौं बन्दी में राखे होंय तथा अन्य जीवनकूं तुच्छ धन देय अपने वशीभूत राखे होंय तथा कर्जादिक के आवने करि निर्धन जीवनकूं रोके होंय तिनकौं तुच्छ-अल्प अन्न-जल देय अपने वश राखे होंय तथा बलात्कार-जोरावरी करि पर-जीवनकौं अपने आधीन राखे होंय तथा पराधीन जीवन की हाँसि करी होय तथा पशुन कौं राखि, तृण-जल देने में प्रमादी रह्या होय इत्यादिक पापन तैं पराधीन होय ।३१। बहुरि शिष्य पूछो । हे प्रभो ! यह जीव स्वाधीन कौन पुण्यतैं होय ? तब गुरु कहो—जिन जीवननें पर-भव में अन्य कौं खान-पान देय कुटुम्ब सहित तिनकी स्थिरता करी होय तथा दीन जीवन कौं खान-पान देय, साताकारी वचन कहि, तिनकौं निराकुल किये होय तथा पराधीन जीव देखि ताकौं अनुकम्पा उपजी होय । पर-जीवन कूं स्वाधीन-सुखी देख, आप साता पाई होय इत्यादिक पुण्य तैं स्वाधीन होय है । ३२ । बहुरि शिष्य प्रश्न पूछी । हे गुरो ! यह जीव कुरूप किस पाप तैं होय ? तब गुरु कही—भो भव्यात्मा ! जिन जीवन कौं पर-भव में पराय रूप की महिमा नहीं सुनाई होय तथा केई पाप-उदय तैं जो रूप रहित भया होय, तिन जीवन के तन की ग्लानि करी होय, सो जीव कुरूप होय तथा कुरूप मनुष्य देखि, ताकी हाँसि करी होय तथा पराया भला रूप देख ताकौं दोष लगाया होय तथा पराये भले रूप कूं विभूति-धूल-कर्दमादि लगाय, विपरीत करि डारया होय इत्यादिक भावन तैं कुरूप होय । ३३ । बहुरि शिष्य पूछी । हे ज्ञानमूर्ति ! ये जीव रूपवान कौन पुण्य तैं होय ? तब गुरु कही—हे वत्स ! जिन जीवननैं पर-भव

मैं पर-जीवन का रूप देख, निरविकार चित्त किये देख, सुख मान्या होय तथा पर-जीवन कूं रूप के योग तैं अनादर पाया देख तिनकी दया करि, रूपवान होना वांच्छ्या होय। धर्म का सेवन करि, रूपवान होना वांच्छ्या होय इत्यादिक शुभ भावन तैं रूपवान होय है।३४। तब फेरि शिष्य प्रश्न किया। हे धर्ममूर्ति ! यह जीव पुण्य के उदय करि अनेक भोग्य वस्तु मिली तिनकौं भी नहीं भोग सकै, सो यह कौन पाप का फल है ? तब गुरु कहो—जिन जीवन नें पर-भव में अन्य जीवन कौं अन्न, जल, मेवा, पान, मिठाई इत्यादिक खावने विषैं अन्तराय किया होय। तिनकूं भली वस्तु द्वेष-भाव करि, खावने नहीं दई होय। औरनकौं सूखी-रूखी कोरी-रस रहित खावता देखि, आप खुशी भया होय। औरनकौं सुख तैं खान-पान करते देख नहीं सुहाया होय। औरन कूं भूखे-प्यासे देख, तिनकी हाँसि करि होय, दुर्वचन कहि दुःखी किये होंय आप रसना इन्द्रिय का लोलुपी होय नाना प्रकार भोग वस्तु भोगी होय। अपने विषय-पोषने कौं नाना प्रकार छल-बल दगाबाजी करि रसनादिक के विषय-भोग सुख मान्या होय तथा पर का भोजन श्वान-मार्जारादि पशू ले गये देख आप सुखी भया होय इत्यादिक पापन तैं छती (उपस्थित) वस्तु भोग में नहीं आवै और कदाचित् लोभ का मारया दुग्धादि भली वस्तु खाय ही तो रोग वधै दुःखी होय तातैं अन्तराय-कर्म के उदय भली वस्तु नहीं पचै है।३५। और शिष्य प्रश्न किया। हे सुखमूर्ति जाके घर में सुन्दर स्त्री, वस्त्र, आभूषण, घोटक, रतनादिक भली वस्तु उपभोग योग्य पाईये और भोग नहीं सकै सो यह कौन पाप का फल है सो कहौ। तब गुरु कही—जिन जीवन कौं पर-भव विषैं पराये हस्ती, घोटक, स्त्री, बाहनादि उपभोग योग्य पदार्थ सुन्दर देख कैं आपकौं नहीं सुहाये होंय तिनके भले पदार्थ देख छल-बल करि लूट लिये होंय। भय देय जोरावरी खोंस लेय आप भोगे होंय। पराये भले पदार्थ उपभोग योग्य देख जाकौं नहीं सुहाये होंय। पराये घर में भली वस्तु रतन, हस्ती आदि देख भय बताया होय कि जो ये भली वस्तु राज में छिना देहौं। कहै कि ये वस्तु राजा देखेगा तौ खोंसेगा इत्यादिक पाप तैं अच्छी वस्तु नहीं भोग सकै है। ३६। बहुरि शिष्य प्रश्न करता भया। हे गुरो! ये जीव तीव्र क्रोध का धारी किस पाप तैं होय ? तब गुरु कही—हे वत्स ! जा जीवनें पर-भव में क्रोधी जीवनकूं क्रोध करते देखि, भले जानें होंय तथा पर-जीवन तैं युद्ध करने का जाका स्वभाव पर-भव में बहुत रह्या होय तथा पर कूं युद्ध करते देखि, सुख मान्या होय तथा

परभव में आप सिंह, सुअर, श्वान, सर्प, भीलादि की पर्याय धारि, पर जीव अनेक पीड़े होंय तथा समता भाव के धारी धर्मातमा तिनकौं देखि, तिनके समभावना की निन्दा करी होय। शान्त परिणाम जीवन की हाँसि करी होय। इत्यादिक पापन तैं महाक्रोधी होय। ३७। बहुरि शिष्य प्रश्न किया। हे गुरो! यह जीव आप तौ मान चाहै, अरु मान नहीं रहै। सो ये किस पाप का फल है, सो कहौ। तब गुरु कही—हे भव्यात्मा! जिन जीवन नैं पर जीवन का मान नहीं राखा होय तथा अपने तन, धन, यौवन, राज, हुकुम, बल इत्यादिक के गर्व करि, अन्य जीवन का अनादर किया होय तथा आप कौं भला मनुष्य जानि और जीवन में शीश नमाये, सो तिनकौं शीश नमाते देखि, अपने मान-भाव तैं परकौं तुच्छ जानि, पीछा शीश नहीं नमाया होय तथा गुरुजन की आज्ञा तैं प्रतिकूल होय स्वच्छन्द वर्त्त, बड़ेन की आज्ञा खण्डी होय तथा दीन जीवन कों जोरावरी भय देय, अपने पाँयन नमाये होंय। तिनके मान खण्ड किये होंय तथा कहीं किसी का मान खण्ड भया सुनि, आप सुख पाया होय इत्यादिक क्रूर भावन तैं अपमानी होय, मान चाहै अरु ना रहै। ३८। बहुरि शिष्य ने प्रश्न किया। भो दयासागर! यह जीव अपना मान नहीं कराया चाहै, अरु बिना चाहै ही और जीव आय-आय मस्तक नमावैं, आज्ञा मानैं सेवा करैं। सो ऐसी महिमा कौन पुण्य तैं होय? सो कहो। तब गुरु कही—हे भव्य, सुनि। जिन जीवन नैं परभव विषैं, महा भक्ति करि शुभ भावन तैं देव-धर्म-गुरु की सेवा-पूजा, विनय सहित मस्तक नमाय करी होय। ताके फल तैं ताकी सेवा देव करैं, ऐसा इन्द्र होय तथा मनुष्यन का इन्द्र चक्री होय, तथा अर्ध चक्री होय तथा अनेक राजान करि वन्दनीय महा-मण्डलेश्वर राजा होय। इत्यादिक पदके धारी पृथ्वीपति होंय। तिनकौं बड़े-बड़े महंत राजा स्वयमेव ही भक्ति सहित शीश नमावैं हैं तथा जिन जीवन नैं पर-भव में गुरु-जन जो माता-पिता तिनकी सेवा करवे कौं बारम्बार शीश नमाय विनय तैं चाकरी करि होय। ताके पुण्य तैं सर्व कुटुम्ब के आज्ञाकारी रहैं सर्व में आदर पावै तथा जिसने पर-भव में अन्य जन, अपनी वय तैं बड़े पुरुष तिनका विनय करि मान राख साता उपजाई होय, आदर किया होय। सो जीव बड़े-बड़े वयके धारी पुरुषन के वंदने-सराहने योग्य हैं। आप तैं बड़ी-बड़ी उमर करि सहित जीव आय-आय शीश नमावैं, मान राखैं, ऐसा होय तथा जो विवेकी,

संसार रचनाका जाननहारा, धर्म शास्त्र का पाया है रहस्य जानैं, यथायोग्य विधि वेत्ता, सो जिसने बल, कुल, धन, बुद्धि, वय इत्यादिक करि जे छोटे, तिन सबका यथायोग्य विनय करि सत्कार करि साता उपजाई होय। तिन सबका मान राखा होय। सो जीव जगतमें प्रशंसा पाय, सर्व करि पूज्य होय। ताकौं जगत्-जीव स्वयमेव ही आय-आय शीश नमावैं, याका मान राखैं, ऐसा पदधारी होय तथा जानैं कोऊ ही जीवका मान खण्डन नहीं किया होय। पर-जीवन कूं अनेक आदर करि सुखी किये होंय। इत्यादिक शुभ भावनके फल तैं ऐसा पद पावै, जो आप तौ अपना मान नहीं चाहै, अरु अन्य जीव अपनी इच्छा तैं यातैं स्नेह करि आय-आय शीश नमाय, आदर करैं। ऐसा जानना। ३९। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुनाथ जी! यह जीव दगाबाज-मायावी कौन पाप तैं होय? सो कहो। तब गुरु कही—हे वत्स! दगाबाज के अनेक भेद हैं। सो जिस जीव नैं पर-भव में पराये भले तप कौं देख, दोष लगाय, ताकी निन्दा करी होय। तौ वह पाप के फल तैं भवान्तर में जब कबहूं मनुष्य होय तप धारण करै, तौ मान के अर्थ करै। अन्तरंग में धर्म चाह नहीं रहै। लोगन में पुजावे कौं, दगाबाजी भाव करि तपस्वी होय। ताके तप में दगा होय। प्रच्छन्न भोजन लेय, अरु औरन कौं तप-अनशन बतावै। इत्यादिक तप पावै, तौ दगा सहित तपस्वी होय और जिन जीवन ने पराये भले दान में दोष लगाय, दगा करि निन्दा करी होय। सो जीव इस पाप तैं भवान्तर में जब कबहूँ मनुष्य होय दान देय, तौ दगा सहित दान का देनेहारा होय। आप दान देय, सो लोगन कौं तौ बहुत द्रव्य बतावै, अरु आप थोड़ा ही धन दान देय। लोक जानैं, याका दान दगाबाजी लिये हैं। सो निन्दा पावै। वस्त्र देय, तौ जीर्ण तौ देय, कहै बड़े-बड़े मोल के नूतन वस्त्र दिये इत्यादिक पाप-भावन तैं, दान में दगा करनेहारा होय और जिन जीवन नैं पर-भव में पराये भले धर्म, पूजा, सामायिक, ध्यान, अध्ययनादि अनेक धर्म-अङ्ग हैं तिनकूं देख, शुद्ध धर्म-अङ्गन कौं दोष लगाया होय, ताकौ पाप फल तैं भवान्तर में कबहूँ मनुष्य उपजें तौ ऐसे होंय, कि धर्म का सेवन करैं तौ भाव रहित करैं। प्रभु की पूजा करैं, तौ भाव रहित करै। अल्प धन लगावैं, लोगन कौं कहैं हमने बड़ा धन लगाया है और घर में धन होतैं भी, धर्म-कार्य में धन का काम पड़ै तौ अपनी दगाबाजी-चतुराई तैं, अपना निर्धनपना बताय, घर का दुःख बतावैं। धर्म मैं धन नहीं खरचैं।

ता पाप-फल तैं, धन रहित, धर्म विषैं दगाबाज होंय और जाने पर-भव में पराये ध्यान कौं दोष लगाय, हाँ सि करी होय। सो ताके पाप तैं भवान्तर में दोष सहित, ध्यान का धारी होय। बगुला की नांई कुध्यानी होय। धर्म-अङ्ग सेवन करै, सो दगा सहित करै तथा पर-भव में दगा सहित धर्म के सेवनेहारे तिनके पाखंड देख, तिनकी प्रशंसा करी होय इत्यादिक पाप भावन तैं जीव धर्म-दगाबाजी करनेहारा होय और जिन जीवन ने पर-भव में अन्य जीवनकौं कुटुम्बतैं दगाबाजी करते देख, सुख पाया होय। ते जीव भवान्तर में कुटुम्ब तैं, दगाबाजी करनेहारे उपजें और जिननैं पर-भव में दगाबाजी सहित आजीविका पूरी करते देख, तिनकी माया की प्रशंसा करी होय, सुख पाया होय। सो जीव भवान्तर में अपनी आजीविका दगाबाजी तैं पूरी करैं, ऐसे होय और दगाबाजी के अनेक भेद हैं। सो पर-भव में जैसा दगा, भला लागा होय। तैसा ही दगाबाज उपजै है इत्यादिक भले धर्म-कार्यन कौं जैसी दगाबाजी के कार्य जानें होंय। तैसी ही जाति का धर्म-दगाबाज उपजै है तथा जैसे—कर्म-कार्यन कौं दोष दिये होंय, तिस जाति का कर्म-कार्यन में दगाबाज उपजै है। ४०। बहुरि पेरि शिष्य प्रश्न पूछी। हे गुरो! यह जीव चोर कौन पाप तैं होय? तब गुरु कही—पर-भव में चोरन को भले जानें होंय तथा चोरन तैं व्यापार करि, तिनका बड़ा नफा खाय, चोरन तैं हित किया होय तथा चोरन का सहकारी होय, पराये धन हराये होंय। अपने मन में पराये धन चुराने की अभिलाषा रही होय इत्यादिक पाप भावन तैं जीव, चोर उपजै है।४१। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! यह हिंसा का करनहारा जीव, कौन कर्म तैं होय? तब गुरु कही—जिननें पर-भव में हिंसा भली जानी होय तथा हिंसक जीवन कूं हिंसा करते देख, तिनकी अनुमोदना करी होय तथा पर-भव में हिंसा करने की अनेक कला-चतुराई सीखी होय तथा पर-भवमैं आपने अनेक हिंसा के उपकरण बनाये होंय तथा तीर, तुपक, जाली, फन्दा, चेप, गुलेल, सेल्ह, बर्छा आदि अनेक शस्त्र राखि, आप सुख पाया होय तथा शस्त्रन के उज्ज्वल करने की, तीक्ष्ण करने की चतुराई पर-भव में करी होय तथा पर-भवमैं शस्त्र बेंचे होंय, बनाये होंय इत्यादिक पाप तैं पर-भव में शस्त्र तैं मरै तथा आप हिंसक होय। ४२। बहुरि शिष्य प्रश्न किया। हे जगत् गुरो! यह जीव क्रिया रहित अनाचारी किस पापतैं होय जाकौं खान-पान की सुधि नाहीं, विकल्प भाव सहित सदव रहै। सो कौन पाप का फल है? तब गुरु कही—जिनने पर-भव में शुभ आचारी

जीवन की निन्दा करी होय तथा भला आचार देख जाकौं नहीं सुहाया होय तथा आचार करने में प्रमादी रह्या होय तथा पर-भव में पराई जूंठी खाय, सुख मान्या होय तथा आगे पर-भव, पशु पर्याय में श्वानादि की पर्याय में अशुभ भक्षण करे होंय तथा सिंह की पर्याय में तथा और पशून की पर्याय में जहां खाद्य-अखाद्य का भेद नाहीं जान्या, तहां विचार रहित वरतया होय तथा औरन कों अभक्ष्य वस्तु खावते देख, आप सुखी भया होय तथा अनाचारी जीवन में विशेष रह्या होय तथा अनाचारी जीवन की प्रशंसा करी होय तथा और का अनाचार देख, आपकौं अनाचार करने की अभिलाषा रही होय इत्यादिक पापन तैं पशु होय तौ श्वान, वायस, गर्दभ आदि अशुभ भक्षक की पर्याय धरै तथा मनुष्य होय तो भीलादि नीच कुली होय। कदाचित् ऊँच कुली होय, तौ शूद्र समान अनाचारी होय। ४३। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! यह जीव शुभ आचारी कौन पुण्य तैं होय? तब गुरु कही—जिन कूं पर-भव में अनाचार-प्रक्रिया देख कैं ग्लानि उपजी होय तथा भला आचार सहित, दयामयी प्रवृत्ति देख, हर्ष मान्या होय तथा पर-भव में भले सुआचारी क्रियावन्त पुरुषन की संगति रही तथा भली लागी होय तथा अभक्ष्य भक्षण तैं अरुचि भाव रहे होंय और जिनकूं कुशब्द भले नहीं लागे होंय और सप्तव्यसनादि अनाचार देख, तिनकूं कुफलदायक जानि, तजे होंय और पराये दान, पूजा, शील, संयम, तप, व्रत, दयामयी आचार देख, तिनकी अनुमोदना करी होय तथा पर-भव में आपकूं शुभाचार भले लागे होंय तथा भले आचार करने की आपकूं इच्छा भई होय इत्यादिक शुभ परिणामनतैं शुभाचारी होय।४४। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! संसार में भाई समान वल्लभ नाहीं। सो ऐसे भाई-भाई में परस्पर द्वेष कौन पापतैं होय? तब गुरु कही—भो भव्य! सुनि। जिनने पर-भव विषैं एक माता के गर्भ में निकसे दोऊ भाईन का युगल तथा हस्ती, घोटक, भैंसा, श्वान, मीढ़े, तीतुरि, लाल, मुनैयां, मुर्गा, मोर तथा मनुष्य इत्यादिक दुपद, चौपद, भूचर, नभचर, पशु-मनुष्यन के युगल तिनकौं कौतुक के हेतु तथा द्वेष-भाव करि तिनकूं परस्पर लड़ाये होंय तथा कोई दो भाईयों को परस्पर लड़ते देख, सुख मान्या होय तथा कोई दोय भाईन में स्नेह देख, नहीं सुहाया होय तथा अपनी चतुराई करि, बीच में माया-दगाबाजी करि, दोय भाईन कौं परस्पर लड़ाय दिये होंय तथा कोऊ कौं खोटी सलाह देय, परस्पर दोय भाईन में द्वेष पाड़ि दिया होय तथा कोई की, भाईन में दोष कराने की वांच्छा सहित

पर्याय छूटी होय इत्यादिक पाप भावन तैं भाई-भाई, शत्रु समानि होंय। ४५। बहुरि शिष्य प्रश्न किया। हे गुरु! भाई-भाई में परस्पर स्नेह कौन पुण्य तैं होय? तब गुरु कही—जिसने पर-भव में और के दोय भाईन में स्नेह देख, सुख मान्या होय तथा दोयन कौं लड़ते देख, आपने सज्जनता करि समझाय, दोयन की राड़ि (लड़ाई) मिटाय, स्नेह करा दिया होय इत्यादिक भले भावतैं, भाईन मैं परस्पर स्नेह पावै।४६। बहुरि शिष्य प्रश्न किया। हे ज्ञानवान्! माता-पुत्र में द्वेष कौन पाप तैं होय? तब गुरु कही—जो पर-भव में पर के माता-पुत्र तिनमें स्नेह नहीं देख सक्या होय। पर के माता-पुत्रन कौं लड़ाय सुख मान्या होय। माता-पुत्र लड़ते देख, खुशी भया होय इत्यादिक द्वेष भावन तैं माता-पुत्र मैं द्वेष होय। ४७। बहुरि शिष्य पूछी। हे करुणानिधान! माता-पितान कैं पुत्र का वियोग किस पाप तैं होंय? तब गुरु कही—जिसने पर-भव में पशु-पखेरून के बच्चनकूं पकड़ि, माता-पितातैं उनका वियोग किया होय तथा जो पराया पुत्र चोरी तैं तथा जोरी तैं पकड़ ले गया होय तथा काहू का पुत्र भला देख, ताकौं शस्त्र तैं तथा विषादि तैं मार, वियोग करचा होय तथा किसी के पुत्र का वियोग देख, आप खुशी भया होय तथा किसी का पुत्र-वियोग, वांच्छया होय इत्यादिक पापनतैं माता-पितान कैं, पुत्र वियोग होय।४८। बहुरि शिष्य कही—हे दयानिधान! पुत्र का वियोग न होय सो कौन पुण्य तैं? सो कहो। तब गुरु कही—जानैं पर-भव में परके पुत्र का वियोग सुनिकैं दया-भाव करि, वाकूं पुत्र का मिलाप वांच्छचा होय तथा काहू का गया पुत्र बहुत दिन विषैं मिलाप भया सुनि-देख, आप सुखी भया होय तथा किसी का पुत्र कोई दुष्ट बन्दी में ले गया सुनि, ताकौं धन देय तथा जोरी तैं छुड़ाय, जाका पुत्र वाकौं दिवाया होय तथा कोई पशु का पुत्र बिछुड़चा देख, ताकी दया करि, तलाश करि लाय, ताके पुत्र का संयोग कराय दिया होय तथा कोईकौं ही, पुत्र का वियोग नहीं वांच्छचा होय इत्यादिक पुण्य-भावनतैं पुत्र न बिछुड़े का लाभ होय।४९। बहुरि शिष्य पूछी। हे जगत् गुरो! पिता-पुत्र के निमित्त अनेक कष्ट पाय पुत्र की उत्पत्तिकौं चाहै। सो ऐसे पिता-पुत्र में परस्पर द्वेष कौन पाप तैं होय? तब गुरु कही—जिनने पर-भव में पराये पिता-पुत्र में द्वेष कराया होय तथा तिनकौं लड़ते देख आप सुखी भया होय तथा और के पिता-पुत्र में स्नेह देख आपकूं नहीं सुहाया होय तथा और के पुत्र-पिता में द्वेष कराय दिया होय तथा कोई के पुत्र-पिता में द्वेष चाह्या होय इत्यादिक अशुभ भावनतैं पिता-पुत्र में द्वेष होय। ५०।

बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो ! पिता-पुत्र में स्नेह कौन पुराय तैं होय ? तब गुरु कही—जिननैं पर-भव में और के
श्री पिता-पुत्र में स्नेह देख सुख पाया होय। पराये पिता-पुत्र में द्वेष-भाव देख अपनी बुद्धि के बल करि दोऊनकौं ४१
सु समझाय, स्नेह कराय दिया होय। औरन के पिता-पुत्रन में स्नेह चाह्या होय इत्यादिक शुभ भावन तैं पिता-पुत्र
दृ में स्नेह होय। ५१। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! गर्भ में पुरायाधिकारी का अवतार भया कैसे जानिये ? तब
ष्टि गुरु कही—जाके गर्भ में आवते माता-पिता प्रसन्न चित्त रहैं। कुटुम्ब में मङ्गल होय। माता का चित्त भगवान् की
पूजा रूप होय। ताकैं दान की अभिलाषा होय। दिन-दिन कुटुम्ब तैं जाकी प्रीति बधै। माता-पिता का चित्त उदार होय। माता-पिता कुटुम्ब-जन के तथा पर-जन के सत्कार रूप प्रवर्तैं। माता के चित्त में उज्ज्वल भली वस्तु आचार सहित उपजी ताके खावने की अभिलाषा होय तथा माता-पिताकूं दीरघ धन का लाभ होय। माता-पिता कोई दीन-दुखी दरिद्री कौं देखैं तौ तिनका चित्त दया रूप होय इत्यादिक शुभ लक्षरा सहित शुभ जीव का अवतार जानना। ५२। बहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ ! पापात्मा का अवतार कैसे जान्या जाय ? तब गुरु कही—जाके गर्भ में आवते माता-पिताकौं दुःख-संकट होंय। अभक्ष्य वस्तु खावने पर मन चलै। माता-पिता का चित्त क्रूर होय। चित्त उद्वेग रहै। कुटुम्ब में क्लेश बधै। माता-पिता के मन में सूमता प्रगटै। क्रोध, मान, माया, लोभादि कषायन की तीव्रता बधै। माता-पिता का चित्त, दुराचारमयी होय। घर-धन नाश होय तथा माता-पिता की मृत्यु होय इत्यादिक चिह्न गर्भ में आवते होंय तब पापाचारी जीव का अवतार जानना। ५३। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो ! अनेक भोग योग्य वस्तु, अन्न, मेवादि षट्रस का भोगी, सुगन्धादि भली वस्तु का भोगनेहारा जीव किस पुराय तैं होय ? तब गुरु कही—जिननैं पर-भव में दीन-दुःखी जीवनकूं देख दया-भाव करि दान
त दिये होंय तथा पर-भव में मुनि-श्रावक कौं भक्ति सहित दान दिये होंय औरन कूं दान देते भले जाने होंय और
रं जीवन कौं भला अन्न, मेवा, मिठाई खावते देख, अनेक सुगन्धादि सहित सुख देख, आपने हर्ष पाया होय
गि इत्यादिक शुभ भावन तैं वांच्छित भोग योग्य, षट् रस मेवादि भली वस्तु का भोगी होय। ५४। बहुरि शिष्य प्रश्न
 णी पूछी। हे गुरो ! यह जीव अनेक उपभोग योग्य वस्तु विस्तर, आभूषरा, मन्दिर, हस्ती, घोटक, रथादि बाहन, पालकी आदि बहुत पदार्थ का भोगी किस पुण्य तैं होय ? तब गुरु कही—जानैं पर-भव में मुनिनकौं वस्तिका

का दान दिया होय तथा श्रावकन कौं तथा आर्यिका कौं वस्त्र दान दिये होंय तथा जिनदेव कूं छत्र, चमर, सिंहासन आदि उपकरण कराय के पुण्य पाया होय तथा पर-जीवन कूं वस्त्र-भूषण पहरे देख आप हर्ष मान्या होय तथा जिननैं सर्व जीवन कूं सर्व प्रकार सुख वांच्छ्या होय इत्यादिक शुभ भाव सहित होय तौ अनेक उपभोगन का भोगनहारा होय। ५५। बहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ! ये जीव बावने शरीर का धारी कौन कर्म तैं उपजै है? तब गुरु कही—जाने पर-भवमैं परकूं छोटे शरीर का धारक देख, तिनकी हाँसि, निन्दा करी होय तथा आप बड़े तन का धारक होय, अभिमान किया होय। पर का बावना शरीर देखि आप हर्ष पाय भला जान्या होय। अपने बड़े तनतैं अन्य छोटे शरीरवालों कौं पीड़ा पहुँचाई होय इत्यादिक अशुभ भावन तैं छोटे शरीर का धारी बावना होय है।५६। बहुरि शिष्य पूछी। हे मुनिनाथ! इस जीवकूं कूबड़ा शरीर किस पाप भावन तैं होय? तब गुरु कही—हे दयालु चित्त के धारनहारे वत्स! तू चित्त देय सुनि। जिन जीवन नैं पर-भव में पर-जीवन कौं लाठी, लात, मूकी मारि ताके हाड़ तोड़ तिनकूं दुःखी करि आप सुख पाया होय तथा पराये शरीरकूं गांठ-गठीला रोग-सहित देख आप सुखी भया होय तथा औरन का शरीर आंका-बांका कुरूप देख हाँसि करी होय। अपने भले तन का भारी गर्व कर औरनकों बहकाए होंय इत्यादिक अशुभ भावन तैं कूबड़ा शरीर होय है।५७। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! ये जीव देव किस पुण्य तैं होय? तब गुरु कही—जिन जीवन नैं पर-भव में सम्यक् धारा होय तथा पञ्च-परमेष्ठी की पूजा, वन्दना, स्तुति करी होय तथा तप, शील, संयम पाले होय तथा दीन जीवन की रक्षा रूप भाव करि करुणा भाव धारे होंय तथा मुनि श्रावकादिक च्यारि संघ का वैय्यावृत कर्‍या होय तथा भले भाव सहित जिनवाणी सुनी होय इत्यादिक धर्म का सेवन कर्‍या होय तथा औरनकों धर्म सेवते देख अनुमोदना करी होय तथा नन्दीश्वर द्वीप, कुण्डलगिरि, रुचिकगिरि आदिक क्षेत्रन के जिन-मन्दिरों की वन्दना की अभिलाषा राखी होय इत्यादिक धर्म भावन तैं देव होय है।५८। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! मनुष्य किस भाव तैं होय? तब गुरु कही—जिननैं पर-भव में सरल भाव राखे होंय। कोई जीवन तैं द्वेष-भाव नहीं किये होंय। मन्द कषाय धरै, धर्म भाव सहित आर्जव परिणामी रह्या होय इत्यादिक शुभ भावनतैं मनुष्य होय।५९। बहुरि शिष्य पूछी। हे करुणानिधान!

यह जीव नरक किस पापतैं पावै ? तब गुरु कही—जिननैं पर-भव में अनेक पर-जीव सताये होंय। दीरघ क्रोध धारचा होय। जाका हृदय महादगाबाजी तैं भरचा होय। जानैं मद्य-मांसादि अभक्ष्य भक्षण करे होंय। धर्म भाव रहित, पाप सहित वरत्या होय तथा धर्म तैं द्वेष-भाव करि पाप-कार्यन की रक्षा करी होय तथा पर-जीवन के मारने-बांधने की विशेष इच्छा रही होय इत्यादिक भावन तैं नरक में उपजै है। ६०। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुदेवजी ! यह जीव पशु में किस पाप तैं उपजै ? तब गुरु कही—जिननैं पर-भव में पर स्तुति की आरति करी होय। कर्म के वश अनेक खान-पान की आरति धन जोड़ने की आरति शरीर पुष्ट करने की आरति करी होय इत्यादिक भाव जानैं अशुभ राखै होंय तथा अक्रिया सहित खान-पान करे होंय तथा खाद्य-अखाद्य वस्तु का विचार नहीं करचा होय। प्रमाद सहित धर्म-भावना रहित वरत्या होय इत्यादिक अज्ञानता सहित अनेक आर्त्त-ध्यान तैं तिर्यंच होय। ६१। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरु जी ! यह जीव कुभोग भूमि का मनुष्य जाका मुख तौ अनेक पशुन के आकार अरु नीचले अङ्गोपाङ्ग सर्व मनुष्यन कैसे महासुन्दर सुघड़ होंय, सो ऐसा शरीर कौन कर्म के उदय तैं पावै ? तब गुरु कही—जा जीव नैं पूर्व भव में मिथ्यादृष्टि मुनि कौं दान दिया होय तथा कुमुनिन कौं भक्ति करि दान दिया होय तथा शुभ मुनिन कौं कपटाई सहित दान दिया होय तथा मुनीश्वरों को दान देते चित्त लोभ रूप रह्या होय तथा मानी चित्त रह्या होय तथा मान को इच्छा रही होय तथा मुनीश्वर कौं दोष-सहित भोजन दिया होय तथा नवधा-भक्ति में अभिमान रख्या होय तथा दाता के सात गुण * हैं, तिनमें कोई हीन होय इत्यादिक भावनतैं कुभोग-भूमियां मनुष्य होय है।६२। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो ! सुभोग भूमि विषैं तीन पल्य की आयु सहित देव समान दश प्रकार कल्प वृक्षन के दिये सुख तिनका भोगता, किस पुण्य तैं होय ? सो कहौ। तब गुरु कही—जानैं

* भाक्तिकं तौष्टिकं श्राद्धं सविज्ञानमलोलुपं। सात्विकं क्षमकं सन्तः दातारं सप्तधाविदुः ॥ १ भक्ति, २ तुष्टि, ३ श्रद्धा, ४ ज्ञान, ५ अलोलुप (अलोल्य), ६ सत्व, ७ क्षमा—ये सात दातार के गुण हैं।

पर-भव विषैं नवधा-भक्ति सहित (१ प्रतिग्रह, २ उच्च स्थान, ३ अंघ्रि प्रक्षालन, ४ अर्चा, ५ आनति, ६ मनः शुद्धि, ७ वचन शुद्धि, ८ काय शुद्धि, ९ अन्न शुद्धि—ये नवधा-भक्ति हैं।) दान दिया होय तथा और

भव्यनकूं मुनि-दान देते देख अनुमोदना करी होय तथा मुनीश्वरों कौं दान देने की अभिलाषा रही होय तथा मुनि-दान समय देवन के पञ्चाश्चर्य होते देख तथा सुनि कैं मुनि के दान की महिमा-बड़ाई करी होय तथा मुनि-दान देनेहारे दाता की स्तुति करी होय इत्यादि शुभ भावन तैं उत्कृष्ट भोग-भूमियां होय है। ६३। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! कुक्षेत्र का वास किस पाप-कर्म तैं होय? तब गुरु कही—जिन जीवन नैं पर-भव विषैं पर-जीवनकूं झूठा दोष लगाय सुक्षेत्रन तैं निकासि उद्यान में राखा होय तथा म्लेच्छन के भोग भले लागे होंय तथा कोई पै कोप करि ताहि पकड़ निर्जन-भयावने स्थान में राखा होय तथा कुक्षेत्र में वास करनेहारे, अनाचारी जीवन की प्रशंसा करी होय तथा पशु-पालक होय, उद्यान में रहके, हर्ष पाया होय इत्यादिक कुचेष्टा तैं, कुक्षेत्र का वास पावै। ६४। बहुरि शिष्य पूछी। हे ज्ञाननेत्र, सुक्षेत्र का वासी जीव किस पुण्य तैं होय? सो कहो। तब गुरु कही—जाने पर-भव में कुक्षेत्रवासी जीवन को दया करि सुक्षेत्र में बसाया होय तथा दीन-दुःखित जीवन कूं उद्यान में से ल्याय, सुख में राखा होय, तिनकौं साता उपजाई होय तथा अपने राज्य-भोग छोड़, तप लेय वन में रहने का उद्यम किया होय तथा वनवासी मुनीश्वरों की धीरजता देखि, प्रशंसा करी होय इत्यादिक शुभ भावन तैं, सुक्षेत्र का वास पावै। ६५। बहुरि शिष्य प्रश्न किया। हे नाथ! यह जीव अल्प आहार में सन्तोषी किस पुण्य तैं होय? तब गुरु कही—जिननैं पर-भव में मुनीश्वरों कों अल्प दान एक-दोय ग्रास देय, अपना भव सफल मान्या होय और दीन-भूखे जीवन कूं वांछित भोजन देय, तृप्त किया होय तथा पर-भव में अनेक वांछित भोग थे तिनकौं छांड़ि, उदास होय, अल्प भोजन राखा होय। अनेक सुभग रस का त्याग किया होय इत्यादिक समता-भाव के फल तैं अल्प भोजन में तृप्त होय है। ६६। बहुरि शिष्य पूछी। हे पूज्य! ये जीव बहुत भोजन करवे की इच्छा राखै, अरु मिलै नहीं। सो यह कौन कर्म का उदय है? सो कहो। तब गुरु कही—जिननैं पर-भव में अन्य जीवन कौं तरसाय, भोजन दिया होय तथा पर-भव में मनुष्य, श्वान, मार्जारादि की पर्याय में पराया भोजन, ले भाज्या होय तथा धर्मातमा जीवन का अल्प भोजन देख, हाँसि करी होय तथा पशु—हस्ती, घोटक, बैल, महिष आदि अनेक जीवन का बहुत भोजन देख, सुख मान्या होय तथा पर-भव में रात्रि दिन मुख तैं भोजन करता भी, तृप्त नहीं भया होय इत्यादिक

अशुभ भावन तैं बहुत भोजन करता, तृप्त नहीं होय है। ६७। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुदेवजी! यह जीव चतुराई-कलारहित मूर्ख, हृदय शून्य, लौकिक ज्ञान रहित, किस पाप तैं उपजै? तब गुरु कही—जाने पर-भव में पराई कला-चतुराई देख द्वेष-भाव तैं, दोष लगाय हाँसि करी होय। अरु अपने दोष छिपाने कूं अनेक माया-चतुराई करि, अपना दोष छिपाया होय। भांड-कला देख, हर्ष पाया होय। पराया गावना, खावना, हाव-भाव, नृत्य, वादित्रादि-कला देख, तातैं द्वेष-भाव किया होय। पराई चतुराई प्यारी नहीं लागी होय तथा पर-भव में याके रिझावे कूं, काहू ने अनेक कला-चतुराई करि राजी किया, ताकी रीझ (इनाम) पचाय गया होय इत्यादिक पापन तैं मूढ़, लौकिक ज्ञान-चतुराई रहित होय है। ६८। बहुरि शिष्य पूछी। हे ज्ञानमूर्ति! यह जीव लौकिक कला-चतुराई सहित कौन पुण्य तैं होय? तब गुरु कही—जिन जीवन नैं पर-भव में औरन की गान, नृत्य, वादित्र, चित्र-कला, शिल्प-कलादि अनेक चतुराई देख, हरख पाय, तिनकूं उदार चित्त सहित अनेक रीझ दई होय। पराई चतुराई, विवेक, भला-ज्ञान देख, भला लाग्या होय। तिनकी प्रशंसा करी होय, कही कि याकी ज्ञान-कला, शास्त्र प्रमाण है। गुणी जन का आदर किया होय इत्यादिक अपनी सज्जनता प्रगट करि, औरन के सुखी करने के निमित्त भला-ज्ञान खर्च किया होय। सो जीव लौकिक कला-चतुराई में प्रवीण होय। ६९। बहुरि शिष्य प्रश्न किया। हे गुरो! यह जीव बहुभार का बहनेहारा मनुष्य-पशु, किस पापतैं होय है? तब गुरु कही—जिन नैं पर-जीवन पै बहुत भार लादा होय तथा बेगारि पकड़, तापै बराजोरि भार धर्‍या होय तथा पशुन पै बहुत भार देय चलाये होय तथा अल्प भार का नाम लेय, बहुत भार बांध-धरा होय तथा अपने लोभकौं, पर-जीवन पै भार लादि कुटुम्ब की रक्षा करी होय तथा पर पै दीर्घ भार लदा देख हर्ष पाया होय इत्यादिक भावन के अशुभ फल तैं बहुत भार का बहनेहारा होय है। तिर्यंच में वृषभ, महिष, ऊँट, गर्धवादि बहुत भार बहनेहारा होय। मनुष्यन में बहुत भार बहनेहारा हम्माल व बेगारी होय। ७०। बहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ! यह जीव रङ्क दरिद्री किस पाप तैं होय? तब गुरु कही—जिननैं पर-भव में अपनी अन्याय बुद्धि तैं जोरी करि अनेक जीवन कौं दुःखी करि धन खोंसि निर्धन-दरिद्री करे होंय तथा पर-जीवन कों लुटे-खुसे देख हर्ष मान्या होय तथा कोई रङ्क का जोड़्या अल्प धन सो पर-भव में चोर्‍या होय तथा कोई दीन-दुःखी जीवन कूं दुर्वचन

कहि पीड़े होंय तथा दीन-दरिद्री जीवन कौं देख तिनकौं झूठा चोरी का दोष लगाया होय तथा दीन-दरिद्री जीव देख तिनकी हाँसि करी होय इत्यादिक पर-भव में पाप-भाव करे होंय जिनतैं ये जीव रङ्क-दरिद्री होय है।७१। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुजी! यह जीव कुकाव्य-कला का धारी चतुर कौन कर्म तैं होय? तब गुरु कही—जिन जीवन कूं कुकथा भली लागी होय तथा कहानी-किस्से भले जानि-सुनि हरष पाया होय तथा लौकिक चतुराई के शास्त्र-धर्म जानि दान दिये होंय तथा उदर पूरण के कारण ऐसे ज्योतिष वैद्यक सुभाषित-सभा चातुरी के शास्त्र तथा शिल्प कलादिक चतुराई के शास्त्र धर्म जानि दान दिये होंय तथा धर्म के अर्थ औरन कौं लौकिक विद्या कला-चतुराई सिखाई होय तथा अपवित्र शरीर तैं धर्म-शास्त्रन का अभ्यास कर्‍या होय तथा अनेक आरम्भ अन्याय-पाप करि धन उपाय वह धन शास्त्रन की लिखाई निमित्त दिया होय तथा आप उत्तम धर्म सेवता कुकवीन के ज्ञान की प्रशंसा करी होय व आपकौं सीखवे की वांच्छा रही होय इत्यादिक भावन तैं जीव भवान्तर में कुकवि होय है। ७२। बहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ! सुकवि धर्म-शास्त्रन के छन्द-काव्य-कला का जोड़नेहारा सुबुद्धि का धारी किस पुण्य तैं होय? तब गुरु कही—जिननै पर-भव में गणधरादि कविनाथ गाथा-छन्द-काव्य के कर्ता आचार्य तिनका काव्य-कला शास्त्रन में देख-सुनि तिनका रहस्य जानि कविनाथ जो गणधरादि तिनकी महिमा करी होय तथा सुकाव्य धर्म शास्त्रन के कर्ता तिनकौं देख अन्तरङ्ग में प्रसन्न होय, तिन तैं वात्सल्य भाव जनाये होंय तथा धर्म की जोड़-कला करते सुकविन की सेवा-सहाय करि, साता उपजाई होय तथा सुकविन के किये छन्द, गाथा, श्लोक तिनकौं वांचि, धर्म का रहस्य जानि, हर्षायमान होय, कविन की प्रशंसा करी होय तथा धर्म शास्त्रन की जोड़-कला करते कवीश्वर की कछू सहाय करी होय इत्यादिक शुभ भावना तैं विशेष ज्ञान का धारी सुकवि होय। ७३। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! यह जीव दीर्घ आयु का धारी, जन्मान्तर पर्यन्त सुखी कौन पुण्य तैं होय? तब गुरु कही—जिननैं पर-भव में पर-जीवनकूं मरते बचाय, फिर तिनकौं अनेक भोजन कराय, वस्त्रादि देय, मिष्ट वचन भाषण करि साता उपजाई होय तथा अनेक जीवनकों वन्दी तैं छुड़ाय, सुखी करे होंय। पर-जीवन कूं सुखी करने की सदैव अभिलाषा रही होय। औरनकों अल्पायु मरते देख, संसार तैं उदास होय, दया-भाव सहित जाका चित्त भया होय। दीन जीवन की रक्षा विशेष चाही होय

इत्यादिक शुभ भावना तैं, दीर्घ आयुधारी, जीवन पर्यन्त सुखी रहै। ७४। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! यह जीव दीर्घ आयु पाय, दुःखी किस पाप तैं रहै है? तब गुरु कही—जिन जीवन नैं पर-भव में पर-जीवन का घात किया होय। अनेक जलगाहन, तरु छेदन, भूमि खोदन, अग्नि जालन इत्यादिक क्रिया के आरम्भ तैं अनेक जीव त्रस-स्थावरन का घात किया होय। अनेक छोटी काय के धारी दीन-जीवन कौं सताये होंय। और कौं दुःखी या रोगी रोवते देख खुशी भये होंय। पर कौं सुखी देख, ताका बुरा करना वांच्छा होय इत्यादिक पाप-भावना तैं दीर्घ आयु पाय दुःखी होय।७५। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुजी! ये जीव सदैव शोक रूप कौन पाप तैं होंय? तब गुरु कही—जे जीव पर-भव में पर-जीवन कूं शोक सहित देख, सुखी भया होय तथा पर कौं द्वेष-भाव तैं भय देय, शोक उपजाया होय तथा असत्य वचन तैं हाँसि करि कही—फलानी जगह तेरा धन राह में लूट्या गया। ऐसा कहि शोक उपजाया होय तथा पर के शोक में ताकी हाँसि करी होय तथा पराये मङ्गलाचार में उपद्रव कर्‌या होय इत्यादिक पापन तैं शोकवन्त रहै। ७६। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! यह जीव सदैव शोक रहित सुखी, किस पुण्य तैं होय है? तब गुरु कही—जिन जीवन नैं पर-भव में तीर्थङ्कर के पञ्चकल्याणक उत्सव देख, हर्ष-अनुमोदना करी होय तथा जिन-पूजा, जिन-प्रतिष्ठा, सिद्धक्षेत्र-यात्रा व संघ जावता इत्यादिक उत्सव देख, बहुत हर्ष किया होय। धर्म उत्सव करनेहारे जीव की बड़ी प्रशंसा करी होय। अनेक जीवन के शोक जानैं धन तैं, मन तैं, तन तैं अनेक उपाय करि मिटाय, सुखी करै होंय तथा और जीवन कौं शोकवन्त देख, करुणा भाव करि तिनकौं सुख वांच्छ्या होय। पर कौं सुखी-मङ्गलाचार रूप देख, सुख पाया होय इत्यादिक शुभ भावना तैं शोक रहित सदैव सुख रूप होय। ७७। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुदेव! यह जीव अनेक जीवन करि पूज्य, बहुतन का ईश्वर, कौन पुण्य तैं होय? तब गुरु कही—जानै पर-भव में अनेक धर्मातमा जीवन की वैय्यावृत्त्य करि, साता उपजाई होय तथा देव-गुरु-धर्म कूं उत्कृष्ट जानि पूजे होंय तथा औरन कौं धर्मातमा जीवन की सेवा करते देख, तिनकी अनुमोदना करि, तिनकौं भले जाने होंय तथा पर-भव में जानै अनेक जीव असहायी-दीन की दया करि अन्न देय, धन देय तथा वस्त्रादि तैं सुखी किये होंय तथा जाकैं च्यारि प्रकार संघ की सेवा करने की अभिलाषा रही होय इत्यादिक पुण्य भावन तैं बहुत जीवन का नाथ

होय ।७८। बहुरि शिष्य पूछी । हे नाथ ! यह जाव कौन पाप तैं बहुत जीवन का दास होय ? तब गुरु कही—जिन जीवन नैं पर-भव में अन्य जीवन कौं भय देय, तिन तैं बेगारि कराई होय तथा सेवक राखि, चाकरी कराय, कछू दिया नाहीं होय तथा सेवकन कौं रुजगार हेतु भेले राखे होंय तथा पर-जीवन कौं अपराधी देख, सुख पाया होय इत्यादिक पाप भावन तैं बहुत का दास होय । ७९ । बहुरि शिष्य पूछी—हे गुरो ! यह नपुंसकलिङ्गी काहे तैं होय ? तब गुरु कही—जानैं पर-भव में पुरुष कौं नारी का आकार बनाय, सुख पाया होय तथा कोई नर, स्त्री का रूप बनाय लोकन कौं मोह उपजावै था सो ता रूप देख, आप हर्ष मान्या होय तथा नपुंसक जीवन कूं नाचता-गावता कौतुक-हाँसि करते देख, तिनकी चेष्टा आपकौं प्यारी लागी होय तथा अन्य जीवन कूं नपुंसक, जोरी तैं कर डारचा होय तथा नपुंसक का संग भला लागा होय तथा नपुंसक मनुष्य कैसी चेष्टा करने की, आपके अभिलाषा भई होय तथा पर-स्त्री व पर-पुरुषन के बीचि आप दूत होय, तिनका शील खण्डन कराया होय तथा एकेन्द्रिय, बेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चौइन्द्रिय—ये नपुंसक वेदी हैं तिनकी हिंसा करते करुणा नहीं भई निरदयी रह्या होय इत्यादिक पाप चेष्टा तैं जीव नपुंसक होय तथा स्थावर, विकलत्रय होय । ८० । बहुरि शिष्य पूछी । हे ज्ञान सरोवर गुरो ! यह जीव की स्त्री पर्याय, कौन कर्म तैं होय ? तब गुरु कही—जिसने पर-भव में स्त्रीन का संग भला जानि, तिनमैं स्त्री कैसी चेष्टा करि सुख माना होय ? तथा अपनी चेष्टा औरन कौं स्त्री की-सी बताय, औरन कौं वशीभूत किये होंय तथा स्त्रीन में मोहित बहुत रह्या होय तथा पर-भव में आप पुरुष था, सो नारी का रूप बनाय, औरनकौं मोह उपजाया होय इत्यादिक कुचेष्टा तैं स्त्री पर्याय होय ।८१। बहुरि शिष्य पूछी । हे गुरो ! यह जीव एकेन्द्रिय स्थावर किस पाप तैं होय ? तब गुरु कही—जो पर-भव में वीतराग देव-धर्म-गुरु की निन्दा करि, द्वेष-भाव करि, सुखी भया होय तथा देव-गुरु-धर्म की व धर्मात्मा जीवन की, कुसंग के दुर्बुद्धि जीवन का निमित्त पाय, निन्दा करी होय । ते जीव साधारण वनस्पति व निगोदिया होंय तथा जानैं पर-भव में वृक्ष छेदे होंय तथा अनेक वनस्पति खोदी, छेदी, छीली होंय तथा बहुत भूमि खोदी होय तथा जल डाल्या होय तथा अग्नि प्रजाली-बुझाई जिससे पवनकाय के जीव घाते होंय इत्यादिक पञ्च स्थावरन की दया रहित प्रवृत्या होय तथा औरनकौं

पञ्च स्थावर घात करते देख, अनुमोदना करी होय इत्यादिक पाप तैं एकेन्द्रिय स्थावर काय होय ।८२। बहुरि शिष्य पूछी । हे गुरो ! यह जीव विकलत्रय में कौन पाप तैं होय ? तब गुरु कही—जे जीव विकलत्रय आदि त्रस जीवन की घात करते, निर्दय रूप रहे होंय तथा तिली, गेहूँ आदि अन्न की भण्डशाला (बंडा-खत्ती धरि) करि बहुत दिन राखि, अनेक त्रस जीवन का समूह उपजाय कैं क्षय किया होय । तहां दया नहीं उपजी होय तथा त्रस जीवन सहित अनेक मेवा, फल, फूल, पकवानादि अनेक रसना इन्द्रिय के वशीभूत होय भक्षण किये होंय और दया नहीं उपजी होय तथा नर-पशुन का मूत्र इकट्ठा करि त्रस जीवन की उत्पत्ति-क्षय होते, दया नहीं उपजी होय इत्यादिक विकलत्रय की दया रहित वर्ते होंय, सो जीव विकलत्रय में होंय ।८३। बहुरि शिष्य पूछी । गुरु जी, यह जीव विकलांगी, अङ्गोपाङ्ग रहित कौन पाप तैं होय ? तब गुरु कही—जिन जीवन नैं पर-भव विषैं पर-जीवन के हाथ, पांव, कान, नाक, शीश, अंगुली आदि अङ्ग-उपाङ्ग छेदन किये होंय तथा कोई के अङ्ग-उपाङ्ग छेदते देख, हर्ष पाया होय तथा दीन-पशुन के अङ्ग-उपाङ्ग शस्त्रन तैं छेदन किये होंय तथा पाहन, लाठी, लात, मूकी तैं पराधीन नर-पशुन के अङ्गोपाङ्ग तोड़ि डारे होंय तथा अङ्गोपाङ्ग रहित जीव देख तिनकी हाँसि करि, हर्ष मान्या होय इत्यादिक पापन तैं विकल अङ्गी अङ्गोपाङ्ग रहित होय है । ८४ । बहुरि शिष्य पूछी । हे गुरु ! अष्ट अङ्ग सहित सम्पूरण, कौन पुण्य तैं होय ? तब गुरु कही—जिननैं पर-भव विषैं अन्य जीवन के अङ्ग-उपाङ्ग की रक्षा करी होय तथा कोई के हाथ-पांवादिक अङ्ग-उपाङ्ग कटते राखे होंय, दया-भाव करि धन देय बचाये होंय तथा औरन के अंग-उपांग में दुःख देख, आप दया करि ओषधि देय, ताकौं साता करी होय तथा अंगोपांग रहित काऊ कौं देख, अनुकम्पा करी होय तथा औरन के अंगोपांग शुद्ध-पुष्ट देख, सुख मान्या होय इत्यादिक पुण्य भावन तैं अष्ट अंग शुद्ध पावै ।८५। बहुरि शिष्य पूछी । हे गुरो ! यह जीव नीच कुली किस पाप तैं होय ? तब गुरु कही—जिन जीवन ने पर-भव में ऊँच कुली पुरुषों की निन्दा करी होय तथा अपने मुख तैं अपनी प्रशंसा करी होय तथा पराये भले गुणन का आच्छादत किया होय तथा अपने औगुण आच्छादन किये होंय तथा पराये दोष प्रगट करे होंय तथा नीच कुलीन के खान-पान विषैं रञ्जायमान होय, अनुमोदना करी होय तथा अपने अभिमान करि औरन का अनादर किया होय तथा नीच संग में बहुत रह्या होय

इत्यादिक अशुभ भावन तैं नीच कुली होय ।८६। बहुरि शिष्य पूछी । हे गुरुदेव ! ऊँच कुली कौन पुण्य तैं होय ? तब गुरु कही— जानैं सतपुरुषन के गुण की प्रशंसा करी होय तथा अपने औगुण गुरुन पै प्रगट प्रकाशै होंय तथा पराये औगुण देख आच्छादन करे होंय तथा चारि प्रकार के संघ की सेवा करी होय तथा दुराचार तैं डरऱ्या होय । अनेक दीन-जीवन कूं अनेक भोजन-पान-वस्त्र देय, सुखी करि मिष्ट वचन तैं साता उपजाई होय तथा अपने भावन तैं कोऊ का भी अनादर नहीं करऱ्या होय तथा आप दीन समानि आपकौं जानि, अभिमान रहित रह्या होय इत्यादिक शुभ भावन तैं ऊँच कुली होय । ८७ । बहुरि शिष्य पूछी । हे गुरु ! यह जीव नीच कुल में उपजै । तिनकौं दीर्घ धन, हुकुम, लोक में मान पुरुषार्थ होय सो कौन पुण्य तैं होय ? तब गुरु कही—जिन जिन जीवन नैं पर-भव में अनेक अज्ञान तप करे कबहूँ अन्न का त्याग करि, साग-भाजी भोजन करी होय तथा वनफल-पत्ता का भोजन करऱ्या होय तथा सर्व त्याग, दूध लिया होय। मही पिया होय। घासि घोट के पिया होय। अग्नि में तन तपाया होय। ऊर्ध्व पांव-अधो शीश, झूल्या होय। भूमि गड़ऱ्या। पर्वत पतन किया। जल पतन इत्यादिक बाल तपस्वी होय, अनेक कष्ट, धर्म के निमित्त सहे होंय तथा अज्ञान तपस्वीन कौं, भले धर्मात्मा जानि विनय सहित सरल भावन तैं तिनकी पूजा करी होय। धर्म के निमित्त याचकन कौं दान दिया होय तथा लौकिक कार्यन में धर्म जानि धर्म फल कौं धन खर्चा होय तथा अपनी अज्ञानता तैं अन्य भोले जीवन कूं धर्मी जान पूजे होंय तथा आप ज्ञान रहित होय, मन्द कषायी रह्या होय इत्यादिक भावना सहित नीच कुल में उपजि, धन-वान्-हुकुमवान होय सो तिर्यंच गति का बन्ध किये पीछे ऐसे भाव होंय, तौ शुभ भावना के फल तैं कोई राजा का हस्ती-घोटकादि पशु होय । ताके पीछे अनेक जीव पलैं। भले वस्त्र-आभूषण, भले भोजन का भोगनहारा आप सुखी होय तथा पहिले मनुष्यायु का बन्ध किया होय, तौ नीच कुल में उपजै। सो हुकुम का धारी होय तथा पहिले देवायु का बन्ध किया होय तौ भवनत्रिक में अल्प ऋद्धि का धारी, हीन देव होय इत्यादिक भावन तैं ऐसे होंय। ८८। बहुरि शिष्य पूछी। ये जीव ऊँच कुली होय दीन दशा धारै, धन रहित होय। सो किस पाप का फल है ? सो कहिये। तब गुरु कही—जिसनैं पर-भव मैं शुभ भावन तैं ऊँच-गोत्र का बन्ध करि पीछे विपरीत कषाय रूप भाव भये, सो मान के वश होय, मोह के जोर तैं मदोन्मत्त होय पर-जीवन का मान खण्ड कर, हर्ष

पाया होय। आप गुरु जन की आज्ञा रहित रह्या होय तथा दीन जीवन पै द्वेष-भाव करि तिनकूं कुवचन करि पीड़ा उपजाई होय। पर का धन छल-बल करि नाश कराय, सुख पाया होय इत्यादिक पाप भावन तैं ऊँच कुली होय, परन्तु धन-धान्यादि रहित, दीन दशा का धारक होय।८९। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुजी! यह जीव बहुत देशान्तर भ्रम आजीविका पूर्ण करै। ऐसा किस कर्म तैं होय? तब गुरु कही—जिन जीवन नैं पर-भव में दीनकौं दान दिये होंय, सो अनेक जगह भ्रमाय-भ्रमाय दिया होय तथा दान के दाम अन्य ग्राम मैं बताय दीनकौं भटकाय दान दिया होय तथा और दीनन पै अनेक सेवा-चाकरी कराय बहुत दिन तक भटकाय, पीछे दया करि दान दिया होय तथा अनेक ग्राम-देश भ्रमाय, सेवा-चाकरी कराय, पीछे धर्म जानि दान दिया होय तथा कासीदन कौं अनेक देश भ्रमाय, ताकी चाकरी नहीं दई होय तथा कसर करि दई होय तथा धर्म निमित्त परकौं ग्राम, धन, वस्त्र देय तिनतैं अनेक चाकरी कराय, बहुत देश-नगरकौं कासीद (हलकारे) की नाईं भ्रमाय, तिनपै खेद कराया होय तथा धर्मातमा पुरुषन कूं आधीन राख, अनेक देश-ग्राम अपने संग भरमाय, तिनकी स्थिरता कौं आजीविका बताई होय तथा देशान्तर की आजीविका करनेहारे जीव की हाँसि करी होय। आप मद करि एक जागि तिष्ठा, धन पैदा करता, मत्सर भाव करि अन्य कौं बहकाये होंय इत्यादिक अशुभ भावना सहित, भवान्तर में मनुष्य होय, तौ देशान्तर भ्रमण करि आजीविका पूरण करणहारा होय। ९०। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! यह जीव एक स्थान पै तिष्ठा, आजीविका कौं अनेक धन पैदा करता, कौन पुण्य तैं होय? तब गुरु कही—जिसने पर-भव में अनेक धर्मातमा जीवन की स्थिरता कौं खान-पान धन-दानादि देय निराकुल, धर्म-सेवन कराया होय तथा अनेक पशु तथा दीन मनुष्य इनकौं अशक्त देख, दुःखी देख, तिनकी दया करि तिनके स्थान बैठे ही असहाय जानि, तिनके खान-पान की खबर लेय, साता उपजाई होय तथा निर्धन धर्मातमा जीवनकौं निराकुल धर्म सेवन करते देख, समता सहित देख, तिनकी प्रशंसा करी होय तथा औरन कौं सुख तैं धन पैदा करते देख, खुशी भया होय इत्यादिक शुभ भावन तैं एक स्थान में धन पैदा करि सुखी होय।९१। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! यह जीव दगाबाजी सहित आजीविका पैदा करनेहारा किस पाप तैं होय? तब गुरु कही—जानैं पर-भव में दान में कपटाई करी होय। दीन जीवन कूं कपटाई सहित दान दिये होंय। गुरुजन जो मुनि,

तिनकौं भक्ति-भाव रहित दान दिया होय दुःखित-भुखितन कौं दया रहित दान दिया होय तथा मायातें उदर भरनेहारे चोर, फांसी, गिरी, ठग तिनकी कला-चतुराई देख, तिनके ज्ञान की प्रशंसा करी होय तथा पराया धन धरया ही जानता, मुकरि गया होय। औरन के भले किसव कौं दोष लगाया होय इत्यादिक पाप भावन तैं दगाबाजी सहित आजीविका करनेहारा होय। ९२। बहुरि शिष्य पूछी। हे दयालु गुरुनाथजी! सरल भाव सहित सत्यवादी होय आजीविका पूर्ण करै, सो किस पुराय तैं करैं? सो कहो। तब गुरु कही—जिननैं पर-भव में सरल भाव तैं धर्म-राग करि धर्मातमा जीवन कूं अन्न-पान विनय सहित देय, साता करी होय तथा दगाबाजी रहित, दया सहित, दीन जीवन कूं खान-पान देय रक्षा करी होय। आरन कौं निर्दोष आजीविका उपजावते देख, तिनकी प्रशंसा करी होय तथा पर-भव में सत्य वचन व सरल भाव सहित आजीविका नहीं मिलै भी, अनेक भूख सही, सङ्कट सहे। परन्तु कपटाई सहित उदर पोषण नहीं किया होय इत्यादिक शुभ भावन तैं, न्याय सहित सरलता तैं आजीविका पैदा होय है। ९३। बहुरि शिष्य पूछी। यह जीव नर व पशु होय, घर-घर बिकता फिरै। सो कौन पाप-कर्म का फल है? तब गुरु कही—पर-भव में जा जीव नैं बल करि, छल करि, पराये पुत्र-पुत्री बैंचे होंय तथा पराये पशु छल-बल करि हर के, घर-घर बैंचे होंय तथा पराये पुत्रादि मनुष्य तथा हस्ती, घोटक, महिष, वृषभ आदि जीव कोऊ के प्रबल शत्रु ने अन्याय भाव तैं लूटि, पकड़ ल्याय घर-घर बैंचे होंय तिनकौं देख सुखी भया होय तथा बीच में दलाली खाय, पराये मनुष्य-पशु बिकाये होंय इत्यादिक भावन तैं आप घर-घर विषैं बिकै है। ९४। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! एक बार ही बहुत जीव-समुदाय मरणकौं प्राप्त होय। सो कौन कर्म के उदय तैं होय? सो कहिये। तब गुरु कही—पर-भव में जिन बहुत जीवन नैं एक ही बार पाप उपाया होय। जैसे—कोई, मनुष्य कूं तथा पशु कूं मारै है। तहां कौतुक के हेतु अनेक जीव देख, सुखी होय, पाप भार उपाया होय तथा कोई नर-नारीकूं अग्नि में जलते देख, अनेक जीव सुखी भये होंय, अनुमोदना करी होय तथा युद्ध विषैं अनेक जीवन का मरण सुनि तथा देख, अनेक जीव राजी होय, हर्ष पाया होय तथा अनेक जीवनिनें मिलि वीतराग देव-गुरु-धर्म की निन्दा-हाँसि करी होय इत्यादिक पाप भावन तैं समुदाय सहित अनेक जीव मरण पावैं हैं। ९५। बहुरि शिष्य

प्रश्न किया। हे गुरो! यह जीवन के समुदाय कूं सुख किस पुण्य तैं होय? तब गुरु कही—जिन जीवन नैं तीर्थङ्कर के गर्भ उत्सव तथा देवन के किये जन्मोत्सव, तप उत्सव, ज्ञान उत्सव, निर्वाण उत्सव—इन पाँच कल्याण के बड़े उत्वस, अनेक देव सहित, इन्द्र-शची कौं करते देख तथा सुनि, जिन जीवन नैं इकट्ठे होय, अनुमोदना करी होय तथा इन्द्र महाराज इन्द्राणी सहित अनेक देव लेय, नन्दीश्वर जी के उत्सव कौं जाते देख तथा सुनि, परम सुख कूं पाय, अनेक जीवन के समुदाय ने अनुमोदना करि पुण्य बांध्या होय तथा बड़ा सङ्घ सिद्धक्षेत्र की यात्रा कौं जाता देख, ताका जय-जयकार उत्सव देख, अनेक जीवन नैं अनुमोदना करि, पुण्य बन्ध किया होय तथा च्यार प्रकार संघ की वीतरागता देख, अनेक जीवों ने सुख पाया होय तथा समोशरण की महिमा देख तथा बड़ी पूजा-विधान-प्रतिष्ठा तिनके उत्सव देख तथा शास्त्रन तैं सुनि, अनेक जीवन कौं अनुमोदना उपजी होय इत्यादिक शुभ कार्यन में अनुमोदना करि, बहुत जीवन नै समुच्चय पुण्य बन्ध किया होय। तिनकूं समुदाय ही सुख होय है। ९६। बहुरि शिष्य पूछी हे गुरो! बहुत जीव एक बार ही तप लेय, स्वर्ग-मोक्ष कौं सङ्ग ही जांय। सो किस पुण्य का उदय है? सो कहो। तब गुरु कही—जिन जीवन नैं पर-भव में तीर्थङ्करों को, देवोपुनीत राज्य-सम्पदा छांड़ि तप लेते देख तथा चक्रवर्ती षट् खण्ड की विभूति तृणवत् तजि दीक्षा लेंय, तिस उत्सव कौं देख तथा बलभद्र, कामदेव, मण्डलेश्वरादि महाराजान् कौं दीक्षा लेते देख, हर्ष करि अनुमोदना करी होय तथा एक-एक राजान् की संगति करि, अनेक राजा व तिनकी रानी, राज्य-सम्पदा छांड़ि, दीक्षा लेंय। ऐसे हजारों जीवन की दीक्षा देख तथा शास्त्रन तैं सुनि, बहुत भव्य जीवन नैं एक बार ही तप की अभिलाषा सहित अनुमोदना करि, समुदाय सहित पुण्य का बन्ध करि, वैराग्य भाव किये होंय इत्यादिक समुदाय पुण्य तैं, समुदाय तप अङ्गीकार कर स्वर्ग-मोक्ष होय है।९७। बहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ! बहुत जीवन कैं एकही बार रोग होय। सो किस कर्म तैं होय? तब गुरु कही—जिननैं पर-भव में वीतरागी यतीश्वर का, जो अपने शरीर ही तैं निष्प्रयोजन हैं तिनका शरीर मलिन देख तथा तप तैं क्षीण देख तथा मुनीश्वर के शरीर में दीर्घ रोग देख बहुत जीवन ने एक ही बार ग्लानि करी होय तथा निन्दा करि अनादर किया होय। तो उन बहुत जीवन के एक साथ ही रोग होय तथा कोई आर्यिका के तन में रोग देख तथा धर्मात्मा श्रावक, श्राविका अविरत

सम्यग्दृष्टि इनके शरीर रोगतैं क्षीरा व अशुचि देख, बहुत जीवन ने एक ही बार ग्लानि करी होय इत्यादिक अशुभ भावन तैं बहुत जीवन के एक ही बार रोग होय है ।९८। बहुरि शिष्य पूछी । हैं गुरुजी ! इस जीवकूं पर-स्त्री तथा पर-पुरुषकूं देख काम विकार होय, मोह उपजै । सो किस कर्म का फल है ? तब गुरु कही—जो जीव पर-भव की स्त्री होय तथा पर-भव में जिनको परस्पर व्यभिचार का बन्ध भया होय तथा पर-भव की हाँसी, खिलवती, नाच, गीत की सुहवति-संग का जीव होय इत्यादिक पर-भव के विकार सम्बन्ध तैं भवान्तर में ताकौं देख काम-विकार होय है ।९९। बहुरि शिष्य पूछी । हे गुरो ! पर-जीवकौं देख, बिना कारण द्वेष-भाव होय । सो कौन कारण ? तब गुरु कही—जाकौं देख द्वेष-भाव होय, सो पर-भव का वैरी होय । आपने वाकौं पर-भव में दुःखी किया होय तथा वानैं आपकौं काहू युद्ध कराय, हर्ष मान्या होय तथा आपने वाकौं भिड़ाय, सुख मान्या होय इत्यादिक पूर्व द्वेष जातैं होय ताकौं देखे भवान्तर में द्वेष-भाव होय । २०० । बहुरि शिष्य पूछी । हे गुरुजी ! पर-जीव देव, मनुष्य, पशु ताकौं देख हर्ष होय। सो कौन सम्बन्ध है ? तब गुरु कही—कोई पर-भव का पुत्र का जीव होय तथा भाई का जीव तथा माता का जीव तथा बहिन का जीव तथा पिता का जीव इत्यादिक पर-भव का कोऊ कुटुम्बी जीव होय तथा पर-भव का कोई मित्र होय तथा अपना कोई पर-भव में उपकार करनहारा होय तथा आपने वाके ऊपर कोई उपकार पर-भव में किया होय इत्यादिक सम्बन्ध वातैं कोऊ पूर्व भव का होय ताकी सूरत देख मोह उपजै है । २०१ । बहुरि शिष्य पूछी । हे गुरुदेव ! अपने दुःख में बिना प्रयोजन कोई आय सहाय करै । सो कहा सम्बन्ध ? सो कहिये । तब गुरु कही—पर-भव में आपने वाके ऊपर कोई उपकार किया होय । जो भूखे कूं अन्न-भोजन दिया होय सो आय आपकौं बड़े सङ्कट में भोजन का सहाय करै। जानैं तृषावन्त कौं जल प्याय साता करी होय। सो आपकौं दीर्घ पर्वत, वन, उद्यान में तथा युद्ध में जहां जल नहीं होय तृषा-सङ्कट में प्राण जांय ऐसे दुःखन में जल प्याय सुखी करै तथा जानै नग्न रहते कौं वस्त्र देय साता करी होय। सो भवान्तर में ल्याय अनेक वस्त्र नजर करै तथा आपने काहू कौं अभय-दान देय दुःख तैं, मरण तैं बचाया होय तो वह हस्ती, सर्पादि दुष्ट जीवन करि प्राण जावतैं आय सहाय करै मरते कौं बचाव है तथा महासंग्राम विषैं आय सहाय करै इत्यादिक जाके ऊपर

जाने जैसा उपकार किया होय तैसा ही आपकौं दूसरा भी आय सहाय करै है तथा नये सिरे तैं उपकार करने की अभिलाषा होय है। १०२। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुनाथ! जाका धन रोग निमित्त बहुत लागै। परन्तु सुख नहीं होय। सो कौन पाप का फल है? तब गुरु कही—जानैं पर-भव विषैं अनेक भोले जीवन कौं बहकाया होय और तिनकौं रोग नाश करि पुष्ट करवे का लोभ देय तिनका धन छल-बल करि आप लिया होय तथा रोग नाशक लोभ देय ताका बहुत धन खराब कराया होय तथा अल्प मोल की वस्तु देय बहुत धन छलि करि लिया होय तथा अन्य कौं दुःखित-रोगी देख तिनका धन औषध निमित्त वृथा लागता देख आपने हर्ष मान्या होय तथा पर कौं रोग नाश करने निमित्त कुदेवादिक के निमित्त पूजा बताय ताका धन क्षय किया होय तथा कोई रोगी कौं ग्रह-नक्षत्र का भय देय तिनका धन ग्रह-दान में क्षय कराया होय इत्यादिक कुभावन तैं भवान्तर में मनुष्य होय ताका धन रोग निमित्त जाय है। १०३। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! इस जीव का भला धन कुव्यसन विषैं लागै। सो किस पाप का फल है। सो कहो। तब गुरु कही—जानैं पर-भव में पराया धन कुव्यसन विषैं शिक्षा देय लगवाया होय तथा पराया धन कुव्यसन में लागता-उजड़ता देख आप सुखी भया होय। द्यूत रमाय पराया धन हरा होय। अभक्ष्य भक्षण कराय पर-धन खोया होय तथा आपने चोरी करि पराया धन हरा होय। मदिरा प्याय धन ठगा होय तथा वेश्या के नाच-गान व पर-स्त्री आदि भोगन मैं पर-धन नाश होता देख आप खुशी भया होय इत्यादिक पाप तैं भवान्तर में कुव्यसन में धन नाश होय है।१०४। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! यह जीव गर्भ में ही कौन पाप तैं नाश हो जाय? तब गुरु कही—जिन नैं पर-जीवन कौं पर-भव में गर्भ में ही मारे होंय अनेक वनवासी पशु तिनकूं आप निर्दयी होय, गर्भ में ही हते होंय तथा आप दाई का स्वांग धारि, अनेक स्त्रियों के बालक गर्भ में ही मारि डारे होंय तथा औषध देय तथा जन्त्र-मन्त्र करि गर्भ का निपातन किया होय तथा पर के बालक गर्भ विषैं मरे सुनि आप सुखी भया होय तथा कोई तैं द्वेष-भाव करि ताका बालक किसी कौं कहि के गर्भ में ही नाश कराया होय इत्यादिक पापन तैं जीव भवान्तर में गर्भ में ही मौत पावै है।१०५। बहुरि शिष्य कही—हे गुरो! इस जीव कौं भली सीख बुरी क्यों लागै? सो कहो। तब गुरु कही—जानैं पर कौं अनेक खोटी सीख देय, पर का बुरा करि, आप सुख पाया होय तथा पर कौं खोटी सीख देय,

कुमार्ग चलाया होय तथा गुरु जन जो माता-पितादिक, तिनके हितकारी शिक्षा वचन सुनि, जाकौं नहीं सुहाये होंय। जिननैं उल्टे गुरु जन कौं अविनय वचन कहे होंय। औरन कों अविनय सहित चलते देख, आप राजी भया होय। शिक्षा के देनेहारे गुरु जन, तिनकी हाँसि करी होय। स्वेच्छाचारी पशु पर्याय, तामैं तैं चय कैं मनुष्य भया होय तथा पापाचारी, अविनयी कुसंगी जीव तिनके वचन भले लागे होंय इत्यादिक पाप भावन तैं, भली सीख वचन नहीं सुहावैं हैं। २०६। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! इस जीव कौं अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान की प्राप्ति कौन शुद्ध परिणति तैं होय ? तब गुरु कही—हे भव्यात्मा! सुनि। जिननैं पर-भव मैं तपस्वी मुनि अवधि-मनःपर्यय ज्ञान धारी, तिनके ज्ञान का माहात्म्य देख, हर्ष पाया होय तथा ऐसे दीर्घ ज्ञान के धारी तपस्वी, तिनकी सेवा-चाकरी करि, अपना भव सफल मान्या होय तथा ऐसे अवधि-मनःपर्यादि ज्ञान का अतिशय देख, तिनकी बहुत महिमा करी होय, बारम्बार स्तुति करी होय, तिन तापसी ज्ञान-भण्डार यतीन की वैयाव्रत्य करने की अभिलाषा रही होय तथा मुनि पद धारि अवधि-मनःपर्यय ज्ञान उपायवे की वांछा रही होय तथा केवली के वचन सुनि, सत्य जानि हर्ष पाया होय तथा केवलज्ञानी के अतिशय, देव-इन्द्रन करि वन्दनीय जानि, आपकूं केवली के गुण तैं बहुत अनुराग भया होय तथा केवलज्ञानी के वचन प्रमाण तीन लोक, तीन काल, जीव-अजीवादि द्रव्य, तिनके प्रमाण का स्वरूप, परोक्ष तौ जान्या होय अरु ताके प्रत्यक्ष जानवे का परम अभिलाषी भया, वीतराग भावन की इच्छा सहित प्रवृत्ति करी होय इत्यादिक शुभ भावना तैं अवधि-मनःपर्यय-केवलज्ञान की महिमा प्रशंसा भक्ति-भाव सहित कर, तिन उत्तम ज्ञान की प्राप्ति कौं दीक्षा का उद्यमी भया होय इत्यादिक शुद्ध भावना सहित जीवन कूं भवान्तर में अवधि, मनःपर्यय, केवल ऐसे उत्कृष्ट ज्ञान की प्राप्ति होय है।२०७। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुजी! इस जीव का धन, धर्म कार्यन विषैं लागै। सो किस पुण्य का फल है ? सो कहो। तब गुरु कही—जिन जीवन ने पर-भव में औरन कों धर्म विषैं धन खर्च करते देख, अनुमोदना करि हर्ष उपाया होय तथा आपने चोरी दगाबाजी रहित, न्याय मार्ग सहित, धन उपारज्या होय। औरन कौं तीर्थ स्थान में धन लगावते देख तथा जिन-मन्दिर के करायवे में द्रव्य लगावते देख तथा पुजा-प्रतिष्ठा विषैं धन लगावते देख, आपने विशेष अनुमोदना करी होय तथा आपने पर-भव में अनेक प्रभावना अङ्गन में द्रव्य लगाया होय

तथा औरन कौं इन स्थानकन में धन लगावते देख, भले जानें होंय। ऐसे पुण्य परिणामन तैं इस जीव का धन शुभ कार्य में लागै है। २०८। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! यह जीव व्रत लेय भङ्ग करि डारै। सो किस कर्म का फल है? तब गुरु कही—जानैं पर-भव में पर-जीवन के व्रत भङ्ग किये होंय तथा पराये शुद्ध व्रत कौं दोष लगाया होय तथा अन्य अज्ञानी जीवन कौं व्रत लेय भङ्ग करते देख अनुमोदना करी होय तथा कोई धर्मात्मा जीवन का व्रत, कोऊ दुष्ट भङ्ग करै है। सो तामैं सहाय होय, पराया व्रत भङ्ग कराया होय तथा बाल्यावस्था में अनेक बार कौतुक मात्र आखड़ी लेय-लेय कैं भङ्ग करी होय इत्यादिक अशुभ-कर्म तैं भवान्तर में शिथिलांगी व्रत करनेहारा होय। २०९। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! यह जीव पशु पर्याय में उपजि कसाई के हस्त तैं मरे। सो कौन पाप का फल है? तब गुरु कही—जिसने पर-भव में कसाई का किसब (व्यवसाय) किया होय तथा जिन नैं पर-भव में अन्य जीवों कौं विश्वास देय, अनेक भले खान-पानतैं पोष, तिनका घात किया होय तथा पर-जीवन कौं छल-बल करि हते होंय तथा पर-जीवन कौं मोल लेय, मारे होंय तथा पर-जीवन के अण्डा मोल लेय मारे तथा अण्डे बेंचे होंय तथा पर-जीवन कौं पालि पीछे लोभ के अर्थ, कसाईन कों बेंचे होंय तथा बिना अपराध वन-जीवन कौं अपने हाथ तैं हते होंय तथा कसाई के घर का आमिष मोल लाय, भक्षण कर‍्या होय तथा पर-जीवन कों कसाई के हाथ तैं मरते देख, सुख मान्या होय तथा पर-जीवन का आमिष बहुत खाया होय इत्यादिक पापन तैं जीव की कसाई के हाथ तैं मौति होय। २१०। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! यह जीव पाप परिणामी, पाप क्रिया सहित कौन पाप तैं होय? तब गुरु कही—जानैं पर-भव में पापी, चोर, ज्वारीन का संग बहुत किया होय तथा पर-जीवन का घात किया होय तथा पापी जीवन कौं कुबुद्धि-पाप रूप क्रिया करते देख, अनुमोदना करी होय तथा हिंसा सहित जीवन कौं कुबुद्धि-पाप रूप क्रिया करते देख, अनुमोदना करी होय तथा हिंसा सहित पाखंडी जीवन के कल्पित देव-गुरु मांस-भक्षी, तिनकी सेवा-पूजा करी होय तथा धर्मात्मा जीवन की निन्दा करि, अविनय करि सुख मान्या होय तथा शुद्ध देव-गुरु-धर्म की निन्दा करि, विपरीत भाव रह्या होय इत्यादिक अशुभ भावन तैं पापी, पाप-क्रिया का करनहारा होय है।२११। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! यह जीव भली उत्तम मनुष्य पर्याय पाय, खपत कैसे पाप तैं होय? तब गुरु कही—जानै पर-भव में अन्य

जीवन कौं मन्त्र-यन्त्र करि खपत करे होंय तथा अनेक जड़ी-बूटी खुवाय के, जीवन कूं खपत करे होंय तथा केई जीव पाप के उदय तैं खपत होय गये, तिनकी हाँसि करी होय तथा केई खपत की अज्ञान चेष्टा देख, तिनकौं चोरी आदि झूठा दोष लगाया होय तथा कोई हौल दिल कूं स्वच्छन्द प्रवृत्तता देख, ताकौं मारया होय तथा मदिरादि अमल पीय, अपनी अज्ञान चेष्टा करि, सुख मान्या होय तथा कोई मदिरा पीवनेहारा, तिनकी अज्ञान चेष्टा देख, आप सुख मान्या होय इत्यादिक पाप चेष्टा तैं जीव भवान्तर में खपत होय है। २२२। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! यह जीव कुशीलवान् किस पाप तैं होय? तब गुरु कही—जानैं पर-भव में वेश्या का संग बहुत किया होय तथा वेश्या, नृत्यकारिणी तथा कुशील स्त्री, नपुंसक पुरुषाकार तिनके संग बहुत अज्ञान चेष्टा देख तथा उन समान आप कुचेष्टा करि, हर्ष मान्या होय। तिन मैं गोष्ठी कर, रम्या होय और जीवन कौं कुशील करते देख, अनुमोदना करी होय तथा श्वानादिक पशु पर्याय में कुशील रूप वरत्या होय तथा औरन के बीच में दूत होय, कुशील में सहायता दी होय तथा दिन विषैं कुशील के वीर्य का उपज्या होय इत्यादिक पाप भाव तैं कुशील ही होय।२२३। बहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ! ये जीव शीलवान् किस पुण्य कर्म तैं होय? तब गुरु कही—जानै पर-भव में शीलवान् पुरुष-स्त्री जीवन की प्रशंसा करी होय तथा शीलवान् पुरुष के शील राखवे कौं सहाय करी होय। पूर्वै संयमी पुरुषन की संगति करी होय तथा कुशीलन की संगति तैं मन उदास रह्या होय इत्यादिक शुभ भावन तैं शीलवान् होय। २२४। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! यह जीव जनमते ही मरण कौं प्राप्त किस पाप तैं होय? तब गुरु कही—जानैं औरन कौं जनमते ही मारे होंय तथा अल्प आयु के धारी जनमते ही मरते देख, हर्ष पाया होय तथा द्वेष-भाव तैं कोई कौं जनमते देख, हस्त तैं मारया होय तथा सम्मूर्च्छन एकेन्द्रियादि त्रस जीवन के घात के उपाय करि तिनकी हिंसा करी होय इत्यादिक पाप भावन तैं जन्म समय ही आप मरण पावै।२२५। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! यह जीव बन्दी होय, पर वश पर के किये दुःख कौं सहै। सो किस पाप का फल है? सो कहो। तब गुरु कही—जिननैं बिना अपराध धन के लोभ कौं पर-जीव जोरावरी पकड़ि कैं बन्दीगृहमें राखे होंय तथा पर-भवमें दुपद, चौपद, नभचर, जलचर, उरपद इत्यादिक पशूनकौं बलात्कार, पींजरा-फन्दा आदि बन्धन में राखे होंय तथा पर-जीवन कौं द्वेष-भाव करि, चुगली खाय, पराये मान खण्डन कौं, धन

नाश कौं, झूठा दण्ड लगाय, बन्दी में दिवाये होंय तथा पर कौं बन्दीगृह में देख, अनुमोदना करि खुशी भया
होय इत्यादिक पाप तैं, जीव नृपादिक का बन्दी होय।२२६। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! यह जीव अकस्मात्
शस्त्र तैं, फांसी तैं, गोला तैं, सिंहादि दुष्ट पशून तैं, अग्नि तैं, जल तैं, विष तैं इत्यादिक कारण तैं मृत्यु पावै। सो
किस पाप के फल तैं पावै? सो कहो तब गुरु कही—जानैं पर-भव में पर-जीवन कूं दोष लगाय, विष देय मारे
होंय तथा विष? मूए देख, हर्ष पाया होय। सो जीव इस पाप से अकस्मात् मृत्यु पावै और जानैं पर-जीवन
कौं फांसी तैं मारे होंय तथा फांसी तैं मूये सुनि, अनुमोदना करि हर्ष पाया होय। ते जीव चोरन का निमित्त पाय,
फांसी तैं मरै और जिननें पर-जीवन कौ तीर, गोली, बर्छी, कटारी, छुरी तलवारादि शस्त्र तैं मारे होंय तथा मुये
सुनि, अनुमोदना करी होय। ते जीव अकस्मात् शस्त्र तैं मौति पावैं और जिन जीवन नैं पर-भव में सिंहादि
जीवन कौं शस्त्र तैं हते होंय तथा औरन तैं मारे सुनि, सुख पाया होय। ते जीव सिंहादिक दुष्ट जीवन तैं
अकस्मात् मृत्यु पावैं और जिननें पर-जीवन कूं अग्नि में जाले होंय तथा अग्नि में जले सुनि, हर्ष पाया होय। सो
जीव अकस्मात् अग्नि में जलैं और पर-जीवन कौं जिनने जल में डुबोय मारे होंय तथा जल में डूबे सुनि, सुख
पाया होय। ते जीव अकस्मात् जल में डूबि मरैं इत्यादिक जे पाप क्रिया, ताही निमित्त पाय अकस्मात् मरण
होय।२२७। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! यह जीव पर का खानाज़ाद गुलाम, किस पाप तैं होय? तब गुरु
कही—जानैं पर-भव में बलात्कार पर-जीवन कौं गुलाम किये होंय तथा धन लोभ देय तथा भूखेकौं खान-पान
वस्त्रादिक का लोभ लगाय तथा पराया मनुष्य बिकते देख मोल देय इत्यादिक कारण तैं पर-जीवन कौं गुलाम
किये होंय तथा अन्य जीव कोई का गुलाम भया होय तथा अपने बीचि-दूत होय, किसीकौं किसी का गुलाम
कराया, दलाली खाय हर्ष पाया होय इत्यादिक पापन तैं जीव भवान्तर मैं आय, अन्य घर बिक गुलाम
होय।२२८। बहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ! यह जीव लोक-निन्द्य कौन पाप तैं होय? तब गुरु कही—जाने
जगत्पूज्य जो वीतराग देव-धर्म-गुरु की निन्दा करी होय तथा और कोई देव-धर्म-गुरु के निन्दक जानि
तिनमें प्रीति भाव किया होय तथा तीन जगत्पूज्य, प्रशंसा योग्य ऐसे वीतरागादि उत्तम गुण, तिनकी निन्दा करी
होय तथा धर्मात्मा पुरुषन की निन्दी करी होय तथा लोक-निन्द्य पुरुषन के संगकौं पाय, अनेक निन्द्य-कार्य

किये होंय। अयोग्य खान-पान करे होंय इत्यादिक पापन तैं, जीव लोक-निन्द्य पद पावै। २१९। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुदेव! इस जीव कौं पुत्र, स्त्री, माता, पिता, भरतार आदि इष्ट वस्तु का वियोग किस पाप तैं होय? तब गुरु कही—जानैं पर-पुत्र हरे होय तथा पराये पुत्र हरे जान, जानैं अनुमोदना करी होय तथा पराई स्त्रीकौं, ताके भरतार तैं वियोग कराया होय तथा पर-स्त्री पुरुष का वियोग सुनि हर्ष पाया होय ताके स्त्री का वियोग होय तथा परका कुटुम्ब-माता-पितादिकतैं वियोग कराया होय तथा पर का कुटुम्बतैं वियोग सुनि, महाहर्षवान् भया होय इत्यादिक पाप भावन तैं भवान्तर में जीव कूं कुटुम्बादिक का वियोग होय है।२२०। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुदेव! इस जीवकौं धन का वियोग किस पाप तैं होय? तब गुरु कही—जानैं पर-भव में पर का धन हरया होय तथा चोर तैं, जल तैं, अग्नि तैं, राज्य तैं, फौज तैं इत्यादिक निमित्त पाय, पर का धन नाश भया सुनि, अनुमोदना करी होय इत्यादिक अशुभ भावन तैं भवान्तर में आपकौं धन का वियोग होय है। २२१। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुजी! इस जीव के घर में अग्नि किस पाप तैं लगै है? तब गुरु कही—जानें पर-जीवन के घर में आग लगाई होय तथा पराया घर जलते देख, हर्ष पाया होय इत्यादिक पापन तैं घर में अग्नि लगै है।२२२। बहुरि शिष्य पूछी। हे नाथ! इस जीवकैं कण्ठ विषैं नरैल समान मेद किस पाप तैं होय? तब गुरु कही—जानैं पर-भव में पर-जीवन कौं लाठी, सोंठी, मूंकी मार ताका कण्ठ सुजाय दिया होय तथा जानैं पर के मुख आगे भार बांध, दुःखी करया होय तथा पर के कण्ठ में मेद देख, ताकी हाँसि करि बहकाय, हर्ष मान्या होय इत्यादिक पाप भावन तैं भवान्तर में आपके कण्ठ में नरैल तैं दीर्घ मेद हो है।२२३। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरो! यह जीव सर्व कौं वल्लभ किस पुण्य तैं होय? तब गुरु कही—जानैं पर-भव में सर्व संसारी जीवनतैं स्नेह-भाव करया होय तथा देव, गुरु, धर्म जाकौं महावल्लभ लागे होय तथा जाकौं पर-भव में च्यारि प्रकार के संघ के धर्मातमा जीव, महावल्लभ लागे होंय तथा गुनी जन तैं स्नेह जनाया होय तथा दीन-दरिद्री दुःखित-भुखित, सोच-जलधि में पड़े महादुःखी जीव तिनकौं देख, दया-भाव करि तिनकौं स्नेह सहित विश्वास उपजाय, सुखी किये होय इत्यादिक शुभ भावन तैं जीव भवान्तर में सब कूं सुखदाई परम वल्लभ होय। २२४। बहुरि शिष्य पूछी। हे गुरुनाथ जी! इस जीव के घर, सदैव मङ्गल रहै। सो किस पुण्य तैं होय? सो कहो। तब गुरु कही—

जो पर-भव में तीर्थङ्कर के पञ्चकल्याणक देख तथा सुनि करि, हर्षवन्त भये होंय तथा जिन-पूजा, जिन-प्रतिष्ठादि मङ्गलाचार उत्सव देख, अनुमोदना करी होय तथा पुण्योदय तैं काऊ के घर मङ्गलाचार गाजते-बाजते देख, हर्षित भया होय तथा कोई घर शोक, चिन्ता, भय देख तिनकी दया करी होय इत्यादिक पुराय भावन तैं सदैव घर में मङ्गल होय है। १२५। ऐसे एक सौ पच्चीस प्रश्न शिष्य नैं गुरु तैं स्व-पर कल्याण के अर्थ किये। सो ये प्रश्न हैं, इनमें के केतेक प्रश्न तो त्रैलोक्यनाथ की माता तैं देवांगना ने करै हैं। तिनके उत्तर तीर्थङ्कर की माता ने दिये हैं और केतेक प्रश्न, राजा श्रेणिक महाधर्ममूर्ति बुद्धिमान तानैं गौतम स्वामी गणधर तैं करे। तिनके उत्तर श्रीगौतम स्वामी ने दिये हैं। सो इनकौं इकट्ठे करि, यहां भव्य जीवन के कल्याण हित, समुच्चय बखान किये। तिनके भेद जानि, पाप पंथ तजि, सुपंथ लागि, अनेक जीवन नैं पुराय बन्ध किया और इनकौं सुनि अनेक भव्य, पुराय उपारजैंगे तातैं विवेकी इस प्रश्नमाला कौं बांचि, निकट संसारी इनका रहस्य पाय, अपना कल्याण करें। इस प्रश्नमाला के धारण किये, भव्य जीव भव-भव में सुखी होंय। कैसी है ये प्रश्नमाला ? गुरु के वचनरूपी महा शुभ सुगन्धित फूल तिनकी बनाई है। सो इस माला कों निकट भव्य मोक्षरमणी का दूलह, हर्षाय कैं अपने हृदय विषैं पहरि, सुखी होऊ। कवीश्वर कहै हैं, इस माला कूं मैं अनेक हृदय में फेरि, अपना भव सफल जानि कृत-कृत्य भया और भी जे अमर-पद के लोभी इस प्रश्नमाला कों अपने कण्ठ में पहिरेंगे। ते भव्यात्मा कल्याण के वांछी, सुबुद्धि, युग भव में तथा भव-भव में शोभा पावेंगे। ऐसी जानि इस प्रश्नमाला कूं धारण करहु।

इति श्री सुदृष्टि तरङ्गिणी नाम ग्रन्थ के मध्य में अनेक ग्रन्थानुसारेण, प्रश्नमाला कर्मविपाक वर्णन करनेवाला गुणतीसवाँ पर्व सम्पूर्ण भया ॥ २९ ॥

आगे हिंसा विषैं पुराय का अभाव बतावैं हैं—

गाथा—पय वहणी थल पदमो, जल मथ घी धाण होय तुख खण्डय। रवि हिम ससि तप करई, तव हिंसा पुण्य दे भो आदा ॥१२१॥

अर्थ—पय वहणी कहिये, जल विषैं अगनि। थल पदमो कहिये, पृथ्वी में कमल। जल मथ घी कहिये, पानी के बिलोये घृत। धाण होय तुख खण्डय कहिये, भ्रस के कूटे अन्न। रवि हिम कहिये, सूर्य्य के ऊगते

शीत। ससि तप करई कहिये, चन्द्रमा तपति करै। तव हिंसा पुराय देय कहिये, तो हिंसा पुराय देय। भो आदा कहिये, हे आत्मा! भावार्थ जल विषैं अगनि कबहूँ नहां होय। तैसे ही जीव हिंसा विषैं पुराय का फल कबहूँ नहीं होय और कठोर भूमि विषैं कमल कदाचित् न होय। तैसे ही हिंसा में धर्म-फल नहीं और जल बिलोए घृत कबहूँ न होय। तैसे ही प्राणी घात में पुराय नाहीं और तुष के कूटे अन्न नहीं निकसै। तैसे ही जीव घात तैं पुण्य नाहीं होय और सूरज के उदय होते शीत नहीं होय। तैसे ही जीव घात किये धर्म नाहीं और चन्द्रमा के उदय होते, आताप नहीं होय। तैसे ही हिंसा विषैं पुण्य कदाचित् नाहीं ऐसे कहे जो ऊपर एते नहीं होने योग्य स्थान। तैसे ही जीव घात में हिंसा होय है, अरु धर्म कबहूँ नहीं होय। सो हे भव्यात्मा! तूं भी पर-भव सुधारने के निमित्त, ऐसा श्रद्धान दृढ़ करि। कि जो जीव घात विषैं कोई प्रकार पुण्य नाहीं। ऐसा श्रद्धान तोकूं भव-भव विषैं सुखकारी होयगा। ऐसा जानि, अपने समान सर्व जीवकूं जानि, तिनकी दया-भाव सहित रहना योग्य है। आगे पुनि हिंसा विषैं पुराय का अभाव बतावैं हैं—

गाथा—अह मुह अमि सुत वंझय, गणकासुत जनक सिध अवतारो। सठ सुचि सूम उदारऊ, तव जीव हिंसोय देय पुण आदा॥१२२॥

अर्थ—अह मुह अमि कहिये, सर्प के मुख में अमृत। सुत वंझय कहिये, बन्ध्या के सुत। गणका सुत जनक कहिये, वेश्या के पुत्र का पिता। सिध अवतारो कहिये, मोक्ष भये पीछे जीव का अवतार। सठ सुचि कहिये, मूर्ख के शौच। सूम उदारऊ कहिये, सूम का मन उदार। तब जीव हिंसोय देय पुरा आदा कहिये, हे आत्मा! तब जीव हिंसा में पुराय होय। भावार्थ—महाभयानक काल रूप सर्प के मुख में अमृत होय, तो जीव हिंसा में पुण्य-फल होय और बांझ के पुत्र होता नहीं। सो बांझ के पुत्र होय, तो प्राणी वध में पुण्य होय और वेश्या के पुत्र के पिता होता नाहीं, तैसे ही जन्तु-वध में हिंसा होय, तहां धर्म नाहीं और शुद्ध जीव कर्म नाश सिद्ध होय, तिस मोक्ष जीव का संसार में अवतार नाहीं। तैसे ही जीव हिंसा में पुराय नाहीं और मूर्ख के शौच नाहीं होय, तैसे ही हिंसा में पुराय का फल नहीं होय और सूम शरीर देय, परन्तु दानकूं एक दाम नहीं देय। सो या सूम का चित्त उदार होय, तौ हिंसा में पुण्य-फल होय। ऐसे ऊपर कहे कारण, सो कबहूँ नहीं होय। तैसे ही धर्मातमा तू ऐसा जानि। जहां जीव घात होय, तहां पुण्य-फल नहीं होय। तातैं

ऐसा जानि, जीव घात तजि, दया सहित रहना योग्य है। आगे और भी हिंसा का निषेध बतावैं हैं—

गाथा—पच्छिम रवि सिल तरई, भू पलटय वहण सीत तण धरऊ। मेर चलय अन्ध देखय, तव हिंसा देय पुण आदा ॥१२३॥

अर्थ—पच्छिम रवि कहिये, सूर्य पश्चिम दिशा से उदय होय। सिल तरई कहिये, शिला तैरे। भू पलटय कहिये, पृथ्वी उलट-पलट होय। वहण सीत तण धरऊ कहिये, अग्नि शीतल तन धरै। मेर चलय कहिये, मेरु चलै। अन्ध देखय कहिये, नेत्र रहित देखै। तव हिंसा फल देय पुण आदा कहिये, आतमा तौ हिंसा का फल पुण्य होय। भावार्थ—पश्चिम दिशा में सूर्य कबहुं नाहीं ऊगे। तैसे ही हिंसा में धर्म का फल कबहूं नहीं होय और पाषाण की शिला जल विषैं तैरे, तो हिंसा में धर्म होय और पृथ्वी पल्टै तौ हिंसा में धर्म होय। सो शिला जल में कबहूँ तरतो नाहीं और पृथ्वी कबहूँ पलटती नाहीं अनादि ध्रुव है। तैसे ही हिंसा में पुण्य फल नाहीं और अग्नि शीत अङ्ग धरै तौ हिंसा में धर्म फल होय और सुमेरु पर्वत अनादि अचल है सो ये मेरु हालै तो हिंसा में धर्म फल होय और जन्म के अन्धे कौं कछु नहीं दीखै। तैसे ही जीव घात में पुण्य का फल कबहूँ नहीं होय। ऐसे ये कहे नहीं योग्य स्थान तैसे ही हिंसा विषैं धर्म कदाचित् नाहीं। ऐसा जानि हिंसा धर्म तजि दया सहित धर्म का अङ्गीकार करना योग्य है। आगे पुनि हिंसा निषेध—

गाथा—पंग चढ़य गिरि सिहरे, वधरो रंजाय राग सुह पाई। कातर रण जय पावय, तव हिंसा फल होय पुण आदा ॥१२४॥

अर्थ—पंग चढ़य गिरि सिहरे कहिये, पैर रहित पुरुष पर्वत के शीश पर चढ़ै। वधरो रंजाय राग सुह पाई कहिये, बहरा राग के सुखकौं पावै। कातर रण जय पावय कहिये, कायर युद्ध में विजय पावै। तब हिंसा फल होय पुण आदा कहिये, हे आत्मन्! तौ हिंसा में पुण्य फल होय। भावार्थ—पांव रहित पुरुष कौं पर के सहाय बिना अल्प भी नहां चल्या जाय। सो ऐसा पंगल पुरुष उत्तुंग पहाड़ के शिखर पर भागि के चढ़ै तो जीव घात में पुण्य होय और बहरा पुरुष कान तैं कछू सुनता नाहीं। सो बहरा पुरुष राग के सुन्दर शब्द सुनि राजी होय तौ हिंसा में पुण्य होय और जे कायर नर होंय सो युद्ध तैं डरैं। सो कायर पुरुष वैरी की सेना भगाय जीति पावै तौ हिंसा विषैं धर्म का लाभ पावै और ऊपर कहे जे कारण सो कदाचित् नहीं होंय। सो होंय तौ हिंसा में धर्म फल होय। तातैं हे धर्म फल के लोभी सर्व जीव! आप समान जानि सबकी रक्षा के निमित्त उपाय

करना सो भव-भव में सुखकारी है। आगे पुनि हिंसा निषेध—

गाथा—जम उर करुणा धारय, काको मुह सौच मित्य तण जीवो। दुठ जण पर सुह इच्छय, तव हिंसा फल होय पुण आदा ॥१२५॥

अर्थ—जम उर करुणा धारय कहिये, काल के हृदय करुणा होय। काको मुह सौच कहिये, काक का मुख पवित्र होय। मित्य तण जीवो कहिये, मृतक जीवै। दुठ जण पर सुह इच्छय कहिये, दुष्ट पुरुष पर के सुख कौं वांच्छै। तव हिंसा फल पुण आदा कहिये, हे आत्मा! तो हिंसा के करने में पुण्य होय। भावार्थ—यम जो काल, सो जड़ दया रहित है। सो काल कौं दया आवै, संसारी जीव नहीं मारै, तो हिंसा में पुण्य फल होय और काक का मुख तौ सदा अपवित्र ही है। सो कदाचित् काक का मुख शौच रूप होय, तो हिंसा में पुण्य फ़ल होय और आयु कर्म पूरण होय जे आत्मा पर्याय तज मरा, सो कबहूँ जीवता नाहीं। सो मृतक जीवै तौ हिंसा में पुण्य होय और जे दुष्ट स्वभावी, पर दुःख रजन, पर कौं सुखी देख महादुःखी होय। सो ऐसा क्रूर स्वभावी दुर्जन प्राणी, पर-जीव कौं साता देख सुखी होय, तो हिंसा में पुण्य होय। ऐसे ऊपर कहे कारण सो कबहूँ नहीं होय, सो ये होंय तो जीव घात में धर्म होय। तातैं धर्म लोभी कूं धर्म के निमित्त, दया-भाव करना योग्य है। आगे बहुरि हिंसा का निषेध करिये है—

गाथा—विस पय जीवय जीवो, णागो गमणाय सरल तण होई स्वाण पुच्छ सुध होवय, तव हिंसा फल होय पुण आदा ॥१२६॥

अर्थ—विस पय जीवय जीवो कहिये, जहर खाय कैं जीव जीवै। णागो गमणाय सरल तण होई कहिये, सर्प सीधा होय चालै। स्वाण पुच्छ सुध होवय कहिये, कुत्ते की पूंछ सीधी होय। तब हिंसा फल होय पुण आदा कहिये, हे आत्मा! तो हिंसा में पुण्य होय। भावार्थ—हलाहल जहर खाय कोई जीवता नाहीं। ऐसा विकट विष खाये जीवैं, तौ हिंसा में धर्म-फल होय और काल नाग, सहज ही वक्र चाल चालै। सो कबहूँ सांप सूधा होय गमन करै, तौ हिंसा में शुभ फल होय और श्वान की पूंछ का सहज स्वभाव ही वक्र है। सो कदाचित् श्वान की पूंछ सूधी होय, तौ हिंसा में धर्म होय। ऐसे ऊपर कहे नहीं होने योग्य पदार्थ होंय, तौ हिंसा में धर्म होय तातैं हिंसा तजि, दया का पथ समझने में अपनी रक्षा जाननी। आगे और भी ऐसा कहैं हैं जो जीव-घात में पुण्य नाहीं—

गाथा—रज पीलय णेह पावई, रजनी रवि विहोंति णभ णपाये। काय धरी णह खपई, तव हिंसा सुह देय णेमाए ॥१२७॥

अर्थ—रज पीलय रोह पावइ कहिये, रज के पेलैं तैं तेल होय। रजनी रवि कहिये, रात्रि में सूर्य होय। बिहोंति रणभ रणपारा कहिये, बालिश्त तैं आकाश नपै। काय धरी राह खपई कहिये, काय के धारी मरैं नाहीं। तब हिंसा सुह देय रोमारा कहिये, तो निश्चय तैं हिंसा में पुराय होय। भावार्थ—रज जो बालू-रेत ताकौं घाणी में पेलैं तैं तेल निकसै, तौ हिंसा में धर्म-फल होय। अरु रात्रि कौं सूर्य का उद्योत होय, तौ हिंसा में पुराय होय और अंगुल-बालिश्त करि आकाश नापना होय, तौ हिंसा में धर्म-फल होय और शरीर अवतार का धारी, सदैव शाश्वत रहै, तौ हिंसा में पुराय होय। रोसे ऊपर कहे जे नहीं होने योग्य कार्य, सो ये होंय तौ हिंसा विषैं पुराय होय। रोसा जानि धर्म के इच्छुक धर्मी जीव हैं तिनकौं, दया-भाव का मार्ग जानना योग्य है। आगे हिंसा में धर्म नाहीं, रोसा और भी बतावैं हैं—

गाथा—खल पीलय सनेहो, सायर लंघाय पाल मज्जादो। णक सुहतैं सुर अघ दय, तव हिंसा फल देय सुह आदा ॥ १२८ ॥

अर्थ—खल पीलय सनेहो कहिये, खली के पेलै तैल निकसै। सायर लंघाय पाल मज्जादो कहिये, समुद्र अपनी पार की मर्यादा लंघै। राक सुहतैं कहिये, शुभ कार्य किये नरक होय। सुर अघ दय कहिये, स्वर्ग स्थान पाप फलतैं होय। तब हिंसा फल देय सुह आदा कहिये, हे आत्मा! तौ हिंसा का फल शुभ होय। भावार्थ—जैसे मूरख खली कौं पेल तेल काढ़्या चाहे, सो कबहूँ नाहीं निकसै। जो खली पेले तेल निकसैं, तौ हिंसा में पुण्य होय और समुद्र अपनी मर्यादा को उलंघै, तौ हिंसा में धर्म का फल होय और पाप के करनहारे सुगति जांय सो कदाचित् पाप करनहारे देव होंय, तौ हिंसा में पुण्य होय और पुण्य के करनहारे स्वर्ग-मोक्ष जांय हैं। सो यदि धर्म किये नरक होय, तौ हिंसा मैं धर्म लाभ होय। रोसे ऊपर कहे स्थान, ते नहीं होने योग्य हैं। तैसे ही हिंसा में शुभ नाहीं है। तातैं तूं अपना कल्याण चाहै है। तो समता-भाव करि सुखी होयगा। आगे फेरि हिंसा में धर्म का अभाव बतावैं हैं—

गाथा—जड़ दव्वो जुव णाणऊ, चेदण दव्वोय होय विण णाणो। कलहो कय जस होई, तव हिंसा पुण देय णेमाए ॥१२९॥

अर्थ—जड़ दव्वो जुव रणारणऊ कहिये, अचेतन द्रव्य ज्ञान सहित होय। चेदरण दव्वोय होय विरण रणारणो कहिये, चेतन द्रव्य ज्ञान रहित होय। कलहो कय जस होई कहिये, कलह करते यश होय तव हिंसा पुरण देय

णेमाए कहिये, तौ हिंसा पुरयका फल देय। भावार्थ—जीव बिना, पांच द्रव्य हैं। पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल और आकाश। ये पांच द्रव्य अनादि तैं जड़त्व भाव कौं लिये हैं। इनके गुण भी जड़ हैं, और पर्याय भी जड़ हैं। सौ ये अजीव द्रव्यनमें ज्ञानका अभाव है सो इनमें ज्ञान होय, तौ हिंसामें धर्म—फल होय। और चेतन, गुण सहित देखने-जाननेहारा, दर्शन-ज्ञानका समूह, सो याका ज्ञान कर्म-योगतैं घटै, तौ अक्षर के अनंतवें भाग रहै, परन्तु ज्ञानका अभाव कबहू नहीं होय। अरु कदाचित् जीव ज्ञान रहित होय, तो हिंसामें धर्म फल होय। तथा अपयशका कारण कलह है। सो कलह-युद्ध किये यश होय, तौ हिंसाके किये पुरयका फल होय। ऐसे ऊपर कहे कार्य होंय, तो हिंसामें धर्मका फल होय। तातैं धर्म इच्छुक! धर्मके निमित्त, दया धर्मका अध्ययन करहु। और भी अब करुणा का स्वरूप कहैं हैं, और दयाका फल कहिये हैं—

गाथा—दीरघ थिति भू जसयो, गद रह तण भोय इच्छ सहु होई। सुर, चक्की सुह सह लय, ये करुणा फल होय णेमाए॥१३०॥

अर्थ—दीरघ थिति कहिये, बड़ी आयु। भू जसयो कहिये, धरतीपै यश। गद रह तण कहिये, रोग रहित शरीर। भोय इच्छ सहु होई कहिये, मनवांच्छित भोग। सुर चक्की कहिये, देव चक्रवर्ती। सुह सह लय कहिये, इनके सुख सहज ही होंय। ये करुणा फल होय णेमाए कहिये, ये दया का फल निश्चयसे जानना। भावार्थ—इस जीव की भव—भवमें रक्षा करनहारी, दया है। सो दया भाव जिनके सदैव रहै है, तिनकी आयु तो सागरों पर्यंत बड़ी हो है। और जे दया भाव रहित होय है, ते जीव अल्पायु पाय मरण करैं हैं। और दयाके फलतैं जगतमें सहज ही यश होय है। और जो जीव पर-भवमें पराया यश नहीं देख सक्या। तथा जिसने महा निर्दय भाव करि पराया यश हत्या है। ते जीव, दया रहित भावनके फल तैं, दयातैं प्रगट भया जो यश, सो ऐसा यश चाहैं, तौ लाखों दाम खर्चे भी यश मिलै नाहीं। यशके निमित्त प्राण देय मरैं तौ भी दया बिन यश नहीं मिलै। दीन होय बोलै, सबतैं नम्रीभूत होय मस्तक नमावै, तौ भी यश नहीं मिलै। काहे तें, जो पर भव विषैं पराया मान राखा होय, प्रण राखे होंय, इत्यादिक मन—वचन—काय करि सर्व कौं साती करी होय, ते जीव सहज ही जगतमें यश पावैं। तातैं यश है सो दया भावका फल है। और निरोग शरीर पावना, आयु पर्यन्त सुखी रहना, सो दया-भाव का फल है और मनवांच्छित सुख का मिलना, सो दया-भाव का फल है। जो मन में कल्पना करी

सो ही वस्तु देवादिक की नांई तुरन्त मिलै, सो दया-भाव का फल है और दया बिना ये जीव तृण जो घास, सो भी पेट भर नहीं भोगवै है। सदैव अन्न व तन करि बहुत दुःखी होय, सो दया रहित भाव का माहात्म्य है और देवन के नाना प्रकार भोग, असंख्यात द्वीप-समुद्रन में गमन, नन्दीश्वर, कुण्डलगिरि, रुचिकगिरि इन द्वीपन में भगवान के मन्दिर हैं तिनको यात्रा का करना, ये शुभ फल उपावना और असंख्यात देव-देवी आज्ञा मानैं, अनेक देवांगना के समूह तिनका आयु पर्यन्त सुख, सो दया-भाव का फल है और चक्री के चौदह रत्न, नव निधि, छियानवै हजार स्त्रियां, षट् खण्ड का राज्य इत्यादिक सुख सो भी दया-भाव का फल है और ऊपर कहे जे भले फल, दीर्घ आयु जगत् यश, निरोग तन, वांच्छित भोग, देव सुख, चक्री सुख—ये सर्व दया-भाव का फल जानना। आगे और भी दया-भाव का फल कहिये है—

गाथा—सुर तरु चिन्ता रयणो, काम धेयोय पास पासाणऊ। चित्ता लता सुसंगो, ये सहु किप्पाय भाव फल आदा ॥१३१॥

अर्थ—सुर तरु कहिये, कल्पवृक्ष। चिंता रयणो कहिये, चिन्तामणि रतन। काम धेयोय कहिये, कामधेनु। पास पासाणऊ कहिये, पारस पाषाण। चित्ता लता कहिये, चित्राबेलि। सुसंगो कहिये, सत्संग। ये सहु किप्पाय भाव फल आदा कहिये, हे आतमा! ये सब दया-भाव का फल है। भावार्थ—दश प्रकार कल्पवृक्ष कर दिये जो उत्तम भोग, सो दया-भाव का फल है और मन चिन्ते भोग सुख का देनेहारा चिन्तामणि रत्न का मिलना, सो कृपा-भाव का फल है और वांच्छित सुख की देनहारी कामधेनु गाय का मिलना, यह भी दया-भाव का माहात्म्य है और कुधातुकों सुवर्ण करनहारा जो पारस-पाषाण सम्पदा सागर ताका मिलना, सो भी दया-भाव का फल है और अल्प वस्तु को अटूट करनेहारी चित्राबेलि नामक वनस्पति ताका पावना, ये भी दया-भाव का फल है और पाप के उदय, निर्दयी-भावन के फल करि, अनन्तकाल कुसंग विषैं गमन होता आया। सो ताके सम्बन्ध तैं त्रस-स्थावरन की अनेक पर्याय धरि दुःख विषैं डूबा। सो अदया का फल है। जब जीव का संसार निकट होय, तब याकों सत्संग का मिलाप होय है, सो सत्संग का मिलना भी दया-भाव का फल है। ऐसे ऊपर कहे सुर तरु, चिन्तामणि, कामधेनु, पारस, चित्राबेलि, सत्संग—ये तीन जगत् में उत्कृष्ट वस्तु हैं। सो दया-भाव के फल तैं मिलैं हैं। ऐसा जानि विवेकी पुरुषन कों पर-जीवन की रक्षा रूप भाव रखना योग्य है। आगे और

भी दया-भाव का फल बतावैं हैं—

गाथा—सहु हित कय पज्जाओ, आदे सहु थाण सुंद तण होई। इन्द अहमिन्द णगंदउ, किप्पा भावोय होय फल येहो ॥१३२॥

अर्थ—सहु हित कय पज्जाओ कहिये, सर्व कौं हितकारी पर्याय। आदे सहु थान कहिये, सर्व स्थान विषैं आदर। सुंद तण होई कहिये, सुन्दर शरीर होय। इन्द कहिये, इन्द्र पद। अहमिन्द कहिये, अहमिन्द्र पद। णगंदउ कहिये, नागेन्द्र पद। किप्पा भावोय होय फल येहो कहिए, दया भावका फल ऐसा होय है। भावर्थ—जिनका मुख देखतें ही सर्व जीवन कूं सुख उपजै, विश्वास उपजै, मोह उपजै, ऐसी सुन्दर काया पावनी, सो दया भाव का फल है। दयाभाव बिना महा कुरूप, भयानक, रौद्र आकार, सव कौं अरति उपजावै ऐसा शरीर पावै है। और जिन जीवन का जगह-जगह आव-आदर होय, जिनकूं देख सर्व प्राणी प्रीति भाव करें, ऐसा आदेय कर्म के उदयवाला सर्व कों वल्लभ होय। सो दया भावका फल जानना। और जाका शरीर महा सुन्दर, कामदेव के शरीर की शोभा कूं जीतै, देवन के मनकों मोह उपजावै, अद्भुत शोभाकारी शरीर, सो दया भाव का फल है। और ग्लानि उपजावनहारा, विकट, असुहावना कुरूप इत्यादिक अशुभ कर्म के उदय का शरीर पावना, सो निर्दयी भाव का फल है। और देवन का नाथ, असंख्याते देव-देवी जिसकी आज्ञा मानैं, आय-आय महाभक्ति करि अपना शीश नमावैं, सर्व देव जाकी स्तुति करैं, ऐसा इन्द्र पद का पावना, सो भी दया भाव का फल है। तथा कल्पातीत जो देव हैं, जिनकी महिमा वचन-अगोचर है। जितना सुख सर्व कल्पवासी सोलहों स्वर्गोंके इन्द्र—देवन का है, तिन तैं अधिक कल्पातीत जो अहमिन्द्र तिनका है। यहां प्रश्न-जो तुमने कह्या कि कल्पवासी देव-इन्द्रन तैं अहमिन्द्रन कैं सुख अधिक है। सो कल्पवासी देव-इन्द्रन कैं तो अनेक देवांगना हैं। तिन सहित सुख भोगैं हैं। और अनेक देव आय-आय शीश नमावैं हैं। असंख्याते देवों के नाथ हैं। पंचेन्द्रीय सम्बन्धी सुख मान पोषवै सम्बन्धी सुख, सो सर्व इन्द्रन कैं प्रत्यक्ष दीखैं हैं। परन्तु अहमिन्द्रों के देवांगना नाहीं, कोऊ आज्ञाकारी सेवक-देव नाहीं। तौ इनकैं कल्पवासी इन्द्रन तैं अधिक सुख कैसे सम्भवै? ताका समाधान-भो भव्य! तुम चित्त देय सुनो। सुखके दोय भेद हैं। एक तो संक्लेशता सहित सुख, एक निराकुलता सहित सुख। सो संक्लेश सुख तैं, निराकुल सुख अधिक है। जैसे एक पुरुष अपनी रत्नोंकी पोट अपने शीश पै

धर, अपने घर कौं, राहमें चल्या जाय हैं। अरु भले मोदक खावता जाय है। ताकरि सुखी है। और एक पुरुष अपने मन्दिरमें तिष्ठता, शीतल जल पीवता, भला मोदक खायके सुखी है। इन दोऊनमें तूं विचार, जो विशेष सुखी कौन है? जाके शीश मोट है अरु मोदक खावता राह चलता जाय है, ताका सुख तौ आकुलता सहित है और शीश भार रहित, एक स्थान तिष्ठता मोदक खाय, सो सुख निराकुल है। सो कल्पवासीका सुख तौ शीश गठियावारे का-सा है। अरु अहमिन्द्रन का सुख, एक स्थान तिष्ठनेहारे समान है। ऐसा जानना और सुनौं, जो व्रती पुरुष हैं, सो तौ मन्द कषायन करि सुखी हैं और इन्द्र-चक्री ये सुखी हैं सो संक्लेश-सुखी हैं। ताही तैं देव, इन्द्र, चक्री आदि बड़े-बड़े पदधारी, व्रती पुरुषन कौं पूजैं हैं, शुश्रूषा करैं हैं। अरु ऐसी याचना करं हैं। जो हे गुरो! तुम्हारी भक्ति के फल तैं, हमारे भी आप कैसा निराकुल-स्वाधीन सुख होय। अरु हमारे शान्ति-भाव प्रकटै। ऐसी प्रार्थना करैं हैं। सो यहां भी निराकुल सुख की महिमा आई। तैसे ही इन्द्र-देवन का सुख तौ साकुल है और कल्पातीतन का सुख निराकुल है, मन्द कषाय रूप है। तातैं कल्पवासीन तैं कल्पातीतन का सुख अधिक जानना तथा जैसे—एक पांवरा-खुजली के रोगवाला पुरुष, ताने एक टटेरे का टूंक पाया। सो तिस टटेरे के टूंक तैं अपना तन खुजाय, सुखी भया। सो टटेरे में कहा सुख है? परन्तु याके तन में खुजली का रोग है। सो टटेरे तैं खुजाया, तब खाजि का दुःख मिटने तैं कछु सुखी भया और कोई पुरुष खाज रहित सुखी है। सो ये भी सुखी है। सो इन दोऊन में खुजली रोगवारे तैं, उस निरोगी कैं बड़ा सुख है। तातैं हे भव्य! देवांगना के सुख की वांछा सो ही भया खुजली का रोग सो जब देवांगना का निमित्त पावै, तब किंचित् सुखी होय है। सो ये खुजलीवाले रोगी समानि है। जब काम रूपी खुजली चलै, तब देवांगना रूप ठटेरा तैं खुजाय सुखी होय। सो कल्पवासी देव-इन्द्र का सुख देवांगना का जैसा जानना। अरु अहमिन्द्रन का सुख है सो खुजली रहित, निरोगी पुरुष जैसा है। इन कल्पातीतन कैं, काम रूप खुजली रोग नाहीं। तातैं ये परम सुखी हैं। कल्पवासीन कैं काम रोग है। अरु कल्पातीतन का रोग रहित सुख है। ऐसे तेरे प्रश्न का उत्तर जानना। सो ऐसा जो अहमिन्द्र पद है, सो उत्तम दया का फल है और भवनवासी देवन का नाथ नागेन्द्र ताका पद, सो भी करुणा का फल है।

तातैं हे भव्योत्तम ! ये ऊपर कहे उत्कृष्ट पद, सो इन सर्व के सुख, सर्व दया-भाव का फल है। ऐसा जानि विवेकी पुरुषन कौं सर्व हितकारिणी जो दया, ताकौं धारणा योग्य है। आगे और भी दया-भाव की महिमा कहिये है—

गाथा—तण वीजय बहु दासऊ, भय रहियों सोक तीत चतुयायो। तणांत लव चिर सुहियो, ए किप्पा फल होय सुह आदा ॥१३३॥

अर्थ—तण वीजय कहिये, तन का वीर्य। बहु दासऊ कहिये, बहुत दास। भय रहियो कहिये, भय रहित। सोक तीत कहिये, शोक रहित। चतुयायो कहिये, चतुर। तणांत लव कहिये, तन के अन्त लूं। चिर सुहियो कहिये, बहुत काल तक सुखी। ए किप्पा फल होय सुह आदा कहिये, हे आतमा ! ये दया-भाव का फल है। भावार्थ—शरीर विषैं बड़ा वीर्य होय। सो जैसे—चक्री में षट्-खण्ड के मनुष्यन तैं अधिक पराक्रम होय है। ऐसा बल पावना तथा तीन खण्ड के मनुष्यन में जेता बल होय, तेता पराक्रम एक वासुदेव में होय, जैसा जोर पावना तथा कोड़ि योद्धान का बल पुरुष में होय, ऐसा कोटी भट का बल पावना। लाख जोधान कों एकला जीतै, सो लख भट है। ऐसा बल पावना। सहस्र योद्धा जीतै, सौं सहस्र भट का बल पावना। शत भटकौं जीतै, सो शत भट होना। ऐसे कहे जो पराक्रम, सो सब दया का फल है। जिन जीवन नैं हिंसा करि पर-जीव घाते हैं। ते जीव भवान्तर में एकेन्द्रिय-विकलत्रय में हीन-शक्ति धारी उपजै हैं और कदाचित् तिर्यंच-पंचेन्द्रिय उपजैं तथा मनुष्य उपजैं तो दीन, रोगी, शक्ति रहित, दरिद्री, हीन भागी होंय। सो ये भी पर-जीवन कौं दीन जानि, तिनकी घात का फल जानना और अनेक सेवक, बड़े-बड़े सामन्त, महाबल के धारी योधा, पराक्रम धारी पै आय-आय हस्त जोड़ नमस्कार करैं। ऐसे बली, मानी राजा हजारौं जाकी सेवा करैं, आज्ञा याचैं, विनय करैं, सो ऐसा पद पावना भी दया-भाव का फल है। पर-जीवन की सेवा आय-आय करना, हस्त जोड़ आज्ञा माननी सो, हिंसा-भाव का फल है और जिननैं पर-भव में तीर, गोली, गिलोल, लाठी, मूकी, शस्त्रादिक तैं पर-जीवन कूं भय उपजाया होय। ताके पाप फल तैं भवान्तर में आय मनुष्य-पशु में उपजै, तहां भयानक रहै। सदैव ताका हृदय, भय तैं कम्पायमान होय। सो भय के सात भेद हैं। इस भव का भय, पर-भव का भय, मरण का भय, रोग का भय, अनरक्षा भय, अगुप्त भय और अकस्मात् भय—ये नाम हैं।

अब इनका सामान्य स्वरूप बताइए हैं। तहां इस पर्याय में मोकों कछु दुःख नहीं होय। ऐसा विचार राखना, सो इस भव का भय है। १। और पर-भव में मोकौं तिर्यंच गति के दुःख नहीं होंय, नरक के दुःख नहीं होंय तो भला है। ऐसे विचार का नाम, परलोक का भय है। २। मरण समय महावेदना होती सुनिये है। सो मरण समय मोकों वेदना नहीं होय, तो भला है। ऐसे विचार का नाम, मरण भय है। ३। और जहां औरन की अनेक रोग-वेदना देख, भयवन्त होना। जो ये रोग के बड़े दुःख हैं मोकों कोई बड़ा रोग नहीं होय तो भला है। ऐसे भय रूप रहना सो रोग का भय है। और जहां यह कहना कि जो मेरे कोई सहायक नाहीं। सहाय बिना सुख कैसे होय ? मैं अशक्त हों। ऐसे भय रूप होय विचार करना सो अनरक्षा भय है। ५। और यहां मोकों तथा वहां मोकों, कोई भय नहीं होय। मैं इस घर में बैठा हों सो घर नहीं गिर पड़ै तथा इस घर में कोई सर्पादि दुष्ट जीव मोकों खाय नहीं तथा कोई वैरी मोकों मारै नहीं इत्यादिक भय रूप भाव रहना, सो अगुप्त भय है।६। मोकों कोई अचानक-अकस्मात् भय नहीं होय तो भला है। ऐसे भावन में भय राखना सो अकस्मात् भय है। ७। ऐसे कहे जे सप्त भय सो जीवन कूं दुःख उपजावैं हैं। सो ऐसे भय का होना सो निर्दय भावन तैं पर कौं भय उपजाय, ता पाप का फल है। इन ही सप्त भय तैं रहित, निर्भय भाव निःशङ्क होय रहना सो दया-भाव का फल है और जिननैं पर-भव में मन, वचन, काय करि पर-जीवन कौं शोक कर्‌या होय तिस पाप के फल तैं भवान्तर में सदैव शोक रूप रहैं। सदैव शोक रहित सदा सुखी मङ्गलाचार रूप रहना, सो दया-भाव का फल है। जानैं पर कौं बुद्धि सीखने में, ज्ञानाभ्यास में घात करी होय। द्वेष-भाव तैं पराई बुद्धि, घात करी होय। सो बुद्धि रहित मूर्ख उपजै। अनेक बुद्धि का प्रकाश पावना, अनेक कला पावनी, धर्म-कर्म सम्बन्धी अनेक चतुराई का पावना इत्यादिक गुण होना, सो पर-जीवन की दया का फल है। कोई जीव माता के गर्भ में आया, सो नव मास तो उदर में दुःखी भया। फेरि जन्म धर्‌या। सो जन्म तैं ही माता-पिता का मरण भया। तब असहाय होय, महादुःख तैं आयु के वशाय जीय, तरुण भया। सो भी ऐसे ही अन्न रहित, पट रहित, धन रहित, मान रहित इत्यादिक महादुःख तैं पर्याय पूरी करि, पर-भव गया। सो ये निर्दयी भावन का फल है। जब तैं माता के गर्भ में आए, तब ही तैं सदैव घर में पूरण मङ्गलाचार होना। जन्म भया तब तैं ही, अनेक दान,

पूजा, गीत होते भए। अनेक सुखपूर्वक तरुण अवस्था कौं प्राप्त होय, महासम्पदा के धनी हुए, सो दया-भाव का फल है। सो ऐसा जानि अपने सुख कौं, पर-जीवन की रक्षा करना योग्य है। आगे और भी दया-भाव की महिमा बतावैं हैं—

गाथा—झहियो आरय झाणउ तणांगोपांगाय सहु णीको। सउ बन्धव णेह करयो कोमल चित्तोय होय किप्पाए ॥ १३४ ॥

अर्थ—झहियो आरय झाणउ कहिये, आर्त्तध्यान करि रहित होय। तणांगोपांगाय सहु णीको कहिये, तन के अङ्गोपाङ्ग सकल शुद्ध होंय। सउ बन्धव णेह करयो कहिये, सकल बांधवन विषैं प्रीति होय। कोमल चित्तोय कहिये, कोमल चित्त का होना। होय किप्पाए कहिये, ए सब दया-भाव तैं होय। भावार्थ—जीव कूं नहीं सुहावती जो वस्तु, तिनके मिलाप कर भई जो आरति तथा भली वस्तु के जाने की आरति, खोटी वस्तु के मिलाप की आरति, रोग होने की तथा भय के मेटने की आरति तथा आगे मैं ऐसा करूँगा इत्यादिक भावन के विचार कर अपने उर में खेद का करना सो निर्दय भाव का फल है और इन च्यारि भेद आर्त्त-भाव रहित निराकुल सुख रूप भाव रहना, यह दया का फल है और जिननैं अङ्गोपाङ्ग सहित सुघड़ शरीर पाया होय, सो दया का फल है। तिन अङ्गोपाङ्ग के नाम हस्त दोय, पांव दोय, छाती, पीठ, मस्तक और नितम्ब—ए अष्ट अङ्ग हैं। सो इनका शुभ-शास्त्रों प्रमाण आकार पावना सो करुणा भाव का फल है और केई नेत्र रहित, केई जिह्वा रहित, केई श्रोत्र रहित इत्यादिक उपाङ्ग रहित होना तथा पांव रहित, हाथ रहित होना। अंगुली नासिकादि अङ्गोपाङ्ग करि हीन होना। महाविकट शरीर का आकार, भयानक पांव के रूप होना, महाकुघाट शरीर पावना, ये सब निर्दय परिणाम का फल है और सर्व कुटुम्ब माता, पिता, भाई, पुत्र, स्त्री इत्यादिक सर्व बांधव सुखकारी मिलना, सो दया-भाव का फल है। पुत्र भला, ताकूं पिता खोटा। भला पिता कूं पुत्र खोटा। भली माता के पुत्र-पुत्री दोऊ खोटे। पुत्र-पुत्री कों माता खोटी। परस्पर भाई खोटे। भली स्त्री कूं भर्तार खोटा। भले भर्तार कूं स्त्री खोटी। इत्यादिक परस्पर कुटुम्ब विषैं विरोध-भाव केई महाक्रोधी, केई मानी, केई दगाबाज, केई लोभी, केई कुव्यसनी, केई चोर, केई ज्वारी, केई पाखण्डी और केई परस्पर बांधव द्वेष सहित विरोधी मिलैं, सो हिंसा-भाव किये, तिनका फल है और जिन जीवन के दीर्घ पुण्य का फल उदय होय, सो कोमल

चित्त पावैं। ताकैं कोई तैं द्वेष-भाव नाहीं। कोई कूं दुःख नहीं वांच्छैं। सर्व का हित वांच्छनहारा ऐसा कोमल चित्त पावना, सो दया-भाव का फल है और जाकौं पर-जीव बहुत दुःखी देख, दया नहीं उपजै। ऐसा कठोर चित्त पावना, सो निर्दय भाव का फल है। ऐसे ऊपर कहे शुभ लक्षण, आरति रहित शुभ भाव, शुद्ध अङ्गोपाङ्ग, कुटुम्ब मोही, कोमल चित्त ये सब शुद्ध सामग्री पावना, सो दया-भाव का फल है। आगे करुणा-भाव की महिमा और भी कहिये है—

गाथा—कम्म हणी शिव कण्णी, तणी भव णीर वीर षड् कायो। जणणी इव जीय रखय, किप्पा इव जोय होय शिव आदा॥१३५॥

अर्थ—कम्म हणी कहिये, कर्म नाश करनी। शिव कणी कहिये, मोक्ष कारणी। तणी भव णीर कहिये, संसार-जलकौं जहाज। वीर षड कायो कहिये, षट् काय कों भाई सम। जणणी इव जीव रखय कहिये, माता समान जीव की रक्षा करनहारी। किप्पा इस जोय होय शिव आदा कहिये, दया-भाव कों ऐसा जानै तो यह आत्मा मोक्ष होय। भावार्थ—धर्म के अनेक अङ्ग हैं। तप, जप, संयम, व्रत, ध्यान, नग्न रहना, बड़े-बड़े तप करना। पक्ष, मास, वर्ष के अनशन करना महाव्रत, समिति, गुप्ति पालना। इन्द्रियन का जीतना। भूख-प्यास सहना पञ्चाग्नि तपना। शीशपै केशन का बधावना। चर्मादिक तैं शरीर ढाँकना। वस्त्र का त्याग करना। ऊर्ध्व पांव, अधो शीश झूलना। भूमि विषैं गड़ि मरना। जीवित ही अग्नि में जरना। पर्वत पात करना। जल प्रवाह लेना। कन्द, मूल, वनस्पति खावना। अन्न तज, दूध-मठा पीवना इत्यादिक अनेक कष्ट मारग हैं सो यह जीव, धर्म के निमित्त अनेक कष्ट खाय है। सो ये कहे जो कष्ट, सो दया-भाव बिना मोक्ष-मार्ग नहीं करैं। सर्व वृथा ही जांय हैं। तातैं जेते धर्म अङ्ग हैं, तिनमें यह जीव-दया सर्व का मूल है। कैसी है यह दया? सर्व कर्मन की काटनहारी है। दया-भाव बिना, निर्दयी जीवों के कर्म कटै नाहीं फेरि यह दया कैसी है? या बिना सिद्ध पद नहीं होय। कैसा है सिद्ध पद? जन्म-मरण रहित है। निराकार, निरञ्जन-कर्म अञ्जन रहित है। फेरि कैसा है मोक्ष पद? देव, इन्द्र, चक्री, धरणेन्द्रादि महान पुरुषों करि पूजने योग्य है। सो ऐसे सिद्ध पदकों यह दया-भावही देय है। दया रहित प्राणीनकौं ऐसा सिद्ध पद होता नहीं। बहुरि कैसी है दया? संसार-समुद्र के दुःख-जल, ताहि पारि करनेकौं, जहाज समान है। दया नाव बिना, संसार-सागर तिरया नहीं जाय है। हिंसा-धर्म है सो

पाहन जहाज समानि है सो ये आप भी डूबै है और पाहन-नावका आश्रय लेनेहारा भी डूबै है। तातैं हिंसा तजि, दया भाव राखना भला है। बहुरि ये दया भावना कैसी है। षट् कायक जीवनकी रक्षा करने कौं भाई समान है। कैसे हैं षट् कायिक, सो कहिये हैं। पृथ्वी कायिक तौ, मिट्टी-पाषाणादिकके जीव हैं। अप्कायिक, जलके जीव हैं। तेजःकायिक, अग्निके जीव हैं। वायु कायिक, पवनके जीव हैं। बनस्पति कायिक, हरी-पीली बेली, घास वृक्ष। इन आदि अनेक तनके धारी पञ्च स्थावर हैं। और त्रस जो बेइन्द्रिय-इल्ली जोंक, नारुवा, कैचूवा आदि बेइन्द्रिय हैं। तेइन्द्रिय, चींटी, चींटा, खटमल, कुंथुवा, इन आदि अनेक तनके धारी तेइन्द्रिय हैं। और चौइन्द्रिय में मक्खी, मच्छर, भ्रमर, टिड्डी, इन आदि चउ इन्द्रिय हैं। पंचेन्द्रियमें देव, मनुष्य तिर्यंच, नारक ये सर्व त्रस हैं। सो ऐसे कहे जो त्रस-स्थावर षट् कायिक जीव, सो इनकी रक्षा करने कौं दया भाव, भाई समानि हैं। और इन षट् कायिक जीवनकी रक्षा करने कौं दया, माता समानि है। जैसे माता पुत्रकी रक्षा करै है। ऐसेही दया, सब जीवोंकी रक्षा करै है। तातैं हे भव्यातमा, ये दया सर्व गुण भण्डार जानि, याका साधन करि। याके उत्कृष्ट सेवनकौं जानैं, तो कूं मोक्ष होयगी! यहां प्रश्न-जो दया के उत्कृष्ट जानैं ही मोक्ष कैसे होय ? दया पालैगा तो मोक्ष होयगी। ताका समाधान—जो हे भव्य, जो तैंने कही सो सत्य है। परन्तु जाकौं उत्कृष्ट जानैं तो ताका सेवन भी करैं। तातैं प्रथम पक्का श्रद्धान करावना कि दया तैं मोक्ष होय है। जैसे लौकिक में भी ऐसी प्रवृत्ति देखिये है। जो जाकौं बड़ा मानैं, तो ताके वचन की भी प्रतीति करै है। जो फलाना बड़ा आदमी है, उदार है, ताकी सेवा किये अनेक जीव धनवान् होय सुखी भये। सो मोकों भी याकी सेवा मिलै, तौ मोकों भी धन मिलै। मैं भी सुखी होऊं। ऐसे पुरुष की सेवा बिना, चाकरी बिना, दरिद्रता जाती नाहीं। ऐसा दृढ़ श्रद्धान होय है। तब पीछे यह धनका इच्छुक, सुख के निमित्त, उस ऊंच पुरुष की सेवा करने कौं वाके पास जाय, मान तजि, नमस्कार करि, बारम्बार शीश नमावै, विनय करै है। ताकी आज्ञा प्रमाण करै। निश-दिन सेवाविषैं सावधान रहै। अनेक भूख-प्यासादिक कष्ट सहे करि भी रहै। कष्ट सहै, परन्तु उसकी आज्ञा भंग नहीं करै। जब वह बड़ा पुरुष याकी सेवा बहुत प्रीति सहित जानै, तब वह उत्कृष्ट पुरुष याकौं धन देय सुखी करै है। और कदाचित् सेवा करनेहारे कौं बड़े पुरुष का उत्कृष्टपना भासै ही नहीं, बड़ा ही नहीं जानै, तौ सेवा कैसे करै ? अरु सेवा नहीं

करै, तौ याका दुख-दरिद्र कसे मिटै। तातैं प्रथम ताके बड़प्पन कौं जानै, तौ पीछे श्रद्धान होय। जो ये बड़ा पुरूष है, याकी सेवा किये सुखी होऊंगा, तब सेवा करै ऐसी प्रतीति लौकिक में प्रत्यक्ष देखिए है। सो पहिले जानपना होय। पीछे श्रद्धान होय। ता पीछे ताकी सेवा करी जाय। तैसे ही दया-भाव की उत्कृष्टता पहिले जानै, तौ पीछे ताका दृढ़ श्रद्धान करे। पीछे दया कौं उत्कृष्ट जानि, ताकी रक्षा करै-सेवा करै। दया धर्म की पूजा करै-विनय करै। जब याके ऐसा सांचा दृढ़ श्रद्धान प्रगटैगा। तब इस निकट संसारी भव्य के ऐसे परिणाम होंयगे; जो सुख का समूह तौ मोक्ष स्थान है। अरु मोक्ष है, सो दया-भाव तैं होय है। सो मैं महा गृहारम्भ विषैं पड़्या हों। तहां पर—जीवन की रक्षा होती नाहीं। मोकौं मोक्ष के सुख कैसे होंय? तातें सर्व प्रकार दया—मार्ग सद्गुरु जानैं हैं। वह गुरु दया का भण्डार बाजैं हैं। तातैं मैं गुरु के पास जाय, विनीत करौं। तौ दया के समूह मोपैं कृपा करके, मेरा मनोरथ पूर्ण करेंगै। ऐसा विचार करि, ये भव्यात्मा, मोक्षाभिलाषी, श्री गुरु पै जाय, नमस्कार करि, तीन प्रदक्षिणा देय, महा विनय सहित हस्त जोड़ खड़ा होय, अपना अन्तरंग अभिप्राय कहता भया। हे नाथ! हे दीन दयालु! मैंने सांसारिक सुख बहुत भोगे। परन्तु हे नाथ! मेरी वांच्छा पूर्ण नहीं भई। जैसे कोई अन्तरंग ज्वर का रोगी, सदैव क्षीण तन होय। सो तन पुष्ट करने की बड़ी इच्छा जाकैं, सो तन स्थूल करवे कौं अनेक पुष्ट-गरिष्ठ भोजन करै। परन्तु पुष्ट होता नाहीं, दिन-प्रति क्षीण होता जाय है। याकी इच्छा पूरती नाहीं। तातैं दुख ही बधै है। तैसे ही हे नाथ! मैंने सुखी होयने कूं अनेक भोग-सामग्री पाय-पाय भोगी। परन्तु सम्पूर्ण सुखी नहीं भया। सो मेरे सर्व सुखी होयवे की इच्छा बनी रहै है। मेरे इच्छा नाम रोग का महा दुख, मिटता नाहीं। तातैं भो जगत गुरु! जैसे मोकौं सम्पूर्ण सुखकी प्राप्ति होय, सो ही उपदेश करौ। जाकै धारण किए, मैं सुखी होऊं। अब मोकों यह इन्द्रिय जनिते सुख है सो महा भय उपजावै है, प्रिय नाहीं। तातैं अब आज्ञा करौ, सो ही करूं। तब योगीश्वर ने जानी, जो ये जीव मोक्ष सुख कौं बड़ा-सर्वोत्कृष्ट जानै है, ताही के योग करि याके दृढ़ श्रद्धान प्रगट्या है। ऐसा विचार, आचार्य दया भाव करि कहते भए। भो भव्य! तैंने भली विचारी। यह सांसारिक भोग, अज्ञानी जीवन कौं अपने सुख की आभासा सी दिखाय, मोह उपजावैं हैं। बाकी यैं सर्व-इन्द्रिय भौग, रोग करि पूरित हैं। गुण रहित हैं। जैसे शरीर बाह्य में

मोही जीवन कौं सुख की आभास सी बताय, मोहित करै हैं। बाकी सुख रहित है। सप्त धातुमयी शोणित, पक्व रुधिर, अस्थि, रोम, तिन करि स्थान-स्थान पूरित है। ऊपर चरम तैं लिपटा है। विनाशीक है। इत्यादिक अनेक अवगुण करि भरा है। तातें हे भव्य! ऐसा विचार, जो ये शरीर विनश्वर है। सो याके आसरे जो इन्द्रिय जनित सुख, सो थे कैसे स्थिरीभूत रहेंगे? और हे भव्य, देख। शरीर तौ ऐसा है, अरु तूं इस शरीर में बैठा है। बहुत काल का या तन के मोह करि इसमें बंध्या है। तातें तूं विषयन तैं उदासीन भया है। सो हे भव्यात्मा! ऐसा ही तू इस शरीर तैं भी उदास होऊ। ज्यों तेरी अभिलाषा पूर्ण होय। क्योंकि ये शरीर बिनाशिक है। तातैं अब जेते याकी स्थिति है तेते तू यातैं दीक्षा अङ्गीकार कर ऊत्कृष्ट दया-धर्म पाल। और मोक्ष जा। क्योंकि जो त्रस-स्थावरकी सर्व प्रकार दया, इस गृहस्थावस्थामें तौ पलैं नाहीं। काहे तें, जो इस परिग्रहके संयोग तैं उत्कृष्ट दया पलती नाहीं। लंगोट मात्र परिग्रह होय, तौ भी सम्पूर्ण दया नाहीं पलै, तो इस बहुत परिग्रहमें कैसे पलै? तातें हे भव्यात्मा, सर्व प्रकार त्रस-स्थावर जीवनकी दया, महाव्रत भये पलै। तातें अब तू भले प्रकार महाव्रत अङ्गीकार कर। समता भाव धारि, शुभ भाव धारि। त्रस-स्थावर जीवनकी रक्षाके निमित्त सर्व जीवन तैं क्षमा भाव करि कैं, सर्व कू अभय दान देय। तब तू सर्व दया का धारी भया जातें अब तेरे नूतन कर्मका बन्ध होयगा नाहीं। और आगे तैंने अज्ञानावस्थामें इन्द्रिय और शरीरके पोषवे कूं हिंसा करि कर्म कों बांधे थे, सो याही शरीर तैं नानाप्रकार तप करकै, पिछले कर्मनका नाश करि। सर्व कर्मका नाश भये, तू मोक्ष सुख पावैगा। सो वह मोक्ष-सुख अविनाशी है, अखण्ड है अनन्त है। ये सुख भये पीछे जाता नाहीं। हे भव्य यहां तेरी अभिलाषा पूरी होयगी। ऐसे आचार्य ने कह्या तब शिष्य गुरुकी आज्ञा सुनि महा विनय तैं उल्लास करि ऐसा विचारता भया। जो आजका दिन धन्य है। आजि मोकों गुरु ने ऐसा इलाज बताया जा करि मेरे पूरव किये पापका नाश होयगा। और अनन्त सुखका स्थान सर्व कर्म रहित निरंजन पद केवलज्ञान सहित सिद्ध पदकी प्राप्ति होयगी। सो अब तौ श्री गुरुके प्रसाद करि मैं मोक्षको पाऊंगा। सो ये उपकार गुरुनका है। ये गुरु वांच्छित सुख देने कूं कल्पवृक्ष समान हैं। परन्तु कल्पवृक्ष तौ एक स्थान ही स्थिरीभूत रहै। यापै कोई चल करि आवै तौ फल पावै। घर बैंठे देने नाहीं जाय है। और तामें भी यह भोजन-भूषणादि

इन्द्रिय जनित सुख देय सो भी शाश्वत नाहीं। किञ्चित काल सुखसा दिखाय विनश जांय। और श्री गुरु कल्प-वृक्ष हैं। सो भव्य जीवन कूं घर बैठे ही वांछित सुख देवे कूं आप देश बिहार करि सबकी आशा पूरैं हैं। तातें श्री गुरु धन्य हैं। जिनकी क्रिया करि संसारी जीव मोक्ष पावैं। ऐसे नाना प्रकार गुरुकी महिमा करि पीछे शिष्य गुरुके बताये नाना प्रकार तप तिनकों करि सर्व कर्म नाशके मोक्ष-रानीका भर्तार होय है। तातें प्रथम जानना होय पीछे जानी वस्तुका पक्का श्रद्धान होय। सो श्रद्धान होय तो कष्ट पाय कें भी अपने भलेका कार्य करै ही करै। ऐसे तेरे प्रश्नका समाधान जानना। तातें हे भव्य पहिले तो भली-बुरी वस्तुका जानपना होय। भले प्रकार जाने पीछे ताका दृढ़ श्रद्धान होय और भली-बुरीका निर्धार करै है। और कोई बाल-बुद्धि पदार्थ कौं जानैं। परन्तु तामैं ताका ग्रहण-त्याग नहीं करि जानैं। ऐसा मिथ्यादृष्टि मोहित भोले जीव संसारमैं बहुत हैं। इनके ज्ञानके जानपनेका इनकौं कछु नफा नाहीं। इन मिथ्याज्ञानीनका जानपना निज-पर जीवनके ठगने कौं प्रगट होय हैं। और सम्यक्त्व सहित जानपना है सो तामैं पहिले श्रद्धान करि पीछे तिनका त्याग-ग्रहण होय है। सो जो अपने भले योग्य हितकारी परभवमैं सुखकारी होय सो ताका तो ग्रहण करे। और जो पदार्थ आपकौं इस भव-परभवमैं दुखकारी होंय, पाप बंध करता होंय, परंपराय जातैं दुख होता जानें, तिन पदार्थनका त्याग करै। ऐसा त्याग-ग्रहण करि सम्यक्दृष्टि जीव नैं ऐसा विचार्या। जो सर्व धर्म-अङ्गनमैं एक दया भाव है सो मुख्य धर्म है। काहे तें जो तप, संयम, दान पूजादि हैं सो तो धर्मके अङ्ग हैं। जीव दया है सो ये मूल धर्म है। इस जीव दया के पालवे के निमित्त धर्म है। सो हिंसाके कारण राज्य, गृहारम्भ छाँड़ि अपने तन सम्बन्धी भोगन तैं ममत्व भाव छोड़ कें, पीछे मोह तजि, नग्न काय होय, सर्व षट्-कायिक जीवन के सुख देवे कौं, आप यतिका पद धर्या। तहां सर्व प्रकार जीवन की रक्षा करि, जगत्पूज्य सिद्ध पद ताकौं पाय मोक्ष स्थान विषैं अखण्ड सुखी होता भया। तातैं यह बात सिद्ध भइ, कि जो दया ही धर्म है। दया बिना कोई धर्म कहै, सो वृथा है। और लौकिक में भी बाल-गोपाल दया ही कौं धर्म कहै हैं। तथा और देखो, इस दया की षट् मत विषें प्रसिद्धि है। व सर्व जीव यश गावैं हैं। देखो जो अज्ञान-रंक भूखा होय, सो भी ऐसा कहै है। कि जो हम भूखे हैं सो कोई दया धर्म का धारी होय, सो हमारी दया कर हमारा दुख मैटो। सो देखो, रंक भी ऐसा

जानैं हैं और दया कौं ही धर्म कहैं हैं। तौ जे विवेकी हैं सो तौ दया में धर्म कहैं ही। तातैं ऐसा जानना, जो ये दया सो ही धर्म है। तातैं जगह-जगह जिनेश्वर देव ने भी ऐसा ही कह्या है। कि दया धर्म है। सो अब ऐसा विचार कैं, धर्म एक दया ही का निश्चय करना। अब ऐते भी कोई प्राणी, जीव घात में ही धर्म मानैं, तो याका चित्त ही महाकठोर है। याका पर-भव बिगड़ना है व दुःखी होना है। याकौं पर-भव में दुःखदायक पर्याय उपजैगो। दीन, दरिद्री, अन्धा, असहाय हीन होना है तथा नारकी व पशु होना है। इन स्थान में महादुःखी होयगा। इसका किया ये ही भोगवेगा। इसके श्रद्धान की यही जानै। परन्तु हमने तौ ऐसा ठीक किया, कि जो धर्म एक दया-भाव है। तातैं जिनकौं परम सुख की इच्छा होय। सो धर्मात्मा, सर्व जीवन तैं क्षमा-भाव करि षट् काय जीवन कौं अभयदान देओ। बहुत कहने करि कहा। ऐसा अवसर फिर मिलना कठिन है।

इति श्रीसुदृष्टि तरंगिणी नाम ग्रन्थके मध्यमें हिंसा निषेध, दया का माहात्म्य वर्णन करनेवाला तीसवाँ पर्व सम्पूर्ण भया ॥३०॥

आगे राज लक्षणों का स्वरूप कहिये हैं। जाकरि प्रजा सुखी होय, राजा का तेज-प्रताप बधै, लक्ष्मी बधै, यश होय, सुखी रहै, पर-भव सुधरै। ऐसे गुण श्री आदि पुराण जी अनुसार कहिये है—

गाथा—षट् गुण चव विद्याए, पण वल अणि होय सुभग गुण सेसा। सउ णिप जस लछि पावइ, फुण तव लेय होय सिव णाहो ॥१३६॥

अर्थ—षट् गुण चव विद्याए कहिये, छः गुण अरु च्यारि विद्या। पण वल अणि होय सुभग गुण सेसा कहिये, पञ्च-बल और अनेक गुण होंय। सउणिप जस लछि पावइ कहिये, सो राजा यश-सम्पदा पावै। फुण तव लेय होय सिव णाहो कहिये, फिर तप लेय मोक्ष लक्ष्मी का भरतार होय। भावार्थ—ऐसे षट् गुण, च्यारि विद्या अरु पञ्च-बल—ये राजान के गुण हैं। सो जिनमें ये गुण होंय, सो भला प्रजापति है। सो ही प्रथम षट् गुण कहिये हैं। प्रथम नाम— सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संस्थान और आश्रय—ये षट् भेद हैं। अब इनका विशेष कहिये है। तहां कोई आप तैं अधिक बलवान राजा, बड़ी फौज का धारी होय तथा आगे कहेंगे राजाओं के पांच गुण, सो आप तैं पर-राजा के पास बहुत होंय आप तैं पञ्च-बल भी तिस राजा के पास बलवान होंय। जातैं युद्ध किए जीतिए नाही। ऐसा बलवान वैरी होय। तौ ताकौं ग्राम, देश, धरती

देय राजी कीजिए। हस्ती-घोटकादि दीजिये। अपने घर का उत्तम रतन-धन दीजिये। ताकी विनय कीजिये। ताकी सेवा चाकरी कीजिये। जैसे बनै तैसे, प्रबल वैरी को राजी कीजिये। तासों स्नेह होय, सो ही कीजिये। ताका नाम सन्धि नामा गुण है। सो जो विवेकी राजा-मन्त्री, भली बुद्धि कौं धरैं हैं। सो इस सन्धि गुणकौं अवसर पाय प्रगट करि अपना राज्य राख, सुखी होंय हैं और ये सन्धि गुण जामें नहीं होय, तौ अपने तैं विशेष जोरावर राजा तैं युद्ध करि, रावण की नांईं मरण पावै। कुल का, तन का, धन का क्षय होय। राज्य जाय दुःखी होय। जातें विवेकी राजा हैं ते कोई ऐसे ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, जान के इस सन्धि गुण के बल करि वैरी कौं उपशान्त करैं हैं। आप तैं जोरावर राजा तैं शीश नमावते, उसकी सेवा करते, अपना मान-खण्ड नहीं मानैं। बलवान-सेवा, अपनी रक्षा का कारण जानि, सन्धि करैं हैं ये विवेकी राजा का धर्म है। इति प्रथम सन्धि गुण। १। आगे विग्रह गुण कहिये है। तहां और कोई राजा प्रबल-वैरी धीठ बुद्धि होय। धन देते, देश देते, चाकरी कबूल करते, हस्ती-घोटकादि देते इत्यादिक विनय करते जो वैरी उपशान्त नहीं होय, तो पीछे युद्ध करै। युद्ध में शंका नाहीं करै। निःशङ्क होय वैरी तैं युद्ध करै। अपना पुरुषार्थ-पराक्रम प्रगट कर। सो विग्रह नाम गुण है। २। आगे यान गुण है सो कहिए है। जे महान् वंश के उपजे राजकुमार, तिनकौं यान गुण में प्रवीणपना चाहिये। सो ही बताईए है। हस्ती की असवारी, गज का जीतना, गज क्रीड़ादि में गज को चलावना, अपने वश हस्ती करना। इन आदि गज-असवारी में सावधान रहना और घोटक चढ़ना, दौड़ावना दुष्ट अश्व को वशीभूत करना इत्यादिक घोड़े की असवारी में सावधान होय तथा रथ के चलावै में सावधान होय। रोज की असवारी जानैं, सिंह की असवारी जानैं। करहा सांड की असवारी करना जानै। महिष की असवारी, वृषभ की असवारी, गैंडा की असवारी इत्यादिक असवारिन में प्रवीणता, सो यान गुण है। सो ये गुण राज-पुत्रन में अवश्य चाहिए। ये गुण नहीं होंय, तो युद्ध हारैं और अन्य राज-पुत्रन में जांय, तौ लज्जा पावैं। तातैं यान गुण चाहिए। इति यान गुण। ३। आगे आसन गुण कहिए है। राजान में आसन गुण चाहिये। तहां बैठवे की दृढ़ आसन चाहिए। जहां तिष्ठै, तहां एकासन दृढ़ होय बैठे, चलाचल आसन नहीं राखै। कबहूँ कहीं, कबहूँ कहीं ऐसे चञ्चल भाव नहीं होय। एक स्थान दृढ़ होय तिष्ठै तथा देशान्तर गमन करते जहां मुकाम

करै, तहां अपने तन की सावधानी करै। जहां जल, तृण, अन्न की प्रचुरता होय, तहां मुकाम करै तथा सैन्या के लोकन की रक्षा करै। जहां डेरा होय, तहां अपने तन के मोही सेवक-सुभट तिनके डेरा अपने चौ-तरफ राखि, अपने तन की रक्षा देख, मुकाम करै इत्यादि सावधानी राखनी। सो आसन गुण कहिए। ये आसन गुण है।४। आगे संस्था गुण कहिए है। संस्था गुण ताकौं कहिये जो अपने मुख तैं वचन बोलना, सो फेरि अन्यथा नहीं होय। वचन की दृढ़ता राखनी जो वचन बोल्या, सो ताकी मर्यादा निवाहनी। तन गये भी जो वचन कह्या, ताकां नहीं उल्लंघिये। जैसे—दशरथ राजा ने अपनी रानी कैकई को वर दिया सो समय पाय वानै पुत्र-भरत कूं राज्य याच्या। सो अयोध्या का राज्य भरत कूं देय, वचन राख्या। तैसे ही राजान कौं अपने वचन की दृढ़ता राखनी, सो संस्था गुण है। ये वचन-दृढ़ का गुण राजा में नहीं होय, तौ ताकी प्रजा दुःख पावै। अन्याय विस्तरै। राजा का वचन प्रतीति रहित भये, अपयशादि दोष प्रगटै। तातैं वचन सत्य बोलना, सो संस्था गुण है। इति संस्था गुण।५। आगे आश्रय गुण कहिये है—सो राजान में आश्रय गुण चाहिये। कोई भयवन्त होय, जोरावर का सताया, अपने आश्रय आवै तो आप ताकूं अपने शरण राखै। सन्तोष उपजावै तथा आप पै भय आये, आपतैं प्रबल होय ताके आश्रय जाय, सुखी होना। सो अपने तैं बड़े के शरण जावे में, अपना मान खंड नहीं मानना और अन्यकूं अपने आश्रय राखने में काहू का भय नहीं करना। ये आश्रय नाम गुण है। ये गुण नहीं होय, तो महिमा नहीं पावै। तातैं आश्रय गुण राजान में चाहिये। इति आश्रय गुण।६। ऐसे राजाओं के षट् गुण जानना। आगे राजाओं के सीखने योग्य च्यारि विद्या हैं, तिनका कथन कहिये है। प्रथम नाम—आनीष की विद्या, त्रयी विद्या, वार्ता विद्या और दण्डनी विद्या—ये च्यारि विद्या हैं। अब इनका सामान्य स्वरूप कहिये है। जैसे—जौंहरी अपनी बुद्धि के योग तैं, भले-बुरे रत्न कूं जानैं। तैसे ही विवेकी राजा, प्रथम तो अपने-पराये बल-पराक्रम कों जानै। ऐसा विचारै, फलाने राजा का पराक्रम ऐसा, उस राजा की सैन्या इतनी, भुजबल ऐसा, वाके एता मुल्क ऐसा खजाना है। ऐसे-ऐसे सामन्त राजा ताके सेवक हैं। ऐसे बुद्धिमान् मन्त्री हैं और मेरे शरीर का जोर एता है, मेरा एता मुल्क है, एता खजाना है। एते सामन्त-सेवक हैं। ऐसे मन्त्री हैं इत्यादिक भेद जाने, सो विवेकी राजा है और जो अपने-पराये पराक्रम विषैं नहीं समझै, तो आप तैं बड़े बलवान् राजा तैं द्वेष करि,

अपना राज्य खोय, दुःखी होवै। अपने सेवक, मित्र, प्रजा के लोग इनके स्वभाव कूं जानैं। जो ये बुरा है। ये भला है। ये दुष्ट अङ्गी है। ये सज्जन अङ्गी है। ये गुण-लोभी है। ये सत्यवादी है। ये झूठा है। ये स्वभाव का धरनहारा है। ये पराया बुरा करनहारा, चुगल है। ये पर के भले का करनहारा है। यह यश का लोभी है। ये धन का लोभी है। ये चोर स्वभावी है। यह क्रोधी है। ये मानी है। यह दगाबाज-मायावी है। यह सरल स्वभावी है। यह चित्त का उदार है। यह सूम है। यातैं मोकौं सुख है। यातैं मोकों निन्दा आवै है। यातैं मेरा यश होय हैं। यह पर कौं पीड़ै है। ये पर का रक्षक है इत्यादिक विवेक-विद्या, राज-पुत्रन कौं सीखना सुखकारी है। याका नाम आनीष की विद्या है। इस विद्या का ज्ञान होय, तौ अपने ज्ञान-बल तैं, कठोर चित्ती है तिनकौं कोमल करै। यहां प्रश्न—जो कठोर स्वभावी है तिनकौं कोमल स्वभावी कैसे करै ? ताका तौ स्वभाव ही कठोर है, सो वस्तु का स्वभाव कैसे मिटै है ? ताका समाधान—जैसे—पृथ्वीकाय स्वर्ण, चाँदी, तांवा, पीतल, लोहादि अनेक धातु करि, अनेक बर्तन बनैं है। सो ये सर्व ही धातु कठोर हैं। सो भला कारीगर, इन धातून की कठोरता जानि, प्रथम तौ अग्नि मैं तपावै है। पीछे घन तैं, हथौड़े तैं कूटै है। बहुरि तपावै है। ऐसे करते, कछू नरम पड़ै है। तब छोटी हथौड़ी तैं अल्प पीटै है। ऐसे सख्त, महाकठोर धातु भी विवेकी के हाथ पड़ै है, तब नर्म होय है। तैसे ही दुष्ट मनुष्य है, सो महाकठोर है। तिनकौं विवेकी राजा, अपनी न्याय बुद्धि के बल करि उनकौं, उन योग्य कठोर दण्ड ही देय है। तब दुष्ट प्राणी भी, राजा के दीर्घ भय करि अपनी कठोरता तजि कोमलता रूप होय हैं। पीछें तिनकौं भला निमित्त मिलै, तौ वे भी अपना भला करैं हैं। ऐसे यह आनीष की विद्या है सो महान् वंश में उपजे जो विवेकी राजा, तिनके सीखने योग्य है।१। आगे दूसरी त्रयी विद्या। सो विवेकी राजा शास्त्रन के वेत्ता, जान्या है इस भव-पर-भव सुधरने का भेद जिननैं, सो महान् बुद्धि धर्म-शास्त्र के वेत्ता पाप-पुण्य के फल कौं जानि आप पाप तजि अनेक धर्म अङ्ग दान-पूजादि तिन रूप परिणमैं और जिन क्रियान तैं पाप बधै हिंसा होय दुराचार प्रगटैं ऐसी क्रिया अपने मुल्क में नहीं होने देंय। अनेक पाप क्रिया अज्ञानी जीवन के करने की जिनकौं करि भोले जीव अपना भव बिगाड़ैं। कुक्रिया करैं जीव हिंसा होय। इत्यादिक पाप प्रवृत्ति कौं जानि विवेकी राजा आप तजै और पर के कल्याण कौं पाप करते तिनकौं मनै करै। अपनी प्रजा पाप रूप प्रवर्तें ताकौं दण्ड

देय धर्म में लगावै। जो प्रजा धर्मात्मा दया-भाव सहित शुद्ध प्रवृत्ति की धारी होय ताकी रक्षा सहित शुश्रूषा करै। जैसे—प्रजा धर्म रूप प्रवर्तै सो ही कार्य करै। पृथ्वी में शुभाचार बधावै। धर्म क्रिया भला आचार आप करै। औरन कौं उपदेश देय पूजा, दान, शील, संयम, तप, व्रत इत्यादिक धर्म को बधावै। पाप कौं मैटें। निरन्तर धर्म सेवन का सोच राखै। संसार भोग विनश्वर जानि विषयन में रत नहीं होय। आगे महान् राजा भरत चक्री आदि बड़े-बड़े पुरुष राज्य सम्पदा छोड़ जिनेश्वरी दीक्षा धरि तप करि मोक्ष गये। तिनके गुणान की कीर्ति करता वैराग्य भावना का अभिलाषी प्रजा की रक्षा करता ऐसे भावन सहित राज्य करै। सो त्रयी नाम दूसरी विद्या है। २। आगे तीसरी वार्त्ता विद्या है। तहां नीति शास्त्रन तैं जानी है राजान की परम्पराय जानैं। सो यश का अर्थी राजा अपनी प्रजा कूं पालने की सुखी राखने की है वांच्छा जाकैं। ऐसा सुबुद्धि राजा प्रजा के न्याय अन्याय, सुख दुःख जानिवे कौं फैलाये हैं देश नगर में हलकारे रूपी नेत्र जानैं। जैसे—नेत्रन से सब देखा जाय तैसे बड़े राजाओं के नेत्र हलकारे हैं। सो तिन सूं दूर-दूर की बात जानी जाय है। सो विवेकी राजा दसों दिशा हलकारे भेजा पृथ्वी की खबर राखै। स्व-चक्र पर-चक्र की हीनता अधिकता जानैं। तिन हलकारेन तैं योग्य अयोग्य सब जानै। सो अपनी प्रजा कौं दुःखदायी चोर चुगल पाखण्डी अदेखा दुराचारी दीन जीवन कौं सतावनहारा इत्यादिक दुष्ट जीवन कौं जानि अपने मुल्क देशतैं निकास देय और जे धर्मात्मा सज्जन दयावान् सन्तोषी संयमी न्यायी इत्यादिक गुण सहित साधु जन होंय तिनकी सेवा चाकरी रक्षा करैं इत्यादिक हलकारान तैं प्रजा की कथा जानै। ऐसी विवेक बढ़ावनहारी यह विद्या जिस राजा के हृदय में वसै ताका यश होय। प्रजा सदैव सुखी रहै। यह तीसरी वार्ता विद्या है। ३। आगे चौथी दण्डनी विद्या है सो यातैं विवेकी राजा अपनी न्याय बुद्धि करि अपनी बस्ती में चोर चुगल जो अपनी आज्ञा के प्रतिकूल होय सप्तव्यसन का उपदेशक होय तिनकौं दण्ड देय दुखी करि लोकन कौं बतलावै कि जो कोई न्याय तजि अन्याय चलैगा। सो ऐसा दुःखी होय दण्ड पावैगा और बस्ती में जो भले मनुष्य न्यायवान् होंय तिनकी रक्षा करै। ये दण्डनी नाम चौथी विद्या है। ४। ऐसी च्यारि विद्या कही। सो महान् कुल के उपजे दोऊ पक्ष जिनके पवित्र होंय ऐसे राजकुमारन कौं सीखना मङ्गलकारी है। ये सब विद्या, जिस भूपति के हृदय में तिष्ठैं,

सो राजा यश पावै। परम्पराय शुभ गति भोग, मोक्ष पावै। इति च्यारि राज्य विद्या। आगे राजा के पञ्च-बल कहिये हैं। प्रथम नाम—भाग्य-बल, दैव-बल, मन्त्र-बल, शरीर-बल और सामन्त-बल। अब इन पञ्च-बलन का सामान्य अर्थ कहिये है। जानैं पूर्व-भव में विशेष पुण्य किया होय, सो पुण्य के उदयवाला जीव राज्य पावे। तौ ताकै पुण्य के आगे, अन्य राजा सहज ही भय खाय, आय-आय शीश नमावैं, सेवा करैं, आज्ञा याचैं, अपने मुकुट नमावैं, ताकौं अपना प्रभु मानैं। जैसे—तीन खण्ड का राजा वासुदेव तथा षट्खण्ड का राजा चक्रवर्ती है। सो इनका राज्य, पुण्य के उदय का है। क्योंकि जो इनकी दृष्टि महासौम्य है। वचन महामिष्ट हैं। तिनकी मूर्ति महाविश्वास उपजावनहारी, सुन्दर मनकौं मोह उपजावै। महासज्जन, तिनके वचन सुनतैं पर-जीवन कूं समता होय स्थिरता बन्धै। आप तौ ऐसे और इनका बाह्य प्रताप ऐसा कि तिनके भयसूं देव विद्याधर कम्पायमान होंय। कोई आज्ञा भंग नहीं करि सकै। बिना भय बताये ही बड़े-बड़े पृथ्वीपति आय-आय मुकुट नमावैं। ऐसा उनके पुण्यका तेज है। जैसे सूरज, मूलमें तौ तिसकी प्रभा शीतल है परन्तु औरनकौं तेजकारी होय है। तैसे ही सूर्यकी नांईं तेज धारै। सो राजाओंका भाग्य बल है। १। और कर्म जाका भला करै, ताकौं कौन विगाड़ि सकै ? जाकों कर्म भला दिखावै ताकी बुराई काहू तैं नहीं होय। जैसे रावण तीन खण्डका नाथ सर्व विद्याधरनका नाथ महा न्यायी, महा बलवान्, अरु जिसके विभीषण-कुम्भकरणसे भाई अरु इन्द्रजीत-मेघनादसे पुत्र जाके। ऐसा रावण जानैं इन्द्र-विद्याधरकों जीत्या। अरु जीवता पकड़ लाया। ऐसा राक्षसनका पालनहारा, तीन खण्डका अधिपति। ऐसे बलीकों राम-लक्ष्मण दोई भाईनने युद्धमें जीत्या। ये कर्मका बल है। जाकों कर्म जितावै सो जीते। जाका कर्म भला करै ताका भला होय। सो दैव बल है। तथा जैसे मैनासुन्दरीने कही। सुख-दुख कर्म करै सो होय। तब ताके पिताने द्वेष-भावतैं कर्म-परीक्षा करनेकूं अपनी पुत्री श्रीपालजीकूं, कोढ़ी जानि परनाई। पीछे शुभ कर्म तैं श्रीपालजीका कुष्ट गया। राज्य पाया। मैनासुन्दरी आठ हजार रानीनमें पट्टरानी होय सुखी भई। तब ताके पिताने देख कर्म-कर्तव्य सांचा जाना। सो यह दैव बल है। २। और जानें नाना प्रकारकी विद्याका साधन करि अनेक विद्यान कौं अपने आधीन करी। तिन विद्यानके प्रसाद करि अनेक मानी राजा जीति अपनी आज्ञा मनवावै। सो मन्त्र बल जानना। ३। और अपने शरीरका भुजबल

बड़ा होय। कोटि भट लक्ष भट सहस्र भट इत्यादिक अनेक हस्ति-सिंहकूं जीतनेका पराक्रम होना। तथा अनेक सैन्याकूं आप एकला ही जीतै ऐसे शरीर-बल पावना सो शरीर बल है। ४। और जाकी आज्ञा विषैं अनेक बड़े-बड़े सामन्त राजा होंय। सर्व सैन्याके सुभट अपनी आज्ञा प्रमाण होंय। बहुत सामन्तका नाथ होय। सो सामन्त बल है। ५। ये राजा का पांच बल हैं। सो विवेकी राजा कौं इनकी इच्छा करनी योग्य है। इति राजा के पांच बल। ऐसे राजा के षट् गुण, च्यारि राज्य विद्या, पांच बल। ये सर्व राजा की सम्पदा है। जिनकी ऐसी सम्पदा होय ते राजा सदैव सुखके भोगता होय यश पावै। तप लेय, देव इन्द्र अहमिन्द्र निर्वाण एते पद पावै हैं। ये शुभ राज लक्षण कहे। आगे पुण्याधिकारी पुरुषनके सीखने की विद्या हैं, तिनके नाम-लक्षण कहिये है। तहां प्रथम नाम-प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, अलंकार ज्योतिष, निरुक्त, अतिहांसि, पुराण, मीमांसा, और न्याय ये चौदह विद्या हैं। अब इनका विशेष कहिये है। तहां सामान्य बुद्धिनकों धर्म विषैं लगावनेकूं अनेक महान पुरुष तीर्थंकर चक्रवर्ती नारायण कामदेवादि पुरुषनकी कथा पुन्य पापका फल स्वर्ग-नरक का सुख-दुख कथन इत्यादिक हितोपदेश देनेकी कला, सो प्रथमानुयोग नाम विद्या है। १। अधो लोक मध्य लोक ऊर्ध्व लोक इन तीन लोकन की सर्व रचना लोकका जो आकार तामैं च्यारि गति रचना का कथन इत्यादिक तीन लोक के कथन उपदेश करने की कला सो करणानुयोग विद्या है। २। और जहां मुनि श्रावकके आचार विषैं प्रवीणता इनके खान-पानकी विधि जानना। मुनि कौं पड़गाहनेकी विधि व नवधा भक्तिकी विधि समझना त्यागी-प्रतिमाधारी श्रावककूं भोजन निमित्त ल्यायवेकी विधि तिनकूं भोजन देवेकी विधि इत्यादिक यति-श्रावकके उपदेश करने की कला सो चरणानुयोग विद्या है। ३। और जहां षट् द्रव्य इनके गुण-पर्यायका समझना। जीवके राग-द्वेष भाव जैसे होंय सो जानना। और पुद्गलके स्कंध ज्ञानावरणादि कर्म रूप कैसे होंय? और जीव कर्मन तैं कैसे बन्धै, कर्मन तैं कैसे खुलै? इत्यादिक कर्मका बन्ध होना उदय होना सत्त्व रहना इत्यादिक द्रव्यानुयोगके उपदेश देने की कला सो द्रव्यानुयोग विद्या है। ४। और शिष्यनके कल्याण होनेके निमित्त यथायोग्य उपदेश देनेका ज्ञान जो बालककौं उपदेश ऐसे दीजिये, तरुणकों उपदेश ऐसे वृद्धको उपदेश ऐसे विशेष ज्ञानीकों ऐसे सामान्य ज्ञानी कौं ऐसे

ऊंच-कुलीकूं उपदेश नीच-कुलीकूं उपदेश चंचल बुद्धिकूं ऐसे बालकतरुण स्त्रीकूं वृद्ध स्त्रीकूं, पति सहित स्त्रीकूं विधवा स्त्री कौं ऐसे इत्यादिक यथा योग्य उपदेश देनेकी कला। जैसे शिष्यजनका भला होता जाने, तैसे तिनके परभव सुधारवेकौं उपदेश देना सो शिक्षा-कल्प विद्या है। ५। अनेक प्रकारके शब्दकौ स्पष्टता विभक्ति सहित पद सहित लिंगके साधन, धातुनके साधन सहित, शुद्ध शब्दका बोलना। अनेक गद्य काव्य, छन्दनका विभक्ति अर्थ सहित पदच्छेदन सहित, भले प्रकार अर्थ करना। इत्यादिक संस्कृतका विशेष ज्ञान बधावना सो व्याकरण विद्या है। ६। जहां अनेक जातिके छन्द गाथा, आर्या, श्लोक काव्यइत्यादि बहुत प्रकार छन्दकी चाल जानना, परकौं उपदेश देना सिखावना सो छन्द विद्या है। ७। जहां नाना प्रकार अलंकार जैसे स्त्री का मुख चन्द्रमाके समान तथा यह नरेन्द्र अपने प्रतापके आगे सूर्यकूं जीतै है। इत्यादिक अलंकार कलाका सीखना-जानना-उपदेश देना सो अलंकार विद्या है। ८। जहाँ चन्द्रमा, सूर्य्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा, इत्यादि इनके गमनागमन क्रिया तैं शुभाशुभ फलका सीखना जानना उपदेशना सो ज्योतिष विद्या है। ९। जहाँ नाना प्रकार की युक्तिका ज्ञान, अनेक युक्ति उपजावना। बहु प्रकार दृष्टांतादि कलाका सीखना उपदेश देना सो निरुक्त विद्या है। १०। जहाँ अनेक चतुरता सहित सभा रंजित बोलनेकी कला जैसा अवसर देखे तैसे शब्द बोलनेकी कला जैसा मनुष्य देखै तैसा बोलनेका ज्ञान इत्यादिक सभा व समय पहिचान अपना-पराया पदस्थ पहिचान बोलना, इत्यादिक चतुराई सहित, सर्व सभा रंजन, मिष्ट विनयकारी, आनन्दकारी वचन बोलनेकी कला सो अति-हांसि कला नाम विद्या है। ११। और जहां धर्म कथाके अनेक पुराण बांचना, कंठ पाठ जानना-पढ़ना उपदेशना सो पुराण विद्या है। १२। और जहां अनेक मीमांसादि मतांतरके शास्त्रनका पढ़ना रहस्य जानना। अनेक मतान्तरके वाद जीतनेकी कला नास्तिकमती, एकान्तमती, विनयवादी इन आदि अनेक मतानका रहस्य जानना, सीखना, औरनकों उपदेश देना, सो मीमांसा विद्या है। १३। और अनेक-प्रकार तर्क-युक्ति उपजाय, प्रश्न करना। न्याय करि पर-वादीकी असत्य युक्तिका खण्डना। अपना न्याय वचन स्थापना। पर-वादी अनेक असत्य युक्ति देय ताका रहस्य जानि ताका खण्डना इत्यादिक न्याय पूर्वक नय-युक्तिका सीखना औरनकों उपदेश देना सो न्याय विद्या है। १४। ऐसे ये चौदह विद्या शास्त्रोक्त कही हैं। सो ज्ञान बढ़ानेके

पात्र पुरुषनकौं सदैव इनका अभ्यास करना योग्य है। इति शास्त्रोक्त चौदह विद्या कही। आगे लौकिक चौदह विद्या कहिये हैं। तहां प्रथम नाम ब्रह्म, चातुरी, बाल, बायन, देशना, बाहु, जल, रसायन, गान, संगीत, व्याकरण, वेद, ज्योतिष और वैद्यक। ये चौदह लौकिक विद्या हैं। अब ईनका सामान्य स्वरूप कहिये है। तहां आत्मा चैतन्य है। ज्ञान रूप है, शुद्ध है, अशुद्ध है, इत्यादिक आत्माका स्वरूप जानिये सो आत्म विद्या, सो ही ब्रह्म विद्या है। १। जहां नाना प्रकार बातनका करना। राज्य सभा, पंच सभा, जैसी सभा होय तैसी बात करना। परकौं रंजावना। चित्रकला, शिल्पकलादि अनेक लौकिक चातुरी सीखना, सो चतुराई विद्या है। २। बाल्यावस्था ही तैं अनेक प्रकार विद्याओंका सीखना, सो बाल विद्या है। ३। जहां हस्ती घोटक, रथादिककी असवारी जानना सीखना, सो वाहन विद्या है। ४। धर्मोपदेश देनेकी कला, सो देशना विद्या है। ५। जहां दण्ड पेलनादि पर मल्ल जीतन की चतुराई नाना कलाका कूदना-फाँदना नेजम झाड़ना, मोगरी फेरना इत्यादि कला सीखना, सो बाहु विद्या है। ६। जल बिषैं नाव चलावना, जहाज चलावना, भुजबल तैं तैरनेकी कला सीखना सो जल विद्या है। ७। बहुरि कुधातु कूं सुधातु करना। जैसे तांबेकूं स्वर्ण करना, रागकी चांदी करना। पारा-हरतालादि शुद्ध करि, रसायन पैदा करनी। इत्यादिक कला सीखना सो रसायन विद्या है। ८। और जहां अनेक स्वर सहित काल मर्याद रूप मिष्ट स्वर सहित ताल कूं लिये गावना, सो गान विद्या है। ९। अनेक प्रकार वादित्र कला, नृत्य कला, इनके हाव-भाव गति ललितता, चाल, ताल, इत्यादिकमैं शास्त्रोक्त समझना, सो संगीत विद्या है। १०। और अक्षरका सुस्पष्ट स्वर, ब्यंजन, विभक्ति सहित समझना, सो व्याकरण विद्या है। ११। और अनेक शास्त्रनका सीखना सो वेद विद्या है। १२। पंच प्रकार ज्योतिषी वेदनकी चाल करि शुभाशुभ जानना, सो ज्योतिष विद्या है। १३। अनेक प्रकार शरीरके रोग जाननेकी बहुत परीक्षाका जानना। हाथकी नस, मस्तककी नस, पांवनकी नस, हृदयकी नसोंका परखना। सो याही नसोंकी परखईका नाम नाड़ी परीक्षा है। सो नाड़ी परीक्षा जानै। मूत्र परीक्षा, जो मूत्रकूं देखि रोग जानै। दृष्टि परीक्षा सो दृष्टि देख कैं रोग जानैं। पसीना कूं देख-सूंघि रोग जानै, सो स्वेद परीक्षा है। इत्यादिक चिन्हन तैं रोग जानि ताके नाश करने की कला सो वैद्यक विद्या है। १४। ये चौदह कर्म-विद्या हैं। और ऊपर कहीं चौदह,

वे धर्म विद्या हैं। तिन सबका स्वरूप विवेकी राज-पुत्रन आदि सर्व कुलीनकूं सीखना योग्य है। और जिस राजपुत्रकूं इन विद्यानका ज्ञान होय सो प्रजाकूं सुखी करै, आप यश पावै। ऐसे जानि इन विद्या रूपी गुणनका संग्रह करना योग्य है। इति लौकिक विद्या। आगे राजानका इन्द्र जो षटखण्डी चक्रवर्ती ताके पुण्यका माहात्म्य पाय चौदह रत्न व नव निधि हो हैं। तिनके नाम व गुण कहिये हैं। तहां प्रथम रत्न नाम सुदर्शन चक्र चंड वेग दण्ड चमर चूड़ामणि काकिणी छत्र असि सेनापति बुद्धिसागर पुरोहित शिल्पी गृहपति विजयगरि हस्ती घोटक और स्त्री ये चौदह रत्न हैं। एक-एक रत्नकी हजार-हजार देव सेवा करैं हैं। अब इन रत्नन तैं कहा-कहा कार्य होय सो कहिये हैं। तहाँ चक्री, जिस पै आज्ञा करै चाहै। तापै चक्रके रक्षक देव जाय चक्रीकी आज्ञा कहैं। यह चक्र रत्नका कार्य है।१। विजयार्द्ध पर्वत की गुफाके कपाट सेनापति तोड़ै है, सो गदा रत्न है तासैं तोड़ै है। सो ये गदाका कार्य है।२। जहां राहमें नदी-सरोवरका बड़ा गहन जल आवै है। तब चरम रत्न जलमें विछाय दीजिये। सो ताके प्रसाद करि सर्व जल धरती समानि होय। तापै तैं चक्रीका सर्व कटक पार होय। ये चमर रत्नका गुण है।३। और विजयार्द्धकी गुफा पचास योजन लम्बी है। तामें यहा अंधकार में सो चक्री कैसे धसै है। तहां चूड़ामणि रत्नके उद्योत करि, सूर्य-प्रकाशकी नाईं उद्योतमें, गुफा पार हो है। ये चूड़ामणि रत्नका गुण है।४। और काकिणीं रत्न तैं चक्री अपना नाम लिखै है। वृषभाचल पर्वत पै, जब ठाम नहीं मिलै है। तब इस काकिणीं रत्न तैं, और चक्रीका नाम मेटि, अपना नाम लिखै है। और याके प्रकाश तैं भी बारह योजन गुफामें प्रकाश होय है। ये काकिणीं रत्नका गुण है।५। और चक्रीके कटक पर मेघ बरसै, तौ छत्र रत्नके विस्तार करि जलकी वाधा मेटै, सब सैन्या छाया लेय है। ये छत्र रत्नका गुण है।६। और जाके तेज तैं वैरी डरैं, सर्व शत्रु जातैं जीतिए, ऐसा असि रत्नका गुन है।७। ये सात रत्न तो अचेतन कहे। और सब आर्य म्लेच्छ खण्डके राजान कूं जीति, सर्व कूं लाय चक्रीके चरणमें नमाय सेवा करावै, ए सेनापतिका गुण है।८। और पुरोहित ऐसी सलाह देय जातैं प्रजा सुखी होय, वैरी वश होय, ये पुरोहित रत्नका गुण है।९। और चक्रीकी आज्ञा तैं तत्क्षण, मनवांछित, अनेक शोभा सहित, बहुत खण्डके सुन्दर महल वनावै, सो ये शिल्पी रत्न है।१०। और चक्रीके घरका सर्व कारबार, आरम्भ कार्यकी सावधानी राखै,

सो ये गुण गृहपति रत्न का है । ११ । चक्री के मन कूं सुखकारी असवारी का देनेहारा, ऐरावत इन्द्र के हस्ती समान विजयगिरि नाम सुन्दर हस्ती रत्न है । १२ । वांच्छित असवारी देनेहारा, पवन समान वेग तैं चलनेहारा, चञ्चल, सुन्दर अश्व है ।१३। महासती, शची समान रूप की धरनहारी, महासुन्दर, चक्री के मन कौं धरनहारी, आज्ञाकारिणी, महाबलवती रत्न चूर्ण करैं ऐसी, स्त्री रत्न है ।१४। ये सात चेतन रत्न है । सब मिलि चौदह होय हैं । ये जहां-जहां उपजैं, सो स्थान बताईये हैं । चक्र, छत्र, असि, दण्ड—ये चार तौ आयुधशाला में उपजैं हैं । चरम, काकिणी, चूड़ामणि—ये तीन श्रीगृह में उपजैं हैं । हस्ती, घोटक, स्त्री—ये तीन विजयार्द्ध पर्वत पै उपजैं हैं । सिलावट, पुरोहित, सेनापति, गृहपति—ये च्यारि निज-निज नगरी में उपजैं हैं । ऐसे चौदह रत्नों का सामान्य स्वरूप कह्या । विशेष अन्य पुराणन तैं जानना । इति चौदह रत्न । आगे नव निधि के नाम व लक्षण कहिये हैं । काल, महाकाल, नैसर्प्य, पाण्डक, पदम, माणव, पिंगल, शंख और सर्व रत्न ये नवनिधि हैं । ये कहा-कहा कार्य करैं हैं, सो ही कहिये हैं । काल निधि तो वांच्छित पुस्तक देय है । १ । महाकाल वांच्छित असि देय है । २ । वांच्छित भोजन देय, सो नैसर्प्य निधि है । ३ । वांच्छित षट्रस देय, सो पाण्डक निधि है । ४ । वांच्छित वस्तु देय, सो पदम निधि है । ५ । वांच्छित नीति शास्त्र व शस्त्र देय, सो माणव निधि है । ६ । वांच्छित आभूषण देय, सो पिंगल निधि है । ७ । अनेक बाजे देय, सो शंख निधि है ।८। वांच्छित सर्व रत्न देय, सो सर्व रत्न निधि है ।९। ये सर्व मिलि नव निधि जानना । सो इन निधिन के आकार व प्रमाण कहिए है । ए सर्व निधि गाड़ी के आकार हैं । लम्बी चौकोर जानना । आठ पहियान सहित हैं । सो एक-एक निधि, बारह-बारह योजन लम्बी है । नव-नव योजन चौड़ी है । आठ-आठ योजन ऊँची है । एक-एक निधि के हजार-हजार देव रक्षक हैं । इन निधिन पै चक्री की आज्ञा है । ये निधि, चक्री के पुण्य प्रमाण हैं । ऐसे चौदह रत्न, नव निधि ए पुण्य का फल है, बिना पुण्य नाहीं । इति निधि । आगे चक्री की सेना षट् प्रकार है, सो कहैं हैं । तहां प्रथम नाम—हस्ती चौरासी लाख, रथ-सैन्या, चौरासी लाख घोड़ा, अठारह कोड़ि सर्व दोऊ श्रेणी के विद्याधरन की सैन्या, भरतक्षेत्र सम्बन्धी देवन की सैन्या, पयादेन की सैन्या—ये षट् प्रकार की सैन्या है। सामान्य राजा कैं तो च्यारि जाति की सैन्या होय देव विद्याधर की सैन्या नहीं होय। अरु चक्रधारी के षट्

प्रकार की सैन्या जानना। ऐसी विभूति सहित श्री आदिनाथ के पुत्र भरत चक्रवर्ती सोलहवें कुलकर पहले चक्री सो महाविवेक के सागर होते भए। सो इनके काल विषै भोग भूमि के बिछुरे प्रजा के लोग भोले जीव कर्म भूमि की रचना में नहीं समझैं। अरु कल्पवृक्षन का अभाव भया जीवन के क्षुधा बधी। तब भोले जीव उदर पूरण की विधि बिना दुःखी होने लगे। विशेष ज्ञान चतुराई कर्म भूमि सम्बन्धी आरम्भ नहीं जानैं। तिनके दुःख निवारवे कूं भरत चक्री हैं सो प्रजा कों कर्म भूमि की रचना का ज्ञान होवे कूं प्रजा कूं सुखी होने के निमित्त षट् कर्म का उपदेश देते भए। तिनके नाम व स्वरूप कहिए है। इज्या, वार्ता, दान, स्वाध्याय, तप और संयम—ए षट् कर्म हैं। अब इनकी प्रवर्ति कहिए है। तहां भगवान् सर्वज्ञ जगत्नाथ कौं तरन-तारन जानि पापहरन मोक्षकरन जानि कैं विवेकी भक्ति के वशीभूत होय आपकौं पाप सहित जानि कर्म सहित जन्म-मरण करि दुःखिया जानि आप दीन होय विनय सहित, अपने पाप हरवे कूं, भगवान् का पूजन करना। तिनके सन्मुख खड़ा होय, उत्कृष्ट अष्ट द्रव्य मिलाय अपनी काय पवित्र करि, मन्त्र सहित प्रभु के चरण आगे धरै। जैसे—लौकिक में निज उत्कृष्ट वस्तु लेय, राजान के सन्मुख जाय, चरण पास धरैं। पीछे राजा की स्तुति करैं। तैसे ही भगवान् की पूजा-स्तुति किये, पाप क्षय होय। सो तिस पूजा के च्यारि भेद हैं। तिनका नाम—एक तौ प्रतिदिन अष्ट द्रव्यतैं भगवान् की पूजा करना, सो नित्यमह है। १। चतुरमुख पूजा—ये महापूजा-विधान सो मण्डलेश्वर, महामण्डलेश्वरादि बड़े राजान तैं बनैं है। २। कल्पवृक्ष पूजा—सो तामैं उत्तम नेवज, नेत्र कूं सुखकारी, जाकौं देख देव भी अनुमोदना करैं, ऐसे उत्तम द्रव्य तैं पूजा करनी और ता समय जेते दिन लौं पूजा-विधान आरम्भ रहै। तेते दिन सर्व कौं किमिच्छक कहिए मनवांच्छित दान, याचकन की इच्छा-प्रमाण कल्पवृक्ष की नांई दान देना, सो कल्पवृक्ष पूजा है। सो ये पूजा चक्रवर्ती तैं बनैं है। ३। अष्टाह्निका-पूजा याका नाम ही इन्द्र-पूजा है। सो या पूजा इन्द्र तैं बनै है।४। ऐसे च्यारि प्रकार प्रभु की पूजा का, भरतेश्वर अपने निकटवर्ती राजान कौं तथा प्रजाकूं उपदेश देते भये। याका नाम इज्या क्रिया है। इति इज्या। आगे वार्ता क्रिया कहिए है। वार्ता कहिए, दगाबाजी सहित आजीविका का विचार त्याग करि, न्याय सहित आजीविका पूरी करनी, सो वार्ता है। ताके अनेक भेद हैं। मुख्य-असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प और पशु-पालन—ए षट् भेद हैं। तहां असि कहिए खडग, सो

शस्त्र बांध, न्यायपूर्वक, दया सहित, दीन जीवन की रक्षा करता, दुष्ट जीवन कों दण्ड देता, प्रजापालन करै। सो शस्त्र सहित आजीविका करनी, सो असि वार्ता कहिए। १। मसि कहिए स्याही, तातैं धर्म-कर्म के अक्षर लिखने का व्यवहार करना, पाप रहित न्याय सहित लिखने करि, आजीविका पूर्ण करना। सो मसि वार्ता है।२। कृषि कहिए, खेती करना। अपनी बुद्धि के बल करि, धरती विषैं अनेक प्रकार बीज बोय, बहुत प्रकार अन्न, मेवा, अनेक रस निपजाय, धन का उपजावना, सो कृषि वार्ता है। ३। अनेक न्याय सहित वाणिज्य-व्यौपार, हिंसा-पाप रहित व्यापार करना। तामें बहुत आरम्भ, बहु हिंसा, असत्य, चोरी इत्यादिक दोष रहित, भला यश सहित, धन को उपजावने के निमित्त व्यापार करना। सो वाणिज्य वार्ता है। ४। जहां अनेक महल-मन्दिर बनवाने की कला प्रगट करि आजीविका करनी सो शिल्प वार्ता है। ५। पशु-पालन कहिए, अनेक पशून की रक्षा करि, तिनके पालने की विद्या। पशून की पीड़ा पहिचानना, पशु परीक्षा करनी, तिनके शुभाशुभ चिह्न, वय का समझना, तिनके खान-पान में समझना, तिनके अनेक रोग समझ, ताकी ओषधि का जानना। सो पशु-पालन वार्ता है। ६। ऐसे षट् कर्म-भेद, वार्ता आजीविका की विधि, आदि चक्री नैं प्रजा के सुखी होने कूं, भोग भूमि के बिछुरै भोले जीव तिनकौं बताई। ता प्रमाण सर्व प्रजा के लोग, अपने तन की तथा कुटुम्ब की रक्षा करते भये। ये षट् भेद वार्ता कर्म के हैं। २। ये दोय कर्म तो इस भव के यश सुखकौं उपदेशे। च्यारि कर्म पर-भव के कल्याणकौं, स्वर्ग मोक्ष की राह बतावे कों उपदेशे। सो कहिये हैं। दोय तो ऊपर कहे। तीसरा कर्म जो दान सो च्यारि प्रकार है। भेषज, अन्न, शास्त्र और अभय—सो ओषधि-दान तैं तो पर-भव में निरोग शरीर पावै है। अन्न दान करि पर-भव में सदा अन्न भोजन करि, सुखी रहै। औरन कूं पालनहारा होय। आयु पर्यन्त सुखी रहै। शास्त्र-दान तैं भवान्तर में ज्ञानवान् महापण्डित होय। अभय-दान करि, दीर्घ आयु का धारी इन्द्र-अहमिन्द्र होय तथा निर्भय जो मोक्ष स्थान ताहि पावै। तातैं च्यार दान दीजिये। सो दुःखित-भुखित दीनन कौं तो करुणा करि, सन्तोष सहित, पुचकार करि देना। पात्रनकूं भक्ति करि देना। इस दान करि जीव पर-भव में बहुत सुखी होय सो ऐसा दान-कर्म का उपदेश किया। ३। चौथा स्वाध्याय सो जिनवाणी का पाठ, अनेक धर्म-शास्त्रन का अध्ययन करना, सो ऐसा स्वाध्याय नाम कर्म उपदेश्या। ४। बारह प्रकार तप सो

अन्तरङ्ग-बाह्य करि दया-भावन सहित, समता-भाव की विधि लिये करना, सो तप कर्म है ।५। तहां पंचेन्द्रिय तथा मनकौं वशीभूत करना षट्काय की दया करनी । सो द्विविधि संयम बारह प्रकार है । सो उपदेश्या।६। ऐसे षट् कर्म भरत चक्री प्रजा का पिता, सो सबके युग-भव के सुख का अभिलाषी, कर्म-धर्म के मार्ग कों दीपक समान जो भला उपदेश सो षट्-कर्म रूप उपदेश देय, लोकन कों सुखी करे। इति भरत चक्री के उपदेशित षट्-कर्म। पीछे भरतनाथ भरत चक्रवर्तीकों सोलह स्वप्ने आये। तिनका फल चक्री ने श्रीआदिनाथ जिन से पूछा। तब भगवान् ने कही—हे राजन्! इनका फल चौथे काल में नाहीं। आगे पञ्चम काल में, इन स्वप्न का फल प्रगट होयगा। सो कहिये है। प्रथम नाम—प्रथम तौ तैबीस सिंह देखे। दूसरे स्वप्न में एकला सिंह, ताके पीछे मृगन का समूह गमन करते देखा। तीसरे स्वप्न में हस्ती का भार धरैं, तुरङ्ग देखा। चौथे स्वप्न में कागन करि, हंस पीड़ित देखा। पांचवें स्वप्न में बकरेकूं सूखे पत्र चरते देखा। छट्ठे स्वप्न में बन्दरकौं हस्ती के कन्धे पर चढ्या देखा। सातवें स्वप्न में भूत नाचते देखे। आठवें स्वप्न में एक सरोवर ताका मध्य तो सूखा और तीर में अगाध जल देखा। नववें स्वप्न में रत्न राशि रज करि मण्डित, कान्ति रहित देखी। दशवें स्वप्न में श्वानकूं पूजा का द्रव्य खाते देखा। ग्यारहवें स्वप्न में तरुण वृषभ दहड़्ता देखा। बारहवें स्वप्न में चन्द्रमाकों शाखा सहित देखा। तेरहवें स्वप्न में दोय वृषभ इकट्ठे होय गमन करते देखे। चौदहवें स्वप्न में सूर्य विमानकों मेघ पलट से आच्छादित देख्या। पन्द्रहवें स्वप्न में छाया रहित सूखा एक वृक्ष देखा। सोलहवें स्वप्न में जीर्ण पत्रन का समूह देखा। ये सोलह स्वप्न भये अब इनका अर्थ कहिये है। तहां ते बीस सिंह देखे, तिनका फल ये, जो तेईस तीर्थङ्करन के समय में तौ खोटी चेष्टा के धारी परिग्रह सहित, जिन-धर्म विषैं मुनि नहीं होंयगे।१। एक सिंह तरन-तारन, ताके पीछे मृगन के समूह गमन करते देखे। तिनका फल ये है। जो अन्तिम चौबीसवें जिन महावीर तिनके निर्वाण भये पीछे यति मृग की नाईं दीन नग्न परीषह सहवेकौं असमर्थ, सो परिग्रह का धारन कर, यति बाजैंगे। जिन लिंग तज, कुलिङ्ग धरैंगे।२। हाथी के भार सहित तुरङ्ग देखा ताका फल ये है—जो पञ्चमकाल में साधु, तप के भार करि दुःखी होंयगे। तप धारनेकों असमर्थ होंयगे। ३। बकरेकूं सूखे पत्र खाते देखा। तिसका ये फल है। जो ऊँचे कुल के मनुष्य शुभाचार तैं

भ्रष्ट होय, खोटा आचार आदरेंगे। ४। बन्दरकौं हाथीके कन्धै पै चढ़्या देखा। ताका फल ऐसा, जो आदि तैं चला आया जो क्षत्रीनका वंश तिसकी व्युच्छित्ति (नाश) होयगी। हीन कुलके धारी अकुलीन, पृथ्वी पर राज्य करेंगे। ५। वायसनके समूह करि, हंस पीड़ित देखा। ताका फल ऐसा, जो पञ्चम-कालमैं अज्ञानी भोले जीव धर्मके अर्थ मुनि धर्म तजिकैं, अनाचारी-हिंसक जीवनकी सेवा करेंगे। असंयमी कषायी जीवन करि, धर्मात्मा जीव पीड़े जांयगे। पापी जीवन करि, धर्मी जीवनका अपमान होयगा। ६। भूत नाचते देखे तिनका फल ऐसा। जो पञ्चम कालमैं अज्ञानी जीव भगवान् जानि धर्मके अर्थ भूतादि व्यन्तर देवनकी पूजा करेंगे। ७। सरोवर मध्यमैं सूखा, तीरमैं अगाध जल देखा। ताका फल, ऐसा जो उत्तम तीर्थ-स्थानकनमैं धर्मका अभाव रहेगा। हीन स्थाननमैं धर्म रहेगा। ८। रत्न राशि धूलि करि लिप्त देखी। ताका फल ऐसा। जो पञ्चमकालमैं शुक्लध्यानी नहीं होंयगे। धर्मध्यानी केईक रहेंगे। ९। जिन पूजाका द्रव्य, श्वान खाते देखा ताका फल ऐसा जो पञ्चमकालमैं पात्र की नांईं, अव्रती तथा कुपात्र व अपात्र ये आदर पावेंगे। १०। तरुण वृषभ शब्द करते देखा। ताका फल ऐसा जानना, जो पञ्चम काल के जीव, तरुण समय में तो धर्म-ध्यानके आदरने विषैं उद्यम करेंगे। परन्तु वृद्ध भये, धर्ममैं शिथिल होय, अरुचि करेंगे। ११। चन्द्रमा के शाखा देखीं ताका फल ऐसा, जो पंचम काल में अवधि, मनःपर्यय ज्ञानके धारी मुनि होंयगे। १२। दो वृषभ साथही गमन करते देखे ताका फल ऐसा, जो पंचम काल के मुनि, संघ में रहेंगे। एका-विहारी नहीं होंयगे। १३। सूर्य मेघ पटल करि आच्छादित देखा। ताका फल ऐसा, जो पञ्चम काल के मुनीनकौं केवल-ज्ञान नहीं होयगा। १४। सूखा वृक्ष छाया रहित देखा ताका फल ऐसा। जो पंचम काल के स्त्री-पुरुष शील व्रत धारि, पीछे कुशील सेवेंगे। १५। सूखे पत्रन का समूह देखा। ताका फल ऐसा, जो अन्न आदि ओषधि हैं तिनका रस जायगा, सर्व ओषधि नीरस होंयगी। १६। ऐसे भगवान वृषभदेवने कही कि भो चक्रेश्वर! इनके फल अब नाहीं। आगे पंचमकाल के उतारमैं दिखेंगे। इति भरत चक्रवर्ती के स्वप्न-फल समाप्त। आगे पंचम काल में भोले जीव अपनी बुद्धि तैं कल्पना करि, अनेक प्रकार भगवान कूं स्थाप्य कैं पूजेंगे, बहुविधि तैं भगवान् के भेद कहेंगे। तातैं शुद्ध भगवानके जानने कौं, भगवान के गुण कहिए हैं। जिनमैं ये गुण होंय, सो शुद्ध भगवान हैं। जिनमैं ये गुण

नाहीं होय, सो शुद्ध देव नाहीं। ये अतिशय जामें होंय, सो शुद्ध तरन-तारन जानना। सो प्रथम अतिशय तीन हैं। वचन अतिशय, आतम अतिशय और भाग अतिशय। इनका अर्थ—जाकी वाणी मेघ समान अनक्षरी, अनुक्रम रहित खिरै सो अपनी-अपनी भाषामें सब बारह सभा के जीव समझैं। सर्वका संदेह जाय, संशय रहै नाहीं। जाकौं सुनि, भव्यका कल्याण होय। पाप नाश होय पुण्य-फल उपजै सो वचन अतिशय है। १। कर्म के क्षय तैं प्रगट्या जो अनन्त चतुष्टय-अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन अनन्तसुख और अनन्तवीर्य सो ये आत्म अतिशय है। २। गर्भ के पहिले, रत्नों की वर्षाका होना, नगर सब रत्नमयी होना, इन्द्रादिक देव सेवा करैं। केवलज्ञान-स्वभाव प्रगट भये, समोशरण विभूतिका प्रगट होना। इत्यादिक महिमा सो भाग्य अतिशय है। ३। ऐसे तीन अतिशय जिनमें होंय, सो भगवान् हैं। इति तीन अतिशय। आगे भगवान् की माताकौं गर्भ के पहिले, सोलह स्वप्न आये हैं। तिनके नाम व लक्षण कहिये हैं। प्रथम नाम ऐरावत हस्ती, श्वेत वृषभ, सिंह, पुष्पमाला, लक्ष्मी कलश स्नान करती देखी, पूर्ण चन्द्रमा, सूर्य, कनक कलश, मच्छ युगल, सरोवर, सागर, सिंहासन, स्वर्ग विमान, धरणेन्द्र विमान, रत्न राशि, और निर्धूम अग्नि। ये सोलह स्वप्न भगवानकी माताने देखे हैं। अब इनका सामान्य फल कहिये है। प्रथम ऐरावत हस्ती देखा। ताका फल ऐसा, जो पुत्र महान् पुण्यका धारी, सर्व तैं ऊँचा होयगा। १। और श्वेत वृषभ देखा ताका फल ऐसा जो पुत्र धर्मका धारी, जगत्-पूज्य होयगा। २। और सिंह देखा। ताका फल ऐसा जो पुत्र अनंत बलका धारी होयगा। ३। पुष्पमाला देखी। ताका फल ऐसा जो पृथ्वीमें धर्मको प्रगट करनहारा होयगा। ४। लक्ष्मीको कलश स्नान करती देखी। ताका फल ऐसा जो पुत्रका सुमेरु पर्वत पै स्नान होयगा। ५। पूर्ण चन्द्रमा देखा। ताका फल ऐसा जो तीन लोकके जीवनकों आनन्दकारी होयगा। ६। सूर्य देखा ताका फल ऐसा जो महा प्रतापी होयगा। ७। कनक कलश देखा। ताका फल ऐसा। जो अनेक निधिका भोगता होयगा। ८। ता पीछे मच्छ-युगल देखा। ताका फल ऐसा जो अनेक सुखका भोक्ता होयगा। ९। सरोवर देखा। ताका फल ऐसा १००८ लक्षणका धारी होयगा। १०। पीछे कल्लोल करते समुद्र देखा। ताका फल ऐसा जो केवलज्ञानका धारी होयगा। ११। पीछे सिंहासन देखा। ताका फल ऐसा जो बड़े राज्यका भोगता होयगा। १२। पीछे स्वर्ग विमान देखा। ताका फल ऐसा जो स्वर्ग तैं चय कैं अवतार लेयगा

। २३। पीछे पाताल तैं निकसता धरणेन्द्रका विमान देखा। ताका फल ऐसा जो जन्म तैं ही ताकैं अवधि-ज्ञान होयगा। २४। पीछे रत्न राशि देखी ताका फल ऐसा, जो गुणका निधान होयगा। २५। निर्धूम अग्नि देखि। ताका फल ऐसा, जो अष्ट कर्मनका जारनहारा होयगा। ।२६। ऐसे भगवान्के अवतार होनेके पहिले के सोलह स्वप्नोंका फल जानना।

इति श्री सुदृष्टि तरङ्गिणी नाम ग्रन्थ के मध्मे में राजानके गुण तथा चोदह विद्या, तीर्थंकरकी माताके सोलह स्वप्न, इत्यादिक कथन करनेवाला इकतीसवां पर्व सम्पूर्ण ॥ ३१ ॥

आगे भगवान् वृषभदेवने जन्म पीछे तेरासी लाख पूर्व राज्य किया। तामैं भगवान् दीर्घ पुण्यका फल दशधा भोग भोगि कैं सुखी भये। तिनके नाम प्रथम मन वांच्छित रत्न ज्योतिषी देवनकी प्रभाकौं जीतनेहारे अनेक वरनके तिनके सुख भोग। १। नव निधिकौं आदि लेय, परम सम्पदाके भोग। २। महासती, शचीके रूपकौं जीतनहारी आज्ञानुसारी, विनय सहित अनेक मन मोहन चेष्टाकी धारनहारी सुन्दर रानीका भोग। ३। अनेक सम्पदा करि भरे नगर देश तिनके राज्यका भोग। ४। देव विद्याधर भूमि गोचरी राजान सहित अनेक महान् पुरुषन करि वंदनीय हस्ती घोटक पयादे इन षट् प्रकार सेन्याके ईश्वर ताके भोग। ५। महान् सुगंधता सहित, अनेक रत्न मयी कोमल शैय्याके भोग। ६। रत्नमयी सिंहासन तख्त, बैठनेके स्थान महा उदार, उत्तम मन्दिरनके भोग। ७। अनेक रत्नमयी स्वर्ण चांदी आदि अनेक मनोहर धातुके अनेक आकारके वासनके भोग। ८। नाना प्रकार षट्रस मयी अनेक भोजन-व्यंजन, जिह्वा रंजित वस्तुके खावनेके भोग। ९। देव देवी, मनुष्य स्त्रीनके गाये बजाये अनेक सुन्दर स्वर सहित संगीत, गान, नृत्यादिक, अनेक राग रंगके भोग। १०। ऐसे दश प्रकारके भोग, देवाधिदेव वृषभनाथ जिनने राज्यावस्थामें भोगे सो अतिशय पुण्यका फल जानना। इति दश जाति भोग। आगे सहज षट्-गुण पुण्यवान्के परखवेकौं बताईये है। एक तौ आप, सर्व जगतके देव-मनुष्यन करि पूजनीय पदके धारी, सब तैं बड़े हांय। अरु अपने बड़प्पनका मान नहीं करैं ये महा पुण्यका फल है। हीन पुण्यी, अलपसा भी लोकमें आदर-सत्कार पावै तौ मान करै। पुण्यवान् बड़ा भी सत्कार पावै, तौ भी मान नहीं करै। १। हीन पुण्यी अल्पसा सत्य बोलै तो मान करै। कहै, हम जैसा सत्यवादी और नाहीं

पुण्यवान्का सहज ही सत्य बोलनेका स्वभाव होय है। तातैं पुण्यवान सत्य बोल मान नाहीं करै। ये पुण्यवान्का दूसरा भेद है। २। हीन कुली, तुच्छ पुण्यी, अल्पसा पुरुषार्थ पाय मान करै। दीन जीवनकौं पीड़ै भय बतावै। कहै हमसे बलवान् पुरुषार्थी और नाहीं। ऐसा कहि अभिमान करै। जे महान् पुण्यी हैं ते बड़ा भी बल पराक्रम धार मान नाहीं करैं। दीन जीवनकी रक्षा करैं। ये तीसरा पुण्यवान्का चिन्ह है। ३। हीन पुण्यी, महा रौद्र-परिणामी अन्तरङ्गमें तो महा निर्दय भाव अरु बाह्य लोक दिखावैकौं दान देय दया करि मान करै। कहै हम दयावान् हैं। जे दीर्घ-भागी हैं वे सहज ही कोमल चित्तके धारी महा दया भाव करि भी मान नहीं करैं। ये चौथा पुण्यवानका चिन्ह फल है। ४। अल्प पुण्यका धारी, अल्प दान देय कैं कहै हमसे दाता और नाहीं। ऐसा मान करै। दीर्घ पुण्यी सहजही चित्तका उदार, दयावान बड़ा दान करै भी, मान नहीं करै। ये पुण्यवान् का पांचवां चिन्ह है। ५। हीन पुण्यी अल्पसा ही विरक्त होय मान करै। कहै हम त्यागी हैं, हमैं कछु भी वांछा नाहीं। और जे बड़भागी-महान् पुण्यी हैं। ते अनेक भोग—सम्पदा पाय, तासैं उदास रहैं। मान नहीं करैं। ये पुण्यवान्का छट्ठा चिन्ह है। ६। जो इन षट् बातनमें मान नहीं करै, सो ये पुण्यका फल है। इति षट् गुण सो ये भगवान् विषैं पाईये है। भगवान्, राज्य अवस्थामैं इन्द्रके ल्याये अनेक आभूषण-रत्न मयी आभूषणन कौं अलंकृत करि, भूषणाम कौं शोभा देते भये। सो आचार्य कहैं कि जो अपने आश्रय आवे ताकों यशवंत करै, भला दिखावै। भगवान्के तनका आश्रय आभूषणनने लिया, सो आभूषण भले शोभते भये। तिन सर्व आभूषण में मुख्य हार है। सो हारके अनेक भेद हैं। सो ही कहिये हैं। हारके तीन भेद हैं, एकावली जिष्टी हार, रत्नावली जिष्टी हार, और अल्पवृत्तक। ये तीन भेद, हारके हैं। तहां जिष्टीके पांच भेद हैं। सीरख, उपसीरख, अवघाट, प्रकांडक और तरल-प्रबंध। ये पांच जिष्टी हारके भेद हैं। सो जिष्टी नाम लड़ीका है। हारमें जेती लड़ी होंय, तिनकौं जिष्टी कहिये। सो लड़ के पांच भेद है। तहां जिस हारमें केवल मोती ही मोतीन की लड़ी होय, सो एकावली जिष्टी हार कहिये। १। और जाके मध्यमें तो मणि होय और दोय तरफ मोती होंय, सो रत्नावली नामा जिष्टी हार है। २। और जामें दोय मोती एक मणि, ऐसे जो लड़ी पोई होय। केई में तीन मोती, एक मणि। तीन-तीन मोतीन के अन्तर में एक-एक मणि होय। तथा च्यारि-च्यारि

मोती और एक मणि पोई गयी होय तथा पांच-पांच मोती और एक मणि ऐसे पोई गई होय, सो इनका नाम अपवृत्तक है। यहां मणि के दोय भेद हैं। एक मणि और दूसरा माणिक्य। तहां जामें छिद्र होय, सूत में पोई जाय, सो तो मणि कहिये और जो छिद्र रहित होय, स्वर्ण में जड़या जाय, सो माणिक है। सो जो लड़ी में एक मोती, एक मणि और एक माणिक्य होय, सो भी अपवृत्तक नाम हार है। ३। जहां जा लड़ी के सर्व मोती तौ बराबर के होंय अरु मध्य में एक बड़ा मोती होय। ताकों सीरख नाम लड़ी का हार कहिये। १। जामैं मध्य मैं तीन बड़े और अन्य बराबर के मोती होंय, सो उपसीरख कहिये है। २। जाके मध्य में पांच बड़े मोती होंय, सो प्रकाण्डक नामा जिष्टी हार कहिये है। ३। जाके मध्य का मोती तौ बड़ा होय। दो तरफ के मोती क्रम तैं छोटे-छोटे होंय, सो अवघाटक नाम जिष्टी कहिये। ४। जामैं सर्व मोती समान होंय, सो तरल-प्रबन्ध नाम जिष्टी है।५। ये पांच जाति की लड़ी हारन में होय हैं। सो तिन हारन के ग्यारह भेद हैं सो ही बताइये हैं। तिनके नाम—अर्ध मानव, मानव, अर्ध गुच्छ, निषत्रमालिका, गुच्छ, रम्यकलाप, अर्ध, देवछन्द, हार, विजयछन्द और इन्द्रछन्द—ये ग्यारह प्रकार के हार हैं। सो इनके पहिरने हारेन के पदस्थ कहिये हैं। तहां दश लड़ी का हार, सो तो अर्ध मानव हार है। १। और बीस लड़ी का हार, सो मानव नाम हार है। २। चौबीस लड़ी का हार, सो अर्ध गुच्छ हार है। ३। सत्ताईस लड़ी का हार, सो निषत्रमालिका हार है। ४। बत्तीस लड़ी का, गुच्छ नाम हार है। ५। चौवन लड़ी का, रम्यकलाप नाम हार है। ६। चौंसठ लड़ी का अर्ध हार है। ७। इक्यासी लड़ी का, देव छन्द नाम हार है। ८। एकसौ लड़ी का हार, सो हारनामा हार है। ९। जो पांच सौ च्यारि लड़ी का होय, सो विजय-छन्द नामा हार है। १०। एक हजार आठ लड़ी का होय, सो इन्द्र-छन्द नामा हार है। ११। ये ग्यारह भेद कहे। सो इनमें पहिले कहे जो नव भेद, सो इन हारन कों महामण्डलेश्वर राजा तांई पदवारे पहिरैं हैं। दशवां विजय-छन्द हारकों नारायण-प्रतिनारायण पद के धारी पहिरैं हैं। जो इन्द्र-छन्द नामा हार है सो देव, इन्द्र, चक्री पहरैं ये भगवान के निकटवर्ती सेवक हैं, सो ये पहिरैं तथा इन देव-इन्द्रन के नाथ तीर्थङ्कर पहिरैं। एक हजार आठ लड़ी का हार, देवोपुनीत है। ताहि पहिरैं जिन देव ऐसे सोहते भये, मानों सर्व ज्योतिषी देव मिलि कैं, भगवान् की भक्ति करने कौं, निकट ही आये हों। ऐसे भगवान् बहुत काल पर्यन्त राज्य करि, ता

पीछे तप लेय, केवलज्ञान पाय, समोशरण सहित विहार कर्म करि, धर्मोपदेश देते भये। तिसकूं सुनि बारह सभा के धर्मार्थी जीव, धर्म-मार्ग लागते भये। सो तिन बारह सभा के नाम कहिये हैं। प्रथम सभा में कल्पवासी देव, दूसरी में ज्योतिषी देव, तीसरी में व्यन्तर, चौथी में भवनवासी देव, पांचवीं में कल्पवासी देवियां छठी में ज्योतिषी देवांगना, सातवीं में व्यन्तर देवों की देवियां, आठवीं में भवनवासी देवियां, नववीं सभा में मुनि, दसवीं में आर्यिका व सर्व स्त्री, ग्यारहवीं में मनुष्य, बारहवीं में सर्व जाति के सैनी पंचेन्द्रिय तिर्यंच—इन बारह सभा सहित, भगवान् मोक्ष-मार्ग प्रगट करते, जगत्-जीवन के पुण्य के प्रेरे उनके कल्याण के अर्थि, विहार करते भये। सो अनुक्रम तैं कैलाश पर्वत पर आये। जब भगवान के निर्वाण होने में चौदह दिन बाकी रहे, तब भरत चक्री आदि आठ मुख्य महान् राजा, तिनकूं शुभ स्वप्न भये। तिनके नाम व चिह्न बताइये हैं। जिस दिन भगवान ने योग निरोधे, उस दिन की रात्रि विषैं भरतेश्वर चक्री कूं ऐसा स्वप्न हुआ कि मानो सुमेरुपर्वत ऊँचा होय, सिद्धक्षेत्र तैं जाय लग्या है। १। भरत जी के पुत्र अर्ककीर्ति, ताकूं ऐसा स्वप्न भया कि स्वर्ग लोक के शिखर तैं एक महान् ओषधी का वृक्ष आया था, वह जगत्-जीवन के जन्म-मरण का दुःख खोय कैं, अब लोक के शिखर जायवे कौं उद्यमी भया है। २। भरत चक्री का गृहपति-रत्न, तिसकूं ऐसा स्वप्न भया कि ऊर्द्धलोक तैं एक कल्पवृक्ष आया था, वह जीवन कौं मनवांछित फल देय कैं, पीछा स्वर्गलोक के शिखर जायगा। ३। चक्री का मुख्य मन्त्री, ताकौं ऐसा स्वप्न आया कि लोकन के भाग्य तैं एक रतन दीप आया था सो जिनकूं रतन लेवे की इच्छा थी तिनकूं अनेक रतन देय कैं, पीछे ऊर्ध्वलोक कौं, गमन करेगा। ४। भरत जी के सेनापति कौं ऐसा स्वप्न आया कि एक अनन्तवीर्य का धारी मृगराज, अद्भुत पराक्रमी, सो कैलाश पर्वत रूपी वज्र का पींजरा ताकौं छेद करि, ऊर्ध्व विषैं उछवले कौं उद्यमी भया है।५। जयकुमार जी का पुत्र अनन्तवीर्य, ताकौं ऐसा स्वप्न आया कि एक अद्भुत चन्द्रमा, अनन्तकला का धारी, जगत् विषैं उद्योत करि, तारानि सहित, ऊर्ध्वलोक कौं जायवे कौं उद्यमी भया है। ६। भरत चक्री की पटरानी सुभद्रा ताकूं ऐसा स्वप्न आया कि वृषभदेव की रानी यशस्वती अरु सुनन्दा ये दोऊ तथा इन्द्र की पटरानी शची—ए तीनों मिलकर बैठी, सोच करती हैं।७। काशी देश का राजा चित्रांगदत्तकों ऐसा स्वप्न आया जो अद्भुत तेज का धारी सूर्य, पृथ्वी विषैं उद्योत करि ऊर्ध्वलोक

कौं गया चाहै है।८। ऐसे आदिनाथ स्वामी के निर्वाण सूचक आठ स्वप्ने, आठ पुरुषन कौं आये। जिन स्वप्नों का स्मरण-पाठ किये, भव्यन का कल्याण हो है। ये श्री आदिदेव, पृथ्वी के आदि नायक भये। इनतैं ही धर्म की मर्यादा चली है। तातैं ये भगवान् सर्व जगत् के नायक हैं। सो नायक के तीन भेद हैं। सो ही बताइये हैं। तिनके नाम—देशनायक, घरनायक और मननायक। अब इनका अर्थ—जो देशनायक तौ राजा है। सो देश का राजा धर्मी होय, तौ देश के जीवन कूं धर्म-राह लगाय, धर्मी करै। देश में जो धर्मी दान, पूजा, शील, संयम, तप के धरनहारे, तिनकी रक्षा करै। जे अपने देश में पापी, अन्यायी, चोर, दुराचारी जीव होंय, तिनकूं दण्ड देय। सो तौ देशनायक धर्मात्मा कहिये जो देशनायक पापी होय तौ पाप कौं अपने देश में विस्तारै। चोर चुगल अन्याय पथ के चलनेहारे जीव तिनकी रक्षा करै। अरु ता देश में साधु पुरुष भले मार्ग के चलनेहारे तिनकूं पीड़ा होय। तातैं जैसा देशनायक होय तैसा ही देश में चलन प्रगटै। ये तौ देशनायक जानना। १। जो देशनायक पापी होय पाप बन्ध करै। ताकी तो सो ही जानैं। परन्तु देश में घर बहुत होय हैं। सो जा घर विषैं सर्व कूटुम्ब का रक्षक, जो सर्वकौं अन्न-वस्त्र देय सबकी रक्षा करै, सो घरनायक कहावै। सो घरनायक धर्मात्मा होय, तौ सर्व घरकौं धर्म रूप चलावै, सबका भला करै। घरनायक पापी होय तौ ताके घर-जन भी पाप रूप प्रवृत्तैं। ए घरनायक कह्या। २। घरनायक कदाचित् पापी होय तौ होऊ ताका फल वही भोगवेगा। परन्तु मननायक आत्मा है सो जाका आत्मा भली गति का जाननेहारा होय सो अपने मनकौं सदैव धर्म रूप राखै और जाका आत्मा पापी होय, सो अपने मनकौं आर्त्त-रौद्र रूप राखै। पाप बन्ध करि पर-भव बिगाड़ै है। ३। ऐसे ये नायक के तीन भेद कहे। सो देशनायक, घर-नायक तौ अपने पुण्य के प्रमाण रहना योग्य हैं और मननायक सदैव है, सो अपने मनकौं सदा-काल धर्म रूप राखना उचित है। इति नायक के तीन भेद। आगे अणुव्रती श्रावक के तीन भेद हैं। पाक्षिक, साधक और नैष्ठिक। अब इनका विशेष दिखाइये है। जे धर्मात्मा पुरुष राजादिक बड़े बल के धारी धर्म की रक्षा तथा धर्मी जीवन की रक्षा के करनेहारे, जिनके राज्य में धर्मात्मा जीवनकूं कोई पीड़ित नहीं करि सकै। महाधर्मात्मा, धर्म के पक्षी इन्हें पाक्षिक श्रावक कहिये। जैसे तीर्थङ्कर, चक्री, अर्द्ध-चक्री, कामदेव, प्रति-चक्री, बलभद्र, महा-

मराडलेश्वर, मराडलेश्वर इत्यादिक महान् राजा, पृथ्वी नाथ, दया मूर्ति, न्याय मार्गी, जिनके भय तैं कोई क्रूर जीव धर्मकूं धर्मी जीवनकूं सता नहीं सकैं। मुनि-श्रावकनकों कोई दुष्ट पीड़ा नहीं करि सकै। चैत्यालयन का वन में कोई अविनय नहीं करि सकै। ऐसा जिनका भय का कोई कुवादी झूठा नय-दृष्टान्त देय सत्य धर्म तैं झूठे धर्म की प्रवृत्ति चाहै तौ अपने ज्ञान के प्रकाश तैं, बुद्धि के बल तैं न्याय-मार्ग करि सर्व जगत् जीवन के कल्याराकूं कुधर्म उखाड़ि सुधर्म प्रवृत्ति राखै, सो पाक्षिक श्रावक है। इनके राज्य में पाप नहीं बधै। १। दूसरा साधक—जे धर्मातमा श्रावक जिनकौं धर्म साधन करते बहुत काल भया सो इन्द्रिय-भोगनतैं विरक्त होय, तिनके जीतव्य तै निस्पृह भया, अपना आयु-कर्म नजदीक जान कैं ये मोक्षाभिलाषी पर-भव सुधारवे कौं सर्व जीवन तैं क्षमा-भाव करि, अरु घर, धन, धान्य कुटुम्बादि स्व-पर जनतैं मोह-ममता भाव तजि अपनी कायतैं ममत्व छोड़ि, च्यारि प्रकार का आहार त्याग, पञ्च परमेष्ठी का स्मरण करता, तत्त्वन का विचार करता धर्म-ध्यान सहित सन्यास लेय, तिष्ट्या यति ऋषि होय। सो साधक जाति का श्रावक है।२। तीसरा भेद नैष्ठिक, ताके ग्यारह भेद हैं, सो बताइये है। प्रथम नाम—

गाथा—दंसण वय सामायो पोसय सचित्त रयण भख त्यागो। वंभारंभ हेय परिग्गह अणमत्त उदिट्ट त्याज सागारो ॥ १३७ ॥

अर्थ—दंसरा वय सामायो कहिये, दर्शन व्रत सामायिक। पोसय सचित्त रयरा भख त्यागो कहिये, प्रोषध सचित्त व रात्रि भोजन त्याग। बंभारंभ हेय परिग्गह कहिये, ब्रह्मचर्य, आरम्भ त्याग, परिग्रह त्याग। अरामत्त उदिट्ठ त्याज सागारो कहिये, अनुमति त्याग, उद्दिष्ट त्याग—ये ग्यारह भेद नैष्ठिक श्रावक के हैं। भावार्थ—ये ग्यारह प्रकार प्रतिज्ञा पञ्चम गुरास्थान धारी नैष्ठिक श्रावक की हैं। तहां जाके सम्यक्त्व को पच्चीस दोष नाहीं लागैं और सप्तव्यसन का त्याग, पञ्च उदम्बर, तीन मकार—इन आठ का त्याग सो अष्ट मूलगुरा हैं। सो इनके अतिचार रहित शुद्ध व्रत, सो प्रथम दर्शन-प्रतिज्ञा है। अब इनके अतिचार कौं बताइये हैं। सो प्रथम सम्यक्त्व के अतिचार कहिये हैं। सम्यक्त्व के आठ दोष, मद दोष आठ, अनायतन षट् और मूढ़ता तीन—इन पच्चीस के होते सम्यक्त्व मलिन हो है। सो इनका स्वरूप ऊपर कह आये हैं और द्यूत, माँस भक्षरा, सुरा पान, वेश्या गमन, शिकार, चोरी और पर-स्त्री सेवन—ये सात व्यसन हैं। सो जामैं आत्मा के भाव बहुत एकाग्र होय गमन

होना, सो व्यसन है। ताके सात भेद कहे। इनमें द्यूत, मांस, सुरापान, चोरी और शिकार—इन पांच व्यसन का पाप तौ लोभ कषायतैं होय है और वेश्या, परदारा—इन दो व्यसन का पाप काम-कषाय तैं होय है। ये व्यसन कषायन तैं होय हैं। सो कषाय बताइये हैं। हे भव्य! लोभ और काम—ये दोऊ कषाय सर्व पापन का बीज जानना। जगत् में जेते पाप हैं ते इन दोई कषायन तैं होंय हैं; ऐसा समझ लेना। इन लोभ अरु काम के वशि जीव, पिता पुत्रकौं मारै। पुत्र पिताकौं मारै। भाई, भाईकौं मारै। तातैं सर्व दुःख, संकट और अपयश का मूल ये कषाय हैं। देखो, काम के माहात्म्य तैं रावण मरा और लोभ तैं भरत चक्रवर्ती का मान भङ्ग भया इत्यादि अनेक स्थानन पै लगाय लेना। सो जेते पाप हैं तेते सर्व काम और लोभ तैं होय हैं। तातैं इन काम अरु लोभ तैं उपजे सात व्यसन सो ए भी महापाप का मूल हैं; ऐसा जानना। बड़ फल, पीपल फल, उदम्बर फल, कठूम्बर फल और पाकर फल—ये तो पञ्च उदम्बर हैं। मद्य, मांस, मदिरा—ये तीन मकार हैं। ये आठ हैं, सो इनके अतिचार सप्तव्यसन में गर्भित हैं, सो जान लेना। तिनका आगे कथन करेंगे। अब प्रथम ही द्यूत व्यसन के अतिचार कहिये हैं। तहां चौपड़ का खेल है, सो असत्य का मन्दिर कुफर का बोलनेहारा, द्यूत खेल है सतरञ्ज है सो ता विषैं ऐसे पाप वचन, मन का विकल्प रहै है जो राजा मारौं, हाथी मारौं, घोड़ा मारौं, ऊँट मारौं, वजीर मारौं, पयादा मारौं इत्यादिक मन-वचन-काय करि पंचेन्द्रिय के घात रूप भाव-चेष्टा करनहारा, सतरञ्ज जुआ है नरद का खेल है, सो दीर्घ द्यूत का कारण है। गंजफा का खेल है सो ता विषैं राज्य के राज्य हारिये है। महा-दगाबाजी के या खेल तैं कुभावना रहै है; ये भी द्यूत है मूठी जो आप दाव लगाय खेले, सो प्रत्यक्ष निन्दा का कारण द्यूत है। परस्पर होड़ लगाय के रमना, सो द्यूत है। मूठी भर के ऊँना-पूरा मांगना, सो द्यूत है। कौड़ी नभ (आकाश) में फैंक उल्टी-सूधी नाखि, हारि-जीत करना, सो भी द्यूत है। नव कंकरीन तैं चिरभरि (बग्घा) खेलना भी द्यूत है। षोड़श कांकरीन तैं राजा-रानी खेलना, सो द्यूत है। होड़ लगाय मुट्ठी तैं नारियल फोड़ना और हाथ तैं लाठी-लकड़ी तोड़ना, सो भी द्यूत खेल है और होड़ वदिकैं पाषाणादि भार उठाना, सो भी द्यूत है। भीती उछलनां, सो भी द्यूत है। कुंआ, बावड़ी दीवालादि पैंद लगाय कैं कूदना, सो जुआ है। होड़ लगाय मार्ग चलना-भागना, सो भी द्यूत है। दूसरों को खेलते देखना, सो भी द्यूत सम पाप है। द्यूत कार्यन तैं व्यापार

करना, सो द्यूत-सा पाप है। ज्वारी पैं तैं जीत लेना, सो द्यूत सम पाप है। द्यूतकार की वस्तु सस्ती देख लेना। इन आदि क्रियान में द्यूत समान पाप उपजै है। ज्वारी की वस्तु गहना राखि, बहुत व्याज लेना और भी जो द्यूत समान पाप की करनहारी क्रिया, सो विवेकीन कों तजना योग्य है। द्यूतकारन का संग ही सर्व प्रकार पापकारी है। विष व शस्त्र तैं घात भला, सर्प के मुख में हस्त देना भला, परन्तु द्यूत-संगति भली नाहीं। कैसी है द्यूत संगति? जातैं प्रतीत जाय, धन जाय, लोक विषैं अनादर होय, बड़प्पन नाश होय, अगला किया पुण्य नाश होय। तातैं हे भव्य! ये द्यूत-संग भला नाहीं, तजना ही योग्य है। इस द्यूत के रमने तैं लोक, चोर-ज्वारी कहैं। तातैं ये द्यूत, सर्वथा अपयश की मूर्ति-खानि ही जान, इसका निवारना भला है। ये द्यूत, सर्व पापन का गुरु है। याके फल आत्मा नरक दुःख कौं पावै, घने कहने करि कहा—तब यहां कोई विवेकी द्यूतकार प्रश्न करता भया। जो द्यूत कार्य और तौ हमने भी बुरे जानै, परन्तु चौपड़ कूं जुआ में कही, सो इसमें कहा पाप है? ताका समाधन—जो हे भव्य! एक तौ चौपड़, झूठ वचनन की खानि है। कुफर-लज्ञा रहित वचन यामैं बहुत होंय हैं। मुख तैं मार ही मार शब्द निकसै। चित्त दगारूप रहै। चोर समान प्रवृत्तै। तातैं इन आदिक बड़े पाप यां चौपड़ में हैं। तातैं तजने योग्य कही है। तब द्यूतकार फेरि प्रश्न करता भया जो चौपड़ हमने बुरी जानी। परन्तु सतरञ्ज में पाप कहा है? सो कहो। तामें मौन सहित, वचन रहित, नेत्रन तैं देखना हो है। सो पाप कैसे है? ताका समाधान—जो हे भ्रात! सतरञ्ज विषैं चौपड़ तैं विशेष पाप है। सो तैं सुनि। या विषैं परिणति अरु वचन तौ रौद्र-भाव रूप रहैं हैं। ऐसे भाव रहैं हैं, जो बादशाह तैं वजीर जीतौं। हस्ती तैं, घोटक मारौं इत्यादिक पंचेन्द्रिय घातक भाव रहैं हैं तिनही के मारवे का विकल्प रहै है सो ऐसे भावन मैं तौ नरक जाय। तातैं विवेकीन कों सतरञ्ज तजना ही योग्य है। तब फेरि भी द्यूतकार ने प्रश्न किया। जो सतरञ्ज पापकारी है, सो हमें भासी। परन्तु गंजफा में कहा पाप? सो कहो। ताका समाधान—जो हे भाई! तू विचार। जो कोई दोय कौड़ी हारै, तो लोक कहैं, यह बड़ा ज्वारी है। वाकों भी चिन्ता होय, जो मैं हारया हों। ताके भी योग तैं जगत् में अपयश पावै तो हे भाई! जो गंजफा के खेल में राज्य के राज्य हारै, ताकी चिन्ता अरु पाप की कहा कहानी? जहां अशर्फी हारया, रुपया हारया, तरवार हारया, बगीचे हारया, स्त्री हारया, गुलाम हारया,

सिर का ताज हारऱ्या इत्यादिक सर्व घर का सरंजाम स्त्री-वाहनादि धन हारे। ताके दुःख की-पाप की कथा, कहांताईं कहिये ! तातैं कुगति दुख तैं डरि, गंजफा भी तजना योग्य है। तब द्यूतकारने कही। गंजफा भी पाप रूप है, सो हमने जान्या। परन्तु अल्प से धन से मूठि-दाव विषैं खेलना, यामैं कहा पाप ? सो कहो ? ताका समाधान-जो हे भव्य ! मूठीका खेल है सो लौकिकमैं लुच्चेनका है सो प्रथम तौ जो देखै, सो लुच्चा कहै। चोर-ज्वारी कहै। हारै, तौ चोरी करनेका उपाई होय। तातैं हे भव्य ! ऐसे भावनमैं बड़ा पाप होय। यामैं ऐता पाप लेके, अपयश लेके खेलिये, सो बड़ाई कहा ? सो विचार देखो। इस भव निन्दा, अरु पर-भव दुर्गतिके दुख होंय। तातैं तजना ही योग्य है। तब द्यूतकार बोल्या। जो जुवा तौ पाप-मयी जान, मैंने तजा। परन्तु व्याजके निमित्त द्यूतवारेन कूं कर्ज देना, यामैं पाप कहा ? ताका समाधान-जो हे भव्यात्मा ! जुआका धन ही महा पापकारी है। जैसा पाप, द्यूत रमनेमैं होय। तैसा ही पाप, ताके धन लेनेमैं होय है। तातैं मन, वचन, काय करि तजना योग्य है। तब द्यूतकारका चित्त द्यूतमैं पाप जानि, शंका कौं प्राप्त भया-डरऱ्या। तब फेरि प्रश्न किया जो जुआमैं तौ पाप है, सो हमने तजा। परन्तु जीते पै लेंय, तामैं तौ पाप नाहीं है ? ताका समाधान-जो हे भाई ! आपकी देनेहारा होय, ताकी तौ जीत चाहै। आप कौं नहीं देय, ताकी हार चाहै। ऐसे परकी हार-जीत रूप परिणाम राखै। सो अल्प भोगके योगके निमित्त तैं पराया बुरा चाहै। सो पापी ही जानना। तातैं जीते पै द्रव्य लेना, योग्य नाहीं। तब द्यूतकार कही, द्यूतकी जीतका माल भी नहीं लेंय। परन्तु हमारे घर विषैं ठाम बहुत है, सो रात्रि कौं बैठने कौं जगह देय, भाड़ा प्रमाण, जीते पै द्रव्य लेंय, तौ कहा दोष ? सो कहो। ताका समाधान-हे भाई, द्यूतकार कौं घर ल्याय जुवा खिलावै। सो तो प्रत्यक्ष पाप है। तिनका सहाई होय जुवा रमावै, सो द्यूत कैसा पाप पावै है। हे भव्य, जाका संग किये ही पाप लागै। तौ घर ल्याये, मंगल कहां तैं होय ? तातैं घर ल्याय, सहाय करि द्यूत रमावना, योग्य नाहीं। तब द्यूतकार ने कहीं, घर ल्याये भी पाप है, सो जान्या। सो नहीं ल्यावै। परन्तु हमारी देखनेकी अभिलाषा रह्या करै है, सो देखनेमैं पाप कहा ? ताका समाधान-हे भाई ! देखनेमैं पाप बहुत है। खेलनहारेका तौ घर-धन लागै है। सो तो व्यसनी होय, लज्जा छोड़ि, जग-निन्दा अङ्गीकार करि, द्यूत खेलना शुरू किया। सो तो लोभके योग तैं, ताकौं तौ अर्थ-पाप लागै है।

देखनेहारेका आवना-जावना तो कछु भी नाहीं। अरु वृथा ही बिना प्रयोजन' पाप विषै काल लगावै। सो याकों अनर्थदण्ड-पाप होय है। सो अर्थ-पाप तैं अनर्थ-पापका फल' विशेष दुखदाई जानना। ऐसा जानि, द्यूत देखना भी तजना योग्य है। तातैं द्यूत देखना' द्यूतखेलना, द्यूतका ब्याज लेना इत्यादिक द्यूतकैं सर्व कार्य, पापके दाता हैं। हे भव्य ! ये द्यूत, सर्व पापका राजा है। निन्दा-अपयशका समूह है। याकै रमैं' निरादर होय है। द्यूत कोई प्रकार भला नाहीं। आगे पाण्डव-युधिष्ठिर ने द्यूतक्रीड़ा करी। ताके फल राज्य गया। वनवास रहे। दुख पाया। अपयश बधा। औरों ने भी जगत विषैं प्रगट देखा, जो द्यूतकारकी महिमा नहीं, निन्दा हो हो है। तातें हे भव्य हो, तुम अपने विवेक तैं विचार देखो। जो द्यूत खेल तैं यश होय, पुण्य होय, तौ करौ। नहीं तो तत्क्षण ही तजौ, बहुत कहने करि कहा। ऐसा जानि, धर्मात्मा सम्यग्दृष्टी श्रावकन कौं ये जुवाका-व्यसन अतिचार सहित तजना योग्य है। इति द्यूत व्यसन। आगे आमिष व्यसन कहिये है—हे भव्य, ये आमिष है सो जीव-हिंसा तैं तौ उपजै है। फिर मृतक-जीवनका कलेवर है। महा ग्लानिका पिंड है। जिसके देखते ही चित्त मुरझाय जाय। और सात धातुनका निषिद्ध मैल है। ताकौं खानेहारे किस तरह खांय हैं ? हे भव्यो, देखो जो कानका मैल, नाक व मुखका मैल लग जाय तो जल लेय, मिट्टी तैं धोय, शुद्ध करैं। तो भी घिन नहीं जाय है। सो ये तो मृतक पशुका मल-आमिष खांय हैं। ऐसो मलिन वस्तु, ऊंच-बुद्धि नहीं लेय हैं। जो आमिष खानेहारे हिंसक जीव हैं। सो बताइये हैं-सिंह, स्याल, मार्जार, सुअर, श्वान, चीता, काक, चील्ह, बाज, बिषमरा, सर्प, सीगोस इत्यादिक दुष्ट जीव हैं, ते मांस खांय हैं। मनुष्य होय, ऐसी मलिन वस्तु छीवने योग्य भी नाहीं। सो कैसे खांय हैं ? और कदाचित् मनुष्य होय, मांस खांय हैं। तो भील, चांडाल, कसायी, कोली, चमार इत्यादिक नीच कुलके उपजे, अस्पर्श-शुद्ध ही मांस खांय हैं। तिनमैं भी केतेक उज्ज्वल-बुद्धि, पाप तैं डरनेहारे, कोमल परिणामी शूद्र भी, प्रभु कौं भजैं हैं। तिलक-छापे करैं हैं। ते आमिष नहीं खांय हैं। अशुचि-बुद्धि निर्दयी खांय हैं। सो भी कहा जानैं, ऐसी दुर्गंधित-वस्तु कैसे खांय हैं ? कैसा है आमिष पिंड, ग्लानिकारी है। जिसकी बिना गंध लिये, देखै हि चित्त दुखी होय, सो खांय कैसे ? सो ताकी तेही जानैं। परन्तु ऐसा अशुचि मांस-पिंड खावना, नीच-कुलीका प्रगट चिन्ह है। और जे ऊंचकुलके उपज क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, ये उत्तम

वंशके हैं। सो इन वंशोंके उपजे भव्यात्मा, उज्ज्वल आचारी हैं। सो आमिष कौं छीवैं भी नाहीं हैं। जो दयावान पुरुष हैं सो तौ ऐसी वस्तु देखते ही भागैं हैं तथा जे भव्यात्मा आमिष त्यागी हैं; सो अपने व्रत की रक्षा कौं ऐती वस्तु नहीं खांय हैं; जिनके खाये मांस का दोष लागैं। त्रस जीवन के कलेवर का नाम मांस है। तातैं जा वस्तु मैं त्रस जीव उपजैं तथा जो त्रस का कलेवर होय, सो वस्तु आमिष त्यागी नहीं खांय हैं। सो जहां-जहां त्रस उपजैं तथा त्रस का कलेवर है; तेते स्थान बताइये हैं। सो अनगाल्या जलमैं, दुहे पीछे दोय घड़ी उपरान्त के कच्चे दूध विषैं और मर्यादा पूर्ण हुए आटे विषैं, इनमैं त्रस जीवन की उत्पत्ति है। सो आमिष त्यागी, ये तीन वस्तु नहीं खांय और चर्म का तेल-घृत-जल इन आदि और रस जाति वस्तु, त्रस जीव का उत्पत्ति का स्थान है तथा रात्रि का पीसा आटा, अन बीन्धा अन्न, फफूंड़ी वस्तु, रात्रि की पकायी हल्वाई के घर की वनी वस्तु, दूकानदार की दूकान-बिकता आटा, हींग मधु इत्यादि वस्तु, आमिष त्यागी नहीं खांय और ओला, घोरबरा, निशि भोजन, बैंगन, बहु बीजा, संधाणा, बड़ फल, पीपल फल, उदम्बर फल, कठूम्बर फल, पाकर फल, कन्दमूल, मिट्टी विष, आमिष, मधु, मक्खन, मदिरा, तुच्छ फल, अचार, चलित रस और अजान फल। ये वाईस अभक्ष आदि वस्तु आमिष त्यागी नहीं खांय और रात्रि बसी कांजी और गुड़ दही मिलाय कैं व द्विदल दाल दही तैं मिलाय नहीं खांय। साधारण फल-फूल-बौंड़ी ये वस्तु आमिष त्यागी नहीं खांय और जे अभक्ष्य, इस विवेकी के ज्ञान मैं आवैं, सो अपने व्रत की रक्षा के निमित्त अतिचार जानि, नाहीं खाय। ये आमिष व्यसन महापाप का स्थान जानना और भी देखो। मांस भक्षी कौं संसार निन्दै है और केतेक महाजिह्वा लोलुपी जिनके कुल में मांस नहीं लेंय। सो जीव, मांस की नकल की तरकारी बनाय खावैं हैं। तिनकौं भी आमिष खाये का सा दोष लागै है। मांस भक्षीकौं नरक मैं ताका तन काटि ताही कौं खुवावैं हैं तातैं आमिष कौं विवेकी नहीं तौ खांय, नहीं खाते देख अनुमोदना करैं, नहीं अपने व्रतकौं अतीचार लगावैं। सो आमिष-त्याग व्रत जानना। इति आमिष व्यसन। २। आगे सुरापान व्यसन लिखिये है। जो मन-वचन-काय करि सुरापान मैं रत होय ताकौं मदिरा व्यसन कहिये है। सो जे विवेक के धारी व यश के लोभी हैं ते या व्यसनकौं तजैं हैं और जे लज्जा रहित अज्ञानी, नीच कुली पुरुष हो हैं; ते सुरापान को लेंय हैं। ये व्यसनी महामूरख दामकूं खोय निन्दा उपार्जे हैं।

इस मदिरापान के करनहारे जीव महाकठोर परिणामी होय हैं। अनेक वस्तु मिलाय, तिन सर्वकौं कूटि एक जल कुण्ड में डालि सड़ावैं हैं। ता विषैं कुछ दिनमैं कीटि पड़ि चलैं हैं। जल मैं दुर्गन्ध चलै, तब उस जलकूं सर्व जीवों सहित यन्त्र में डालि, अग्नि पै चढ़ाय ताका अर्क काढ़ैं। ऐसी जो मदिरा, ताकौं विवेकी, उत्तम आचारी, शुभ कुली नहीं खांय हैं। जाके पिये बुद्धि जाय, वचन प्रतीति जाय, लोक जो देखें सो धिक्कारें। जो ऐसा जानि कं भी मदिरा नहीं तजैं तिनकी समभिकौं विवेकी निन्दैं हैं ! मद्यपायी, पाप के योग तैं नरक जाय है। तहां ताका मुख चीरि, ताती-ताती धातु गालि, ताकौं पियावैं हैं। यहां प्रश्न—नरक में धातु कहां है ? ताका समाधान—वहां धातु तो नाहीं; परन्तु जीवन के पाप करि, तहां के पुद्गल परमाणु गलि, धातु तैं ही असंख्यात गुणी अधिक उष्णता रूप, धातु के आकार होय हैं। सो धातु पिवायकैं ते नारकी मद्यपायी कौं पाप याद करावैं हैं कि जो पर-भव मैं तैंने सुरापान किया सो ताका फल इस लोक मैं ऐसा होय है और इस मदिरापायीकै बुद्धि का अभाव होय है। मद्यपायी के वचन की प्रतीति नाहीं। मद्यपायीकैं पुरुषार्थ का अभाव होय है। यह पग-पगपै मूर्च्छा खाय पड़ै है। मद्यपायी का किया धर्म, विफल होय है। शीश तैं पगड़ी पड़ै। वस्त्र फटैं। मर्यादा रहित मुख आवै सो बकै। माता, स्त्री, भगिनी, पुत्री का ज्ञान नाहीं सर्वकौं एक-सा देखै। खाद्य-अखाद्य का ज्ञान रहित होय इत्यादिक पाप व निन्दा का स्थान मदिरा, ताका त्याग करना योग्य है और जिनतैं अपने व्रतकों अतीचार लागै सो भी तजना योग्य है। सो दारू के अतीचार कहिये है। भांग, तमाखू, गांजा, चरस, पाकादिक विषय-पोषण के निमित्त वस्तु का खावना। सो दारू का-सा दोष है और खम्मीर राखो वस्तु जौ की जलेबी, अनगाले जल का मही और जे बहुत दिन की रस-वस्तु होय, सो खाये तैं मदिरा समान दोषकूं उपजावै है और अर्क, गुलाब जल, ये मदिरा सम हिंसा उपजावै है और सिंगिया विष, सौंठिया विष, हल्दिया विष, सौमला खार इत्यादिक विष जाति मदिरा सम दोष उपजावै है और कोई कूं मदिरा पीयवे की इच्छा होय, तो इहां मद्य कूं देख लेवे। पीछे कछू बड़ाई होय तो पीवना। हे भव्य ! कोई नेत्र रहित अन्ध होय है। परन्तु मद्यपायी है सो नेत्र सहित अन्ध है मद्यपायी कूं सर्व ऐसा कहैं हैं कि यह खप्त है। मद्यपायी की करी धर्म-क्रिया विफल होय है। कै तौ मद पीवनेहारा खप्त कहावै कै वायु-सन्निपात रोग सहित बोलनेहारा खप्त कहावै तथा हौल-दिल होय

गया होय, सो स्वप्न कहावै। तीनों एकसे हैं। इनकौं दिवाने कहिये, बेसुध कहिये इत्यादिक मद्य लेने में जगत् निन्दा होय, घर धन जाय, सो प्रसिद्ध है। और देखो, जो दारू पीयकैं कोईने यश पाया होय, तौ बताओ। देखो, यादव-सुतौंने धोखे तैं मद पीया सौ सर्व कुल सहित द्वारका का नाश भया। तातैं हे भाई! तेरे घरमैं धन दाम वहुत होय तो जलमैं डारि दे। परन्तु व्यसन विषैं मत लगावौ। हे भव्य, दारू तैं दावानल भली है। अग्नि प्रवेश भला है। तन विषैं पीड़ा भई भली है। इत्यादिक दुखन तैं एक एक भव विषैं दुख होय है और दारू तैं अनेक भवोंमैं दुख होय है। तातै दारू तैं, हलाहल विष भला है, परन्तु दारू व्यसन भला नाहीं। तातैं अनेक प्रकार पापकारी जानि, धर्मार्थी श्रावककौं अपने व्रतकी रक्षा कौं, अतिचार सहित दारू व्यसनका त्याग करना योग्य है। इति दारू व्यसन। ३। आगे वेश्या व्यसन कहिये है। कैसी है यह वेश्या, जाके चित्त करि मोह्या गया है कामी पुरुषनका मन सो ताकैं सदैव धर्मका अभाव है। जो परके पासका दाम लेय, व्यभिचार क्रिया रूप प्रवृत्तै, सो ताकूं वेश्या कहिये। याकी संगति तैं, चित्त विकल होय है। या वेश्याके काहू तैं स्नेह नाहीं, एक द्रव्य तैं स्नेह है। जो कोई महा नीच-कुली होय, अरु ताके पास धन होय, तौ वेश्या तातैं संगम करै। ग्लानि नाहीं करै। जाका तन विरूप होय, बुद्धि-हीन होय, रूप हीन होय, अरु तापै द्रव्य होय, तो वेश्या ताका आदर करै, तातैं स्नेह करै। महा बुद्धिमान् होय, कामदेव समान रूपका धारी होय, पराये मनका मोहनेहारा होय, ऊंच कुली-वड़े वंशका होय इत्यादिक गुण सहित, शुभ-लक्षणी होय, अरु कदाचित् धन रहित होय, तो वेश्याके घर जाय आदर नहीं पावै। धन रहित पुरुष तैं वेश्या स्नेह नाहीं करै। याकें धन मित्र है, और नाहीं। तातैं वेश्याका नाम धन-मित्रा भी कहिये है। कैसी है यह वेश्या, जो याका तन भूमिके मार्ग समान है। जैसे मार्ग पै नीच-ऊंच सर्वही चलैं हैं, तैसेही वेश्याका तन है। याके तन पर भी नीच-ऊंच सभी जांय। यह वेश्या, महा लोभकी खानि है। धनके निमित्त अपना तन बैंचै है। महा निर्लज्ज है। निर्लज्ज पुरुषोंके भोगका स्थान है। जूंठी पातल समान है। जैसे काहूने जूंठी पातल फैंकी। ताकै ऊपर अनेक श्वान चाटवेकूं आवैं हैं। तैसे ही काहूंकी भोग-नाखी वेश्या रूपी जूंठी पातल, ताके ऊपर अनेक व्यसनी श्वान आवैं हैं। जगत निन्द्य है। तातैं वेश्याके सर्व चिन्ह पापकारीं जानि, बुद्धिमान कूं तजना योग्य है। और ये वेश्या, शील वृक्षके छेदवेकूं कुठार समान है। याका संग

किये, धर्म साधन किया था ताका फल नाश होय है। तातें विवेकी-धर्मात्मा पुरुषनकौं वेश्या-संगति तजना योग्य है और जिन-जिन कार्यन में वेश्या संग किये का-सा दोष होय, सो भी कार्य, व्रत के रक्षक धर्मी-पुरुष तजैं हैं। सो ही बताइये है। जाके वेश्या व्यसन का त्याग होय, सो एती जायगा नाहीं जाय। अरु कदाचित् जाय, तौ अपने व्रतकौं अतिचार लागे। जहां वेश्या का स्थान होय, तहां नहीं जावै और जहां वेश्या-कञ्चनी का नृत्य, गान, वादित्र होय, तहां नहीं जाय और वेश्यातैं वाणिज्य नाहां करै और वेश्या के मुहल्ले जाय वसना नाहीं और वेश्या तैं हाँसि, कौतुक, वचनालाप नहीं करै इत्यादिक कहे जो कार्य, सो व्यसन समान पाप उपजावै हैं और वेश्याके तनकौं नहीं निरखै और वेश्याके हाव-भाव नहीं देखै। ताके गान, रूप, वादित्र नृत्यादिक नाहीं सुनै-देखै। आगे तिनकी प्रशंसा अनुमोदना नाहीं करै। बार-बार वेश्या के गुणन की कथा नाहीं करै। ताकी कथा औरनतैं सुनि, हर्ष नाहीं करै। वेश्या का सत्कार नाहीं करै ताके संगी-कुटुम्बीन तैं हित भाव नाहीं करै। इत्यादिक वेश्या सेवन के दोष हैं। सो सर्व का त्याग करतैं ही अपने व्रत की रक्षा हो है। हे भव्य! वेश्या के संग विषैं गुण नाहीं। याके संग तैं लोकन में अपयश निन्दा होय है। वेश्या का संग, चोरटे पराये धन के हरनहारे करैं हैं तथा जे लुच्चे, जुवारी आदि निर्लज्ज पुरुष हैं ते वेश्या के घर जांय हैं तथा कुलहीन पुरुष ही वेश्या का संग करैं हैं तथा जाके आगे-पीछे कोई कुटुम्ब नाहीं, सो वेश्या गमन करै है। देखो, आगे चारुदत्त सेठ पुत्र ने वेश्या का संग किया था। सो वेश्या ने ताका सर्व घर धन लेय, पीछे उसे दुर्गन्ध भरी छारछोवी (पाखाना) मैं डाल दिया। सो नरक समान दुःख, इहां ही भोगता भया। जगत्-बिछौना समान, वेश्या जानना। याका तन सर्व जन नीच-ऊँच स्पर्शैं हैं। वेश्या के संग तैं, शील का अभाव होय है। ताका फ़ल, दुर्गति होय है। ये वेश्या महादगाबाजी की मूर्ति है। अरु ऐसे ही महानिर्लज्ज दगाबाजी की खानि, दुर्बुद्धि पुरुष ताका संग करैं हैं। अहो भव्य! सिंह की गुफा मैं जाना तो भला है; परन्तु वेश्या का संग भला नाहीं। तातैं हे भव्य! घनी कहने करि कहा—वेश्या का संग तजना ही भला है। इस वेश्या व्यसनी कौं चोर, लुच्चे, वेश्या के गमनी भला कहैं हैं। तब यह मूर्ख अपनी प्रशंसा सुनि, प्रफुल्लित होय हैं और जब विवेकी, ऊँच-कुली, पण्डितन में जाय है तब उसे अधोमुख होना पड़ै है। अपने भले कुल में कलंक चढ़ावै है या वेश्या के संग तैं सर्व प्रकार कुकीर्ति की

बेलि जगत मण्डल में पसरै है। जिनने वेश्या का संग किया ते प्राणी अपना पाया भव हारते भये। वेश्या के संग तैं खाद्य-अखाद्य का विवेक नाहीं रहै है। अभक्ष्य भोजन करै। लज्जा रहित वचन कहै। वेश्या का संग करनहारा जीव देव-गुरु-धर्म की आज्ञा ऐसे लोपै है; जैसे—मदोन्मत्त हस्ती अंकुशकों लोपै। वेश्या व्यसनी, माता-पितादि गुरुजन की आज्ञातैं प्रतिकूल होय है। कोई तौ नेत्र रहित अन्ध होय है। परन्तु वेश्या व्यसनी कर अन्ध है इत्यादिक अनेक दोष सहित वेश्या व्यसन है। सो विवेकी धर्मात्मानकूं अपने व्रत की रक्षाकूं अतीचार सहित वेश्या-व्यसन तजना योग्य है। इति वेश्या-व्यसन। ४। आगे पारधी व्यसन लिखिये है यह व्यसन, निर्दय चित्त के धारी जीवों का है। जे नीच-कुल के उपजे, तिनतैं ऐसा अन्याय बनैं है। ऊँच-कुली, दयावान, शुभाचारी, सत्-पुरुषन तैं, पर-जीव-घात नाहीं बनै है। यह बड़ा आश्चर्य है कि लोक में तौ पराये परणाम खुशी करवे कों, भला खान-पान दीजिये है। भूखे पशुन कौं घास डालि, सुखी कीजिये है। आये का सत्कार कीजिये है। कोई अपने घर मंगता-रङ्क आवै तो ताकी दया करि, दीननकौं भोजन-दान दीजिये है। परतैं मिष्ट वचन बोलि, ताका यथायोग्य विनय करि, ताकौं साता कीजिये है इत्यादिक क्रिया करि, जैसे बनै तैसे यश के निमित्त तथा पुण्य के निमित्त भला-भला कार्य करि और जीवनकौं सुखी करैं हैं। सो जगत् में जिनकी ऐसी उज्ज्वल प्रवृत्ति, दया सहित देखिये है, वे ही सुबुद्धि जीव जानि-पूछिकैं पर-जीव दीन-पशु तिनके तन विषैं शस्त्र मारि, तिनकौं हतैं। सो ये बड़ा आश्चर्य है। ऐसे सुज्ञानी जीवन के भाव ऐसे कठोर कैसे हो जाँय हैं? सो उन पशून् के ही पाप का उदय है कि जो सज्जन सदाव्रत देय, शीत में वस्त्र देय दीनन की रक्षा करैं। वे ही पुरुष जब पशूनकै शस्त्र-तीर-गोली मारैं हैं तब तिनकौं दया नहीं आवै। ऐसे बड़े आदमी, बुद्धिमान, दयावान, धर्म निमित्त धन के लगावनहारे, ते पर-प्राण का घात कैसे करैं हैं? तातैं ऐसा जानना, जाकैं पर-प्राण-पीड़ितैं, दया नाहीं होय, सो दया रहित भावन का धारी, शिकारी कहिये। अपने पुत्र पालवे कौं, पराये पुत्र हतैं उसे पारधी कहिये। ते जीव पाप के अधिकारी होय, नरक के पात्र होय हैं। अपनी जिह्वा-इन्द्रिय पोषवे कौं तथा अपनी भूख मिटावने कौं, पराये पुत्र दीन-पशूनकौं हतैं हैं, दया रहित पारधी जानना। कैसे हैं वन-जीव? महादीन हैं। महाभयवान हैं। कोई तैं

श्री सुदृष्टि

तिनका द्वेष नाहीं। वन का घास-तृण चुगकै, अपने तन की रक्षा करैं हैं। ऐसे दीन-निर्दोष पशूनकौं जो शस्त्र मारै, सो महाकठोर चित्त का धारी निर्दयी है। वन के पशु भोले, अज्ञान, असहाय, तिनकूं केई पापाचारी छल-बल करि मारैं हैं, सो बड़ा पाप-भार बांधैं हैं। सो ये पाप कब कटैगा? केई ज्ञान रहित, दया रहित नीच-कुली ऐसा कहैं हैं कि यह हमारा धर्म है। केई कहैं हैं कि यह हमारा किसब (व्यापार) है। सो ऐसे जीव कसाई हैं जे जीव हतैं ते चाण्डाल हैं। उनके घर में, धर्म का अभाव है जीव-घात करनेहारे प्राणी, खटीक समानि हैं। तिन जीव-घाती जीवन का मुख देखे, पाप लागै है। जे भले कुल के उपजे हैं, ते पर-जीवन कौं नहीं घातैं हैं। जो पर-जीव घातैं सो हीन-कुली समझना। पर-जीवन के प्राण राखैं सो ऊँच-कुली हैं। भीलादिक वनचर हैं, सो वनचर जीवन कौं मारैं हैं। उत्तम प्राणी, पर-घात नाहीं करैं। जे दयावान हैं, वे ऐसा विचारैं कि हाय! बिना दोष पर-जीव कैसे घातैं हैं? ये विचारे दीन, वन के प्राणी, काहू के घर जाय सतावते नाहीं। काहूपै कछु मांगते नाहीं। काहू का खेत नाहीं खून्दते। किसी का फल नहीं खावते। वन के तृण वन-फल, घास, पत्र तो ये खांय हैं। नदी-तलावन का जल पीवते हैं नहीं मिलै, तो क्षुधा सहित भूखे ही पड़ि रहैं हैं। नहीं काहू तैं लड़ै, नहीं काहू पै कोप करैं। ऐसे दीन पशूनकौं जे मारैं, ते शठ अपना पर-भव बिगाड़ैं हैं। सर्व जीवन मैं पापी तौ सिंह है। ऐसे पापी सिंहकौं मारिकैं अपनी शूरता मानैं, सो याहू तैं पापी हैं और केई वन के सुअरन कों मारैं हैं और कहैं हैं कि हम शूर हैं ते शूर नाहीं पारधी हैं। हिरन, खरगोश, स्याल इनकों मारैं ते श्वान हैं और भवांतर में श्वान ही उपजैं हैं और चिड़िया, कबूतर, मोर, तीतर, बाज, मछली, मगर इन आदि पक्षी तथा जलचर जीवन कौं मारैं सो खेटकी हैं। ये पर-जीवन के हतनहारे निर्दय परिणामी निश्चय तैं नरकादि गति के पात्र जानहु। तातैं जे विवेकी-दयावान जीव-घात नाहीं करैं उत्तम परिणाम के धारी हैं। ते भव्य येते काम और भी नाहीं करैं। सो कहिये हैं। जे दयावान होंय सो तीर, गोली, गिलोल, कृपाण, बन्दूक, कटार, छुरी, तलवार इत्यादिक शस्त्र नहीं राखैं। शस्त्र तैं मारूँगा, ऐसा वचन नाहीं कहैं और फन्दा-फाँसी-पींजरा ये नाहीं बनावैं नाहीं राखैं। बड़ थूहरि आक के दूध तैं चेंप बनाय पंखी नाहीं पकड़ै। लाठी व लात तैं नाहीं मारैं। जाल नाहीं बनावैं नाहीं राखें; नाहीं बेचैं। इत्यादिक हिंसाकारी वस्तून का व्यापार नाहीं करैं और जे तीर, बन्दूक, तोप,

तरंगिणी

हँसिया इनके बनाने वालों तैं भी लेन-देन नाहीं करैं। और भूमिके खोदनेहारे, ताल-नदी-बावड़ी-कूप इनमें जल काढ़ने व फोड़नेहारेन तैं भी लेन-देन नाहीं करैं। और जामैं बहुत जल बिलोलना पड़ै, बहुत नीर ढोलना पड़ै बहुत अग्नि जलाना पड़ै तथा जो नील-आलका काम करैं, उनके साथ भी लेन-देन नाहीं करैं। इत्यादिक सब खेटक-हिंसाका दोष करैं हैं इनका पैसा घरमैं आये, खेटकका सा दोष उपजावै। और अन्न, तिल, जीरा, धना, सौंठि, हल्दी, इन आदि काष्ठानिक किरानों तथा रेशम सन, चाम, हाड़, केश, सींग, शहद इनकी भड़शाला (दूकान) नाहीं करैं। तथा शीशा, शोरा इत्यादिक हिंसक व्यापार नाहीं करैं। इनमैं खेटक समान दोष जानि, दयामूर्ति ऐसा व्यापार नाहीं करैं। और काष्ठ-पाषाण चित्रामकी पुतलीं तथा देव-मनुष्य-पशुकी स्थापनाका आकार बिगाड़ै, तो खेटक समान दोष होय। और सतरंज मैं नाम-निक्षेपके धारी जीव-हस्ती, घोटक मनुष्य राजादिक ताके हारे-जीते, खेटक समान दोष होय। तातैं धर्मात्मा सतरंज तैं नाहीं खेलैं। और वन मैं, घर में अग्नि लगाये खेटक समान दोष है। तथा परजीवकौं भयकारी मार-मार शब्द नाहीं कहैं। और वृक्ष, बेल, घास, झाड़ी नहीं छेदैं। वस्त्र धूप विषैं नाहीं नाखैं। चोपट राह में खटमलनकी खाट नाहीं झाड़ैं। पर—जीवन कूं शोक नहीं करावैं और मर्यादा तैं अभिक भार, जीवन पै नाहीं लादैं। भाड़ा किया होय तो वाहन पै छिपायकैं अधिक भार नहीं धरैं। इत्यादिक कहे कार्य धर्मात्मा—दयावान् अपने व्रतका लोभी अपने व्रतकी रक्षाकौं ये पाप नहीं करै। और जुआ लीख दयावान् नहीं मारैं। सर्व जीव आप समान जानि सर्वकी रक्षा करैं। और जे दया रहित दुर्गति-गामी अज्ञानी जीव परकौं शस्त्र मारते दया नहीं करैं। अरु अपने तनमैं तनिकसा काटा लगै तौ कायर होय दुख मानैं। सो ये कठोर बुद्धि परकैं शस्त्र कैसे मारैं हैं? आप तनकसा भय सुनै तौ छिपता फिरै भय करि कंपायमान होय। अरु पापी जन दीन-पशूनपै नग्न शस्त्र चलावतैं नहीं कंपैं हैं। सो ताकैं खेटक-व्यसन कहिये। देखो जब आप रणमैं जाय तौ अपने तनकी रक्षाकों वखतर पहिनै। शिरपे टोप धरै। आगे उरस्थलमैं आड़ी ढाल धरै। तौ भी पापी-कायर चित्तका धारी डरता-डरता जाय है। ताकूं दीन पशूनके तनमैं निशंक वनमैं फिरते दीन जींवन कूं दगा करि जालमैं पकड़ि शस्त्र मारते दया नहीं आवैं।

सो जीव दुर्गति-गामी पारधी जानना। ऐसे प्राणीनकौं तीन लोकमें सुख नाहीं। ये खेटकका व्यसन पाप है। ये पाप भव भवमें खेटक करै। महा दुख उपजावै। तातैं विवेकी धर्मात्मा, आप समान सर्व जीवनकूं जान, सर्व जीवनकी रक्षा करैं सो खेटक व्यसनका त्यागी कहिये। इति खेटक व्यसन। ५। आगे चोरी व्यसन कहिये है। जे जीव बिना दिया, परका पदार्थ नहीं लेंय सो चोरी व्यसनका त्यागी है। कैसी है चोरी सो कहिये है। एक तौ महा दगाबाजीका समूह है। अदत्ता दानकौं लेय सो चोर है। सो जे चोर हैं सो परधन हरवैकौं अनेक चतुराई करि पराया घर फोड़ना, पराये खीसेमेंसे धन काढ़ि लेना पराये धरे धनकौं छिपाय कें उठाय लावना तथा पराया धन उठाय कहीं धर देना आदि कार्य करैं हैं। ये सर्व चोरी व्यसन है। इस चोरी करनहारे का परिणाम महा कठोर निर्दय होय है। पराया धन चोरै है, सो महा पापी है। संसारमें जीवनकौं ये धन अपने प्राणन तैं भी प्यारा है। ये जीव अपने दस प्राणकूं धारि सुखी रहैं हैं। तैसे ही यह जीव धन तैं सुखी रहै है। तातैं ये धन जीवका ग्यारहवां प्राण है। जो इस धनकौं हरैं ते महा पापी जानना। जे पराये धन हरवेकौं अनेक छल बल करैं हैं। कोई तौ पर धन हरवेकौं राह चलते जीवनकूं डरवाय धन हरैं। कोई जबरी तैं नगर घरन पै धाड़ा मारि करि घर धन लूटि ले जांय। सो तो जोरावरीके चोर हैं। केई दगाबाजी सहित, अनेक भेष बदल, फांसी तैं मारि, धन हरैं, ते चोर हैं। कोई पराया धन, लेखा करने में भूलि करि राखैं। ते चोर हैं। कोई पराया धन धऱ्या हुआ नहीं देंय, जानि बूझ, मुकरि जांय सो भी चोर हैं। कोई पराया धन कर्ज खाय रहै, नहीं देय, सो चोर है। ऐसे कहे जो ये सो सर्व चोरन के चिन्ह हैं। और कोई ऐसे हैं जो आप तौ चोरी नहीं करैं, परन्तु चोरन कौं चौरी करने में सहायक, चोरी करावै कौं, तिनकौं चोरी के उपकरण देंय, मार्ग बतावैं सो भी चोर समान हैं। और जे चोरन की पक्ष करि, चोरन की लांच खाय, चोरन कौं चाकर राख, चोरी कराय धन बांट लेंय। सो भी चोरी समानि फल का धारी है। और चोरन कौं चोरी पै कर्ज देय, चोरन तैं वाणिज्य-व्यापार राखना ये भी चोरी सा ही फल प्रगट करै है। तातैं जे विवेकी हैं ते अपने व्रत कौं निर्दोष राखैं। सो एती बात नहीं करैं जिनका कथन ऊपरि कहि आये। और इस अदत्ता दानके अतिचार हैं सो भी न लगावैं सो ही कहिये हैं। कोई भली चोर कलाका धारी होय तो ताकी अनुमोदना नहीं करै। और

तराजूतैं तौलिये ताके सेर पंसेरी आदि बांट तथा कुड़ापाई छोटी बड़ी रक्खैं। सो लेनेके तो बड़े अरु देनेके सेर पंसेरी कुड़ापाई छोटी ऐसे राखै सो चोर है। ऐसे ही भली वस्तु विषैं बड़े मोल की वस्तु विषैं अल्प मोल की वस्तु मिलावना, सो चोरी समान है। सो विवेकी ऊँच-कुली ऐसी चोरी नहीं करैं। जे हीन-कुली हैं ते चोरी करैं हैं। जैसे—भील मीणा गौंड़ ये मनुष्य चोरी करैं हैं तथा धन हारचा ज्वारी चोरी करै तथा जीभ लोलुपी चोरी करै तथा जो खान-पान वस्त्र आभूषण तौ भलै चाहै अरु कुमाय नहीं जानै—ऐसा कुपूत पुरुष चोरी करै। वेश्या व्यसनी हौंय ते चोरी करैं। मांसाहारी चोरी करै तथा पर-स्त्री लम्पटी चोरी करै इत्यादिक कुबुद्धि के धारी जीव चोरी करि अपना पाया भव वृथा कर अपना किया धर्म कौं विनाशैं हैं तथा अपने स्वामी का बुरा चाहनेहारा स्वामी द्रोही चोरी करै तथा मित्र तैं कपटाई करनेहारा मित्र द्रोही चोरी करै तथा पर के किये उपकार कौं भूलनेहारा कृतघ्नी होय सो चोरी करै तथा धर्म भावना रहित पुरुष चोरी करै, इत्यादिक जीव चोरी करैं। सो चोरी के अनेक भेद हैं। एक तौ धर्म चोर एक घर चोर। सो जो पापी जीव धर्म स्थान में चोरी करै सो तौ धर्म चोर कहिए और जे माता-पिता, भाई, स्त्री, पुत्र इन तैं धन चुराय राखैं सो घर चोर हैं तथा पराए घरन का हरनहारा होय सो घर चोर है। ताकरि राज्य पञ्च का किया दण्ड पावै और वालक पुत्र तथा स्त्री तैं छिपाय खाय भली वस्तु छिपाय कैं खाय सो पुत्र स्त्री चोर है। ए सर्व चोर समान दोष करैं हैं। ता चोरी के दोय भेद हैं। एक चोरी दूसरा चरपट। जो छल कर छिप करि पर-धन हरै, सो चोर है और गिरासियादि जोरी तैं डराय प्रगट पराया धन हरैं, सो चरपट कहिए। सो ए चोरी चरपट भेद भी पाप जानि, तजना योग्य है। ये चोरन की चतुराई, सबही दुःखदाई, ताहि तजना जिन-गाई मैं भी धर्म-हित भव्य जीवन कूं सुनाई। तातैं तजो समझ सब भाई, याके किये हानि दाई, जस हानि गुरु सुनाई। पर-भव दुर्गति होय, सकल पाप थान जोय, ऐसो लक्ष्य तजो सोय, मानो सीख भव्य होय इत्यादिक चोरी सर्व पाप का मुकुट जानि, तजना योग्य है। इस चोरी हो के चिन्तन किये, पाप-बन्ध होय है। तातैं अपने पर-भव सुधारवे कूं, सन्तोष भाव भजिकैं, बहुत तृष्णा का कारण जो चोरी, ताहि निवारौ। ये सीख सुपूत कौं है। जो कहे का उपकार मानै और जिनकौं चोरी भली लागै। सो सुनि करि, भले उपदेश सूं द्वेष-भाव करैं। चोरी व्यसन का

त्याग सुनि चोर हैं ते धर्म-सभा तजैं। परन्तु चोरी नहीं तजैं। सो ऐसा प्राणी धर्म-सीख काहे कौं मानै है ? ये सीख सपूत कौं है। तातैं श्रावकन कूं अतिचार सहित, चोरी व्यसन तजना योग्य है। इति चोरी व्यसन। ६।

आगे परदारा व्यसन कहिये है—जहां पर-स्त्रीन के रूप हाव-भाव कौं देख, भोगवे की इच्छा सो परदारा व्यसन है या व्यसनी की दृष्टि तौ भगिनी, पुत्री, माता कौं भी रूपवान देख विकार रूप ही प्रवर्ते है और जे धर्मात्मा हैं सो पर-स्त्रीन कूं भगिनी, माता, पुत्री समान देखैं हैं। ऐसा भिन्न भेद इनकी दृष्टि में जानना। ये जीव उसही दृष्टि (आँख) तैं भगिनी, पुत्री कौं देखैं हैं। अरु उसही दृष्टि तैं अपनी स्त्री कूं देखै हैं। सो धर्मातमा तौ यथावत् जानैं हैं। अरु व्यसनी, विकार दृष्टि करि जानै है। सो यह जीवन की दृष्टि का ही भेद जानना। कैसी है या व्यसनी की दृष्टि ? दोऊ भव-दुःख अपयश की करनहारी है। इस व्यसनी कौं पर-स्त्री गमन तैं पकड़िये, तौ जाति तैं निषेधैं हैं और राजा है सो ताका तन छेदन करि, घर लूटै है और खर-रोहण करि, देश तैं निषेधै है। तातैं हे भाई! कहा जानै नरक-फल पर-भव में कब लागै ? हाल ही में जीव कौं नरक समान दुःख देखने पड़े हैं। लोक में निन्दा होय है। नाक-कान-हस्त-पांव अङ्गादि छिदैं हैं। सो ये फल तौ खराबी के यहां ही प्रत्यक्ष देखना होय है। तातैं धर्मी-जन, अपने हित कौं पर-स्त्री, धर्मरूपी कल्पवृक्ष के छेदवे कूं करोत समान जानना और ये पर-स्त्री यश रूपी पर्वत के नाशवे कूं बज्र समान है। देखो रावण-सा महाबली तीन खण्ड का स्वामी, यश का तिलक, जाके यश-सौभाग्य की देव भी महिमा करैं—ऐसा दीर्घ पुण्यी, सो भी पर-स्त्री के दोष तैं अपयश पाय, हीन-गति का वासी भया। राज्य गया, कुल क्षय भया, पर-गति बिगड़ी। तातैं हे भाई! नाग के मुख हस्त देना, विष भोजन करना, ये तो भला है; परन्तु पर-स्त्री-संग, भला नाहीं। छुरी, कटारी, बर्छी की धारन पै कूदना भला। इन तैं एक भव दुःख होय। अरु पर-स्त्री संगति तैं, भव-भव में दुःख होय। तातैं विवेकीन कौं पर-स्त्रीन का त्यागना भला है। अरु जिन बातन में पर-स्त्री-संग का दोष लागै, ऐसे अतिचार भी तजना योग्य है। सो अतिचार कहिये हैं। पर-स्त्रीन तैं सराग भाव सहित हँसि बोलना। कौतुक सहित तिनके तन तैं लिपटना। पर-स्त्रीन के षट्-आभूषण देख कहै, जो तुम कौं यह भला लागै है; ये भला नहीं सोहै है। पर-स्त्रीन के अङ्ग-उपाङ्ग चाल की सराहना करना। ये सर्व पर-स्त्री व्यसन समान दोष

करैं हैं और विकार चित्त करि पर-स्त्रीन का काम काज करै। ताकौं भले-भले षट् आभूषण लाय देय। राग सहित मुख तैं वचन बोलै। ताकूं पर-स्त्री का व्यसनी कहिये और जहां नारी, स्वेच्छा भई कौतुक करतीं होंय, गाली-गीत गावती होंय, तहां आप जाय, सुनि करि हर्ष कौं प्राप्त होय, चित्त देय सुनै, तिनकी प्रशंसा करै, सो पर-स्त्री का व्यसनी है। और पर-स्त्रीन के समूह में जाय, तहां बैठ के तिन स्त्रीन की सुहावती बात कहै। तिनकौं अनेक कौतुक कथा कहि के हँसावै-सुखी करै। सो पर-स्त्री का व्यसनी कहिये और जे पनघट-घाट, जहां अनेक स्त्री-समूह जल कौं जांय तथा और जगह जहां अनेक स्त्रीन के गमन का स्थान होय। ऐसे स्थान पै जाय तिष्ठना, सो पर-स्त्री का व्यसनी है तथा पर-स्त्रीन की चाल-काय सराहना, षट्-आभूषण-रूप देख हर्ष करना, सो पर-स्त्री का व्यसनी है। अपने घर में दासी राखना तथा विधवा स्त्री कौं मोह के वश करि, घर में राखना। तातैं भोगन की अभिलाषा पूर्ण करनी। सो पर-स्त्री का व्यसनी है और बालक नर कों नारी बनाय देखना तथा सुन्दर स्त्रीन कूं, नर भेष बनाय, देख सुखी होय, स्पर्श करि सुखी होय सो पर-स्त्री का व्यसनी है और विधवा तथा पर-स्त्री जाका भर्तार जीवता होय, तिनतैं एकान्त विषैं बतलावना। तिनतैं ऐसा कहना, जो आज कल तो हम पै कोप है; तातैं नहीं बोलो हो। सो हम पै ऐसी कहा चूक परी है, सो कहो। हम तौ आपके आज्ञाकारी हैं इत्यादिक राग सहित वचन भाषण करै, सो व्यसन का लोभी है। अरु पर-स्त्री तैं अबोला रहै, रूठना करै। फेरि तिसके बोलने कौं, औरन तैं प्रार्थना करै। कहै जो हमकों वाकौं बुलाय देव इत्यादिक भावन का धारी, इस व्यसन का धारी है और जे अपने तन में नाना प्रकार वस्त्र आभूषण पहरि, पर-स्त्रीन कौं दिखाया चाहैं। अपना भला रूपयौवन, तनकी ललाई पुष्टता, पर-स्त्रीन कौं दिखाया चाहैं, सो पर-स्त्री व्यसन मोही है इत्यादिक कहे जो पर-स्त्रीन के व्यसन के दोष, तिन सहित सबकौं त्याग, अपना व्रत निर्दोष राखै, सो पर-स्त्री व्यसन का त्यागी कहिये। इति परदारा व्यसन। ७। ये कहे जो सात व्यसन, सो सर्व पाप के मूल हैं। जेते जगत् के पाप हैं, तेते सर्व इन व्यसनन में गर्भित हैं। सो जिनके उदर विषैं, इन व्यसनन की वासना है; सो धर्म विमुख प्राणी, अपने भव का बिगाड़नहारा है। हे भव्य! ये सात व्यसन, सात नरक के दूत हैं। ये व्यसन जीव कों किञ्चित् सुख की छाया-सी बताय

लोभ देय नरक विषैं धरैं हैं। जे प्राणी इन व्यसनन में फँसैं हैं। तिनने अपना भव वृथा किया धर्म छोड़ि दिया और जे जीव इनकूं परख व्यसन जानि इन विषैं रञायमान होय प्रवर्ते इनकौं सेवन करैं, सो जीव पाप के निशान हैं। तिस व्यसनी का चलन ही अशुभ होय धर्म क्रिया हीन होय परिणति खोटी होय जिन-आज्ञा रहित होय अभिमानी होय सुबुद्धि जीवन करि निन्द्य होय। दरिद्री अन्न करि दुःखी होय इत्यादिक युग भव दुःख का सहनेहारा ये व्यसनी है। सो विवेकी जीवन करि तजिवे योग्य है। या व्यसनी का संग भला नाहीं। अहो भव्य हो! दीन होय रहना भला है। तातैं समता सधैं कोई जीवन कौं पीड़ा नहीं होय। ऐसा उपदेश सुनि जो जीव व्यसन का सेवनेहारा अञ्जन चोर की नाईं निकट संसारी होय। तो ऐसे निकट भव्य जीव तौ व्यसन कौं बुरे जानैं। अपनी निन्दा करते अत्यन्त आलोचना करते उपदेशी का उपकार मानैं। स्तुति करि व्यसन भाव तजैं हैं। अपना भव सफल जानि धर्म विषैं लागैं। सत्संगकी महिमा करैं। सत्संग धन्य है जो मोकौं व्यसनके पापका भेद बताय संबोधित किया। जैसे काहू कौं कूप पड़ते राखै। तैसे सत्संग ने मोकां नरक पड़ते कौं बचाया तथा जैसे कुधातु जो लोहा ताकौं पारस लाग कंचन करै। तैसे ही मोसे पापी व्यसनी लोहे समान कूं पाप तैं छुड़ाय धर्मी किया। इत्यादिक भव्य व्यसनी तो अपना भला जानि सत्संगकी स्तुति करै। और जे पापी व्यसनी दीर्घ संसारी हैं; ते व्यसनकी निन्दा सुनि, आप वुरा मानैं सत्संगकूं तजैं। परन्तु सप्त व्यसनकूं नहीं तजैं। ऐसे पापी-व्यसनी कौं, धर्मोपदेश नाहीं लागै। ये सात व्यसन ही धर्मके घातक हैं। ऐसा जानि उत्तम श्रावक जिन आज्ञा प्रमाण व्रतके धारीकूं, अपने व्रतकी रक्षा निमित्त, ए सात ही व्यसन अतिचार सहित तजना योग्य है। इन सप्त व्यसनके अतिचारमें आठ मूल गुणके अतिचार बाईस अभक्ष्य आदि आ गये सो जानना। इत्यादिक सर्व दोष रहित सम्यग्दर्शन व अष्ट मूल गुण होंय, और ए सात व्यसन व बाईस अभक्ष्यका त्याग सो प्रथम दर्शन प्रतिमा जानना। १।

इति श्री सुदृष्टि तरङ्गिणी नाम ग्रन्थके मध्यमें, सागर धर्म-एकादश प्रतिमा विषैं प्रथम दर्शन प्रतिमाके बाईस अभक्ष्य अतिचार सहित सात व्यसन त्याग, अष्ट मूल गुण सहित कथन करनेवाला बत्तीसवां पर्व सम्पूर्ण ॥ ३२ ॥

आगे दूसरी व्रत प्रतिमाका संक्षेप लिखिये हैं। दूसरी व्रत प्रतिमा है ता व्रतके बारह भेद हैं। पांच अणुव्रत,

तीन गुणव्रत और च्यारि शिक्षा व्रत। ए सब मिल बारह भये। तहां प्रथम नाम-अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्य्याणुव्रत, ब्रह्मचर्य्याणुव्रत, परिग्रहपरिमाणाणुव्रत। ए पांच अणुव्रत हैं। अब इनका सामान्य अर्थ—जहां एक देश पांच पापनका त्याग सो अणुव्रत है। अणु नाम थोरेका है सो ये त्रस हिंसाका तो सर्व प्रकार त्यागी है। बाकी बारहमें ग्यारह तैं असंयम है। परन्तु महा दयालु है। कोई यहां ऐसा जानेगा जो त्रस रक्षक है तो स्थावर घात करता होयगा। मन इन्द्रिय वश नहीं होय सो मन इन्द्रिय करि महा विकल रहता होयगा? सो हे भव्य, ए अणुव्रती श्रावक सांसारिक इन्द्रिय भोगन तैं महा उदास है। पांचपापन तैं महा भय-भीत है। सो इन्द्रिय-मनकौं सदैव रोकता धर्म ध्यान मई प्रवर्तें है। ये भोग-भाव, ताहि काले नाग समानि भासैं है। ताका इनमें मन रंजै नाहीं। और स्थावरकी हिंसाका त्यागी तौ नाहीं परन्तु पञ्च स्थावरके आरम्भमें दया-भाव सहित आरंभ करै। जहां अल्प हिंसा होय तामें भये पापकी आलोचना रूप रहै है। तातैं ए अणुव्रती मन इन्द्रिय वश करिवेका तौ उपाई है। और स्थावरकी रक्षा रूप भावनाका भोगी है। तातें ये व्रती श्रावक महा दया धर्मका धारी है। गृह-आरम्भ परिग्रहके योग तैं सर्व प्रकार स्थावर की हिंसा बचती नाहीं। तातैं तिस श्रावककूं अणुव्रती कह्या है। अपने हाथ तैं त्रस हिंसाका आरम्भ नहीं करै। सो याका नाम अहिंसाणुव्रत है याके पांच अतिचार हैं। सो ही कहिये हैं-अपने हाथ तैं कोई त्रस जीव कूं नहीं बांधै। जैसे हस्ती, घोटक, गाय, बैल, भैंस, बकरी, मनुष्य इत्यादिक त्रस जीवके हाथ-पांव, बन्धन तैं नहीं बांधै। गलेमें फन्दा डाल कोईकूं नहीं बांधै। तथा बालककूं भी क्रीड़ा-मात्र नहीं बांधै। याका नाम बन्ध अतिचार त्यजन है। १। बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय इन आदि त्रस जीवनकौं कोड़ा, लाठी आदि शस्त्रन तैं नहीं मारै। सो ये वध दोष त्याग है। २। और मर्यादा के उपरांत पशु पै, मनुष्यन पै भार नहीं लादै। सो याका नाम अतिभारारोपण दोष त्याग है। ३। और त्रस जीवनके अङ्गोपाङ्ग अपने हाथतैं नहीं छेदै। सो ये छेदन दोष निवारण है। ४। और कोई त्रसका, अन्न-जल-घासादि खान-पान नहीं रोकै। जैसे कोईके सिर अपना कर्ज आवै था। सो ताकौं ऐसा नहीं कहै, जो हमारा कर्ज देव, नहीं तो अन्न-जल खायगा तौं तोकों ऐसी आण (कौल) है। ऐसा वचन, व्रती श्रावक नहीं कहै। तथा गाय, बैल, हस्ती, घोटकके खान-पान कूं बंद नहीं करै। याका नाम अन्न-पान निरोध दोष त्यजन

है ।५। ऐसे पांच अतिचार नहीं लगावै। सो शुद्ध व्रत अहिंसाणुव्रत है। इति अहिंसाणुव्रत ।१। आगे सत्याणुव्रतका अतिचार सहित स्वरूप कहिये है। तहां ऐसी स्थूल झूठ नहीं बोलै, जातैं लोक निन्दा होय, दूसरोंकौं बुरा लागै। कोई दगाबाजी सहित वचन, कठोर वचन, मर्म छेदन वचन, परदोष प्रगट करन वचन, कलहकारी वचन, द्रोह वचन, गाली वचन, पापबंधकारी वचन, परघर धन मन तन हरन वचन, परनिन्दा वचन, क्रोध वचन, लोभ वचन, रागद्वेष वचन, अविचार वचन इत्यादिक असत्य वचनके भेद हैं। इन सर्वका त्यागना, सो सत्याणुव्रत है। सो याके भी पांच अतिचार हैं। सो दिखाईये हैं। प्रथम नाम मिथ्या उपदेश, रहोव्याख्यान, कूटलेख क्रिया, न्यासापहार, और साकार मंत्र भेद। इनका अर्थ-तहां झूठा उपदेश देना झूठा मार्ग बतावना तथा बालकनतैं असत्य भाषण करि, क्रीड़ा करनी। इत्यादिक असत्य वचन बोलना सो मिथ्योपदेश है। १। और जहां पराई एकांतकी बात कोई बतलावते होंय, ताकौं कोई अनुमान तैं जानि, अन्य लोकन में प्रकाश करै। सो रहोव्याख्यान अतिचार है। २। और जहां झूठा खत, हुण्डी, चिट्ठी लिखना। झूठा लेखा माड़ना। इत्यादिक ये कूट-लेख क्रिया दोष है। ३। और पराये गहने आदि धरे माल कौं राखि, जानि-बूझि मुकरि (मेंट) जाना, सत्यघोष पुरोहितकी नांईं। सो न्यासापहार नाम अतिचार है। ४। और कोईके शरीरके चिन्हतैं, नेत्रके चिन्हतैं, मुखके चिन्हतैं, ताकी अक्रिया देख, ताके मर्मकी बातकौं जानि, पीछे द्वेषभाव करि, पराई छिपी बात कूं सबमें प्रगट करना। सो साकार-मंत्र भेद दोष है ।५। ऐसे पांच अतिचार रहित होय, सो सत्याणुव्रत कहिये ।२। आगे अचौर्य्याणुव्रतका स्वरूप कहिये है। तहां पराया धन बिना दिया लेय, सो अदत्तादान है। ये चोरी जानना। जो पराये पुत्र, स्त्री, दासी, दास, हस्ती, घोटक, गाय, बैल, बकरी इत्यादिक चेतन वस्तु। अरु, रत्न, स्वर्ण, चांदी, वस्त्र, अन्न, धन ये अजीव वस्तु। ऐसे इन चेतन-अचेतन द्रव्य कौं चोरना, सो चोरी है। सो या चोरीके पांच अतिचार हैं। सो कहिये हैं। प्रथम नाम-स्तेय प्रयोग, स्तेय वस्तु आदान, राज्य-विरुद्ध क्रिया, मानोन्मान, पर-रूपक व्यवहार। ये पांच अतिचार हैं। इनका अर्थ-तहां चोरीका उपदेश देना, चोरकूं राह बतावना, पराया घर-मन्दिर फोड़वे कूं कुसिया, कुदारी देय, चोरीका मंसूबा बतावना। इत्यादिक चोरीके प्रयोग बतावना, सो स्तेय प्रयोग नाम दोष है। १। और चोरीकी वस्तुकूं सस्ती जानि, बड़ा नफा देख, मोल लैना। सो याका नाम तदाहता दान दोष

है। याहीका नाम स्तेय वस्तु आदान दोष है। २। और राजाकी मर्यादा लोपना, राजाकी आज्ञा, टालना, सो राज्य-विरुद्ध नाम दोष है। ३। और जहां लेनेके तोलादि तो बड़े होंय, और परकौं देनेके पाई, कुड़ा तोला सेर पंसेरी सो छोटी-हीन राखै। सो याका नाम हीनाधिक मानोन्मान नाम अतिचार है। ४। और बड़े मोलकी वस्तुमें, थोड़े मोलकी वस्तुकों मिलायके बेचना। सो प्रतिरूपक व्यवहार नाम दोष है। ५। ऐसे इन पांच अतिचार रहित होय सो अचौर्य्य नाम अणुव्रत है। इति अचौर्य्याणुव्रत। ३। आगे ब्रह्मचर्य्याणुव्रत कहैं हैं। जाकैं छोटी पर-स्त्री, पुत्री बराबरकी स्त्री, बहिन व बड़ी स्त्री माता समान है। ऐसी दृष्टि तौ पर स्त्रीन पै रहै। और अपनी परणी स्त्रीमें संतोषी, तीव्र राग रहित समता भाव सहित संतान उत्पत्ति निमित्त स्व-स्त्री तैं रति समय संगम करै। बाकी च्यारी प्रकार चेतन अचेतन स्त्री, विषैं रागद्वेषका अभाव विकार दृष्टि करि नहीं देखै। तथा पर-स्त्रीनमें काम चेष्टा रूपविकार वचन हाँसि वचन परस्पर प्रेम बधावने हारे निर्लज्ज वचन कुशील-राग करि भरी दृष्टि देखना परस्त्रीन तैं गोष्ठीचर्चा वार्ता करनी इत्यादिक परस्त्री संबंधी दोष हैं। कैसी है पर-स्त्रीकी दृष्टि? विषनाग समान राग-जहर करि भरी यौवन करि मदोन्मत्त, विकराल स्वरूपकी धरनहारी। शीलवान् पुरुषोंकों भयकारी। महा विष नागनी। बालक, वृद्ध, देव, पशु सर्व तीन गतिके जीवनकूं डसनहारी। बड़ोंकी आज्ञा रूपी मंत्र मर्यादा की लोपनहारी। ऐसी परस्त्रीका त्याग सो ब्रह्मचर्य्याणुव्रत है सो याके पांच अतिचार हैं सोही कहिये हैं। प्रथम नाम परविवाह करन, इत्वरिका गमन, परगृहीतागृहीत गमन, अनंग क्रीड़ा, काम तीव्राभिनिवेश। ये पांच हैं। इनका अर्थ तहां पराया विवाह करावना। बीचिमें पड़ि, सगाई करावना। बीचमें फिरि, लड़का-लड़कीनके नाता मिलाय, साख मिलाय, व्याहके नेग चार करावना। इत्यादिक व्याहके कार्य करावना सो पर-विवाह करण नाम दोष है।१। और दासीकूं घरमें राखना तातैं स्त्री-व्यवहारकी चेष्टा करनी। सो इत्वरिका-गमन नाम अतिचार है। २। और पर-कर-गृहीत जे स्त्री, जिनका भर्तार जीवता होय तथा पर कर नहीं गृहीत जो विधवा स्त्री-भर्तार रहित तथा कुवांरी विवाह रहित—इनतैं विकार चेष्टा करि तिनके घर गमनागमन करना। सो पर गृहीतागृहीत गमन नाम दोष है। ३। और जहां स्त्रीका भोग योग्य योनि स्थान तजि वाह्य अङ्गन तैं क्रीड़ा करनी। जैसे श्वानादि पशु भोग-योग-स्थान

तजि ऊपर ऊपर क्रीड़ा करैं। तथा हाथ-पांव अङ्गन तैं क्रिया करि वीर्यका गिराना। इत्यादिक ये अनंग क्रीड़ा दोष है। ४। और जहां, जिस भोजन तैं, तथा जिन वचनन तैं तथा जिस क्रिया तैं तीव्र कामकी बधवारी होय— सो कामतीव्राभिनिवेश दोष है।५। ऐसे ये पांच अतिचार रहित होय, सो ब्रह्मचर्य्याणुव्रत है। इति ब्रह्मचर्य्याणुव्रत।४। आगे परिग्रह परिमाणाणुव्रत कहिये है—तहां दस प्रकार परिग्रह तिनका प्रमाण करै। सो तिन दसके नाम क्षेत्र वास्तु, धन, धान्य, चौपद, दोपद, आसन, शयन, कुप्य, और भाण्ड ये दस भेद परिग्रह के हैं। सो तहां चौतरफ क्षेत्रका प्रमाण करना। जो येते क्षेत्रनमें कर्म सम्बन्धी क्रिया करनी। यातैं अधिक क्षेत्रनमें कर्म सम्बन्धी कार्य करनेके ममत्वका त्याग सो क्षेत्र परिमाण है। तथा एते क्षेत्र विषैं हल जोति खेती करना अधिक क्षेत्र नहीं जोतना। ऐसा परिमाण करना सो क्षेत्र परिग्रह परिमाण है। १। और जहां दुकान, मन्दिर, नगरका परिमाण जो एते मन्दिर राखे। सो वास्तु परिग्रह परिमाण है। २। स्वर्ण चांदी, रत्न इत्यादिकका प्रमाण करना, जो एता धन राखना सो धन परिग्रहका परिमाण है। ३। और तहां तन्दुल, गेहूं, जव्, ज्वार, मोंठ, मूंग, उड़द, चना, कोदों, बटरा, मसूर, तूअर इत्यादिक अन्नकी संख्याका परिमाण जो ऐते अन्न राखे, सो एते तौल प्रमाण सो धान्य परिग्रहका परिमाण है। ४। और दासी-दास सेवक, दो पदके धारी जीव एते राखना, सो दुपद परिग्रहका परिमाण है। ५। और हस्ती, घोटक, ऊंट, गाय, भैंस, बकरी, ए चौपद हैं। सो इनका परिमाण करना, जो एते चौपद अपने आधीन राखूंगा। सो चौपद परिग्रह परिमाण है। ६। और रथ, गाड़ी, गाड़ा, सिंहासन, पालकी, म्याना, इत्यादिक आसन हैं। सो इनका परिमाण राखना। सो आसन परिग्रह परिमाण है। ७। और पलंग, खाट, बिछौना, तकिया इनका परिमाण कर लेना। सो शयन परिग्रह परिमाण है। ८। और सूत रेशम घास, रोम इत्यादिकके कोमल कठोर वस्त्र तिनका प्रमाण। सो कुप्य नाम परिग्रह परिमाण है। तथा केशर, कपूर, अगर, चन्दन, इतर इनकी खुसबूका परिमाण एती खुसबू राखी सो याका नाम कुप्य परिग्रह परिमाण है। ९। धातु पात्रके बासन चांदी, स्वर्ण, कांसा, पीतल, तांबा, लोहा, जस्ता, सीसा, रांगा इत्यादिक पृथ्वी काय धातु-पात्रनका परिमाण राखना। जो एते थाल, रकेबी, चरुवा, बेला, भरत्याई सर्वकी गिनती तौलका परिमाण राखना। सो भाण्ड नाम परिग्रह परिमाण है। १०। इन दस जाति परिग्रहके

परिमाण का नाम तौ, प्रश्नोत्तर श्रावकाचारजी के अनुसार कहा और तत्त्वार्थसूत्रजी विषैं क्षेत्र, वास्तु, हिरण्य, स्वर्ण, धन, धान्य, दासी, दास, भाण्ड, कुप्य—ए दस हैं। सो नाम भेद हैं। अर्थ भेद केवली-गम्य है तथा विशेष ज्ञानीन के गम्य है। इन दश जाति के परिग्रह का परिमाण करना सो परिग्रह परिमाण अणुव्रत है। सो याके पांच अतिचार हैं। सो ही कहिये हैं। अति बाहन, अति संग्रह, अति विस्मय, अति लोभ और अति भारारोपण—ए पांच हैं। इनका सामान्य अर्थ गाड़ा, गाड़ी, रथ, हस्ती, घोड़ा इत्यादिक असवारी जाति के जैसे—दस हजार घोड़ा, दस रथ इत्यादिक परिमाण राखे थे सो वर्तमान काल में आपके पास परिमाण तैं थोड़ा है। सो ताके पूर्ण करवे कौं अनेक उपाय करते, ऐसा विचारै। जो मेरे तो दसका परिमाण है। सो पांच तौ हैं, अरु पांच और ल्यौं। तौ मेरे व्रतकूं दोष नाहीं। ऐसा विचार कर पूरण कर्‌या चाहै है। सो बहुत वाहन नाम दोष है तथा अपने परिमाण तैं बहुत इकट्ठे करने की इच्छा होय तथा अपने परिमाण तैं बहुत वाहन होंय। तौ कहै, ए मेरे नाहीं, मेरे पुत्र के हैं तथा स्त्री के हैं तथा भाई के हैं इत्यादिक अपने मन तैं कल्पना करि, तिनकौं इकट्ठे करै। सो अति वाहन नाम दोष है। १। अपनी मर्यादा उल्लंघि तथा सन्तोष छोड़, अत्यन्त लोभ के योग तैं, अपने जेते अन्न की मर्यादा राखी थी, ताही परिमाण अनेक जाति का अन्न संग्रह करि भड़शालामें बहुत दिन राखै। तिनमें अनेक जीव पड़ चलैं सो तिनकौं देख कैं, निर्दय-भावना करि ऐसा विचारै। जो मेरे एते अन्न की मर्यादा है। कोई मर्यादा कूं उल्लंघि करि थोड़े ही राख्या है अरु जीव पंड़े सो ही पड़ैं। अन्न है। ऐसी कहां सधै ? व्यापार है। नहीं करिये, तौ बने नाहीं। ऐसी विचार करि कठोर भाव राख दया नहीं करै। सो बहुत संग्रह नाम दोष है। २। कठारखाने की दुकान सम्बन्धी किराना, धना, जीरा, हल्दी आदि अनेक वस्तु लेनी-बेचनी। तिनमें सामान्य विशेष लाभादि नहीं जान, परिणामन में खेद करना, संक्लेशता रखनी तथा पहिले तौ लाभ जानि वस्तु ल्यावना। पीछे लाभ नहीं भासै तब बहु तृष्णा करि बेचना तथा अपनी मर्यादा तैं अधिक आई जान ताके फेरवे कौं विसम्वाद करना, सो विस्मय नाम दोष है। ३। और जहां वाणिज्य के निमित्त अनेक वस्तु संग्रह करना, लेना पीछे बैंचना तव अल्प मोल की वस्तु में मिलाय बैंचना, सो अति लोभ नाम दोष है। ४। और तहाँ वृषभ भैंस, खर, हिम्माल, इनके ऊपर मर्यादा के उपरान्त भार का धरना। जैसे—भाड़ा तो तिनके भार की मर्यादा

प्रमाण मनुष्य तैं किया। अरु पीछे राजा के कर के भय तैं चुराय, ताके ऊपर बड़ा भार धरना यथा नफा के लोभ तैं पर-जीवन पै मर्यादाकौं उल्लंघि, भार का धरना, सो अति भारारोपण दोष है। ५। ऐसे कहे जो पांच अतिचार बचावै, तौ परिग्रह प्रमाण का व्रत, शुद्ध होय है। इति पांच अणुव्रत के, पच्चीस अतिचार कथन। आगे तीन गुणव्रत के नाम व अतिचार कहिये है। प्रथम नाम—दिग्व्रत, देशव्रत और अनर्थदण्ड त्याग व्रत। इनका अर्थ—तहां पूर्व दिशा, पश्चिम दिशा, उत्तर दिशा, दक्षिण दिशा और पूर्व-दक्षिण के बीचि आग्नेय कोण विदिशा है और दक्षिण-पश्चिम के बीच में नैऋत्य विदिशा है। पश्चिम-उत्तर के बीचि में वायव्य कोण है। उत्तर-पूर्व के बीचि में ईशान कोण है। ये च्यारि विदिशा हैं तथा ऊर्ध्व दिशा और अधो दिशा। ऐसी इन दशों दिशाओं का परिमाण करना तथा दिशा-विदिशा विषैं ऐसी प्रतिज्ञा करनी। जो फलानी दिशा-विदिशाकूं, फलानी नदी तांई तथा फ़लाने पर्वत तांई, फलाने देश तांई, फलाने नगर तांई, एती मर्यादा में कर्म-कार्य करूँगा। एती ही दूर तांई, पत्र लिखूंगा। एती ही दूर का पत्र आय तौ बांचूंगा। ऐती ही मर्यादा में वस्तु भेजूंगा। ऐती ही मर्यादा तैं मँगाऊँगा। इस मर्यादा को उल्लंघकैं पत्र नहीं लिखूंगा और ऊर्ध्व दिशा में एते ऊँचे पर्वत तांई चढ़ूंगा और अधो दिशा में एती नीची धरा ताईं पाताल में नदी-कुएँ में जाऊँगा। ऐसे दशों दिशा का प्रमाण करै। सो दिग्व्रत है। याके पांच अतिचार सो ही कहिये हैं। अधोतिक्रम, ऊर्ध्व अतिक्रम, तिर्यग्गमन अतिक्रम, क्षेत्र परिमाण उल्लंघन और अन्तर स्मरण। अब इनका अर्थ—अपनी मर्यादा कूं उल्लंघि कैं धरती, कूप, बावड़ी, नदी इत्यादिक पृथ्वी में उतरना। सो अधो दिशातिक्रम नाम अतिचार है। १। और जहां पर्वत-शिखरन पै, अपनी मर्यादा उल्लंघ के चढ़ना, सो ऊर्ध्व दिशातिक्रम अतिचार है। २। मर्यादा उल्लंघि कैं, विदिशा में गमन करना सो तिर्यग्गमन अतिक्रम अतिचार है। ३। जिन क्षेत्रन में मर्यादा की थी सो तिसकौं उल्लंघि, अधिक क्षेत्र में कर्म-कार्य करना, सो क्षेत्र उल्लंघन अतिचार है। ४। और जहां दिशा में सीमा की थी। ताकूं अन्तरङ्ग में भूल कर विचारना, जो मेरे कौन-सी दिशा की मर्यादा थी? ऐसे करि मर्यादा थी? ऐसे करि मर्यादा का भूलना, सो अन्तर-स्मरण नाम दोष है। ५। ऐसे अतिचार रहित दिग्व्रत का पालना, सो दिग्व्रत है। १। आगे दूसरा देशव्रत कहिये है। तहां आगे कह्या दिग्व्रत-परिमाण, ताही में घटाय के मर्यादा करना। जो पहिले दिग्व्रत किया, सो

आयु पर्यन्त है और तिस व्रत में घटाय, रोज-रोज की मर्यादा करनी तथा वर्ष, षट् मास, चतुर्मास, एक मास, पन्द्रह दिन, पहर, घड़ी का नियम करना। जो एते काल, एते दिन, एते मास ताईं, एते भोग-उपभोग राखे। भोग वस्तु में एते अन्न, एते मेवा, खावने; अधिक नाहीं। ऊपर-उपभोग में एते वस्त्र, गाड़ी, रथ, घोड़ा, हस्ती, महल, बिछौना, स्त्री एते-एते राखे। सो भोगना अधिक नाहीं। एते क्षेत्र में कोस, दश-पांच धनुष, जाऊँगा। ये क्षेत्र में एते काल ताईं रहूँगा इत्यादिक नियम रूप मर्यादा सो देशव्रत है। याही के पांच अतिचार हैं, सो कहिये हैं। प्रथम नाम—आसन-शयन, पर-प्रेक्षण, शब्द, रूप और पुद्गल-क्षेपण—ये पांच हैं। इनका अर्थ—जहां जेते स्थान का परिमाण करि, जेते काल पर्यन्त दृढ़ होय तिष्ठना, शयन करना, बैठना। इतनी मर्यादा में ऐसे रहना। ऐसे मर्यादा करि, फेरि ताके काल-क्षेत्र कौं उल्लंघि कैं क्रिया करनी, सो आसन-शयन अतिचार है।१। जेते क्षेत्र में काल की मर्यादा करी। तामें तिष्ट्या ही और के पास संज्ञा, उपदेश देय कार्य करावना, सो पर-प्रेक्षण अतिचार है। २। आप अपनी सीमा-मर्यादा में बैठा ही और कों बुलाय कार्य करावै तथा अन्य कूं दूर बैठे तैं बतावै तथा अन्य कोई कार्यवारै ने आय कही कि फलाने जी कहां हैं ? तब अपने स्थान में तिष्ट्या ही, खखार करि तथा खाँसि कर, अपना अस्तित्व बतावै, जो हम यहां हैं ताका नाम शब्द दोष है। ३। आप तौ अपने स्थान में तिष्ठै है और कोई प्रयोजनहारा आवै। अरु कहै, फलाना कहां है ? तब वाका शब्द सुनि प्रयोजनी जान, गोखतैं, खिड़की तैं अपना मुख काढ़ि ताकौं बतावै। ताकों संज्ञा करि, कार्य सिद्ध करै, सो रूप नाम अतिचार है। ४। अपने परिमाण क्षेत्र में तिष्ठता कोई कार्य काहू तैं जानि वातैं बोल्या तो नाहीं; परन्तु कंकर वस्त्रादि पुद्गल-स्कन्ध डार अपना कार्य सिद्ध करना सो पुद्गल-क्षेप नाम दोष है। ५। ऐसे पांच अतिचार नाहीं लागैं, सो शुद्ध देशव्रत है। इति देशव्रत। २। आगे अनर्थदण्ड त्याग व्रत का कथन करिये हैं—तहां बिना प्रयोजन पाप कार्य करना, सो अनर्थदण्ड है। ताके पांच भेद हैं। प्रथम—पापोपदेश, हिंसा का उपकरण राखना (हिंसा-दान) अपध्यान, दुःश्रुति और प्रमाद-चर्य्या। इनका अर्थ—जहां पाप का उपदेश, पर कौं देना। जो आओ, बैठो। कहा करो हो ? चौपड़, सतरञ्ज, गंजफा, मूठ आदि द्यूत खेलो। ज्यों दिन कटै। ऐसा उपदेश देना, सो

अनर्थदण्ड है तथा चोरी करने का मंसूबा करना। चोरन की चतुराई की प्रशंसा करनी। चोरी का उपदेश देना। कुशील-सेवन की कथा करनी। कुशील-सेवन के कारण धातु आदि कामोद्दीपन औषध की कथा करनी ये सब अनर्थदण्ड है। वेश्या-कञ्चनी के रूप की कथा। तिनके नाच, गान, नृत्य इनकी कथा सो अनर्थदण्ड है तथा जातैं परिग्रह वधै, ताका उपदेश देना। मोह वधै, क्रोध वधै, मान-माया-लोभ वधै, मत्सर वधै इत्यादिक दोष वधैं, ऐसा उपदेश देना तथा भूमि खोदने का उपदेश देना। बहुत अग्नि जलावने का उपदेश तथा पराये घर-नगर-वन में अग्नि लगायने का उपदेश देना। ये अनर्थदण्ड है। भूमि-खुदाय खेती करने का उपदेश देना तथा नदी, तालाब, बावड़ी, कूप का जल बहावने, फोड़ने का उपदेश देना। वस्त्र धुलवाने का उपदेश। कूप, तालाब, बावड़ी, महल, मन्दिर, बनवाने का उपदेश देना। परस्पर औरन के युद्ध करायवे का उपदेश। ये सर्व अनर्थदण्ड हैं तथा नदी, तालाब, बावड़ी में कूदने-सपरने का उपदेश तथा बहुत वृक्ष, वनस्पति छेदने का उपदेश। वन कटायने का उपदेश, बाग कटायने का उपदेश, घास कटायने का उपदेश। अन्न, तिल, शहद, सन, हाड़ का संग्रह-भण्डशाल करने का उपदेश। ये सर्व अनर्थदण्ड है तथा धर्म-घात का उपदेश देना। जो हे भाई ! धर्म तौ तब याद आवै, जब पेट-भर रोटी मिलै। तातैं बड़ा धर्म ये ही है। जासे दोय पैसा पैदा होंय, सो करौ। धर्म-सेवन में कहा खावोगे ? ऐसा धर्म-घातक उपदेश, सो अनर्थदण्ड है तथा कोई तीर्थ-यात्रा कों जाता होय। ताकौं ऐसा उपदेश देना जो हे भाई ! अभी तो कमाई के दिन हैं। तोकों दोय-च्यारि महीना परदेश में लगैं। पांच-पचास रुपया खर्च पड़ैं। ऐसे तीर्थ में कहा पाय है ? तातैं घर ही तीर्थ है। तेरे भाव अच्छे राख। इत्यादिक उपदेश देना। सो अनर्थदण्ड है तथा तू सब दिन धर्म-सेवन, पढ़ना-सीखना, जप, तप इत्यादिक धर्म विषैं लगावै है, घर का सोच नाहीं। सो खायगा कहा ? आगे घर का काम कैसे चलेगा ? तातैं कमाई में लागो। इत्यादिक धर्म-घातक उपदेश देना, सो अनर्थदण्ड है; सो याका नाम पापोपदेश है। १। और हिंसा का उपदेश देय, हिंसा के उपकरण करावना। चक्की, ऊखली, मूसली छुरी, कटारी, बर्छा, तलवार तुबक, कुल्हाड़ी, कुदारी, कुसिया, हंसिया—इन आदि को बनवायकर, मांगे देना इत्यादिक पाप कार्य करना, करावना, अनुमोदना। सो हिंसा दान नाम, अनर्थदण्ड है। २। और जहां खोटे पापकारी व्यापार का उपदेश देना। आप दीर्घ हिंसा

सहित व्यापार का करना तथा परकौं ताका उपदेश देना तथा परकौं पाप-व्यापार—वाणिज्य का उपाय बतावै कहै कि शीशा, शोरा, शहद, नील, अदरख—इनका वणिज करने मैं, बड़ा नफा है। सन, साजी, लूण (नमक), चर्म—इनके व्यापार में विशेष नफा है इत्यादिक पाप-व्यापार का उपदेश देना, सो अपध्यान नाम अनर्थदण्ड है।३। जहां स्वेच्छया—अर्थात् कल्पना करि, कामी जीवनकौं विकार-भाव करिवेकूं, कवीश्वरों नें बनाये जो श्रृङ्गार शास्त्र, जो राग-मालादि रसिक प्रिय सुन्दर श्रृङ्गार इत्यादिक शास्त्र, जिनकौं सुनि भोले मोही जीव, अपने भाव काम-चेष्टा रूप करि, पर-स्त्री आदि भोगने की अभिलाषा करि, पाप बन्ध करैं। जिन शास्त्रन में पर-स्त्री सेवने में पाप नहीं कह्या। विधवा स्त्री कों घर में रख, उससे काम सेवन में पाप नहीं कह्या होय इत्यादिक कामी जीवन कूं मोह उपजायवे कूं, अपने-अपने विकार-भाव पोषिवेकूं, जे शास्त्र का कथन करना, सो अनर्थदण्ड है। लोभी कवीश्वरों ने अभक्ष्य भोजन में पाप न कह्या। मद्य-मांस के खावने के अभिलाषी जीव, तिनके राजी करवेकूं बनाये जो कल्पित-अपनी मति अनुसार शास्त्र तिनमें हिंसा का पाप नहीं कह्या। मद्य, मांस, मधु खावने का पाप नहीं कह्या होय, सो कुशास्त्र अनर्थदण्ड है। जिनमें नाहर, सुअर, हिरण मारने का पाप नहीं कह्या, वनस्पति छेदने में पाप नहीं कह्या। अनगाले जल पीवने, सपरने में पाप नहीं कह्या। ऐसे जो कषायी जीवन के बनाये कल्पित शास्त्र, परम्पराय योगीश्वरों की आम्नाय रहित कल्पित शास्त्र करे, सो अनर्थदण्ड है। जिनमें जादू करना, वशी करना, पर-मोहन, ऐसे कल्पित मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र, स्तम्भन इत्यादिक चमत्कार बतावने का कथन करि, भोरे जीवन कूं आश्चर्य उपजावना। ऐसे कल्पित स्वेच्छा शास्त्रन का जोड़ना, सो दुःश्रुति नाम अनर्थदण्ड है।४। प्रमाद सहित, ईर्ष्या-भाव सहित, शीघ्र-शीघ्र चलना। त्रस जीवन की विराधना सहित, अदया-भाव करि चलना। बिना प्रयोजन पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, वनस्पति आदि का छेदना। इसी का नाम प्रमाद-चर्य्या अनर्थदण्ड है।५। ऐसे इन पांच भेदमयी अनर्थदण्ड है, सो याके पांच अतिचार हैं। सो ही कहिये हैं। प्रथम नाम—कन्दर्प, कौत्कुच्य, मौखर्य, अति प्रसाधन और असमीक्ष्याधिकरण। इनका अर्थ—तहां काम चेष्टा सहित, काय का स्फुरावना। नेत्र की चेष्टा, विकार रूप करनी। मुख, विकार रूप करना। काम पोषक, शील भञ्जक,

भयानक, राग भरे वचन कहना, भय बतावना, पर कौं लोभ बतावना, काय मोड़ना आदि अनेक कुचेष्टायें लिये, काम-विकार सहित बोलना, सो कन्दर्प नाम अतिचार है । १ । जहां कौतुक लिये मदोन्मत्त भया, हाँसि सहित भण्ड-वचन बोलना । गालि काढ़िनेमयी हाँसि वचन, शील खण्ड पाप रूप वचन, काम-चेष्टा-विकारमयी आलस का लेना, दीर्घ उच्छवास का करना । अपने शरीर के गूढ़ चिह्न प्रगट करि, अन्य कौं दिखावना, सो कौत्कुच्य नाम अनर्थदण्ड दोष है । २ । जहां प्रयोजन रहित वृथा वचन भाण्डवत बोलना, सो धर्म-कर्म रहित बिना प्रयोजन ही स्वप्न की नाईं वचन बोलना, सो मौखर्य नाम दोष है । ३ । जहां हिताहित-ज्ञान रहित, अविचार सहित, मूर्ख वचन भाखना ताकौं सुनि, वे प्रयोजन बहुत जीव द्वेष-भाव करैं। मूरख कहैं, निन्दा पावै इत्यादिक द्वेष उपजावनहारा, बिना प्रयोजन वचन बोलना, सो असमीक्ष्याधिकरण दोष है ।४। जहां संसार विषैं अनेक भोग वस्तु, अनेक उपभोग योग्य वस्तु, नाना प्रकार इन्द्रिय सुख। देव, इन्द्र, चक्री, कामदेव, भोगभूमियां इत्यादिक पुण्याधिकारी जीवन के भोग योग्य वस्तु, तिनके भोगने की अभिलाषा करनी, सो पुण्य तौ हीन, जो उदर पूरणा ही होती नाहीं। इन्द्रिय सुख भोगने की इच्छा-देव-इन्द्र की-सी राखना तथा पराया राज्य-भोग देख, पुण्य-रहित ऐसा विचारै। जो ये राज्य नहीं करि जानै। अरु राज्य-लक्ष्मी नहीं भोग जानै। अरु ये हस्ती, घोड़ा, पालकी पै नहीं चढ़ जानै। प्रजा नहीं पाल जानै। जो ऐसी राज्य-लक्ष्मी मोकों मिलै, तौ मैं ऐसे राज्य करौं। ऐसे हस्ती, घोटक, रथ, पालकी पर चढ़ौं। ऐसे राज्य-लक्ष्मी भोगूं इत्यादिक पुण्य रहित होय, अर्थ रहित विचार, सो भोगोपभोग (अति प्रसाधन) नाम दोष है। ५। इति तीसरा अनर्थदण्ड त्याग गुणव्रत । २ ।

इति श्री सुदृष्टि तरंगिणी नाम ग्रन्थ के मध्य में श्रावक धर्म प्ररूपण रूप, एकादश प्रतिमा विषैं, दूसरी व्रत प्रतिमा के बारह व्रतन में, तीन गुणव्रत अतिचार सहित कथन वर्णन करनेवाला तेतीसवाँ पर्व सम्पूर्ण भया ॥ ३३ ॥

आगे च्यारि शिक्षाव्रत कहिये है। प्रथम नाम—सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग परिणाम और अतिथि संविभाग। इनका अर्थ—सामायिक के दोय भेद हैं। एक द्रव्य-सामायिक और दुसरा भाव-सामायिक। तहां सामायिक करते विनय सहित, समता लिये, शान्त मुद्रा धार, कायोत्सर्ग तथा पद्मासन तिष्ठ, शुद्ध सामायिक-पाठ

करै है। अरु परिणति सामायिक तैं छूटि, अन्त गई होय प्रमादवशात् अन्य ही विकल्प में लागै, सो द्रव्य-सामायिक है। जो सामायिक करनेहारा भव्य, शुद्धासन करि पाठ करै। सो अर्थ विषं चित्त राखि, सामायिक करै, सो भाव-सामायिक है। यहां प्रश्न—जो सामायिक प्रतिमा तो तीसरी है। अरु यहां दूसरी प्रतिमा विषैं व्याख्यान किया। सो क्यों? ताका समाधान—जो सामायिक प्रतिज्ञा का अतिचार रहित धारी तौ तीसरी प्रतिमा में है; परन्तु यहां शिक्षाव्रत में कथन किया, सो साधन रूप कथन है। जैसे—रण विषैं लड़ने-युद्ध करनहारे पुरुष, सुभट हैं; सो तीर, गोली, तलवार राखैं हैं। जो युद्ध में काम पड़ै, तौ सुभट अपना पौरुष प्रगट करि, तीर-गोली चलावैं। वैरीन कौं जीतैं हैं। सो तौ सुभट शूर ही हैं और उन सुभटों के बालक हैं, सो तिनका भी अभिप्राय अपने बड़ों की नाईं युद्ध करि, रण में शस्त्र चलाय, वैरी जीति, यश प्रगट करवे रूप है। सो वह भी अपने बड़ों से शस्त्र-विद्या सीखैं हैं। सो ते बालक भी तीर-गोली राख, चलावैं हैं। सो इन बालकन कौं, सीखनेहारा कहिये। इन तैं हाल, युद्ध नहीं जीत्या जाय। ये सुभट नाहीं। जब शस्त्र-विद्या सीख चुकेंगे तबही सुभट कहावेंगे। हाल शस्त्र राख, तीर-गोली कौं मिट्टी के तोसदान में चलावना सीखैं हैं। तैसे ही शिक्षाव्रतवाला सामायिक करना सीखै है। सामायिक नामा प्रतिमाधारी नाहीं। यहां कोई अतिचार भी लागै तथा कोई समयान्तर, काल भी उल्लंघन होय, तौ होय। कोई अतिचार भी यहां होय। तातैं यहां शिक्षाव्रत ऐसा कह्या है। ये शिक्षाव्रतवाला, अतिचार रूप वैरी कौं जीति नहीं सकै है। तीसरी प्रतिमा विषैं, निर्दोष व्रती होय है। ऐसा जानना। इति सामायिक शिक्षाव्रत। १। आगे प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत कहिये है। जहां सोलह-सोलह पहर का अनशन होय। सर्व काल धर्मध्यान में अपनी मर्यादा सहित एक स्थान में व्यतीत करै। सो प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत है। इनके अतिचारन का कथन आगे इनकी प्रतिमा विषैं करेंगे। तहां तैं जानना। इति प्रोषधोपवास। २। आगे भोगोपभोग परिमाण शिक्षाव्रत कहिये है। जहां एक बार भोगने में आये ही, जो वस्तु अयोग्य हो जाय सो वस्तु, भोग कहावै और जो बार-बार भोगने में आवे, सो वस्तु उपभोग कहावै है। तहां भोग वस्तु के दोय भेद हैं—एक तो भोग-योग्य वस्तु है। दूसरी भोग-अयोग्य वस्तु है। जहां अन्न, मेवा, पकवान् इत्यादिक निर्दोष वस्तु सो तो भोग वस्तु हैं तथा मिष्ट,

तिक्त, कटुक, खारा, दुग्ध, घृतादिक, षट्रस—ये भोग-योग्य वस्तु हैं तथा चन्दन, केशर, कपूर, गन्धादिक अन्तर्जाति सर्व वस्तु। खाद्य, स्वाद्य, लेय, पेय इत्यादिक ये सब भोग-योग्य वस्तु जानना और कन्द-मूल आदि बाईस अभक्ष्य, अभोग-योग्य वस्तु हैं, सो ये सब तजने योग्य जानना। ऐसे भोग वस्तु दोय रूप कहीं और स्त्री, वस्त्र, आभूषण, चाँदी, स्वर्ण, रत्न, माणिक, मीती, हीरादि रत्न जाति और देश, नगर, मन्दिर, हस्ती-घोटकादि, चौपद तथा दोपद-दासी, दास, सेवक। ऐसै ये चेतन-अचेतन करि दोय भेद रूप उपभोग वस्तु हैं। सो इन भोगोपभोग का प्रमाण राख लेना, सो भोगोपभोग परिमाण शिक्षाव्रत है। सो याके पांच अतिचार कहिये हैं। प्रथम नाम—सचित्त, सचित्तसम्बन्ध, सम्मिश्र, अभिषव और दुःपक्वाहार। इनका अर्थ—तहां सचित्त वस्तु का भोगना, सो सचित्त नाम अतिचार है।१। तहां सचित्त तैं ढांकी जो वस्तु तथा सचित्त वस्तु ऊपर धरी होय इत्यादिक वस्तु कों सचित्त का संयोग भया होय, सो सचित्त-संयोग है।२। और सचित्ताचित्त वस्तु का मिलाप सहित भोजन लेना, सो सम्मिश्र अतिचार है।३। और तहां अनेक प्रकार बलकारी-पुष्टकारी रस का खावना, सो अभिषव नाम अतिचार है।४। और जो भोजन, लिये पीछे दुःख कर पचै, ग्लानि करै, डकार करै, सो ऐसे गरिष्ठ भोजन करना, दुःपक्वाहार अतिचार है।५। ऐसे पांच अतिचार रहित होय, सो शुद्ध भोगोपभोग परिमाण नाम शिक्षाव्रत है। सो ये व्रत के धारी जो उत्तम फल के लोभी हैं; सो इन दोषों को टालि, व्रत निर्दोष राखैं हैं। इति तीसरा भोगोपभोग परिमाण शिक्षाव्रत।२। आगे अतिथि-संविभाग नाम शिक्षाव्रत कहिये है। तहां तिथि नाम परिग्रह का है। सो जो परिग्रह रहित होय, सो अतिथि है तथा तिथि नाम वांच्छा का है। सो जाके वांच्छा नहीं होय, सो अतिथि है। "मूर्च्छा परिग्रहः"। ऐसा तत्त्वार्थसूत्र का वचन है सो अतिथि के दोय भेद हैं—एक अतिथि तो ऐसा है कि पाप के उदय करि नहीं है अन्न-धन-वस्त्र जाके पास। उदर-पूरण कौं पर-घर फिरै है, याचै है; तौ भी ताके उदर-मात्र की वांच्छा पूर्ण नहीं हो है। ऐसा महादीन, दरिद्री, अनेक रोगन करि दुःखिया, वृद्ध, बालक, अन्धा, लूला इत्यादिक ये असहाय, जिनके पास एक वक्त का अन्न नहीं। कोई दया करि देय तब, पेट भरैं, सुखी होंय। याका नाम वांछा सहित अतिथि है। यह अशरण है, दया करने योग्य है। याका

नाम वांच्छा सहित अतिथि है। अरु वांच्छा है, सो याचना करावै है। ऐसो याचना का धारी, वांच्छा सहित रंक, ताकौं असहाय जानि, दया भाव करि दानका देना। सो करुणा सहित अतिथि का दान है। और वीतरागी, तपसी, ज्ञानी, ध्यानी, यमी, दमी, शान्ति रसका भोगी नग्न दिगम्बर, याचना रहित, जगत् पिता, सर्वका गुरु, त्रिलोक पूज्य, सर्व जीवका पीड़ा-हर, दया सागर, षट्कायिक जीवनकूं अभय-दान का दाता, योगीश्वर, मोक्षाभिलाषी, परीषह सहने कूं साहसी, तन-ममत्व रहित, इत्यादिक कहे गुण सहित जे मुनीश्वर, सो उत्तम पात्र हैं। सो इन पात्रन कूं महा भक्ति-भाव सहित, नवधा भक्ति करि दान देनेहारा दाता, ताके सात गुण हैं। सो ही कहिये है—

गाथा—सध्धा भत्ति सत्तह, विणाण मलुब्ध होय क्षम भावो। जम्मं गुण सुह तज्यो, इव सत्तय गुण ज्ञेय आदाए॥ १३८॥

अर्थ—सध्धा कहिये, श्रद्धा। भत्ति कहिये, भक्ति सत्तय कहिये शक्ति। विणाणं कहिये विज्ञान। अलुब्ध कहिये, अलुब्धता। होय क्षम भावो कहिये, क्षमा भाव होय। जम्मं गुण सुह तज्यो कहिये, अंतका शुभ-गुण, त्याग है। इव सत्तय गुण कहिये, ये सात गुण। ज्ञेय आदाए कहिये, दाताके हैं। भावार्थ-श्रद्धा, भक्ति, शक्ति, विज्ञान, अलुब्धता, क्षमा और त्याग—ये सात हैं। जहां दाताके ऐसा श्रद्धान होय। जो परलोक है। च्यारि गति है। पाप-फल तैं नरक-पशु होय है। पुण्य-फल तै सुर-नरके सुख होय हैं। अरु मुनि का दान, स्वर्ग-मोक्षका दाता है। जिनका संसार रह्या होय, तिनके घर यतीश्वरका दान होय है। ऐसी श्रद्धाका अस्तित्व सहित दान देना सो श्रद्धा गुण है। १। और जो मुनिराज, भोजनकौं अपने घरमें आये। तिनके गुण सूं प्रीति-भाव करना। सो भक्ति गुण है। २। और जगतके गुरुकौं, प्रमाद रहित विनय सहित, भोजन देवै की शक्ति होना सो शक्ति गुण है। ३। और मुनिराजके भोजन विषैं प्रवीणता। सो यथा-योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव जानि, भोजन देय। विवेकी-दाता ऐसा विचारै। जो ये मुनि वृद्ध हैं, तो इनके योग्य पुष्टता रहित भोजन देय। अरु गरिष्ठ देय तौ वृद्ध-मुनि कौं खेद करै। तातैं वृद्धकी वय (उमर) प्रमाण देय। तथा मुनिराज तरुण हैं तो ता माफिक देय। तथा ये मुनि, रोग सहित हैं। सो फलाना रोग है। वैसो ही दवा सहित, भोजन देय। तथा इन यतिका तन, वायु सहित है। तथा पित्त सहित है। तथा कफ सहित है। इत्यादिक तौ द्रव्यकौं विचारै। और ऐसा जानै, जो यह

ऋतु उष्ण है। तथा शीत है। तथा मध्यम है। इन मुनिकी ऐसी प्रकृति है। इन्हें ऐसा भोजन रुचै, ऐसा नहीं रुचै। ऐसा द्रव्य, क्षेत्र, काल भावका विचार करि, मुनीश्वरकों भोजन देनेमें प्रवीणता। सारी दान की विधि जानैं सो विज्ञान गुण है। ४। और मुनिके दान देने योग्य वस्तुनमें लोलुपी नहीं होना। जैसे घर विषै एक-दोय भोजन, अपने रुचिकर बनवाये होंय। ऐसी वस्तु अल्प होय। तो ऐसा नहीं विचारै, जो भोजनकी फलानी वस्तु अल्प भई है, हमने अपने वास्ते कराई है। सो मुनीश्वर कौं देहौं, तो मोकौं नाहीं बचि है। तातैं वह वस्तु नहीं द्यों। और भोजन बहुत है सो दै हों। ऐसा विचार नहीं करै सो अलुब्ध गुण है। ५। मुनिकौं भोजन देते, मान मत्सर क्रोध लोभ क्रूरता सर्व तजि, समता भाव सहित, सर्व जीवन तै स्नेह भाव सहित, क्षमा भाव धारि, भोजन देना। सो क्षमा गुण है। ६। उदारता सहित, लोभ भाव रहित, भक्ति करि भरया, मुनि कौं भोजन देय। सो त्याग गुण है। ७। ऐसे कहे जो दातारके सात गुण, सो इन गुण सहित जो यती कूं दान देय, सो उत्तम फल पावै। सो जो इन सात गुण का धारी दाता, यतीश्वर कौं दान देय, सो नवधा भक्ति करि दान देय है—

गाथा—पितगहणं, उचथाणं, पदधोणमर्चएव होहु पणणामो। मन वय तण त्रण सुद्धा, एषण सुध्यय भक्त णव सुहदा ॥ १३९ ॥

अर्थ—पितगहणं कहिये, प्रतिग्रहण। उचथाणं कहि, ऊंच स्थान। पदधोणं कहिये, पद धोवना। अर्च एव कहिये, अर्चन करना। होहु पणणामो कहिये, प्रणाम करना। मण वय तण त्रण सुद्धा कहिये, मन, वचन, काय इन तीनोंकी शुद्धता। एषण सुध्यय कहिये, एषणा शुद्धि। भक्त णव सुहदा कहिये, ये नवधा भक्ति सुखदाता हैं। भावार्थ—प्रतिग्रहण, ऊंच स्थान अंघ्रि-प्रक्षालन, अर्चन प्रणाम, मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि, और एषणा शुद्धि। ये नव भक्ति हैं। तहां श्रावक, मुनि-भोजन समय, उज्ज्वल वस्त्र धारण करि प्रासुक जलकी झारी सहित अपने मन्दिर (घर) के द्वारे, विधि सहित खड़ा होय मुनि आए, उनको पड़गाहना। सो प्रतिग्रहण नाम भक्ति है। १। जब योगीश्वर ईर्य्या समिति करता दातारकी घरभूमि पवित्र करता दाताके घर विषैं प्रवेश करि भोजनशाला में जाय। तहां ऊंचे आसन पै विनय सहित स्थापना। सो ऊंचस्थान नाम भक्ति है। २। तहां मुनिराजके दोऊ चरण-कमल कौं, श्रावक अपने दोऊ हाथन तैं स्पर्श करि अपने हस्त तैं साफ करता, प्रासुक अल्पजल तैं पद धोवना सो पद धोवन नाम (अन्घ्रि प्रक्षालन) भक्ति है। ३। और पीछे अष्ट द्रव्य तैं,

जगत्‌गुरुकी पूजा करनी सो अर्चन भक्ति है। ४। और पीछे विनय सहित नमस्कार करना सो प्रणाम भक्ति है। ५। और मन को, भक्ति सहित, विनय रूप करि, मुनीश्वर में मन लगावना। उत्साह सहित, प्रमाद रहित विकल्प तजि, एकाग्र होय मुनिके दानमें मन राखना सो मनः शुद्धि भक्ति है। ६। और जहां मुनीश्वरके भोजन समय, घर-जन तैं वचन बोलना-कोई कारण पायके सलाह करनी होय तौ परम्पराय विचार कैं बोलै सो वचन शुद्धि है। ७। और मुनि कौं भोजन देते समय दाता अपनी काय कौं शुद्ध राखै। और क्रियान तैं छुड़ाय, भोजन देनेमें एकाग्र करि शुद्ध राखना सो काय शुद्धि भक्ति है। ८। और शुद्ध भोजन, अधः-कर्म रहित सो शुद्ध भोजन है। सो अधः-कर्म कहा ? सो कहिये है। अधः-कर्म चार प्रकार है—आरम्भ, उपद्रव्य, विद्रावण और परतापन। इनका अर्थ—जो प्राणीके प्राण घाततैं निपजै। सो आरम्भ दोष है। १। और अन्यजीवनकौं मनवचन काय विषैं दुखी करि भोजन बनावना। सो उपद्रव्य दोष है। २। और अन्यजीवनके अङ्गोपाङ्ग छेदन करि भोजन निपज्या होय। सो विद्रावण दोष है। ३। पर-जीवन कों सन्ताप-क्लेश उपजाय, भोजन निपज्या होय सो परतापन दोष है।४। इन च्यारि दोषों सहित भोजन देय सो अधः-कर्म दोष है ऐसे च्यारि भेद अधः-कर्म रहित भोजन देना सो एषणा शुद्धि भक्ति है। ९। ये नवधा भक्ति कहीं सो दाताके सात गुण, नवधा भक्ति इन गुण सहित मुनीश्वर कौं भोजन देना सो पात्र दान है सो श्रावकके घरमें, जो श्रावकने अपने निमित्त किया होय, तामें तैं भोजन देना सो अतिथि संविभाग व्रत है। सो यति अतिथि हैं, वे भक्ति सहित, दान देने योग्य हैं। भक्ति सहित पात्रन कौं दान दिये, महत्-फलका लाभ होय है सो इन पात्रन कूं अन्नदान, औषधिदान, शास्त्रदान, और अभयदान दीजिये। यहां प्रश्न-जो तुमने मुनि कौं च्यारि ही दान देने योग्य कहे। सो अभयदान कैसे सम्भवै ? अभय-दान तौ दया मयी भावन तै दिया जाय है सो दया एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, इन आदि दीन-दुखी जीवनकी कीजिये। तिनकों अभयदान सम्भवै है। अरु जगत गुरु, त्रिलोक पूज्यकी दया कैसे सम्भवै ? तातैं इनकौं अभय-दान कैसे कह्या ? ताका समाधान-जैसे कोई राजाके प्रबल वैरी थे सो कोईक छल करि, राजाकौं अकेला पाय, ताकौं पकड़िकैं मारनेका उद्यम किया। तब ऐसे समय विषैं, इस राजाका सेवक-महा योद्धा, आय गया सो वानैं अपने नाथ कौं दुःख जान, वैरीन तैं युद्ध किया। अपने पुरुषार्थ तैं

औरन कौं जीति, अपना नाथ-राजा, ताकौं बचाय लाया। पीछे राजाकों सुखी कर, नमस्कार किया। विनित करी कि भो नाथ! मै आपका सेवक हों। ऐसे ही अपने नाथ वीतरागी जो गुरु, तन तैं निष्प्रिय, शत्रु-मित्रमें समभावी, ऐसे गुरुनाथ कौं पापीजन, कोई प्रबल द्वेष-भावतैं उपसर्ग करैं। ता समय महाघोर उपसर्ग मैं कोई महाधर्मात्मा, यतिनाथ का सेवक आय, अपने बल तैं पापीजनकौं दण्ड देय, मुनीश्वर का उपसर्ग टालि, पीछे जाय यतीश्वरकौं नमस्कार करि, स्तुति करि, विनति करै, सो यह मुनि कौं अभयदान भया। ऐसे कहने में कछु दोष नाहीं। तातैं मुनि कौं चारों ही दान सम्भवै। यामैं कछु दोष नाहीं। एता विशेष है कि जो दीनकौं अभयदान देने में तौ करुणा-भाव होय है। मुनि कौं अभयदान देने में भक्ति-भाव होय है। इन च्यारि दानन में अभयदान उत्कृष्ट है। अरु याका फल भी औरन तैं उत्कृष्ट है। जैसे—राजा की और अनेक सेवा करने तैं, राजाकौं मरते राखै, सो उत्कृष्ट सेवा है। मरण समय सहाय करि, वैरी तैं बचाय करि राखै, सो उत्कृष्ट सेवक है। यों ही उत्कृष्ट सेवा का उत्कृष्ट फल है तैसे ही मुनिकौं तीन दान तैं, उपसर्ग तैं बचायने का महान् पुण्य है। तातैं च्यारौं दान यति कौं कहे हैं। इस नय प्रमाण करि समझ लेना कोई नय, शास्त्र बड़ा दान है, सो शास्त्र-दान तैं, जिनवाणी का अभ्यास करि, केवलज्ञान पावै हैं। इस नय तैं शास्त्र-दान बड़ा है। कोई नयतैं अन्न-दान बड़ा है। जहां रोग की बधवारी भये, यति-श्रावकनकौं ध्यान में स्थिरता नाहीं होय। रोग गये ध्यान-ध्येय की प्राप्ति होय है। इस नय तैं ओषधि-दान बड़ा है और जो क्षुधा दिन-प्रति खेद करै, तब शिथिल होय। भोजन बिना तन क्षीण होय। धर्म-ध्यान नाहीं सधै। तातैं तन की स्थिरता तैं, भाव की स्थिरता होय है। भाव की स्थिरता तैं, कर्म नाशि, केवली होय, सिद्ध पद पाय है। इस नय तैं आहार-दान बड़ा है। ऐसे अपनी-अपनी जगह, नय-प्रमाण सर्व ही उत्कृष्ट हैं। यह आत्मा अन्न-दान तैं, सदैव सुखी होय है। अनेक जीवन का पोषण-हारा होय है। ओषधि-दान तैं, शरीर रोग रहित होय। औरन के रोग नाशने की कला का धारी होय। शास्त्र-दान तैं अंग-पूर्व आदि श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान की प्राप्ति होय। आप भवान्तर में औरन कूं ज्ञानदाता होय। अभय-दानतैं भवान्तर में कोटी-भटादि महायोद्धा होय है। दयावान होय तथा अनुक्रम तैं, अनन्तकाल सुख का स्थान, स्थिरीभूत, लोकशिखर पै, सिद्ध होय। ऐसा जानि च्यारि ही दान देना योग्य है। अरु यहां मुख्यता

कथन, अतिथि संविभाग व्रतका है। तातैं अपने भोजनमें अतिथिका संविभाग करना, सो अतिथि संविभाग व्रत है। याके पांच अतिचार हैं। सो ही कहिये हैं। नाम-सचित्त निक्षेप, सचित्तापिधान, परव्यपदेश, मात्सर्य और कालातिक्रम। इनका अर्थ—जहां भोजनकी वस्तु, सचित्त वस्तु पै धरी होय। सो सचित्त निक्षेप नाम अतिचार है। १। जहां भोजनकी वस्तु, सचित्त वस्तुसे ढांकी होय। सो सचित्तापिधान नाम दोष है। २। जहां भोजन समय मुनीश्वरकौं आए जानि, औरकौं कहै, जो मोकूं काम है। तुम मुनिकौं आहार देय लेना। ऐसा कहिकैं, अन्य से अपना भोजन—दान करावना। सो पर-व्यपदेश नाम अतिचार है। ३। जहां और अन्य दातारका दान नहीं देख सकै। तथा अपने भाव; मत्सर सहित राखि दान देवै, सो मात्सर्य दोष है। ४। जहां भोजनका काल उल्लंघि जाय। आप अपने घर-धंधेमें लग गया सो प्रयोजनके वशीभूत होय, मुनीश्वरनिके भोजनका काल उल्लंघि दिया। पीछे सुचिताईमें याद आई। तब द्वार-पेक्षण क्रिया करी, सो कालातिक्रम नाम अतिचार है।५। ऐसे पांच अतिचार रहित होय, सो शुद्ध अतिथि संविभाग नाम व्रत है। ६। ऐसे पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और च्यारि शिक्षाव्रत। ये बारह अणुव्रत (देश व्रत) भये। एक-एक व्रतके, पांच-पांच अतिचार। सर्व मिलकर साठ भये। सो ये व्रत प्रतिमाधारी सम्यग्दृष्टि, सो ताके सम्यक्त्व कौं पांच अतिचार नहीं होय। सो ही कहिये हैं। शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, अन्य दृष्टि प्रशंसा और अन्य दृष्टि संस्तव। इनका अर्थ — जिनभाषित कहे जो धर्म—अंग, तिनके सेवनेमें शंका राखना। सो शंका नाम अतिचार है। १। जहां धर्म सेवनतें इस भव सम्बन्धी वांछा तथा परभव सम्बन्धी वांछा करनी, सो कांक्षा दोष है। २। जहां धर्मात्मा पुरुष आत्मकल्याणके निर्मल दृष्टिके धारी पुरुषनके तनमें रोग देख, तन मैल तैं लिप्त देख, मुख नासिका देख, कुरूपित अंग देख ग्लानि करनी। सो विचिकित्सा दोष है। ३। जहां मिथ्यादृष्टि [illegible], प्रशंसा करनी। [illegible] सो अन्यदृष्टि प्रशंसा नाम दोष है। ४। [illegible] [illegible] [illegible]

६६

करै। सो सर्व जीव आप समानि जानि, ये त्रस-हिंसाका त्यागी श्रावक, यत्न तैं करै। कैसा है धर्मी श्रावक ? निरंतर समता सहित काल कौं व्यतीत करने की है इच्छा जाकैं। निराकुल परिणति सहित, शान्ति रसका अभिलाषी। षट् काय जीवन कूं अभयदान देने की है अभिलाषा जाकैं। ऐसा धर्मात्मा श्रावक भव्य, तन-धन तैं उदास होय, सल्लेखना व्रत धारै सो कैसे धारै ? सो कहिये हैं। तहां प्रथम तो सर्व जीवन तैं समता-भाव करै। पीछे अपने तन, धन, राज्य-लक्ष्मी, इन्द्रिय-सुख कुटुम्बी, सज्जन तिन सर्व तैं मोह—ममता भाव तज, सन्यास धारै सो कब धारै ? सो समय कहिये हैं। कै तो यह धर्मात्मा अपना आयु-कर्म नजदीक आया जानै, तब सन्यास धारै। तथा शरीरमें कोई तीव्र रोग जानै तब। तथा शरीर पै कोई दुष्ट पशु सिंह-सर्पादिक का उपद्रव जानै तब सल्लेखना करै। कोई कारण पाय, राजादिकका तीव्र कोप जानै, इत्यादिक दीर्घ उपद्रव जानै, तौ सल्लेखना करै सो ता समय यह श्रावक ऐसा विचारै, जो इस उपद्रव तैं बच्या तौ अन्न-जल ग्रहण करूंगा नहीं तौ अन्न-जलादिकका त्याग है। ऐसी प्रतिज्ञाका धरना, सो तो सागार सन्यास है। अपने बचनेका उपाय कछू नहीं भासै, तौ अनागार सन्यास करै। उपसर्ग तौ नहीं, परन्तु अनन्त संसार भोग तैं उदासीन काय धरने तैं आकुलित होय कैं, मुनिपद धरनेकूं असमर्थ, नहीं पाया है यतिपद धरनेका द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव जानै सो भव्यात्मा, अपने तन तैं निष्प्रिय होय, काय त्यजनेका उपाय शनैः शनैः करै है। सो ही कहिये है। प्रथम तौ जातैं अपने परिणामनकी विशुद्धता बधै, संक्लेश भाव नहीं होंय, ऐसा तप करै। एकांतरे करै, पीछे एक-एक उपवास साधै। पीछे दोय-दोय उपवास साधै। ३, ४, ५, उपवासका साधन करै। पीछे पारणाके दिन अल्प आहार लेय-ऊनोदरी साधै। ऐसे केतेक दिन करि, पीछे रसत्याग साधै। पीछे केतेक दिन गये नर्म भोजन, पीछे पतला दलिया, पीछे भातका पान, पीछे अन्न तजि दूध, पीछे दूध तजि दही। पीछे दही तजि, मही। फिर मही तज, जल राखै। ऐसे करते-करते अनुक्रम तैं, जब काय त्यजनेका समय नजदीक जानैं; तब अपने सज्जन-कुटुम्बी जन बुलाय, उनतैं मोह घटावैके निमित्त हितोपदेश देय, महा हित मित वचन कहि, उन्है संतोषित करै। पीछे यह सम्यग्दृष्टिका धारी, जगत तैं उदासी आत्मा, शरीरकौं भिन्न अवलोकन-हारा, सर्व जीवनकों सुख चाहता ऐसा विचारै—जो सर्व जीव साता पावैं। कोई भी प्राणी, दुखी मत होऊ।

कोऊ रोग पीड़ा, दुख-दरिद्र, अन्न तन करि दुःखी मत होऊ। मेरे सर्व जीवनतैं क्षमा-भाव है। सर्व जीव मोक्ष-मार्ग पावने का भाव करौ। अब मैंने मन-वचन-काय करि एकेन्द्रिय, विकलेंद्रिय आदि त्रस-स्थावर, जीव सो सर्वकूं अभय-दान दिया। सर्व जीव मेरे पै दया-भाव करि अभय-दान देओ। ऐसे सर्व जीवनतैं क्षमाय, पीछे अपनी आलोचना करै कि जो मैंने अपनी अज्ञानता करि, मोह फांसी में फांसि, राग-द्वेष करि पर-वस्तु में ममत्व अपनाय-अपनाय, पाप-फन्द विषैं आत्मा उलझाया। मनुष्य पर्याय पाय, वृथा दुःख बधाया। हाय! हाय! अज्ञान चेष्टा का करनहारा, भ्रम बुद्धि मो-सा और कोई नाहीं। देखो, जो आगे महान् बुद्धिमान् भये तिनने मनुष्य पर्याय पाय, धर्म साधन किया। पीछे संसार-भोगनतैं उदास होय, राज्य-सम्पदा व इन्द्रिय-जनित सुख काले नागके समान जानि, तजे। तन तैं ममत्व निर्वार, दिगम्बर होय, नग्न मुद्रा धारि, मोह फांस छेद, वन विहारी भये। बाईस परीषह सह के, कर्म रूपी ईंधनकौं ध्यान रूपी अग्नि में भस्म करि, सिद्धलोक विषैं जाय तिष्ठे। अविनाशी भये। काय धरने तैं निरञ्जन भये ते ही धन्य हैं। मैंने तो कल्पवृक्ष समान मनवांछित सुख को देनेहारी मनुष्य पर्याय पाय, हालाहल विष समान विषय चाहे। सुकृत कछू नहीं बन्या, अरु मरने के दिन आय पहुँचे इत्यादिक आलोचना करि, कषायन का मद तोड़, मन्द कषायी होय कैं पीछे ये पवित्र बुद्धि का धारी, महाविनय सहित, नम्र भावन तैं, पञ्चपरमेष्ठी कौं नमस्कार करि बारम्बार तिन पञ्च गुरुन की स्तुति पढ़ता, परिणति विशुद्धि राखकैं, यह सर्व नय का वेत्ता, श्रावकन की लौकिक परम्पराय-मर्यादा का जाननहारा, अपूर्व गुण का धारी मोह तैं रहित होय व्यवहार पोषणेकौं अपने तन के प्रयोजन धारी कुटुम्बी-मोही जन तैं, यथायोग्य विनय तैं, मिष्ट क्षमा-वचन कहै। शुभ अक्षर उच्चारता, न्याय वचन धर्म रस के भींजे, संसार तैं उदास, मर्यादा प्रमाण वचन कहै। भो कुटुम्बी जनो! अब तांई तुम्हारे-हमारे पर्याय के सम्बन्ध करि एक क्षेत्र विषैं राते दिन रहना भया। तातैं परस्पर मोह के बन्धान करि, एकत्व भया, सो अब हम इस पर्याय तैं भिन्न होंयगे सो तुम कछु मोह-भाव तैं, आर्त्त-भाव नहीं करना। जाकरि अशुभ-कर्म का बन्ध होय, पर-भव में दुःख उपजै, सो ऐसा भाव नहीं करना। तुम सर्व ही जिन-धर्म के वेत्ता, संसार कला विनाशिक जाननेहारे हो। भो पुत्र! तू इस पर्याय सम्बन्धी पुत्र है। दोऊ भले कुल का धारी, धर्मात्मा, सज्जन, अङ्ग का धारी है सो जैसे—हमने इस भव में पर्याय पायकैं न्याय

करि, धन उपारज्या। कुटुम्ब की रक्षा करी। यथायोग्य सज्जन का विनय किया। जिन-धर्म विषैं दृढ़ प्रतीति होय प्रवृत्ते। तैसे तूं भी करियो सो न्याय तैं धन, यश, पुण्य उपजावना। मोह नहीं बधावना। हे इस भव के माता, पिता, स्त्री, भ्रातृ, मित्र हो! हमारे इस पर्याय का नाता है। ये जीव अनन्त-पर्याय में कई बार पुत्र तैं पिता-पिता तैं पुत्र, माता तैं पुत्री-पुत्री तैं माता, स्त्री तैं भगिनी, भगिनी तैं स्त्री, भाई तैं पिता, पिता तैं भाई, मित्र तैं वैरी, वैरी तैं मित्र इत्यादिक अनेक नाते भए। जिस पर्याय में यह जीव मिल्या, तैसा ही नाता पाल्या। अरु ताही रूप प्रवृत्त्या। सो अब इस पर्याय के सम्बन्धी, तुम कुटुम्बी भए हो, सो तुम सबही सज्जन अङ्गी हो। सुकृत्य के इच्छुक हो सो तुमने मेरे ऊपर उपकार करि इस पर्याय का यत्न करि, याकौं बधाय पुष्ट करी। सो मैं अज्ञान रस भीना, अविनय चेष्टाकों धारि तुम्हारी सेवा बन्दगी इस काय तैं कछू नहीं करी। अरु और भी इस पर्याय तैं कछु शुभ कार्य नहीं बना। हे कुटुम्बी प्रीतम हो मैं मन्द बुद्धि, इस पर्यायकूं पाय कुसंग-योगतैं कुमार्ग चल्या। अरु सुपात्रनकूं भक्ति सहित दान नहीं दिया। दीन-दुःखितकूं करुणा करि, दान नहीं दिया। छल-बल करि, पराये धन, प्रपञ्च करि हरे शरीर पाय शीलव्रत नहीं पाल्या। पशुवत् कुशील सेवन किया। सुदेव-सुधर्म-सुगुरु की सेवा नहीं करी। अरु पाखण्डी कुदेव-कुधर्म-कुगुरुकूं शुभ अतिशय सहित जानि, पूजे। सन्तन की संगति तज कर, निन्दा करी। अरु पापाचारी कुमार्गीन की प्रशंसा करी परकौं दोष लगाए, अपने दोष ढांके। शुभाचार तज्या, कुआचार सेवन किया। निशि भोजनादि कुकार्य रूप प्रवृत्त, पाप बन्ध। खाद्याखाद्य नहीं विचाऱ्या। उत्तम-मार्ग तज्या। हीन-मार्ग विषैं गमन किया। अनेक दीन मनुष्य-पशून कूं, द्वेष-भाव करि पीड़े-दुःखी किये। मत्सर-भाव करि सताये। सामान्य प्राण के धारी अनेक जीव, दया रहित भावन तैं हते इत्यादिक तिहारे कुल योग्य नाहीं, ऐसी हीन क्रिया करि, मो मन्द बुद्धि ने पाप बन्ध करि अशुभ का भार अपने सिर लिया। अकार्य सहित प्रवृत्त्या अपयश रूप वासना फैलाई। ऐसे अज्ञानी जीव की, तुमने अनेक बरदासि कर (सह कर), अपनी सज्जनता प्रगट करी। मो तैं मोह बुद्धि करि तुमने अपने पास राखा इत्यादिक भो सज्जन हो! तुम्हारी प्रीति, तुमने विशेष जनाई; परन्तु अहो सज्जन, अङ्गी हो! अहो कुटुम्बी लोगो! अब मेरा आयु-कर्म पूर्ण होने आया सो तुम मोपै, समता-भाव राखो। मैं महाअज्ञान, मोतैं तुम्हारी सेवा कछु बनी नाहीं,

अरु हमारे-तुम्हारे वियोग होने का समय आय लग्या, सो तुम कछु चिन्ता-आर्त्त नहीं करना। ए जीव ऐसे ही अनन्ते नाते करता, अनन्तकाल का जन्म-मरण करता आया। जो पर्याय पाई, सो ही काल ने हरी। परन्तु मेरी अज्ञानता नहीं छूटी। जैसे—कोई अन्याय वा चोरी करनेहारेकूं, राजा अनेक दण्ड देय। पीछे और सामान्य दण्ड तैं नहीं मानै, तौ मारि डारै। ऐसा कठिन दण्ड देख कर भी, यह जीव अमार्ग चोरी नहीं तजै। तौ राजा कहा करै। तैसेही राग-द्वेषादि प्रवृत्तितैं अनेक पाप कार्य किए। ताका फल बहुत प्रकार राग-द्वेष, चिन्ता, शोक, भय इत्यादिक भोगे। तौ भी यह जीव पाप नहीं तजै। राग-द्वेष रूप अपराधकौं करता ही गया। तब कालरूपी राजा ने बड़ा दोषी जान, मारि डारया। तौ भी रागादिक कुमार्ग, मेरा नहीं छूटा। ऐसे अनन्तकाल मोकों भ्रमण करते होय गए। जगत् में गया वहां भी रागादिक कुमार्ग चल्या। तहां काल-राजा ने मारया सो अब भी इस पर्याय में मैंने अनेक-अनेक राग-द्वेष भाव करि, पाप किये सो तातैं कालरूपी राजा के वश भया सो मोकों काल-राजा, अब मारने का उपायी है सो मारेगा। तातैं तुम मोह तजो इत्यादिक अनेक समता करि अनेक वैराग्य भावना सहित, यह सन्यासी-धर्मातमा, अपने चित्तकौं निर्मल करिकैं, शुभ भावना भाय, व्यवहार नय तैं कुटुम्बी-जनकौं अनेक सम्बोधन रूप हितकारी-धर्म सूचक वचन बारम्बार कहि मोह फन्द छुड़ावै। हे जन हो! तुम इस पर्याय के स्नेही हो तुम सब, चित्त देय सुनो। जो तुमने इस पर्याय तैं मोह बधाय करि, अब तांई मेरी योग्य-अयोग्य क्रिया में नजर नहीं करी। अरु स्नेह बुद्धि करि, अब तांई मेरे तन की रक्षा करी। तुमने सज्जनता प्रगट करि, इस तन की प्रतिपालना करी। जैसे—स्नेह बुद्धि के धारी बड़ी बुद्धिवारे करैं, सो जो तुम्हारे करने की थी, सो तुमने करी। परन्तु हे प्रीतम हो! इस तन की स्थिति पूर्ण होने आई, सो अब ना-इलाज है। काहू की राखी रहेगी नाहीं। तातैं इस शरीर तैं अब तिहारा वियोग होयगा। तातैं तुम सबही विवेकी हो। मोह-भाव करि शोक-चिन्ता नहीं करो। अनादि तैं जगत् की ऐसी ही परिपाटी चली आई है। अनेक भवन में अनेक नातान का संयोग भया, अरु छूटा। अब भी तुम तैं कुटुम्ब का सम्बन्ध भया था ये भी छूटेगा। तातैं अब तांई इस तन तैं, तुम्हारी वचन-काय करि, तुम योग्य विनय-क्रिया नहीं भई होय तथा अविनय भया होय, तौ तुम अपनी सरल-बुद्धि करि, क्षमा-भाव करो इत्यादिक शुभ शब्दन करि सबकौं समाधान लाय,

साता उपजाय, लौकिक मोह छुड़ाय, पीछे यह भव्यात्मा च्यारि प्रकार आहार तजन करता भया। सो इन आहारन के नाम—तहां जाके खाये पेट भरै, सो खाद्य आहार है। १। जे लौंग, सुपारी आदि स्वाद के निमित्त खाईये, सो स्वाद आहार है। २। तहां जाकौं अंगुली से चांटिये, सो लेह्य आहार है। ३। तहां जाकौं पानी की नांई पीजिये, सो पेय आहार है। ४। ऐसे खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय—इन च्यारि प्रकार आहार कौं तजन करि, डाभ के विस्तर कौं निर्जीव भूमि शोधि, तापै बिछावै। तापै तिष्ठ करि, साधर्मी जन तैं चर्चा करता, तत्त्व विचार करता, द्वाद्शानुप्रेक्षा विचारता। वीतराग देव का स्मरण, वीतराग गुरु, दया-धर्म इत्यादिक पञ्च-परमेष्ठी के गुणन का चिन्तन इत्यादिक धर्म-ध्यान भावना सहित, काय तैं भिन्न होय। इस भांति सन्यासी काय तजकैं, महाऋद्धि धारी कल्पवासी देव होय है। ऐसे सल्लेखना व्रत जानना। याही व्रत के पञ्च अतिचार हैं। जीवित संशय, मरण संशय, मित्रानुराग, सुखानुबन्ध और निदान। इनका अर्थ—तहां संन्यास लिये पीछे ऐसा विचारना, जो मैं बहुत जीऊँ नाहीं, तो भला है। ऐसा विचारै, सो जीवित संशय अतिचार है।१। जहां संन्यास लिये पीछे ऐसा विचार करना, जो मैं मरूँगा अक नाहीं? अब पर्याय रही भली नाहीं। ऐसी भावना का नाम मरण संशय है। २। संन्यास लिये पीछे ऐसा विचारना, जो फलाना हमारा बाल-मित्र है। तातैं मिलाप होय तौ भला है। ऐसे विचार का नाम मित्रानुराग अतिचार है। ३। तथा अगले भोगे भोगन कूं यादि करै, सो याका नाम सुखानुबन्ध अतिचार है। ४। संन्यास लिये पीछे ऐसा विचारै, जो इस व्रत का मोकौं ऐसा भला फल उपजियो, सो याका नाम निदान-बन्ध अतिचार है। ५। ऐसे ये पांच अतिचार नहीं लागैं, सो शुद्ध सल्लेखना व्रत है। या प्रकार शरीरकौं व्रत सहित तजिये। शरीर तजे के तीन भेद हैं—च्युत, च्यावक और त्यक्त। इनका अर्थ—तहां कदली घात बिना, संन्यास बिना, अपनी सम्पूर्ण आयु-सर्व-भोगकैं, उदय-मरण करै, सो जो शरीर आत्मा नै तज्या, सो च्युत शरीर है।१। अब कदली घात का स्वरूप कहिये है। विष तैं मरै, शस्त्र तैं, जल तैं, अग्नि तैं, पर्वतादिक तैं गिरि मरै। रोग की तीव्र वेदना तैं इत्यादिक कारणन तैं, मरै सो कदली घात मरण है। सो इस कदली घात सहित, संन्यास रहित जा शरीरकौं आत्मा ने तज्या, सो च्यावक शरीर है। २। तीसरे त्यक्त के तीन भेद हैं। याकौं आत्मा चाह करि, अपनी इच्छा

सहित तजै है। तातैं याका नाम त्यक्त कह्या है। सो ये त्यक्त शरीर, महाउत्तम मुनि तथा श्रावक का होय है। ताके तीन भेद हैं। उनके नाम—भक्त प्रतिज्ञा, इंगिनी और प्रायोपगमन। इनका अर्थ—तहां भोजन का त्याग करै, सो जघन्य तौ अन्तर्मुहूर्त काल भोजन कौं तजै। अरु उत्कृष्ट बारह वर्ष लूं अनशन करै। मध्यम के अन्तर्मुहूर्त तैं लगाय, एक-एक समय अधिक, उत्कृष्ट बारह वर्ष पर्यन्त के अनेक भेद हैं। सो ऐसे भोजन का प्रमाण सहित—अनशन करि शरीर तजै, सो भक्त प्रतिज्ञा संन्यास सहित शरीर है।१। जा शरीर तजतैं, संन्यास करनेहारे के शरीर में, तप के योग तैं कदाचित् खेद होय तौ अपने शरीर का वैय्यावृत्य आप ही अपने हाथ तैं करै। शिष्यादिक तैं नहीं करावै। भक्त प्रतिज्ञावाला संन्यासी, शरीर में खेद भये अपने हाथतैं अपने पांव, पीठ, शीश आदि अङ्गोपाङ्ग दाब लेय था और शिष्यादिक तैं भी अङ्गोपाङ्ग दबावै था। अरु जो परतैं वैय्यावृत्य नहीं करावै, अपने हाथ तैं अपना वैय्यावृत्य करै। सो इंगिनी संन्यास सहित शरीर है।२। नहीं तौ आप करै, नहीं और पै संन्यास में वैय्यावृत्य करावै। सन्यास लिये पीछे जो-जो उपद्रव-खेद-दुख शरीर पै आवैं सो समता सहित एकासन सहै। शरीर कौं चलाचल नहीं करै। संन्यास धरतैं जैसा आसन सूं, जा भांति बैठा था, ताही तरह जीवन लूं रहै। हालै-चालै नाहीं। यह प्रापोपगमन संन्यास सहित त्यक्त शरीर है।३। ऐसे इन आदि संन्यास के अनेक भेद हैं। जो भव्यात्मा, जन्म-मरण करि डरया होय तिस निकट संसारी कौं ऐसे सन्यास सहित काय तजवे कौं मिलै है। जे दीर्घ संसारी, मोही, धर्म-वासना रहित हैं तिन जीवन कूं ऐसा मरण नाहीं होय। ऐसा जानना।

इति श्री सुदृष्टि तरङ्गिणी नाम ग्रन्थके मध्यमें, श्रावककी एकादश प्रतिमा विषैं, सम्यक् सहित बारह व्रत कूं लिये, सल्लेखना व्रत मिलाय इन चौदहके पांच-पांच अतिचार सहित, दूसरी व्रत प्रतिमाका कथन करनेवाला चौंतीसवां पर्व सम्पूर्ण ॥ ३८ ॥

आगे तीसरी सामायिक प्रतिमा का स्वरूप कहिये है—

गाथा—सहु चर किप्पा भावो, तव संजय वरत भाव बधवाए। आरदि रुद्द विहीणो, सामायो तस भासयो सुत्त ॥ १४० ॥

अर्थ—सहु चर किप्पा भावो कहिये, सर्व जीवन पै क्षमा भाव। तव कहिये, तप। संजय कहिये, संयम वरत कहिये, व्रत। भाव बधवाए कहिये; भाव वृद्धि होय। आरदि रुद्द विहीणो कहिये, आर्त्त-रौद्र-ध्यान से

रहित। सामायो तस भासयो सुत्त कहिये, याकौं शास्त्र में सामायिक कह्या है। भावार्थ—तहां पञ्च स्थावर हैं सो पृथ्वी, खोदै नाहीं। जल, मथै नाहीं। अग्नि जलावै-बुझावै नाहीं। पंखादि तैं वायु-कम्पनादि करि, वायुकाय हनै नाहीं। वनस्पतिकूं छेदै-विदारै-छीलै नाहीं। ये पांच स्थावर-एकेन्द्रिय जीव, तिनमें समता-भाव करि, दया धारि, इनकौं अभयदान देय, घातै नाहीं। बे-इन्द्रियादि त्रस-स्थावरनकौं समान जानि, त्रस हिंसा का त्यागी, सर्व कौं नहीं सतावै। आप समान जानि सर्व तैं समता-भाव राख अपनी तरफ तैं सर्व कूं सुख का अभिलाषी त्रस-स्थावर जीवन कूं अभयदान देवे रूप परिणति राखै। अन्तरग-बहिरङ्ग तप बारह संयम बारह व्रत इनकी बधवारी वांछै। आर्त्त-रौद्र-ध्यान का त्यागी होय ऐसे भाव वर्तै, सो सामायिक जानना। ताही सामायिक के पञ्च अतिचार हैं। सो कहिए हैं। प्रथम नाम—मन दोष, वचन दोष, काय दोष, विस्मरण दोष और अनादर दोष—इन पांच दोषन का अर्थ कहिये है। तहां सामायिक करते समता-भाव तजि कैं प्रमाद तैं अनेक आर्त्त-रौद्र भाव-विकल्प करै, सो मन दोष है। १। जहां सामायिक करते पञ्च-परमेष्ठी की स्तुति आलोचना तत्त्व का विचार वैराग्य-भाव का चिन्तन ध्याता-ध्यान-ध्येय का विचार इत्यादिक शुभ क्रिया तजि प्रमादवशात् दुर्वचन बोल उठना, सो वचन दोष है। २। जहां सामायिक करते शुद्धासन तजि आसन चञ्चल किया करै, सो काय अतिचार है। ३। जहां सामायिक करते पाठ भूलि-भूलि जाय कि जो मैंने यह पाठ पढ़्या अक नाहीं? मैं कहा पढ़ों हौं? ऐसा भ्रम-भाव रहै, सो विस्मरण दोष है। ४। सामायिक करतें वचन-काय प्रमाद सहित राखै। अनादर-भाव तैं सामायिक करै, सो अनादर दोष है। ५। जो इन पांच दोषोंकौं टालै, सो ही याका नाम शुद्ध सामायिक व्रत है। इस सामायिक व्रत के बत्तीस अतिचार हैं। तिनकौं व्रतधारी धर्मी टालै है, सो ही कहिए है। प्रथम नाम—अनादर, ततध्व, प्रतिष्ठा, प्रतिपीड़ित, दोलायत, अंकुश, कच्छप, मछोव्रत, मन, दुष्ट, बन्धन, भय, विभ्य, गौरव-वृद्धि, गौरव-न्यति, प्रतिनीति, प्रदुष्ट, शब्द, ताड़ित, हीलित, त्रिबलित, संकुचित, दृष्टि, अदृष्टि, करमोचन, लब्धि, आलब्धि, हीन, उद्धत्, दो चूलि, मूक दादुर और चूलित—ये बत्तीस हैं। इनका अर्थ—तहां सामायिक करते नमस्कारादि क्रिया करै, सो प्रमाद सहित, विनय रहित करै, सो अनादर दोष है। १। सामायिक करते, विद्या के मद सहित, उद्धत् होय, अशुद्ध क्रिया करै, सो ततध्व दोष

है। २। जहां प्रतिमाजी के बहुत ही नजदीक सन्मुख होय, सामायिक करै, सो प्रतिष्ठा दोष है। ३। जहां दोऊ हाथ तैं जंघा दाबि के नमस्कार करै, सो प्रतिपीड़ित दोष है। ४। सामायिक करै, सो पाठ विसर्जन होय जाय तथा शुद्ध ही पढ़ै, तौ चित्त संशय रूप होय, कि यह पाठ पढ़्या अक नाहीं ? पढ़्या तौ मोकौं यादि नाहीं। ऐसे मन चंचल रहै अरु कायकूं, झूले की नांईं झुलाया करै, सो दोलायित अतिचार है। ५। हाथ की अंगुली कूं अंकुशाकार करि, मस्तक मैं लगाय नमस्कार करै, सो अंकुश दोष है।६। सामायिक करते कटि पै हाथ लगाय कायकौं संकोच, कछुवा के आकार करै, सो कच्छप दोष है। ७। सामायिक करते कटिकौं हिलावै, मछली की नांईं चंचल राखै, सो मछोव्रत दोष है। ८। जहां सामायिक करते, भया जो सूर्य का घाम ताके सहनेकूं असमर्थ होय, परिणति संक्लेश रूप करै, सो मन दुष्ट नाम अतिचार है। ९। सामायिक करते कायकौं हाथ तैं दाबि, दृढ़ बन्धन-सा करै, सो बन्धन अतिचार है। १०। सामायिक करते कोई देव, मनुष्य, सिंह, सर्पादि जीवन के भय सहित कायोत्सर्ग करै, सो भय दोष है। ११। सामायिक करते, अपने तौ स्थिरता नाहीं, अरु धर्म-फल की इच्छा भी नाहीं; परन्तु गुरु के भय से तथा संघ के भय से, सामायिक क्रिया करै, सो परमार्थ रहित करै, सो विभ्य दोष है। १२। तहां च्यारि प्रकार संघ के खुशी करनेकौं तथा अपनी महिमा पर के मुख तैं सुनिवेकौं, शोभा के हेतु सामायिक करै, सो गौरव-वृद्धि दोष है। १३। अपना माहात्म्य करायवेकौं, इन्द्र के सुखन की इच्छा सहित, मान-बड़ाई के हेतु सामायिक करै, सो गौरव दोष है। १४। जो गुरु के पास सामायिक करूँगा, तो कोई मेरा प्रमाद देख, औगुन काढ़ैंगे, ऐसा जानि, एकान्त मैं गुरु तैं छिपकर सामायिक करै, सो न्यति दोष है। १५। जहां सामायिक करते गुरु की आज्ञा रहित, गुरु तैं प्रतिकूल होय, अपनी इच्छा रूप, गुरु के कहे बिना ही, गुरु की आज्ञा बिना ही, सामायिक करै, सो प्रतिनीति दोष है। १६। सामायिक करते, अन्य जीवन तैं द्वेष-भाव राखै तथा युद्ध करने का तथा कलह करने का अभिप्राय राखै, सो प्रदुष्ट दोष है।१७। जहां गुरु करि ताड़ित जो गुरु ने अविनयी जानि तथा प्रमादी जानि, धर्म-भावना रहित जानि, संघ तैं काढ़ि दिया होय। सो गुरु के भय तैं तथा संघ के भय तैं, सामायिक करै, सो ताड़ित दोष है। १८। सामायिक करते, मौन तजि बोल उठै, सो शब्द दोष है। १९। तहां सामायिक करते, गुरु की अविनय रूप भाव हो जांय गुरु के मान-खण्डन रूप

परिणति होय जाय, माया रूप भाव होंय, सो हीलित दोष है। २०। सामायिक करते ऊँचा होय, त्रिबली भङ्ग करै तथा ललाट पर त्रिबली करै, सो त्रिबलित दोष है। २१। जहां सामायिक करते, सिरकूं हस्त तैं छीय करि, कायकौं संकोच करि, गठिया समान होय करै, सो संकुचित दोष है। २२। गुरु के देखते तथा अन्य कोई के देखते सामायिक करै, तब तौ महाविनय सहित खड़ा होय करै। काय की शुद्ध भली क्रिया सहित सामायिक करै अरु कोई नहीं देखता होय, तौ प्रमाद सहित स्वेच्छाचारी होय करै। चहुँ दिशा अवलोकन रूप काय-मन चंचल राखै इस भांति सामायिक करै, सो दृष्टि दोष है।२३। सामायिक करते अपने गुरुतैं अपच्छिन्न होय तथा संघ में और वृद्ध मुनि, बड़े-बड़े गुरुजन तैं दृष्टि चुराय, अपने तन की शोभा निरखै, सो काय रूप देख राजी होय मन-तन चलित-चंचल राखै, सो अदृष्टि दोष है। २४। जहां च्यारि संघ तथा अन्य जन राजी करवेकौं सामायिक करै, सो करमोचन दोष है।२५। तहां सामायिक करते, आपकूं पीछी आदि पदार्थ की प्राप्ति वांछै जो मेरे पास पीछी शास्त्रादि उपकरण नाहीं, सो मिलैं तौ भला है। ऐसी जानि सामायिक करै, सो लब्धि दोष है। २६। श्रावक के षट कर्म रूप उपकरणान की प्राप्ति जानै, तो सामायिक करै, सो आलब्धि दोष है। २७। जहाँ काल की मर्यादा टालि, सामायिक करै अरु ग्रन्थ के अर्थ विचार रहित भाव राखै, सो हीन दोष है। २८। तहां शीघ्र-शीघ्र क्रिया करि, अल्पकाल में सामायिक पूर्ण करै तथा धीरे-धीरे प्रमाद सहित क्रिया करि, बहुत काल में पूर्ण करै अरु पाठ पढ़ै, सो भूलि-भूलि जाय, फेरि पढ़ै। फेरि पढ़ै, सो फेरि भूलै। ऐसी सामायिक करै, सो उद्धत् दो चूलि दोष है। २९। जहां सामायिक करते, मूके की नांई हूं-हूं शब्द बोलै और अंगुली-नेत्रादि तैं संज्ञा बतावै, सो मूक दोष है। ३०। तहां सामायिक करते शोर करि पाठ पढ़ै। जैसे मैंड़क शोर करै, तैसे पाठ करते शब्द बोलै, सो बहुत शोर करै सो दर्दुर दोष है। ३१। सामायिक करते एकासन तैं ही, एक क्षेत्र तिष्ठता, सर्व देव गुरु की स्तुति करते नमस्कार करै अरु पाठ पढ़ै, सो महामिष्ट स्वरतैं, राग सहित, पर का मन रंजायवेहारा स्वर तैं पढ़ै, सो चूलित दोष है। ३२। ऐसे कहे बत्तीस दोष, तिनकौं टालि सामायिक करै, सो शुद्ध सामायिक धारी श्रावक है। इति बत्तीस दोष। आगे बाईस दोष, सामायिक करते कायोत्सर्ग करै तब टालै सो कहिये हैं। तहां प्रथम नाम—घोटक, लता, स्थम्भ, कूट्या, माला, बधू, लम्बोतर, तन-दृष्टि, वायस, खलिन, जुग, कपित्थ,

सिर-कम्पित, मूक, अँगुली, भ्रू विकार, सुरापान, दिशावलोकन, ग्रीवा, परिणामन, निष्ठीवन और अङ्गमरक्ष। इनका अर्थ—तहां घोड़े की नांईं खड़ा होय सामायिक करै, सो घोटक दोष है। १। सामायिक करते शरीरकों बेलि की नांईं आंका-वांका करै, सो लता दोष है।२। सामायिक करते शरीरकों स्थम्भ तथा भीति का सहारा देय खड़ा होय सामायिक करै तथा शास्त्रन के अर्थ चिन्तन करि रहित, शून्य चित्त करि, स्तम्भ की नांईं खड़ा होय, सामायिक करै, सो स्तम्भ दोष है। ३। सामायिक करते महल, गुफा, गृह, कुटी, मण्डपादिक वांच्छै, सो कूट्या दोष है।४। सामायिक करते ऊँचा सिंहासन, पाटा या चौकी पर खड़ा होय, सामायिक करै, सो माला दोष है। ५। जैसे—कोई भली स्त्री, लज्जा सहित, अङ्ग छिपाय खड़ी होय तैसे वस्त्र तैं व कर तैं अङ्ग ढांकि खड़ा होय, सो वधू दोष है। ६। सामायिक करते व्युत्सर्ग समय लम्बे हाथ करि अर्द्ध नमस्कार करै, सो लम्बोतर दोष है।७। सामायिक करते अपने शरीरकों निरखै सो भला कोमल, सुन्दर, शुभाकार देख खुशी होय अरु मलिन, क्षीण शोभा रहित देखे तथा श्याम कर्कश देखै, तो मन में बेराजी होय, सो तन दृष्टि दोष है। ८। जहां सामायिक करते काक की नांईं नेत्र चंचल राखै, चारों दिशा अवलोकन करै, सो वायस दोष है। ९। सामायिक करते घोटक की नांईं दांत चबाया करै। मुख तन कठोर राखै, सो खलिन दोष है। १०। सामायिक करते वृषभ की नांईं नार (ग्रीवा) कूं ऊँची-नीची करै, सो जुग दोष है। ११। सामायिक करते मूंकी बांधि सामायिक कूं खड़ा होय, सो कपित्थ दोष है। १२। सामायिक करते शीश धुनै-हिलावै, सो शिरःकम्पित दोष है। १३। सामायिक करते मुख नाक नेत्र बांके (टेढ़े) करता जाय, सो मूक दोष है। १४। सामायिक करते हाथ-पांव की अंगुली हिलावै, सो अंगुली दोष है। १५। सामायिक करते नेत्र वक्र करै, भौंह धनुषाकार चढ़ावै, दृष्टि बांकी करै, सो भ्रू विकार दोष है। १६। सामायिक करते मतवाले की नांईं भूमैं, सो सुरापान दोष है। १७। सामायिक करते नीचा-ऊँचादि दशों दिशा, इत-उत देखा करै, सो दिशा अवलोकन दोष है। १८। तहां सामायिक करते ग्रीवा (गर्दन) कों इत-उत हिलाय बांकी नीची-ऊँची करै, सो ग्रीवा दोष है। १९। सामायिक करते ध्यान तजि और ही क्रिया करने लागै, सो परिणामन दोष है। २०। सामायिक करते मुख तैं फूकै, नाक तैं नाक मैल काढ़ै तथा तन के अङ्गोपाङ्ग मर्दन करि मैल

उतारे तथा मुख में जीभकूं हिलावै, फेरचा करै। दाँतनकूं होंठ तांईं चलावै पद्मासन तिष्ठता, पांव की पगथली छीया करै—मसलै सो निष्ठीवन दोष है। २१। सामायिक करते नीति करने का स्थान, मल करने का स्थान छीवै, सो अङ्गमरक्ष दोष है।२२। ऐसे सामायिक के पांच अतिचार तथा बत्तीस और बाईस एते अन्तराय टालि कैं धर्म फल का लोभी सामायिक प्रतिमा का धारी, अपने व्रत की रक्षा करता सामायिक करै, सो सामायिक कौन स्थान में करै ? सो स्थान बताइये है। जहां सूना महल होय, घर-मन्दिर सूने होय तथा बिना धनी के ममत्व रहित जामें कोई का ममत्व नाहीं होय ऐसे मण्डप होंय तथा सिंहादिक के ममत्व रहित गुफा होय। तहां सामायिक करै तथा वन श्मशान भूमि वृक्ष की कोटरन में जिन-मन्दिर इत्यादि एकान्त स्थान शुद्ध देख। जहां अति शीत नहीं होय, अति गर्मी नहीं होय। जहां दंश-मसकादि नहीं होंय। जहां कोलाहल शब्द नहीं होय। जहां काहू का युद्ध नहीं होय, जहां परस्पर काहू के कटुक शब्द नाहीं होंय। इन आदिक शुद्ध गफा। सो जीव रहित, वैराग्य भावना के बधावने कूं कारण, निर्जन स्थान होय। तहां तिष्ठ कैं मन-वचन-काय करि एकाग्र, शुद्ध होय। सर्व जीवन तैं दया-भाव करि, कोमल भावन सहित, सामायिक करै, सो शुद्ध सामायिक प्रतिमा का धारी, उत्तम श्रावक जानना सो सामायिक समय लंगोट मात्र आदि अल्प-परिग्रह का धारी होय तिष्ठै। चित्त की वृत्ति निर्मल, मुनि समान राखे, अपने तन तैं ममत्त्व-भाव तजि, वैराग्य-भाव का समूह मोक्ष-मार्ग के विहार करने की इच्छा का धारक, ऐसा साधर्मी श्रावक। नहीं चाहै है च्यारि गति के शुभाशुभ शरीरन का वास तथा अपने पदस्थ तैं ऊपर के स्थान चढ़वे की है इच्छा जाकैं। ऐसा जगत्-सुख तैं उदासी, श्रावक-धर्म का धारी, तीसरी सामायिक प्रतिमा धारी है। ३।

इति श्री सुदृष्टि तरंगिणी नाम ग्रन्थ के मध्य में एकादश प्रतिमा के कथन विषैं तीसरी प्रतिमा का कथन करनेवाला पैंतीसवाँ पर्व सम्पूर्ण भया ॥ ३५ ॥

तहां आगे चौथी प्रोषध प्रतिमा, ताकौं कहिये है। सो सर्व पापारम्भ का त्याग करि, शरीर-भोगन की इच्छा निवार, उदासीन-भाव धारण करि, धर्म्यध्यान का अभिलाषी होय, खान-पान का तजन करै। सो प्रोषधोपवास है। एक मास विषैं दो अष्टमी, दोय चतुर्दशी—ये च्यारि उपवास करैं सो तेरस के दिन प्रभात उठ, भगवान

का पूजन करै। पीछैं शास्त्र श्रवण-पठन करै, दोय पहर धर्म्यध्यान सेय, मुनि-श्रावक कूं दान देय, आप भोजन करै। सो निष्प्रमाद होय रहने कों अल्प भोजन करि, पीछे षोडश पहर खान-पान का सेवना तजै सो दोय पहर तो तेरस के दिन के, च्यारि पहर तेरस की रात्रि के, आठ पहर चौंदस की दिन-रात्रि के, दोय पहर पूर्णिमा के। ऐसे सोलह पहर जागरन, पूजा, ध्यान, स्वाध्याय, चर्चा, शुभ अनुप्रेक्षा का चिन्तन इत्यादिक धर्म्य-ध्यान विषैं पूर्ण करै। पीछे पूर्णिमा के दिन दोय पहर कूं घर जाय, द्वारापेक्षण भावना भाय, मुनि-श्रावक कूं दान देय, दुखित-भुखित कूं सन्तोषित करि, पीछे आप पारणा करै। सो एक बार भोजन करै। ऐसे ही मास-मास के च्यारि उपवास आयु पर्यन्त, प्रमाद रहित होय करै। अरु नीचली प्रतिमा में जो क्रिया कहीं, सो सर्व ऊपरली में गर्भित जानना। नीचे दूसरी प्रतिमा में प्रोषध कह्या। सो वहां शिक्षा-मात्र, साधन रूप कह्या था। अरु यहां चौथी प्रतिमा में प्रोषध का स्वामित्व-भाव है। सो यहां अतिचार रहित, आयु पर्यन्त व्रत का धारना है। तातैं यहां प्रोषध प्रतिमा कही। सो याके पांच अतिचार हैं। सो ही कहिये हैं। अप्रत्यवेक्षित, अप्रमार्जित, उत्सर्गादान, संस्तरोपक्रमण, अनादर-अनुस्मृत्य। अब इनका अर्थ—जहां प्रोषध कों बैठे, सो बिना भूमि शोधै-झाड़ै ही प्रोषध कौं तिष्ठै। सो अप्रत्यवेक्षित अतिचार है।१। और जहां व्रतधारी प्रोषध करते भूमि शोधै तो सही, परन्तु कोमल पीछी तैं तथा कोमल वस्त्र तैं नाहीं झाड़ै, मोटे वस्त्र तैं तथा कठोर पीछी तैं झाड़ै। सो याका नाम अप्रमार्जित अतिचार है। २। और भूमि विषैं, बिना शोधे ही मल-मूत्र का क्षेपण। सो याका नाम उत्सर्गादान है। ३। और प्रोषधधारी जिस स्थान पै बैठे-आसन करै बिछौना बिछावै, सो भूमि शोधै झाड़ै नाहीं। सो याका नाम संस्तरोपक्रमण है।४। और जहां उत्साह बिना, धर्म भावना रहित, प्रमाद सहित, परमार्थशून्य, लौकिक यश का लोभी, और के दिखायवे कौं, अनादर भाव सहित, प्रोषध क्रिया करै, सो याका नाम अनादर-अनुस्मृत्य है।५। ये पांच अतिचार प्रोषधोपवास व्रत के हैं। इन रहित, शुद्ध भावना सहित, वैरागी-व्रती अपने व्रत की प्रतिपालना करै, सो प्रोषध प्रतिमा का धारी उत्तम श्रावक कहिये है। इति प्रोषधोपवास नाम चौथी प्रतिमा। ४। आगे सचित्त त्याग पांचवीं प्रतिमा कहिये है। यह पांचवीं प्रतिमा का धारी श्रावक, सचित्त वस्तु का त्यागी होय है, सो यह सचित्त जल नहीं वर्तै है। हाथ-पाँव-शीशादि अङ्गोपाङ्ग, कच्चे जल तैं नहीं धोवै है। अपने हस्त तैं नदी, सरोवर, कूप,

बावड़ी का जल नहीं भरै। कच्चे जल तैं स्नान नहीं करै। वनस्पती कूं छीले नाहीं, काटै नाहीं। भोगी जीवन के भोगवे योग्य, ऐसी फूल-मालादि तथा महासुगन्धित अनेक जाति के फूल, सो ये व्रती अपने हाथ तैं छीवै नाहीं, पहिरे नाहीं, सूंघे नाहीं। अनेक जाति का सचित्त मेवा-दाख, अनार, केला, आमफल, जामुन, नारङ्गी, जम्भीरी, नीबू, सेव, सीताफल, बेर, बिही, कमरख, खिरनी, खजूर, आंडू, मौलशिरी, तेन्दू, पीलू, अखरोट, अंगूर इत्यादिक भोगी जीवन के भोग योग्य, सचित्त वस्तु का त्यागी नहीं खाय, नहीं छीवै, नहीं तोड़ै और ककड़ी, खरबूजा, तरबूजा इत्यादिक नहीं खाय। अनेक व्यञ्जन, अयोग्य वस्तु, तरकारी जाति, पत्ता, फल-फूल, बौंड़ी जड़ जाति, कन्द जाति, बक्कल जाति, कौंपल जाति, औषध जाति, चमत्कार गुणकों लिये प्रत्यक्ष रोग नाशनहारी इत्यादिक हरी वनस्पति—ये सर्व, विषयी जीवन के भोग्य योग्य वस्तु, सो सचित्त त्यागी धर्मात्मा श्रावक नहीं खाय है। ऐसे अनेक भली वस्तु भोगियों कौं वल्लभ, जिनके भोगवे कूं, भोगी अनेक कष्ट पाय, तिनके निमित्त मन-वचन-काय अरु धन लगाय, तिनके मिलाप कूं अनेक उपाय करि, भोगवैं हैं। तिन भोगन तैं बड़े-बड़े सुभट सुख मानैं हैं। ऐसी वस्तु कूं सचित्त का त्यागी, धर्मात्मा श्रावक, तन-भोगन तैं उदासी, आत्मिक सुख का भोगी, ये सचित्त वस्तु कूं नहीं खाय है। इस सचित्त त्यागी कूं, जगत्-भोग, इन्द्रिय जनित सुख, वल्लभ नाहीं लागैं। यह श्रावक, घर में ही यति सरीखे भाव धरै है। विरक्त भावना सहित, काल-क्षेपण करै सो पञ्चम प्रतिमा का धारी, सचित्त त्यागी है। ५। आगे छट्ठी प्रतिमा का स्वरूप कहिये है। इस प्रतिमा का धारी, रात्रि भुक्ति त्यागी धर्मात्मा, दिन कूं कुशील-सेवन नहीं करै। रात्रि का भोजन त्याग, यहां भया है। तातैं रात्रि भुक्ति त्यागी कहिये हैं। यहां प्रश्न—जो रात्रि भोजन का त्याग यहां किया, सो नीचली प्रतिमावाले, रात्रि में खावते होंयगे? अरु दिन का कुशील यहां तज्या, सो नीचली प्रतिमा में, दिन कूं कुशील सेवते होंयगे? ताका समाधान—हे भाई! तेरा प्रश्न भला है। परन्तु तूं चित्त देय सुनि। अब भी जगत् में ऐसी प्रवृत्ति देखिये है जो हीन-ज्ञानी अरु हीन-पुण्यी, भोले हैं। ते कहैं तो बहुत मुख तैं वाचाल-क्रिया तो विशेष करैं। अरु तिनतैं बनैं कछु भी नाहीं। सो तो असत्यभाषी हैं, पाखण्डी हैं। पर का ठगनेहारा, अपने यश का लोभी, बाल-बुद्धि है। जे महाज्ञानी पण्डित हैं, दीर्घ पुण्यी हैं, सज्जन स्वभावी हैं। सो कार्य तो बड़ा-महत् करैं अरु अपने मुख तैं

अल्प प्रगट करैं। ते धर्मात्मा धीर-बुद्धि हैं। तैसे ही पराये दिखायवे कूं, परके रंजायवे कौं, भोले जीवनका मान हरवे कूं, अपने पद-नमावे कौं, ते पाखण्डी अपने कुज्ञानकी प्रबलता तैं अनेक धर्म-सेवन के स्वांग धरि जप, तप, कथा तो वचन-आडंबर तैं बहुत करैं। अरु इन परमार्थ-शून्य प्राणीन तैं, बनै कछू भी नाहीं। सो जीव तौ धर्मातमा नाहीं। अरु धर्मार्थी भी नाहीं। जे जगत-यश तैं उदासी, जिनने तोड़ी ममता फांसी, ते अल्प कालमैं शिव जासी। स्वर्ग—सम्पदा होय जिन दासी। मिथ्यादृष्टी तिन नाशी। वह भव्य सुखराशी। ऐसे निकट संसारी, धर्मका सेवन तो बड़ा करैं। अरु अपनी महिमा नाहीं चाहैं। सो धर्मात्मा हैं। तातैं तुम विचारौ-देखो जे जीव अल्प से भी धर्म-सेवन कौं उत्कृष्ट जानि; पाप तैं भय खाय हैं। ते जीव ही विषय-कषाय कौं तजि, शुभाचार रूप परणमैं हैं। केई घर-स्त्रीका त्याग करैं। केई दिनका भी भोजन तजि, उपवास करैं। केई जन्म पर्यन्त, स्त्री-विषयका त्याग करैं। केई भव्यात्मा, रात्रि-जलका भी त्याग करैं हैं। इत्यादिक प्रवृत्ति भोले जीव धर्मानुराग तैं करैं हैं। तो जे समता-रसके चखैया, जिनका दर्शन-मोह गया, तब सम्यत्त्व घर भया। भेद-ज्ञान तब लया। तब ऐसा भाव भया, विषय-भोग विषमयी। गुणस्थान चौथा लया। पर सेती भिन्न भया। विषय-राग तब गया। समता भाव परिणाया। बाह्य विषयी सा रह्या। बाकी अंतरंग भेद भया। ऐसे जिन-आज्ञाप्रमाण, तत्त्वके वेत्ता भव्य, अव्रती होय हैं। सो विषयन तैं विरक्त रहैं हैं। येही रात्रि-भोजन नहीं करैं। दिनमैं कुशील नहीं सेवैं। तो हे भव्य! जे पंचम गुणस्थान धारी, व्रती श्रावक हैं। सो प्रथम, द्वितीय, तीसरी, चौथी प्रतिमा, पांचवीं प्रतिमाका कथन, इनका त्याग, इन प्रतिमाओंकी क्रिया-प्रवृत्ति, इनके धारी धर्मी-श्रावक तिनकी वैराग्य दृष्टिका रस, सो तो नीके कथन करि आये हैं। सो नीके सुन्या ही है। सो अब तूं विचार देखि! जो नीची प्रतिमा विषैं स्त्रीका भोग, अरु रात्रि भोजन कहां रह्या? ये छद्म प्रतिमा धारी श्रावक महा उदासीन वृत्तिका धारी, वैरागी, बड़भागी, इनकौं इतना विषय-रस नाहीं, जो दिनमैं स्त्रीका भोग होय ए महा धर्मातमा हैं इन्हें रात्रिकाल विषैं सो स्त्रीका ही नाम मात्र संतोष है तृष्णा रूप नाहीं। ऐसा जानना। ये धर्मी, दिवस विषैं ही एक दिनमैं एक बार ही, अल्प रस भोजन करनहारा, ताके रात्रि-भोजन कहां पाईए? परन्तु जिनदेवकी ऐसी आज्ञा है। जो यहां पांचवीं प्रतिमा तांई, कोई प्रकार अतिचार लागै था। इस भय तैं

नीचली प्रतिमा में नाहीं कह्या अरु इस छट्ठी प्रतिमा विषैं, रात्रि-भोजन का अरु दिन विषैं कुशील का अतिचार भी नाहीं लागै। तातैं व्रत प्रगट किया। ऐसा जानना। सो रात्रि का पिसा, पोया, रात्रि का बींधा, रांध्या, शोध्या, बांट्या, घिस्या, छाण्या, धोया इत्यादिक रात्रि का आरंभ्या ऐसा भोजन होय। सो छट्ठीं प्रतिमा का धारी नाहीं खाय और रात्रि का आरंभ्या-भोजन खाय, तो रात्रि-भोजन का दोष लागै। तातैं इनमें जो कोई अतिचार सूक्ष्म, पहले नीचली प्रतिमा में लागें थे, सो छट्ठी प्रतिमा में यहां नाहीं लागैं हैं। दिन में अपनी स्त्री कौं देख, विकार-भाव होय जाय थे। कभी-कभी सरागता सहित वचन होय जांय थे। काय तैं कोई विकार चेष्टा होय थी। सो अब यहां छट्ठी प्रतिमा में मन-वचन-काय करि, दोष नाहीं लागै। तातैं यहां छट्ठी प्रतिमा विषैं रात्रि-भोजन अरु दिन कूं कुशील का त्याग कह्या है। तातैं याका नाम—रात्रि-भुक्ति-त्याग कह्या। ६।

इति श्रीसुदृष्टि तरङ्गिणी नाम ग्रन्थके मध्ये, एकादश प्रतिमा विषैं, छट्ठी प्रतिमाका कथन करनेवाला छत्तीसवां पर्व सम्पूर्ण ॥३६॥

आगे सातवीं ब्रह्मचर्य्य प्रतिमा का स्वरूप कहिये है। याका नाम—ब्रह्मचर्य प्रतिमा है। सो छट्ठीं तांईं तो स्व-स्त्री का त्याग नहीं है। तौ भी महासन्तोषी, परन्तु पदस्थ-योग तैं अपनी परणी स्त्री कूं, स्त्री-भाव करि जानै है। जो ये मेरी स्त्री है अरु सातवीं प्रतिमाधारी के, स्व-पर-स्त्री दोऊन का त्याग है, सो पर-स्त्री का त्यागी तो पूर्व में था ही। स्व-स्त्री का त्याग, सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमा विषैं है। अब यहां स्व-स्त्री, पर-स्त्री दोऊन का त्यागी भया। अपनी स्त्री कौं भी विकार-क्रिया तैं नहीं देखै। इस प्रतिमा विषैं, महाशील-व्रत का धारी, ब्राह्मण-ब्रह्मचर्य व्रती भया। अब यहां चेतन-अचेतन स्त्री का त्याग भया। तातैं इस प्रतिमाधारी कों, ब्रह्मचारी कह्या है। सो यहां ब्रह्म शब्द के च्यारि भेद हैं। सो ही कहिये हैं—

गाथा—वंभ सुभावो आदा, त्याज वंभोय जोय पय हारो। किय्या वंभाचारो, भत्तो कित्तेय वंभ कुल होई ॥ १४१ ॥

याका अर्थ—वंभ सुभावो आदा कहिये, आत्मा का स्वभाव ही ब्रह्म है। त्याज वंभोय जोय पय हारो कहिये; त्याग ब्रह्म सो याके निज-स्त्री का त्याग। किय्या वंभाचारो कहिये, आचार व्रत का धारी, सो क्रिया ब्रह्म है। भत्तो कित्तेय वंभ कुल होई कहिये, भरत करि किये, सो कुल ब्रह्म हैं। भावार्थ—स्वभाव ब्रह्म, त्याग ब्रह्म, क्रिया ब्रह्म और कुल ब्रह्म—ये च्यारि हैं। इनका विशेष अर्थ—तहां स्वभाव ब्रह्म तो आत्मा का नाम है,

सो ताके दोय भेद हैं। एक ब्रह्म, दूसरा पर-ब्रह्म। तहां कर्म-मल सहित, जन्म-मरण का धारी, चारि गति वासी जीव, सो ब्रह्म है। राग-द्वेष का धारी, इष्ट वस्तु मिले सुखी होय, अनिष्ट वस्तु मिले दुखी होय, सो तो ब्रह्म जानना। भूख-तृषा नाम रोग जाकैं उपजता होय, सो ब्रह्म है। १। जन्म-जरा-मृत्यु रहित होय, अमूर्ति, सर्व दुख-दोष रहित, केवल-ज्ञान का धारी अन्तर्यामी होय, सो पर-ब्रह्म है। ऐसे स्वभाव-ब्रह्म के दोय भेद जानना। २। यहां ब्रह्म नाम आत्मा का जानना ।१। दूसरा ब्रह्म, सातवीं प्रतिमाधारी ब्रह्मचारी, स्व-पर-स्त्री का त्यागी, ताका कथन—ऊपरि करि आये सो याका पद अनुक्रम तैं, प्रथम प्रतिमा तैं लगाय, सातवीं प्रतिमा पर्यन्त, ज्यों-ज्यों त्याग बध्या, त्यों-त्यों प्रतिमा चढ़ी। तातैं याका नाम—त्याग-ब्रह्म है ।२। तीसरी क्रिया-ब्रह्मचारी, ताके जानवेकों उपासकाध्ययन के सातवें अङ्ग ताके अनुसार, बड़े आदिपुराणजी विषैं दश अधिकार कहे। ताके अनुसार कारण पाय, यहां भी लिखिये है—

गाथा—सिसि विद्याय कुलाविधि, वण्णोत्तम पात सेय विवहारो। अवधा अदंड मणनीयो, पज्जा सम्मधाण दह भेयो ॥१४२॥

अर्थ—सिसि विद्याय कहिये, बाल विद्या। कुलाविधि कहिये, कुलाविधि। वण्णोत्तम कहिये, वर्णोत्तम। पात कहिये, पात्रत्व। सेय कहिये, श्रेष्ठ पद। विवहारो कहिये, व्यवहार सत्ता। अवधा कहिये, अबध्यता। अदण्ड कहिये, अदण्डता। मणनीयो कहिये, माननीयता। पज्जा सम्मधाण कहिये, प्रजा सम्बन्धान्तर। दह भेयो कहिये, ए दश भेद हैं। भावार्थ—बाल विद्या, कुलाविधि, वर्णोत्तम, पात्रत्व, श्रेष्ठता, व्यवहारता, अबध्यता, अदण्डता, माननीयता और प्रजा सम्बन्धान्तर—ए दश हैं। जो जीव इन दश क्रियान करि सहित होय सो क्रियाब्रह्म है, सो ही विशेष कर कहिए है। तहां बाल्यावस्थातैं ही विद्या का अध्ययन करि, पण्डित होय। तो शुभाशुभ मार्ग जानै, खाद्याखाद्य जानै, पाप-पुण्य का भेद जानै। केई अज्ञानी-कुवादी आपकों शुद्ध धर्म तैं डिगाय, विषयी, मोही, हिंसक धर्म विषैं लगाया चाहैं तो नहीं लागै। पाखण्डीन के ठगने में नहीं आवै। तातैं तीन कुल का उपज्या, भव्य का बालक होय, सो विद्याभ्यास करै। अरु विद्या नहीं पढ्या होय, तो आप कुधर्म-सुधर्म की परीक्षा नहीं करि सकै। तब अपना भला-धर्म तजि, कुधर्म-सेवन में लागै। परभव बिगाड़ै। अरु अज्ञान भया, खाद्याखाद्य न समझ कें, अभक्ष्य का भक्षण करि, अपनी बुद्धि नष्ट करै। विद्या

बिना, जगत् में निन्दा पावै। दीन कहावै। दीनता के योग तैं याचना करै। तब याचकता के योग तैं, अपने उत्तम-कुल कूं कलङ्क लगावै। तातैं ऐसा जानना, जो सर्व सुख की दाता, अनेक गुण मण्डित, एक विद्या है। ऐसी विद्या का अध्ययन, बाल्यावस्था विषैं ही करना। बालावस्था गये, जिह्वा कठिन होय है। कषाय-अंश विशेष होंय। तिस दोष तैं विद्या-दाता का विनय नहीं सधै। बाल्यावस्था मन्द-कषाय सहित होय है। तातैं बालपने में ही विद्या का अभ्यास करना। ता विद्या करि, पाप तजि पुण्य ग्रहण करै, सो परोपकारी होय है। अपना-पराया भला करै। याका नाम—बाल-विद्या अधिकार है। १। और दूसरे ब्राह्मण कुल का उत्तम है। सर्व विषैं बड़ा है। ब्राह्मण का आचार भी सर्व तैं उज्ज्वल, दया सहित, उत्तम है। अरु एक दिन में एक बार, एक स्थान बैठा, भोजन करै है सो भी जहां अन्धकार नहीं होय उद्योतकारी स्थान होय, तहां भोजन करै अरु अन्धकार गृह में भोजन करै, तो रात्रि-भोजन दोष पावै। तातैं रात्रि रहित, अन्धकार रहित उत्तम स्थान मैं, निर्दोष आहार करै। इन आदिक अनेक शुभाचार होंय अरु कदाचित् ऐसा उत्तम आचार नहीं होय, तो क्रिया-भ्रष्ट भया। कन्द-मूलादि अभक्ष्य भोजन, रात्रि भोजन, अनगाल्या पानी खान-पान करि दया सहित कुभावना सहित होय। सो उत्कृष्ट कुलाचार तैं भ्रष्ट होय। तातैं उत्तम आचार सहित ब्राह्मणकूं, ये कार्य तजना चाहिये। याका नाम—कुलाविधि नाम अधिकार है।२। सर्व कुलन तैं ब्राह्मण कुल की अधिकता है। तो याका उत्कृष्ट चलन ही चाहिये। महादयावान्, पर-जीवन की रक्षा रूप भाव होंय अरु निर्दयी होय तौ शिकारी समान हिंसा करि, पापाचारी होयके, निन्दा पावै। तातैं शुभाचारी सर्व झूठ का त्यागी होय, जो झूठ भाषै, तो ब्रह्म की मर्यादा जाय। तातैं ब्राह्मण सत्यवादी चाहिये। सर्व-चोरी का त्यागी होय। जो चोरी करै, तो राज्य-पञ्च-दण्ड पावै। अपयश होय। तातैं ब्राह्मण चोर कला-दोषतैं रहित चाहिये। पर-स्त्री का त्यागी होय। जो पर-स्त्री लम्पटी होय तो राजा ताका शिर, नाक, कान, पांव, हस्त छेदन करै। पञ्च, जातितैं निकासैं। तौ ऊँच कुलकूं दोष लागै। तातैं ब्राह्मण शीलवान् चाहिये। ब्राह्मण सर्व आरम्भ व बहुत परिग्रह का त्यागी होय निर्लोभी होय इत्यादिक गुणवान् होय, तो शोभा पावै। अनाचारी भया, महाआरम्भ करै। महालोभी होय, दया रहित-सा दीखै तौ उत्तम कुलकौं दोष लगावै। तातैं ब्राह्मण बहुत आरम्भ व

बहुत परिग्रह का त्यागी चाहिये और ब्राह्मण, अपने से ही हीन आचारी, ऐसे हीन देव, हीन गुरुकौं नाहीं सेवै, जैसा आप दयावान् है, शीलवान् समता भावी है, तातैं भी अधिक वीतराग देव गुरु होय, ताकौं सेवै और जैसा आप पुत्र, स्त्री, कुटुम्ब, परिग्रह के योगतैं, क्रोधी, मानी, दगाबाज, लोभी है। ऐसा ही क्रोध, मान आदि दोषोंतैं भऱ्या जो देव गुरु, ताकूं नहीं सेवै। जाकों सेवै, सो परीक्षा करि सेवै। अपने जैसे रागी-द्वेषी, पर-स्त्री, धन, वाहनादि परिग्रह धारी, देव-गुरुकों नहीं सेवै। सर्व दोष रहित, वीतराग, सर्वज्ञ, आरम्भ परिग्रह, स्त्री, धन, घर रहित देव-गुरु की सेवा करै। हीन देव गुरुकों नहीं सेवै तो वर्णोत्तम नाम तीसरा अधिकार है। ३। ब्राह्मण में गुण की अधिकता है। तातै याकूं पात्रत्व-भाव है, ये पात्र हैं आदरतैं दान देने योग्य है अरु बड़े पुरुषन करि, माननीय है। तातैं विवेकी ब्राह्मणकूं, गुण बधावना योग्य है। ये शील, सन्तोष, दया, क्षमा, निर्लोभादि उत्तम गुण करि तो पूज्य है अरु इन गुण बिना, महापुरुषन करि, मानने योग्य नहीं होय। बड़े-बड़े राजा गुणी जन तैं अनादर पावैं। पण्डितन की सभा में जाय, लज्जा पावैं। तातैं ब्राह्मणकौं दान, पूजा, जप, तप, संयम, शील, दया, सन्तोषादि अनेक-अनेक गुणन का संग्रह करना योग्य है। याका नाम—पात्रत्व नाम चौथा अधिकार है।४। और जहां श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं, तिनकौं मिथ्या श्रद्धान तजि कैं, सर्वज्ञ देव-केवली भाषित पदार्थन का श्रद्धान करना योग्य है। कोई सामान्य ज्ञान के धारनहारे मानी जीवन ने, अपना मान पोषवेकों भोले जीवन के बहकावेकों, अपनी इच्छा करि, कल्पित शास्त्र बनाये। तिनमें तीन लोक का स्वरूप यथार्थ कह्या तो तीन लोक का प्रमाण तुच्छ कह्या। सो कोई तो भोले भव्य ऐसा मानैं। जो लोक की रक्षा, निरन्तर भगवान् करैं। नहीं तो कोई चोर या सर्व लोककौं चुराय वस्त्र में समेट लेय जाय। तातैं भगवान् सदैव रक्षा करै हैं और कोई कहैं हैं। जो काहू कर्त्ता ने लोक बनाया है। सो कबहूँ काल पाय, क्षय भी होयगा। ऐसे कल्पित विकल्प करि लोक स्वरूप कहैं हैं। सो असत्य है, ताके भेद कौं जानैं और सर्वज्ञ केवली करि कह्या लोकाकाश रूप—अनादि, अकृत्रिम, अविनाशी, ध्रुव, पुरुषाकार सो सत्य है। ताके भेद कूं जानैं। शुद्ध केवली के भाषे लोक का श्रद्धान करै। मिथ्या कल्पित लोक के स्वरूप का श्रद्धान् तजै और भी जीव-अजीव का श्रद्धान सहित शुद्ध सम्यग्ज्ञान का धारी, ब्राह्मण चाहिये और जो आप के भी यथार्थ दर्शन-ज्ञान नहीं

होय, तो औरन कूं मिथ्या उपदेश देय, औरन का बुरा करै। अपने उत्तम कुलकूं दोष लगावै। तातैं ब्राह्मणकूं यथार्थ श्रद्धान आपकूं चाहिये, तो औरनकूं भी सत्य उपदेश देय, औरन का भला करै। तब ब्राह्मण-कुल की श्रेष्ठता रहै। याका श्रेष्ठता नाम—पांचवाँ अधिकार है।५। जो ब्राह्मण आप पण्डित होय। दया-धर्म का धारी होय अन्य शिष्यजनकों कल्याण के अर्थ—मोक्ष-लक्ष्मी का वांच्छनहारा होय। अनेक प्रायश्चित्त शास्त्रन का वेत्ता होय, श्रावकन के व्यवहार की परिपाटी का जाननहारा होय। जहां कोई श्रावककों प्रमादवशात्, संयम में दोष लगा होय, तो दया-भाव करि, ताके मेंटवे कूं, शिष्यन के पाप नाशवे कूं, यथायोग्य प्रायश्चित्त बताय, शुद्ध करै। ऐसा ब्राह्मण चाहिये और कदाचित् आपही अशुद्ध होय, क्रोध-मान-माया-लोभ-पाखण्ड करि भरया होय तथा अज्ञानी होय; तो औरनकों धर्म-मारग कैसे बतावै ? जैसे—कोई ठग सूं उद्यान मैं शुद्ध-राह पूछै। तो ठग, शुद्ध राह कैसे बतावै ? तथा कोई अन्धे सैं उद्यान की राह पूछे। तो वह उद्यान की राह कैसे बतावै ? तैसे ही कषायसहित सो तौ ठग समान, सो शुद्ध मार्ग नहीं बतावै। वह अज्ञान अन्धे समान है। सो आपही कौं सुमार्ग नहीं सूझै। तौ औरकौं कैसे बतावै ? तातैं ब्राह्मण के ये दोऊ दोष कहे। सो कषाय अरु अज्ञानता तैं रहित सज्जन स्वभावी, दयामूर्ति, महापण्डित, अनेक प्रायश्चित्त शास्त्रन का ज्ञाता ब्राह्मण चाहिये। अरु जो ब्राह्मण आप प्रायश्चित्त शास्त्र तौ नहीं जानै। आपकौं दोष लागै, तब आपकूं औरन पै दीन होय, प्रायश्चित्त याचना पड़ै। तातैं आपा-पर के सुधारवेकूं, अनेक नय का वेत्ता, गृहस्थन की क्रिया-व्यवहार जानै वह व्यवहार नाम छट्ठा अधिकार है।६। ब्राह्मण, उत्तम गुण-सम्पदा का धारी, उत्कृष्ट-पूजनीय गुण सहित, धीर बुद्धि, पूजा-जप-तप-संयम सहित अनेक गुण पालक, सत्पुरुष ब्राह्मण, राजान करि अवध्य है। जैसे—चोर, चकार, चमचोरादि सप्तव्यसन के धारी जीव, वधवे योग्य हैं। तैसे अनेक गुण का धारी ब्राह्मण, वधवे योग्य नाहीं। पूजने योग्य है और जो गुणी, पूजन योग्य, दीर्घ ज्ञानी कूं हनै, तो महापाप होय। ज्यों-ज्यों दीर्घ ज्ञानी का घात होय त्यों-त्यों विशेष पाप जानना। जैसे—एकेन्द्रिय के घात तैं, दो-इन्द्रिय के घात का पाप बहुत है। ते-इन्द्रिय का दो-इद्रिय तैं बड़ा है। ते-इन्द्रिय के घात तैं चौ-इन्द्रिय के घात का पाप विशेष है। ऐसे ज्यों-ज्यों ज्ञान बध्या, त्यों-यों इन्द्रिय बधी, सो इन्द्रियन के बधवे तैं, ज्ञान बध्या। तातैं ज्यों-ज्यों ज्ञान बधता

होय, ताके घातका बड़ा-बड़ा पाप है। पशु तैं पापाचारी चोर, ज्वारी, पर-स्त्री सेवी, इत्यादिक अशुभ कर्मा मनुष्यके घातका पाप विशेष है सो इन तैं भला मनुष्य व्यसनादि दोष रहित होय ताके घातका पाप विशेष है ऐसे सामान्य मनुष्यनतैं, जपी, तपी, संयमी, दानी, दयावान, निर्दोष, इनकैं विशेष ज्ञान है। सो इनके मारनेका विशेष पाप है। तातैं ऐसा जानना, जो ब्राह्मण संयम, जप, तप, व्रतका धारी हैं। तातें याकी घातका पाप विशेष है। विवेकी राजा, ऐसा दीर्घ पाप नहीं करै। तातैं राजा तैं, ब्राह्मण वध रहित है। पूजने योग्य है। मारने योग्य नाहीं। और यह धर्मका माहात्म्य है कि धर्मी को, कोई पोड़ै नाहीं। और कदाचित् ब्राह्मण, दया रहित होय। लोभ-क्रोध-मान-मायादि व्यसनका धारी होय तो दीनता पावै। गुण बिना महत्वता जाती रहै। सामान्य मनुष्यकी नांई राजा करि, दण्ड कों प्राप्त होय है, हर कोई पोड़ै। दुर्वचन कहै। ब्राह्मणका पद होते, सुमार्गका लोप होय। ऊंच-कुली कुमारगमैं लागैं, तौ दीनता पावैं। अपयश पावैं। धर्म-आचार मिटै। सुमार्ग-दया धर्म तैं रहित भये, पूज्य पद मिटै। राजा तैं अनादर पावै। तातें विवेकी उत्तम ब्राह्मण कौं उत्तम-दान धर्म, संतोष, जप, तप, इन आदि अनेक गुणोंकी रक्षा करनी, त्रस-स्थावर सर्व जीवनका भला चाहना, यह उत्तम गुण है। सर्वके भलेमें अपना भला है। तातैं ब्राह्मण कूं धर्म-रत्ता करनी। याका नाम सातवां अवध्य गुण है। ७। धर्म विषैं स्थिरी-भूत है आतमा जाका, ऐसा ब्राह्मण; सर्व करि अदंड है। काहू तैं दण्डने योग्य नाहीं। कोई धर्म-बुद्धि कूं, धर्म-सेवनमैं दोष लाग्या होय। तौ ताकों शुद्ध करने कूं यह धर्मातमा ब्राह्मण ताकूं दण्ड देय, शुद्ध करै। परन्तु, आप दण्ड-योग्य नाहीं। आप अपनी शांत-दशा दया-भाव सहित, शास्त्रनका अभ्यास करै। ताके अर्थ प्रगट करि, आप धर्मातमा भया और धर्मी-जीवन कूं उपदेश देय, सुमार्ग लगावै। जे धर्मात्मा होंय। सो धर्मी-जीवका दिया उपदेश, तथा अतिचार लाग्या ताका प्रायश्चित्त, अङ्गीकार करैं। तातें धर्मातमा-पुरुष, राजा करि दण्डने योग्य नाहीं। कदाचित् ऐसे धर्मी-जीवमैं, कोई कर्म-योग तैं दोष पड़ गया होय। तौ धर्मातमा-राजा, यथा योग्य दण्ड देय, फेरि ताकूं धर्म-विषैं दृढ़ करै। ऐसा दण्ड नहीं देय, जातैं याकौं धर्म तैं अरुचि होय। धर्म सेवनमैं आकुलता बधै। घर-धन नहीं लूटै। तन-घात नहीं करै। ऐसा दण्ड देय, जातैं याकौं धर्ममैं प्रीति उपजै। जिन धर्मका अतिशय देख, दया-धर्मका सेवन करै। यह धर्मातमा ब्राह्मण, सर्व लौकिक दोष तैं रहित, उत्तम

आचारवान्, दया-धर्मका धारी, राजाओं करि अदंड है। पापीजनकी नांईं, धर्मातमा कूं भी दंड योग्य जानै। तो दराडनेहारा राजा, प्रजाका पालनहारा, अन्यायके योग तैं अपयश पाय, थोड़े ही दिनोंमें राज्य-भ्रष्ट होय। याकी अनीति देख, धर्मात्मा पुरुष तौ देश तज देंय। तब देश धर्मी-जन रहित भया। तामैं पाप-कार्यनकी बधवारी होय। पापके बधतैं, देश-ग्राम धीरे-धीरे अनुक्रम करि नाश कूं प्राप्त होंय। तातैं धर्मात्मा-ब्राह्मण, अदंड है। यह अदराड नाम आठवां अधिकार है। ८। बहुरि धर्मी-जीवन कौं सर्व पूजैं। यथा-योग्य सर्व मानैं। सो यह बात सत्य ही है। जो धर्मात्मा, गुरान करि अधिक होय। सो धर्मी-जीवन करि, मानने योग्य होय ही होय। कदाचित् विप्र विषैं, गुरानकी अधिकता नहीं होय। तो पूज्य-पद मिटै। अनादर पाय। पद भ्रष्ट होय। रंकदशा धारै। तातें विवेकी ब्राह्मरा, समतादिक गुरानका जतन करि, अपने विषैं धारै। सो यह ज्ञान, चारित्र और तप, उत्कृष्ट ऋद्धि है सो जे गुरावान् हैं, सो गुरा-विभूतिका यत्न करो। यह गुरा-सम्पदा जप-तप पूज्य हैं। तिनकौं भूल कर भी विवेकी नहीं बिसारैं। याका नाम माननीयता नववां अधिकार है। ९। यह धर्मात्मा ब्राह्मराका, प्रजा-संबन्धान्तर गुरा है सो विवेकी अपना उत्कृष्ट गुरा छाँड़ि, जगत-जीव-अज्ञानकी नांईं नहीं होय सो प्रजा-संबन्धान्तर गुरा कौं राखै। भावार्थ—जो जैसे गुरा अन्य प्रजामें नहीं पाईये, ऐसे गुरा आपमैं धाररा करै। प्रजाके गुरा तैं अधिक गुरा-सम्पदाका धारी होय। तब प्रजा करि, पूज्य होय। प्रजा-जैसे, अज्ञान चेष्टा रूप गुरा, आपमें नहीं धारै। सो प्रजासे अन्तर जानना। प्रजा समान गुरा, अज्ञान-विषयीकी चेष्टा आपमें धारै। तो अपना पूज्य-पद खोवै। महंतता नहीं रहै। प्रजा समान आप भी होय। तौ जैसे निर्मल स्वर्णमें, कुधातुके सम्बन्ध करि मलिनता होय। और जैसे निर्मल स्फटिक मराि, डांकके संयोग तैं अपना स्वच्छ गुरा तजि, श्याम-हरित-रक्तादि अनेक वर्रा कौं प्राप्त होय। तैसे ही यह धर्मात्मा जीव, ब्रह्मचारी, उत्कृष्ट गुणोंका धारी, आचारवान्, सौम्यमूर्ति संसारी-अज्ञानी जीवनकी संगति तैं आप भी अज्ञानी-जीवनकी नाईं, इस प्रजामें एकमेक होय। क्रोध-मान-माया-लोभ रूप प्रवृत्ति तैं, अपना पद लोप करै। सर्व गुरानका अभाव होय। तातैं विवेकी धर्मात्मा ब्राह्मरा, अपने गुरान तैं और अज्ञानी-गुरा रहित जीवन कौं, गुरा-खान करै। आप अज्ञानीकी संगति तैं, अज्ञानी नहीं होय। जैसे पारस-पाषारा अपने गुरा तैं लोह-कुधातु कौं कंचन करै, परन्तु आप लोह नहीं होय। तैसे उत्तम

५२६

ब्रह्मचारी, अपना शील, संतोष, तप, संयम, व्रत, दया सहित गुण, जगतमें प्रगट करि, और-जीवन कौं आप समान गुणवान करै। जो भोले, अज्ञानी, अशुभाचारी, दया रहित, पाप कलङ्क सहित जीव, तिनकौं धर्मोपदेश देय, तिनके दोष मेटि शुद्ध निर्दोष करै। यह गृहस्थाचार्य तीन कुलका उपज्या पदके ब्रह्म धारी विषैं यह प्रजा संबंधांतर गुण है। ताके योग तैं औरन कौं गुणरूप करै। कदाचित् यह गुण नहीं होय तो अज्ञानी के संग तैं आप अज्ञानी होय। गुण रहित होय। तब अपना पूज्य पद नहीं रहै। तातैं प्रजाके गुणों तैं मिलै नाहीं अलग रहै। याका नाम प्रजा संबन्धांतर दशवां अधिकार है। १०। ऐसै ये बाल विद्या तैं लगाय प्रजा संबन्धान्तर दश अधिकार कहे। ताकी जुदी जुदी क्रियानका कथन कह्या। सो जो इन दश क्रिया रूप प्रवृत्तै। सो क्रिया ब्रह्म जानना। तीन कुलका उपज्या धर्मी जीव इन क्रियाओं सहित शीलादिक गुण पालै। सो क्रिया ब्रह्म है। इति क्रिया ब्रह्मके दश भेद। आगे ब्राह्मण शील गुणकी प्रतिपालना करै, सो ब्रह्मचारी कहावै। सो शीलाधिकार लिखिये है—

गाथा—सिव मिंद जाण द्वारय, भव सायर पार तार तंणीए। अघ तम हर रबि जेहो, मोख मग्गोय वंभ भावाए ॥ १४३ ॥

अर्थ—शिव मिंद जाण द्वारय कहिये मोक्ष महलके जाने कूं द्वार। भव सायर पार तार तंणीए कहिये संसार सागरके तरवे कूं नाव समान। अघ तम हर रवि जेहो कहिये, पाप रूप अन्धकारके नाशवे कूं सूर्य समान। मोख मग्गोय वंभ भावाए कहिये मोक्ष मार्ग रूप एक ब्रह्म भाव ही है। भावार्थ-ब्रह्मचर्य भाव है सो मोक्ष महलमें जानेका एक ही ये मार्ग है। इस शील बिना मोक्षकौं जावेका कोई द्वार नाहीं, कैसा है शीलभाव संसार समुद्रके तिरवे कौं जहाजसमान है। कैसा है भव—समुद्र, महागम्भीर राग-द्वेष रूप जो जल, ताकरि भर्‌या है। तामें विकार रूप अनेक तरंगें उठैं हैं। और वेद-भाव, रति अरति क्रोध मान, माया लोभादि ये कषाय हैं। सो ही भये मगरादि जलचर क्रूर जीव। तिनके केलि (क्रीड़ा) करने का स्थान, ये भव-सागर जानना ऐसे विकट भवसागर तारवे कूं ये शील व्रत नाव समान है। कैसा है शील, पाप अन्धकार करि चारि-गति के जीवन कूं, मोक्ष-मार्ग नहीं सूझै। ऐसा अन्धकार नाशवे कूं यह ब्रह्मचर्य—भाव सूर्य समान है। तातें मोक्षका मार्ग, एक शील ही है। भावार्थ-इस शील गुण बिना अनेक धर्म—अङ्गनका साधन, कार्यकारी नाहीं। तातैं

मोक्षाभिलाषी जीवन कूं, मोक्षके कारण रूप शील की ही रक्षा करनी चाहिये। आगे और भी शील गुण की महिमा कहिये है—

गाथा—सोपाणो सिव गेहो, सिव तिय सावण दूत सम जोई। धम्मा भूषण भणयं, सिव दीयो जाण वंभ गुण गेयो ॥१४४॥

अर्थ—सोपाणो सिव गेहो कहिये, ये ब्रह्मभाव मोक्ष मन्दिरके चढ़वे कों सीढ़ी समान है। सिव तिय लावण दूत सम जोई कहिये, मोक्ष रूपी स्त्री के ल्यावे कों चतुरदूती समान है। धम्मा भूषण भणयं कहिये, ये धर्मका आभूषण है। सिव दीयो जाण वम्भ गुण गेयो कहिये, शिव द्वीपके पहुंचावे-कों ब्रह्मचर्य वाहनसमान है। भावार्थ—जैसे मन्दिर पै जांय, सो सीढ़ीन परसे जांय हैं सो मोक्षमहल, अद्भुत सुखका स्थान है। सो लोकके शिखर पर है। मध्य लोक तैं, सात राजू ऊंचा है। तहां चढ़वे कूं शीलव्रत सीढ़ी समान है। इस शील रूप पैढ़ीन की राह चढ़नेहारा भव्य, सहज ही में मोक्षमहलमें पहुंचै है। जैसे दूती, परस्त्रीन कूं शीघ्र ही मिलावै। तैसे मोक्ष रूपी स्त्रीके दिलावे कूं, ब्रह्म दूतीसमान जानना। जैसे आभूषण करि तन शोभा पावै। तैसे धर्म के जेते अङ्ग हैं। दान पूजा; जप, तप, त्याग, चारित्र, इन आदि जे जे धर्म अङ्ग हैं। तिनके भले दिखावे कूं, शोभायमान कूं शील गुण है सो आभूषण समान है। जैसे कोई देशांतर जावे कूं रथ, गाड़ी, सुखपालादि असवारी, सुख तैं परदेश लेय जाय हैं। तैसे ही शिव द्वीपके पहुंचावे कूं, शील-गुण है सो यान कहिये असवारी समान है। तातैं इस शील गुणकी रक्षा करनी योग्य है। आगे शील गुण की और महिमा कहिये है—

गाथा—मोख तरु दिठि मूलो, खग देव णरय पूज्य असुरायो। तिभवण चर जस करई, हरई भव दुःख वंभ वाताये ॥१४५॥

अर्थ—मोख तरु दिठि मूल कहिये, ब्रह्म-भाव मोक्ष-वृक्षकी जड़ है। खग देव णरय पूज्य असुरायो कहिये, विद्याधर, देव, मनुष्य और असुरन करि पूज्य है। तिभवण चर जस करई कहिये, तीन लोकके जीव ताका यश गावैं हरई भव दुक्ख वम्भ वाताये कहिये, संसारके दुःख कूं ब्रह्मचर्य्य मेटै है। भावार्थ-यह शील व्रत है सो मोक्ष रूपी वृक्षकी जड़ है। जैसे वृक्षकी जड़ नहीं होय, तो वृक्ष नहीं ठहरै। अल्प-कालमें क्षय होय। तैसे ही शील-भाव रूपी जड़ नहीं होय, तो मोक्ष-रूपी कल्प-वृक्ष नहीं रहै। बिनशि जाय। बहुरि यह शील-भाव कैसा है? विद्याधर, राजा, ज्योतिषी, व्यन्तर, भवनवासी, कल्पवासी ये च्यारि प्रकारके देव, चक्री, अर्थ-चक्री.

कामदेव, बलभद्र, मण्डलेश्वरादि महान् ऋद्धि के धारी बड़े-बड़े राजा, इन सर्व देव-मनुष्यन करि पूजनीय है। शील-भाव कैसा है ? जाका यश तीन लोक के प्राणी गावैं हैं। बहुरि शील-भाव कैसा है ? जन्म-मरण दुःख का नाश करनहारा है इत्यादिक अनेक गुण सहित, यह शील व्रत है। ताकी रक्षा करना योग्य है। आगे शील का माहात्म्य और बताइये है—

गाथा—सिंहण वाधा करई, चंपय पद णाग दाग णह होई। वण वारण मिग जायो, यह फल सीलोय होय णियमेण ॥१४६॥

अर्थ—सिंहण वाधा करई कहिये, ब्रह्मचारी कौं सिंह बाधा नहीं करै। चंपय पद णाग दाग णह होई कहिये, पांव के नीचे नाग आवै तौ भी नहीं काटै। वण वारण मिग जायो कहिये, वन का हाथी मृग समान हो जाय। यह फल सीलोय होय णियमेण कहिये, ऐसा फल नियम से शील व्रत का होय है। भावार्थ—जहां भयानक आकार, तीक्ष्ण हैं नख अरु दाँत जाके, काल-पुत्र समान विकराल, भयानक रूप ऐसा नाहर, उद्यान में शीलवान कौं नहीं सतावै और काल समान विकराल, फण का धारी, विष का समूह, जाके मुख तैं निकसै है अग्निवत् हलाहल विष-ज्वाला, मणिधारी, ऐसा भयानक नाग, शीलवान् पुरुषन के पांव नीचे दबि जाय, तो इल्ली समान दीन होय जाय। शील के माहात्म्य करि, पीड़ा नहीं करै और महाउद्यान में वन का मदोन्मत्त हस्ती, स्वेच्छारूप वर्तता, अपनी लीला करि बड़े-बड़े वृक्ष तोड़ता नदी-सरोवर का जल विलोलता, काल समान भयानक वर्षा-काल के मेघ समान गर्जता दीर्घ शब्द करता, अञ्जनगिरि समान ऊँचा मेघ-घटा समान श्याम वर्ण का धारी हस्ती तैं गहन वन में भेंट हो जाय तौ ऐसा भयानक गयन्द शील के माहात्म्य करि ब्रह्मचारी कूं बाधा नहीं करै। मृग के समान सरल हो जाय इत्यादिक फल प्रगट करनहारा उत्तम शील-गुण है। तातैं ऐसे शील-गुण की रक्षा करना योग्य है। आगे और भी शील-गुण का माहात्म्य कहिये है—

गाथा—सुर सुह कर सिव करऊ, वहणी णिज पतण होय दुंह सामो। सुर-तरु दहदा सुह दय, गहणो वण साय वंभ वय करई ॥१४७॥

अर्थ—सुर सुह कर कहिये, स्वर्ग का सुख करनहारा सिव करऊ कहिये, मोक्ष करनहारा वहणी णिज पतण होय दुह सामो कहिये, शीलवान् का अग्नि में पड़ना होय तो यह दुःख भी शान्त होय। सुर-तरु दहदा सुह दय कहिये, दश प्रकार कल्पवृक्ष के सुख का दाता है। गहणो वण साय वंभ वय करई कहिये, ब्रह्मचर्य

व्रत सघन वन में सहाय करै। भावार्थ—यह ब्रह्मचर्य व्रत कैसा है? याके फल तैं नाना प्रकार, पंचेन्द्रिय, देवोपुनीत अद्भुत, अमर-पर्याय के सुख होय है और शीलवान् जीव कूं कर्म-रहित जो मोक्ष, ताके अखण्ड अविनाशी, अचल, अतीन्द्रिय-सुख होय हैं। शीलवान् के चौतरफ अग्नि-ज्वाला जल रही होय, तौ भी ताहि बाधा नहीं होय तथा शीलवान् पुरुष कौं कोई पापी अग्नि-ज्वाला विषैं गिरावै तौ सब अग्नि, जल होय। जैसे—सीता के शील-माहात्म्य करि, अग्नि जल भई। तैसे ही शीलवान् कूं अग्नि का भय नहीं होय। दश प्रकार के कल्पवृक्ष का दिया वांछित सुख, सो शील के माहात्म्य तैं सहज ही होय। शीलवान् पुरुष अटवी में जाय पड़े, तो बाधा नहीं होय। कैसा है वन? महाउद्यान बड़े-बड़े सघन वृक्ष का समूह, तहां महाभयानक सिंहन के धडूके (गुफाएँ) हैं तहां मेघ की नाईं, हस्तीन की गर्जना होय। तहां सिंहन की गर्जना के शब्द सुनि, मदोन्मत्त हस्तीन के समूह स्वेच्छाचारी भये, वन के वृक्ष उखाड़ते, लीला करते फिरैं। सो सिंह के शब्द सुनकर, हस्ती अपने छावान् (बच्चों) सहित, भागते फिरैं हैं। उतर गया है मद जिनका, सो भयवान् भये भागते दीखैं हैं। जा वन में बड़े-बड़े पर्वत, सो गुफान करि पोले होय रहे हैं। तिन गुफानतैं निकसे जो बढ़े दीर्घ तन के धारी अजगर सर्प, सो दीर्घ उच्छ्वास लेते गुफा तैं निकसते देखिये है इत्यादिक भय तैं भरा जो भयानक वन, सो ऐसे वन विषैं शीलवान् आय पड़े। तो शील के माहात्म्य करि, निःखेद होय निकसै। ऐसे अतिशय सहित जो ये शीलगुण ताकी रक्षा करनी विवेकीनकों योग्य है। आगे और भी शील-गुण का माहात्म्य बतावैं हैं—

गाथा—सिसरो अवंभ भंजुई, वंभ बतोय वज्ज छिण एको। काम भुयंगय मंत्तो, वसि करई वंभ एय गरुडाये ॥ १४८ ॥

अर्थ—सिसरो अवंभ भंजई कहिये, अब्रह्म रूपी पर्वत के फोड़वे कौं। वंभ बतोय वज्ज छिण एको कहिये, ब्रह्मचर्य एक वज्र के समान है। काम भुयंगय मंत्तो कहिये, काम रूपी सर्प के वश करवे कों ब्रह्मचर्य एक मन्त्र समान है। बसि करई वंभ एय गरुडाये कहिये, तथा ताके वश करने कूं ब्रह्मचर्य एक गरुड़ समान है। भावार्थ—कुशील रूपी उत्तुंग पर्वत के चूरण करवे कूं शील-भाव वज्र समान है। एक छिन में कुशील रूपी पर्वतन कूं फोड़ै है और कैसा है शील-भाव? कुशील-भाव रूपी जो सर्प, ताके वश करवे कूं मन्त्र समान है तथा ताके वशी करवेकूं शील-भाव गरुड़ समान है। ऐसे शीलव्रत की रक्षा करना योग्य है। आगे और भी शील

व्रत की महिमा बताइये है—

गाथा—मदणो मद गय थंभउ, अंकस सिर दाग लाग वस करई। मण कपि वस कर फंदई, वंभो वय-एय गेय णियमेण ॥१४९॥

अर्थ—मदणो मद गय थंभउ कहिये, मदनरूपी मदोन्मत्त हस्ती ताके जीतवेकूं। अंकस सिर दाग लाग वस करई कहिये, शिर में अंकुश के दाग लगाय वश करने समान। मण कपि वस कर फंदई कहिये, मनरूपी बन्दर के वश करनेकौं फन्द समान। वंभो वय एय गेय णियमेण कहिये, एकही ब्रह्मचर्य व्रत नियम से जानना। भावार्थ—कामरूपी मदोन्मत्त हस्ती, महाबलवान् सो ताके जीतवेकूं इन्द्र, देव, चक्री, कामदेव, नारायण, बलभद्र, कोटीभटादि महापुरुष, बड़े-बड़े वैरीन के जीतवे कूं बलवान्, इनको आदि बड़े-बड़े सामन्त, ते भी इस कामरूपी हस्ती के वशी करनेकूं असमर्थ भये। ऐसे कामरूपी हस्ती के वशी करवेकूं, ये शील-भाव है, सो अंकुश के दाग समान है। कैसा है शील-भाव ? सो मनरूपी बन्दर के बांधवेकूं, लोहे की सांकल समान है। इनकों आदि अनेक गुण सहित, शील-भाव जानना। आगे और भी शील-व्रत की महिमा कहिये है—

गाथा—कुगय वार कपाटो, अवंभ तरु छेद तीच्छ कुठहारो। सिव गछ्छत सुह सुकणो, इन्दी मिग जाल वंभ बताये ॥१५०॥

अर्थ—कुगय वार कपाटो कहिये, ये ब्रह्म-भाव कुगति द्वारकों कपाट समान है। अवंभ तरु छेद तीच्छ कुठहारो कहिये, कुशीलरूपी वृक्ष के छेदनेकूं तीक्ष्ण कुठार है। सिव गछ्छत सुह सुकणो कहिये, मोक्ष चलवेकूं, शुभ शकुन है। इन्दो मिग जाल वंभ बताए कहिये, इन्द्रियरूपी मृग के पकड़वेकूं ये ब्रह्मचर्य, जाल समान है। भावार्थ—यह ब्रह्मचर्य व्रत है, सो कुगति जो नरक-तिर्यञ्च गति, तिनमें नहीं जाने देयनेकूं कपाट समान है और कैसा है शील-व्रत ? जो कुशीलरूपी बिकट वृक्ष सो आर्त-रौद्र-भावरूप कांटेन सहित आकुल-भावरूपी छाया का धारी, अपयशरूपी फूल करि फूल्या, नरक तिर्यञ्च गति हैं, फल जाके ऐसा कुशील वृक्ष, ताके छेदने कूं शील-भाव तीक्ष्ण कुठार समान है। बहुरि कैसा है शील-भाव ? जैसे—कोई बड़े लाभ निमित्त द्वीपान्तर जाते, भले शकुन होंय। तौ जाते ही कार्य सिद्ध होय। तैसे ही मोक्षरूपी द्वीप के गमन करनेहारे यतीश्वर तथा और भव्य श्रावक, तिनकौं शुद्ध शील व्रत का मिलाप, भले शकुन समान है। बहुरि कैसा है शील-भाव ? जैसे—काहू का तैय्यार भया धान्य का खेत है। ताकौं उद्यान में मृग उजाड़ैं हैं, खाय जांय हैं। तिन मृगों कों, स्याना खेत का

लोभी किसान, जाल तैं पकड़ कैं, अपना खेत बचावै है। तैसे ही अनेक गुरान का उपजावनहारा संयमरूपी खेत, ताकों इन्द्रियरूपी मृग बिगाड़ें हैं। सो अपने संयम-खेत की रक्षा का करनहारा धर्मात्मा पुरुष, सो इन्द्रिय रूपी मृग तिनकूं शीलरूपी जाल तैं पकड़ि, अपने वश करि; अपने संयम खेत को बचावै इत्यादिक अनेक गुणों का भण्डार यह शील-व्रत है। तातैं याकी रक्षा किये, स्वर्ग-सम्पदा दासी होय। मोक्ष-सम्पदा घर विषैं आवैं। सो विवेकी हो! इस शील की रक्षा करो। इति शील-महिमा। आगे कुशील का स्वरूप कहिये है—

गाथा—धम्म तरु भंज गयन्दो, मिच्छा रयणीय मांहि मिग्गांको। आपद धन गह भरई, ये सऊ दोसाय जणणि अवंभो ॥१५१॥

अर्थ—धम्म तरु भंज गयन्दो कहिये, धर्मरूपी वृक्ष के छेदने कूं हस्ती। मिच्छा रयणीय मांहि मिग्गांको कहिये, मिथ्यात्वरूपी रात्रि के करने कूं ताका नाथ चन्द्रमा समानि। आपद धण गह भरई कहिये, आपदारूपी धन तैं, घरकौं भरनहारा। ये सऊ दोसाय जणणि अवम्भो कहिये, इन सब दोषों की जननी अब्रह्म है। भावार्थ—धर्मरूपी वृक्ष यशरूपी सुगन्धित फूलों करि फूल्या, स्वर्ग-मोक्ष हैं फल जाके ऐसा धर्मवृक्ष, ताकों तोड़-विध्वंस करने कौं कुशील भावना, मतङ्ग हस्ती समान है। सम्यग्ज्ञानरूपी दिन, सर्व पदार्थन का जनावन-हारा ताके हरने कूं अरु मिथ्यात्वरूपी रात्रि के प्रकाश करने कूं कुशील-भावना रजनीपति—चन्द्रमा समान है और आपदा कहिये नाना प्रकार दुःख, दारिद्र, रोग, भय, जेई भई सम्पदा तिनतैं घर भरनहारा कुशील है। भावार्थ—जाके कुशील है ताके घर तैं आपदा कबहूँ नहीं छूटै इत्यादिक अनेक दोषों के जन्म देने कूं समर्थ कुशील-भावना माता समान है। ऐसा जानि कुशील-भावना तजना भला है। आगे और भी कुशील का स्वभाव कहै हैं—

गाथा—वंभ हणण तिय कुटिला, कुगय गमण कर हरय सिव मग्गो। एहो भाव अवंभो, हेयो कीय भव्य वंभ पादेयो॥१५२॥

अर्थ—वंभ हणण तिय कुटिला कहिये, ब्रह्म नाशने कूं कुटिला स्त्री। कुगय गमणकर कहिये, कुगति में गमन करै। हरय सिव मग्गो कहिये, मोक्ष-मार्ग कौं हरै। एहो भाव अवंभो कहिये, ऐसा कुशील भाव है। हेयो कीय भव्य कहिये, ये भव्य जीव के हेय है। वंभ पादेयो कहिये, ब्रह्मचर्य-भाव उपादेय है। भावार्थ—जैसे कुटिला स्त्री है सो अनेक हाव-भाव करि, पर-पुरुषका मन मोहकर ताका शील हरै है। तैसे ही

कुशील भाव है, सो ब्रह्मचर्य के हरने कूं कुटिला-स्त्री समान है। फिर कुशील भाव कैसा है ? कुगति जो नरक तिर्यंच गति ताके मार्ग कूं बतावें है। कैसा है कुशील ! जो मोक्ष-मार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, इनकूं हरे है। तातें हे भव्य हो ! यह कुशील भाव है सो याकौं तजौ। अरु शील भाव कूं अङ्गीकार करहु। ऐसे कहैं जो शील भाव अरु कुशील भाव तिनका स्वभाव अपनी बुद्धिके बल करि पहिचान समता रसके स्वादी होय इस जगत बिडम्बना रूप विकार भाव सहित जो कुशील भाव तिनका तजन करि मोक्ष रूपी स्त्री के सम्बन्ध तैं उत्पन्न, जो निराकुल, अद्भुत, अतीन्द्रिय सुख, ताही कौं तुम शीलभावके प्रसाद भोग करि, सुखी होऊ। यह कह्यो जो कुशीलभेद, तिन कूं तजि ऊपर कहे शील गुणकौं धारै। सो क्रिया-ब्रह्म जानना। इति कुशील निषेध, शीलकी महिमा कही। आगे च्यार भेद क्रिया-ब्रह्मके हैं। तिनकी क्रिया लिखिये है—

गाथा—सिर लिङ्गन उर लिङ्गो, कटि लिङ्गो उरय लिङ्ग चव भेयो। धारय सो दुज सुद्धो, वंभ चारोय धार समभावो ॥१५३॥

अर्थ—सिर लिङ्गन कहिये, सिरका चिन्ह। उर लिङ्गो कहिये, उर (छाती) का चिन्ह। कटि लिंगो कहिये, कमरका चिन्ह। उरय लिंग कहिये, जंघाका चिन्ह। चव भेयो कहिए, ए चार प्रकार क्रिया ब्रह्म है। धार समभावो कहिए, समता भावोंको धारण करै। वंभचारोय कहिए, वही ब्रह्मचारी है। धारय सो दुज सुद्धो कहिए, वही शुद्ध द्विज है। भावार्थ—भले तीन कुलके उपजे धर्मात्मा-गृहस्थके बालक, जेते काल गृहस्थाचार्यके पास विद्याका अभ्यास करैं। तेते समय गुरुकी आज्ञा-प्रमाण ब्रह्मचर्य-व्रत पालैं। अरु च्यारि चिन्ह सहित रहैं। सो सिर लिंग ताकौं कहिए, जो नग्न शीश रहै। सो चोटीमें गांठ राखै, सो सिर लिंग है। १। उरु लिंग ताकौं कहिए, जो गले विषैं रत्नत्रयका प्रसिद्ध चिन्ह, जिन-धर्मका निशान, पक्का जैन अपना जिन-धर्म प्रगट करनेके निमित्त, गलेमें तीन सूतकी-उर बिषैं जनेऊ डालै सो उरका चिन्ह है। २। डाभकी तथा मूंजकी रस्सीका, कमरकी करधनीकी जायगा, ताका बन्धन राखै, सो कटिका चिन्ह है। ३। उर नाम जंघाका है। सो जांघपर उज्वल धोती राखै सो उरुका चिन्ह है। ४। इन च्यारि गुण सहित जो क्रिया होय सो क्रिया-ब्रह्म है। उरका चिन्ह जनेऊ है ताके नव गुण हैं। इन नव गुण सहित जो भव्य होय, सो जनेऊ राखै। अरु इन गुण बिना जनेऊ राखै, तो परंपराय तैं, धर्मका लोप होय। ताकौं पाप-बंधका करनहारा कहिए सो वे नव गुण कैसे, सो

ही कहिए है-विज्ञानता, क्षमावान, अदत्त त्याग, अष्ट मूल गुणधारक, लोभ रहित, शुभाचारी, समिति धर, शीलवान् और त्याग गुण। भावार्थ—विज्ञानता जो नाना प्रकार विशेष-गुणनकी सावधानी राखना। क्षमावान होय, तपस्वी होय। दया सहित, आप समान सब जीवनका जाननहारा होय। उदार चित्त होय। सर्वज्ञ भाषित शास्त्रनका धारी पण्डित होय। यथा योग्य देव-गुरु-धर्म व आप सम, आप तैं लघु, इत्यादिक सर्वकी विनयमें समझता होय। आपका हृदय विनयवान् होय। इन आदिक विशेष ज्ञानवान होय सो विज्ञान लक्षण है। १। दूसरा क्षमागुण सो शांत स्वभाव होय। क्रोधी नहीं होय। सर्व जीवनके मङ्गलका इच्छुक होय। अदेखसका नहीं होय। क्रोध, मान, माया, लोभ, पाखंडका त्यागी होय। कषायी नहीं होय। इत्यादिक गुणी, सो क्षमा गुण है। २। अदत्तका त्यागी होय। राह पड़या द्रव्य कों नहीं छीवै। बिना दिया, किसीका गड़या, धरया, भूल्या धन लेय नाहीं। इत्यादिक चोरीका त्यागी होय सो तीसरा अदत्त-त्याग गुण है। ३। मूल गुणका धारी होय। ऊमर, कठूमर, पाकर, फल, बड़ फल, पीपल फल, ए पांच उदंबर। मद्य, मांस, मदिरा, ए तीन मकार। सब मिल आठ भए। सो इन आठनका त्याग, सो अष्ट मूल गुण हैं सो इन गुणनका धारी होय। रात्रि-भोजनका त्यागी होय। इत्यादिक अभक्ष्य कन्द-मूलका त्यागी होय सो चौथा अष्ट मूल गुणधारक गुण है। ४। निर्लोभता-सो परिग्रह तृष्णाका त्यागी होय। संतोषी होय। अहङ्कार, ममकार जो मैं ऐसा, मोसा कोई दूसरा नाहीं, सो अहङ्कार है। यह मेरी, वह मेरी, तन, धन, पुत्र, स्त्री, घर, मेरा-ऐसा कहना सो ममकार है। जो ऐसे भावनका त्यागी होय। सो निर्लोभता पञ्चम गुण है। ५। शुभाचारी होय। जो पूजा जप तप संयम सूं रहना। अयोग्य खान-पानका त्याग भला भोजन देखके लैना। इत्यादिक शुभक्रिया करि रहना। सो शुभाचार है। अनछना जल पीवै नाहीं। ऐसे जल तैं सपरै (स्नान करै) नाहीं। नदी, सरोवर बावरी कूपमें कूदके स्नान करै नाहीं। इत्यादिक भले गुण धारै। सो शुभाचार नाम छट्ठा गुण है। ६। सातवां समिति गुण-से धरती पै चलै तो नीची दृष्टि करि देखता चालै। अपनी दृष्टिमें छोटे-मोटे जीव आवैं। तीन कूं दया भाव करि बचावता चालै। ऊर्द्ध मुख करि नाहीं चालै। शीघ्र शीघ्र नाहीं चालै। राह चलते इत उत नहीं देखै भागै नांहीं। भाषा बोलै सो बिचारके बोलै। भोजनके समय बोलै नाहीं, लड़ै नाहीं, काहू कों गाली नहीं काढ़ै। इत्यादिक शुद्धता सहित देखके भोजन लेय। वस्तु कहीं से

लेय सो देख कर लेय। घींसके नहीं लेय। वस्तु कहीं धरै तौ देखके धरै। धरती बिना देखे नहीं धरै। मल-मूत्र अपने तनका डारै सो जीव रहित स्थानमै देख शोध डारै। इत्यादिक शुद्धता सहित रहना, सो सातवां समिति गुण है। ७। आठवां शील गुण सो पर-स्त्री विषैं विकार बुद्धिका त्यागी होय। निज स्त्रीके संभोग विषैं, संतोषी होय। अल्प निद्राका करनहारा होय। अल्प निद्रा होय तो प्रमादी नहीं होय। दीर्घ निद्रा करै तो अपने गुणन कूं कलंकित करै। अल्प आहारी होय। बहुत भोजन करै तो शील कौं दूषण होय। काष्ठ पाषाणादिकी स्त्री देख विकार रूप चित्त नहीं करै। इत्यादिक शीलभाव राखै, सो आठवां शील गुण है। ८। त्याग नववां गुण है। सो कुटुम्ब परिग्रह और शरीरमैं मोहका त्यागी होय। अनरंजन भाव होय। मंद मोह कौं लिये सरल चित्तका धारी होय। चिन्ता शोक भय करि रहित होय। बड़ा दानी होय। इत्यादिक गुण सो त्याग गुण है।९। ऐसे कहे नव गुण सहित जो होय सो तिस भव्यात्मा कौं यज्ञोपवीत फलदाई होय। इन गुण बिना यज्ञोपवीत राखै तौ परभव कौं दुषित करै। प्रायश्चित्तका धारक सत्पुरुष ब्रह्मचर्यका धारी; तिन करि निंद्य होय। दुख पावै। जैसे मन्त्रका जाननहारा सर्प राखै। तो निर्दोष है। बिना मन्त्र जानै सर्प राखै। तौ दुखी होय। ऐसे कहे गुण प्रमाण यज्ञोपवीत राखै तौ शुभ उपजावै नाहीं दुख उपजावै। ऐसा जानि गुण सहित यज्ञोपवीत राखै। सो क्रिया ब्रह्म है। आगे इन ही श्रावकनके भोजन समय सात अन्तराय होय हैं। सो कहिये हैं। प्रथम नाम जहां कौड़ी आदि निर्जीव हाड़ देखै मांस पिंड देखै रोद्र धार देखै भोजन करते थालमैं जीव पतन होय पंचेन्द्रियका मल देखे कच्चा पक्का सूखा चमड़ा देखै व स्पर्शै और तजी वस्तु भोजनमैं आवैं। ऐसे सात अन्तराय हैं सो इनका निमित्त मिलै तो दयावान् कोमल चित्तका धारी श्रावक भोजन तजै। ता दिन अनशन करै। जब से अन्तराय भया तब तैं अन्न जल नहीं लेय। ऐसा जानना। आगे ये क्रिया ब्रह्मके पालने योग्य सत्रह नियम हैं। सो कहिये हैं—

गाथा—भोयण पड रस पाणो, लेय पुखोय गीत तंवोलो। णित अवंभ सणाणो, आभूपण पट्ट पम्माणो ॥ १५४ ॥

अर्थ—भोयण कहिये, भोजन। षड रस कहिये, षट् रस। पाणो कहिये, पान करने योग्य जलादिक। लेय कहिये, लेप करने योग्य वस्तु। पुखोय कहिये, पुष्प। गीत कहिये, राग। तंबोलो कहिये, नागर पान।

णित कहिये, नृत्य। अवंभ कहिये, कुशील। सणाणो कहिये, स्नान । आभूषण कहिये, गहना। पट्ट कहिये, वस्त्र। पम्माणो कहिये, इनका प्रमाण करना। इनका भावार्थ आगे कहेंगे।

गाथा—वाहण सज्जा आसण, सचित्त संज्ञाय सत्त दस णियमो। धम्मी सावयः धारय, जाम दिण पक्ष मास वस्सादि ॥१५५॥

अर्थ—वाहण कहिये, असवारी। सज्जा कहिये, शैय्या, सोने का स्थान। आसण कहिये, बैठने का स्थान। सचित्त कहिये, जीव सहित सो सचित्त। संज्ञाय कहिये, वस्तु। सत्त दस णियमो कहिये, ए सत्तरह नियम हैं। जाम दिण पक्ष मास वस्सादि कहिये, पहर-दिन-पक्ष-मास-वर्षादि तक। धम्मी सावयः धारय कहिये, धर्मी श्रावक धारण करै। भावार्थ—भोजन, रस, पान, लेपन, फूल, ताम्बूल, गीत, नृत्य, अब्रह्म, स्नान, आभूषण, वस्त्र, बाहन, शैय्या, आसण, सचित्त और वस्तु—इन सत्रह का नियम करैं। इनका अर्थ—तहां गेहूँ, चना, चांवल, मूंग, मोंठ, यव, ज्वार आदि अन्न का प्रमाण। जो मैं एते अन्न खाऊँगा, बाकी अन्न तजे। ऐसे अन्न भोजन की संख्या राखना, सो भोजन प्रमाण है।१। आज षट्रस विषैं ऐते रस खाऊँगा, सो अगार है। बाकी के तजे। ऐसे षट् रसन में तैं, जो एक-दो-तीन-च्यारि आदि रस का प्रमाण करना। सो रस नियम है।२। पान करने योग्य जो जल, मही, दूध, ईखरस आदि वस्तुन का प्रमाण करना। जो ऐती वस्तु पान योग्य राखी सो अगार है सो खाऊँगा बाकी त्यागी ऐसा प्रमाण करना, सो पान प्रमाण है।३। ऐती सुगन्धी अगर, चन्दन, अगरजा, तेल, फुलेल इत्यादि इनका प्रमाण करना। जो ऐती खुशबोय राखी, बाकी तजी। तिनकी प्रतिज्ञा करनी, सो लेप नियम है।४। अनेक जाति के फूलनमैं तैं, फूलन की संख्या राखनी, जो आज ऐते फूल राखे, सो सूंघना। ढाकने, पहरने इत्यादिक का प्रमाण करना, सो फूल नियम है।५। जो ऐते ताम्बूल राखे। सो खावना, सो ताम्बूल नियम है।६। आज ऐती राग सुननी। षट् राग, छत्तीस रागनी अरु तिनकी अनेक भार्ज्या हैं, तिनमें तैं प्रमाण करै। सो राग सुनै, बाकी नाहीं सुनै। सो राग नियम है।७। अनेक जाति के नृत्य हैं। पातरा नृत्य, वेश्या नृत्य, देवांगना नृत्य, घर-स्त्रीन का नृत्य, भाण्ड नृत्य, भवैया नृत्य, नरकों नारी बनाय नृत्य, नारी नर-रूप धर नृत्य करै इत्यादिक अनेक हैं। तिनमें तैं प्रमाण करना। जो एते नृत्य आज देखने, बाकी का त्याग है सो नृत्य नियम है।८। पर-स्त्री का सर्वथा त्याग तो पहिले ही था अरु स्व-स्त्री

में संतोष सहित प्रमाण करना। जो आज एतीबार कुशील-सेवनका प्रमाण है। बाकीका त्याग है। ऐसा प्रमाण, सो कुशील नियम है। ९। आज एती बार स्नान करूंगा, बाकी तज्या सो स्नान नियम है। १०। आज ऐते आभूषण राखे सो पहरने बाकीका त्याग। ऐसा प्रमाण करना सो आभूषण नियम है। ११। ऐते वस्त्र राखे। एते सूतके एते रेशमी, एते रौमी। इत्यादिक वस्त्रका प्रमाण करना सो वस्त्र नियम है। १२। हाथी, रथ, घोड़ा, ऊंट, बैल, रोज महिष, अंबाड़ी, मियाना, पालकी, नालकी तखतरवां, गाड़ी इत्यादिक अनेक असवारीके भेद हैं। तिनमें ते एते राखीं बाकी तजीं। ऐसे अनेक पुण्य-प्रमाणमें भी संतोष करि असवारीकी संख्या राखना सो वाहन नियम है।१३। सोवनेका स्थान, महल, पलंग, बिछौना, तकिया, पिछोरा, रजाई, इत्यादिकका प्रमाण करना सो शैय्या नियम है। १४। बहुरि एती जायेगा बैठना एती जगह जाना। ऐसा प्रमाण करना सो आसन प्रमाण है। १५। आज एती सचित्त वस्तु खावना बाकीका त्याग सो सचित्त नियम है। १६। आज एती वस्तु राखी सो लेना बाकीका त्याग है। ऐसी प्रतिज्ञा करनी, सो वस्तु नियम है। १७। ऐसे ए सत्रह नियम कहे। सो धर्मात्मा अव्रती श्रावक पर्यंतकूं करना योग्य है। इनका प्रमाण होते इस जगत तैं उदासी धर्मात्मा श्रावकका चित्त विषय भोगन तैं विरक्त रहै है। तातें प्रमाद नहीं बधने पावै। इनके विचार तैं स्यात-स्यात (घड़ी-घड़ी) में धर्मकी यादगारी रहै है। अनर्थ-दण्ड पाप छूटै है। सो जे धर्मात्मा ब्रह्मचर्य व्रतका धारी इनकूं विचारै यादि करै सो क्रिया-ब्रह्म है। इति सत्रह नियम। आगे क्रिया-ब्रह्म धर्मात्मा श्रावक ताके इक्कीस गुण कहिए है। तहां प्रथम नाम-प्रथम लज्जावान् होय। अगर निर्लज्ज होय तो देव गुरु धर्मकी मर्यादा लोप देय। कुल धर्म तजि कुधर्मका सेवन करै। बड़े गुरुजनकी अविनय रूप प्रवृत्ति करै। माता-पिताकूं खेदकारी होय। एते दोष भए धर्मका अभाव होय। तातें धर्मका स्वभाव लज्जा है। तातें धर्मी, लज्जा गुणका धारी है। १। अदया, सर्व पापका बीज हैं। तातें दयावन्त होय, निर्दयी नहीं होय। २। तीव्र कषायी होय, तौ लोकमें निन्दा पावै। धर्म-कल्पवृक्ष बिनशि जाय। तातें शांत स्वभावी होय, क्रोधादि कषाय-जाकें नहीं होय। ३। केवली सर्वज्ञभाषित धर्मका श्रद्धान सहित, जिन धर्मका उपदेशक होय। स्वेच्छाचारी, मिथ्या-धर्मका उपदेशक नहीं होय। ४। पर-दोषनका ढांकनहारा होय। अपने औगुणका प्रगट करनहारा होय। ५। परोपकारी होय। परद्वेषी नहीं होय। ६।

सौम्य-मूर्ति होय। जाके देखे प्रीति उपजै। भयानक आकार नहीं होय। ७। गुण-ग्राही होय। औगुण-ग्राही नहीं होय। ८। मार्दव धर्मका धारी, यथायोग्य विनयकूं लिये होय। ९। सर्व जीवनकूं, आप समान मानै। सर्व तैं मैत्री-भाव लिये होय। द्वेष-भाव रूप काहू तैं नहीं होय। १०। न्यायपक्षका धारी होय। अन्याय पक्षका पोखता नहीं होय। ११। मिष्ट मधुर स्वरका भाषणहारा होय। कठोर वचनी नहीं होय। १२। गंभीर स्वभाव सहित, दीर्घ विचारी होय। बालकवत् सामान्य विचारी नहीं होय। १३। विशेष ज्ञानी होय। कोई कुवादीनकी खोटी नय-युक्ति तैं नहीं डिगै। आप अनेक सद्युक्ति सद्दृष्टान्त सच्चे शास्त्र-न्याय तैं बताय, कुवादीनका खण्डनहारा, भला ज्ञानी होय। १४। सर्वकौं सुखी देख सुख पावनहारा सज्जन स्वभावी होय। दुर्जन अदेखा नहीं होय। १५। दया धर्म अङ्गका धारी, दानपूजादि गुण सहित धर्मात्मा होय। पापी नहीं होय। १६। भली बुद्धिका धारी होय। कुबुद्धि धारी नहीं होय। १७। योग्यायोग्यका जाननहारा होय, मूर्ख नहीं होय। १८। दीनता उद्धतता रहित, मध्यम-स्वभावी होय। १९। सहज ही विनयवान् होय अविनयी नहीं होय।२०। पापारम्भ क्रिया तैं रहित, शुभाचारी होय। २१। ऐसे कहे गुण सहित होय, सो क्रिया ब्रह्म जानना। इति इक्कीस क्रिया ब्रह्मके गुण। आगे क्रिया ब्रह्मके भेद, पर मतमें भी कहे हैं, सो कहिए हैं। जो ये गुण होंय सो क्रिया ब्रह्म है। ताकी क्रिया कहैं हैं। सो ही कहिये है-"उक्तं च मार्कण्डेयजी कृत सुमति शास्त्र"-जे उत्तम ब्राह्मण होंय सो एती क्रिया करैं। सो बताईये है। जहां अनछान्या पानी पीवै, तो मदिरा समान दोष होय। अनगाले जलमें स्नान करै, तो काया अशुचि होय। अनगाले जलमें रसोई करै, तो सात भव जलचर जीव होय। तातैं उत्तम द्विजकों अनगाल्ये जलतैं क्रिया करना मना हैं। ऐसा जानना। आगे व्यास वचन महाभारतसे सातवें खण्डमें कह्या है। ब्राह्मणकूं शीलव्रतही श्रृङ्गार है। शील बिना पूजा जप तप सर्व नष्टकारी हैं। फलदाता नाहीं। तातैं उत्तम गुणका लोभी शील सहित रहै है। और ब्राह्मण, दया पाल करि गमन करै है। आप समान सर्व जीवन कौं जानि तिनकी रक्षा करने निमित्त नीची दृष्टि किये चलै। जो कीड़ी कुंथुवादि अपनी दृष्टिमें आवैं तो बचावता धरती देखता या विधिसुं गमन करै। बिना देखै पांव नहीं धरै। भोगी जीवनके सोवनेका स्थान जो पलङ्ग तापै नहीं सोवै। भूमि पै सोवै। और जातैं राग भाव बधै, काम बधै, ऐसा वस्त्र नहीं राखै। राग रहित वैराग्यकों कारण

ऐसा वस्त्र पहिरै। शरीरकूं चन्दन अरगजा तैल फुलेल इतरादिक सुगंधित वस्तु नहीं लगावै ताम्बूल पान नहीं खाय। और संसारके मोही प्रमादी कुशीलवान् जीव तिनकी सी नाईं निशंक होय निद्रा नहीं करै। कामी पुरुषकी नाईं विषयनमें मोहित नहीं होय। भोगाभिलाषी कामी पुरुष तिनके मुखसूं स्त्रीनकी कथा राग भाव सहित नहीं सुनै। अपने मुख तैं काम कथा स्त्रीनके गुण रूप भोगकी कथा नहीं कहै। क्रोध मान माया लोभ तजनेका उपदेश औरनकूं देय। अपने तन पै श्रृङ्गार नहीं करै। हस्ती घोटक पालकी रथादि बाहन पै नहीं चढ़ै। दयाके हेतु पांव प्यादा धरती शोधता चलै। दन्त नहीं धोवै। इत्यादिक अपना ब्रह्मपद जो ब्रह्मचर्य ताकी रक्षा करता भलो क्रिया करै। प्रभात व शाम दो वखत, संध्या नहीं चूकै। इन क्रियान सहित होय सो ब्रह्म सत्पुरुष करि शुश्रूषा योग्य होय है। ए लक्षण क्रिया ब्रह्मके कहे। और इन क्रिया रहित होय सो क्रिया ब्रह्म नाहीं। जो कुशील भाव क्रोध मान माया लोभकूं लिये अहंकार ममकार सहित होय सो शीलवान् करि शुश्रूषा नहीं पावै। दोष सहित है। ए गुण जामें नहीं होंय सो कुल ब्राह्मण है क्रिया ब्राह्मण नाहीं ऐसा जानना। इति व्यास वचन। आगे मार्कण्डेय कृत सुमति शास्त्र तामैं ऐसा कह्या है। कि जो दिनके प्रथम पहरमें भोजन करै सो देव भोजन है। दूसरे पहरमें भोजन करै सो ऋषीश्वरका भोजन है। तीसरे पहरमें भोजन करै सो पितृनका भोजन करै। चौथे पहरमें भोजन करै सो दैत्यनका भोजन करै। तातैं दिनका अष्टम भाग च्यारि घड़ी बाकी रहै। जब सूर्यकी कांति मंद होय। तब तैं उत्तम आचारी ब्रह्मचर्यका धारी भोजन नहीं करै। अरु कदाचित् करै तो अपने ब्रह्मचर्य पदकूं दूषित करै। ऐसा जानना। आगे शिव पुराणमैं कह्या है। जो उत्तम ब्रह्मव्रती एती वस्तु नहीं खाय। बैंगन, गाजर, मूली, आदी, सूरन, मधु, मद्य, मांस इत्यादि अभक्ष्य वस्तु नहीं खावै। ब्रह्मव्रत धारी उत्तम जीव नहीं खाय और कदाचित् लोभ धारि के खाय तौ जो बारह वर्ष दान पूजा जप तप किये तिनका फल मिटि जाय। तातें ब्रह्म भक्त एती वस्तु नहां खांय आगे और पुराणनमें भी कह्या है। जो कृष्ण महाराज, युधिष्ठिरजी सूं कहैं हैं। भो युधिष्ठिर! मेरा भक्त होयके ब्रह्मव्रती कंद—मूल खाय। तो दया पूजा दान, इन्द्रिय—मनका जीतना, ये सर्व क्रिया विफल होय। तातें मेरे भक्त कौं कन्द—मूल तजना योग्य है। और काश्यप मुनिके वचन हैं। जो ब्रह्मभक्त पूजा करै तौ तब सुफल है। जब कन्द—मूल नहीं खाय। याके

खाये से सर्व क्रिया नष्ट होय। और शिवपुराण में कह्या है। जो दया समान दूसरा तीर्थ नाहीं। दया भाव है, सो ही एक भला तीर्थ है दया बिना तीर्थफल नाहीं ऐसे कहे जो अनेक धर्म अङ्ग सो इनकूं पालै॥ वही उत्तम धर्मका धारी क्रियाब्रह्म है। इति क्रियाब्रह्म। आगे कुलब्रह्म के दशभेद अन्यमत संबन्धी कहे हैं सो ही बताईये है—

काव्य—सुरो मुनीश्वरो विप्रो, वैश्यः क्षत्रिय शूद्रकौ। विजातिपशुमातंग, म्लेच्छाश्च दश जातयः॥

अर्थ—देव जाति, मुनि जाति, विप्र जाति, वैश्य जाति, क्षत्रिय जाति, शूद्र जाति, विजाति, पशु जाति, म्लेच्छ जाति, मातङ्ग जाति—ये दश भेद व्यास भाषित मत्स्यपुराण अनुसार हैं। इनका अर्थ—जहां तत्त्व-ज्ञान विषैं प्रवीण होय, अपने आतम कल्याण का अर्थी होय, निर्हिंसक क्रिया का करनहारा होय, बहु आरम्भ-परिग्रह का त्यागी सन्तोषी होय, त्रिकाल सन्ध्या की क्रिया में सावधान होय, आपा-पर के ज्ञान का धारी होय, आत्म-तत्त्ववेत्ता होय इत्यादिक गुण सहित होय, सो देव जाति का ब्राह्मण है।१। और जो उत्तम तीन कुल का भोजन करनहारा होय, नगर का वास तजि वन का निवासी होय, तीनकाल आत्मध्यान में प्रवर्तनहारा होय इत्यादिक गुणसहित होय, सो ऋषीश्वर जाति का ब्राह्मण है।२। और अनेक प्रासुक सुगन्ध द्रव्य मिलाय, अग्नि में खेवै-होमै। अग्नि कबहूँ बुझने नहीं देय। होम-क्रिया में सावधान होय, दयारूप धर्म जानता होय, देव-गुरु-पूजा में विनयवान होय, अपने भोजन में तैं अतिथि कौं देय, ऐसे अतिथि व्रत का धारी होय, गृहस्थ के षट् कर्म-क्रिया में सावधान होय, ऐसे गुणसहित जो होय, सो विप्र जाति का ब्राह्मण है।३। और जे हस्ती, घोटक, रथादि की असवारी विषैं प्रवीण होय। युद्ध करवैं की जाकैं चाह होय। युद्ध की अनेक-कला तीर गोली, खड्ग, पटा, सेल्ह, धूप, बांकि, खंजर, छुरी, कटारी इत्यादिक शस्त्र-कला में सावधान होय। लड़ने में मरने कूं नहीं डरता होय। मन का शूरवीर होय॥ बड़े आरम्भ, राज्य-सम्पदा का भोगी होय। जो इन गुणन सहित होय, सो क्षत्रिय जाति का ब्राह्मण है।४। ब्राह्मण के कुल में तो उपज्या होय अरु खेती करता होय। गाय, महिष, वृषभादि पशून के पालने की कला में प्रवीण होय। आचार रहित खान-पान का करनहारा होय। इन लक्षण सहित होय, सो शूद्र जाति का ब्राह्मण है।५। ब्राह्मण के कुल में उपज्या होय अरु इन वाणिज्य व्यापार की चतुराई जानता होय। वस्त्र परीक्षा सोना, चाँदी की परीक्षा

जानता होय। रुपया, मुहुर, रत्न की परीक्षा जानता होय। अन्नादिक लेन-देन में सावधान होंय। अनेक लेखे करने की जो कला व्याज फैलाना आदि ज्ञान सहित आजीविका करता होय, सो वैश्य जाति का ब्राह्मण है।६। ब्राह्मण कुल में तो अवतार लिया होय अरु पराई निन्दा करनहारा होय। पर-दोष का देखनहारा होय। अनेक पर-स्त्री का भोगनहारा पशु समान कुशीलवान् होय। पंचेन्द्रिय विषय में लोलुपी होय। अपना यश, अपने मुख तैं करता होय। अपनी सन्तोष-वृत्ति कूं तज, द्रव्य के लोभ कूं अनेक स्वांग धरि, छल-बल करि, धन पैदा करता होय। अनेक गावना, बजावना, नृत्य करनादि कला कर आजीविका करता होय। अनेक यन्त्र, मन्त्र, तन्त्रादि के चमत्कार लोगनकूं दिखाय, अपने कुटुम्ब का पालन करता होय। इन लक्षण सहित होय। ताकूं विजाति ब्राह्मण कहिये। ७। ब्राह्मण के कुल में तो अवतार लिया होय अरु खाने योग्य वस्तु अरु ऊँच-कुली मनुष्य के नहीं खावे योग्य वस्तु विषैं, विचार रहित होय। क्रोध वचन, गाली वचन, श्राप वचन, कुफर जो भण्ड वचन इत्यादिक दुर्वचन; पर-पीड़ाकारी, पापमयी, बोलने का स्वभाव होय भली-क्रिया रहित होय। महाप्रमादी, बहुत सोवने का स्वभाव होय इत्यादिक लक्षण जामें होंय, सो पशु जाति का ब्राह्मण है। ८। ब्राह्मण कुल में तो अवतार धर्‍या होय अरु नदी, तालाब, बावड़ीन की क्रीड़ा-तैरना-कूदना, ताकूं भला लागता होय। मद्य-मांस भक्षण करता होय। बहुत हिंसा करनहारा होय। दया-धर्म शुभाचार रहित होय इत्यादिक लक्षण जामें होंय, सो म्लेच्छ जाति का ब्राह्मण है। ६। और महाहिंसा का करनहारा होय। मनुष्य-पशू के मारने कूं निर्दयी होय। भली-भली द्विज योग्य क्रिया, तिनकरि रहित होय। हिताहित विचार करि, रहित होय। पूजा, दान, जप, तप आदि धर्म-क्रिया करि शून्य होय। पाप परिणति सहित होय। इन आदि लक्षण सहित, सो मातङ्ग जाति का ब्राह्मण है। १०। ऐसे ब्राह्मण के दश भेद कहे, सो आचार के योग तैं कहे; परन्तु ब्राह्मण के कुल में उपज्या है, सो जिस कुल में उपज्या होय, सो ही नाम कहना सो क्रिया चाहे जैसी करो। ब्राह्मण में उपज्या, ताकौं ब्राह्मण कहना, सो कुल-ब्रह्म है। या प्रकार स्वभाव-ब्रह्म, क्रिया ब्रह्म, त्याग ब्रह्म, कुल ब्रह्म—ये च्यारि ब्रह्म के भेद कहे। सो सातवीं प्रतिमा धारी, च्यारि कुल का उपज्या धर्मात्मा श्रावक, सर्व स्त्री का त्यागी, सौम्य मूर्ति, ये सातवीं प्रतिमा धारै। सो ये त्याग-ब्रह्म जानना।

इति श्रीसुदृष्टि तरङ्गिणी नाम ग्रन्थ के मध्य में, श्रावक भेद रूप एकादश प्रतिमा विषैं, सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमा के भेद; शील महिमा, भोजन के सात अन्तराय, सत्रह नियम, श्रावक के इक्कीस गुण, अन्य-मत सम्बन्धी केतीक, सीख सहित क्रिया-ब्रह्म भेद, दश-भेद, कुल-ब्रह्म, कथन करनेवाला सैंतीसवाँ पर्व सम्पूर्ण भया ॥ ३७ ॥

आगे अष्टमी प्रतिमा का कथन लिखिये है। तहां अष्टमो प्रतिमा, आरम्भ-त्याग है। सो कोई भव्य, जब अष्टमी प्रतिमा धारै। तब पापारम्भ तैं उदास होय, वह मोक्षाभिलाषी ऐसा विचारै। जो इस संसार में, गृहारम्भ के पाप तैं मोह के वशीभूत भया यह आत्मा, नरक-दुःख में अपनी आत्मा डुबोवै है और जिनतैं मोहबुद्धि करि, पाप-भार शिर पै धरै है। सो पाप फल आये, इन मोहीन का नाम भी नहीं दीखैगा। द्रव्य खाय-खाय, सर्व अपने-अपने मारग लागैंगे अरु तिन पापन का फल, मोकौं ही भोगना पड़ेगा। जैसे—एक चोर के घर में आप, माता, पिता, स्त्री, पुत्र—ये पांच आदमी थे। ये पांचों कौं ही पाप-फल तैं भूखों मरते, अन्न बिना तीन दिन भये। तब पुत्र ने रुदन करि कह्या। हे पिता! अब हम सब घर-जन अन्न बिना मरैं हैं। भोजन बिना तीन दिवस भये, सो दुःखी हैं। तातैं अन्न लाय देव। तब चोर ने कही—हे पुत्र! बहुत फिरौं हों; परन्तु पाप-उदय तैं, कछु मिलता नाहीं। अब तुम धीरज धरो, मैं और जाऊँ हूँ। सो ये चोर कुटुम्ब के मोह तैं चोरी कौं गया। एक घर में खीर होय थी सो इस चोर ने अपनी चतुरता तैं, खीर का बासन चुरा लिया। सो ल्याय घर में आया। कुटुम्ब के आगे धरी, सो पांच थालियों में पांचों ने परोसी। तब सब ने कही—भोजन तो भला ल्याया; परन्तु मिष्टान होता तौ भला था। तब चोर-कला-वारै ने कही—तुमने कहा है तौ मैं मिष्टान भी ल्याऊँ हूँ। तब यह चोर तौ मिष्टान्न कौं गया। सो बड़ी देर लागी। सो इनको थिरता नहीं रही। सो अपनी-अपनी थाली की खीर भूख के मारे खाय गये। बाकी जो चोर गया था सो ताका थाल ढांक रख्या। सो एते में एक मिजवान आया, सो चोरीवारे का खीर का थाल मिजवान के आगे धऱ्या। सो मिजवान ने खाया। तब वह चोर किसी का मिष्टान चुरा के आया सो देखे तो खीर नाहीं। घरवारों कों पूछी, तब उन्होंने कही—मिजवान आया ताने खाई। ये चोर तीन दिन का भूखा दुखी है। एते में खीर अरु मिष्टान की खोज करते कोतवाल चोर कूं हेरते आए, सो कोतवाल ने इस चोर कूं पकड़्या। सो घर-जन अरु मिजवान खीर खावनहारे सर्व भाग गये। या चोर की मुसकैं बँधीं। सो

नाना प्रकारकी मार चोर भोगी, महादुखी भया। तैसे ही कुटुम्ब के निमित्त पापारम्भ करौं हौं, सो चोर की नांईं मोकूं दुःख भोगना पड़ेगा। ये कुटुम्ब दुःख के आए सर्व जाते रहेंगे। ऐसे ये शिव-सुख का अभिलाषी संसार-भोगन तैं उदास, ऐसा विचारै। कुटुम्ब तैं अरु गृहारम्भ तैं ममत्व छांड़ि, पीछे घर में अपने पुत्रादिक कूं विवेकी देख जो यह घर-भार चलायने कूं समर्थ, ताहि बुलाय कैं, प्रथम तौ ताकौं हित-मित हितोपदेश देय, सन्तोषित करै। पीछे अपने चित्त का रहस्य बताय, ताकौं कहै। हे भव्य! अबलौं तो घर-भार हमने चलाया। अब तोकौं सपूत, सज्जन-अङ्गी, विवेकी, विनयवान् देख, बड़ा हर्ष भया। हमारी गृह-पालन की चिन्ता गई। सो हे धर्मी! अब तुम इस कुटुम्ब की रक्षा करौ। न्यायपूर्वक धनोपार्जन करौ। धर्म सेवन कर, पर-भव सुधारो। ऐसा कहि, पीछे सर्व जाति, कुटुम्ब, पञ्चन कूं बुलाय, विनय सहित हित-मित वचन कहै। कि हे पञ्च हो! अब तांईं हमने, कुटुम्ब के संग तैं आरम्भ किया। अब हमारा मनोरथ, पर-भव सुख के निमित्त, आरम्भ रहित धर्म-सेवन का है। तुम सर्व भाईयन के सहाय तैं, यह भव सुधर्या। तुम्हारा दिया धन-यश पाया। अब इस गृह का भार, इस पुत्रकौं सौंप्या है, सो अब तुम, याकी प्रतिपालना करो, जैसे सर्व भाई मोतैं धर्म स्नेह करि, मेरी प्रतिपालना करी। तैसे ही याकी करौ। जैसे प्रयोजन पाय, मोसे आज्ञा करौ थे, तैसे इस पर करोगे। जैसे मो-भूले कूं क्षमा-भाव करि शिक्षा देय थे, तैसे याकूं शिक्षा देय, प्रवीण करोगे। तातैं अब मैं तुम सर्व भाईयन तैं ऐसी विनति करौं हौं। जो अब तांईं आरम्भ-प्रारम्भ विषैं मोपै कृपा करि, मोकौं यादि करकैं मेरा नाम लेय नेवता-बुलावा भेजो थे, सो अब पञ्चायती व विवाहादिक के आरम्भ विषैं याकौं यादि करि याके नाम न्योता-बुलावा भेजोगे। अब मैं गृह आरम्भ तैं तुम सर्व भाइयन की साक्षी तैं न्यारा हों इत्यादिक सर्व पञ्चन तैं शुभ वचन कहै। तब सर्व पञ्च इनकी धीरता देख बहुत प्रशंसा कर, इनका कह्या करैं। तिस ही दिन तैं आप पापारम्भ का त्यागी भया। पापारम्भ तैं न्यारा होय घर विषैं तिष्ठता धर्म-साधन करै। घर ही में स्तुति करता पूजा, दान, ध्यान, संयम करता; काल गमावै। भोजन समय घर-जन बुलावैं तब भोजन कौं जाय अरु अपने पदस्थ-प्रमाण परिग्रह अल्प राखै। सो आरम्भ त्यागी आठवीं प्रतिमा का धारी है। इति आठवीं प्रतिमा।८। आगे नववीं प्रतिमा का स्वरूप कहिये है। अब नववीं परिग्रह-त्याग प्रतिमा विषैं सर्व

परिग्रह-आरम्भ के ममत्व का त्यागी होय। आगे अष्टम प्रतिमा में अल्प परिग्रह का त्यागी नहीं था। सामान्य परिग्रह था। सो अब सर्व परिग्रह त्याग कर एकान्त स्थान विषैं धर्मध्यान सेवन करै। प्रथम दिन कोई नेवता दे जाय ताके घर भोजन करै। अपना घर तथा पराया घर एक-सा देखै। पाद्य पक्षेवरी राखै न्यौता जीमें। सो महा सौम्य मूर्ति धारी दयाधर्मपालक है। ऐसे गुण नववीं प्रतिमा धारक के जानना। इति नववीं परिग्रह त्याग प्रतिमा। ९। आगे दशवीं प्रतिमाका स्वरूप कहिये है। अब अनुमति जो उपदेश सो दशवीं प्रतिमा का धारी पापारंभके उपदेशका त्यागी है सो भोजन-मात्र भी कहके नहीं करै। यह न्यौता नहीं मानै। भोजन समय कोई बुलाय ले जाय तौ भोजन करै। न्यौता नहीं जाय। बिना न्यौता जीमैं सो अनुमति त्यागी है। इति दशवीं प्रतिमा। १०। आगे ग्यारहवीं प्रतिमाके धारी श्रावक तिनके दोय भेद हैं—एक क्षुल्लक दूसरा ऐलक। तहां कटि-बंधन अरु लँगोटमात्र परिग्रह राखनेहारा वन-विहारी उदंड (अनुद्दिष्ट) आहार करै। अरु धरती बिछायवे कूं आसमान ओढ़वे कूं महा दयालु मुनि समान चित्तका धारी; नग्न बिना इक्कीस परिषहका जीतनहारा निर्मल आचारी कमण्डलु पीछीका राखनहारा यति समान व्रत का धारी मुनि पदका अभिलाषी इस धर्मात्मा कूं कोई सूक्ष्म जातिका अंश लिये शङ्कारूप परिणति है। सूक्ष्म अंश काम विकारके मन, वचन, कायमैं, कोई जातिके भंगा लिये हैं। जो केवली गम्य हैं। आपकौं भासै हैं, तातैं ये नगन-मुद्रा नहीं धारै। ये सूक्ष्म काम विकार गये, यति पद लेनेके योग्य होयगा। ऐसा श्रावक, सो ऐलक श्रावक है सो यह ऐलक श्रावकका पद, तीन कुलके उपजे भव्यात्माकूं होय है। शुद्रकूं नाहीं होय है। १। क्षुल्लक पद है सो नीच कुल, तथा ऊंच कुल दोऊ जातिकूं होय है। सो क्षुल्लकके पास, कछू कपड़ा मात्र परिग्रह होय। एक दुपट्टा, एक शिर पै फैंटा राखै। सो नहीं तौ बहुत बारीक-मुलायम, तातैं सराग भाव होंय। अरु नहीं बहुत दृढ़, तिनमें जीव पड़ैं। मलिन भये रङ्क सा दीखै, ऐसे भी नाहीं। मध्यम भाव धरैं, राग रहित, ऐसे वस्त्र राखै सो जे शूद्र जातिके क्षुल्लक होंय। सो शूद्रके दोय भेद हैं। एक स्पृश्य शूद्र, दूसरा अस्पृश्य शूद्र। तहां धोबी, नाई, बढ़ई, दर्जी इत्यादिक जिनके छूये लोकमें ग्लानि नाहीं सो स्पृश्य शूद्र हैं। १। जहां भङ्गी, चाण्डाल, चमार, कोली इन आदिक जिनकूं छूये लौकिकमैं ग्लानि होय, स्नान किये शुद्ध होंय, सो अस्पृश्य शूद्र हैं। २। सो इन दोऊनमें तैं,

स्पृश्य-शूद्रकौं तो क्षुल्लक व्रत होय और अस्पृश्य शूद्रकूं व्रत नाहीं होय। सम्यग्दर्शनादि गुण होय हैं, सो तहां ऊँच-कुल का क्षुल्लक श्रावक तौ भोजन कौं जाय, सो गृहस्थ के चौके में ही भोजन करै और शूद्र जाति का क्षुल्लक है, सो गृहस्थ के भोजन स्थान में नहीं जाय। क्योंकि याका कुल, हीन है तातैं ये धर्मात्मा, संसार से उदासीन, व्रत का धारी, धर्म-मर्यादा का जाननहारा, पुण्य-फल का लोभी, पर-भव के सुधारने की अभिलाषा जाकैं, परम्पराय मोक्ष का इच्छुक जन्म-मरण तैं भय भीत भया है चित्त जाका ऐसा सौम्य स्वभावी-धर्ममूर्ति, मार्दव-धर्म का साधनेहारा यह नीच-कुली श्रावक अपना नीच-कुल प्रगट करने कूं, एक लोहे का पात्र भोजन करने कूं, अपने पास राखै। जब कोई धर्मात्मा श्रावक इस क्षुल्लककौं भोजन निमित्त अपने घर ल्यावै। तब यह शूद्र-कुली धर्मात्मा याके संग तहां तांई जाय जहां तांई काहू का अटक नहीं होय। पीछे चौक में खड़ा होय रहै। तब श्रावक इनकूं उत्तम जानि आगे बुलावै। तब यह धर्मी चौक में ही तिष्ठै अरु लोह का पात्र दिखावै। तब लोह के पात्रकूं देख कैं दाता जानै, जो यह शूद्र जाति है। तातैं यह धर्मात्मा ऊँचे नहीं आया तब दाता श्रावक, इस क्षुल्लककूं भले आदर तैं, विनय सहित, अनुमोदना करता, हर्ष सहित भोजन देय। सो उस बाखर (घर) में च्यार, दो, एक घर श्रावकन के होंय, तौ थोड़ा-थोड़ा सर्व घर तैं भोजन लेय। नाहीं होंय तौ दोय घर का एक घर का भोजन करै। अपना कुल छिपावै नाहीं। यह उत्तम व्रत का धारी श्रावक है। ऐसे ऊँच-कुल तथा स्पृश्य नीच-कुल दोय ही कुल में यह श्रावक पद होय है। २। और ऐलक पद ऊँच-कुलीकूं ही होय है। यह उत्कृष्ट श्रावक पद है। ऐसे सातवीं प्रतिमा तैं लगाय ग्यारहवीं पर्यन्त भेद कहे। सो ये त्याग ब्रह्म के भेद जानना। जैसा-जैसा त्याग, जिस-जिस स्थान पै भया, सो-सो नाम पाया। सो श्रावक के उत्कृष्ट त्याग की हद, ऐलक लँगोट-मात्र परिग्रह धारी की है। याके आगे श्रावक भेद नाहीं। इसके पीछे मुनि का ही पद है। तातैं सातवीं प्रतिमा तैं लगाय ग्यारहवीं प्रतिमा पर्यन्त श्रावककों ब्रह्मचर्य पदवी है। पीछे लँगोटी-परिग्रह परिहार भये, यति का पद होय है। तातैं भरत-क्षेत्र का इन्द्र, भरतनाथ, आदिनाथ का बड़ा पुत्र, भरत, चक्री, महाधर्मात्मा, ताने परम्पराय धर्म-मर्यादा चलायवेकूं स्थापे ऐसे ब्रह्म भेद, सो कुल ब्रह्म कहिये। या अवसर्पिणीकाल के आदि, नव कोड़ा-कोड़ी सागर काल पर्यन्त तौ भोग-भूमि वर्ती। तहां वर्ण भेद नाहीं, सर्व एकसे। पीछे चौदहवें कुलकर

नाभिराजा भये। तिनके कुल-मण्डन, श्री आदिनाथ पुत्र भये, सो इनने सर्व कर्म-भूमि का उपदेश दिया। क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, तीन वर्ण स्थाप संसारी-मार्ग बताया अरु इनके पुत्र भरत ने, धर्म की प्रवृत्ति चलाने कूं, ब्राह्मण-कुल थाप्या। सो च्यारि वर्ण जानना। अब काल-दोष तैं, सर्व कुलन का आचार हीन भया। तातैं ब्रह्म-क्रिया दया बिना भई। जीव अनेक क्रिया रूप भये; परन्तु कुल भेद नहीं गया। अनेक प्रकार आचार होय, तौ भी कुल-ब्रह्म कह्या, सो जग में प्रगट ही है ।१। कुल तौ कैसा ही होय अरु क्रिया आचार जाका दया सहित उत्तम शीलादिक गुण सहित होय, सो क्रिया ब्रह्म कहिये ।२। स्त्री आदि परिग्रह का त्यागी होय, सो त्याग ब्रह्म कहिये ।३। चैतन्य गुण सहित, अमूर्ति, जीव पदार्थ, सो स्वभाव ब्रह्म है ।४। ये च्यारि भेद, ब्रह्म के कहे। सो विवेकी उत्तम पुरुषनकूं सबका रहस्य धारण करना योग्य है।

इति श्री सुदृष्टि तरङ्गिणी नाम ग्रन्थ के मध्य में अष्टमी प्रतिमा तैं लगाय ग्यारहवीं प्रतिमा पर्यन्त, कथन करनेवाला अड़तीसवाँ पर्व सम्पूर्ण भया ॥ ३८ ॥

ऐसे यह श्रावक-धर्म कह्या और मुनि-धर्म के अष्टाविंशति (२८) मूल गुण हैं। ताका स्वरूप कह आये सो यह मुनि-श्रावक का धर्म, परम्पराय मोक्ष फल प्रगट करे है। याका तुरन्त फल तौ देव-लोक की विभूति सहित नाना प्रकार इन्द्रिय-जनित भोग हैं। जाकों जेता काल संसार में रहना होय, सो जीव श्रावक-धर्म तैं मनुष्य-देव के सुख पावै। पीछे भव-स्थिति पूर्ण भये, मुनि-धर्म का साधन कर, मोक्ष पद पावै है। तातैं जो कोई भव्यकूं, इन्द्रिय सुख का लोभ होय, सो इस श्रावक-धर्म का साधन करौ और जे भव्य निकट संसारी अतीन्द्रिय सुख चाहे, सो मुनि-धर्म आदरौ। ऐसा यह मुनि-श्रावक का धर्म भव्य जीवनकूं सदा-काल, मङ्गलकारी होऊ। यह सुदृष्टितरङ्गिणी नाम ग्रन्थ है। सो या विषैं प्रथम तो गेय-हेय-उपादेय का कथन है सो विवेकी अपना हित जानि, हेय-गेय-उपादेय करौ केताक कथन या विषैं, विवेक की वृद्धि के निमित्त उपदेश रूप है। ताके रहस्यकौं जानि, धर्मात्मा अपना कल्याण करौ। अब यहां इस ग्रन्थ का करता जैन-शास्त्र के अर्थ कूं अगाधि जानि, अपनी बुद्धि सामान्यता रूप, जानता भया। जो यह जिन-वचन का अर्थ तौ, अपार है, याके सम्पूर्ण व्याख्यान करने कौं, गणधर देव भी समर्थ नाहीं। तो हमसे किंचित् बुद्धि-धन के धारीन तैं, सर्व अर्थ कैसे कह्या जाय? ऐसा

जानि, इस ग्रन्थ के पूरण करने की है अभिलाषा जाकैं। सो अन्त में मङ्गल होने के निमित्त, महान् पुरुषन के नाम, जिनके कुल-सुमरण होवे करि, मङ्गल होय है। सो ऐसे तीर्थङ्करादि, त्रेसठ-शलाका पुरुष के नाम, पुण्य के कारण हैं। तातैं यहां प्रथम चौबीस तीर्थङ्कर तिनके नाम कहिये हैं—ऋषभनाथ, अजितनाथ, सम्भवनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ, पद्मनाथ, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभु, पुष्पदन्त, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ, शान्तिनाथ, कुन्थनाथ, अरहनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर स्वामी—ये चौबीस तीर्थङ्कर-जिन, अवसर्पिणी काल के तीर्थ हैं। आगे चौबीस-जिनके पिताके नाम—नाभिराजा, जितशत्रु, जयतार सुवीर, मेघ, धरण, सुप्रतिष्ठित, महासेन, सुग्रीव, दृढ़रथ, विमल, वासुदेव, जयति, धर्म, सिद्धसेन, भानु, विश्वसेन, सूर्य, सुन्दरसेन, कुम्भ, यशोमति, विजयरथ, समुद्रविजय, अश्वसेन और सिद्धारथ राजा—ये चौबीस प्रजा के प्रतिपालक, महान् राजेन्द्र भये। सो तीर्थङ्कररूपी दिनकर (सूर्य) के उदय करनेकौं उदयाचल पर्वत समान जानना। इति जिन पिता। अब जिन माता का नाम—मरुदेवी, विजयादेवी, श्रीषेणादेवी, सिद्धार्थादेवी, मङ्गलादेवी, सुसीमादेवी, पृथ्वीदेवी, सुलक्षणादेवी, रामीदेवी, सुनन्दा-देवी, विमलादेवी, जयादेवी, रामादेवी, सूर्यादेवी, सुव्रतादेवी, एलादेवी, श्रीमतीदेवी, सुमित्रादेवी, सरस्वतीदेवी, वामादेवी, विमलादेवी, शिवादेवी, वामादेवी और त्रिशलादेवी—ये चौबीस महादेवी, परम-पवित्र जगत् गुरु की माता सो जगत् की माता, पर सती भगवान्रूपी सूर्य के जन्म देवेकूं पूरव दिशा समान, तिनके नाम भव्यनकौं मङ्गल करौ। ये माता, जगत्पति भगवान्रूपी रत्न के उपजायवेकूं, रतन-खानि हैं। ये चौबीस जिन की माता के नाम की माला कही। आगे चौबीस जिन की काय की ऊँचाई कहते हैं। पांचसौ धनुष, साढ़े चार सौ, चार सौ, साढ़े तीन सौ, तीन सौ, ढ़ाई सौ, दोय सौ, डेढ़ सौ, एक सौ, नव्वै, अस्सी, सत्तरि, साठ, पचास, पैंतालीस, चालीस, पैंतीस, तीस, पच्चीस, बीस, पन्द्रह, दश, नव हाथ और सात हाथ—ये चौबीस जिन के शरीर की ऊँचाई अनुक्रम तैं कही। अब चौबीस-जिन के प्रतिबिम्ब पहिचानवें कौं चिह्न कहिये हैं—आदिनाथ का बैल का चिह्न और जिनों का अनुक्रमतैं कहिये हैं—हस्ती, घोटक, कपि (बन्दर), कोक (चकवा), लाल कमल, सांथिया, चन्द्रमा, मगर, कल्प वृक्ष, गैंडा महिष, सूकर, सेही, वज्रदण्ड, हिरण, बकरा, मछली, स्वर्ण

कलश, कछुवा, कनक, कमल, शङ्ख, सर्प और सिंह—ये चौबीस जिन के चिह्न कहे। सो एक हजार आठ चिह्न, सर्व शरीर अङ्गोपाङ्ग में यथायोग्य स्थान पर होय हैं। अरु ए चिह्न जो प्रतिबिम्ब के सिंहासन में लिखिए हैं। सो भगवान् के दाहने चरण विषैं जानना। जैसे आदिदेव के चरण में वृषभ का चिह्न है। तैसे ही सर्व जिन के पांवन में जानना। इति जिन-चिह्न। आगे चौबीस जिन के शरीर का वर्ण कहिये है। तहां चन्द्रप्रभ अरु पुष्पदन्त ये दोय जिन, शुक्ल वर्ण भए अरु मुनिसुव्रत स्वामी, अञ्जनगिरि समान श्याम वर्ण है। नेमिनाथ जिन मोर कंठ समान हरित तन धारी हैं और पद्मप्रभ, रक्त कमल समान तन धारी हैं और बारहवें वासुपूज्य जिन, टेसू के फूल समान तन धारी है और सातवें सुपार्श्वनाथ जिनकी काय, वैडूर्य मणि समान, हरित वर्ण है और पार्श्वनाथ-जिनकी काय, सजल मेघ घटा समान, श्याम वर्ण है और बाकी षोड़श जिनके शरीर,ताये स्वर्ण समान वर्ण के हैं। ये चौबीस-जिन के तन का वर्ण कह्या। अब आगे ये जिन, पूर्व-भव में जो मनुष्य थे सो वह नाम कहिये हैं। वृषभदेव पूरव-भव में वज्रनाभि चक्रवर्ती थे और शेष-जिनके पूर्व-भव के नाम क्रम करि कहिये हैं। विमल राजा, विमल वाहन, महाबल भूप, अतिबल, अपराजित, नन्दसेन राजा, पद्म, महापद्म, पद्म गुल्म, नोल गुल्म, पद्मोत्तर, पद्मासन, पद्म, दशरथ, मेघरथ, सिंहरथ, धनपति, वैश्रवण, श्रीधर्म, सिद्धारथ, सुप्रतिष्ठित, आनन्दराय और अन्तिम जिन महाबीर स्वामी, पूर्वभव में नन्द राजा थे। ये सर्व राजाओं में, आदि देव का जीव तो चक्री था और तेबीस महामण्डलेश्वर राजा थे। पीछे केतेक दिन राज्य करि, संसार तैं विरक्त भए, सो राज्य तज-तज, दीक्षा धरी। सो जिन पै दीक्षा धरी, ऐसे चौबीस-जिन के पूर्व-भव के दीक्षा गुरु, तिन आचार्यन के नाम क्रम तैं कहिये हैं—बज्रनाभि चक्री ने, बज्रसेन आचार्य तैं दीक्षा लई। विमल राजा के गुरु अरिंदमन नाम आचार्य, स्वयंप्रभ मुनि, विमलवाहन यति, श्रीमन्दिर गुरु, पिहितास्रव यति, अरिंदाव यति, युगमंधर ऋषीश्वर, सर्व जनानन्द ऋषि, उभयानन्द योगी, वज्रदन्त योगीश्वर, बज्रनाभि, सर्व गुप्त वीतराग, त्रिगुप्त तपस्वी, चितारक्षक गुरु, विमलवाहन गुरुदेव, धनरथ मुनि, संवर यति, वरधर्म ऋषि, सुनन्द गुरु, आनन्द योगी, वीत शोक आचार्य, दामर नाम मुनि और प्रोष्ठल यति—ये चौबीस यतीश्वर जगत् पूज्य हैं। इनके पास चौबीस जिन के जीव ने, पूर्व-भव में दीक्षा धरी थी, सो ये सर्व यति जगत् कर पूज्य हैं। इति चौबीस जिन के पूर्वभव के नाम

अरु पूर्वभव में जिनके पास दीक्षा धारी, तिन गुरुनके नाम कहे। आगे मुनि होय, कौन-कौन, किस-किस स्वर्ग गये। अरु तहां तैं चय, तीर्थंकर भये। तिन स्थानके नाम कहिए हैं—आदिनाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, ये च्यारि-जिन तौ, सर्वार्थ सिद्धि तैं आये हैं। अरु अजितनाथ, अभिनन्दन नाथ, ये दोय विजय विमान तैं आये और चन्द्रप्रभ अरु सुमतिनाथ ये दोय जिन, वैजयंत विमान तैं आए। अरु नेमिनाथ अरहनाथ ये दोय जिन, बैजयन्त विमान तैं आए। अरु नमिनाथ अरु मल्लिनाथ ये दोय-जिन, अपराजित विमान तैं आए। ये तौ पञ्च अनुत्तरनके कहे। अरु पुष्पदन्त, आरण नाम पन्द्रहवें स्वर्ग तैं आए। अरु शीतलनाथ, अच्युत स्वर्ग तैं आए। अरु श्रेयांसनाथ, अनन्तनाथ अरु महावीर, ये तीन जिन, बारहवें स्वर्ग तैं आए। अरु विमलनाथ, पार्श्व-नाथ, मुनिसुव्रत, संभवनाथ, सुपार्श्वनाथ, पद्मप्रभ ये छह जिन ग्रैवेयक तैं आए। अरु वासुपूज्य स्वामी, महाशुक्र नामा दशवें स्वर्ग तैं आए। ऐसे चौबीस-जिन जहां तैं आए, सो स्थान कहे। आगे चौबीस-जिनकी, जन्मपुरी के नाम अनुक्रम तैं कहिए है—अयोध्यापुरी, अयोध्यापुरी, श्रावस्तीपुरी, अयोध्यापुरी, अयोध्यापुरी, कौशांबी पुरी, काशीपुरी, चन्द्रपुरी, किष्किंधापुरी, भद्रशालपुरी, सिंहपुरी, चम्पापुरी, कंपिलापुरी, अयोध्यापुरी, रतन-पुरी, हस्तिनापुरी, हस्तिनापुरी, हस्तिनापुरी, मिथिलापुरी, कुशाग्रपुर' मथुरापुरी, शौर्यपुर, वाराणसी और कुण्डलपुर। इति जन्म नगरी। आगे जन्मके नक्षत्र अनुक्रम तैं बताईए हैं—उत्तराषाढ़में वृषभका जन्म, रोहणी, ज्येष्ठा, पुनर्वसु, मघा, चित्रा, विशाखा, अनुराधा, मूल, पुर्वाषाढ़, श्रवण, शतभिषा, उत्तरा भाद्रपदा, रेवती, पुष्प, भरणी, कृत्तिका, रोहणी, अश्विनी, श्रवण, अश्विनी, चित्रा, विशाखा, और उत्तरा फाल्गुनी। इति जन्म नक्षत्र। आगे जिन वृक्षनके नीचे दीक्षा लई तिनके नाम—वृषभदेव का दीक्षा वृक्ष वट। औरन के क्रमसे सपृच्छद, शाल, सरल, प्रयंगु, प्रयंगु सिरीष वृक्ष, नाग सालिष, शाल, बिन्दुक, जयप्रिय, जंबु पीपल, दधिपर्ण, नन्द, तिलक, आम्र, अशोक, मौलश्री, मेषपर्ण, भव, अरु शाल। ये चौबीस—जिनके दीक्षा-वृक्ष कहे। इनके नीचे दीक्षा धारी। आगे निर्वाण होनेके नक्षत्र कहिए हैं—तहां सुपार्श्वनाथका निर्वाण नक्षत्र अनुराधा। चन्द्रप्रभका निर्वाण नक्षत्र ज्येष्ठा। वासुपूज्यका निर्वाण नक्षत्र अश्विनी। विमलनाथका निर्वाण नक्षत्र भरणी। महावीर स्वामी का नक्षत्र स्वाती है। ये पांच जिन के निर्वाण नक्षत्र कहे। औरन के निर्वाण नक्षत्र अरु जन्म नक्षत्र एकही जानना। ऐसे

निर्वाण नक्षत्र कहे। इन चौबीस-जिनमें तं शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरहनाथ ये तीन जिन तौ षट्खंडनाथ चक्री भए। और सर्व तीर्थंकर महा-मंडलेश्वर भए। तथा दीक्षा धारि निर्वाण गए। वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर ये पांच जिन तौ कुमार अवस्था में बाल-ब्रह्मचारी ही दिगम्बर भए। ब्याह नाहीं किया। अरु राज्य भी नाहीं किया। पिताके जीवित कुंवारे ही मुनि भए। सर्व जिनराज भोग्य—सम्पदा भोग यतिपति भए। सो वृषभ का तप कल्याणक विनीता पुरी विषैं। नेमिनाथ का तप कल्याणक द्वारकापुरी बिषैं। सर्वका तप कल्याणक, अपनी-अपनी जन्म-नगरीमें भया। सो मल्लिनाथ अरु पार्श्वनाथ थे दोऊ जिन तौ तप लिये पीछे, तेले-तेलेका नियम करते भये। वासुपूज्य स्वामी, एकान्तर उपवास धारते भये। सर्व-जिनने वेले-वेले पारणा किया। सो श्रेयांसनाथ, सुमतिनाथ, मल्लिनाथ ये तीन जिन तौ पूर्वाह्न समय दीक्षा धारते भये। और सर्व जिन अपराह्न कहिये सन्ध्या समय, दीक्षा धारते भये। इति चौबीस जिनके निर्वाण-नक्षत्रादिका कथन। आगे चौबीस जिनके दीक्षाके वन कहिए हैं-ऋषभनाथ तौ सिद्धार्थ वन विषैं, दिगम्बर भए। महावीर ज्ञानवन विषैं, यति भए। वासुपूज्यने क्रीड़ोद्यान नाम वन विषैं, मुनि-पद धरा। और धर्मनाथ वप्रका नाम वन विषैं, यति भये। पार्श्वनाथने मनोरमा नाम उद्यान विषैं, परिग्रह तजा। मुनिसुव्रत जिन, नील गुफाके निकट, निर्ग्रन्थ भए। और सर्व जिन अपने-अपने नगर के निकट, आम्र-वन विषैं योगीश्वर भए। इति तप वन। आगे चौबीस जिन के तप कल्याणक विषैं, गमन समय की पालकी, तिनके नाम कहिए—तहां वृषभदेवकी पालकीका नाम सुदर्शना। आगे अनुक्रम तैं जानना-सिद्धार्था, कमलाभा, अर्थ-सिद्धा, अभयङ्करी, निर्वृत्तिकरि, मनोरमा, मनोहरा, सूर्य्यप्रभा, विमलप्रभा, पुष्पप्रभा, देवदत्ता, सागरदत्ता, नागदत्ता, सिद्धार्थका, विजया वैजयन्ति, जयन्ति, अपराजिता उत्तर कुरु, देव-कुरु, विमलाभा, और चन्द्राभा। ये चौबीस-जिनके तप समयकी पालकी इन्द्रों कृत कहीं। आगे चौबीस-जिनकी दीक्षाकी तिथि, क्रमशः कहिए हैं। चैत्र वदी ९, माघसुदी ९, मार्गशीर्ष सुदी १५, माघ सुदी १२, वैशाख सुदी ९, कार्तिक बदी १३, जेठ सुदी १२, पौष वदी ११, मार्गशीर्ष सुदी १, माघ वदी १२, फाल्गुन वदी ११, फाल्गुन वदी १४, माघ सुदी ४, जेठ वदी १२, माघ सुदी १३, ज्येष्ठ वदी १३, वैसाख सुदी १, मार्गशीर्ष सुदी १०, मार्गशीर्ष सुदी ११, वैसाख वदी ९, आषाढ़ वदी १०, श्रावण वदी ४, पौष वदी ११, और मार्गशीर्ष वदी १०,

ए चौबीस-जिनकेतप-दिन जानना। आगे चौबीस-जिनके केवलज्ञानके दिन अनुक्रम तैं कहिए है—फाल्गुण वदी ११, पौष सुदी ११, कार्तिक वदी ४, पौष सुदी १४, चैत्र सुदी १४, चैत्र सुदी १५, फाल्गुण वदी ६, फाल्गुण वदी ७, कार्तिक वदी १४, पौष वदी १४, माघ वदी अमावस्या, माघ सुदी २, माघ सुदी ६, चैत्र वदी ३०, पौष सुदी १५, पौष सुदी १०, चैत्र सुदी ३, कार्तिक सुदी १२, पौष वदी २, वैशाख वदी ९, मार्गशीर्ष वदी ११, आसोज सुदी १, चैत्र वदी अमावास्या, और वैसाख सुदी १०। ये चौबीस-जिनके केवलज्ञानकी तिथि कहीं। आगे चौबीस-जिनके निर्वाण दिन, अनुक्रम तैं कहिये है—माघ वदी १४, चैत्र सुदी ५, चैत्र सुदी ६, वैशाख सुदी ६, चैत्र सुदी ११, फाल्गुन वदी ४, फाल्गुन वदी २, फाल्गुन वदी ७, भादौं वदी ८, आसोज सुदी ८, श्रावण सुदी पूर्णिमा, भाद्रपद सुदी १४, आषाढ़ वदी ८, चैत्र वदी अमावस्या, जेठ वदी ४, ज्येष्ठ वदी १४, वैशाख सुदी १, चैत्र वदी अमावस्या, फाल्गुन सुदी ५, फाल्गुन सुदी १२, वैशाख सुदी १४, आषाढ़ सुदी ८, श्रावण सुदी ७, और कार्तिक वदी अमावस्या। ये चौबीस-जिनके निर्वाण दिन कहे। आगे गर्भ-दिन कहिये है। तप, ज्ञान, निर्वाण ये तीन कल्याणक तौ वीतराग दशाके कहे। आगे दोय कल्याणक, सराग-अवस्थाके हैं। सो ये गर्भ-कल्याणक तौ परोक्ष-सराग उत्सव है। और जिनराजका जन्मका प्रत्यक्षसराग पुण्य अतिशय है सो प्रथम जिनराजके गर्भ-कल्याणकके परोक्ष-उत्सवके दिन, क्रम तैं कहिये है—आषाढ़ वदी २, जेठ वदी अमावस्या, फाल्गुन वदी ८, वैशाख सुदी ६, श्रावण सुदी २, माघ वदी ६, भादव सुदी ६, चैत्र वदी ५, फाल्गुन वदी ९, चैत्र वदी ८, जेठ वदी ६, आषाढ़ वदी ६, ज्येष्ठ वदी १०, कार्तिक वदी १, वैशाख वदी १३, भाद्रपद सुदी ७, श्रावण वदी १०, फाल्गुन सुदी ३, चैत्र सुदी १, श्रावण वदी २, आसोज वदी २, कार्तिक सुदी ६, वैशाख वदी २, और आषाढ़ सुदी २। इति गर्भ-दिन। आगे जन्म-दिन क्रम तैं कहिये है—चैत्र वदी ९, माघ सुदी १०, माघ सुदी १२, कार्तिक सुदी १५, चैत्र सुदी ११, कार्तिक वदी १३, जेठ वदी १२, पौष वदी ११, मार्गशीर्ष सुदी १, माघ वदी १२, फाल्गुन वदी ११, फाल्गुन वदी १४, माघ सुदी १४, जेठ वदी १२, माघ सुदी १३, जेठ वदी १४, वैशाख सुदी १, मार्गशीर्ज सुदी १४, मार्गशीर्ष सुदी ११, वैशाख सुदी १०, आषाढ़ वदी १०, श्रावण सुदी ६, पौष वदी ११, और चैत्र सुदी १३। ये चौबीस-जिनके जन्म-दिन कहे। आगे चौबीस-जिनके पारणा का अन्तर कहिये

है—आदिनाथ स्वामी ने तो एक वर्ष पीछे पारणा किया सो इक्षु-रसका भोजन किया। अरु मल्लिनाथ, पार्श्वनाथ इन दोय जिनका तेले पारणा भया सो गायके दूधको खीर खाय पारणा किया और वासुपूज्य स्वामी ने एकान्तर पारणा किया सो गायके दूधकी खीर खाय पारणा किया। सर्व जिन-देवनका वेले पारणा भया। सो भी सर्व गायके दूधकी खीर खाय पारणा किया। इति पारणा प्रमाण। आगे चौबीस-जिनके प्रथम पारणेकी नगरीके नाम अरु तिन नगरनके राजा-प्रथम दानेश्वर तिनके नाम अनुक्रम तैं कहिये हैं—हस्तिनापुर विषैं श्रेयांस राजा। अयोध्यापुरी विषैं ब्रह्मदत्त नाम राजा। श्रावस्तीपुरी विषैं सुरेन्द्रदत्त राजा, विनीता नगरी विषैं राजा इन्द्रदत्त। विजयपुर विषैं राजा पदम। मंगलापुर विषैं राजा सोमदत्त। पाटली खंड विषैं राजा महादत्त। पदमखंडपुर विषैं राजा सोमदेव। श्वेत नगरी विषैं राजा पहुप। अरिष्टपुर विषैं राजा पुनर्वसु। इष्टपुर विषैं राजा सुनंद। सिद्धारथपुर विषैं जयराजा। महापुर विषैं राजा विशाख। ध्यानपुर विषैं राजा धर्म-वर्धन। वर्धमानपुर विषैं राजा सुमति। सोमनपुर विषैं राजा धर्म मित्र। मन्दिरपुर विषैं राजा अपराजित। हस्तिनापुर विषैं राजा नन्दषेण। चक्रपुर विषैं राजा वृषभदत्त। मथुरापुर विषैं राजा दत्त। राजगृहपुर विषैं राजा संजय। द्वारापुरी विषैं राजा वरदत्त, काम्याकृतपुर विषैं राजा धन्य। कुंडलपुर विषैं राजा वकुल ये चौबीस-जिनके प्रथम पारणाके पुर अरु दानेश्वर राजा कहे। इन सर्वके घर पञ्चाश्चर्य भये। अरु ये चौबीस प्रथम दानेश्वर महा भाग्य राजा तिनके शरीरका वर्ण कहिये है—सो आदिके श्रेयांस राजा अरु ब्रह्मदत्त राजा ये दोय तौ श्याम शरीर धारी महासुन्दर भये। और सर्वबाईस जिनराजके दान देनेहारे भूपनका शरीर ताये स्वर्ण समान जानना। इनमें से कोई तौ मोक्ष गए कोई कल्पवासी होय कैं तथा चय कैं मोक्ष जांयगे ऐसा कथन बड़े हरिवंश पुराणके कर्त्ता श्रीजिनसेनाचार्य ने कह्या है। कहीं-कहीं शास्त्र विषैं ऐसा भी कह्या है जो प्रथम दानेश्वर मोक्ष ही जांय हैं। सो विशेष पाठान्तर भेद यथावत् जो केवलज्ञानमें भाष्या होय सो प्रमाण है। इति प्रथम दानेश्वर राजानके नाम अरु तहां प्रथम पारणाकी पुरी कहीं। आगे चौबीस-जिनकूं केतेक-केतेक उपवास पीछे केवलज्ञान भया। सो कहिये है-तहां वृषभ देव, मल्लिनाथ, पार्श्वनाथ इन तीन जिनकूं तेला व्यतीत भए केवलज्ञान प्रकट्या। वासुपूज्यको एक उपवास पूर्ण भये केवलज्ञान सूर्य उत्पन्न भया। और सर्व जिन कूं वेला व्यतीत भये,

केवलज्ञान भया। इति केवलज्ञानके पूर्व के उपवास। आगे चौबीस-जिनके केवलज्ञान उपजनेके क्षेत्र कहिये है-तहां वृषभदेवका केवल-कल्याणक तौ पुरमताल नाम नगरीके निकट, सकटामुख, नाम वन विषैं भया। नेमिनाथका गिरनारजी विषैं, पार्श्वनाथका काशीके निकट, महावीरजीका ऋजुकला नदीके तट। बाकी सर्व जिनके केवल-कल्याणक, मनोहर वन विषैं भये सो वृषभनाथ, श्रेयांस-जिन, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ इन पांच जिन कूं तो केवलज्ञान प्रभात समय भया। और सर्व कूं दिनके पिछरे पहरमें केवलज्ञान भया। इति केवलज्ञानके स्थान और काल। आगे निर्वाण होनेके काल कहैं हैं-तहां वृषभनाथ, अजितनाथ, श्रेयांसजिन, शीतलजिन, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ इन जिन कौं तौ दिनके प्रथम पहरमें मोक्ष भया। अरु संभवनाथ, पद्मनाथ, पुष्पदंत ये जिन दिनके पिछले पहरमें मोक्ष गए। वासुपूज्य, विमलनाथ, अनंतनाथ, शीतलनाथ, कुंथुनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ इनकी मुक्ति रात्रि-समय भयी। और धर्मनाथ, अरहनाथ, नमिनाथ, महावीर इनकी मुक्ति, सूर्यके उदयकाल समय प्रभात ही भयी। इति चौबीस-जिनके मुक्ति समय। आगे चौबीस-जिनके मोक्ष-गमन आसन कहिए है—तहां वृषभनाथ, वासुपूज्य, नमिनाथ, ए तीन जिन तौ पद्मासन से मोक्ष गए। और सर्व जिन कायोत्सर्ग (खड़गासन) आसन तैं सिद्ध-लोक गए। इति मोक्ष-गमनके आसन। आगे चौबीस-जिनका समवशरण विघटना अरु वाणी (दिव्यध्वनि) नहीं खिरना ताका प्रमाण कहिए है—तहां आदि-जिनके अरु अन्त-जिनके इन दोय जिनके तौ मोक्ष जानेके जब चार दिन रहे तब समवशरण विघट्या। अरु वाणी नहीं खिरी। अन्य सर्व जिनके एक महीना पहिले समवशरण विघट्या अरु दिव्यध्वनि नहीं खिरी। आगे चौबीस-जिनके संग केते-केते यति मोक्ष भए तिनका प्रमाण कहिए है—महावीरके संग ३६ मुनि मोक्ष गए। पार्श्वनाथकी लार ५३६ मुनि मुक्ति पहुँचे। नेमिनाथके संग ५३६ ऋषीश्वर मोक्ष गए। मल्लिनाथके साथ ५०० यति मोक्ष भए। और शान्तिनाथके संग ९०० योगीश्वर मोक्ष गए। और धर्मनाथकी लार (संग) ८०१ तपोधन मोक्ष भए। विमलनाथके लार ६६२२ आचार्य मोक्ष भए। अनन्तनाथके संग ५५०७ निर्ग्रंथ, निरञ्जन भए और पद्मप्रभके साथ ३८०० दिगम्बर भए अरु सिद्ध लोक गए। और वृषभदेवके लार २०००० गुरुनाथ अमूर्ति भए। बाकी सर्व तीर्थंकरोंके साथ

एक-एक हजार मुनि मोक्ष गए। इति आगे बारह चक्रवर्तीके नाम-तहां प्रथम चक्रवर्ती भरत, सो आदिनाथके समय भए। आगे दूसरा सगर नाम षट्खण्डी, सो अजितनाथके समय भया। तीसरा मघवा नाम चक्री, अरु चौथा सनत्कुमार चक्री, ए धर्मनाथ-जिनके मोक्ष गए पीछे, अरु शान्तिनाथके पहिले, अन्तरालमें भए। शान्तिनाथ, कुंथुनाथ, अरहनाथ ए तीन जिन, अपने-अपने समयमें, आपही चक्री भए। और अरहनाथके मोक्ष गए पीछे, अरु मल्लिनाथके पहिले, इस अन्तरालमें आठवां सुभूमि नाम चक्री भया। और मल्लिनाथके पीछे, अरु मुनिसुव्रतके पहिले अन्तरालमें नववां महापद्म नाम चक्री भया। अरु मुनिसुव्रतके पीछे अरु नमिनाथके पहिले, दशवें हरिषेण नाम चक्री भये। नमिनाथके पीछे अरु नेमिनाथके पहिलै, ग्यारहवें जयसेन नाम चक्री भये। नेमिनाथके पीछे अरु पार्श्वनाथके पहिले बारहवों ब्रह्मदत्त नाम चक्री भए। इति चक्रवर्ती नाम। आगे इन चक्रीनकी गति-गमन कहिए है—तहां आठवां सुभूमि अरु बारहवां ब्रह्मदत्त ए दोय तौ सप्तम नरक सिधारे। अरु तीसरा मघवा नाम चक्री, अरु चौथा सनत्कुमार चक्री ए दोय, तीसरे स्वर्ग गये। अरु बाकी आठ चक्री, आठ-कर्म नाश कर, अष्टम भूमि (मोक्ष) विषैं, सिद्धपद पाय विराजे। इति चक्री गति। आगे नव नारायणके नाम तथा किनके समय भये सो कहिए है। तहां पहिला त्रिपृष्ठ नाम नारायण तौ श्रेयांसनाथके समयमें भया। १। दूसरा द्विपृष्ठ नारायण वासुपूज्य जिनके समयमें भया। २। तीसरा स्वयंभू नाम नारायण, विमलनाथके समयमें भया। ३। और चौथा पुरुषोत्तम नारायण, अनन्तनाथके समय भया। ४। पांचवा पुरुषसिंह नारायण धर्मनाथके समय भया। ५। छट्ठा पुण्डरीक नारायण अरहनाथके पीछे अरु मल्लिनाथके पहिले अन्तरालमें भया। ६। मल्लिनाथके पीछे अरु मुनि सुव्रतनाथके पहिले इस अन्तरालमें, सातवां दत्त नाम नारायण भया। ७। मुनिसुव्रतनाथके पीछे अरु नमिनाथके पहिले, आठवां लक्ष्मण नाम नारायण भया। ८। नववें नारायण कृष्ण देव भए, सो नेमिनाथके समय भये। ९। ए नव नारायणके नाम कहे सो इनमें पहिला त्रिपृष्ठ, दूसरा द्विपृष्ठ, तीसरा स्वयंभू, चौथा पुरुषोत्तम, पांचवां पुरुषसिंह, छठा पुण्डरीक—ए षट् तो षट्वीं मघवी नाम पृथ्वीके धाम पधारे। और सातवां दत्त, आठवां और नौवां ए मेघा पृथ्वीमें गए। ए नव ही नारायण, तीन खण्डके नाथ महा विभूति सहित देव-विद्याधर-भूमिगोचरी बड़े-बड़े राजान् करि वन्दनीय, प्रजाके प्रतिपालक हैं।

इनके राज्य में अन्याय नाहीं। लोकनकों दारिद्र नाहीं। सर्व सुखी होय हैं। ये नारायण परम्पराय ज्योतिस्वरूप होंयगे। इति नारायण नाम। आगे बलभद्रन के नाम कहिये है। तहां प्रथम बलदेव अचल, विजयभद्र, सुप्रभ, सुदर्शन, आनन्द, नन्दमित्र, रामचन्द्र और पद्म—ये नव बलभद्र हैं, सो नारायण के बड़े भाई जानना। इति बलभद्र नाम। आगे नारायण के प्रतिपक्षी (प्रतिनारायण) केशव के नाम कहिये है। तहां प्रथम अश्वग्रीव, तारक, मेरुक, मधु-कैटभ, निशुम्भ, बलि, प्रह्लाद, रावण और जरासिन्धु। तिनमें आठ तौ विद्याधरन में भए अरु जरासिन्धु भूमिगोचरी भये। इति प्रतिनारायण नाम। आगे बलभद्र की गति-गमन कहिये है। तहां विजय, अचल, भद्र, सुभद्र, सुदर्शन, आनन्द, नन्दमित्र और रामचन्द्र—ये आठ बलदेव तौ आठ कर्म नाश करि सिद्ध भए और नववां पद्म बलदेव सो दिगम्बर व्रत धारि पञ्चम स्वर्ग विषैं महाऋद्धिधारी देव भया। तहां तैं चय मोक्ष जायंगे तथा कृष्ण महाराज तीर्थङ्कर का अवतार धारेंगे और अनेक जीवनकौं धर्मोपदेश देय सुमार्ग लगाय आप परमधामकौं पावेंगे, अब तांई अवतार धार्‌या अब अवतार नाहीं धारैंगे। इति बलभद्र गति। आगे चौबीस-जिन की आयु का प्रमाण अनुक्रम करि कहिये है। चौरासी लाख पूर्व, बहत्तरि लाख पूर्व साठ लाख पूर्व, पचास लाख पूर्व, चालीस लाख पूर्व, तीस लाख पूर्व, बीस लाख पूर्व, दस लाख पूर्व, दोय लाख पूर्व, एक लाख पूर्व, चौरासी लाख वर्ष, बहत्तरि लाख वर्ष, साठ लाख वर्ष, तीस लाख वर्ष, दस लाख वर्ष, एक लाख वर्ष, पंचानवै हजार वर्ष, चौरासी हजार वर्ष, पचपन हजार वर्ष, तीस हजार वर्ष, दस हजार वर्ष, एक हजार वर्ष, सौ वर्ष और बहत्तरि वर्ष—ये चौबीस जिन-जगत् मङ्गल करैं। इति चौबीस जिन की आयु। आगे चक्रवर्तीन की आयु कहिये है। प्रथम की चौरासी लाख पूर्व, दूसरे की बहत्तरि लाख पूर्व, तीजे की पाँच लाख वर्ष, चौथे की तीन लाख वर्ष, पांचवें की एक लाख वर्ष, छट्ठे की पंचानवै हजार वर्ष, सातवें की चौरासी हजार वर्ष, आठवें की साठ हजार वर्ष, नौवें की तीस हजार वर्ष, दशवें की छब्बीस हजार वर्ष, ग्यारहवें की तीन हजार वर्ष और बारहवें की सात सौ वर्ष। इति चक्री-आयु। आगे नारायण की आयु कहिये है—प्रथम की चौरासी लाख वर्ष, दूसरे की बहत्तरि लाख वर्ष, तीसरे की साठ लाख वर्ष, चौथे की तीस लाख वर्ष, पांचवें की दश लाख वर्ष, छठवें की साठ हजार वर्ष, सातवें की तीस हजार

वर्ष, आठवें की बारह हजार वर्ष और नववें की एक हजार वर्ष। यह नारायण की आयु कही। इतनी ही नव प्रति-नारायण की आयु जानना। बलभद्र की कछू अधिक है, सो आगे कहैंगे। इति नारायण, प्रति-नारायण की आयु। आगे बलभद्र की आयु कहिये है। तहां पहिले बलभद्र की आयु सत्यासी लाख वर्ष, दूजे की सत्तरि लाख वर्ष, तीसरे की साठ लाख वर्ष, चौथे की बत्तीस लाख वर्ष, पांचवें की कछू अधिक दश लाख वर्ष, छट्ठे की पैंसठ हजार वर्ष, सातवें की बत्तीस हजार वर्ष, आठवें की सत्रह हजार वर्ष और नववें की बारह सौ वर्ष—ये नव बलभद्र की आयु कही। आगे चक्री व नारायण का उपजने का समय कहिये है। तहां आदि जिन से लेय पन्द्रहवें धर्मनाथ पर्यन्त तिनमें वृषभ अजित इनके समय में तो दोय चक्री भये अरु पचास लाख कोड़ि सागर काल का बीचि अन्तर भया। तामें कोई पदवीधारी पुरुष नहीं भया अरु श्रेयांस तैं लगाय धर्मनाथ पर्यन्त पांच तीर्थङ्करों के समय में पांच नारायण भये। सो तीर्थङ्करों के काल में ही सभा-नायक भये। अन्तराल में नाहीं भये। धर्मनाथ के पीछे तीसरे चौथे चक्री भये। ता पीछे शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ—ये तीन तीर्थङ्कर ही चक्री भये। ता पीछे छठवाँ नारायण भया। ताके पीछे आठवां चक्रवर्ती भया। ताके पीछे मल्लिनाथ जिन भये। मल्लिनाथ जिन के पीछे नौवां महापद्म चक्री भया। ता पीछे सातवां नारायण भया। ता पीछे मुनिसुव्रतनाथ भये। ताके पीछे दशवां चक्री हरिषेण भया। ताके पीछे आठवां नारायण भया। ताके पीछे नमिनाथ-जिन भये अरु नमिनाथ के पीछे ग्यारहवां चक्री भया। ताके पीछे नेमिनाथ भये तिनके समय में नववें नारायण और बलभद्र—ये तिन छते ही सभानायक भए और नेमिनाथ के पीछे बारहवां चक्री भया। ताके पीछे पार्श्वनाथ और महाबीर भये। इस भांति त्रेसठ शलाका पुरुष भए, तिनकी रचना कही। इति चक्री और नारायण के उपजने का समय कह्या। आगे तीर्थङ्कर की आयु की विगत कहिए है। तहां ऋषभदेव का कुमारकाल, बीस लाख पूर्व का। त्रेसठ लाख पूर्व राज्य किया। तप एक हजार वर्ष किया और केवलज्ञान सहित उपदेश हजार वर्ष घाटि, लाख पूर्व किया। ये सर्व चौरासी लाख पूर्व की विगत कही। १। अजितनाथ-जिन का कुमार काल, अठारह लाख पूर्व। एक पूर्वाङ्ग अधिक, तिरेपण लाख पूर्व राज्य में व्यतीते संयम का काल बारह वर्ष रहा एक पूर्वाङ्ग अरु बारह वर्ष घाटि एक लाख पूर्व केवलज्ञान सहित, समवशरण सहित विहार किया। यह बहत्तरि लाख पूर्व

का विस्तार कह्या। २। सम्भवनाथ का काल साठ लाख पूर्व। तामैं तैं कुमारकाल पन्द्रह लाख पूर्व अरु च्यारि पूर्वाङ्ग अधिक चवालीस लाख पूर्व राज्य किया और चौदह वर्ष संयम किया अरु च्यारि पूर्वाङ्ग अरु चौदह वर्ष घाटि एक लाख पूर्व केवलज्ञान सहित रहे। पीछे मोक्ष गए। ३। आगे अभिनन्दन की आयु पचास लाख पूर्व है। तामैं कुमार-काल साढ़े बारह लाख पूर्व अरु राज्य विषैं साढ़े छत्तीस लाख पूर्व अरु आठ पूर्वाङ्ग। अठारह वर्ष संयमकाल। आठ पूर्वाङ्ग अरु अठारह वर्ष घाटि, एक लाख पूर्व, केवलज्ञान सहित उपदेश करि मोक्ष गए। ४। आगे सुमतिनाथ की आयु चालीस लाख पूर्व। तामैं कुमारकाल दश लाख पूर्व है। राज्यावस्था का काल गुणतीस (२९) लाख पूर्व अरु बारह पूर्वाङ्ग संयमकाल बीस वर्ष अरु बारह पूर्वाङ्ग, बीस वर्ष घाटि एक लाख पूर्व केवलज्ञान सहित रहे। पीछे मोक्ष गए।५। पद्मप्रभ की आयु तीस लाख पूर्व। तामैं तैं कुमार काल साढ़े सात लाख पूर्व। साढ़े इक्कीस लाख पूर्व अरु सोलह पूर्वाङ्ग राज्य किया। संयम काल छः महिना अरु सोलह पूर्वाङ्ग अरु छः महिना घाटि एक लाख पूर्व ताईं केवलज्ञान सहित उपदेश देय सिद्ध भए। ६। अरु सुपार्श्व-जिन की आयु बीस लाख पूर्व तामैं तैं कुमारकाल पांच लाख पूर्व अरु चौदह लाख पूर्व बीस पूर्वाङ्ग राज्य किया। संयम का काल, नव वर्ष अरु बीस पूर्वाङ्ग नव वर्ष घाटि एक लाख पूर्व केवलज्ञान सहित विहार करि, सिद्ध भए।७। चन्द्रप्रभ का आयु समय, दश लाख पूर्व। तामैं कुमार-काल अढ़ाई लाख पूर्व। राज्यावस्था साढ़े छः लाख पूर्व अरु चौबीस पूर्वाङ्ग। संयमकाल तीन महिना अरु तीन महिना चौबीस पूर्वाङ्ग घाटि एक लाख पूर्व ताईं समवसरण सहित केवलज्ञान पाय विहार करि मोक्ष गए। ८। पुष्पदन्त-जिन की आयु, दोय लाख पूर्व की है। तामैं कुमारकाल, पचास हजार पूर्व। पचास हजार पूर्व अरु अट्ठाईस पूर्वाङ्ग, राज्य किया और संयमकाल च्यारि महिना। अट्ठाईस पूर्वाङ्ग च्यारि महिना घाटि, एक लाख पूर्व केवलज्ञान सहित विहार करि मोक्ष गए।९। शीतल जिन की आयु का प्रमाण, एक लाख पूर्व में। तामैं कुमारकाल, पच्चीस हजार पूर्व। राज्य-काल पचास हजार पूर्व। संयमकाल तीन मास अरु तीन महिना घाटि पच्चीस हजार पूर्व, केवलज्ञान सहित रहे। १०। श्रेयांस जिन की आयु, चौरासी लाख वर्ष की है। तामैं कुमारकाल इक्कीस लाख वर्ष। राज्य पद, ब्यालीस लाख वर्ष। संयम का काल दोय मास। दोय महिना घाटि इक्कीस लाख वर्ष केवलज्ञान काल है।११।

वासुपूज्य की आयु, बहत्तरि लाख वर्ष की है। तामैं कुमार काल, अट्ठारह लाख वर्ष है। राज्यावस्था मैं नहीं रहे अरु व्याह भी नहीं किया, अट्ठारह लाख वर्ष के भए, तब ही तप लिया। सो संयमकाल, एक मास रहे। केवलज्ञान सहित एक मास घाटि चौवन लाख वर्ष रह के, शिव गये। १२। विमल जिन की आयु साठ लाख वर्ष की है। तामैं कुमारकाल पन्द्रह लाख वर्ष। राज्यावस्था तीस लाख वर्ष और संयमकाल, तोन महिना। तीन महीना घाटि पन्द्रह लाख वर्ष केवलज्ञान सहित रहे। पीछे निर्वाण गये। १३। अनन्त-जिन की आयु तीस लाख वर्ष है। तामैं कुमारकाल, साढ़े सात लाख वर्ष। राज्यावस्था, पन्द्रह लाख वर्ष। संयमकाल दोय मास। केवलज्ञान विषैं दोय मास घाटि, साढ़े सात लाख वर्ष रहे। १४। धर्म-जिन की आयु दश लाख वर्ष। तामैं कुमारकाल, अढ़ाई लाख वर्ष और राज्यावस्था, पांच लाख वर्ष। संयमकाल एक मास। एक मास घाटि अढ़ाई लाख वर्ष, विहार करि मोक्ष गये। १५। और शान्तिनाथ की आयु, एक लाख वर्ष। तामैं कुमारकाल, पच्चीस हजार वर्ष। राज्यकाल, पचास हजार वर्ष। संयमकाल, सोलह वर्ष। सोलह वर्ष घाटि पच्चीस हजार वर्ष केवलज्ञान सहित विहार करि, मोक्ष गये।१६। कुन्थुनाथ की आयु पनच्यानबै हजार वर्ष। तामैं कुमारकाल पौने चौबीस हजार वर्ष। राज्यावस्था, सैंतालीस हजार वर्ष। संयमकाल सोलह वर्ष। सोलह वर्ष घाटि पौने चौबीस हजार वर्ष केवलज्ञान सहित उपदेश देय मोक्ष गये।१७। अरह-जिन की आयु का प्रमाण चौरासी हजार वर्ष है। तामैं कुमारकाल इकईस हजार वर्ष। राज्यावस्था ब्यालीस हजार वर्ष। संयमकाल सोलह वर्ष अरु सोलह वर्ष घाटि इक्कीस हजार वर्ष तांई, केवलज्ञान सहित उपदेश करि मोक्ष गये। १८। मल्लिनाथ की आयु पचपन हजार वर्ष। तामैं कुमारकाल सौ वर्ष। इनने राज्य नहीं किया। सौ वर्ष की अवस्था ही मैं तप धार्या। संयमकाल षट् दिन और षट् दिन घाटि चोवन हजार नव सौ वर्ष तांई केवलज्ञान सहित उपदेश देय मोक्ष गये। १९। मुनिसुव्रत-जिन की आयु तीस हजार वर्ष। तामैं साढ़े, सात हजार वर्ष कुमारकाल। राज्यकाल पन्द्रह हजार वर्ष। संयमकाल ग्यारह महिना। ग्यारह महिना घाटि साढ़े सात हजार वर्ष केवलज्ञान सहित विहार करि मोक्ष गये।२०। नमिनाथ की आयु दश हजार वर्ष। तामैं कुमारकाल अढ़ाई हजार वर्ष। राज्यकाल पांच हजार वर्ष। संयमकाल नौ वर्ष और नव वर्ष घाटि अढ़ाई हजार वर्ष, केवलज्ञान

सहित विहार करि मोक्ष गए। २१। और नेमिनाथ-जिनकी आयु एक हजार वर्ष। तामें कुमारकाल तीनसौ वर्ष। राज्य इनने नहीं किया। तीनसौ वर्षके होयकें तप लिया। संयमकाल छप्पन दिन। छप्पन दिन घाटि सातसौ वर्ष केवलज्ञान तैं धर्मोपदेश देय सिद्ध भए।२२। पार्श्वनाथ-जिन की आयु, सौ वर्ष को। तामें कुमारकाल, तीस वर्ष। इनने व्याह और राज्य नहीं किया। तीस वर्षमें ही, दीक्षा धरी। संयम-काल, च्यार महिना। अरु च्यार महिना घाटि, सत्तर वर्ष, केवल-ज्ञान सहित रह, भव्यन कूं सम्बोध करि, मोक्ष गये।२३। महावीर-जिनकी आयु, बहत्तरि वर्ष। तामें कुमारकाल, तीस वर्ष। इनने व्याह व राज्य नहीं किया। तीस वर्षमें तप धरा। संयम-काल, बारह वर्ष। बाकी वर्ष केवलज्ञान सहित रहकर, मोक्ष गये।२४। यह सर्व जिनकी आयुकी विगत कही। तामें कोई की आयुके च्यारि विभाग, कोई की आयुके राज्यावस्था बिना, तीन विभाग कहे। आगे चौबीस-जिनके, च्यारि प्रकार संघका प्रमाण कहिये है। तहां पहिले चौबीस-जिनके गणधर देवनका प्रमाण अनुक्रम तैं कहिये है-८४, ९०, १०५, १०३, ११६, १११, ९५, ९३, ८८, ८१, ७७, ६६, ५५, ५०, ४३, ३६, ३५, ३०, २८, १८, १७, ११, १०, और ११ ये चौबीस-जिनके, चौदह सौ त्रेपण (१४५३) गणधर जानना। तिनमें तैं एक-एक जिनके मुख्य एक-एक गणधरनके नाम कहिये हैं वृषभसेन, सिंहसेन, चारुदत्त, वज्र, चमर, वज्रबलि, चरवलि दर्शिडक, वैदर्भ, अनागार, कुंथु, सुधर्म, नन्दराज, जय, अरिष्ट, चक्रायु, स्वयंभू, कुंथु, विशाख, मल्लि, सोम, वरदत्त स्वयंभू और इन्द्रभूति। ये चौबीस मुख्य गणधर कहे। ये सर्व गणधर सप्त ऋद्धि करि सहित हैं। सर्व जिन श्रुतके पारगामी हैं। आगे एक-एक जिनके सङ्ग, केते-केते राजा वैरागी भये ; तिनका प्रमाण कहिये हैं— महावीर के संग तीन सौ राजा यति भये। १। पार्श्वनाथके साथ छह सौ छह। २। मल्लिनाथ के साथ छह सौ छह। ३। वासुपूज्य की लार छह सौ। ४। आदिनाथके साथ चारि हजार राजा यति भये। ५। बाकी सर्व जिनके संग एक-एक हजार राजाओंने तप लिया। आगे चौबीस जिनके यतीश्वरन की संख्या कहिये है। तहां वृषभदेव के सर्व मुनीश्वर ८४ हजार हैं अजित के एक लाख हैं। सम्भवके दोय लाख। अभिनन्दन के तीन लाख। सुमतिनाथ के तीन लाख बीस हजार। पद्मनाथ के तीन लाख तीस हजार। सुपार्श्वनाथ के, तीन लाख। चन्द्रप्रभ के सर्व मुनि अढ़ाई लाख। पुष्पदन्त-जिन के दोय लाख। शीतलनाथ के एक लाख। श्रेयांसनाथ के,

चौरासी हजार। वासुपूज्य के बहत्तरि हजार। विमलनाथ के अड़सठ हजार। अनन्तनाथ के छयासठ हजार। धर्मनाथ के चौंसठ हजार। शान्तिनाथ के बासठ हजार। कुन्थुनाथ के साठ हजार। अरहनाथ के पचास हजार। मल्लिनाथ के चालीस हजार। मुनिसुव्रत के तीस हजार। नमिनाथ के बीस हजार। नेमिनाथ के अठारह हजार। पार्श्वनाथ के सोलह हजार। महावीर के चौदह हजार सर्व मुनीश्वर हैं। ये चौबीस-जिन के सर्व मुनि कहे। सो मुनि का संघ सात प्रकार है—चौदह पूर्व के पाठी, सूत्र अभ्यासी, अवधिज्ञानी, केवली, विक्रिया ऋद्धि के धारी, विपुलमती, मनः पर्ययी और वादित्र ऋद्धि के धारी—इन सात भेद रूप मुनिसंघ है। सो वृषभदेव के चौरासी हजार मुनि हैं। तिनमें चौदह पूर्व के पाठी साढ़े सैंतालीस सौ हैं। सूत्र अभ्यासी शिष्य इकतालीस सौ पचास। । अवधिज्ञानी नौ हजार। केवलज्ञानी बीस हजार। विक्रिया ऋद्धि के धारी तीस हजार छः सौ। विपुलमती मनः पर्ययज्ञानी बारह हजार साढ़े सात सौ। वादित्र ऋद्धि के धारी बारह हजार साढ़े सात सौ हैं। ये सर्व मिलि चौरासी हजार आदि-देव के मुनि कहे।१। अजित के चौदह पूर्व के पाठी तीन हजार पांच सौ मुनि। आचाराङ्ग सूत्र के धारी शिष्य इक्कीस हजार छः सौ। अवधिज्ञानी नव हजार चार सौ। केवलज्ञानी बीस हजार दो सौ पचास। विक्रिया ऋद्धि के धारी बीस हजार च्यारि सौ पचास। विपुलमति मनः पर्यय धारी बारह हजार च्यारि सौ। वादित्र ऋद्धि के धारी बारह हजार च्यारि सौ। ये सर्व जाति के मिलि अजित-जिन के एक लाख मुनि हैं।२। सम्भव-जिन के चौदह पूर्व के पाठी साढ़े इक्कीस सौ। सूत्र अभ्यासी शिष्य-मुनि एक लाख उन्नीस हजार तीन सौ। अवधिज्ञानी नव हजार छः सौ। केवलज्ञानी पन्द्रह हजार। विक्रिया ऋद्धि के धारी गुणतीस हजार साढ़े आठ सौ। विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान के धारी बारह हजार हैं। वादित्र ऋद्धि के धारी बारह हजार एक सौ हैं। ये तीसरे जिन का संघ सात प्रकार दोय लाख कह्या।३। आगे चौथे अभिनन्दन-जिन के मुनि तीन लाख हैं। तिनमें चौदह पूर्व के पाठी पच्चीस सौ हैं। सूत्र अभ्यासी शिष्य दोय लाख तीस हजार पचास हैं। अवधिज्ञानी नौ हजार आठ सौ। केवलज्ञानी सोलह हजार। विक्रिया ऋद्धि के धारी गुन्नीस हजार। विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान के धारी ग्यारह हजार साढ़े छः सौ। वादित्र ऋद्धि के धारी ग्यारह हजार। ये अभिनन्दन-जिन के तीन लाख साधून में सात भेद कहे। ४। आगे पांचवें सुमतिनाथ के तीन लाख बीस हजार मुनि हैं। तामें चौदह पूर्व

के पाठी चौबीस सौ। सूत्र अभ्यासी शिष्य मुनि दोय लाख चौंसठ हजार तीन सौ पचास। अवधिज्ञान के धारी ग्यारह हजार। केवलज्ञान के धारी तेरह हजार। विक्रिया ऋद्धि के धारी अट्ठारह हजार च्यारि सौ। विपुलमति मनः पर्यय ज्ञानी दश हजार च्यारि सौ। वादित्र ऋद्धि के धारी एक हजार च्यारि सौ पचास हैं। ये सर्व पांचवें-जिन के सात जाति के मुनि तीन लाख बीस हजार कहे। ५। आगे छट्ठे पद्मप्रभ-जिनकै तीन लाख तीस हजार मुनि कहे। तिनमैं चौदह पूर्व के ज्ञानी तेईस सौ सूत्र के अभ्यासी शिष्य-मुनि, दोय लाख गुणहत्तरि हजार। अवधिज्ञानी, दश हजार। केवलज्ञान के धारी बारह हजार आठ सौ। विक्रिया ऋद्धि के धारी, सोलह हजार तीन सौ। विपुलमति मनः पर्यय ज्ञानी, दश हजार छः सौ। वादित्र ऋद्धि के धारी, नौ हजार। ये छट्ठे जिनके, सात जाति के मुनि, सब मिलि तीन लाख तीस हजार कहे।६। आगे सुपार्श्वनाथ के संघ के, तीन लाख मुनि हैं। तामैं चौदह पूर्व के धारी दोय हजार तीस यति हैं। सूत्र अभ्यासी शिष्य-मुनि, दोय लाख चवालीस हजार नौ सौ बीस हैं। अवधिज्ञानी, नव हजार। केवली, ग्यारह हजार तीन सौ। विक्रिया ऋद्धि के धारी पन्द्रह हजार डेढ़ सौ। विपुलमति मनः पर्यय ज्ञानी, नव हजार छः सौ। वादित्र ऋद्धि के धारी, आठ हजार। ये सर्व, सात जाति के मुनि मिल कर तीन लाख, सातवें जिन के हैं।७। आठवें जिन के, अढ़ाई लाख मुनि हैं। तिनमैं चौदह पूर्व के पाठी, दोय हजार हैं। सूत्र अभ्यासी शिष्य मुनि, दोय लाख दश हजार च्यारि सौ। अवधिज्ञानके धारी, आठ हजार। केवली, दश हजार। विक्रिया ऋद्धिके धारी, च्यारि हजार। विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान के धारी, आठ हजार। वादित्र ऋद्धि के धारी, सात हजार छः सौ। ये चन्द्रप्रभ-जिन के सात जाति के मुनि, अढ़ाई लाख कहे। ८। आगे पुष्पदन्त-जिन के, दोय लाख मुनि हैं। तिनमैं चौदह पूर्व के धारी, पन्द्रह सौ। सूत्रपाठी शिष्य-मुनि, एक लाख पैंसठ हजार पांच सौ। अवधिज्ञान के धारी, आठ हजार च्यारि सौ। केवलज्ञानी, साढ़े सात हजार। विक्रिया ऋद्धि के धारी, तीन हजार च्यारि सौ। विपुलमति मनः पर्यय ज्ञानी, पंसठ सौ। वादित्र ऋद्धि के धारी, वहत्तरि सौ। ये नववें-जिनके, सात जाति के मुनि, सर्व मिलि, दोय लाख कहे।९। शीतलनाथ के संघ सम्बन्धी मुनि, एक लाख। ता विषैं चौदह पूर्व के धारी, चौदह सौ। सूत्र अभ्यासी शिष्य-मुनि, गुणसठि हजार दो सौ। अवधिज्ञानी, वहत्तरि सौ। केवली, सात हजार। विक्रिया ऋद्धि के धारी,

बारह हजार। विपुलमति मनः पर्यय ज्ञानी, पचहत्तर सौ। वादित्र ऋद्धि के धारी, सत्तावन सौ। ये सर्व मिलि, दशवें-जिन के, एक लाख मुनि कहे।२०। आगे श्रेयांस-जिन के, चौरासी हजार मुनि। तामें चौदह पूर्व के धारी, तेरह सौ। सूत्रपाठी शिष्य-मुनि, अड़तालीस हजार दोय सौ। अवधिज्ञान के धारी, छः हजार। केवलज्ञानी, साढ़े छः हजार। विक्रिया ऋद्धि के धारी, ग्यारह हजार। विपुलमति मनः पर्यय ज्ञानी, चौवन सौ। बाकी वादित्र ऋद्धि के धारक हैं। ये चौरासी हजार यति, ग्यारहवें जिनके कहे।२१। वासुपूज्य-जिनके संघ के मुनि, बहत्तरि हजार बुद्धि-सागर यति हैं। केतेक, चौदह पूर्व के धारी हैं। केतेक, सूत्र अभ्यासी शिष्य-मुनि। केतेक, अवधिज्ञान के धारी। छः हजार, केवली। विक्रिया द्धि के धारी, दश हजार। विपुलमति मनः पर्यय ज्ञानी, छः हजार। वादित्र के धारी, ब्यालीस सौ हैं। ये सात जाति के संघ सहित बहत्तरि हजार मुनि कहे।२२। अड़सठ हजार यति, विमलनाथ-जिन के कहे। तहां चौदह पूर्व के धारी, ग्यारह सौ। सूत्रपाठी शिष्य जाति के मुनि, अड़तीस हज़ार पांच सौ। अवधिज्ञान के धारी, अड़तालीस सौ। केवली, पचपन सौ। विक्रिया ऋद्धि के धारी, नौ हजार। विपुलमति मनः पर्यय ज्ञानी, पचपन सौ। वादित्र ऋद्धि के धारी मुनीश्वर छत्तीस सौ। ये सर्व जाति के मुनि अड़सठ हजार कहे।२३। अनन्तनाथ के संघ में छ्यासठ हजार मुनि हैं। तामें चौदह पूर्व धारी एक हजार। सूत्र अभ्यासी शिष्य-मुनि गुणसठ हजार पांच सौ। अवधिज्ञानी तियालीस सौ। केवलज्ञानी पांच हजार। विक्रिया ऋद्धि के धारी आठ हजार। विपुलमति मनः पर्यय ज्ञानी पांच हजार हैं। वादित्र ऋद्धि के धारी बत्तीस सौ। ये सात जाति के मुनि छ्यासठ हजार कहे।२४। धर्मनाथ-जिन के यति चौंसठ हजार हैं। तामें चौदह पूर्व के धारी नौ सौ। शिष्य जाति के चालीस हजार सात सौ। अवधिज्ञानी छत्तीस सौ। केवली पैंतालीस सौ। विक्रिया ऋद्धि के धारी, सात हजार। विपुलमति मनः पर्यय ज्ञानी, पैंतालीस सौ। वादित्र ऋद्धि के धारी, अट्ठाईस सौ हैं। ये सर्व मिलि, चौंसठ हजार, धर्मनाथ जिन का मुनिसंघ कह्या।२५। शान्तिनाथ-जिन के, बासठ हजार यति हैं। तिनमें चौदह पूर्व के धारी, आठ सौ। शिष्य जाति के मुनि, इकतालीस हजार आठ सौ। अवधिज्ञानी, तीन हजार। केवलज्ञानी, च्यारि हजार। विक्रिया ऋद्धि के धारी, छः हजार। विपुलमति मनः पर्यय ज्ञानी, च्यारि हजार। वादित्र ऋद्धि के धारी, चौबीस सौ। ये बासठ हजार, सोलवें तीर्थङ्कर के मुनीश्वर

कहे। २६। कुन्थुनाथ जिन के साठ हजार यति है। चौदह पूर्वके धारी, सात सौ। शिष्य जातिके मुनि, तेतालीस हजार डेढ़ सौ। अवधिज्ञानी, अढ़ाई हजार। केवलज्ञानी, दोय हजार आठ सौ। विक्रिया ऋद्धिके धारी, इक्यावन सौ। विपुलमति मनः पर्यय ज्ञानी, सैंतीस सौ पचास। वादित्र ऋद्धि धारी, दोय हजार। ये साठ हजार संघ, कुन्थुनाथ-जिनका कह्या। २७। अरहनाथका संघ, पचास हजार है। तामें चौदह पूर्वके धारी, छह सौ दश। शिष्य जातिके मुनि, पैंतीस हजार आठ सौ पैंतीस। अवधिज्ञानी, अट्ठाईस सौ। केवलज्ञानी, अट्ठाईस सौ। विक्रिया ऋद्धिके धारी, तेतालीस सौ। विपुलमति मनः पर्यय ज्ञानी, बीस सौ पचपन। वादित्र ऋद्धिके धारी, सोलह सौ हैं। ये सर्व जातिके, पचास हजार मुनि हैं। २८। अरु मल्लिनाथके, चालीस हजार यति हैं। तिनमें चौदह पूर्वके धारी, पांच सौ पचास। शिष्य जातिके, गुणतीस हजार। अवधिज्ञानी बाईस सौ। केवली, साढ़े छब्बीस सौ। विक्रिया ऋद्धिके धारी, चौदह सौ। विपुलमति मनः पर्यय ज्ञानी बाईस सौ। वादित्र ऋद्धिके धारी, बीस सौ। ये चालीस हजार संघ मल्लिनाथ-जिनका कह्या। २९। और मुनिसुव्रतनाथके, तीस हजार यति हैं। तामें चौदह पूर्वके धारी, पांच सौ। शिष्य मुनि, इक्कीस हजार। अवधिज्ञानी, अठारह सौ। केवली, अठारह सौ। विक्रिया ऋद्धिके धारी, बाईस सौ। विपुलमति मनः पर्यय ज्ञानी, पन्द्रह सौ। वादित्र ऋद्धिके धारी, बारह सौ। ये सात जाति मिलि, तीस हजार भये। ३०। नमिनाथके, बीस हजार यति। चौदह पूर्वके धारी, साढ़े च्यारि सौ। शिष्य जातिके यति, तेरह हजार छह सौ। अवधिज्ञानी, सोलह सौ। केवली, सोलह सौ। विक्रिया ऋद्धिके धारी, पंद्रह सौ। विपुलमति मनः पर्यय ज्ञानी साढ़े बारह सौ। वादित्र ऋद्धिके धारी, एक हजार हैं। ये बीस हजार यति, इक्कीसवें-जिनके कहे। ३१। नेमिनाथके, अठारह हजार यति हैं। तिनमें चौदह पूर्व धारी, च्यारि सौ। शिष्य जातिके मुनि, ग्यारह हजार आठ सौ। अवधिज्ञानी, पंद्रह सौ। केवली पन्द्रह सौ विक्रिया ऋद्धिके धारी, ग्यारह सौ। विपुलमति मनः पर्यय ज्ञानी, नौ सौ। वादित्र ऋद्धिके धारी, आठ सौ। ये अठारह हजार यति, नेमिनाथ-जिनके कहे। ३२। पार्श्वनाथके, सोलह हजार यति हैं। तिनमें चौदह पूर्वके धारी, साढ़े तीन सौ। शिष्य जातिके मुनि, दश हजार नौ सौ। अवधिज्ञानी, चौदह सौ। केवली, एक हजार। विक्रिया ऋद्धिके धारी, एक हजार। विपुलमति मनः पर्यय ज्ञानी, साढ़े सात सौ। वादित्र ऋद्धिके धारी, छह सौ। ये सोलह हजार यति पार्श्वनाथ-

जिन के कहे ।२३। महावीर-जिनके, चौदह हजार यति हैं। चौदह पूर्व के धारी, तीन सौ। शिष्य जाति के मुनि, नौ हजार नौ सौ। अवधिज्ञानी, तेरह सौ। केवली, सात सौ। विक्रिया ऋद्धि के धारी, नौ सौ। विपुलमति मनः पर्यय ज्ञानी, पांच सौ। वादित्र ऋद्धि के धारा, च्यारि सौ। ये चौदह हजार मुनि, वर्द्धमान-जिन के कहे। २४। इति चौबीस-जिन के, मुनि-संघ, सात-सात प्रकार। आगे चौबीस-जिन के संघ की, आर्यिका का प्रमाण कहिये है—तहां आदि-देव के संघ की आर्यिका, तीन लाख पचास हजार। अजितनाथ की, तीन लाख बीस हजार। सम्भव, अभिनन्दन, सुमति—इन तीनों की तीन-तीन लाख, तीस-तीस हजार। प्रद्मप्रभ की, च्यारि लाख बीस हजार। सुपार्श्वनाथ की, तीन लाख तोस हजार। चन्द्रप्रभ, पुष्पदन्त, शीतल—ये तीन जिन की, तीन-तीन लाख अस्सी-अस्सी हजार। श्रेयांस की, एक लाख बीस हजार। वासुपूज्य की, एक लाख छः हजार। विमल-जिन की, एक लाख तीन हजार। अनन्तनाथ की, एक लाख आठ हजार। धर्मनाथ की, बासठ हजार च्यारि सौ। शान्ति-जिन की, साठ हजार तीन सौ। कुन्थुनाथ की, साठ हजार तीन सौ। अरहनाथ की, साठ हजार। मल्लिनाथ की, पचपन हजार। मुनिसुव्रत की, पचास हजार। नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, वर्द्धमान—इन च्यारि-जिन की, यथायोग्य ग्रन्थों से जानना। ये चौबीस-जिन के संघ की आर्यिका का प्रमाण कह्या। आगे श्रावक-श्राविकाओं का प्रमाण कहिये है—तहां वृषभदेव से चन्द्रप्रभ पर्यन्त, आठ तीर्थङ्करन के समय, तीन लाख श्रावक भये अरु पुष्पदन्त से लगाय; शान्तिनाथ पर्यन्त, दोय-दोय लाख श्रावक भये और कुन्थुनाथसूं लेय, महावीर पर्यन्त, एक-एक लाख श्रावक। ये तौ श्रावक-संख्या कही। अब श्राविका का प्रमाण तहां वृषभदेव तैं लगाय, महावीर पर्यन्त यथायोग्य ग्रन्थों द्वारा श्राविका जान लेना। ऐसे चौबीस-जिन का संघ च्यारि प्रकार कह्या। आगे चौबीस-जिन के शिष्य, सिद्ध भये। तिनका प्रमाण अनुक्रमतैं कहिए हैं—तहां वृषभदेव के शिष्य, साठ हजार नौ सौ सिद्ध भए। अजित-जिन के, बहत्तरि हजार एक सौ। सम्भव-जिन के, एक लाख सत्तरि हजार एक सौ। अभिनन्दन-जिन के, दोय लाख अस्सी हजार एक सौ। सुमतिनाथ के, तीन लाख एक हजार छः सौ। पद्मनाथ के, तीन लाख तेरह हजार छः सौ। सुपार्श्वनाथके, दोय लाख पच्यासी हजार। चन्द्रप्रभके, दोय लाख चौंतोस हजार। पुष्पदन्तके, एक लाख गुन्यासी हजार छः सौ। शीतलनाथ के, अस्सी हजार छः सौ। श्रेयांस-जिन के, पैंसठ हजार छः सौ। वासुपूज्य के,

चौवन हजार छः सौ। विमल-जिनके, इक्यावन हजार तीन सौ। अनन्त-जिनके, इक्यावन हजार। धर्मनाथ-जिनके, गुणचास हजार सात सौ। शान्तिनाथके, अड़तालीस हजार च्यारि सौ। कुंथु-जिनके छयालीस हजार आठ सौ। अरह-जिनके, तीस हजार दोय सौ। मल्लिनाथ-जिनके, अट्ठाईस हजार आठ। मुनिसुव्रत-जिनके, गुणतीस हजार दोय सा नमि-जिनके, नौ हजार छह सौ। नेमिनाथ-जिनके, आठ हजार। पार्श्वनाथ-जिनके, छह हजार दोय सौ। और महावीर के शिष्य, सात हजार दोय सौ, मोक्ष गये। ये चौबीस-जिनके शिष्य, मोक्ष भये। तिनका प्रमाण कह्या। सो वृषभदेव तैं शान्ति पर्यन्त, सोलह तीर्थङ्कर सिद्ध लोक पधारे। तब तांई, तिनके शिष्य मोक्ष गये। भावार्थ—सोलह तीर्थंकरोंकौं जब तैं केवलज्ञान उपज्या। तब तैं लगाय, निर्वाण भया तब तांई, तिनके शिष्य मोक्ष गये। अरु शेष आठ तीर्थंकरोंके शिष्य, निर्वाण पीछे, महिनामें, केई शिष्य दोय महिनामें केई च्यारि मासमें केई, वर्षमें, केई दोय वर्षादिक पीछे मोक्ष गये। ऐसे सब-जिनके शिष्यनका मोक्ष जानना। आगे चौबीस-जिनका परस्पर अन्तर कहिये है—तहां वृषभदेव पीछे पचास लाख कोड़ि सागर काल व्यतीत भया, तब दूसरे अजितनाथ भये। अजितनाथ तैं, तीस लाख कोड़ि सागर पीछे, तीसरे संभवजिन भये। संभवनाथके पीछे दश लाख कोड़ि सागरके अन्तर तैं, चौथे अभिनन्दन-जिन भये। अभिनन्दन तैं, नव लाख कोड़ि सागर पीछे, सुमतिनाथ भये। अरु सुमतिनाथके पीछे, नब्बे हजार कोड़ि सागर अन्तरालमें पद्मनाथ भये। पद्मनाथके पीछे नव हजार कोड़ि सागर अन्तर भये, सुपार्श्व भये। सुपार्श्वनाथके पीछे नौ सो कोड़ि सागर अन्तरकाल गये, चन्द्रप्रभ पीछे नब्बे कोड़ि सागर अन्तर गये, पुष्पदन्त हुए। पुष्पदन्तके पीछे नव कोड़ि सागर अन्तर भए, शीतल-जिन भए। शीतल-जिनके पीछे, अरु श्रेयांसनाथके बीचि अन्तर, छयासठि लाख बीस हजार वर्ष घाटि एक कोड़ि सागर। श्रेयांस-जिनके पीछे चौवन सागर अन्तर भए, वासुपूज्य-जिन भए। और वासुपूज्य पीछे, तेतीस सागर अन्तर तैं विमल-जिन भए। विमलके पीछे, नो सागर अन्तर तैं, अनन्त-जिन भए। अनन्तनाथके पीछे, आधा पल्य काल व्यतीत भए धर्मनाथ भए। धर्मनाथके पीछे, पौन पल्य घाट तीन सागर अन्तर गए शान्तिनाथ भए। शान्तिनाथ के पीछे आधा पल्यका अन्तर भए कुन्थुनाथ भए। कुन्थुनाथ के पीछे, हजार कोड़ि वर्ष घाट, पाव पल्य अन्तर गए अरहनाथ भये। अरहनाथ के पीछे हजार कोड़ि वर्ष अन्तर गए,

मल्लिनाथ भये। मल्लिनाथ के पीछे चौवन लाख वर्ष अन्तर गये, मुनिसुव्रत-जिन हुए। मुनिसुव्र के पीछे, छह लाख वर्ष अन्तर गये, नमि-जिन हुए। नमिनाथके पीछे पचास लाख वर्ष अन्तर गए, नेमिनाथ भए। नेमिनाथके पीछे पौने चौरासी हजार वर्ष अन्तर भये, पार्श्वनाथ भए। अरु पार्श्वनाथके पीछे, अढ़ाई सौ वर्षका अन्तर पड़े वर्द्धमान-जिन भए। ऐसे चौबीस जिनके तेबीस अन्तराल कहे। सो जब महावीर मोक्ष पधारे, तब चौथे कालके तीन वर्ष साढ़े आठ महिना, बाकी थे। चौथा काल ब्यालीस हजार वर्ष घाटि एक कोड़ा-कोड़ी सागरका है। तहां ब्यालीस हजार वर्ष में इक्कीस हजार वर्षका पञ्चमकाल है। अरु इक्कीस हजार वर्षका छट्ठा काल है। सो पञ्चमकालके अन्त पर्यन्त, महावीरका धर्म है; छट्ठे कालमें, धर्मका अभाव है, इति चौबीस-जिन अन्तर। आगे धर्मका विरह-काल कहिए है—तहां वृषभदेवसूं लगाय, पुष्पदन्त पर्यन्त तो धर्म अखण्ड चल्या। कबहूं श्रावक कबहूं मुनि कबहूं केवलज्ञानी भया करैं। तिनके प्रसाद तैं धर्मोपदेश भया कर‍्या। अन्तराल नाहीं पड़‍्या। पुष्पदन्तके पीछे पाव पल्य तांई धर्मका अन्तर भया। और शीतलनाथके पीछे आधा पल्य तांई, धर्मका विच्छेद भया। और श्रेयांस-जिनके पीछे पौन पल्य तांई, धर्मका विच्छेद भया। वासुपूज्यके पीछे एक पल्य तांई धर्मका विच्छेद हुआ। विमलनाथ-जिन भए। विमल-जिन पीछे पौन पल्य धर्मका अभाव भया पीछे अनन्तनाथ भए। अनन्तनाथके पीछे आधा पल्य धर्मका विच्छेद भया। और धर्मनाथके पीछे पाव पल्य, धर्मका अभाव भया। ऐसे तीर्थंकरोंके अन्तरालमैं च्यारि पल्य तांई, मुनि, अर्जिका, श्रावक, श्राविका, च्यारि संघका अभाव रह्या। जिन-धर्म मिट गया। जब तीर्थंकर प्रगटे, तब फेरि धर्म चल्या। ऐसा अन्तर भया। और प्रथम तैं आठ तीर्थंकरोंके समय, निरन्तर धर्म रह्या। और पहिले तीर्थंकर तैं लगाय सात तीर्थंकर पर्यन्त, तौ केवलज्ञान रूपी सम्पदा निरन्तर चली आई। केवलज्ञानका कबहूं अन्तर नहीं भया। चन्द्रप्रभ पीछे, नब्बे केवली भये। बाकी कालमैं केवली नहीं रहे, मुनि ही रहे। पुष्पदन्तके पीछे, नब्बे केवली भये। शीतलनाथके तीर्थमैं चौरासी केवली भये। श्रेयांसके पीछे इनके तीर्थमें ७२ केवली भये। वासुपूज्यके पीछे, इनके तीर्थमें चवालीस केवली भये। विमलनाथके पीछे इनके तीर्थमैं, चालीस केवली भये। अनन्तनाथके पीछे छत्तीस केवली भये। धर्मनाथके पीछे बत्तीस केवली भये। कुन्थुनाथके पीछे चौबीस केवली भये। अरहनाथके पीछे सोलह केवली भये। मुनिसुव्रतके पीछे

बारह केवली भये। नमि के पीछे, आठ केवली भये। नेमि के पीछे, च्यारि केवली भये। पार्श्वनाथ के पीछे, तीन केवली भये। महावीर के पीछे, तीन केवली भये। ऐसे चौबीस तीर्थङ्करों के पीछे, जेते-जेते केवली भये, तिनकी संख्या कही। सो जहां लूं दूसरे तीर्थङ्कर नहीं उपजे, तेते काल पहिले तीर्थङ्कर का वारा (तीर्थ) कहिये हैं। जैसे—प्रथम तीर्थङ्कर पीछे अजितनाथ उपजे, तब लौं पचास लाख कोड़ि सागर, प्रथम-जिन का काल समझना। ऐसा सर्वत्र जानना। महावीरके पीछे बासठ वर्षमें तीन केवली भये। तिनके नाम—गौतम गणधर केवली, सुधर्माचार्य केवली और तीसरे जम्बू स्वामी अन्त के केवली भये। यहां तैं आगे केवली नाहीं। इन जम्बू स्वामी के पीछे, सौ वर्ष में ग्यारह अङ्ग, चौदह पूर्व के पाठी आचार्य हुए। जिनके नाम सुनहु—विष्णु, नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु—ये पांच आचार्य, महाबुद्धि सागर, सर्व श्रुत के पाठी भये और इनके पीछे एक सौ तिरासी वर्ष में ग्यारह आचार्य और होंयगे, सो ग्यारह अङ्ग अरु दश पूर्व के पाठी होंगे। तिनके नाम—विशाख प्रोष्ठल, क्षत्रिय, जयसेन, नागसेन, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय, बुद्धिमान, गंगदेव और धर्मसेन। इनके आगे, पूर्वन पाठी नाहीं। इन आगे दोय सौ बीस वर्ष में पांच आचार्य, ग्यारह अङ्ग के पाठी होंयगे। तिनके नाम—निषध, जयपाल, पाण्डव, ध्रुवसेन और कंस—इन तांई ग्यारह अङ्ग का ज्ञान रहेगा। आगे इनके पीछे सुभद्राचार्य, यशोभद्राचार्य, भद्रबाहु आचार्य, लोहाचार्य—ये च्यारि मुनि, एक सौ अट्ठारह वर्ष में एक आचाराङ्ग के पाठी होंयगे। इन आगे, अङ्गन का ज्ञान नाहीं। आगे कहे महावीर के गणधर ग्यारह तिनकी आयु कहिये है—पहिले गणधर की आयु, बानवै वर्ष है। दूसरे की, चौरासी वर्ष की है। तीसरे की आयु, अस्सी वर्ष। चौथे की, सौ वर्ष। पांचवें की, तियासी वर्ष। छठवें की, पिचासी वर्ष। सप्तम की, अठत्तर वर्ष। अष्टम की, ७२ वर्ष। नववें की, ६० वर्ष। दशवें की, ५० वर्ष और ग्यारहवें की, ४० वर्ष—ये गणधरन की आयु कही। ऐसे चौबीस-जिन का संघ कह्या। आगे जब तीजे काल में, पल्य का अष्टम भाग बाकी रह्या, तब चौदह कुलकर भये। तिनके नाम—प्रतिश्रुत, सन्मति, क्षेमंकर, क्षेमंधर, सीमंकर, सीमंधर, विमलवाहन, चक्षुष्मान, यशस्वी, अभिचन्द्र, चन्द्राभ, मरुदेव, प्रसेनजित् और नाभिराय—अब इनकी आयु-कायादिक रचना कहिये है—तहां पहिला कुलकर प्रतिश्रुत, ताकी अट्ठारह सौ धनुष काय। इनके समय ज्योतिषी जाति के कल्पवृक्षन की ज्योति

कछु मन्द भई। सो सूर्य-चन्द्रमा दीखते भये। तिनकूं देख, प्रजा डरी। जो ये कहा है ? तब कुलकर तैं पूछी हे प्रभो ! ये कहा ? अबतक कभूं नहीं दीखे, सो ये हमारा कहा करैंगे, सो कहौ। तब कुलकर महाविवेकी सर्वकूं सम्बोधे। कही भय मति करौ। ये ज्योतिषी देवन के इन्द्र हैं। इनके विमान, अनादि-निधन हैं। अब ताईं, कल्पवृक्षन की प्रभा तैं नहीं दीखते थे, सो अब वृक्षन की ज्योति मन्द भई तातैं दीखे। खेद-कारी नाहीं। ऐसे संबोध, प्रजा कों सुखी किया। १। दूसरे कुलकर की काय १३०० धनुष। इनके काल में, ज्योतिषी जाति के कल्पवृक्षन की प्रभा, मन्द भई। तब तारा-नक्षत्रन के विमान दीखे। तिनकूं देख, भोरी दुनियां डरी। तब जाय कुलकर पै पूछी। तब कुलकर ने सर्व भेद बताय सुखी किये। तातें सन्मति नाम भया। २। तीसरे कुलकर की काय, आठ सौ धनुष। याके समय सिंहादिक जीव क्रूर भये। तिनकूं देख, भोरे लोक डरते भये। तब कुलकर कूं पूछी। प्रभो अब ताईं इन जीवनतैं रमै थे, सो नाना सुख होय था। अब ये भय करि, मारैं हैं। तब कुलकर लोकन कूं भोरे-सरल परिणामी जानि कही—तुम इनका विश्वास मति करौ। लष्ट-मुष्ट तैं निवारौ। ऐसे कह सुखी किये। सो इनका नाम—क्षेमङ्कर कह्या। ३। और चौथे कुलकर के समय, शरीर की उतुङ्गता, सात सौ पचत्तरि धनुष है। याके समय सिंहादिक जीव क्रूर भये। तब कुलकर कही—तुम लाठी राखौ। आवैं तब मारौ। विश्वास मति करौ। काल दोष तैं, आगे विशेष क्रूर होंयगे। ऐसे उपाय बताय सुखी किये। तातैं क्षेमंधर नाम भया। ४। पञ्चम कुलकर के समय, काय सात सौ पचास धनुष रही। कल्पवृक्ष घटि चले। कोऊ के कैसा कल्पवृक्ष नाहीं, कोऊ कैसा नाहीं। इसमें परस्पर खेद करते भये। तब कुलकर पै गये। सो कुलकर ने, अपनी-अपनी सीमा बताय दई। जो अपने-अपने क्षेत्र में होय सो भोगौ और दूसरे की सीमा का, ताकी आज्ञा के बिना मति लांघौ। आपस में याच लेव। जो फल जाके नहीं होंय सो वापै लीनें और वाकें जो फल नहीं होंय, सो वाकौं दिये। ऐसे उपाय कर सीमा बांधी। तातैं सीमंकर नाम पाया। ५। छट्ठे कुलकर की काय सात सौ पच्चीस धनुष है। इनके समय, कल्पवृक्ष विशेष घटि चले। तब परस्पर लोग खेद करि कषाय रूप होने लगे। तब कुलकर ने, अपने-अपने कल्पवृक्ष के चिह्न कर दिये, सो जो जाके चिह्न का है, सो ही भोगै। तातैं इनका नाम—सीमंधर भया। ६। सातवें कुलकर की काय की ऊँचाई, सात सौ धनुष की थी। याने लोकन कूं, हस्ती-

घोटकन की असवारी बताई। तातें इनका नाम, विमलवाहन भया। ७। आठवें कुलकरका शरीर छह सौ पचत्तरि धनुष है। इनके समय माता-पिता, बालकका मुख देख मरण करते भये। पहिले माता-पिता पुत्रका मुख नहीं देखै थे। सो अष्टम कुलकर तैं देखते भये। ८। और नवबैं कुलकरका शरीर छह सौ पचास धनुष भया। याके समय माता-पिता बालक भये पीछे केतेक काल जीवते भये। ९। दशवैं कुलकर का शरीर छह सौ पच्चीस धनुष भया। याके समय माता-पिता बालकन कूं लेकर चन्द्रमादि की समस्या करि रमावते भये।१०। और ग्यारहवें कुलकर का शरीर छह सौ धनुष भया। याके समय में परिवार सहित लोक बहुत जीवते भये। ११। बारहवें कुलकर का शरीर पांच सौ पचत्तरि धनुष है। अब लोग पुत्र सहित सुखी होते भये।१२। और तेरहवें कुलकर का शरीर पांच सौ पचास धनुष ऊंचा था। ता समय बालक जर सहित उपजते भये। ताहि देख लोग डरे। तब कुलकर कूं जर सहित बालक दिखाया। सो याने जरा-छेदने की विधि बताई। १३। और चौदवें कुलकर नाभि राय भये। सो इनके समय बालक नाभि (नाल) सहित होने लगे। तब-नाभि छेदने को कला इनने बताई। तातें नाभिराय भये। इनका शरीर पांच सौ पच्चीस धनुष भया। १४। ऐसे चौदह कुलकर महा बुद्धिमान् इनमें स्वयमेव ही अनेक कला-चतुराई होय। महा सौम्यदृष्टि, मंद-कषायी होंय। ऐसे पल्यके आठवें भाग कालमैं, कुलकर चौदह भये। पीछे तीसरे कालके तीन वर्ष साढ़े आठ महिना बाकी रहे तब श्री आदिनाथ का निर्वाण-कल्याणक भया। चौथे कालके तीन वर्ष साढ़े आठ महिना बाकी रहे, तब अन्तिम तीर्थंकर महावीर स्वामीका निर्वाण कल्याणक भया। महावीरके मोक्ष गये पीछे इक्कीस हजार वर्षके पञ्चमकालमें इक्कीस कलंकी होंयगे। इनके बीचि, इकईस उपकलंकी होंयगे। भावार्थ—इक्कीस हजार वर्षका पञ्चमकाल है। तामें हजार वर्ष भये एक कलंकी होंयगे। ता पीछे पांच सौ वर्ष पीछे एक उपकलंकी होंयगे। ता पीछे पांच सौ वर्ष गये एक कलंकी होंयगे। ऐसे हजार हजार वर्ष गये कलंकी हजार हजार वर्ष गये उपकलंकी जानना। बहुत उपद्रवी, घने-क्षेत्रके धर्म-घातक होंय; सो कलंकी कहिये। अरु अल्प-क्षेत्रके धर्म-घातक होंय सो उपकलंकी कहिये। सो कलंकी-उपकलंकी सब ही पापांधकारके उदय करने कौं रात्रि समान होंयगे। इनके राज्यमैं धर्मरूपी सूर्यका प्रकाश, मिट जायगा। पाप का अधिकार रहेगा सो पाप-मूर्ति, धर्म के घातक फल तैं,

अशुभ गति गमन करेंगे। ऐसे कुलकर व कलंकी कथन कह्या। आगे बारह चक्रवर्तीन की आयु कहिये हैं-तहां भरत चक्रीकी आयु चौरासी लाख पूर्वकी। तामैं कुमारकाल सतत्तर लाख पूर्व है। महामण्डलेश्वर पदका राज्य चालीस हजार वर्ष। पीछे चक्ररत्न उत्पन्न भया। पीछे दिग्विजय, साठ हजार वर्ष। राज्य एक लाख वर्ष घाटि, छह लाख पूर्व। संयमकाल, अन्तर्मुहूर्त। केवलज्ञान सहित किंचित् ऊन एक लाख पूर्व रह के सिद्ध भए। १। दूसरे सगर चक्री की आयु बहत्तरि लाख पूर्व। तामैं इनका कुमारकालादि यथायोग्य जान लेना।२। तीसरा चक्री मघवा नाम। ताकी आयु पांच लाख वर्ष। तामैं कुमारकाल, पच्चीस हजार वर्ष। मण्डलेश्वर पद, पच्चीस हजार वर्ष। पीछे चक्र लाभ भए दिग्विजय, दश हजार वर्ष। राज्य, तीन लाख नब्बे हजार वर्ष। संयमकाल, पचास हजार वर्ष बाद, स्वर्गलोक गए।३। चौथे चक्री, सनतकुमार। ताकी आयु, तीन लाख वर्ष। तामैं कुमारकाल, पचास हजार वर्ष। मण्डलेश्वर पद पचास हजार वर्ष। पीछे चक्र लाभ तैं दिग्विजय, दश हजार वर्ष। राज्यावस्था, नब्बे हजार वर्ष। संयमकाल, एक लाख वर्ष। पीछे स्वर्ग गमन किया।४। पञ्चम शांतिनाथ-जिन, चक्री। तिनकी आयु एक लाख वर्ष। तामैं कुमारकाल, पच्चीस हजार वर्ष। मण्डलेश्वर पद, पच्चीस हजार वर्ष। दिग्विजय आठ सो वर्ष। चक्री पद, चौबीस हजार दोय सौ वर्ष। संयमकाल, सोलह वर्ष। सोलह वर्ष घाटि पच्चीस हजार वर्ष, समोवशरण सहित विहार किया। पीछे सिद्ध भए। ५। छट्ठे कुन्थुनाथ-जिन चक्री। तिनकी आयु, पंचाणबै हजार वर्ष। तामैं कुमारकाल, पौने चौबीस हजार वर्ष। मण्डलिक राज्य पद, पौने चौबीस हजार वर्ष। दिग्विजय, छह सौ वर्ष। चक्री पद, तेबीस हजार डेढ़ सौ वर्ष। संयमकाल, सोलह वर्ष। केवल अवस्था, सोलह वर्ष घाटि पौने चौबीस हजार वर्ष। पीछे मोक्ष गये।६। सातवें अरहनाथ-जिन, चक्री। तिनकी आयु, चौरासी हजार वर्ष। तामैं कुमारकाल, इक्कीस हजार वर्ष। मण्डलिक राज्य पद, इक्कीस हजार वर्ष। दिग्विजय, च्यारि सौ वर्ष। चक्री पद, बीस हजार छह सौ वर्ष। संयमकाल, सोलह वर्ष। सोलह वर्ष घाटि, इक्कीस हजार वर्ष, केवलज्ञान सहित उपदेश दिया। पीछे लोक शिखर विराजे। ७। आठवां चक्री, सुभूमि। ताकी आयु, अड़सठ हजार वर्ष। तामैं कुमारकाल, पांच हजार वर्ष। और दिग्विजय, पांच सौ वर्ष। चक्री पद, बासठ हजार पांच सौ वर्ष। अरु यह बाल्यावस्थामैं, परशुरामके भय तैं सन्यासीनके आश्रम विषैं गोप रहे।

तातैं वैराग्य नहीं भया। राज्यावस्थामें मरण किया सो महातम नाम, सप्तम लोक-पातालमें पधारे। ८। नौवें, महा पद्म चक्री। ताकी आयु, तीस हजार वर्ष। तामें कुमारकाल, पांच सौ वर्ष। माण्डलिक पद, पांच सौ वर्ष। तीन सौ वर्ष, दिग्विजय। चक्री पद, अट्ठारह हजार सात सौ वर्ष। संयमकाल, दश हजार वर्ष। याहीमें मुनिपद अरु केवलपद पाय, पीछे सिद्ध भये। ९। दशवें सुषेण चक्री। तिनकी आयु, छब्बीस हजार वर्ष। तामें कुमारकाल, सवा तीन सौ वर्ष। दिग्विजय डेढ़ सौ वर्ष। चक्रीपद, पच्चीस हजार एक सौ पचत्तरि वर्ष। संयमकाल, साढ़े तीन सौ वर्ष। तामें दीक्षा अरु केवलज्ञान दोऊ आय गये। पीछे मोक्ष गये। १०। ग्यारहवें जयसेन चक्री। तिनकी आयु, चौबीस सौ वर्ष। तामैं कुमार-काल, सौ वर्ष। दिग्विजय, सौ वर्ष। चक्री पद-राज्य, अट्ठारह सौ वर्ष। संयम-काल केवलज्ञान सहित च्यारि सौ वर्ष। ११। बारहवां ब्रह्मदत्त चक्री। ताकी आयु, सात सौ वर्ष। ये चक्री नेमिनाथके पीछे, अरु पार्श्वनाथके पहिले, इस अन्तरालमें भये। सो इनका कुमारकाल, अट्ठाबीस वर्ष। माण्डलिक पद, छप्पन वर्ष। दिग्विजय, सोलह वर्ष। चक्री पदका राज्य, छह सौ वर्ष। इन्हो ने दीक्षा नहीं लीनी। राज्यपदमें मरण करि, सप्तमी माघवी-धरा पधारे। १२। यह बारह चक्रीकी, आयुकी, विगत कही। सो इनमें, आठ चक्री तौ सिद्ध भये। दोय, स्वर्ग लोक गए। दोय पाताल-धरा पधारे। आगे नव, अर्द्धचक्रीनका कथन कहिए है—प्रथम वासुदेव-त्रिपिष्ठकी आयु, चौरासी लाख वर्ष। तामें कुमारकाल पच्चीस हजार वर्ष। दिग्विजय काल एक हजार वर्ष। अरु राज्यपद तियासी लाख चुहत्तर हजार वर्ष। १। दूसरा वासुदेव-द्विपिष्ठ। ताकी आयु बहत्तरि लाख वर्ष। तामें कुमार-काल पच्चीस हजार वर्ष। मण्डलेश्वर पदका राज्य पच्चीस हजार वर्ष। दिग्विजयका काल सौ वर्ष। अरु वासुदेव पद इकत्तरि लाख गुणचास हजार नौ सौ वर्ष। २। तीसरा वासुदेव स्वयम्भू। ताकी आयु साठ लाख वर्ष। ताका कुमारकाल पच्चीस सौ वर्ष। अरु माण्डलिक पद पच्चीस सौ वर्ष। दिग्विजय नब्बे वर्ष। अरु तिन खंडका राज्य गुणसठि लाख चौरानवै हजार नव सौ दश वर्ष। ३। अरु चौथा वासुदेव पुरुषोत्तम। ताकी आयु तीस लाख वर्ष। तामें कुमार-काल सात सौ वर्ष। माण्डलीक राज्य-पद तेरा सौ वर्ष। दिग्विजय अस्सी वर्ष। तीन खण्डका राज्य गुणतीस लाख सत्यानवै हजार नव सौ वीस वर्ष।४। पञ्चम वासुदेव सुदर्शन। ताकी आयु दश लाख वर्ष। तामें

कुमार-काल तीन सौ वर्ष। माण्डलिक पद सौ वर्ष। दिग्विजय सत्तरि वर्ष। और चक्री पद नौ लाख निन्यावै हजार पांच सौ तीस वर्ष।५। और छठा, पुराडरीक वासुदेव भया। ताकी आयु पैंसठ हजार वर्ष। तामैं कुमार-काल, अढ़ाई सौ वर्ष। माण्डलीक पद, अढ़ाई सौ वर्ष। दिग्विजय, साठ वर्ष। तीन खण्डका राज्य, चौंसठ हजार च्यारि सौ चालीस वर्ष।६। और सातवां, दत्त नाम नारायण। ताकी आयु बत्तीस हजार वर्ष। तामैं कुमार-काल, दोय सौ वर्ष। माराडलिक पद पचास वर्ष। दिग्विजय, पचास वर्ष। तीन खराडका राज्य, इकतीस हजार सात सौ वर्ष।७। और आठवां वासुदेव लक्ष्मण। ताकी आयु बारह हजार वर्ष। कुमार-काल, सौ वर्ष। दिग्विजय काल, चालीस वर्ष। अरु राज्य काल, ग्यारह हजार आठ सौ साठ वर्ष।८। और नववां वासुदेव, कृष्णदेव। ताकी आयु, एक हजार वर्ष। तामैं कुमार-काल, सोलह वर्ष। माराडलिक पद छप्पन वर्ष। दिग्विजय आठ वर्ष। अरु वासुदेव पद, का राज्य, नौ सौ बीस वर्ष।९। ये नव वासुदेवोंकी आयुका विस्तार कह्या। आगे आठवें, नववें नारायण के पिता-दादादिक पुरुषन के नाम। इन के पुत्रन के नाम। इन के समय जो बड़े-बड़े महान राजा भये, तिनके नाम कहिये हैं। आठवें नारायणकी तीन पोढ़ी कहिये हैं—तहां आगे अनेक राजान करि वन्दनीय, सूर्य समानि तेज का धारी, प्रजा का माता-पिता महा न्यायवान्, रघु राजा भया। तिन तैं रघुवंश प्रगट भया। ताके वंशमैं, बड़े-बड़े राजा भये। सो प्रजापालक, न्यायके प्रभाव तैं, तिनका यश प्रगट भया। पीछे सांसारिक सामग्री विनाशिक जानि, पुत्रनकूं पुर देशनका राज्य सौंप दीक्षा धरि-धरि, स्वर्ग-मोक्षकूं गये। ऐसे अनेक राजा भये। तिनके पीछे राजा अनिरन्य भये। सो न्यायके सूर्य प्रजारूपी कमलकूं सूर्य समान आनन्दकारी, तिनकैं राजा दशरथ, यशकी मूर्ति होते भये। सो ए राजा अनिरन्यके पुत्र राजा दशरथ, महा प्रतापी भये। जिनके तेजके आगे, वैरी रूपी सरोवर सूखते भये। महा न्यायका जहाज भया। पीछे दशरथजीके च्यारि महादेवी, परमसती, देवीनके रूपकूं जीतनहारी, रानी होती भईं। तिन रानीके नाम कौशल्या, सुमित्रा, कैकई, और सुप्रभा। ये च्यारि महा भागवन्ती रानी, इनके च्यारि पुत्र भये। सो कौशल्याके गर्भ तैं तौ, श्रीरामचन्द्रजीका अवतार भया सो बलभद्र भये। सुमित्राके गर्भ तैं, श्री लक्ष्मण कुमार अवतार पावते भये सो ए नारायण भए। कैकईके गर्भ तैं, भरत नाम कुमार भए। सुप्रभाके गर्भ तैं शत्रुघ्न कुमार अवतरते भए।

ये च्यारों पुत्र, न्याय के जहाज पृथ्वीरूपी मन्दिर के स्तम्भनकूं, च्यारि स्तम्भ ही होते भए और श्रीरामचन्द्र के दोय पुत्र भए। तिनके नाम—लव और अंकुश—इन दोय पुत्रन ने, सीताजी के गर्भ तैं अवतार पाया। ये रघुवंशी कहाए। इति रघुवंश। आगे इन राम-लक्ष्मण के समय में जो-जो रावणादि राजा भए। तिनकी परम्पराय (वंश) कहिए है—तहां भीम नाम राक्षस ने मेघवाहनकूं, पूर्व-भव का पुत्र जानि, लङ्का, पाताल लङ्का, राक्षस-विद्या और नव रतन का हार दिया। पीछे, अनेक राजा भए। ता पीछे राक्षस नाम राजा भया। इनने राक्षसवंश चलाया। पीछे अनेक राजा भए। सो यह विद्याधरन का वंश, आकाश समान निर्मल तामें महाप्रतापी राजा सुकेत भए। ता सुकेत के, तीन पुत्र भए। माली, सुमाली और माल्यवान्। सो माली तौ, इन्द्र नाम विद्याधर से युद्ध में मारया परया और सुमाली के रत्नश्रवा नाम पुत्र भया सो वंश का उजागर, ताने न्याय सहित राज्य किया अरु रत्नश्रवा की पट्टरानी केकसी ताके उदर तैं तीन पुत्र भए। दशमुख, कुम्भकर्ण, चन्द्रनखा पुत्री, पीछे विभीषण पुत्र भया। ये तीन पुत्र और एक पुत्री, रत्नश्रवा के भए। सो ये तीनों भाई देव समान रूप, गुण व पराक्रम के धारी भए। रावण के दोय पुत्र इन्द्रजीत, मेघनाद, मन्दोदरी के गर्भ तैं भए। मन्दोदरी का पिता राजा मय, महासामन्त, अनेक विद्याधरन का नाथ भया और मेघप्रभा नाम विद्याधर ताके पुत्र खरदूषण ने, रावण की बहिन चन्द्रनखाकौं, बलात्कार हरी। पीछे चन्द्रनखाकूं, खरदूषण ने परणीं। यह खरदूषण भी महायोद्धा है अरु चन्द्रोदय राजा का पुत्र विराधित, सो रावण का महासामन्त है और विजयार्द्ध पर रथनूपुर इन्द्रलोक समान पुर है, सो ताका राजा संश्रार है। ताके इन्द्र नाम पुत्र भया सो महाबली भया। ताने अपने सेवक विद्याधरनकौं, देवन के नाम थापे और अपना नाम इन्द्र धरया। उस महाबली ने, रावण के दादा मालीकूं, युद्ध मैं मारया। ता पीछे रावण महाप्रतापी, पराक्रमी भया सो अपने दादा का बैर लेनेकूं, इन्द्रसूं युद्ध किया सो युद्ध में जीत्या। ता इन्द्रकूं, जीवता ही पकड़ि ल्याया। पीछे कही—मेरे घर पानी भरौ, तौ छोडूं। तब इन्द्र नाम विद्याधर ने, मान तजि कही—भरूँगा। ऐसी कही—तब इन्द्रकूं रावण ने तज्या सो इन्द्र ने संसार तैं उदास होय, राज्य तजि, दीक्षा धरी। नाना तप किए। जक्षपुर का वैश्रवा नाम राजा ताके कौशकी पट्टरानी महासती। ताके गर्भ तैं वैश्रवण नामा पुत्र

का अवतार भया सो राजा इन्द्र का मुख्य सेवक सो इन्द्र के संग, यतीश्वर भया। ऐसे इन्द्र रावण का सम्बन्ध जानहु—ये राक्षसवंशी रावण है। राक्षस-देव नाहीं। रावण मनुष्य है। आगे विद्याधरों में वानर-वंशी हैं। तिनकी कथा सुनौ—आगे श्रीकण्ठ नाम विद्याधर भए। तिनने समुद्र के टापू में वन्दर-द्वीप वसाया। ता श्रीकण्ठ के कुल में, राजा अमरप्रभ भए। तिननै ध्वजा में वन्दर का चिह्न कराया। इससे वन्दरवंशी प्रसिद्ध भए। पीछे अमरप्रभ के कुल में, कहकन्द नामा राजा भए, सो कहकन्द के दोय पुत्र भए। सो एक नाम सूरजरज अरु दूसरे का ऋष्यरथ। सूरजरजकौं, बालि अरु सुग्रीव—ये दोय पुत्र भए अरु ऋष्यरज के, नल अरु नील भए। अरु सुग्रीव के, अङ्ग अरु अङ्गद—ये दोय पुत्र भए। ये सुग्रीव का वंश कह्या और इस ही वंश विषैं, राजान का राजा, महातेजस्वी, अनेक विद्याधरन का नाथ राजा प्रहलाद भया। ताके पुत्र महा पुण्याधिकारी, पवन समान महाबलवान्, राजा पवनञ्जय भए। तिन पवनञ्जय के, अञ्जना के गर्भ तैं महा-बड़भागी, चरमशरीरी, हनुमान पुत्र भए। सो कामदेव भए। ये वन्दर-वंशीन का कुल कह्या। ये मनुष्य, महारूपवान राजा हैं। वन्दर नाहीं हैं। इनका वंश, वन्दर है। ऐसा जानना। ऐसे वन्दर-वंश कह्या। इति आठवें नारायण के समय का कथन, सामान्य कह्या। इनका विशेष, श्रीपद्मपुराणजी तैं जानना। आगे नववें नारायण व बलभद्र के कुल की पट्टावली तथा इनके समय भये महान् राजा पाण्डवादिक तिनकी उत्पत्ति कहिये है। तहां मुनिसुव्रत स्वामी का कुल हरिवंश तामें अनेक कुल-मण्डन भये। ता पीछे महाप्रतापी राजा यदु भये। इनतैं यदुवंश प्रगट्या। तिनके कुल में, राजा नरपति भये। तिनके दोय पुत्र भये। एक शूर, दूसरे सुवीर। सो शूर के, अन्धकवृष्टि नाम पुत्र भये और सुवीर के, भोजकवृष्टि भये। सो अन्धकवृष्टि के दश पुत्र भये। तिनमें बड़े पुत्र का नाम तो, समुद्रविजय है अरु सब तैं छोटे का नाम, वसुदेव है। भोजकवृष्टि के तीन पुत्र भये। उग्रसेन, महासेन और देवसेन सो उग्रसेन के, कंस नाम पुत्र भया अरु देवसेन के, देवकी नाम पुत्री भयी। समुद्रविजयकैं, जगत्-गुरु नेमिनाथ, अवतार लेते भये। सो तप लेय, मोक्ष गये अरु वसुदेव के, पद्म नाम बलभद्र, नारायण कृष्णदेव, जरत्कुमार और गजकुमार—ये च्यारि पुत्र भये और कृष्ण महाराज के प्रद्युम्नकुमार, शम्भुकुमार और भानुकुमार—ये तीन पुत्र भये और अन्धकवृष्टि के कुन्ती अरु माद्री—ये दोय पुत्री

भई। ऐसे राजा यदु का वंश सामान्य कह्या। इति यदुवंश। आगे कौरव-पाण्डव वंश कहिए है। तहां कुरु-वंशीन में, आगे शान्तिक नाम राजा भए। तिनकी शिवकी नाम, महासती रानी भई। ता शिवकी के गर्भ तैं, पाराशर नाम महाप्रतापी राजा भए। तिनके, गङ्गा नाम स्त्री होती भई। सो थे राजा गङ्गाधर की पुत्री है। इस गङ्गा के गांगेय पुत्र भया। सो थे गांगेय, महान्यायी, बाल-ब्रह्मचारी भए पाराशर की दूसरी रानी, धीवर के घर पलती गुणवती नाम राजकन्या, पाराशर ने व्याही। ता गुणवती धीवर पुत्री, ताकैं व्यास नाम राजा अवतरे, सो थे महागुणवान राजा भए। तिनके सुभद्रा नाम रानी भई। ताके गर्भ तैं, व्यास राजा के तीन पुत्र भए। धृतराष्ट्र, पाण्डवकुमार और विदुर। सो धृतराष्ट्र के दुर्योधन, दुश्शासनादि पुत्र भए। पाण्डव ने, अन्धकवृष्टिजी की, कुन्ती और माद्री—ये दोय पुत्री परणी। सो कुन्ती के, च्यारि पुत्र भए। सो बड़े तौ कर्ण, सो इनको बालपने में सन्दूक में धरि जल में बहांए थे। सो चन्द्रपुरी में, राजा सूर्य के यहां पले। थे गुप्त भए थे। तातैं पर घर पले। पीछे कुन्ती के, तीन पुत्र और भए। युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन अरु माद्री के नकुल, सहदेव—ये दोय भए अरु अर्जुन के, अभिमन्यु नाम पुत्र भया। ऐसे कौरव-पाण्डवन की उत्पत्ति कही। इति पाण्डववंश, सामान्य कथन। आगे द्रोणाचार्य की वंश-पट्टावली कहिए है। तहां वंश तौ भार्गव है। तामें वामदेव, महाविद्यातिलक भए। ताकैं, कापिष्ठल-पुत्र भया। तिनकैं यशस्थामा पुत्र भया। ताकैं, श्रवर नाम पुत्र भया। ताकैं, सरासर नाम पुत्र भया। ताकैं, द्रावण नाम पुत्र भया। ताकैं, विद्रावण पुत्र भया। ताकैं, द्रोणाचार्य भए। ताकैं, अश्वत्थामा पुत्र भया। इति द्रोणाचार्य कुल। आगे जरासिन्धु की पट्टावली कहिए है—हरिवंश के वसु के मगधदेश का राजा निहतशत्रु भया। तिनके, राजा सतिपति भए। तिनके, वृहद्रथ राजा भए। तिनके, राजा जरासिन्धु और अपराजित राजा भए। सो जरासिन्धु नववां प्रतिहरि भया। ताकै, कालयमन पुत्र भया। यह जरासिन्धु का वंश कह्या। इति नववें नारायण के समय के पुरुषन का कथन। आगे सगर चक्री का वंश कहिए है। तहां इक्ष्वाकु तो वंश है। आदि-जिन के पीछे, असंख्यात राजा भए। ता पीछें, राजा धरणीधर तिनके, तिरयशजय भये। तिनके पुत्र, जितशत्रु और विजयसागर ये दोय भए। सो जितशत्रु के तो अजितनाथ भए अरु दूसरे भाई, विजयसागरकें, सगर चक्री भए। तिनके, साठ हजार पुत्र भए और भागीरथजी भये। ऐसा जानना। ये सगर-वंश। ऐसे महान् पुरुषों की

परिपाटी कही। सो भव्यनकूं मङ्गलकारी होऊ। आगे ग्यारह रुद्रन का कथन कहिए है। तहां प्रथम भीम नामा रुद्र है। सो आदिनाथ के समय भए। ताकी आयु, तियासी लाख पूर्व की है। शरीर की ऊँचाई, पांच सौ धनुष है। १। दूसरा जयतिशत्रु नाम। सो अजितनाथ के समय भया। इनकी आयु, इक्त्तरि लाख पूर्व। शरीर की ऊँचाई साढ़े च्यारि सौ धनुष है। २। तीसरा, नववें तीर्थङ्कर के समय भया, सो रुद्र नाम का रुद्र है। इनकी आयु, दोय लाख पूर्व की है। काय, सौ धनुष है।३। चौथा रुद्र विश्वानल है। सो दशवें तीर्थङ्कर के समय भया। आयु, एक लाख पूर्व। काय की ऊँचाई नब्बे धनुष। ४। पांचवाँ रुद्र, सुप्रतिष्ठ है। सो श्रेयांस तीर्थङ्कर के समय भया। याकी आयु, चौरासी लाख वर्ष। काय उत्तुङ्ग ८० धनुष है। ५। और छठवां रुद्र, वासुपूज्य-जिनके समय भया। ताका नाम, अचल रुद्र है आय, ताकी साठ लाख वर्ष हैं। काय सत्तर धनुष की है। ६। सातवां रुद्र, पुण्डरीक नाम सो विमलनाथ के समय भया। ताकी आयु, पचास लाख वर्ष है। काय, साठ धनुष है। ७। और आठवां, अजितधर नाम रुद्र। सो अनन्तनाथ के समय भया। ताकी आयु, चालीस लाख वर्ष है। काय, पचास धनुष है। ८। नववां रुद्र, जितनाभि है सो धर्मनाथ के समय भया। ताकी आयु, बीस लाख वर्ष। काय, अट्ठाईस धनुष है।९। दशवां रुद्र पीठि नाम है सो शान्तिनाथ के समय भया। ताकी आयु, एक लाख वर्ष। काय, चौबीस धनुष की है। १०। ग्यारवां रुद्र, सात्यकी है सो अन्त में महावीर के समय भया। आयु ताकी गुणत्तरि वर्ष है। काय, सात हाथ की है। ११। ये सर्व रुद्र, ग्यारह अङ्ग व दश पूर्व के पाठी होंय हैं और जिनका क्रोध रूप, सहज स्वभाव है। इन ग्यारहों का ही कुमारकाल, संयम काल, संयम छुटने का काल असंयम-काल ही है। ये पहिले संयम धारें हैं। अनेक तप-बल, तैं, इनकी ज्ञान शक्ति ऋद्धिशक्ति बधै-प्रगटै है। तब पीछे भोगाभिलाषी, मानार्थी होय, संयम तजैं हैं। ऐसा सर्व रुद्रन का सहज-स्वभाव जानना। इति रुद्र कथन। आगे नव नारद का स्वरूप कहिये है। ये नव नारद हैं, सो नारायण के समय ही होंय। सो तिनकी आयु-काय, नारायण बलभद्र प्रमाण जानना। सो तिनके नाम सुनहु—भीम, महाभीम, रुद्र, महारुद्र, काल, महाकाल, दुर्मुख, नरक-मुख और अधोमुख। इति नारद नाम। आगे चौबीस कामदेव के नाम कहिये हैं। बाहुबलि, अमिततेज, श्रीधर, दश-भद्र, प्रसेनजित, चन्द्रवर्ण, अग्निमुक्त, सनत्कुमार, वत्सराज, कनकप्रभ, मेघवर्ण, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ,

विजयराज, श्रीचन्द्र, नलराजा, हनूमान, बलिराजा, वासुदेव, प्रद्युम्न, नागकुमार, श्रीपाल और जम्बूस्वामी। ये चौबीस कामदेव कहे। ऐसे तीर्थङ्करादि का स्वरूप कह्या। सो अन्त के महावीर स्वामी के मोक्ष गये पीछे, जब ६०५ वर्ष गये। तब राजा वीर विक्रमादित्य भये और भगवान् के मोक्ष गये पीछे, हजार वर्ष बाद कलङ्की भया। सो या भाँति पञ्चमकाल की मर्यादा में २१ कलंकी, २१ उपकलंकी, ऐसे ४२ राजा धर्म-नाशक होंयगे। तहां, अन्त का कलंकी, पञ्चमकाल के अन्त में, जलमथ नाम होयगा। ता समय में भी च्यारि प्रकार के संघके, च्यारि जीव रहेंगे। तिनके नाम—तहां इन्द्रराज नाम आचार्य के शिष्य, वीरांगद नाम यतीश्वर होंयगे। १। और सर्वश्री नाम अर्जिका हो हैं। २। अग्निल नामा महाधर्मात्मा श्रावक हो है। ३। और पंगुसेना नाम श्राविका हो है। ४। ये मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका, च्यारि मनुष्य, अन्तिम धर्मात्मा हैं। इन पीछे, धर्मी जीवन का अभाव हो है। इनके समय, जलमथ नामा कलंकी, अपने मन्त्रिन तैं पूछेगा। भो मन्त्री! कोई मेरी आज्ञा रहित भी है, अक सर्व जीव मेरी आज्ञा मानैं हैं? तब मन्त्री कहेंगे। नाथ! तुम्हारी आज्ञा सर्व जीव मानैं हैं। एक वीतरागी मुनि, तुम्हारी आज्ञा में नहीं हैं। तब राजा कहैगा। मुनि कहा करैं हैं? कहां रहैं हैं? तब मन्त्री कहेगा। वन में रहैं हैं। तन तैं भी निष्प्रेम हैं। शत्रु-मित्र, तृण-कञ्चन, उन्हें समान हैं। महावीतराग सौम्यदृष्टि हैं। भोजन समय, श्रावकन के घर अनेक दोष टाल, शुद्ध-प्रासुक आहार लेय ध्यान में लीन रहैं हैं। सो यति कोई की आज्ञा में नहीं हैं। तब कलंकी कहेगा। हमारी बस्तीमैं जब भोजन लेय तब प्रथम ग्रास, हासल (कर) का देंय। तब मुनि के भोजन में तैं प्रथम ग्रास लेंयगे। तब यति अन्तराय करि वन में जाय, सन्यास धरि, तीसरे दिन पर्याय छोड़, कार्तिक बदी अमावस्या के दिन, एक सागर की आयु, सहित स्वर्ग में देव होंयगे और तब ही ये बात सुनि करि बाकी आर्यिका, श्रावक, श्रायिका—ये तीन जीव संन्यास धरि, ताही स्वर्ग में महाऋद्धि धारी देव उपजेंगे। ता दिन ही प्रथम पहर, धर्म-नाश होयगा। आर्यखण्ड में धर्म का अभाव होयगा और ता दिन के मध्य में, राज्य का नाश होयगा। ताही दिन के अन्त समय अग्नि नाश होयगी। आर्यखण्ड में अग्नि नाहीं मिलेगी। वस्त्र नाश होंयगे। तब सर्व नग्न रहेंगे और अन्न नाश भये, सर्व जीव मांसाहारी होंयगे। मुनिकौं उपसर्ग जानि, असुरेन्द्र आय, कलंकीकों वज्र से मारेगा। सो मर कर कुगति जायगा। पीछे सर्व अन्ध होंयगे। महाक्रोधी

होंयगे। मर कर नरक-पशू होंयगे। तहां ही के आय उपजैंगे। दोय शुभ-गति का आवागमन, आर्यखरणड तैं मिट जायगा। धर्म नाश तैं, सर्व आर्यखरणड के जीव महादुखी होंयगे। ऐसे अवसर्पिणी का पञ्चमकाल पूरा होय। ता पीछे छट्ठे काल के २१ हजार वर्ष, महादुख तैं पूर्ण होंयगे। पीछे जब छट्ठे काल के, ४६ दिन बाकी रहेंगे। तब सात दिन, खोटो वर्षा होयगी। तिनके नाम—अति तीव्र पवन की वर्षा होय। ता करि सर्व पर्वत पातउवा (पत्ता) की नांईं उड़ेंगे। १। बहुत शीत की वर्षा। २। खारे जल की वर्षा।३। जहर की वर्षा। ४। वज्राग्नि की वर्षा।५। बालू-रज की वर्षा।६। धूम की वर्षा ताकरि अन्धकार होयगा।७। इन सात वर्षान तैं, इस क्षेत्र में प्रलय होयगा। ऐसे सामान्य सवसर्पिणी का व्याख्यान किया। आगे उत्सर्पिणी का काल लगेगा। तहां छट्ठे काल लगते ही भली वर्षा होयगी। ताकरि पृथ्वी रस रूप होयगी। आगे प्रलय में केईं जीव, विद्याधर-देवों ने, कर (हाथ में) लेय गङ्गा-सिन्धु नदी के तट, विजयार्द्ध की गुफा में जाय धरे थे सो अब साता भये आवेंगे। तिन करि फेरि रचना होयगी। तहां उत्सर्पिणी का प्रथम काल लगेगा। तामें रीति, छट्ठे कैसी होयगी। परन्तु या छट्ठे काल में आयु-काय की वृद्धि और ज्ञान की बधवारी होयगी। ऐसे छट्ठे काल कैसे २१ हजार वर्ष पूर्ण होंयगे? तब फिर पांचवां अरु उत्सर्पिणी का दूसरा काल लगेगा। ताके इक्कीस हजार वर्ष तामें २० हजार वर्ष व्यतीत भये जब एक हजार वर्ष बाकी रहेगा। तब उत्सर्पिणी काल के चौदह कुलकर होंयगे। तिनके नाम—कनक, कनकप्रभ, कनकराज, कनकध्वज और कनकपुञ्ज—ये पांच तो कनक (सोना) समान तन के धारी होंयगे। नलिन, नलिनप्रभ, नलिनराज, नलिनपुञ्ज और नलिनध्वज—ये पांच कमल के समान तन के धारी होंयगे। शेष पद्मप्रभ, पद्मराज, पद्मपूज्य और पद्मध्वज—ये चौदह कुलकर, पांचवें काल के अन्त में होंयगे। फेरि, चौथा काल लगेगा। सो कोड़ाकोड़ी सागर का तामें, चौबीस तीर्थंकर होंयगे। तिनके नाम—महापद्म, सुरदेव, सुपार्श्व, स्वयंप्रभ, सर्वात्मभूत, देवपुत्र, कुलपुत्र, उदंक, प्रौष्ठिल, जयकीर्ति, सुव्रत, अरहनाथ, पुण्यमूर्ति, निःकषाय, विपुल, निर्मल, चित्रगुप्त, समाधिगुप्त, स्वयंप्रभ, अनुवृत्तिक, जय, विमल, देवपाल और अनन्तवीर्य—ये चौबीस-जिन, उत्सर्पिणी के चौथे कालमें, धर्म-तीर्थके कर्त्ता, मोह अन्धकार के दूर करवेकौं सूर्य्य समान होंयगे। इति आगामी चौबीस जिन। आगे आगामी बारह चक्रवर्ती के नाम कहिये हैं—भरत, दीर्घदत्त, जयदत्त; गूढ़दत्त, श्रीषेण, श्रीभूति,

श्रीकान्त, पद्म, महापद्म, चित्रवान, विमलवाहन और अरिष्टसेन। आगे आगामी नव नारायण के नाम कहिये हैं—नन्द, नन्दमित्र, नन्दन, नन्दभूति, महाबल, अतिबल, भद्रबल, द्विपिष्ट और त्रिपिष्ट—ये नव नारायण होंयगे। इनही नारायण के बड़े भाई, आगामी बलभद्र, होंयगे। तिनके नाम—चन्द्र, महाचन्द्र, चन्द्रधर, सिंहचन्द्र, हरिश्चन्द्र, श्रीचन्द्र, पूर्णचन्द्र, शुभचन्द्र और बालचन्द्र—ये नव बलभद्र, आगे होंयगे। आगे नव प्रतिनारायण होंयगे। तिनके नाम—श्रीकण्ठ, हरिकण्ठ, नीलकण्ठ, अश्वकण्ठ, सुकण्ठ, शिष्यकण्ठ, अश्वग्रीव, हयग्रीव और मयूरग्रीव—ये नव प्रतिनारायण होंयगे। इति प्रतिनारायण नाम। आगे आगामी ग्यारह रुद्र होंयगे। तिनके नाम—प्रमद, सम्मद, हर्ष, प्रकाम, कामाद, भव, हर, मनोभव, मारु, काम और अङ्गज—ये ग्यारह रुद्र कहे। ऐसे उत्सर्पिणी में तीर्थङ्कर, चक्री, नारायण बलभद्र, प्रतिनारायण—ये बड़े पुरुष होंयगे। आगे भरतक्षेत्र सम्बन्धी, अतीत चौबीस-जिन हो गये। तिनके नाम कहिये हैं—निर्वाणनाथ, सागर, महासाधु, विमलप्रभ, श्रीधर, सुदत्तनाथ, अमलप्रभ, उद्धर, अङ्गिर, सन्मति, सिन्धु, कुसुमाञ्जलि, शिवगण, उत्साह, ज्ञानेश्वर, परमेश्वर, विमलेश्वर, यशोधर, कृष्णमति, ज्ञानमति, शुद्धमति, श्रीभद्र, अतिकान्त और शान्त—ऐसे तीन काल सम्बन्धी, तीन चौबीसी तिनके नाम लेय अन्त-मङ्गलकूं उन्हें नमस्कार किया। ये भगवान् भव्यनकूं मङ्गल करौ और इनके माता-पिता आयु का प्रमाण चिह्न का वर्णन कह्या। इनके वारे जो महान् नर भये। कामदेव, चक्री, नारायण बलभद्र, प्रतिनायाण, कुलकर, रुद्र, नारद—इन आदि ये महान् पुरुष भव्य राशि निकट संसारी इनका भी नाम मङ्गलकारी है। क्योंकि ये सर्व मोक्षगामी जिन-धर्म के पारगामी हैं। इनकी कथा मङ्गल के अर्थ यहां प्ररूपण करी। इति तीनकाल सम्वन्धी तीर्थङ्करादि त्रेसठ शलाका पुरुषन के नाम। आगे अन्त-मङ्गलकौं भरतक्षेत्र सम्बन्धी सिद्धक्षेत्र के नाम कहिये हैं—कैसे हैं सिद्धक्षेत्र जहां तैं महाव्रत के धारी योगीश्वर शुक्लध्यान-अग्नि करि अष्ट कर्म रूप ईंधन जलाय निरञ्जन होय सिद्धक्षेत्र लोक के अन्त तहां जाय विराजते जहां अनन्त-सिद्ध बिराजे हैं। तातैं जहां तैं ये प्रभु मोक्ष गए तहां जाय तिन सिद्धक्षेत्रन की प्रत्यक्ष वन्दना करने की तौ मो मैं शक्ति नाहीं। तातैं इस ग्रन्थ के पूर्ण करने कूं अन्त-मङ्गल के मिस करि सर्व क्षेत्रन के नाम लेय मङ्गलाचरण कीजिये है—सो प्रथम ही आदिनाथ का निर्वाणक्षेत्र कैलाश पर्वत है, सो अष्टापद कौं नमस्कार होऊ। २। अजितनाथ आदि बीस तीर्थङ्करों का

निर्वाणक्षेत्र सम्मेदशिखर है। ताकों नमस्कार होऊ। २। वासुपूज्य-जिन का निर्वाणक्षेत्र, चम्पापुरी का वन है ताकूं नमस्कार होऊ।३। नेमिनाथ-जिन कूं आदि लेय बहत्तरि कोड़ि मुनि का निर्वाणक्षेत्र गिरनार शिखर ताकों नमस्कार होऊ। ४। महावीर का निर्वाणक्षेत्र पावापुर का पर्वत है। ताकूं नमस्कार होऊ। ५। वरदत्त आदि साढ़े तीन कोड़ि मुनि तारङ्गा शिखरतैं मोक्ष गये। तिस क्षेत्रकूं नमस्कार होऊ।६। लाड नरेन्द्र आदि पाँच कोड़ि मुनि का निर्वाणक्षेत्र पावागिर है। ताकों नमस्कार होऊ। ७। तीन पाण्डवन कूं आदि लेय अष्ट कोड़ि मुनि का निर्वाणक्षेत्र शत्रुञ्जय क्षेत्र है। ताकौं नमस्कार होऊ।८। बलभद्रादि आठ कोड़ि मुनि के मोक्ष होने का क्षेत्र गजपंथ शिखर ताकौं नमस्कार होऊ। ९। रामचन्द्र, सुग्रीव, हनुमान आदि ९९ कोड़ि यतीश्वरों का निर्वाणक्षेत्र तुङ्गीगिर है। ता क्षेत्र कूं नमस्कार होऊ।१०। रावण के पुत्रादि साढ़े बारह कोड़ि मुनि का निर्वाणक्षेत्र रेवा-नदी के तट पर सिद्धवर-कूट है। तिस क्षेत्रकूं नमस्कार होऊ। ११। इन्द्रजीत, कुम्भकर्ण, रावण के भाई—पुत्र तिनका निर्वाणक्षेत्र चूलिगिर नाम शिखर है। ता क्षेत्र कूं नमस्कार होऊ। १२। अचलापुर की ईशान दिशा में, मेढ़गिर नाम शिखर है ताकौं मुक्तागिर भी कहै हैं। सो यहां तें साढ़े तीन कोड़ि मुनि मुक्ति गये। सो ताकूं नमस्कार होऊ।१३। राजा दशरथ के पुत्रनकूं आदि लेय एक कोड़ि मुनि का निर्वाणक्षेत्र, कोटिशिला है। ताकूं नमस्कार होऊ। १४। इत्यादिक अढ़ाई द्वीप विषैं तिष्ठते सिद्धक्षेत्र, तिनकूं नमस्कार होऊ। ये सिद्धक्षेत्र, इस ग्रन्थ के अन्त-समाप्ति विषैं, कवीश्वर कूं भव-भव मङ्गल करने में, सहाय होऊ तथा इस ग्रन्थ के अभ्यासी भव्य जीव तिनकूं, सिद्धक्षेत्र-यात्रा समान फल विषैं, सहाय होऊ। ऐसे सिद्धक्षेत्र कूं नमस्कार करि अन्त-मङ्गल किया। आगे सिद्ध-लोक समान, अकृत्रिम-चैत्यालय मङ्गलकारी हैं। तातैं यहां ग्रन्थ के अन्त में, आठ कोड़ि छप्पन लाख सत्यानवै हजार च्यारि सौ इक्यासी जिन-मन्दिर, अनादिनिधन अकृत्रिम हैं। तिन प्रत्येक में एक सौ आठ जिनबिम्ब हैं। तिनकूं नमस्कार होऊ। तिनमैं सात कोड़ि बहत्तर लाख, तौ पाताल-लोक हैं। च्यारि सौ अट्ठावन, मध्यलोक में है। चौरासी लाख सनतानवै हजार तेबीस, ऊर्ध्व-लोक में हैं ते सब, मङ्गल की राशि हैं जिन-मन्दिर, सो कहिये हैं—उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य, भेद करि तीन प्रकार हैं। सो उत्कृष्ट जिन-मन्दिर, लम्बे २०० योजन, चौड़े ५० योजन और ऊँचे ७५ योजन हैं और मध्य चैत्यालयों का

प्रमाण-५० योजन लम्बे, २५ योजन चोड़े, और साढ़े सैंतीस योजन ऊंचे हैं। जघन्य चैत्यालयोंका प्रमाण २५ योजन लम्बे, साढ़े बारह योजन चौड़े और १८ योजन ऊंचे हैं। सो भद्रशाल वन विषैं, नन्दनवन विषैं, नन्दीश्वर द्वीप विषैं, और कल्पवासीनके विमानन विषैं तौ उत्कृष्ट अवगाहनाके धारक जिनमन्दिर हैं। तिनकी नींव भूमि में दोय कोस है सौमनस वन, रुचिकगिर पर्वत, कुण्डलगिर पर्वत, वक्षारगिर पर्वत, इष्वाकार पर्वत, और मानुषोत्तर पर्वत तथा कुलाचलन पै, मध्य अवगाहना के जिनमन्दिर हैं। विजयार्द्ध, जम्बूवृक्ष, शाल्मलीवृक्ष, इन पर चैत्यालयनकी अवगाहना-एक कोस लम्बाई, आध कोस चौड़ाई, और पौन कोस ऊंचाई है। और भवनवासी-व्यन्तर देवोंके क्षेत्रों के अकृत्रिम चैत्यालयोंकी अवगाहनाका प्रमाण, अन्य ग्रन्थ करि जानना। उत्कृष्ट चैत्यालयनके सन्मुख के बड़े द्वार, १६ योजन ऊंचे, और आठ योजन चौड़े हैं। और उत्कृष्ट चैत्यालयनके दोऊ तरफके, छोटे-द्वार, आठ योजन ऊंचे, और च्यारि योजन चौड़े हैं। मध्य चैत्यालयनके सन्मुखके बड़े द्वार, ८ योजन ऊंचे व च्यारि योजन चौड़े हैं। मध्य चैत्यालयनके दोऊ पार्श्वनके छोटे द्वार, ४ योजन ऊंचे व २ योजन चौड़े हैं। जघन्यावगाहनाके चैत्यालय, २५ योजन लम्बे, व १२॥ योजन चौड़े और १८॥। योजन ऊंचे हैं। तिनके सन्मुखके बड़े द्वार ४ योजन ऊंचे और दोय योजन चौड़े हैं। जघन्य चैत्यालयनके छोटे द्वार, दोय योजन ऊंचे व एक योजन चौड़े है। ऐसे तीन भेद रूप, चैत्यालय जानना। इन चैत्यालयनके तीन-तीन, रत्नमयी कोट हैं। एक-एक कोटके, च्यारि दरवजे हैं। तहां प्रथम दरवाजे तैं, मन्दिर पर्यंत जावे कों, च्यारि गली हैं। तहां चारों तरफ, ४ मानस्तंभ हैं। दरवाजन पै, ६ रत्नस्तूप हैं तिन तिन कोटके बीचि, दोय अन्तराल हैं। तिन अन्तरालनमें पहिले-दूसरे कोटके बीच तौ वन है और दूसरे-तीसरे कोटके बीचिमें ध्वजा—समूह है। तीसरे कोटके अरु जिन मन्दिरके बीच, गर्भगृह हैं। जैसे लौकिकमें जुदे-जुदे कोठे होंय, तैसे जुदे-जुदे गर्भगृह जानना। और तिन गर्भ-गृहनके बीचमें, देवछन्द नाम मण्डप है। सो मंडप, रत्नमयी स्तभनके ऊपर कनक वर्ण है। सो मंडप, ८ योजन लम्बा २ योजन चौड़ा और ४ योजन ऊंचा है। ताके मध्य विषैं, रत्न-कनक मय सिंहासन है। तिसपर विराजमान, श्रीजिन-बिम्ब हैं जिन-विम्ब कैसा है, मानो साक्षात् तीर्थंकर देव ही हैं। पांच सौ धनुष, रत्नमई अवगाहना है।

तहां मस्तकके ऊपर नीलमयी परिणाम्या जो श्याम वर्ण रत्न सो सुन्दर केशनकी आभाकूं धारै है। और महा उज्ज्वल, हीरा मयी दांत शोभैं हैं। और मूंगा समान लाल, अधर-ओष्ठ शोभैं हैं। नवीन कोंपल समान लाल उत्तम शोभा सहित, कोमल हस्तकी हथेली, और पांवकी पगथली, शोभायमान हैं। ऐसे श्री जिनेन्द्र के प्रतिबिम्ब हैं। सो मानौं अब ही बोलैं हैं। तथा अबही विहार करेंगे। मानौं देखैं हैं। मानौं ध्यान रूप हैं। मानौं वाणी खिरै है। मानौं चैतन्य ही हैं। १००८ चिन्ह सहित हैं। तिनपर ६४ जातिके व्यंतरदेव, रत्नमयी आकार लिये खड़े हैं। पंक्तिबंध हस्त जोड़े खड़े हैं। सो मानों चमर ही ढोर रहे हैं। और तीन लोकके छत्र समान तीन छत्र, रत्नमयी, शीश पै शोभायमान हैं। ऐसे जिनबिम्बि एक-एक गर्भगृहमैं, एक-एक हैं। १०८ गर्भगृह हैं। तिनमैं १०८ प्रतिबिम्ब विराजमान हैं। तिनकौं नमस्कार होऊ। ऐसे कहे जिनबिम्ब, तिनके निकट दोऊ पार्श्वन विषैं, श्री देवी, सरस्वती देवी, सर्वल्ह जक्ष देव, और सनत्कुमार देव। इन च्यारिके, रत्नमयी आकार पाईये हैं। ये महा भक्त हैं। जिनबिम्बनके निकट, अष्ट, मंगल-द्रव्य शोभै हैं। तिनके नाम-झारी, कलश, आरसी, ध्वजा पंखा, चमर, छत्र, और ठौणा सो एक जातिके, एक सौ आठ—एक सौ आठ जानना। जैसे झारी १०८, कलश १०८, ऐसे जानना। ऐसे गर्भगृह का सामान्य स्वरूप कह्या। आगे इस गृह-बाह्य जो रचना और है। सो कहिए है—पर्वमैं कह्या जो देवछन्द मण्डप, सो नाना प्रकार रत्नमयी, स्वर्णमयी-फूलमालान करि शोभायमान है। ता मण्डप के पूर्व दिशाकूं, जिन-मन्दिर है। ताके मध्य में, स्वर्ण-रूपा मयी, ३२ हजार धूपघट हैं। और बड़े द्वारके दोऊ पार्श्वन विषैं, २४ हजार धूप-घट हैं। बड़े द्वारनके बाह्य, ८००० रत्नमयी माला, शोभायमान हैं। तिन मालान के बीचि २४००० स्वर्णमयी माला हैं। तिन बड़े द्वारन के आगे—सन्मुख, छोटे मण्डप हैं। ता विषैं सोलह—सोलह हजार कनक मयी धूप-घट, अरु कनक मयी माला, अरु कनक कलश पाइये है। तहां मुख्य मण्डप के मध्य, अनेक प्रकार रमणीय शब्द करनहारा, रत्नमयी छोटा घंटा है। सन्मुख द्वारके दोऊ तरफ के छोटे द्वार, तिन पै सर्व रचना, मालादिक का विस्तार, बड़े द्वार तैं आधा जानना। और सर्व मन्दिर के, तीन—तीन द्वार हैं। पीछे कूं द्वार नाहीं। मन्दिर की पीछली भीति की तरफ, ८००० रत्नमयी और २४००० स्वर्णमयी माला हैं। घंटा, धूपघड़े आदि अनेक रचना, पीछे कूं जानना। सो तहां घंटा कह्या, सो तौ मंडपकी

छत्त तैं, लंबता जानना। और धूपघट, धरती प जानना। और माला, चौतरफ भीति, तिनतैं लटकती जाननी। ऐसे रचना सहित जिन-मन्दिर हैं। ताके आगे २०० योजन लम्बा, ५० योजन चौड़ा और २६ योजन ऊंचा, जिन-मन्दिर समान, एक मुख्य मंडप है। सो अनेक रचना सहित जानना। ताही मुख्य मण्डप के आगे एक चौकोर, प्रेक्षण मंडप है। ताका विस्तार २०० योजन लम्बा—चौड़ा, और कुछ अधिक सोलह योजन ऊंचा है। और इस प्रेक्षण मण्डप के आगे, दोय योजन ऊंचा, ८० योजन चौड़ा—लम्बा एक पीठि कहिये चबूतरा है। सो कनकमयी जानना। तिस पीठिका के मध्य, चौकोर, मणिमयी, ६४ योजन लम्बा, २६ योजन ऊंचा एक मन्डप है। इसही मण्डप के आगे, एक मणिमयी, स्तूप की पीठिका है। सो पीठिका, ४० योजन ऊंची है। तिस पीठिका के चौतरफ, १२ वेदी हैं। तिन एक-एक वेदी के च्यारि-च्यारि द्वार हैं। ता पीठिका के मध्य, तीन कटनी सहित ६४ योजन ऊंचा, अनेक-रत्नमयी स्तूप है। ता स्तूप के ऊपरि, जिनबिम्ब विराजमान हैं। सो ऐसे, ९ स्तूप हैं। तिन सबका ऐसा ही वर्णन जानना। तिन स्तूपोंके आगे, २००० योजन लम्बा-चौड़ा, एक स्वर्णमयी पीठि है। ताके चौगिरद, १२ वेदी हैं। तीन कोट व च्यारि-च्यारि द्वारन करि सहित, कोट—वेदी जानना। तिस पीठि के ऊपर, एक सिद्धार्थ नामा वृक्ष है। ताका स्कन्ध ४ योजन लम्बा, और चौड़ा १ योजन है। ताकी च्यारि बड़ी साखायें, १२ योजन लम्बी हैं। छोटी शाखा अनेक हैं। और वृक्ष, ऊपर १२ योजन चौड़ा है। और अनेक पात, फूल, फलन करि सहित है। सो यह वृक्ष, रत्नमयी जानना। यह एक सिद्धार्थ नामा, वड़ा वृक्ष जानना। ताके परिवारमें अनेक वृक्ष हैं। ऐसी ही रचना सहित तथा ऐसाही विस्तार धरैं, चैत्य वृक्ष है। ऐसे सिद्धार्थ व चैत्य ये दोय महा-वृक्ष हैं। सो सिद्धार्थवृक्षके मूल विषैं तिष्ठति, सिद्ध-प्रतिमा है। और चैत्यवृक्षके मूलभाग विषैं तिष्ठती समभूमि पै, तीन पीठका, सिंहासन, छत्र आदि अनेक प्रकारकी रचना सहित च्यारों दिशा विषैं, अरहंत प्रतिमा विराजमान हैं। तहां अरहंत व सिद्ध प्रतिमा विषैं, विशेष एता जानना। जो सिद्ध प्रतिमाकैं चमर-छत्रादिकी रचना नाहीं। और अरहंत प्रतिमा कैं, चमर-छत्रादिकी रचना होय है। और तिस पीठिके आगे एक पीठि है तामैं नाना प्रकार ध्वजा शोभैं हैं। तिन ध्वजाके, स्वर्णमयी दण्ड हैं सो दण्ड, २६ योजन लम्बे हैं। और एक योजन चौड़े हैं। और तिन ध्वजाके अनेक प्रकार वर्ण हैं। रत्नमयी वस्त्र हैं

तिन ध्वजा के ऊपर, तीन-तीन छत्र शोभैं हैं। तिन ध्वजान के आगे, जिन-मन्दिर हैं। तिन जिन-मन्दिरों के आगे, चौतरफ, च्यारि दिशानकों, च्यारि हृद (तलाव) हैं। सो हृद २०० योजन लम्बे, ५० योजन चौड़े और दश योजन गहरे हैं। ये हृद, कनकमयी वेदीन करि भले शोभायमान हैं। तिनमें कमल फूल रहे हैं। ताके आगे मार्ग रूप च्यारि बीथीं हैं। तिन बीथन के दोऊ पार्श्वन विषैं, ५० योजन ऊँचे, २५ योजन चौड़े, रत्नमयी, देव के क्रीड़ा-मन्दिर हैं। तिन मन्दिरन के आगे, तोरण हैं सो तोरण मणिमयी स्तम्भन परि, गोल, भीति रहित हो हैं। सो अनेक रचना सहित, रमणीय हैं। सो तोरण, मोती-माला, घण्टा-समूह करि शोभायमान हैं। सो तोरण ५० योजन ऊंचे, २५ योजन चौड़े हैं। तिन तोरणों के ऊपर भाग में, जिनबिम्ब विराजमान हैं। तिन तोरण के आगे, स्फटिकमणि का प्रथम कोट है। तहां आभ्यन्तर कोट के द्वार के दोऊ पार्श्वन विषैं, रत्नमयी मन्दिर हैं। सो मन्दिर २०० योजन ऊँचे ५० योजन चौड़े हैं। ऐसे प्रथम कोट पर्वत वर्णन किया। आगे पूर्व द्वार विषैं, जो मण्डपादि का प्रमाण कह्या। तातैं आधा प्रमाण, दक्षिण व उत्तर द्वार का जानना और कथन, तीनों तरफ का समान है। ऐसे कहि, अब पहिले-दूसरे कोट के अन्तराल में, जो ध्वजा-समूह पाईये है। सो ध्वजान में दश जाति के चिह्न हैं। सिंह, हस्ती, वृषभ, गरुड़, मयूर, चन्द्रमा, सूर्य, हंस, कमल और चक्र ऐसे दश चिह्न सहित ध्वजा समूह है सो एक-एक चिह्न की ध्वजा, १०८ हैं। जैसे—सिंह जाति की ध्वजा, १०८ हैं। ऐसे सर्व जाति की ध्वजायें जाननां। सो जिन-मन्दिर के एक तरफ की ध्वजायें, १०८० भई। जिन-मन्दिर के चारों तरफ की ४३२० तौ बड़ी ध्वजा जाननी। इन बड़ी ध्वजान के साथ, एक सौ आठ-एक सौ आठ छोटी ध्वजायें जाननी। ऐसे ध्वजा का वन कह्या और तीसरे व दूसरे कोट के अन्तराल में जो रचना है। सो कहिये है—तहां च्यारों तरफ, च्यारि वन हैं। अशोक-वन, सप्तच्छद-वन, चम्पक-वन और आम्र-वन—ये च्यारि वन तिनके फूल तो स्वर्णमयी अरु पत्ते बैडूर्य रत्नमयी, हरित वर्ण हैं। तिनकी कोंपल मरकतमणिमयी हैं। तिनके फल महामनोज्ञ रत्नमयी हैं। ऐसे च्यारि ही वन दश प्रकार के कल्पवृक्षन सहित, रमणीय हैं। तिन बनन विषैं एक-एक चैत्य वृक्ष है। तिनके मूल भाग में च्यारों दिशान में पद्मासन श्री अरहन्त बिम्ब चमर-छत्रादि प्रातिहार्य करि शोभित विराजैं हैं। ऐसे एक-एक वन में एक-एक चैत्य वृक्ष है। तिनके तीन-तीन कोट हैं। तिनकी तीन-तीन कटनी

सहित पीठिका हैं इत्यादिक रचना सहित रत्नमयी चैत्यवृक्ष हैं। इन आदि बागवाड़ी, ध्वजापंक्ति, कलश, धूप, घट, मोतीमाला आदि अनेक रचना सहित, अकृत्रिम जिन-मन्दिरों का सामान्य स्वरूप कह्या। ताके निकट सामायिक करने के मन्दिर हैं। तहां भव्य सामायिक करैं हैं। वन्दना मराडप हैं तिसके पास स्नान करने के स्थान हैं। जहां भव्यजन पूजन करनेकूं स्नान करैं सो अभिषेक मराडप हैं। तहां भक्त-जन नृत्य करने के स्थान सो नृत्य मराडप हैं। तहां गान करने के स्थान सो जहां भव्य भगवान् की गुणमाला का गान करैं सो सङ्गीत मराडप हैं और तहां नाना प्रकार की चित्राम-कलादि की अनेक रचना महाशोभा सहित स्थान, तिनकौं देख, भव्य अनुमोदना करैं। तिनकौं देखते मन तृप्त न होय सो अवलोकन मण्डप हैं। तहां केईक धर्मात्मा-जीवन के, धर्म क्रीड़ा के स्थान हैं और कैएक स्थान ऐसे हैं जहां धर्मात्मा पुरुष शास्त्रन का स्वाध्याय करैं। गुणग्रहण मराडप हैं। केई स्थान अनेक पट-चित्राम दिखावने के स्थान हैं। पटशाला-स्थान हैं। ऐसे अनेक स्थान अकृत्रिम चैत्यालयन के निकट पाइये। तहां धर्मात्मा धर्म का साधन करैं हैं। ऐसे जिन-मन्दिर अकृत्रिम तीन लोक सम्बन्धी हैं। तिन सर्वकौं अन्तिम मङ्गल निमित्त हमारा मन-वच-काय करि बारम्बार नमस्कार होऊ। सर्व कर्म रहित सिद्ध भगवान अरु च्यारि घातिया कर्म रहित अनन्त चतुष्टय सहित अरहंत देव अरु मुनि संघ विषैं अधिपति आचार्य; ग्रन्थाभ्यास विषैं आप प्रवर्तैं अरु औरनकूं प्रवर्त्तावैं ऐसे उपाध्याय और २८ मूलगुण सहित साधु ऐते कहे पञ्च परमेष्ठी, पञ्च परम गुरु तिनकौं मन-वचन-काय शुद्ध करि अन्त-मङ्गल के निमित्त हमारा नमस्कार होऊ। ऐसे इस ग्रन्थ के पूर्ण होतें भया जो हर्ष ताकरि अन्तिम मङ्गल निमित्त अपने इष्टदेवकौं नमस्कार करि पाप मल धोय निर्मल होने का कारण जानि कवीश्वर ने कृत-कृत्यावस्थाकूं प्राप्त होय अपना भव सफल मान्या।

इति श्री सुदृष्टि तरङ्गिणी नाम ग्रन्थ के मध्ये में ग्रन्थ पूर्ण होते मंगल, निमित्त; नमस्कार पूर्वक, अकृत्रिम चैत्यालय वर्णन पञ्चपरमेष्ठी वर्णन नाम का गुणतालीसवां पर्व सम्पूर्ण भया ॥ ३९ ॥

आगे और मङ्गलकारी, जिनराजके समोवशरण हैं। ताका संक्षेप वर्णन कीजिये है। मङ्गलमूर्ति कल्याणका आकार समोवशरण, भगवान्के विराजनेका स्थान अनेक महिमाकों लिये देवोपुनीत समोवशरण है। ताका

दर्शन किये नाम लिये, स्मरण किये, पाप नाश होय, पुण्य संचय होय। ऐसा जानि, ग्रन्थके अन्त मङ्गलकूं, अनेक शास्त्रका रहस्य लेय समोवशरणका स्वरूप कहिये हैं-तहां प्रथमही समोवशरणकी भूमि, समभूमि तैं ५००० धनुष आकाशमें ऊंची है। ताके च्यारों दिशा विषैं, समभूमि तै लगाय, समोवशरण भूमि पर्यंत, बीस हजार पैंड़ीं, च्यारो दिशाओंमें हैं। ते पैंड़ीं (सीढ़ी) स्वर्णमयी हैं। सो पैंड़ीं, वृषभदेवके हाथसे एक हाथ चौड़ीं एक हाथ ऊंचीं, और एक कोस लम्बी हैं। और अन्य-जिनकी, क्रम तैं हीन हैं। सो हीनका प्रमाण कहिये हैं। वृषभदेवका जो प्रमाण है तामें २४ का भाग दीजिये, तामें तैं एक भाग घटावना। ऐसे नेमिनाथ तक, एक एक भाग घटावना। और पार्श्वनाथ व वीरके तिस तैं आधा भाग घटावना सो समभूमि तैं २॥ कोस आकाशमें जाईये। तहां वृषभदेवकी बारह योजन, नील रत्नमयी गोल-शिला है। सो तो समोवशरणकी समभूमि है। या पै सर्व रचना है। और तीर्थंकरनके समोवशरणका हीनक्रम है। सो नेमिनाथ पर्यंत आधा-आधा योजन, हीन है। पार्श्वनाथ वीरका पाव-पाव योजन घटता है। ऐसे महावीरका, १ योजनका समोवशरण है। तिस शिला विषें, शिवाननकी सीध मैं ४ गली, च्यारों दिशामें हैं। ते गली, शिवानन (भगवान) की लम्बाई प्रमाण चौड़ी हैं। जैसे वृषभ देवकी एक कोस चौड़ीं, लम्बी २३ कोस गलीं हैं सो धूलशालके दरवाजे तैं लगाय, गंधकुटीके द्वार पर्यन्त लम्बाईं जाननी। और इन गलीनके दोऊ तरफ, स्फटिकमणिमयी भीति हैं। इनकौं वेदी कहिये। इन दोऊ वेदीनके बीचि जो चौड़ाई, सो गलीकी चौड़ाई है और उन वेदीनकी चौड़ाई वृषभदेवके हाथ तैं ७५० धनुष है। और जिनकी हीन है। तिन गलीनके बीचि, ४ अन्तराल रूप भूमि हैं। तिन विषैं, ४ कोट व ५ वेदी हैं। अरु इन नवके अन्तराल विषैं, ८ भूमि है सो शिलाके अन्तभाग विषैं कोट है। ताके परे, चैत्यप्रसाद नाम भूमि है। ताके परे, वेदी है। ताके परे खातिका की भूमि है। ताके परे वेदी है। ताके परे, पुष्पवाड़ीकी भूमि है। ताके परे, दूसरा कोट है। ताके परे, उपबनकी भूमि है। ताके परे, वेदी है। ताके परे, ध्वजा-समूहकी भूमि है। ताके परे, तीसरा कोट है। ताके परे, कल्पवृक्षकी भूमि है। ताके परे, वेदी है। ताके परे, मन्दिरकी भूमि है। ताके परे, चौथा कोट है। ताके परे, सभा की भूमि है। ताके परे, वेदी है। ऐसे तिन गलिनके अन्तराल रूप भूमि विषैं रचना जाननी। तिन गलिन विषैं, ४ कोट व ५ वेदीनके द्वार हैं सो एक गली सम्बन्धी, नव द्वार हैं। च्यारों

गली सम्बन्धी, ३६ दरवाजे हुए। प्रथम कोट व प्रथम वेदी ताके बीचि सो प्रथम भूमि है। ताते प्रथम कोट व प्रथम वेदी, इनके बीचि गली, सो प्रथम भूमि कहिये। ऐसे ही अन्य द्वारनके बीचि द्वितीयादि भूमि जानना। तहां प्रथम भूमिकी गली ताके मध्य विषैं तौ मानस्तभ है सो च्यारि दिशा सम्बन्धी, ४ मानस्तभ हैं। एक-एक मानस्तभके च्यारों दिशानमें च्यारि-च्यारि बावड़ी हैं। इस गलीके दोऊ पार्श्वन विषैं दोय नाटयशाला हैं। ऐसी ही चौथी गली विषैं दोय नाट्यशाला हैं। छट्ठी गली के दोऊ पार्श्वन विषैं, यातैं दूनी नाट्यशाला हैं और सप्तमी भूमि में, च्यारि दिशा में, नौ-नौ रत्न-स्तूप हैं। आठवीं भूमि विषैं बारह सभा हैं। जो गली के, पार्श्वन की लम्बाई सहित वेदी हैं सो अनेक द्वारन सहित हैं। तिन द्वारन के रत्नमयी कपाट हैं कोई भव्य, इनके चौतरफ की रचना देखे चाहै हैं। तो इन गलीन के द्वारन होय, जाय आवैं है। या प्रकार गलीन की सामान्य रचना कही जो इन सर्वके मध्यभागमें तीनि पीठि हैं। ताके ऊपर गन्धकुटी है। तामें सिंहासन है। तापै कमल है। तापर श्रीभगवान् अन्तरिक्ष च्यारि अंगुल, विराजैं हैं सो अष्ट प्रातिहार्य सहित च्यारि चतुष्टय लिये, विराजमान जानना। ऐसे इनकी सामान्यपने रचना कही। अब तिनके स्थान बताइए है। इनका विशेष कहिए है। तहां ४ कोट कहे तिनमें पहिला कोट, समवशरण की अन्तभूमि विषैं है सो पञ्च-वर्ण, रत्न-चूर्ण का है। तातैं याका नाम, धूलिशाल है। नाना प्रकार वर्ण सहित इन्द्र धनुष समान विचित्र है। दूसरा कोट, तपाए स्वर्ण समान लाल है। तीसरा कोट, स्वर्ण समान पीत है। चौथा कोट स्फटिकमणि समान श्वेत है। पांचों ही वेदी, स्वर्ण समान पीत हैं। ये च्यारि कोट पांच वेदी नव ही के ऊपर, अनेक वर्ण की ध्वजा अरु अनेक शोभा सहित महल शोभायमान हैं। यहां वेदी अरु कोट विषैं एता विशेष है जो वेदी तो नीचे तैं लेय ऊपर पर्यन्त, समान चौड़ी हैं। अरु अरु कोट नीचे तैं चौड़ा अरु ऊपर हीनक्रम है। अब इनके बीचि, आठ भूमि हैं। ताका विशेष कहिये है—तहां प्रथम भूमि विषैं, एक चैत्यालय है अरु पाँच अन्य मन्दिर हैं। इनके बीचि बावड़ी, वन, वृक्ष इत्यादि की अनेक रचना है। दूसरी भूमि विषैं, खातिका है। सो रत्नमयी पगथेन (पैंड़ी) करि सहित है। निर्मल-जल करि भरी है। सो जल की उडाई (गहरो) जिन देव के शरीर तैं चौथे भाग है अरु वह खाई, कमलन करि पूरित, नाना प्रकार जलचर व हंसादिक जीवन करि शोभनीय है और तीसरी भूमि

विषैं, फुलवाड़ी है। जो नाना प्रकार वृक्ष, फूल बेलि करि शोभायमान है अरु चौथी भूमि विषैं, उपवन हैं। सो च्यारि दिशान विषैं, च्यारि उपवन हैं। तिनके नाम—अशोक-वन, सप्तपर्ण-वन, चम्पक-वन अरु आम्र-वन—ये वन, नाना प्रकार उत्तम वृक्ष करि सहित हैं और इन वन विषैं, नाना प्रकार के देव-क्रीड़न के मन्दिर हैं तथा ये वन, नृत्यशाला बावड़ी, क्रीड़ा-पर्वत, तिनकरि शोभनीय हैं इत्यादिक और भली रचना जाननी। तहां अशोक-वन विषैं, अशोक नाम चैत्यवृक्ष है। ताके चौतरफ, तीन कोन के भीतर, तीन पीठि हैं। तापै, अशोक वृक्ष है ताके मूलभाग विषैं, च्यारों दिशा में, च्यारि अर्हन्त प्रतिमा हैं। तिन प्रतिमा जी के आगे एक-एक मानस्तम्भ है। ऐसे और तीन वनन में—सप्तपर्ण चैत्य वृक्ष सप्तपर्ण-वन में है। चम्पक-वन में चम्पक चैत्य-वृक्ष। आम्र-वन में आम्र चैत्य-वृक्ष। ऐसे वन की रचना जाननी और इस वन की बावड़ीन के जल करि स्नान कीजिए, तो एक भव की अगली-पिछली दीखै और बावड़ीन के जल में देखिए, तौ अपने सात भव की, अगली-पिछली दीखै है। पञ्चम-भूमि विषैं, ध्वजान का समूह है। तहां एक दिशा सम्बन्धी ध्वजा कहिए हैं—सिंह, हाथी, वृषभ, मोर, माला, आकाश, गरुड़, चक्र, कमल और हंस—इन दश जाति की ध्वजा हैं सो एक-एक चिह्न की, १०८ महाध्वजा हैं। इन एक-एक महाध्वजा सम्बन्धी, १०८ छोटी ध्वजा और जाननी। ऐसे एक दिशा सम्बन्धी ध्वजा कहीं। च्यारों ही दिशा सम्बन्धी मिलाइए, तौ ४७०८८० ध्वजा होंय। ते सर्व ध्वजा, रत्नमयी दण्डन करि सहित हैं। ते दण्ड, वृषभदेव के ८८ अंगुल चौड़े हैं। परस्पर ध्वजा का २५ धनुष अन्तराल जानना और छट्ठी भूमि विषैं, कल्पवृक्षन के वन तहां—बासन, गृह, आभूषण, वस्त्र, भोग, पान, ज्योतिष, माला, वादित्र और दीपक—ये दश जाति के वन हैं सो च्यारि दिशा में, ४ ही वन हैं। तहाँ एक-एक दिशा में, एक-एक वन में, च्यारि चैत्य वृक्ष हैं। तिनके नाम—मेरु, मन्दार, पारजाति और सन्तानक—ये च्यारि कल्पवृक्ष, चैत्य वृक्ष हैं। इनका विस्तार वर्णन, पीछे अशोक चैत्य वृक्ष का कथन करि आए हैं, तहां समान जानना। एता विशेष है, जो यहां सिद्ध-प्रतिमा विराजमान हैं। सर्व वापी, मन्दिर, क्रीड़ा-पर्वतादि सर्व रचना, यहां-वहां समान जानना और सातवीं भूमि विषैं, रत्नमयी मन्दिरन की पंक्ति, वन की अनेक शोभा सहित है। तहां देव-देवी, भगवान का गुण-गान करैं हैं। आठवीं भूमि में, १२ सभा हैं। तहां तिस पृथ्वी सम्बन्धी च्यारि अन्तराल, तिनमें दोय-दोय तो गली की वेदी हैं

और दोय-दोय तिनके बीचि स्फटिक मणिमयी भीति हैं। इन च्यारों भीति के बीचि, तीन अन्तराल हैं। सो ही तीन कोठे। ऐसे च्यारों दिशान के, १२ कोठे भए अरु १६ भीति भई। तहां रत्न-स्तम्भ हैं तिनपै धरचा श्रीमण्डप है। मोती की माला, रत्न घण्टा, धूप घटादि अनेक रचना सहित है और जगह तैं, यहां रचना उत्कृष्ट है। तहां १२ सभा के, बारह कोठे हैं। तिनमें अनुक्रमतैं—मुनिराज, कल्वासी देवी, मनुष्यणीं, ज्योतिषी देव की देवियाँ, व्यन्तर देव की देवियाँ, भवनवासिनी देवी, भवनवासी देव, व्यन्तर देव, ज्योतिषी देव, कल्पवासी देव, मनुष्य और बारहवीं सभा में तिर्यञ्च बैठैं हैं। ऐसे अष्टमी भूमि में १२ सभा कहां। अव इन आठ भूमिन की गली का विशेष कहिए हैं—तहां प्रथम ही धूलिशाल कोट है। ताके ४ दरवाजे हैं। तिनके क्रम तैं नाम कहिए हैं—पूर्व दिशा का विजय, दक्षिण दिशा का वैजयन्त, पश्चिम दिशा का जयन्त और उत्तर दिशा का अपराजित—ऐसे नाम हैं। च्यारि कोट व पांच वेदीन के, छत्तीस द्वार, च्यारों दिशा सम्बन्धी हैं। तामैं धूलिशाल कोट के च्यारि दरवाजे तो स्वर्णमयी हैं। बीचि के दोय कोट ४ वेदी इन छः के २४ दरवाजे, रूपामयी हैं। चौथा स्फटिक मणि का कोट अरु आभ्यन्तर की वेदी के द्वार आठ, सो पन्ना समान हरे हैं। इन सर्व छत्तीस ही दरवाजेन के आभ्यन्तर-बाह्य दोऊ तरफ, मङ्गल-द्रव्य और नवनिधि के समूह हैं। तहां एक द्वार के, दोय पार्श्व हैं सो ही बाह्य-आभ्यन्तर करि, ४ पार्श्व भए सो एक-एक पार्श्व के विषैं, आठ-आठ मङ्गल द्रव्य हैं सो एक-एक मङ्गल द्रव्य, १०८ होय हैं। जैसे—छत्र १०८, चमर १०८, ऐसे ही सर्व जानना। नौ निधि, नव जाति की हैं सो एक-एक जाति की निधि, एक सौ आठ-एक सौ आठ हो हैं ऐसी जानना। सो एक-एक पार्श्व विषैं, एती रचना जाननी धूप-घट हैं। तिनमें सुगन्ध-द्रव्य, देवादि खेवैं हैं। तिनमें महासुगन्ध प्रगट होय रही है और सर्व द्वारन पै, रत्नमयी तोरण हैं। ते मोती-माला कल्प-वृक्षन के फूलन की माला, रत्न घण्टा इत्यादिक रचना सहित हैं। सो तोरण द्वार, कोटन तैं ऊँचे जानना। तोरण तैं, कोटन के दरवाजे ऊँचे हैं। समवशरण के एक तरफ के नौ द्वार हैं। तहां धूलिशाल तैं लगाय, तीन दरवाजेन पै तो, ज्योतिषी द्वारपाल हैं और दोय द्वारन के ऊपर, यक्ष जाति के व्यन्तर देव द्वारपाल हैं। अगले दोय द्वारन पै द्वारपाल, नागकुमार-भवनवासी देव है और दोय द्वारन के ऊपर द्वारपाल, कल्पवासी देव हैं।

ऐसे च्यारों दिशा विषैं च्यारि जाति के देव, द्वारपाल हैं सो सर्व महाभक्तिमान भये, हाथनमैं असि लिये हैं। केई स्वर्ण की छड़ी लिये हैं। केई गुर्ज लिये हैं। केई दण्ड लिये खड़े हैं। ऐसे दरवाजेन का स्वरूप कह्या। अब प्रथम भूमि की गली विषैं, मानस्तम्भ है। ताका स्वरूप कहिये है—सो प्रथम गली के मध्य विषैं च्यारि-च्यारि द्वार सहित तीन कोट हैं। ते कोटन के द्वार, अनेक घण्टा, ध्वजा, मालान करि शोभनीय हैं। तहां प्रथम—दूसरे कोट और दूसरे-तीसरे कोट के बीचि विषैं वन हैं। सो वन, अनेक शुभ वृक्षन करि शोभायमान हैं। तहां कोयल, मयूर आदि अनेक पक्षीन की ध्वनि होय रही है। तिस वन विषैं लोकपाल देवन के नगर हैं। तहां प्रथम वन की च्यारों दिशा विषैं, एक दिशा में इन्द्र-लोकपाल का भवन है। दूसरी तरफ, यम नामा लोकपाल का नगर है। तीसरी तरफ वरुण नामा लोकपाल का नगर है। चौथी तरफ कुवेर नामा लोकपाल का नगर है। ऐसे प्रथम वन के अन्तराल का कथन किया और दूसरे-तीसरे कोट के दूसरे अन्तराल में एक तरफ अग्नि जाति के लोकपालन का नगर है। एक तरफ नैऋत्य जाति के देवन का नगर है। एक तरफ पवनकुमार देवन का नगर है। एक तरफ ईशान जाति के देवन का नगर है। ऐसे ये तीन कोठन के दोय अन्तरालन के नगर कहे। तीसरे कोट के आभ्यन्तर में तीन कटनीदार ऊपरि-ऊपरि तीन पीठि हैं। सो प्रथम पीठि तो पन्ना समान हरा है। तापै दूसरा पीठि स्वर्णमयी है। तापै तीसरा पीठि अनेक रत्नमयी है। तिनकी ऊँचाई वृषभदेव के हाथ तैं आठ धनुष तो प्रथम पीठि की है। ऊपर की दोय पीठि च्यारि-च्यारि धनुष की हैं। तीर्थङ्करन के हीन-क्रम की हैं। अब इन पीठिन की चौड़ाई कहिये है—सो नीचले दोय पीठिन की चौड़ाई तौ अन्य ग्रन्थ तैं जानना। ऊपर के तीसरे पीठि की चौड़ाई वृषभ के २००० धनुष की है। तीर्थङ्करन के हीन-क्रम की हैं। तहां तीसरे पीठि में मानस्तम्भ है सो मानस्तम्भ नीचे सैं तो चौकोर और ऊपर तैं गोल है। तहां नीचे तौ वज्रमयी है मध्य में स्फटिकमयी और ऊपर पन्ना समान हरा है। ताकी दोय हजार धारा हैं। जैसे—स्तम्भ के पहलू होंय तैसी धारा हैं। सो मानस्तम्भ घण्टा मोतीमाला कल्पवृक्षन के फूलन की माला ध्वजा इन आदि अनेक रचना सहित शोभा कौं धरैं है। तिस मानस्तम्भ के ऊपरि भाग में च्यारि दिशाओं में च्यारि अर्हन्त बिम्ब हैं। सो अष्ट प्रातिहार्यन करि सहित हैं। अशोक-वृक्ष, पुष्प-वर्षा, दिव्य-ध्वनि, चमर, सिंहासन, भामण्डल, देवन के किये दुन्दुभी शब्द और छत्र—ये अष्ट

प्रातिहार्य हैं। तहाँ तिनम...

प्रातिहार्य हैं। तहां दिव्य-ध्वनि की तो आभासा है। मानूं अब ही दिव्य-ध्वनि खिरगी और सर्व प्रातिहार्य पाइये है। तिनके दर्शन किये पाप नाश होय है। इस मानस्तम्भ की प्रभा आकाश विषैं योजन पर्यन्त उद्योत करै है। तिसके देखते आश्चर्य उपजै है। ताके अतिशय करि इन्द्रादिक देवन का मान नहीं रहै। सर्व का मान जाय। सर्व नमस्कार करैं हैं। ऐसी महिमा धरै है। तातैं याका नाम मानस्तम्भ है। ऐसे सामान्य मानस्तम्भ का स्वरूप कह्या। ऐसे ही च्यारों दिशान के मानस्तम्भ का स्वरूप जानना। तिन मानस्तम्भ के कोट मैं च्यारों दिशा में च्यारि-च्यारि बावड़ी हैं। तहां पूर्व दिशा के मानस्तम्भ सम्बन्धी बावड़ीन के नाम—नन्दा, नन्दोत्तरा, नन्दवती और नन्दघोषा। दक्षिण के मानस्तम्भ सम्बन्धी बावड़ीन के नाम—विजया, वैजयन्ती, जयन्ती और अपराजिता। पश्चिम दिशा सम्बन्धी मानस्तम्भ की बावड़ीन के नाम—अशोक, सुप्रतिबुद्धा, कुमुदा और पुण्डरीकणी। आगे उत्तर दिशा सम्बन्धी मानस्तम्भ की बावड़ीन के नाम—नन्दा, महानन्दा, सुप्रबुद्धा और प्रभङ्करी। ऐसे च्यारि दिशा सम्बन्धी च्यारि मानस्तम्भ की सोलह बावड़ी जानना। इन एक-एक बावड़ी के बाह्य मुख पर दोय-दोय कुण्ड हैं तहां के जल तैं भव्य जीव पाद प्रक्षालन करैं हैं। बावड़ी जल तैं, प्रतिमाजी का अभिषेक होय है। ये सर्व बावड़ी हैं, सो स्वर्ण-रत्नमयी हैं। रत्नमयी पगथेन (पैंड़ीन) करि सहित, चौकोर हैं। निर्मल जल करि भरी, कमलन करि शोभायमान हैं। ऐसे मानस्तम्भ का सामान्य स्वरूप कह्या। आगे नाट्यशाला का संक्षेप स्वरूप कहिये है—तहां प्रथम गली के दोऊ पार्श्वन की, दोय नाट्यशाला हैं। सो तीन खण्ड की हैं। तहां एक-एक नाट्यशाला विषैं, ३२ अखाड़े हैं। एक-एक अखाड़े में ३२-३२ भवनवासिनी देवी नृत्य करैं हैं। एक-एक नृत्यशाला के दोऊ पार्श्वन विषैं, दोय-दोय धूप घड़े हैं और ये नृत्यशाला, रत्नमयी अनेक शोभा सहित हैं। ऐसी ही रचना सहित, चौथी गली विषैं, नृत्यशाला हैं। विशेष एता है। जो यहां कल्पवासिनी देवियां, नृत्य करैं। ऐसे ही छट्ठी गली विषैं, नाट्यशाला हैं सो पांच खण्ड की हैं। यहां ज्योतिषी जाति की देवांगना नृत्य करैं हैं। ऐसे नाट्यशाला कहीं। सो यहां अपने-अपने नियोग प्रमाण, भक्ति की भरी देवी, नृत्य करि, अपना भव सफल करैं हैं। आगे रत्न-स्तूप का स्वरूप कहिये है—तहां सप्तवीं गली विषैं एक-एक दिशा विषैं, नौ-नौ रत्न-स्तूप हैं। सो ये रत्न राशि समान, उत्तुङ्ग शिखर कों धरैं हैं। तिनके बीच में १०० तोरण हैं। तिन स्तूपन के अग्रभाग पर,

अर्हन्त प्रतिमा विराजमान हैं। सो तहां अष्ट-अष्ट मङ्गल द्रव्य व प्रातिहार्यन सहित हैं। छत्र, चमर, सिंहासनादि अनेक अतिशय पाइये हैं। ऐसे स्तूप का संक्षेप कह्या। या प्रकार इन पृथ्वीन की रचना कही। पञ्चम वेदी के आभ्यन्तर-मध्य विषैं तीन पीठि हैं। सो ऊपर-ऊपर गोल हैं। सो प्रथम पीठि, आठ धनुष ऊँचा है। सो वैडूर्य रत्नमयी, हरा जानना और दूसरा पीठि स्वर्णमयी, ४ धनुष ऊँचा है। तीसरा पीठि, अनेक रत्नमयी, च्यारि धनुष ऊँचा हैं। तहां प्रथम पीठि की, सोलह पगथ्यां है। दोय पीठि की ८-८ पगथली हैं। तिन पीठि की चौड़ाई—वृषभ देव के समय, प्रथम पीठि दोय कोस चौड़ाई सहित है और जिनराज के हीनक्रम है। प्रथम पीठि विषैं च्यारों दिशा में च्यारि यक्षदेव, मस्तक पै धर्मचक्र धरैं, दोय हस्त जोड़े, विनय तैं खड़े हैं। ता धर्मचक्र के २००० आरा हैं। पहिआ (चक्र) के आकार, गोल है। ताके तेज के आगे, अनेक सूर्य, मन्द भासैं हैं। तहां प्रथम पीठि पै, अष्ट मङ्गलद्रव्य हैं और गणधरदेव, इन्द्र, चक्री आदि भक्तजन हैं, सो इस प्रथम पीठि पै चढ़ि, जिनदेव की पूजा-भक्ति करें हैं। आगे नहीं चढ़ैं। पूजा करि, पीछे पायन, पगथेन की राह उतरैं हैं। सो अपनी सभा में आय तिष्ठैं हैं। दूसरे पीठि में आठ ध्वजा हैं। तिन ध्वजान में चक्र, हस्ती, सिंह, माला, वृषभ, आकाश, गरुड़ और कमल इनके आकार हैं अरु यहां भी मङ्गल-द्रव्यादि अनेक रचना है और तीसरे पीठि पै गन्धकुटी है। सो चौकार है। सो गन्धकुटी वृषभदेव के समय की ६०० धनुष चौड़ी है। इतनी ही ऊँची व लम्बी है और जिनके हीनक्रम की है। सो गन्धकुटी अनेक मोती-माला कल्पवृक्षन के फूलन की माला रत्नमाला अनेक जाति की ध्वजा सुगन्ध-द्रव्यादि सहित शोभायमान है। तातैं याका नाम गन्धकुटी है। ताके मध्य, सिंहासन है। सो स्फटिक मणिमयी, निर्मल है। अनेक रत्न जड़ित, शो[illegible] है। अनेक घण्टान करि शोभायमान है। ताके च्यारि पायेन की जायगा, च्यारि रत्नमयी सिंहन के आकार हैं। सो बैठे सिंहाकार हैं सो मानूं प्रत्यक्ष जीवित ही हैं। तथा मानो भगवान् की भक्ति करने कौं श्रावक-व्रत के धारी, सौम्य भावना सहित, धर्म-श्रवण कौं आये हैं। ऐसे सिंह बैठे हैं। तातैं याकौं सिंहासन नाम दिया है। ता सिंहासन के मध्य, कमल है। ता कमल पर, अन्तरिक्ष भगवान् विराजमान हैं। सो कमल, हजार पाखुड़ी का लाल वर्ण सहित है। ताकी कर्णिका पै, भगवान् विराजे हैं। तिनकूं बारम्बार हमारा नमस्कार होऊ। अब इस ही समवशरण के कोट, वेदी आदि रचना की ऊँचाई

का प्रमाण कहिये है—सो समवशरण की पांच वेदी, च्यारि कोट और गलीन की वेदी। सो इनकी ऊँचाई तौ अपने तीर्थङ्कर के शरीर की ऊँचाई तैं चौगुणी है और क्रीड़ा-मन्दिर तथा जिन-मन्दिर तथा कोट-वेदी के द्वार के रतन-स्तूप, मानस्तम्भ, ध्वजादण्ड, क्रीड़ा-पर्वत, नृत्यशाला, चैत्यवृक्ष, कल्पवृक्ष, सिद्धार्थवृक्ष, अशोकवृक्ष तथा बारह सभा, श्रीमण्डप, एते स्थान अपने-अपने तीर्थङ्करन के शरीर की ऊँचाई तैं, बारह गुणे ऊँचे हैं। समोवशरण का प्रमाण-वृषभदेव का बारह योजन प्रमाण है। औरन के यथायोग्य घटता है और जैसे—अवसर्पिणी के जिनों का समोवशरण-प्रमाण, घटता कह्या। तैसे ही उत्सर्पिणी के जिनों का समोवशरण-प्रमाण बधता जानना और विदेह क्षेत्रन में समोवशरण का प्रमाण, वृषभ देव के समान, सदैव सर्व जिन का जानना। ऐसे समोवशरण का कथन किया। सो त्रैलोक्य प्रज्ञप्ति, धर्म संग्रह, समोवशरण स्तोत्र, आदिपुराण इत्यादिक ग्रन्थों के अनुसार वर्णन किया। कोई आचार्य करि सामान्य-विशेष रचना का कथन होय, सो केवलज्ञान-गम्य है। ऐसे सामान्य समोवशरण की रचना कही। ऐसे समोवशरण विषैं श्रीजिनेन्द्र विराजैं हैं। सो अष्ट प्रातिहार्य करि मण्डित हैं सो तिन प्राति-हार्यन का विशेष कहिये है। सो तहां गन्धकुटी के मध्य जाका मूल अरु चौगिरद बड़े विस्तार धरैं, नाना प्रकार रत्नमयी शाखान व रत्नमयी फल-फूल पत्र सहित, अशोक वृक्ष है। ताके देखे अनेक जाति का शोक जाता रहै है। तातैं याका नाम अशोक वृक्ष है।१। देवन करि वर्षाई, सर्व समोवशरण में अनेक वर्णमयी महासुगन्ध सहित कल्पवृक्षन के फूलन की वर्षा, सो अद्भुत महिमाकारी मानौं ज्योतिषी देवन के विमान ही आकाश तैं भगवान् के दर्शनकूं आये हैं। ऐसी प्रभा सहित फूलन की वर्षा होनो सो पुष्पवृष्टि प्रातिहार्य है। २। आकाश विषैं देवनि करि वजाये। १२ करोड़ जाति के अनेक सुन्दर वादित्रन के शब्द, सो दुन्दुभी वादित्र हैं। उसी का नाम दुन्दुभी प्रातिहार्य है। ३। जैसा जिनदेव के शरीर का वर्ण, ता समान शरीर की चौगिरद, गोलाकार, शरीर की प्रभा का मण्डल सो प्रभामण्डल है। तामें भव्य जीव अपने-अपने अगले-पिछले भव देखैं हैं। उसी का नाम प्रभा-मण्डल है। ४। तथा अनेक रत्नमयी सिंहासन शोभै है। तापै जिनदेव विराजैं। सो सिंहासन प्रातिहार्य है।५। एक दिन रात्रि विषैं ४ बार छः-छः घड़ी पर्यन्त, भगवान् की वाणी खिरै। सो दिव्य-ध्वनि है। सो जैसे मेघ गर्जे तैसे शब्द करती ओंठ नाहीं हिलैं, तालवा नाहीं हिलैं, सर्व शरीर तैं उतपन्न भई, अक्षर रहित, भगवान् की वाणी खिरै

ताके निमित्त पाय जो जीव जिस भाषा करि समझैं, जाका जैसा अभिप्राय होय तथा जाकूं जैसा उपदेश योग्य होय तिस जीव के श्रोत्र-इन्द्रिय द्वार तिष्ठै पुद्गलस्कन्ध, तिसही अर्थ कूं लिये तैसे ही अक्षर रूप होय, परिणमैं हैं। तिस करि सर्व जीव, जुदा-जुदा उपदेश धारण करैं हैं। ऐसे अतिशय सहित भगवान् की वाणी का होना सो दिव्यध्वनि प्रातिहार्य है।६। तीन रत्नमयी छत्र, भगवान् के मस्तकपै फिरैं। सो छत्र प्रातिहार्य है। ७। देवन करि ढोरे गये ६४ रत्नमयी चमर गंगाधारा समान उज्ज्वल सो चमर प्रातिहार्य सहित भगवान् समोवशरण में विराजैं हैं।८। भगवान के है तो एक मुख, परन्तु च्यारों दिशा विषैं तिष्ठते जीव तिनकूं च्यारों ही तरफ मुख दीखै च्यारों ही दिशा के जीव ऐसा जानैं, जो भगवान् का मुख हमारे सन्मुख है तथा उन्हें भगवान् के च्यारि मुख दीखैं हैं। भगवान् की मुद्रा, बिना यत्न ही नासाग्र-दृष्टि धरैं, ध्यान रूप समता-रसमयी होय है। तातैं भगवान् का दर्शन करनहारे भव्यन की, दर्शन करते ही, ध्यान मुद्रा का स्मरण होय, शान्त दशा होय है। तातैं वीतराग-भाव बधै है सो मुद्रा अतिशय सहित है। कदाचित् शान्तमुद्रा नहीं होती तो भक्तन का भला नहीं होता। तातैं पर-जीवन का भला करनहारी, विश्वास उपजावनहारी, ध्यान रूप, पद्मासन, कायोत्सर्ग मुद्रा हो है सो ध्यान मुद्रा के धारी भगवान् तिनकी बाह्य संपदा तो समोवशरण है। आभ्यन्तर संपदा अनन्त-चतुष्टयादि अनन्त गुण हैं। ऐसे भगवान् कूं हमारा नमस्कार होऊ और जो भव्य भगवान् के दर्शनकूं, समोवशरण में जांय हैं, सो देव-विद्याधर तौ स्वेच्छा से जांय हैं। भूमि-गोचरी मनुष्य तथा तिर्यंच, पगथेन की राह चढ़ि करि जांय हैं सो केई जीव तौ सीधे ही पगथेन चढ़ि दर्शनकौं चले जांय हैं। केई जीव पगथेन चढ़ि कैं, पीछे समभूमि पै जाय कैं, समोवशरण की गली की राह होय, अनेक रचना देखते, दर्शनकौं जांय हैं सो जे देव, विद्याधर, चक्री आदि भव्य हैं। सो प्रथम पीठि पर्यंत जांय हैं अरु दर्शन करि, अपने कोठेमैं जाय तिष्ठैं हैं। पीछे केई जीव बाहिर आय, जिन-गुण-गानादि करैं हैं सो समोवशरण विषैं गये, ऐसा अतिशय होय है कि अन्धे तौ नेत्र सूं देखैं, बहरे सुनैं, रोगी निरोग होंय। अनेक दुख सहित जीव दुख तजि सुखी होय हैं समोवशरण में गये अनेक आरति, दुख, शोक, चिन्ता, भय दूर होंय हैं। तहां सर्व प्रकार सुखी होंय हैं। परस्पर जीवनकैं वैर-भाव नहीं रहै है। तहां सिंह-गाय-मोर-सर्प, मूसा-मार्जार, कुत्ता-बिल्ली इत्यादिक जति-विरोधी जीव, वैर-भाव तजि मैत्री-भाव करैं हैं। तहां स्थान तो संख्यात अंगुल प्रमाण है। परन्तु तहां

जीव असंख्यात आवैं, तौ भी भीड़ नहीं होय। तहां क्षुधा, तृषा, नहीं लागै। राग-द्वेष नहीं होय। क्रोध मान माया लोभ नहीं उपजैं। इन आदिक समौवशरणमें अनेक अतिशय होंय हैं। और समोवशरणके बाह्य, २०० योजन पर्यंत, दुर्भिक्ष, ईति, भीति नहीं होय। या प्रकार भगवान्‌का अतिशय होय है। इन्द्रकी आज्ञा तैं धनपति देव, समोवशरण रचै है। ऐसे समोवशरणमें विराजमान श्रीभगवान् तिनका दर्शन जिनकूं प्रत्यत्त होय ते भव्य धन्य हैं। हम पुण्य-सम्पदा रहित, प्रत्यक्ष दर्शनकों असमर्थ हैं। तातैं मन, वच, तन, करि, जिनदेवकों परोक्ष नमस्कार करैं। सो वे भगवान्, हमकूं इस ग्रन्थके पूरण होतैं अन्त-मङ्गल विषैं, सहाय होऊ। ऐसे समोवशरण वर्णन किया। आगे भगवान्‌के विहार कर्मका स्वरूप कहिये है। तहां समोवशरण विषैं विराजमान भगवान्‌के विहारका जब समय होय, तब इन्द्र महाराज अवधि तैं जानिकैं, लौकिक समय साधवेकूं, ऐसी विनति करैं हैं। हे भगवान्! यह विहार-समय है, सो विहार करि अनेक भव्य-जीवनकूं धर्मोपदेश देयकें, उनको सुमार्ग बताय तिनका भला कीजिये। तब देवेन्द्रका प्रश्न पाय, भगवान्‌का तौ विहार-कर्म होय। अरु पिछली समोवशरण-रचना विघटि जाय सो भगवान् जिस मार्ग विषैं विहार करैं, तिस मार्ग विषैं, दोऊ तरफ नाना प्रकार षट् ऋतुके फल-फूल सहित, अनेक वृक्षनकी सघन पंक्ति, होय जाय हैं। दोऊ तरफ, चांवलनके खेत, महा रमणीक, हरित वर्ण होय जांय हैं नदी, बावड़ी, महल पंक्ति, पर्वतनकी शोभा, मनोहर होय जाय है। तिस मार्गकी सर्व भूमि, दर्पण समान निर्मल होय जाय है। तिसके दोऊ तरफ चांवलनके फूले वनकी पंक्ति, अरु तिन चांवलनके निकट दोऊ तरफ निर्मल जलकी धारा धरैं, नदी समान नहर, चल्या करै है। और तिस मार्ग पै, आकाश तैं मेघकुमार जातिके देव, सुगंधित-जलके कण, मोती समान बारीका बर्षावते जांय हैं। और पवनकुमार जातिके देव, मन्द-सुगंध पवन, चलावते जांय हैं। एक योजन पर्यन्त, सर्व भूमि, कंटक रहित करते जांय हैं। तिस मार्ग विषैं, भगवान् तौ समोवशरणकी ऊंचाई प्रमाण आकाशमें गमन करैं, तिनके पद-कमलनके नीचे, २५-२५ कमलके फूलनिकी पंक्ति, २५ पंक्ति देव रचि देंय। सो २२५ कमलनका समुदाय, एक जायगै झूमका रूप रहै। ताके मध्यके कमल पै, च्यारि अंगुलके अन्तर पै पांव धरते भगवान् आकाश विषैं मनुष्यकी नांई डग भरते विहार करैं। यहां प्रश्न-जो भगवान् कैं तो इच्छा नाहीं। सो इच्छा बिना डग कैसे भरी जाय? ताका

समाधान-जो भगवान् कैं, च्यारि अघातिया कर्म बैठे हैं। तिनके कारण पाय, वाणी खिरना, उठना, बैठना, चलना, डग भरना आदि क्रिया संभवै है। यामें इच्छा-बिना क्रिया होय है, यातैं दोष नाहीं। ऐसा जानना। ऐसे तौ भगवान् का विहार होय। मुनि आर्यिका, श्रावक श्राविका, च्यारि-प्रकार संघका विहार, भूमि विषैं होय है। कैसी हैं भूमि, सौ बीथी (मार्ग) रूप है सो बीथीके दोऊ तरफ तो कोट हैं। ताके मध्य, एक योजन लम्बी, आध योजन चौड़ी रास्ता समान, देवन करि रची हुई, महा शोभायमान, रमणीय, निर्मल स्थान रूप गली है सो देव, विद्याधर, चारण-मुनि, और सामान्य केवली तो आकाशमें गमन करैं हैं। सो नहीं तो भगवान् तैं अति नजदीक, नहीं अति दूर, यथा-योग्य स्थान पै गमन करै हैं। सो इन्द्र हैं ते तौ भगवान्के नजदीक, भक्ति सहित चले जांय हैं। और सामान्य, चार प्रकारके देव हैं। सो दूर चले जांय हैं। सो केई देव तौ, चमर ढोरते जांय हैं। केई देव जय-जय शब्द करते जांय हैं। केई देव, चोबदारकी नांई, हाथमें रत्न-छड़ी लिये, देवनकूं चलै-चलो, चले-चलो, कहते जांय हैं। देवोंके समूहकौं विनय तैं, सिलसिले तैं लगावते हैं। इत उत करते जांय हैं। और केई देव, भगवान्की स्तुति करते जांय हैं। केई देव वन्दना नमस्कार करते जांय हैं। केई हर्षके भरे कौतूहल करते जांय हैं। और ऐसे हो मनुष्य तिर्यंच, भूमि विषैं, हर्षते चलै जांय है। केई भव्य, भगवान् की तरफ देखते जाय हैं। इत्यादिक विहार समय, अनेक शुभ कार्य होंय हैं। सो सर्व व्याख्यान, विशेष ज्ञानीके गम्य है। हमारी शक्ति सर्व कथा कहनेकी नाहीं। ऐसे विहार-कर्मका कथन किया। सो आगूं भगवान् जहां जाय विराजैंगे, तहां इन्द्रादिक देव, समोवशरणकी रचना पूर्वोक्त रचैं हैं। ता विषैं, भगवान् [illegible]हार करि, जाय विराजैं हैं। तिन भगवान्कूं, हमारा नमस्कार होऊ। ये जिनेन्द्र देव, इस ग्रन्थके अन्त-मङ्गलकूं करहु।

इति श्री सुदृष्टि तरङ्गिणी नाम ग्रन्थ के मध्य में अन्त-मङ्गल निमित्त अरहंतदेवकूं नमस्कार पूर्वक समवशरण कथन, विहार-कर्म कथन करनेवाला चालीसवां पर्व सम्पूर्ण भया ॥ ४० ॥

आगे और भी अन्त-मंगलके निमित्त, भगवानके महा भक्त, स्तोत्रनके कर्त्ता आचार्य, तिन कूं नमस्कार करिये है। तहां प्रथम श्री वादिराजनाम आचार्य, जिन-धर्मके उद्योत करवेकूं सूर्य समान महा तेजस्वी, एकीभाव स्तोत्रके कर्त्ता, तिन कूं नमस्कार होऊ। वादिराज मुनिने, जा कारण पाय एकीभाव स्तोत्र किया, सो

कहिये है—इनने गृहस्थ अवस्था में अनेक राज्य-भोगनके भोक्ता होय, कामदेव-समान रूप धरैं, संसार-भोगन तैं उदास होय, राज्य भार तजि, यति-व्रत धार्‍या। सो महावीतराग पद के धारी कौं, पूर्व कर्म उदय, शरीर में कुष्ट रोग प्रकट्या। सो तन, जगह-जगह तैं फूट निकस्या। महादुर्गन्ध उपजी। सो यह वीतरागी, तन तैं निष्प्रेम है। आगे ही सूं शरीर कूं पुद्गल-सप्तधातु का पिण्ड जानैं आतमा-रस रमता योगीश्वर, शरीर का उपचार कछु नहीं वांछता भया। सो विहार करते, एक नगर के वन में तिष्ठै। सो जब बस्ती में आहार कूं जांय, सो नगर में महाधर्मात्मा श्रावक, निर्विचिकित्सा गुण के धारी, यति कौं नवधा-भक्ति सहित, हर्ष सौं दान देय, अपना भव सफल मानैं। ऐसे वन में रहते, कई दिन भये। सो राजा का मन्त्री, एक सेठ था। जो महाधर्मात्मा। प्रभात उठै वन में जाय, रोज वादिराज मुनि का दर्शन करि, धर्म सुनि, तब पीछे राजा के दरवार में जाय। सो कोऊ पापी, इस सेठ के द्वेषी पुरुष ने, जाय राजा पै कही—भो राजन्! इस सेठ का गुरु, कोढ़ी है। सो यह प्रथम ही उस कोढ़ी के दर्शन कूं जाय, ताके मुख तैं धर्म सुनि, पीछे आपकी सेवा में आवै है। याका गुरु महाकोढ़ी है। ताकी दुर्गन्ध आगे, कोई नहीं ठहरै। सो ये बात उचित नाहीं। तब राजा कही—यह बात झूठ है। ये सेठ, हमारा ऐसा अविनय नहीं करै। तब चुगल ने कही—यामें असत्य होय, तौ जो गुनहगार की गति होय, सो मेरी करौ। तब राजा ने, दूसरे दिन सेठ सूं कही—हे सेठ! क्या तेरा गुरु कोढ़ी है? तब सेठ इसका उत्तर अविनय वचन जानि, राजासूं कही—भो नाथ! कहनेहारे ने असत्य कही है। गुरु शुद्ध हैं। तब राजानैं कही—जो शुद्ध हैं तो हम प्रभात दर्शन कौं चालेंगे। ऐसे राजा के वचन सुनि, सेठ चिन्ता कूं प्राप्त भया। जो मैं राजा पै असत्य बोल्या, सो तौ विनय तैं वोल्या। मेरे मुख तैं मैं, गुरु कौं कुष्ट है, ऐसा अयोग्य-वचन कैसे कहौं? ऐसी जानि असत्य कहा। अरु प्रभात, राजा दर्शनकूं जाय, गुरु का शरीर प्रत्यक्ष रोग सहित देखेगा, तौ यह पापिष्ठ गुरुकौं उपद्रव करैगा। अरु मेरा मरण भया ही है। परन्तु गुरु कौं उपसर्ग नहीं होय तौ भला है इत्यादिक प्रकार सेठ महाचिन्तावान होय पीछे वन में गुरु के पास गया। सो मुनीश्वर ज्ञान-भण्डार कही—भो वत्स! तेरा मुख चिन्तावान्-उदास क्यों? अरु तूं प्रभात आया था सो अवार आवने का कारण कहा? तब सेठ ने गुरु के पास राजा के आवने की सर्व कथा कही—अरु विनती करी कि यह राजा महाक्रूर स्वभावी है। सो मोकूं मारेगा तो मारौ। परन्तु

आप यहाँ तैं विहार करौ तौ भला है। नहीं तो उपसर्ग करेगा। मैं महापापी ताके निमित्त पाय उपद्रव हो है। इत्यादिक सेठ कूं महाभयावन्त भया, अपनी आलोचना कूं लिए वचन बोलता देख, मुनीश्वर करुणा करि, धर्म की प्रभावना करने कूं बोलते भए। भो वत्स ! भो आर्य ! भय मत करौ। राजा दर्शन कूं आवै, तौ आवने देवो। ऐसे गुरु के वचन सुनि, सेठ मन में हर्ष पावता भया। जो जगत् का नाथ, मेरे गुरु ने, मोहि अभयदान दिया। सो अब भय नाहीं। तब भी सेठ ने विचारी, जो गुरु के तन मैं तो, यह प्रत्यक्ष रोग है अरु गुरु ने अभयदान दिया। सो यह वचन गुरु का, आश्चर्य उपजावै है तथा सेठ विचारै है। यह वीतराग गुरु की, अखण्ड आज्ञा है। सो मेरु चलायमान होय तो होय, परन्तु गुरु का वचन अन्यथा नाहीं होय। तातैं, गुरु कही—भय मति करौ, सो अब मोहि, भय नाहीं। ऐसा दृढ़ निश्चय करि, सेठ भी अपने मन्दिर गया। तब यतीश्वर ने भगवान की स्तुति करी। चौबीस काव्य में, स्तोत्र किया। सो मन-वचन-काय एकत्व शुभ रूप करि, जिनदेव के गुणानुवाद गाये। सो भक्ति के भाव तैं, अन्त काव्य के पूरण होते, यति के तन का सर्व रोग, नाश भया। सूर्य के तेज समान, तन की दीप्ति प्रगट भई। सो यति ने बांयें हाथ की छोटी अंगुली की एक नौंक, राजा के प्रतीति के अर्थ, रोग सहित रहने दई। बाकी सर्व-तन, कञ्चन वर्ण भया। जब प्रभात, राजा दर्शन निमित्त, चतुरंग सेना मिलाय, महादल सहित आया अरु यति के तन का रोग, सब नगर जानै था सो इस कौतुक कूं सुनि, सब नगर के लोग भी, कौतुक-हेतु आये। सो वन में मनुष्य का समूह फैल गया। राजा तहां आया, जहां यतीश्वर विराजैं। सो बाहन तैं उतरि, मुनि के दर्शन कूं आगे गया। सो शरद ऋतु की पूर्णमासी के चन्द्रमा समान निर्मल कान्ति धारैं, समता समुद्र, वीतरागी योगीश्वरकूं देख, मुनि के तन की दीप्ति कौं देख, विस्मयकूं प्राप्त भया। दूर तैं नमस्कार किया। राजा ने मुनि की अनेक स्तुति करी अरु जानैं, राजा पै चुगली करी थी, तापै राजा कोप करि, ताकौं दण्ड देवे का विचार करता भया। तब यतीन्द्र ने, राजा के मन का अभिप्राय जानि, आज्ञा करी। भो नृपेन्द्र ! कोप मति करौ। वानै असत्य नहीं कही थी। हमारा तन कुष्ट-रोग सहित था। परन्तु या सेठ ने, मेरे रोग का नाम, अविनय-भय तैं नहीं लिया। सो याके भय निवारण कूं, प्रभु की स्तुति के प्रसाद तैं, शरीर शुद्ध भया। बाकी यह शरीर, महाअशुचि, सप्त धातु का पिण्ड ग्लानि का स्थान है। याके विषैं, यति निष्प्रिय है। परन्तु सेठ के

धर्मानुराग सूं, यह कार्य किया है। अपने बांये-करकी अंगुली की नौंक, रोग सहित राखी थी, सो राजा कों वताई। कही, भो नरेन्द्र! यह अँगुलि समान, यह सर्व तन था। सो धर्म के प्रसाद करि, प्रभुकी भक्ति के प्रसाद करि, यह तन शुद्ध भया। तातैं तूं कोप मति करै। वानै सत्यही कही थी। ऐसे वचन मुनिके सुनि, राजा अचरज कूं प्राप्त भया। मिथ्या-बुद्धि गई। अरु शुद्ध-धर्मका धारी भया। बारम्बार, सर्वज्ञ का धर्म प्रशंस्या। सर्व लोग यह अतिशय देख, मिथ्या-भाव तजि, शुद्ध-धर्मके धारक भए। और श्री वादिराज मुनीन्द्रकी स्तुति करते भये। अरु वादिराज—योगीश्वर का किया एकीभाव स्तोत्र कौं, घनै भव्य, मङ्गलके अर्थ सुनते भये, पढ़ते भये। ऐसा एकीभाव स्तोत्र, अरु इसके कर्त्ता श्री वादिराज मुनीश्वर जगत गुरु, इस ग्रन्थके अन्त में, इस ग्रन्थके कर्त्ता कूं, तथा इस ग्रन्थके पढ़नेहारेन कूं मङ्गल करौ। ऐसे वादिराज नामा आचार्य कूं नमस्कार करि, अन्त-मंगल विषैं, तिनके गुणनका स्मरण किया। आगे इस ग्रन्थके अन्त-मंगल करतैं, श्री भक्तामर-स्तोत्रके कर्ता श्री मानतुङ्गाचार्य, तिनकूं नमस्कार करिये है। कैसे हैं श्री मानतुंगाचार्य, प्रत्यक्ष जिनधर्म प्रकाशनेकूं दिनकरि सूर्य समानि हैं। अरु मिथ्या-सन्देह मयी शिखर, ताके भंजनकूं, इन्द्रवज्रके समानि हैं। प्रत्यक्ष भगवन्त देवके महाभक्त हैं। तथा कुवादोनकी अतत्त्व श्रद्धान रूपी प्रवाह रूप नदी, सो कुनय क्रूर तरंगानि सहित, सो ज्ञान रूपी जीर्ण वृक्ष तिनकौं उपाड़ती, अपनी स्वेच्छा वेग रूप बहती ऐसी तरंगिणी, ताके रोकवेकूं मानतुंग गुरु, कुलाचल-शिखर समानि हैं। ऐसे गुरुकूं नमस्कार होऊ। जिन नैं भक्तामर-स्तोत्र करि, प्रगट यश पाया। तिन तैं भक्तामर-स्तोत्र कैसे भया, सो कहिये है। तहां उज्जैन नगरी, जहां राज सिंह महा-प्रतापी, राज्य करै। ताके रत्नावली नाम स्त्री, सो महा सती, शची समान रूपवती है सो तिनकैं पुत्र नाहीं राजाकूं चिन्ता भई। तब मन्त्रीने कही। हे नाथ! धर्म-सेवन कीजे। ताके प्रसाद, सब सुख होय है। ऐसे करते, एक दिन राजा, परिवार सहित वन गया। सो एक सरोवरके तीर मुंजके वृक्ष नोचे, एक बालक देख्या। सो बालक, रानीकूं दिया और ताका नाम मुंजकुमार रखा। सो बालक अपने रूप-गुण सहित, बढता भया। पीछे केतेक दिन गये, रत्नावली रानीके गर्भ रह्या। सो नव मास पूर्ण भये, पुत्र भया। ताका नाम, सिंहलकुमार रखा। वह अनुक्रम तैं, तरुण भया। तब पिताने, सिंहलकुमारके व्याह किये सो शुभ राजों की पुत्रीं, तिनमें एक मृगावती नामा रानी सहित, कुमार

कैं दोय पुत्र-युगल भये। तिनमें बड़ेका नाम शुभचन्द्र, अरु छोटेका नाम भर्तृहरि। ये दोय-पुत्र क्रम तैं, स्याने भये। अनेक विद्या-प्रवीण भये। एकदिन राजा सिंह, संसार तैं उदास भये सो मुंजकूं राज्य, अरु सिंहलकूं युवराज पद देय, आप यति पद धारि, आतम कल्याण किया। अब राजा मुंज, राज्य करै सो एक दिन, राजा वन-क्रीड़ाकों गया था सो आवते, एक मन्दिर के द्वार, एक तेली ने कुदार नाम विद्या साधी थी। सो ताने कही—हे राजन् मोकूं विद्या सधी है सो मो समान, पृथ्वी में बली नाहीं। तब राजा ने कही—तू नीच-कुली कूं एती विद्या का बल कबहूं हो सकता नाहीं। तब तेली ने दोऊ हाथतैं जोर करि विद्या का कुदार, धरती में गाड़्या। कही जो कोई योद्धा होय, तौ काढ़ौ। तब राजा ने अपने सामन्तनकूं कही काढ़ौ सो सर्व सामन्त, बड़े-बड़े मल्ल पचि-पचि हारे, कुदार नाहीं निकस्या। तब राजा सिंहल उठ्या सो एक हाथतैं कुदार निकास्या। पीछे सिंहल ने एक हाथतैं, कुदार गाड्या अरु कही—याकौं काढ़ौ, तौ जानैं। तब तेली, विद्या-बल करि हार्‍या तथा राजाके मल्ल-सुभट पचिहारे, कुदार नाहीं निकस्या। एतेमें राजा-सिंहलके दोय पुत्र आये। अरु पितातैं कही। प्रभो! हमकौं आज्ञा करो तौ हम काढैं। तब राजा, हँस करि कही। भो पुत्र हो! यहां तिहारा काम नाहीं। तिहारी बराबरी के लड़का-बालकन में क्रीड़ा करो। तब कुमारों ने कही—हे नाथ! बिना हाथ लगाये काढ़ैं, तो आपके पुत्र जानहु। सो हठ करि, पिता तैं आज्ञा लेय, अपने मस्तक के केश लेय, कुदार में उरझाय कैं, झटक्या सो खैंच कैं कुदार निकस्या सो इनका पौरुष देख, राजा मुञ्ज ने मन्त्री सूं कही—इनकूं मारौ। इन बालकन छते, मेरा राज्य जमैं नाहीं। तब मन्त्री ने, इन कुमारनकूं कही—तुम्हारा बाबा तुमकौं मार्‍या चाहै है। तातैं तुम कोई दिन यहां सूं भागो। तब दोऊ कुमारननैं, अपने पितासूं कही—भो नाथ! हम कूं राजा मुञ्ज मार्‍या चाहै है, सो हमकौं कहा आज्ञा होय है? तब राजा सिंहल ने कही—तुम ताकौं मारौ। जो आपको हनें, तो हनताकौं आप भी हनिये। याका दोष नाहीं। यह राजनीति है। ऐसे वचन पिता के सुनि, शुभचन्द्र अरु भर्तृहरि इन दोऊ कुमारननैं कही—हे नाथ! हमारैं तो वे आपकी समान हैं सो बाबा कौं कैसे मारैं? सो संसार तैं उदास होय, विरक्त भये। अरु दोऊ भाई, तप धरते भये। सो शुभचन्द्र तो वन में जाय, धर्म धुरन्धर गुरु के पास जिन-दीक्षा धरि मुनि भये। नाना तप करि अनेक ऋद्धि पाई। छोटे भाई

भर्तृहरिने वनमें जाय तापसीके व्रत धारे सो अनेक अज्ञान तप करे। सो एक दिन वनमें भूल्या सो तृषावन्त भया नीर देखता, एक जायगा वनमें एक तापसी, पञ्चाग्नि आदि अनेक तप करै, तहां पहुंचा। सो भर्तृहरिने तिस तापसीके पास जाय, नमस्कार किया। तब तापसीने, भर्तृहरि सूं कही। तुम अपना नाम-कुल कहौ। तब भर्तृहरिने नाम-कुल कह्या सो भर्तृहरिने, याकी बड़ी सेवा करी तब तापसीने राजी होय, कलङ्की तूम्बी भर दीनी। और कही। यातैं तांबा, कञ्चन होय है। अनेक मन्त्र तन्त्र आदि चमत्कारी-विद्या दई। ऐसे बारह वर्ष तांई, भर्तृहरिजीने, तापसीकी सेवा करी। पीछे गुरुके पास तैं, सीख मांगी। पीछे भाई शुभचन्द्रजी की खबर कों चेला भेजे। सो चेलोंने, शुभचन्द्र कों गन्धमर्दन पर्वत पै, ध्यानारूढ़, नगन तन, वीतराग देखे सो भर्तृहरिके चेला, दोय दिन उपवास करि, भूख तैं भागे सो आय भर्तृहरि कूं कही। तुम्हारे भाई पै लंगोट नाहीं। भूख तैं क्षीण हैं। अरु तुम, राज भोगो हो। सो कछु भाई कौं देव। जातैं ताका दारिद्र जाय। तब भर्तृहरि ने, आधा कलङ्क का तूम्बा, भाई कों भेजा। सो शुभचन्द्रने पत्थर पै डाल दिया। तब चेलाने, भर्तृहरि सुं कही। वह भाग्यहीन है, कलङ्क डाल दिया। तब भर्तृहरिने आप, शुभचन्द्र जी पै जाय, पिता समान बड़े भाई कूं जानि, विनय तैं नमस्कार करि कलंक की तूम्बी आगे धरी। तब शुभचन्द्रजी ने कही, तूम्बीमें कहा है ? तब भर्तृहरिने कही। भो प्रभो ! तांबातैं कंचन करै, यामें ऐसा गुण है। तब शुभचन्द्रजी ने तूम्बा उठाय, शिलापर धरि पटक्या। सो भर्तृहरि कही। भो भ्रात ! यह अनेक राज्य—सम्पदा का द्रव्य, आपने डाल दिया, सो भली नहीं करी। हे भ्रात ! बारह वर्ष गुरु-की सेवा करी, तब मोकूं उन्होंने दीनी थी। इस तरह भर्तृहरि कौं खेद-खिन्न देख, शुभचन्द्रजी ने कही। भो वत्स ! राज्य तजि, वन वसे। अब भी कलंक नहीं तज्या। यह कलंक, मुनीश्वरों कूं कलंक समान है। तातें तजना योग्य है। अरु भो वत्स ! तेरे कलंक तैं, पाहन तौ कंचन नहीं भया। अरु तेरे स्वर्ण की चाह होय, तौ देख ! तब शुभचन्द्र ने, अपने पांव-नीचेकी रज लेय, एक बड़ी शिला पै डाली। सो सर्व शिला कंचनकी भई। सो भर्तृहरि यह अतिशय देख, वड़े भाईके पांयन पड़े। अनेक स्तुति करि, जिन—दीक्षा याची। तब शुभचन्द्रजी ने दीक्षा दई। अरु इनके संवोधवे कों, ज्ञानार्णव नाम ग्रन्थ बनाय, दीक्षामें दृढ़ किया। सो पीछे, दोउ भाई, जिन-दीक्षा सहित तप करते भये। अरु वहां,

उज्जैन नगरी का राज्य, राजा मुंज करै। सो एक दिन राजा मुंज, मनमें दगा विचारता भया। जो, सिंहल जोरावर है। यातैं मेरा राज्य नहीं रहेगा। तब मन्त्री कूं कही। सिंहल कूं मारौ। तब मन्त्रीने कही। दोष कहा सो कहौ। निर्दोष कौं मारे, महा-पाप है। तब एक दासी सौं मिलि, ताकौं अंधा किया। तिस चेटीने, सिंहल कों, तेल मर्दन करतें, ताके नेत्र फोड़े। तब राजा मुंज, यह सुनि दुख करता भया। जो पुत्र तौ दीक्षा ले गये, भाई अंधा भया। अब कुल नाश भया। मैंने महा-पाप किया। इत्यादि प्रकार पछताता भया सो एते, एक भोजक—याचकने आय, राजा मुंज कूं बधाई दई। कही भो राजन्! तुम्हारे भाई सिंहलके पुत्र भया। तब राजा मुंज राजी होय, सिंहलके घर आया सो द्वार पै एक श्लोक लिखा देख्या—

श्लोक—वर्षाणि पञ्च पञ्चाशत्, सप्त मासान् दिनत्रयं। भोजराजेन भोक्तव्या, सुखेन दक्षिण दिशा ॥ १ ॥

यह श्लोक देख, राजा मुंजने पण्डितन कूं बुलवाय, कही। श्लोक किसने लिख्या? तब एक पण्डितने कही। भो राजन्! इस बालकके पुण्यका माहात्म्य-होनहार, मैंने लिख्या है। ये भोजराज, दक्षिण दिशामें ५५ वर्ष ७ महीना ३ दिन राज्य करेगा। ऐसी सुनि, सर्व राजी भये। बालक अनेक विद्यानिधान, क्रम करि बड़ा भया। तब राजा मुंजने भोजपुत्रका व्याह करि, राज्य दिया सो राजा भोज, जगत्में अपने प्रताप करि, राज्य करै। इस भोजराजाके यहां, एकवररुचि नाम पण्डित रहै सो ताकी पुत्री, वर-यौग्य भई। सो पिता ने पुत्री सूं कही। तू कहै, ताहि परणाऊं। तब पुत्री ने कही। ऊंच-कुलकी कन्या, अपने आप, वर नहीं याचै। जो भाग्यमें होय, सो पावै। तथा व्यवहारनय करि, माता-पिता जाकूं परिणावैं, सो प्रमाण है। ऐसे पुत्रीके वचन सुनि, पिता महा-कोप करि, एक महा दरिद्र, मूर्ख पुरुष खोज, ताहि कन्या परिणाई। तब कन्या ने कही, पूर्व-कर्म कौं कौन मैटै? ऐसी जानि, वह समता धरती भई। पीछे वररुचि विचारी जो राजा भोज पूंछेगा, तुम्हारा दामाद कैसा पण्डित है? तो मोहि लज्जा उपजेगी। ऐसा जानि वररुचि, ता दामाद कूं बहुत पढ़ावै। परन्तु ताकौं एक अक्षर भी नहीं आवै। बहुत कालमें, आशीर्वाद वढ़ाया सो राजा भोजकी सभामें अनेक पन्डित इकट्ठे भये। तहां वररुचि-का दामाद जाय, राजा कों आशीष वचन देते अशुद्ध बोल्या। तब राजा ने कही, मूर्ख है। तब वररुचि ने अशुद्ध वचन कौं, अपनी पंडिताई करि, शुद्ध करि, राजा कों बताया। घर जाय जमाई कौं, मान-खंडनेहारे वचन कहे।

तब ये अपने कों मूर्ख जानि, कालिका देवी के मठ में, अधोमुख जाय पर‍्या। कही मोय विद्या-वर देहु, नहीं तौ मैं मरि हौं। तब सातवें दिन, देवी प्रसन्न भई। वांछित वर दिया। कही—तेरा नाम कवि-कालिदास हो और वचन-सिद्ध वर दिया सो देवी के प्रसाद तैं, अनेक विद्या-शब्द स्फुरे। ताकरि सर्व पण्डित जीते। तब सबने कही—विद्या कहां पाई ? तब यानें कही—कालिका देवी के पास पाई। तब वररुचि याके पाँयन पर‍्या। कही—मेरी कन्या धन्य है। याके वचन, सत्य हैं। अब ये कालिदास प्रगट भया। सो एक दिन राजा भोज की सभा में जाय, कालिका कूं आराधी सो सर्व सभा कालिका कौं देख, नमस्कार करि, कालिदास की प्रशंसा करती भई। ऐसे कालिदास प्रसिद्ध भया। अब एक वसुदत्त सेठ, याही उज्जैनी नगरी में रहै। सो महाधर्मात्मा, ताके मनोहर नाम पुत्र था सो एक दिन सेठ, पुत्र सहित, राजा भोज पै गया। तब राजा ने सेठ तैं पूछी। तिहारा पुत्र कहा पढ़‍्या है ? तब सेठ कही—भो नाथ ! नाममाला ग्रन्थ, अर्थ सहित पढ़‍्या। तब भोजराज कही—नाममाला का कर्त्ता कौन ? तब सेठ कही—धनञ्जय नाम महापण्डित है। तब राजा कही—धनञ्जय तैं मिलाओ। सो राजा-भोज महापण्डित, गुणीजन का दास, सो धनञ्जय कूं बुलाया। आदर सहित राजा ने भले मनुष्य भेजे। तब कालिदास बोल्या। हे राजन् ! धनञ्जय, कछू समझता नाहीं। जब धनञ्जय-कवि आया, तब राजा ने धनञ्जय कूं, ऊँचे आसन पर बैठक दई और कही—तुम्हारा नाम बड़ा। सो कौन ग्रन्थ किये ? तब धनञ्जय कही—भो राजेन्द्र ! मेरे किये ग्रन्थमैं, इन पण्डितों ने मेरा नाम लोप, अपना नाम धर‍्या है। तब भोजराज ने, पण्डितों को उलाहना दिया, कि तुम काहे के पण्डित हो। तब सर्व पण्डितों ने कही—भो राजन् ! यह धनञ्जय कब का पण्डित है। याका गुरु तौ, मानतुङ्ग मुनि है। जो महामूर्ख है। यापै विद्या, कहां तैं आई ? याका गुरु अब भी वन में है। सो आय, हम तैं वाद करै। तब धनञ्जय कही—भो पण्डित हो ! गुरु का नाम तौ, उत्तम गुण-रूप है सो वे वहीं विराजै रहैं। परन्तु तुम्हारे वाद की इच्छा होय, तो मोतैं वाद करौ। तब इनमें परस्पर वाद होता भया। सो अनेक नय, दृष्टान्त, प्रश्नोत्तर करि कालिदास आदि सर्व पण्डितों कूं राजा भोज की सभा में धनञ्जय ने जीत्या। सब वचन-बद्ध भये। तब कालिदास कोप करि बोल्या। हे राजन् ! यह महामूर्ख है। सो यातैं कहा कहा वाद करैं। याका गुरु मानतुङ्ग है। सो ताकौं बुलाइये, तातैं वाद करैंगे। तब राजा ने अपने भले मनुष्य

मानतुङ्ग नामा मुनीश्वर के ल्यायवे कौं भेजे। तिनतें मुनीश्वर सूं कही—हे नाथ! राजा भोज ने नमस्कार कह्या है अरु आपकूं बुलाये हैं। तब यति ने कही—हमारा राजगृह में प्रयोजन नाहीं। ऐसी कही और नहीं गये तब कालिदास कही—भो राजन्! वह मानतुङ्ग मान का शिखर है। महामानी है सो भली तरह नहीं आवेगा तब राजा भोज, कोप करि कही—यतिकौं, पकड़ि ल्यावो। ऐसी सुनि, राजा के सेवक गये, सो यतिकूं उठाय ल्याये राजा के पास धऱ्या सो यति मौन सहित, पञ्चपरमेष्ठी का ध्यान करते, तिष्ठते भये। तब राजा, कोप करि कही—याकौं बन्दीगृह में धरौ। तब राजा की आज्ञा पाय, किङ्करों ने यतिकौं भौंहरे में दिया सो अड़तालीस कोठों के भीतर मूदे और सब कोठों के जुदे-जुदे ताले दिये। राजा की तिनपै मुहुर करी अरु यति के पांवन में बेड़ी अरु हाथ में हथकड़ी, गले में जेल (सांकल) डाली इत्यादिक दृढ़ बन्धन किये। तापै, अनेक विश्वासी सुभट राखे। ऐसे महासंकट के स्थान में, मुनीश्वरकूं नाख्या। सो वीतरागी यति, समता सहित रहे। तहां तीन-दिन भये, तब यतीश्वर ने विचारी कि यामें जिन-धर्म की न्यूनता दिखैगी। पापीजन, धर्मी-पुरुषनकूं पीड़ेंगे। ऐसी जानि आदिनाथ स्वामी का स्तुति, महाभक्ति-भावन सहित करी। ४८ काव्य किये। तिनमें अनेक मन्त्र, अतिशय सहित गर्भित करि भक्तामर नाम दिया सो मन्त्र समान उत्तम काव्य किया। तिनमें आदिनाथ भगवान के गुण कहे। सो प्रभु की स्तुति के प्रसाद करि सर्व कोठों के ताले अकस्मात् टूटि गये। यति के तन-बन्धन झड़ गये। यति निर्बंधन होय आये। सो तिनकौं देख, सेवक डरे तब यतिकौं बहुत बंधन में दिये सो फेरि बन्धन टूटि गये। तब राजा भोज पै जाय, सेवक ने कही—भो नाथ! यति बाहर निकसि आये हैं। तीन बार बन्धन में दिये तीनों बार, बन्धन आपै-आप टूटे हैं। ऐसा आश्चर्य न देखा, न सुन्या। तब राजा भोज ने, कालिदास आदि सर्व पण्डितोंकौं कही—जो यह अतिशय यति का भया। तब सब ने कही—भो राजा! यह यति, महाजादूगर है। सो मन्त्र-तन्त्र करि निकस्या है। बन्धन तोड़े हैं। तब राजा ने दृढ़ बन्धन करि पुनः कोठरी में बन्द करि चौकी राखी। तब यति ने भक्तामर-स्तुति का पाठ किया। सो सर्व बन्धन टूटे। निर्बन्धन होय यति भोजराज की सभा में आये। तब राजा यतिकौं देख कांपता भया और कालिदासकूं बुलाय कही—यति का तेज मेरे बूते सह्या नहीं जाय है। ताका यत्न करो। तब कालिदास

कही—राजन् डरौ मति और उसने कालिका देवीकूं आराधी। जब देवी आयी। सो महाविकराल रूप बनाय ताने कही—भो कालिदास! क्यों आराधी सो कहो? एते ही में चक्रेश्वरी देवी आय यतिकौं नमस्कार किया अरु कालिकाकूं देख चक्रेश्वरी ने कही—रे महापापिनी! तैंने मूर्खन के संग करि अपना आतमा पाप-लिप्त करि पर-भव बिगाड्या। अब तौकौं स्थान भ्रष्ट करि हौं। द्वीपतैं निकास हौं। तैंने यतिकौं उपसर्ग किये। ऐसे चक्रेश्वरी के वचन कालिका सुन पाप-फलतैं कम्पायमान होय चक्रेश्वरी के पायन पड़ी। कही—भो माता! मो अपराध क्षमा करि। मोपै आज्ञा करौ, सो करौं। ऐसे नाना प्रकार चक्रेश्वरी की स्तुति करि, पीछे कालिका, मानतुङ्ग गुरु के पांयन पड़ी गुरु की अनेक विनति करती भई अरु कही—भो यति! मोकौं आज्ञा करौ, सो करूँ तब यति कही—भो देवी! पूर्व भव में पुण्य किया, ताके फल देवी भई। बड़ी शक्ति पाई। विवेक पाया। अब तू ही हिंसा की कर्त्ता भई, सो भला नाहीं। अब हिंसा तजि, दया-धर्म का सेवन करौ। ऐसी आज्ञा, गुरु नै करी तब कालिका ने मुनिकूं नमस्कार करि कही—भो प्रभो! आज तैं, मन-वचन-काय करि हिंसा का त्याग किया। आपकी आज्ञा मोकौं कल्याण के अर्थ है, सो मैंने अङ्गीकार करी। भो यतिनाथ! मो अपराध क्षमा करौ। ऐसे कालिका देवीकौं सेवा करती देख राजा भोज आय मुनि के पांयन पड़ता भया। दीन होय गद्गद् वाणी करि कहता भया। भो दयानिधान! रक्ष! रक्ष! मो अपराध क्षमा करौ। भो दयामूर्ति! मेरा प्रायश्चित्त कहो अरु भव-भ्रमण मिटै, सो उपदेश देहु। तब गुरु ने कही—भो भोजराज! आदिनाथ का धर्म सेये, कल्याण होयगा। तब राजा भोज, मानतुङ्ग मुनि पै, श्रावक के व्रत लेता भया। यह अतिशय देखकर, जे पण्डित, वाद कौं आये थे; सो मान तजि, मिथ्याभाव छांड़ि, श्रावक-व्रत धारते भये। तब कालिदास आय मानतुङ्ग मुनि के पांयन पड्या। कही—हे नाथ! मेरा अपराध क्षमा करो अरु मोहि श्रावक-व्रत देहु। तब गुरु ने दया करि कालिदासकौं श्रावक-व्रत दिये। पीछे राजा भोज ने, गुरुपै नमस्कार करि कही—भो गुरुदेव! एक सन्देह मोहि है सो कहूं हूं। भो गुरुदेव! आपके सर्व बन्धन टूटे सो मन्त्र कौन है? सो कहो। ये मन्त्र हमकौं दया करि देहु। तब गुरु कही—भक्तामर महामन्त्र अनेक विघ्न का नाशक है ताका स्मरण, पठन, ध्यान, सुखकारी है। ऐसा अतिशय देख, अनेक मिथ्या-भाव तजते

भये। सो श्री मानतुङ्ग आचार्य ने प्रथम तौ भक्तामर स्तवन राजा भोजकौं पढ़ाया। ता पीछे, सर्व जगत् के भव्य-जीव ताकौं पठन करते भये। सो भक्तामर के कर्त्ता, विघ्न के हर्त्ता, मङ्गल के कर्त्ता, श्री मानतुङ्ग गुरु मोकौं इस ग्रन्थ के पूरण होतें, अन्त-मङ्गल में सहाय करौ। ऐसे महाअतिशय के धारक, पञ्चमकाल में साधु भये। तिनकूं मैंने ग्रन्थ के अन्त-मङ्गल निमित्त स्मरण किया।

इति श्री सुदृष्टि तरङ्गिणी नाम ग्रन्थ के मध्य में अन्त-मङ्गल निमित्त, एकीभाव के कर्त्ता श्री वादिराज मुनीश्वर तिनके गुणोंका स्मरण तथा भक्तामरके कर्त्ता श्रीमानतुङ्ग नामा गुरु; तिनके गुणनका चिन्तन, तथा स्तोत्रनके कारणों का वर्णन करनेवाला इकतालीसवां पर्व सम्पूर्ण भया ॥ ४१ ॥

ऐसे इस ग्रन्थ के पूर्ण होते, अन्त-मङ्गल के निमित्त, कल्याण के अर्थ, इष्टदेव, पञ्च परम गुरु, सिद्धक्षेत्र, समोवशरण विषैं विराजते भगवान्, अकृत्रिम जिन-भवन, इन आदिक सर्व का स्मरण, ध्यान करि, तिनकूं नमस्कार किया। ताकरि हमने अपना मनुष्य-जन्म पाना, सफल मान्या। काहे तैं सो कहिये है—जो यह ग्रन्थ, सागर समान गम्भीर, नय तरङ्गन करि भरचा, नहीं दृष्टि परै है सामान्य ज्ञान में अर्थरूपी मर्यादा कहिये पार जाकी। ऐसे अगाध गुण-निधि का पार पाना, हमसे ज्ञान दरिद्रीनकूं, महादुर्लभ। सो इष्ट देव गुरु के प्रसाद, तिनकी भक्तिके अतिशय करि ग्रन्थ पूरण भया। सो यह आश्चर्य ऐसा भया जैसे कोई भुजा रहित पुरुष, अन्तके स्वयंभूरमण समुद्रकौं तिरके पार होय, लोकनकूं विस्मय उपजावै। ऐसा ये कार्य जानना। तथा कोई धन रहित दरिद्री पुरुषने व्याह रच्या। अरु बड़ी जायगा सगाईका संबंध करि, हजारों मनुष्य नेवते देय परदेश तैं वुलाये। सो इसकी क्रिया देख, जो धनवान थे; सो हाँसि करते भये। जो देखो, घर विषैं तो एक दिनकों अन्न नाहीं। अरु व्याह, ऐसा भारी रच्या है। सो कैसे बनैगा? अरु यह पुरुष भी, अपनी अज्ञान-चेष्टा देख, चिंतावान भया। मैंने अपना पुण्य-बल नाहीं विचारचा, अरु कारज दीर्घ रच्या। यह कैसे पूर्ण होयगा। ऐसे यह पुरुष चिन्ता करता रात्रिकौं तिष्ठै था। सो याके पुण्य तैं, कोई देवता आय, चिन्तामणि देय गया। सो या पुरुषने चिन्तामणिके प्रभाव तैं, प्रभात भला ब्याह किया। वांछित सबनकौं भोजनज्यौंनार देय, जगतकौं आश्चर्य उपजाय, यश पाया। तैसे ही मैं ज्ञान-धन रहित, ग्रन्थ रूपी बडी शादी रची थी। ताके पूर्ण होनेकी बड़ी चिन्ता

थी। जो यह कार्य कैसे सिद्ध होयगा ? सो कोई पूर्व-पुण्य तैं, इष्ट देवने, ज्ञान अंश मयी चिन्तामणि दिया। ताके प्रसाद करि, निर्विघ्न कार्यकी सिद्धि पाई। सो इस बातका हमकों महा अद्भुत सुख भया। तथा जैसे कोई बालक-बुद्धि-पुरुष, शक्ति रहित काष्ठका खड़ग बांधि प्रबल वैरीका गढ़ जीतिनेकौं संग्राम करि, जीति पाय, गढ़ लेय जगत कौं आश्चर्य उपजाय, यश पावता भया। तैसे ही मैं ज्ञान-बल रहित तुच्छ अक्षर ज्ञान तैं, ऐसा महान ग्रन्थ पूर्ण किया। सो ये भी आश्चर्य है। इन आदिक आश्चर्य सहित, इस ग्रन्थके पूर्ण होते हर्ष भया। ग्रन्थकर्त्ता अपना जन्म, कृत-कृत्य मानता भया। जो या तन तैं, शुभ कार्य करना था, सो किया। ऐसे अपना भव धन्य मान्या। परभव सुधरनेकी साई (ब्याना) समान, आशा भई ताकरि परम-सुख भया। इस ग्रन्थ विषैं; अनेक ज्ञान तरङ्ग उपजों जाका कथन पाइये है। तातैं याके अध्ययन किए, सुदृष्टि होय। अरु ज्ञान-तरङ्गनका रहस्य जानै। तो तत्त्वज्ञान पाय परम सुखी होय, मोक्ष मार्गका ज्ञाता होय। पाप-पुण्यके शुभाशुभका भी वेत्ता होय। उच्च पद पाय, परंपराय जन्म मरण मैटै ऐसा जानि इस ग्रन्थके अभ्यास विषैं प्रवर्तना योग्य है। ऐसे इस ग्रन्थकी बालबोध वचनिका रूप टीका, अपनी आलोचनाकूं लिए, आदि-अंत इष्ट देव-गुरुकौं नमस्कार करि पूर्ण करी।

जे वस्तु गुण गहता, वस्तु कर्म रहता, सिद्ध कहंता सो देवा। चतु घात निवारे, चउगुण धारे, तन थिति कारे तिस सेवा ॥
ताको सो बानी धर्म कहानी, शिव दरशानी, मै ध्याऊं। ते नगन शरीरा, सब जग पी-हरा, तप धर धीरा गुण गाऊं ॥ १ ॥
ये देव धरम गुरु, तिष्ठो मो उर, हे शिव सुख कर जगनाथा। मैं इनको दासा, और न आशा, है यह प्यासा, रक्ष तथा ॥
यह टेक हमारी है गुणकारी, तुम थुति प्यारी, पाप हरा। सो मोकूं दीजे, ढील न कीजे, लेय वरोजे, मोक्ष-वरा ॥ २ ॥

यह सुदृष्टि तरङ्ग है, ताको यह विस्तार। सागर सम जो यह तिरैं, सम्यक टेक सुधार। ३।
गुरु आज्ञा-नौका चढ़ै, शङ्का सकल निवार। ते सुदृष्टि तरङ्गके, उतरैं पैले पार। ४।
शीतल-जिनके जन्म थलि, ग्रन्थ समापति कीन। विघ्न मिटे मङ्गल थये भये पाप सब हीन। ५।
टेक गई अघ कारनी, रही टेक मुनि दाय। सो यह भव-भव टेक हम, मिलै टेक वृष दाय। ६।
संवत् अष्टादश शतक, फिर ऊपर अड़तीस। सावन सुदि एकादशी, अर्ध निशि पूरण कीन। ७।

इति श्री सुदृष्टि तरङ्गिणी नाम ग्रन्थ के मध्यमें कवि आलोचनादि का वर्णन करनेवाला ब्यालीसवाँ पर्व सम्पूर्णं ॥४२॥

इति श्री पण्डित टेकचन्द्र जी कृत, सुदृष्टि तरङ्गिणी नाम ग्रन्थ तथा ताकी बालबोधिनी टीका सम्पूर्णं।

समाप्त